प्रथम संस्करण

रसीली ब्रज यात्रा

सीमान्त ब्रज

ब्रज-बीथिन, पुर-गलिनि, घरै-घर, घाट-बाट सब सोर मचायौ ।

(सूर सागर)

श्री सूरदास जी तो कहते हैं – इस भूमि का कोई नगर, पुर, वन, वीथि – कहाँ तक कहें कोई घर और कोई घाट शेष नहीं रहा है, जहाँ लीला न हुई हो । अतः यहाँ के पर्वत, कुण्ड, सरोवर, वन, उपवन एवं ग्रामों का नाम लीलानुगत ही है । जैसे – श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने से ग्राम का नाम 'खोह', मथुरा प्रस्थान के समय शीघ्र (सी) परश्वः (परसों) आने के आश्वासन से ग्राम का नाम 'सी पलसों', दूध की लीला होने से 'पयगाँव', खम्ब के गढ़ने से 'खाम्बी', वनचर होने से 'वनचारी', सत्राजित का वास होने से 'सतवास', बिछुर जाने से 'बिछोर', जहाँ श्री राधारानी ने स्वप्न देखा वह स्थल विशेष 'सुपाना' एवं नन्दबाबा का कोष होने से 'कोसी' हुआ । इस प्रकार सभी ग्रामों के नाम लीला से हैं । क्या श्री गिरिराज जी गोवर्धनोद्धरण लीला के प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं? काम्यवन की चरणपहाड़ी, भोजनथाली, स्खलिनी शिला, बरसाना की खोर साँकरी (जहाँ की शिला दही के गिरने से आज भी स्निग्ध है), छोटे भरने की मुकुट शिला - सम्पूर्ण ब्रज आज भी साढ़े पाँच हजार वर्ष प्राचीन धरोहर से भरा हुआ है । ऐसे अनेक प्राचीन लीला चिन्ह हैं जो श्री युगल सरकार की त्रैकालिक लीला का साक्ष्य दे रहे हैं ।

ब्रज बालिका मुरलिका शर्मा
श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान,
बरसाना, मथुरा

राधे किशोरी दया करो ।

हम से दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो ॥

सदा ढरी दीनन पे श्यामा, यह विश्वास जु मनहि खरो ॥

विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापन जू जरो ॥

दीनन हित अवतरी जगत में, दीन पालनी हिय विचरो ॥

दास तुम्हारो आस और की, हरो विमुख गति को झगरो ॥

कबहुँ करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार परयो ॥

रसीली ब्रज यात्रा

सीमान्त ब्रज

लेखिका

ब्रज बालिका मुरलिका शर्मा

प्रकाशक

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान
गहवर वन, बरसाना, मथुरा
उत्तर प्रदेश २८१ ४०५
भारतवर्ष

पुस्तक के विषय में

ब्रज रस के अतलतल में नित्य स्थित, रस स्थल श्री बरसाने के परम विरक्त सन्त अनन्त श्री युत् श्रीश्री रमेश बाबा जी महाराज के मुख से मुखरित शब्द ही यहाँ पुस्तक के रूप में हैं।

ऐसे उदार व्यक्तित्व के संरक्षण में गत् २७ वर्षों से चल रही "श्रीराधा रानी ब्रज यात्रा" की दिग्दर्शिका "रसीली ब्रज यात्रा – भाग २ (सीमान्त ब्रज)" राधा अष्टमी के पावन पर्व पर जिज्ञासु भक्तों के समक्ष प्रस्तुत है।

विषयसूची

समर्पण उनको

जिनके निर्देश दिशाबोध से यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

मम नाथ! यदस्ति, योऽस्म्यहं, सकलं तद्धि तवैव माधव ।
नियतः स्वमिति प्रबुद्धधीः अथवा किं नु समर्पयामि ते ॥

हे नाथ! मैं जो कुछ हूँ ....सो आपका ही। मेरा जो कुछ है वह सब भी आपका, सब कुछ आपका ही तो समर्पण किसका करूँ?

समर्पण की विडम्बना मात्र है।

कृतज्ञता प्रकाशन

लोकोत्तर तो था ही, साथ ही बड़ा दुस्साध्य था यह कार्य फिर एक अबोध, असहाय बालिका में इतनी कहाँ सामर्थ्य कि इस दुरूह कार्य को कर सके। श्री मानमन्दिर के भक्ति, ज्ञान, वैराग्य स्वरूप परम निरपेक्ष सन्तों का गुरुतम श्रम ही द्वितीय खण्ड सहित इस ग्रन्थ को पूर्णता की ओर लाया है, जिसके फलस्वरूप आज यह ग्रन्थ ब्रजप्रेमियों को वरवत् प्राप्त हो सका है। उनके दैन्याग्रह के कारण नामों का उल्लेख नहीं दिया जा रहा है। पूज्य सन्तों के इस अथक प्रयास का ऋण परिशोधन तो कथमपि सम्भव नहीं अतः चिरऋणी हैं, चिरकृतज्ञ हैं हम सब।

नमामि ब्रजोद्धारकम्

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना, नासावृषिर्यस्यमतं न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

(महाभारत, वन पर्व ३/१३/११७)

न श्रुतियों में मतैक्य है, न स्मृतियों में ही।

मुनियों के मत में भी ऐक्य कहाँ?

धर्म का तत्व तो गुहा में ही छिपा हुआ है।

तब कैसे ढूँढ़ें? कहाँ जाएं? क्या करें?

व्यथित होने की आवश्यकता नहीं, ये महापुरुष जिस मार्ग का सृजन करते हुए गये हैं, **न स्खलेन्न पतेदिह** – आरूढ़ हो जाओ उस मार्ग पर, जहाँ न स्खलन का भय है, न पतन का ही फिर हम जैसे भ्रांत परिश्रान्त पथिकों के लिए इन महापुरुषों का देदीप्यमान जीवन-चरित्र ही तो निर्भ्रान्त पथ-प्रदर्शक है।

धन्य तो है इस वसुन्धरा का पवित्र अंचल जो सदा से सन्त परम्परा से विभूषित होता रहा है।

महाकवि भवभूति की भविष्य वाणी –

'उत्पत्स्यते तु मम कोऽपि समानधर्मा ।
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥'

ऐसी पावन परम्परा में, संसार प्रवास की स्वल्पावधि में विपुल लोकोपकार करने वाले इन महापुरुष का अवतरण भी किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही हुआ है।

आंशिक झलक

भक्तिमती श्रीमती हेमेश्वरी देवी तथा श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल जी की दीर्घ कालीन शिवाराधना से जगतीतल पर प्रथम प्रभात देखा।

अन्न प्राशन के दिन प्रवृत्ति-परीक्षा हेतु बालक के सामने अन्न, द्रव्य, वस्त्र, शस्त्र और धर्म ग्रन्थ जब रखे गये तो श्रीमद्भगवद्गीता के अतिरिक्त बालक को सब कुछ अलक्षित ही रहा; झट से गीता को उठाया और मुख में भर लिया, गीता का सचल स्वरूप जो ठहरे। पिता ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे ही, क्षणभर में बालक का ललाट पढ़कर माता से

बोले – यह बालक केवल तुम्हारे लिए ही उत्पन्न नहीं हुआ है, विशेष कार्य की सिद्धि के लिए अवतरण हुआ है इसका।

शनैः-शनैः अप्रतिम प्रतिभा भी प्रकट होने लगी। शैशव से ही बड़ा धीर, गम्भीर व्यक्तित्व रहा।

एक बार पिताजी के साथ मदनमोहन मालवीय जी के घर भजन कार्यक्रम में गये। पिताजी के घनिष्ठ मित्रों में थे महामना श्री मदन मोहन मालवीय जी, बालक के गाम्भीर्य को देख बोले – शुक्ल जी! संसार में प्रवृत्त नहीं होगा यह अलौकिक बालक।

अभी साढ़े चार वर्ष की अल्प सी अवस्था थी कि पिता दिवंगत हो गये। यह असामयिक अवसान (देहान्त), माता जी के लिए असह्य अवसाद का कारण बना किन्तु बालक का तो जैसे "समत्वं योग उच्यते" का पाठ पढ़कर ही प्रादुर्भाव हुआ था। विलक्षण-वैराग्य, अद्भुत्-त्याग, और प्रभु के प्रति अभूतपूर्व उत्कण्ठा निरन्तर बढ़ ही रही थी। रह-रहकर श्री मन्महाप्रभु का अद्वैताचार्य के प्रति उपदेश स्मरण हो आता।

"विना सर्वत्यागं भवति भजनं न ह्यसुपतेः"

सर्वत्याग के बिना भगवान् का भजन नहीं होता है।

इस उपदेश की स्मृति से गृह-त्याग की भावना और तीव्र हो उठती।

सोलह वर्ष की सुकुमार अवस्था में गृहत्याग का कठोर संकल्प भी दृढ़ हो गया।

स्थिति यह हो चली थी कि –

दिन नहिं भूख, रैन नहीं निद्रा, यो तन पल पल छीजै ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, मिलि बिछुरन नहिं दीजै ॥
सजन! सुध ज्यूँ जाणौं त्यूँ लीजै ।

निस्तब्ध रात्रि, बलुआ घाट (इलाहाबाद) पर बैठ जाते और निहारते रहते यमुना की नीली धारा! न जाने कौन-सी कहानी कह देती ये सरिता की लहरें कि नेत्रों से अविराम अश्रुप्रवाह होता रहता। कृष्ण-स्पर्श से पुलकित और आनन्दित होकर यह वही यमुना हैं जो ब्रज से चली आ रही हैं फिर प्रेम में तो प्रत्येक वस्तु-पदार्थ प्रियतम के रूप में ही प्रतिभासित होता है। समुद्र का नीला जल यमुना और चटक पर्वत गिरिराज रूप हो गया श्री मन्महाप्रभु के लिए।

एक जैसी ही होती है सब महापुरुषों की अन्तःस्थिति।

अद्भुत है यह प्रेमोन्माद!

काहां करों काहां पाओं ब्रजेन्द्रनंदन ।
काहां मोर प्राणनाथ मुरलीवदन ॥

काहारे कहिव केवा जाने मोर दुःख ।
ब्रजेन्द्रनन्दन बिनु फाटे मोर बुक ॥

(चै.चरि.मध्यलीला.२.परिच्छेद१४, १५)

किसी से कहना सुनना तो व्यर्थ है।

और फिर किसकी सामर्थ्य है जो इस स्थिति को समझ सके।

विरह कथा कासूं कहूँ सजनी, बह गई करवट ऐण ।
दरस बिन दूखण लागे नैन ।

(मीरा जी)

ब्रज की ओर बढ़ते कदम

धाम-धामी के साक्षात्कार की चिर अभिलाषा ने अंततः गृहत्याग करा ही दिया।

इष्ट के भरोसे भागे, बिना टिकट ट्रेन में बैठने पर टी.टी. ने पकड़ा और हथकड़ी डाल दी। मुकदमा जज के सामने पेश हुआ। अब क्षण भर का विलम्ब भी असह्य हो रहा था मन को, अश्रुपूरित नेत्र कुछ अरुण हो उठे, ओष्ठ भी फड़कने लगे।

'तुम बिना टिकट ट्रेन में चढ़े', जज ने केवल इतना ही पूछा।

'जी हाँ, मेरे पास पर्याप्त द्रव्य नहीं था, जो है वह इतना ही है', कहकर दो-चार आने उसकी मेज पर बिखेर दिये। 'आप यह ले लें और मुझे तुरन्त छोड़ दें, मैं ब्रज-दर्शन को निकला हूँ।'

वाणी में एक छटपटाहट व अवरोधों के प्रति रोष था। जज को छोड़ना पड़ा।

अवरोधों को चीरते हुए लक्ष्य की प्राप्ति की।

वनवास के बाद मिला ब्रजवास

इतनी सहज नहीं है यह प्राप्ति।

अब से साठ वर्ष पूर्व कैसा रहा होगा चित्रकूट का अरण्य स्थल।

इतनी सघनता थी कि ढूढ़ने पर भी पथ न मिले। इतना विस्तार कि दौड़ने पर भी छोर न मिले। बाँके सिद्ध की गुफा, ददरी का जंगल, मारकुण्डी आश्रम, शरभंग आश्रम, अमरावती, सुतीक्ष्ण आश्रम, अनुसूया आश्रम, बिराध कुण्ड, भरत कूप आदि दुर्गम स्थलों की चमत्कारपूर्ण यात्रा ने भी एक नवीन इतिहास रचा। अब बारी थी उस चिरप्रतीक्षित धरा की प्राप्ति की, जहाँ वह रसमय ब्रह्म नित्य लीलायमान है।

प्रियतम के प्राकट्य स्थल ब्रजमण्डल में प्रवेश करते ही प्राणों में अनन्तानन्द सिन्धु उच्छलित हुआ – अ हा हा! दिव्य है यह भूमि!

अद्भुत है यहाँ रस का अखण्ड प्रवाह!

यहाँ का चराचर रस का मूर्त रूप है!

रस वैभव सम्पन्न इस धाम का दर्शन कर सद्यः मन अपने संकल्प के लिए दृढ़ हो गया। बस फिर क्या था, श्रीजी के अन्तरंग परिकर, ब्रज रस रसिक, पूज्य बाबा श्री प्रिया शरण जी महाराज का सानिध्य प्राप्त कर 'अखण्ड ब्रजवास' जीवन का व्रत हो गया। ब्रज का संरक्षण, सम्वर्धन करते हुए सम्पूर्ण जीवन ब्रज सेवार्थ समर्पित करने वाले इन महापुरुष का तपोमय जीवन भक्तिपथ के सर्वविध पथिकों के लिए अनुकरणीय बन गया।

परम पूज्य श्री रमेश बाबा जी महाराज

गंगा की भाँति निर्मल, हिमांचल की भाँति अचल, भास्कर की भाँति तेजस्वी, शिशु सी सरलता, जल सी तरलता, वृक्ष सी सहिष्णुता – गीता का सही प्रतिनिधित्व करने लगा यह व्यक्तित्व।

महाभाग्यवान हैं वे जन, जिन्होंने आपका साक्षात्कार किया है, कर रहे हैं और करेंगे।

अन्तहीन है यह प्राण कथा ....

फिर यह चरित्र लिखने की क्षमता, पटुता व सच्चरित्रता भी तो नहीं है।

आपके श्री चरणों में कोटि-कोटि प्रणति।

ब्रज के अर्चावतारों के चमत्कार

जिस समय ब्रज आततायियों से संत्रस्त था, अर्चावतारों द्वारा अनेक चमत्कार हुए जिससे आसुरी शक्ति का पराभव हुआ।

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥

(भा.७/९/३८)

कलियुग में श्री भगवान् साक्षात् रूप से नहीं छिपकर धर्म की रक्षा करते हैं। यदि वह स्वयं धर्म के रक्षक न हों तो क्या आज धर्म दिखाई देगा? लगभग २००० वर्ष की परतन्त्रता में कितने आये, कितने ही गये किन्तु धर्म का आत्यन्तिक नाश कोई नहीं कर सका, यवन और अंग्रेज तो क्या कालविजयी रावण ने ७२ चौकड़ी राज्य किया था। हिरण्यकशिपु क्या कम था, भाई की मृत्यु की प्रतिक्रिया में वैकुण्ठ तक पहुँच गया था किन्तु याद रहे –

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥

(भा.७/४/२७)

देव, वेद, गो, विप्र, साधू व धर्म का विद्वेषी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। उतार-चढ़ाव अवश्य आते हैं किन्तु धर्म का आत्यन्तिक नाश किसी काल में सम्भव नहीं है। किसी न किसी रूप में भगवान् के द्वारा धर्म की रक्षा होती रही है –

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ।
तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥

(भा.१०/२/८)

श्री भगवान् के वचन – हे देवी! इस समय मेरा अंश (शेष) माता देवकी के गर्भ में है उसे वहाँ से निकाल कर रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दो अर्थात् शेष भी भगवान् कृष्ण के अंशावतार हैं –

अवतारा ह्यसङ्ख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥

(भा.१/३/२६)

जिस प्रकार अगाध सरोवर से सहस्रों छोटे-छोटे नाले निकलते हैं उसी प्रकार सत्व निधि भगवान् हरि के असंख्य अवतार हुआ करते हैं। जिनमें अर्चावतार भी एक हैं, इसी अवतार से कलिकाल में धर्म की रक्षा होती है।

मैत्रेजी जी के वचन –

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥

(भा.३.२४.३१)

प्रभु अनेक रूप व अनेक लीलाएं करते हैं यद्यपि वे अरूपी हैं अर्थात् आकार रहित हैं किन्तु जो-जो रूप भक्तों को प्रिय लगता है वही-वही रूप प्रकट करते हैं और वैसी लीला किया करते हैं।

यवन काल में इन विग्रहों का ब्रज के बाहर पलायन करना वैसे ही है जैसे ब्रज से श्रीकृष्ण कालयवनादि के भय से भागे और द्वारिका लीला प्रकट हुई अन्यथा द्वारिका लीला कैसे प्रकट होती? उनका पलायन भी एक लीला है, कृपा है। कलियुग में भी ऐसी लीलाएं हुई हैं जैसे भक्तमाल में **रामदासजी का चरित्र –**

द्वारिका के पास डाकोर नामक ग्राम में श्री रामदास भक्त निवास करते थे। प्रत्येक एकादशी को द्वारका जाते एवं श्री रणछोड़ जी के मन्दिर में कीर्तन करते हुए रात्रि-जागरण करते थे। जब शरीर वृद्ध हो गया तो एक दिन प्रभु ने आज्ञा दी – राम दास जी! अब आप घर में जागरण कीर्तन कर लिया करें, यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है किन्तु वह नहीं माने। तब ठाकुर जी ने उनकी निष्ठा देखकर कहा – तो ठीक है मैं ही तुम्हारे साथ चलूँगा। अगली एकादशी को गाड़ी लेकर आना और उसे मन्दिर की पश्चिमी खिड़की की ओर खड़ी कर देना, रात्रि में जब सब सो जाएं तो शीघ्र ही हमें गाड़ी में पधराकर चल देना। प्रभु का आदेश पाते ही रामदास जी ने ऐसा ही किया।

इस बार जब वे गाड़ी पर चढ़कर आये तो लोगों ने समझा, भगत जी अब वृद्ध हो गये हैं, शरीर में चलने की शक्ति नहीं रह गई है अतः गाड़ी पर चढ़ कर आये हैं। रामदासजी ने एकादशी को रात्रि में कीर्तन किया एवं द्वादशी की रात्रि को पीछे की खिड़की से मन्दिर में जा कर प्रभु के आभूषण उतारे और उन्हें गोद में उठाकर ले आये। गाड़ी को हांक दिया। प्रातः मन्दिर को सूना देखकर पुजारी समझ गये कि यह सब रामदास का ही कार्य है पुजारियों ने रामदास जी का पीछा किया, पुजारियों को आते हुए देखकर रामदास जी ने कहा – प्रभो! अब क्या करूँ? भगवान् बोले – रामदास जी! देखो सामने इस बावली में मुझे छिपा दो। रामदास जी ने ऐसा ही किया। तब तक पुजारियों ने आकर रामदासजी को पकड़ लिया एवं बहुत मारा। पीठ पर अनेक घाव हो गये। भगवान् तो ढूंढने पर भी न मिले तब मन में पश्चाताप हुआ, हमने इसे व्यर्थ ही मारा, इसके पास हमारे ठाकुर नहीं हैं तब तक किसी एक पुजारी ने बावली में झांककर देखा, भगवान् तो मिल गये किन्तु

बावली का जल, रक्त से लाल हो गया था तब स्वयं भगवान् ने कहा – मेरे भक्त मेरा ही तनु हैं, तुमने रामदास को नहीं अपितु मेरे ही शरीर में चोट पहुँचाई है। यह देखो मेरे शरीर से रक्त बह रहा है। अब मैं तुम्हारे साथ कदापि नहीं जाऊँगा। मेरा दूसरा विग्रह मन्दिर में स्थापित कर लो। जीविका के लिए तुम मेरे इस विग्रह के बराबर सोना ले लो और चले जाओ। पुजारी लोभ वश तैयार हो गये। भगवान् ने राम दास जी को कहा राम दास जी! तराजू पर मेरे बराबर सोना तोल दो, इस पर रामदास जी ने कहा – प्रभो भला मुझ गरीब के पास इतना सोना कहाँ से आया? प्रभु बोले – तुम्हारी स्त्री के कान में एक सोने की बाली है, उसी से तोल दो। आश्चर्य की बात, एक छोटी सी बाली तोल में भगवान् से भी अधिक हो गई। श्रीरामदाजी ने पुजारियों से कहा – बाली है तो वजन में अधिक किन्तु आप इसे ले जाएं। आप ब्राह्मण हैं, आप प्रसन्न रहेंगे तो प्रभु भी प्रसन्न रहेंगे।

आज भी डाकोर में श्री रणछोड़ राय जी का मन्दिर दर्शनीय है।

इसी प्रकार श्रीगोविन्ददेव जी, श्रीगोपीनाथ जी, श्रीमदनमोहन जी, श्रीनाथ जी, श्रीमथुरेश जी आदि अनेक अर्चाविग्रहों को मुगल काल में सुरक्षा की दृष्टि से आतंकित ब्रज से ले जाकर जयपुर, भरतपुर, करौली एवं कोटा आदि राजस्थान की रियासतों में पधराया गया। जिस समय बरसाना आतंकग्रस्त हुआ, श्री लाड़ली जी को भी बड़ोदा राजदरबार के परम भागवत राजा श्री किशोरी दासजी के अत्यधिक आग्रह पर, गोस्वामी गणों की अनुमति से श्योपुर ले जाया गया। उस समय "श्री नवल चन्द्र गोस्वामी" श्री दादी-बाबा मन्दिर वाले गुसाईं जी श्रीजी की सेवा के लिए श्योपुर गए। (श्योपुर नरेश श्रीकिशोरी दास जी इन्हीं के शिष्य थे।) दो वर्ष श्योपुर राज दरबार में लाड़िली जी विराजीं। उस समय श्रीजी के सिंहासन पर भूगर्भ से प्रकटित श्री विशाखा जी के श्री विग्रह को विराजमान किया गया। उस बीच मुस्लिम आक्रान्ताओं का अनेक बार बरसाने में आक्रमण हुआ। एक बार ऊँचे गाँव से बरसाने तक मुस्लिम हमलावरों का घिराव हो गया। तब श्री विशाखा जी की कृपा से ही रक्षा होती रही। बरसाने का समूल नाश ही हो जाता किन्तु अद्भुत् चमत्कार हुआ। श्रीजी के महल से लेकर पूरे पर्वत पर मुसलमानों को सहस्रों सशस्त्र सैनिक दिखाई पड़े, पीछे से भरतपुर का परम पराक्रमी राजा श्री बच्चू सिंह सदलबल मुसलमान सैनिकों को मारते-काटते बरसाने आ पहुँचा। एक भी मुसलमान शेष नहीं बचा। इस प्रकार श्रीलाड़िली जी महाराज की कृपा से विजय हुई। अतः श्रीलाड़िली जी के स्थान पर विराजित श्रीविशाखा जी का नाम ही विजय लाड़िली हुआ।

यवनों का उत्पात शान्त होने पर श्री लाड़िली जी की प्रेरणा से गोस्वामी बाबा ने राजा से श्रीजी को लेकर बरसाना लोटने की प्रार्थना की किन्तु जिसके हाथ चिन्तामणि लग जाय भला फिर वह उसे कैसे छोड़ सकता है? फिर राजा परम भक्त था, भावुक था किन्तु अब श्रीलाड़िलीजी के बिना रहना नहीं चाहता था। मन में संदेह तो हो ही गया कि कहीं

यह वृद्ध गोस्वामी अवसर पाकर श्रीजी को लेकर भाग न जाए अतः उसने मन्दिर पर कड़ा पहरा बैठा दिया। रात्रि में श्रीजी के शयनोपरान्त मन्दिर का ताला लगाकर ताली (चाबी) अपने महल में मँगवा लेता था। प्रातःकाल गोस्वामी बाबा राजमहल से ताली लाकर मन्दिर खोलकर तब श्रीजी की मंगला करते थे। इस प्रकार और कुछ दिन व्यतीत हो गए। गोस्वामी जी ने राजा की नीयत में खोट देखकर श्रीजी से ही प्रार्थना की, इस पर श्रीजी ने कहा – तुम चिन्ता न करो, आज रात्रि में शयन भोग के पश्चात् तुम मुझे लेकर पश्चिमी खिड़की से निकल जाना। बस फिर क्या था, रात्रि होते ही श्रीजी के आदेशानुसार गोस्वामी बाबा उन्हें अपने बटुए में पधराकर ले चले। वृद्ध तो थे ही, सम्पूर्ण रात्रि चलते रहे, प्रातः होते-होते चम्बल के किनारे पहुँचे किन्तु बिना नौका के उस अगाध जल को पार करना सम्भव नहीं दिखाई पड़ता था। इस पर उन्होंने श्री लाड़िली जी से ही कहा – "लाड़ो! अब चम्बल कैसे पार होगी? " "आप मुझे छाती में बाँधकर चम्बल में कूद पड़ो।" इस प्रकार श्रीजी की आज्ञा पाते ही गोस्वामी बाबा ने वैसा ही किया और जल में थलवत् चलते हुए सहज ही नदी पार कर गये। इधर मंगला आरती के समय मन्दिर को सूना देखकर राजा ने सब सैनिकों को दौड़ाया किन्तु चम्बल के अगाध जल को देखकर नदी पार करने का न घुड़सवारों का ही साहस हुआ, न घोड़ों का ही; खाली ही लौटना पड़ा।

श्योपुर से पैदल बरसाना लौटते समय वृद्ध गोस्वामी बाबा ने अनेक स्थानों पर श्रीजी को विश्रामादि कराया। प्रथम रात्रि निवास खण्डार तहसील, राजस्थान में किया; आज भी यहाँ श्रीजी मन्दिर दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त घासेरा में विश्राम हुआ, कालान्तर में घासेरा के जागीरदार ने श्रीजी मन्दिर-शिखर का निर्माण कराया।

श्री श्रीजी महाराज के श्योपुर से पुनः बरसाना आगमन पर श्रीविजयलाड़िली जी अपने पूर्व स्थान पर ही विराजमान कर दी गईं एवं श्रीजी महाराज अपने महल में निज सिंहासन पर विराजीं। मन्दिर में श्रीजी की ही भाँति विजयलाड़िली जी की भी नित्य सेवा पूजा होती है। श्री श्रीजी की आरती के पश्चात् पुजारी पार्श्व में श्रीविजयलाड़िली जी की तीन बार आरती उतारते हैं तत्पश्चात श्री बरसाने की एक आरती उतारते हैं।

सुना जाता है कि श्रीजी के आने के कुछ दिन बाद ही श्योपुर नरेश श्री किशोरीदास जी भी बरसाने आये। अपनी भूल पर पश्चाताप करते हुए श्रीजी से क्षमा याचना की एवं श्रीजी की सेवा में एक हजार बीघा भूमि दी, जो गोस्वामी गणों के आधीन है।

वस्तुतः इन्हीं अर्चावतारों से ब्रज के बाहर भी भक्ति का प्रचार प्रसार होता रहा। यदि गोविन्ददेव जी जयपुर न जाते तो आज वहाँ नित्य लक्षाधिक दर्शनार्थी दर्शन करते हैं वो कैसे करते? इसी प्रकार मदन मोहन जी के आने से करौली में भक्ति बढ़ी एवं श्रीराधा रानी के श्योपुर पधारने से मध्य प्रदेश, राजस्थान में श्रीराधा रानी की महिमा प्रकट हुई।

पुनः आये श्रीराधारमण

शताब्दियों पूर्व प्रादुर्भूत श्रद्धेय श्री नारायण भट्ट जी द्वारा प्रकटित एवं प्रतिष्ठित दिव्य विग्रह राधारमण जी बड़े ही चमत्कारिक ठाकुर जो ब्रजवासियों के प्राण स्वरूप हैं। दैवी-राक्षसी प्रवृत्ति का संगम अनादिकाल से चला आ ही रहा है। देव थे तो असुर भी थे। कृष्ण आये तो कंस भी आया। भगवान् अपने भक्तों के ऊपर कृपा वर्षा हेतु अवतरित होकर ऐसी लीलाएं करते हैं जिससे भक्तों का सतत मंगल होता रहे राधारमण जी ने भी एक ऐसी लीला की, प्रथम तो भक्तों को घोर संकट में डाल दिया। दिनांक ७/११/२०१३ की रात्रि में शयनोपरान्त प्रातः जब मन्दिर के कपाट खोले तो पुजारी जी के पैरों तले मानों जमीन ही खिसक गई। देखते हैं कि राधारमण जी मन्दिर में हैं ही नहीं।

श्री राधा रमण जी – संकेत
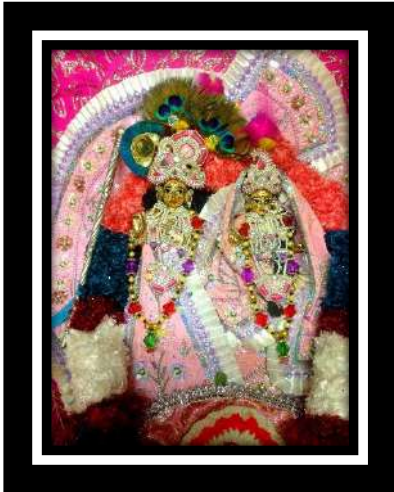
आगमन का ताँता लगा हुआ था परन्तु स्थिति बड़ी विचित्र होती गई। सारा गाँव एकत्रित हो गया और बात सामने आई कि राधा रमण जी चोरी हो गए। मन्दिर में ताले लगे थे, मोटी-मोटी दीवारें थीं, यह हुआ क्या? खोज प्ररम्भ हुई लेकिन कोई परिणाम नहीं आया। कितने ही लोग संदिग्ध दृष्टि से देखे जाने लगे। पुलिस प्रशासन में प्राथमिकी लिखाकर चोरों को पकड़ने का दबाव बनाया जाने लगा। लोगों ने आन्दोलन भी कर दिया परन्तु कुछ हाथ नहीं लगा। गाँव के वरिष्ठ-जन पूज्य बाबा महाराज के पास आये। "बाबा ने कहा कि हम तो भैया ये जानते हैं कि यह ठाकुर की कोई लीला है। हमारे यहाँ

श्री मान बिहारी लाल

से भी मानबिहारी लाल चोरी हो गए थे और हमारे मन्दिर के लोगों ने कहा मन्दिर सूना है, कोई दूसरे विग्रह लाये जाएँ तो हमने कहा कि नहीं। वही ठाकुर आयेंगे। आराधना में प्रबल शक्ति है। सब लोग अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तन करो। हुआ भी यही, १८ दिन बाद पश्चिम बंगाल के एक गाँव से मानविहारी लाल प्राप्त कर लिए गए, पुलिस थाना में छप्पन भोग लगे और वायुयान द्वारा दिल्ली आये। पूरे ब्रज में उत्सव के साथ मान मन्दिर पहुँचे। हमारा विश्वास है कि ऐसा ही यहाँ भी होगा, एक दिन ठाकुर अवश्य आयेंगे।"

आराधना व महापुरुषों की वाणी अवश्य ही फलीभूत होती है। पूज्य बाबाश्री की आज्ञा से मन्दिर में अखण्ड हरिनाम संकीर्तन आरम्भ हो गया। मानमन्दिर की सभी बालिकाएं बाबा के आदेश से गाँव संकेत गई और वहाँ घर-घर में जाकर कीर्तन की प्रेरणा देने लगीं। बड़ी धूमधाम से संकीर्तन होने लगा। मान मन्दिर में भी ठाकुर श्री राधा रमण जी के प्रत्यागमन की मंगल कामना से अखण्ड हरिनाम संकीर्तन किया जाने लगा। भगवान् प्रेम वृद्धि के लिए बहुधा ऐसी लीला किया करते हैं। रास में अन्तर्धान हो गए तो गोपियों ने भी यही कार्य किया। सभी ने मिलकर गोपी गीत गाया और उसके पश्चात् प्रेम और प्रगाढ़ हो गया, तभी श्री कृष्ण मिलन हुआ।

यहाँ भी राधा रमण जी ने चमत्कार दिखाया। प्रतीक्षा थोड़ी लम्बी करनी पड़ी परन्तु ऐसा कैसे हो सकता था कि महापुरुष की वाणी को भगवान् मिथ्या कर दें। लम्बे अन्तराल के पश्चात २/१०/२०१४ को अपराधियों को पकड़ लिया गया। ठाकुर जी आ गये सारे ब्रज में हल्ला हो गया। धूमधाम से उत्सव मनाया जाने लगा और ०५/१०/२०१४ को ठाकुर जी को विधिवत् प्रतिष्ठित किया गया। राधा रमण जी का यह प्रत्यागमन ब्रजवासियों, संतो ने एक चमत्कार के रूप में ही देखा क्योंकि आज तक पुरातन विग्रह (जो अष्टधातु के थे) चोरी होने के बाद वापस नहीं आये। यद्यपि यहाँ संकेत में भी जयपुर से दूसरे विग्रह लाये गए थे परन्तु बाबा महाराज ने कह दिया था वही ठाकुर आयेंगे। बाबाश्री की इच्छा व ब्रजवासियों के प्रेम को देख कर प्रभु ने कृपा की और वे फिर से पधारे अब प्रति वर्ष श्रीराधारमण जी का विशाल उत्सव मनाया जाता है।

ब्रज के राजा दाऊ दादा

गर्ग संहितानुसार –

श्रीशेष से ही धाम प्रकट होता है अतः दाऊ दयाल ही ब्रज के राजा हैं। एक समय ब्रह्मा-शिवादि देव गोलोक धाम पहुँचे। सर्वप्रथम इन्हें वहाँ विरजा के तट पर एक तेजोमय नगर दिखाई पड़ा। ध्यान लगाने पर उसमें एक परम शान्तिमय साकार धाम का दर्शन हुआ जिसमें उज्जवल धवल सहस्त्रमुख वाले श्रीशेष विराजित थे। शेष जी की गोद में

लोक वन्दित परम प्रकाशमय गोलोक धाम का दर्शन हुआ जहाँ काल का भी प्रवेश नहीं है।

तज्ज्योतिर्मंलेऽपश्यत्साकारं धाम शान्तिमत्
तस्मिन्महाद्भुतं दीर्घं मृणालधवलं परम्।
सहस्रवदनं शेषं दृष्ट्वा नेमुः सुरास्ततः ॥१७॥
तस्योत्संगे महालोको गोलोको लोकवन्दितः।
यत्र कालः कल्यतामीश्वरो धाममानिनाम् ॥१८॥

(गर्ग संहिता गोलोक खण्ड २/१७, १८)

इस प्रकार शेषजी से ही धाम का प्राकट्य होता है। धाम के प्राकट्य कर्ता होने से शेष अवतार दाऊ दयाल ही ब्रज के राजा हैं।

परब्रह्म का आधार वे स्वयं शासक रूप में हैं। अन्तिम मूल का कोई मूल न होने से उन्हें अमूल कहा जाता है। अन्तिम प्रकाशक का कोई प्रकाशक न होने से वह स्वयं प्रकाश कहलाता है। इसी प्रकार सबका अन्तिम आधार होने से स्वयं प्रतिष्ठित कहलाता है। श्रुति भी यही कहती हैं –

'स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि' (छा. उ. ७/२४/१) वह परब्रह्म किस में प्रतिष्ठित है अर्थात् किसी में नहीं। वह तो स्वस्वरूप में ही प्रतिष्ठित है – "शिष्यते यः सषेशः" जो शेष रहे वही शेष है प्रलयान्त में विधि की द्विपरार्ध आयु व्यतीत होने पर सब कुछ नष्ट होने पर भी शेष रहता है इसी से उसे शेष कहा गया है।

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः
सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन्।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्
नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥

(भा.५/२५/९)

नारद जी के वचन – शेष जी की दृष्टि मात्र से ही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय आदि के हेतुभूत सत्वादिगुण अपना-अपना कार्य करते हैं, उनका स्वरूप अनन्त व अनादि है। नानात्मक प्रपञ्च को स्वयं में ध्यान करने वाले संकर्षण तत्व को जानना कठिन ही है। कभी वे अनन्त के रूप में तो कभी लक्ष्मण के रूप में तो कभी बलराम के रूप में आते हैं।

शक्ति रूप में शेष –

शाक्त मतानुसार कुण्डलनी के प्रतीक श्री बलराम जी हैं। "तोडल तन्त्र" में श्रीबलराम जी को भैरवी का प्रतीक माना है –

तारा देवी नीलरूपा, कमला कूर्म चण्डिकाः।

धूमावती वाराहस्यात् छिन्नमस्ता नृसिंह का।
भुवनेश्वरी वामन स्यात् मातंगी राम मूर्तिका।
त्रिपुरा जामदंग्यात् बलभद्रस्तु भैरवी॥

वैदिक धर्म का शुभारम्भ चतुर्व्युह उपासना से होता है। उस चतुर्व्युह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध) में आप संकर्षण के रूप में विद्यमान हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रज मण्डल के प्राचीनतम देव बलदेव हैं। चितौड़ के शिलालेखों में, जो कि ईसा से पाँचवीं शताब्दी पूर्व के हैं, बलदेव उपासना इंगित की गई है। अर्पटक भोर गाँव और नाना घटिका के शिलालेख जो कि ईसा के प्रथम-द्वितीय शताब्दी के हैं। जुनसुटी की बलदेव मूर्ति शुंगकालीन है। न केवल ब्रज और भारत में प्रत्युत यूनान, अफगानिस्तान, रूस आदि सुदूर देशों में भी श्रीबलराम जी की पूजा अर्चना प्रचलित थी जिसका प्रमाण वहाँ के उत्खनन से प्राप्त हुए बलदेव विग्रह हैं। इसके अतिरिक्त यूनान के शासक अगाथोक्लीज के समय में रजत मुद्राओं पर बलदेव जी का अंकन होता था। ये मुद्राएं अद्यावधि अनेक पुरातत्व संग्रहालयों में द्रष्टव्य हैं। अफगानिस्तान से भी कुछ ऐसी रजत मुद्राएं प्राप्त हुई हैं, ये सभी ईसा पूर्व की हैं। मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय में श्रीबलराम जी की लगभग ३० दिव्य मूर्तियाँ हैं जिनमें कुछ कुषाण कालीन, कुछ शुंग कालीन, कुछ गुप्त कालीन और कुछ मध्य कालीन हैं, जो ईसा से दो-तीन शताब्दी प्राचीन हैं। भारत वर्ष में बलराम जी सर्वत्र विराजित हैं। जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ के साथ विराजित हैं। उत्तर में जम्मू से कन्याकुमारी के मध्य चेन्नई में बलदेव मन्दिर है। जिस समय बलराम जी ने तीर्थाटन किया, दक्षिण के सभी तीर्थों में गए, अतः वहाँ अनेक देवालय हैं। उड़ीसा के केंद्र पाड़ा में बलराम जी का बड़देव जू के नाम से प्रख्यात मन्दिर है।

ब्रज भूमि में तो ब्रज के राजा होने से आप सर्वत्र ही विराजित हैं किन्तु दाऊ जी के अनेक स्थलों में प्रसिद्ध है "बलदेव ग्राम"। मथुरा जनपद नगरी ब्रज मण्डल के पूर्वी छोर पर मथुरा से २१ कि.मी. की दूरी पर एटा-मथुरा मार्ग के मध्य बलदेव ग्राम स्थित है, जिसका पौराणिक नाम विद्रुम वन है।

गर्ग संहितानुसार –

कोल दैत्य के वध उपरान्त श्रीबलराम जी जह्नु तीर्थ गए। वहाँ से पश्चिमी भाग में 'आहार स्थान' में रात्रि विश्राम किया। ब्राह्मणों की समुचित सेवा करके अगले ही दिन वहाँ से एक योजन दूर मण्डूक देव के पास गए। मण्डूक देव ने श्री बलराम जी की कृपा प्राप्त करने के लिये उत्कट तप किया था।

ध्यानस्थ मण्डूक देव पर श्री बलराम जी ने कृपा की एवं अपना साक्षात्कार कराया। मण्डूक देव ने श्रीबलराम जी की स्तुति की। इस पर प्रसन्न होकर उन्होंने वर माँगने के लिए कहा –

मण्डूक देव बोले – हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो भागवत संहिता प्रदान करें। श्रीबलराम जी ने कहा – वह तो तुम्हें उद्धव जी से ही प्राप्त होगी। तदन्तर बलराम जी आगे चले तो अनेक देव व ब्रह्मऋषियों ने प्रार्थना की – हे भगवन! हम जब-जब संकट में पड़ें तो आपके चरणों का चिंतन करें व आपकी कृपा से समस्त बाधाओं से मुक्त हो जाएँ। श्रीबलराम जी ने कहा –

यदा यदा मां स्मरथ तदाऽहं शरणागतान् ।
रक्षिता स्यां कलौ नूनमिति सत्यं वचो मम ॥

(गर्ग संहिता,मथुरा खण्ड २४/१०२)

जब-जब आप लोग शरणापन्न होकर मेरा स्मरण करेंगे तब-तब कलियुग में मैं निश्चय ही आप सबकी रक्षा करूँगा।

विद्वान सन्तों का मानना है कि कलिकाल में मण्डूक देव जी श्रीकल्याण देव जी के रूप में अवतरित हुए जिन्होंने श्रीबलदेव जीको प्रकट किया और श्रीबलराम जी ने दुर्धर्ष आसुरी शक्ति को पराजित किया।

अवतरण लीला –

गोवर्धन की तलहटी में 'भर्ना खुर्द' ग्राम के सूर्य कुण्ड तट पर परम सात्विक विप्र श्रीकल्याण देव जी भजन करते थे। एक समय श्री कल्याण देव जी अन्तःप्रेरणा से जगन्नाथ पुरी की यात्रा के लिए निकले। मानसी गंगा में स्नान करके मथुरा पुरी में पहुँचे। वहाँ यमुना स्नान करके चले तो विद्रुम वन आये। सघन एकान्त वह स्थान बहुत ही प्रिय लगा एवं कुछ दिन यहाँ भजन करने का निश्चय किया। एक दिन स्वयं हलधर श्रीबलराम जी उनके सन्मुख प्रकट हुए और वरदान माँगने को कहा, इस पर कल्याण देव जी ने कहा – भगवन! मुझे आपके नित्य दर्शन के अतिरिक्त कुछ भी अभीष्ट नहीं है अतः आप नित्य मेरे घर में विराजें। बलराम जी ने कहा – हे विप्र देव! इस वट वृक्ष के नीचे भूमि में मेरी एवं रेवती की प्रतिमा दबी हुयी है, तुम उसे प्रकट करो। सुनते ही बलदेव जी की व्यग्रता और प्रसन्नता दोनों ही बढ़ गयी। भूमि खनन का कार्य आरम्भ हुआ। दूसरी विचित्र बात यह

ब्रज के राजा दाऊ दादा

हुयी कि उसी रात्रि श्रीमद् वल्लभाचार्य महाप्रभु के पौत्र गोस्वामी श्री गोकुल नाथ जी को प्रभु ने स्वप्नादेश किया – मैं विद्रुम वन में वट वृक्ष के नीचे भूमिस्थ हूँ, आपकी श्यामा गो नित्य मेरी प्रतिमा के ऊपर आकर दूध स्रवित करती है। आप शीघ्र मुझे प्रकट करो। प्रातः होते ही गोस्वामी गोकुलनाथ जी भी विद्रुम वन आये। वहाँ कल्याण देव जी के द्वारा पूर्व ही खनन कार्य चल रहा था। दोनों परस्पर मिले एवं अपना-अपना वृत्तांत सुनाया एवं प्रसन्नता के साथ श्रीरेवतीरमण को प्रकट किया किन्तु एक सघन वन में सेवा कार्य कैसे होगा अतः गोस्वामी गोकुल नाथ जी ने श्रीबलराम व रेवती जी को गोकुल में प्रतिष्ठित करने की इच्छा व्यक्त की। एतदर्थ अनेक प्रयत्न किये किन्तु मूर्ति अपने स्थान से हिली तक नहीं। तब प्राकट्य स्थान पर ही प्रतिष्ठा हुई। यह वही स्थान था जहाँ कल्याण देव जी भजन करते थे। नित्य घर में निवास की याचना करते थे वह पूर्ण हुई। श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्रीवज्रनाभ जी द्वारा चार देवों में एक बलदेव हैं। कालान्तर में यह भूमिष्ट हो गए थे। पुरातत्ववेत्ताओं का कथन है कि यह विग्रह २००० वर्षों से भी प्राचीन है। ब्रज मण्डल के प्राचीन देव विग्रहों में बलदेव जी का विग्रह सर्वाधिक प्राचीन एवं विशाल है। यह श्याम वर्ण की मूर्ति लगभग आठ फुट ऊँची व साढ़े तीन फुट चौड़ी है, पीछे शेषनाग सात फणों से छाया किये हुए हैं। मूर्ति नृत्य मुद्रा में है, दाहिना हाथ सिर से ऊपर वरद मुद्रा में है एवं बाँए हाथ में चषक है।

ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदित-
विकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः
स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन
माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा
एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान्महेन्द्रो वारणेन्द्र
इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥

(भा.५/२५/७)

विशाल नेत्र, भुजाओं में आभूषण, कलाई में कड़ूला उत्कीर्णित है। कटि में धोती धारण किये हुए हैं, एक कान में कुण्डल हैं व गले में वैजन्ती माला है। मूर्ति के सिर के ऊपर से चरणों तक शेष नाग स्थित है। तीन वलय हैं जो योग शास्त्र की कुण्डलनी शक्ति के प्रतीक हैं। श्रीदाऊ जी के विषय में प्रसिद्ध है कि –

ब्रज मण्डल भाजन परी भाजि गए सब देव ।
श्री यमुना सूनी पड़ी द्वार अड़े बलदेव ॥

मण्डूक देव को दिया हुआ वचन "मैं कलियुग में आप सब की रक्षा करूँगा" श्री दाऊ जी ने पूर्ण किया।

चाचा वृन्दावन दास जी की वाणी में –

प्रथम सोनहद पुनि वनचारी षांभी (खाम्बी)
षंभ (खम्ब) गड़यौ जु सुनाऊँ ॥

श्री दाऊ जी ने खाम्बी में खम्ब गाढा है जो अद्यावधि दर्शनीय है।

पूरब चौकी रोहिणी नन्दन रीढ़ो ग्राम नाम कहे सब जन ।

पूर्व में रीढ़ा ग्राम (बलदेव ग्राम) में दाऊ जी प्रकट हुए हैं, इस प्रकार चारों दिशाओं में स्थित होकर दाऊ जी ने ब्रज की रक्षा की है।

नमो नमो बरहद विख्यात । पूरब उत्तर दिस ब्रज की हद ॥

पूर्व, उत्तर की ओर बरहद ब्रज की हद है जहाँ श्री दाऊ जी विराजित हैं। तीन बार दाऊ जी के विग्रह की चोरी हुई जिनमें दो बार दाऊ जी लौट आये किन्तु भावनाओं की कमी के कारण पुनः श्री विग्रह नहीं लौटा।

हरि गोचारन जहाँ लग जात ॥
श्री बलदेव कृष्ण के अग्रज तहां विराजत कमनीगात ।
हल मूंसल है आयुध जिनके असुर बली तिनतें जु डरात ॥

यह सबसे प्रमुख पंक्ति है, इसी में कल्याणदेव जी को दिया हुआ वचन सत्य हुआ है, श्री बलराम जी के द्वारा ब्रज की रक्षा हुई है। जिस समय मूर्ति भंजक क्रूर कर्मा औरंगजेब मथुरा के केशव देव मन्दिर एवं महावन के अनेक प्राचीनतम देव-स्थलों को नष्ट करता हुआ आगे बढ़ा तो उसने बलदेव जी की ख्याति सुनी और विनाश के निश्चय से आगे बढ़ा किन्तु बलराम जी ने चमत्कार दिखाया। सेना निरन्तर बढ़ रही थी बलदेव ग्राम की ओर किन्तु जितना भी चलते "बलदेव ग्राम" दो कोस दूर रह जाता। अतंतः औरंगजेब समझ गया कि निश्चय ही कोई चमत्कारी देव विग्रह हैं। इसके बाद भी जब वह बलदेव ग्राम की ओर बढ़ा तो
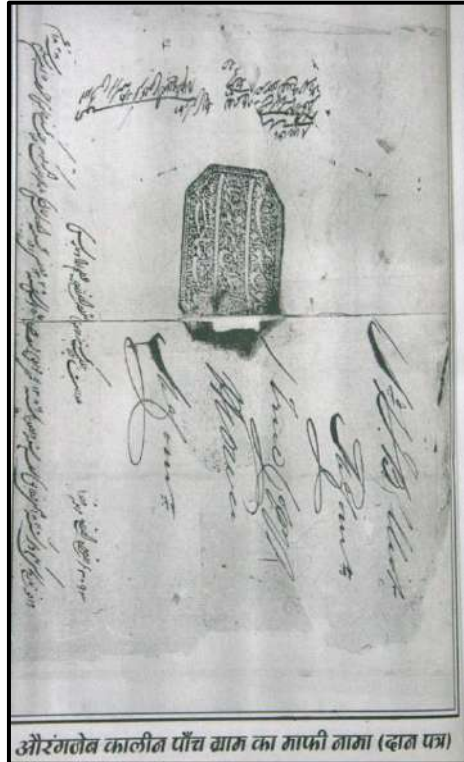
औरंगजेब कालीन पाँच ग्राम का माफी नामा (दान पत्र)

झुण्ड के झुण्ड बर्र-ततैया टूट पड़े। सैकड़ों सैनिक, घोड़े तो उसी समय समाप्त हो गए। मरण स्थिति आ गई। अनुक्षण औरंगजेब ने उस दिव्य स्थान का प्रभाव देख कर शाही फरमान जारी किया। मन्दिर को पाँच गाँव की माफी एवं एक विशाल नक्कारखाने का निर्माण करके भेंट किया। यही नहीं नक्कारखाने की व्यवस्था हेतु प्रतिवर्ष राजकोष से धन देने का आदेश निकाला। यह नक्कारखाना मन्दिर में आज भी दर्शनीय है जो औरंगजेब की पराजय का मूक साक्षी है। इसी फरमान नामे का पालन करते हुए औरंगजेब के पौत्र शाहआलम ने पाँच गाँव से बढ़ाकर सात गाँव कर दिए। जिनमें खड़ेरा, छबरऊ, नूरपुर, अरतौनी, रीढ़ा आदि हैं जिनको तत्कालीन क्षेत्रीय प्रशासक (वजीर) नजफ़ एवं बहादुर के हस्ताक्षर से शाही मुहर द्वारा प्रसारित किया गया तथा स्वयं शाहआलम ने एक पृथक से आदेश चैत्र सुदी-३ संवत् १८४० को अपनी मुहर एवं हस्ताक्षर से जारी किया। शाहआलम के बाद इस क्षेत्र पर सिंधिया राजवंश का राज हुआ। उन्होंने सम्पूर्ण जागीर को यथास्थान सुरक्षित रखा एवं पृथक से भोग राग माखन मिश्री व रख रखाव के लिए राजकोष से धन देने की स्वीकृति दिनाँक भाद्रपद वदी चौथ संवत् १८४५ को गोस्वामी कल्याण देव जी पौत्र गोस्वामी हंस राम जी व जगन्नाथ जी को दी। यह सम्पूर्ण जमीदारी आज भी मन्दिर श्री दाऊ जी महाराज व गोस्वामी श्री कल्याण देव जी के वंशजों के अधिकार में है।

इसके बाद अंग्रेजों का समय आया। यह प्राचीन मन्दिर सदा से देश भक्तों का शरण स्थल रहा है। यह बात जब ब्रिटिश शासक को पता चली तो उसने मन्दिर के अधिकारी-पुजारियों को सभी स्वतन्त्रता प्रेमियों का मन्दिर में प्रवेश वर्जित करने को कहा किन्तु पुजारियों ने यह बात नहीं मानी, इस पर क्रोधित ब्रिटिश शासक ने मन्दिर को शाही परिवारों से प्राप्त जागीर व व्यवस्थाएं दिनाँक ३१ दिसम्बर १८४१ को कमिश्नर के आदेश से जब्त कर ली। यही नहीं मन्दिर पर कड़ा पहरा बैठा दिया जिससे कोई भी स्वतन्त्रता प्रेमी मन्दिर में न आ सके क्योंकि देश भक्तों का दर्शनार्थी बनकर आना आरम्भ हो गया जिसे कोई नहीं रोक सका। मन्दिर में आकर दर्शन करते, अनवरत चलने वाले अन्न क्षेत्र में भोजन करते और अपना कार्य करते। इस प्रकार बहुत प्रयत्न के बाद भी गदर प्रेमियों को कोई शासक रोक नहीं सका। इसके साथ ही ब्रिटिश शासन में एक बार पुनः मन्दिर को झटका लगा। जिस समय ग्राउस यहाँ का कलेक्टर नियुक्त हुआ, उसका विचार था कि बलदेव में एक चर्च का निर्माण कराया जाए क्योंकि बलदेव उस समय प्रमुख तीर्थ स्थलों में एक था। मन्दिर की बिना आज्ञा के ही चर्च का निर्माण कार्य आरम्भ हो गया। जबकि शाही काल से ही मन्दिर की २५६ एकड़ भूमि में मन्दिर के जमींदार श्रीदाऊ जी की आज्ञा के बिना कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार का निर्माण कार्य नहीं करा सकता था। मन्दिर के अधिकारी-पुजारियों ने बल पूर्वक चर्च को ध्वस्त करा दिया, इस पर क्रोधित ग्राउस ने पुजारियों को बहुत आतंकित किया। आगरा के एक मूर्धन्य सेठ एवं महाराज मुरसान ने वायसराय से भेंट कर ग्राउस का स्थानान्तरण बुलंदशहर में करा दिया।

ग्राउस ने जिस स्थान पर चर्च निर्माण का हठ किया था आज उस स्थान पर प्राइमरी पाठशाला है जो ग्राउस की पराजय का मूक साक्षी है।

पुरी में पराभव –

न केवल ब्रज प्रत्युत सम्पूर्ण भारत का वैभव नृशंस, निरंकुश औरंगजेब की आँखों में खटक रहा था। भारत वर्ष के अधिकाँश भागों पर ४८ वर्षों तक शासन करने वाले अमानव दानव ने मुगल वंश की राजगद्दी प्राप्त करने के लिए अपने बड़े भाई की हत्या कर दी एवं अपने पिता को कारागार में डाल दिया। १६६९ में कृष्ण जन्मभूमि मथुरा में २५० फुट ऊँचे मन्दिर का विनाश किया और वहाँ एक मस्जिद का निर्माण कराया। १६७० में मथुरा में केशवराय जी का मन्दिर व वृन्दावन में राधा गोविन्द देव जी के मन्दिर को नष्ट किया।

इतिहासकारों का कथन है कि औरंगजेब की सेना ने मथुरा में लगभग १००० मन्दिरों को ध्वस्त किया। १६८६ में औरंगजेब ने हिन्दू विरोधी नासर खान को कटक का सूबेदार नियुक्त किया। जिसने अनेक मन्दिरोंका विनाश करके वहाँ मस्जिदें खड़ी कर दी। अंत में, नासर खान ने सैनिकों को लिया और पुरी की और चल दिया, वहाँ के मन्दिर का विनाश करने और उसके स्थान पर एक विशाल मस्जिद का निर्माण करने की इच्छा के साथ। पुरी से आधी दूरी के रास्ते पर दांडा मुकुंदपुर नामक गाँव में उसके दल ने विश्राम किया और अगले दिन पुरी की यात्रा प्रारम्भ कर दी। उसी रात्रि नासर खान की सेना के ऊपर आकाश से बिजली गिरी और सेना के बहुत से हाथी और घोड़े मारे गए। उस तूफान को हिन्दू भगवान् जगन्नाथ जी का कार्य समझकर भयभीत हुए नासर खान और औरंगजेब ने उड़ीसा के राजा से शान्ति के लिए एक संधि की और पुरी को छोड़ दिया। इस प्रकार उस अवधि में जगन्नाथ जी का मन्दिर सुरक्षित बना रहा।

सन १६९१ में औरंगजेब ने पुनः जगन्नाथ मन्दिर पर हमले की तथा रथयात्रा उत्सव पर रोक लगाने की आज्ञा दी। उड़ीसा के राजा ने एक जासूस को औरंगजेब की सेना के आकार का पता लगाने के लिए भेजा। उसने अपनी रिपोर्ट भेजी कि उसकी सेना में २५ हजार घोड़े, १२०० हाथी, २००० ऊँट और एक लाख पैदल चलने वाले सैनिक थे। मुसलमानों ने जगन्नाथ जी के मन्दिर पर हमला कर दिया तथा मन्दिर के पूर्वी सिंह द्वार तथा दक्षिणी अश्व द्वार को तोड़ दिया और उनकी नाकेबंदी कर दी। भोग मण्डप मन्दिर के शिखर से चक्र को हटा उसे ले गए। उन्होंने मन्दिर के दो मुख्य द्वारों का नाश कर दिया। उड़ीसा के राजा ने मुस्लिम सेनापति को जगन्नाथ का प्रतिभू और अप्रतिष्ठित विग्रह (जिसकी प्राण प्रतिष्ठा नहीं हुई थी) औरंगजेब को भेंट करने के लिए दिया फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं हुआ, वहा सदा सर्वदा के लिए रथयात्रा महोत्सव पर रोक लगाना चाहता था। उसने अपनी सेना के प्रधान अधिकारी को निर्देश दिया कि पुरी के रथयात्रा उत्सव में किसी भी तीर्थयात्री को जाने की अनुमति न दी जाए। बारह वर्षों तक (१६९१-

१७०३) पुरी के मन्दिर में जगन्नाथ की सेवा-पूजा बहुत गुप्त रूप से होती रही। बारह वर्षों के आध्यात्मिक तथा आर्थिक संकट काल के बाद पुरी में भगवान् नृसिंह देव के श्री रामदयित गोस्वामी नामक एक भक्त रथयात्रा उत्सव को फिर से प्रारम्भ करने की अनुमति देने के उद्देश्य से औरंगजेब के पास गए। इस दौरान औरंगजेब ने सपने में अपने खुदा (मुस्लिम भगवान्) को कृपालु जगन्नाथ के रूप में देखा, जो उसे आज्ञा दे रहे थे कि रथयात्रा उत्सव को जारी करने की अनुमति दो। अगली सुबह जब औरंगजेब अपने इस स्वप्न का चिंतन कर रहा था, उसी समय रामदयित गोस्वामी उसके पास पहुँच गए और उससे रथयात्रा उत्सव को फिर से शुरू करने का अनुरोध किया। घटनाओं की श्रृंखला से आश्चर्यचकित होकर तथा जगन्नाथ जी की कृपा से अभिभूत होकर औरंगजेब का हृदय परिवर्तित हो गया। अपने अपराधों से मुक्त होने के लिए इस मुगल सम्राट ने जगन्नाथ जी के मन्दिर के लिए कुछ सम्पत्ति दान में दी।

यह एक आश्चर्यजनक परिवर्तन था, एक ऐसा व्यक्ति जिसने एक समय जगन्नाथ जी के मन्दिर को नष्ट करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी। उड़ीसा की सरकार के पास आज भी वे दस्तावेज उपलब्ध हैं जिनमें लिखित प्रमाण है कि औरंगजेब ने जगन्नाथ मन्दिर को सम्पत्ति दान में दी थी। सन -१७०७ में अज्ञात कारणों से ८८ साल की उम्र में उसकी मृत्यु हो गयी। अपनी गतिविधियों पर विचार करते हुए उसके अन्तिम समय के वाक्य बड़े प्रभावशाली हैं। उसने कहा था –

मैं इस संसार में अकेला आया और यहाँ से एक अजनबी की तरह जा रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूँ और क्या कर रहा हूँ। मैंने बहुत से भयंकर पाप किये हैं और मुझे पता नहीं कि किस प्रकार का दण्ड मेरी प्रतीक्षा कर रहा है (किस प्रकार का दण्ड मुझे मिलेगा)।

क्रूर औरंगजेब के द्वारा मथुरा जिले, वाराणसी (काशी) और मुल्तान में (अब पाकिस्तान में) लगभग ६० हजार मन्दिर नष्ट किये गए। इतने पर भी अनेक बार उसे दाऊ दयाल की कृपा प्राप्त हुई। **"केही आचरण भलो माने प्रभु, सो तो न जान परौ। तुलसीदास रघुनाथ कृपा को जोवत पंथ खरौ।"** कंस, शिशुपाल आदि अनेक राजा जो भगवान् को अपना शत्रु मानते थे उन्होंने भी उनकी कृपा प्राप्त की।

व्यापकं ब्रज उच्यते

"व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद् व्रज उच्यते ॥"

(भा.माहा.स्क.पु. १/१९)

व्रज अर्थात् व्याप्ति। अत्यधिक व्यापक होने से ही इस भूमि को ब्रज कहा गया। अस्मदीय आचार्यचरणों ने ब्रज के गौरवग्रन्थरत्नों का निर्माण करके व्यापक ब्रज के विशद वैभव का बहुविधि वर्णन किया।

'वैभव' से तात्पर्य – ब्रज का ऐश्वर्य, समृद्धि, यश, महत्त्व, प्रतिष्ठा। 'विभु' का ही भाव 'वैभव' है अतः 'वैभव' माने 'व्यापकत्व'। इस नित्यभूमि की सत्ता, महत्ता व प्राचीनता की पुनरुक्ति आवश्यक नहीं है चूंकि इसका वर्णन 'रसीली ब्रज यात्रा' के प्रथम खण्ड में हो चुका है, वस्तुतः इसकी प्राचीनता व महत्ता, इसकी नित्यता से ही अनुमेय है।

पद्मपुराण निर्वाण खण्ड –

नित्यां मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा ।
यमुना गोपकन्याश्च तथा गोपाल बालकान् ॥

(श्रीरूप गोस्वामी विरचित 'मथुरा माहात्म्य' से)

'मथुरा किंवा वृन्दावन' नाम से संज्ञित होने वाला यह सम्पूर्ण ब्रज नित्य है। श्रीयमुना, गोपिका, ग्वाल भी नित्य हैं। यदा-कदा नित्य वस्तु में भी मर्त्यगुण (आविर्भाव-तिरोभाव) लक्षित होते हैं किन्तु इससे उसकी नित्यता बाधित नहीं होती।

वाराहपुराणानुसार –

आद्यसृष्टि में (सतयुग के प्रारम्भ में) भगवान् वाराह ने इसी सनातन अवनि को अपनी जन्मभूमि कहा; यह माथुर मण्डल मुझे परमप्रिय है। सिद्ध होता है कि वाराहावतार के समय से इसे 'माथुर मण्डल' कहा जाता रहा है।

सुरभ्या च सुशस्ता च जन्मभूमिः प्रिया मम ॥

(वाराह. पु. १५०/११)

विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मण्डलम् ॥

(वाराह. पु. १५६/१)

प्रलय के पूर्व भी ब्रज-वसुधा की विद्यमत्ता थी व प्रलयान्त में भी; जैसा कि गर्गसंहिता में 'वाराह प्रभु व पृथ्वी देवी के सम्वाद' से स्पष्ट होता है –

पृथ्वी – "मेरे बिना ये तरु किस आधार पर खड़े हैं?"

वाराह – “देवी! यह तो नित्य भूमि है। प्रलय-जल-प्लावन से संख्यातीत भूखण्ड उच्छिन्न हो जाते हैं किन्तु ‘प्रलयेऽपि न संहृता’ प्रलय में भी ब्रज भूमि का नाश नहीं होता।”

‘ब्रज’ ही नहीं ‘ब्रजयात्रा की परम्परा’ भी सनातनी है। श्रीवाराह भगवान् द्वारा तरणि-तनूजा के तटवर्ती एवं चतुष्कोण में स्थित वनोपवनों का वर्णन ऐसे सुव्यवस्थित यात्रा क्रम से है, जिससे ज्ञात होता है कि सतयुग के आरम्भ में श्रीवाराह देव ने ब्रजयात्रा की, तत्पश्चात् ब्रज के वनोपवनों का क्रमशःगान किया। वाराह भगवान् का कथन है कि समस्त भूमण्डल में ६० करोड़ तीर्थ हैं, वे समस्त मथुरा मण्डल में हैं।

श्रीमद् भागवत के अनुसार –

अरिष्टासुर वध के पश्चात् गोपियों ने कहा – हे कृष्ण! गोहत्या के महापाप से मुक्त होने के लिए तुम्हें सभी तीर्थों में स्नान करना चाहिए तब श्रीकृष्ण विनीत भाव का परित्याग करते हुए गर्वित होकर उन्हें सुनाकर कहने लगे – त्रिभुवन पर्यटन करने जाऊँगा भला मैं? देखो मैं अभी यहाँ पृथ्वी पर स्थित सभी तीर्थों को लाकर उसमें स्नान करुँगा। यह बात कहते हुए बायें पैर की एड़ी से जोर से पृथ्वी पर आघात किया। तब पाताल से भोगवती गंगा का आविर्भाव हुआ। उसको देखकर कृष्ण ने कहा – 'हे तीर्थ समूह आओ, आओ' उनके ऐसा कहने पर विश्व के निखिल तीर्थ उस जल में प्रविष्ट हो गये।

किं पर्यटामि भुवनान्यधुनैव सर्वा आनीय तीर्थ वितती: करवाणि तासु।
स्नानं विलोकयत तावदिदं मुकुन्दः प्रोच्यैव तत्र कृतवान् वत पार्ष्णिघातम्॥
पातालतो जलमिदं किल भोगवत्या आयातमत्र निखिला अपि तीर्थसंघाः।
आगच्छेति भगवद्वचसा त एत्य तत्रैव रेजुरथ कृष्णं उवाच गोपीः॥

(विश्वनाथ चक्रवर्ती जी कृत भागवत टीका १०/३६/१५)

कैसे आरम्भ हुआ अन्तर, बाह्य भेद से यात्रा का द्विविध क्रम?

वाराह पुराणे –

श्रीवाराह वचन ही वाराह पुराण है।

तीर्थान्येतानि दैवानि तारकाश्च नभस्थले॥६॥
गणितानि समस्तानि वायुना जगदायुषा।
ब्रह्मणालोमशेनैव नारदेन ध्रुवेण च।
जाम्बवत्याश्च पुत्रेणरावणेन हनूमता॥७॥
एतैरनेकधा देवि ससागरवना मही।
क्रमिता बालिना चैव वाह्यमण्डलरेखया॥८॥

(वराह. पु. १५७/६, ७, ८)

वायुदेव ने सम्पूर्ण भू-मण्डल के तीर्थों में अटन किया, उनका परिगणन किया। पश्चात् विधि, लोमश, नारद, ध्रुव, जामवंत, पुरुरवा, रावण, हनुमान ने भू-परिभ्रमण किया। राजा बलि ने भी वायुदेव द्वारा बाह्यमण्डल रेखामार्ग से सम्पूर्ण विश्व के तीर्थों की प्रदक्षिणा की। भू-परिक्रमा का एक अन्तर्मण्डलीय रेखामार्ग भी था, जिसके द्वारा वानरराज सुग्रीव, देवेन्द्र, पाण्डव, मार्कण्डेयजी आदि सिद्ध सुर, नर, मुनियों ने पृथ्वी की अन्तर्वेदी परिक्रमा की। इसी आधार पर 'ब्रज-परिक्रमा' भी भेद से दो प्रकार की हो गई –

(१) अन्तर्वेदी (२) बहिर्वेदी।

भू-परिभ्रमण में असमर्थ को 'ब्रजयात्रा' ही सहज साध्य है; साथ ही निःश्रेयस का यही श्रेष्ठ मार्ग है।

पद्मपुराणे –

पाद्म कल्प में ब्रजमण्डल की बाह्य रेखा का षोडशदल कमल के रूप में वर्णन प्राप्त होता है अतः 'ब्रजयात्रा का क्रम' भी इसी दल के आधार पर करने का विधान रखा है। सिद्ध होता है कि 'ब्रजयात्रा क्रम' पाद्म कल्प में भी था।

षोडशदलीय ब्रज स्थल –

१. महत् धाम (मथुरा, गोवर्धन)	२. वृन्दावन (काम्यवन)
३. उत्तम स्थल (तुमोला)	४. रास स्थल (रासौली)
५. नन्दीश्वर वन (नन्दगाँव)	६. नन्दवन (नौ गवाँ)
७. बहुलवन	८. तालवन (तरौली)
९. कुमुद वन	१०. कामाख्य (काम्य, आटस)
११. सेतुबन्ध (सेई, यमुना पुल)	१२. भांडीर वन
१३. किंजिल्क (जैसवां)	१४. श्री वन (बेलवन)
१५. लोह वन	१६. महावन

(पद्म पुराण, पाताल खण्ड, अध्याय-६९, श्लोक संख्या ३७-५२)

वेदान्तर्गत ब्रज

ब्रज तो नित्य भूमि है। वेदान्तर्गत ब्रज-वर्णन से प्रतीत होता है मानो ब्रज ने वेद को शिरोभूषण धारण कराकर उसे गौरवान्वित किया है। अतः यह कथन अभिनीत (उचित)

ही होगा कि वेदों से ब्रज नहीं प्रत्युत ब्रज से वेदों की भी अति प्राचीनता, महत्ता व नित्यता अवगत होती है।

इन्द्र के प्रति मधुच्छदा ऋषि के वचन –

गवामप 'व्रजं' वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥

(ऋ. १/१०/७)

सुरेन्द्र! तुम्हारा प्रदत्त गोधन चतुर्दिक् प्रसरित है अतः पर्वतों को शोभित करते हुए गो सम्पन्न ब्रज की वृद्धि करें।

ऋषि नाभानेदिष्ट कहते हैं –

इन्द्रेणयुजा निःसृजन्तवाघतो 'व्रजं' गोमन्तमश्विनम् ॥

(ऋ. १०/६२/७)

श्रीअंगिरा ने इन्द्र सहयोग से अश्व एवं गोयुक्त ब्रज का उद्धार किया।

अग्नि के प्रति अंगिरा-पुत्र हिरण्यस्तूप के वचन –

त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः ॥

(ऋ. १/३१/६)

अग्नि के प्रति वार्हस्पत्य भारद्वाज के वचन –

हे अग्नि! ब्रज-निवासी उस पुरुष को जो निज ब्रज में पुनः जन्म का पिपासु है एवं जो शूरसेन श्रेणी के शौर्य से गर्वित है, प्रचुर धनान्न से सम्पन्न करो।

अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥

(ऋ. ५/४५/१)

विसूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥

(ऋ. ५/४५/२)

गोधन से सम्पन्न 'ब्रज-वसुन्धरा' स्वर्ग से भी उत्कृष्ट है, मानवों में देवों की तेजस्विता है।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में –

८/४१/४९, १/८३/३, १/९२/४, १/१०१/११, ५/४५/६, ८/५१/५, ५/४५/६,

१/१०१/८ ....आदि अनेकों मन्त्रों में ब्रज की विस्तृत चर्चा है। ब्रज के वन, पर्वत, सरसी (सरोवर), नदियाँ (यमुना, कृष्ण गंगा, मधुमती, सरस्वती), गिरि-कन्दरा, गोप, गोधन, ग्राम देव, मथुरा के अधिपति दीर्घविष्णु, प्रस्कन्दन सूर्यतीर्थ, बहुला गाय, यज्ञ वाराह ....आदि का वर्णन भी प्राप्त है।

अथर्ववेद में ब्रज

**विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥**

(अथर्व. २०/७७/६)

विद्वान देवराज इन्द्र ने स्वसख्य जलवर्षी मेघों द्वारा विश्वभर में वर्षा की है। अपनी गड़गड़ाहट की भीषण ध्वनि से मानो गिरि-शिलाओं को तोड़ रहे हैं, वे गायों से समृद्ध "ब्रज" पर सब ओर से वर्षा करते हैं।

**ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च ।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं स्रावयामसि ॥**

(अथर्व. १/१५/४)

ब्रज की जो गायें दुग्ध-घृत की नदी प्रवाहित करती हैं एवं जो नदियाँ सुमधुर शीतल जल से भरकर बहती हैं, ऐसे दूध, घृत, अन्न-प्रवाह से मेरे घर में धन बहता हुआ आये। इन समस्त वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होता है ब्रज व गो का परस्पर सम्बन्ध है।

मानो विदद् वृजिना द्वेष्याया ॥

(अथर्व. १/२०/१)

हे विधाता! ब्रज-विद्वेषी का सम्पर्क कदापि न देना।

सामगान में ब्रज धाम

शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ 'गोमति व्रजे' भजात्वं नः ॥

(सामवेद पूर्वा, ऐन्द्र ३/२१/६)

हे देवेन्द्र! तुम शूरवीर नरासंशित कामप्रद हो, तुम हमारे 'गो-समृद्ध ब्रज' में आओ, हम तुम्हारा यजन करते हैं।

अपो वृणानः पवते कवीयान्व्रजं न पशुर्वधनाय मन्म ॥

(सामवेद पूर्वा, पावमान पर्व ५/७/७)

पवमान सोम! तुम सुन्दर वृषों की सृष्टि करते हो, काव्यवर्णित हमारे ब्रज में पशु-सम्वर्धन के लिए आओ।

इसी प्रकार अन्य अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं –

अभि 'व्रजं' तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥

(साम पूर्वां, पावमान पर्व ५/११/८)

अस्माँ अव मघवन् गोमति 'व्रजे' वज्रिं चित्राभिरुतिभिः ॥

(साम. उत्तरा. ४/४/२)

सर्वसन्मुख है ब्रज का यह व्यापकत्व। कोई अनभिज्ञ ब्रज के पुरातन इतिहास एवं विस्तीर्ण क्षेत्र का, संकीर्णमति की संकुचितता के कोरक में सीमाबद्ध होकर अन्वेषण करना चाहे तो सर्वथा असम्भवही होगा। साथ ही यह भी निश्चित है कि वह सम्पूर्ण ब्रज को अत्यन्त संकुचित कर देगा।

महाभारत में ब्रज वसुन्धरा

मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना, मति-मति में मतभेद होने से ब्रज का परम-पावन पुरातन इतिहास एक विकर्षण- विषय (खींचतान का विषय) बना दिया गया। दोष भी किसे दें, चूंकि इस उदार ब्रज-धरणी ने अपने अंक में न जाने कितने ही वंश (कुषाण, शुंग, मौर्य, गुप्त .....आदि) एवं धर्मों (शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, जैन) को आश्रय दिया।

एतावता परिवर्तन पर परिवर्तन होते रहे एवं इतिहास भी परिवर्तित होता रहा।

महाभारत एक ऐसा बृहत् इतिहास है जिसके विषय में स्वयं श्रीव्यासजी का कथन है कि “यन्नेहास्ति न कुत्रचित्” जो विषय इस विश्व-कोष में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है, फिर भारत के प्राचीनतम ऐतिहासिक ग्रंथ में ब्रज की चर्चा न हो ऐसा तो सम्भव ही नहीं।

यह वो भूमि है जहाँ महाभारत के रचयिता श्री वेदव्यास जी ने दीर्घकाल तक दिव्य तप किया एवं महाभारत के प्रधान नायकों (पाण्डवों) का प्रवास रहा।

ब्रज व पाण्डव

पाण्डवों की ब्रज से कितनी घनिष्ठता रही, यह एक ज्ञातव्य विषय है। १२ वर्ष वनवास काल में पाण्डवों का ब्रजेतर प्रान्तों की अपेक्षा ब्रजवास ही अधिकांश हुआ।

पाण्डवों के पुरोहित महर्षि धौम्य भी कश्यप वंशज माथुर थे।

पाण्डवों ने महाभारत महासमर की सफलता हेतु अपने औरस पिता (इन्द्रादि) देवों से दिव्य शस्त्रास्त्र शिक्षा प्राप्त करने का विचार किया। काम्यवन में निवास कर रहे पाण्डवों को श्रीव्यासजी ने भी प्रतिस्मृति विद्या (श्रुत को तत्क्षण धारण कर लेने वाली विद्या) प्रदान की एवं देवों से मिलने के लिए कहा।

"ययौ सरस्वती कूले काम्यकं नाम काननम्"

(महाभारत, वनपर्वणि, अर्जुनाभिगमन पर्व-३६/४१)

धामावतरण

गर्गसंहितानुसार देवों के प्रार्थना किये जाने पर श्रीकृष्ण ने अवतार लेने का निश्चय किया। लीला-सिद्धि के लिए श्रीकृष्ण ने श्रीराधारानी से भौम धाम में अवतरित होने की प्रार्थना की किन्तु गोलोकेश्वरी श्रीराधारानी ने वृन्दावन, यमुना, गिरिराज के बिना अवतार लेने से मना कर दिया, इस पर श्रीकृष्णाज्ञा से सम्पूर्ण ८४ कोस ब्रजमण्डल का गोलोक से अवतरण हुआ। सर्वप्रथम स्वयं श्रीयमुनाजी श्रीराधामाधव के सेवार्थ यहाँ इस भूमि में आईं।

श्रीनन्ददासजी की वाणी में –

नेह कारनै जमुना जू प्रथम आईं ।

पुनः

भक्त पै करी कृपा श्री जमुना जू ऐसी ।
छाँड़ि जिन-धाम विश्राम भूतल कियो,
प्रगट लीला दिखाई हो तैसी ॥

पुनः 'यही धाम, यही श्रीयमुनाजी' श्रीकृष्ण-प्राप्ति करायेंगे।

भाग, सुहाग श्री जमुना जू देई ।
बात लौकिक तजौं, पुष्टि जमुना (जू) भजौं,
लाल गिरधरन बर तब मिलैई ।
भगवदीन संग करि, बात उनकी लै सदाँ,
सानिधि इहि देति भैई ।
'नंददास' जा पै कृपा श्री वल्लभ करैं,
ताको श्री जमुना जू सरबस जो देई ॥

आदिपुराणे –

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या यत्र वृन्दावनं पुरी ।
तत्रापि गोपिकाः पार्थः यत्र राधाभिधा मम ॥

श्रीकृष्ण बोले – अर्जुन! सम्पूर्ण त्रिलोकी में मेरा भू-लोक ही धन्य है, जहाँ श्रीवृन्दावनधाम, उसमें भी गोपीगण और उसमें भी मेरी परम प्रियतमा श्रीराधा विराजमान हैं।

यहाँ की गाय भी सामान्य नहीं है। इन्हें किसी भी स्थिति में पशु न समझें। भगवान् की ज्ञानशक्ति उपनिषदादि ही गाय बने हैं। शतककार कहते हैं –

ब्रह्मानन्दमवाप्य तीव्रतपसा सम्यक् प्रसाद्येश्वरं
गोरूपाः सकला इहोपनिषदः कृष्णे रमन्ते व्रजे ।
वृन्दारण्यतृणं तु दिव्यरसदं नित्यं चरन्त्योऽनिशं
राधाकृष्णपदाम्बुजोत्तम रसास्वादेन पूर्णाः स्थिताः ॥

(श्रीवृन्दावन महिमामृतम् १/१२)

"परोक्षवादा ऋषयः"

सब कुछ प्रत्यक्ष नहीं है और सब कुछ इन आँखों से देखा जाने वाला भी नहीं है। क्योंकि भौम ब्रज में भी तो नित्य भूमि गोलोक, साकेतादि का अवतार होता है।

कोलम्बस ने समुद्र के उस पार जाकर अमेरिका की खोज की, इसके पूर्व कौन जानता था? फिर जो अतीन्द्रिय वस्तु है, उसे मानवीय परिच्छिन्न इन्द्रियों से कैसे समझा जा सकता है?

एक ही उपाय है – "अनुभावना"

अनुभावना क्या है?

श्री सूरदास जी की वाणी में –

इहाँ हरि जू बहु क्रीडा करी सो तो चितते जात न टरी ॥
इहाँ पय पीवत बकी संहारी शकट तृणावर्त इहाँ हरि मारी ॥
वत्सासुर को इहाँ निपात्यो बका अघा इहाँ हरिजी धात्यो ॥
हलधर मार्‍यो धेनुक को इहाँ देखो ऊधव हत्यो प्रलंब जहाँ ॥
इहाँ ते ब्रह्म हमको गयो हरि और किये हरि लगी न पलक घरि ॥
ते सब राखे संपति नरहरि तब इहाँ ब्रह्मा आय अस्तुति करि ॥
इहाँ हरि कलि उर्ग निकास्ये लगेउ जरावन अनल सो नास्यो ॥
वस्त्र हमारे हरि जु इहाँ हरि कहाँ लगी कहिये जे कौतुक करि ॥
हरि हलधर इहाँ भोजन किये बिप्र तियन को अति सुख दिये ॥
इहाँ गोवर्धन कर हरि धार्‍यो मेघवारि ते हमें निवार्‍यो ॥
शरद निशा में रास रच्यो इहाँ सो सुख हम पे बरन्यो जात कहाँ ॥
ऋषभ असुर को इहाँ संहार्‍यो भ्रुम अरु केशी इहाँ पछार्‍यो ॥
इहाँ हरि खेलत आँख मुचाई कहाँ लगि बरनै हरि लीला भाई ॥
सुनि-सुनि ऊधो प्रेम मगन भयो लोटत घर पर ज्ञान गरब गयो ॥
निरखत ब्रज-भूमि अति सुख पावै 'सूर' प्रभु को पुनि-पुनि गावै ॥

यह वही धाम है, जहाँ का प्रत्येक रज-कण स्वामी श्री हरिदास जी, श्री हिताचार्य जी, श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु जी, श्रीमद्वल्लभाचार्य जी आदि के लिए इष्टरूप था।

वहाँ हमको-तुमको दूषण के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता है।

यदि इसके चिन्मय रूप की अनुभावना की जाय तो बुद्धि निर्मल हो जाय और धाम इष्ट रूप हो जाय।

अनुभावना तब तक करते रहें जब तक कि वह भक्तियोग न बन जाये।

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक्तु मानसम्।
दृश्या धीवृत्तयः साक्षी दृगेव न तु दृश्यते॥

(दृग्दृश्यविवेकः अथवा वाक्यसुधा – १ भारती तीर्थ स्वामिना विरचितः)

रूप को देखने वाले न नेत्र हैं, न मन और न बुद्धि ही, ये सब तो स्वयं दृश्य है।

'साक्षी दृक् इव न तु दृश्यते'

वास्तविक द्रष्टा तो आत्मा ही है।

नेत्र, मन, बुद्धि, आत्मा (अर्थात् भगवान् का अंश) – ये सब क्रमशः एक दूसरे से सूक्ष्म हैं और श्रेष्ठ भी।

भूल यहीं होती है कि द्रष्टा में जब तक भक्तियोग सिद्ध न हो तब तक अनुभावना का क्रम निरन्तर रखना आवश्यक है। असत् वस्तु में चित्त का दौड़ना कल्पना है एवं सत् वस्तु में चित्त का दौड़ना भावना है। भावना के बिना न भक्ति सिद्ध होगी न ज्ञान ही। ज्ञानमार्ग में देखें तो "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" समग्र संसार को ब्रह्मरूप में स्वीकार करना होगा। निन्दक, चोर, डाकू, सबको ब्रह्म मानना होगा।

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥

(गी. ५/२४)

अन्तरात्मा में रमण करने वाला योगी ही ब्रह्मनिर्वाण अर्थात् ब्रह्मरूपता की प्राप्ति करता है। जिसका मन साम्य में स्थित हो गया, उसके लिए सब संसार निर्दोष हो गया। इस भावना के बिना "ब्रह्मभाव" सिद्ध नहीं होगा। ब्रह्मभावना हो अथवा ब्रजभावना गुण-दोष दृष्टि के जाने पर ही भावनासिद्धि सम्भव है।

सभी महापुरुषों ने इसी भूमि की भावना व याचना की –

'यही है यही है भूलि भरमौ न कोऊ'

(महावाणी सिद्धान्त सुख-१२)

अथवा

'जनम-जनम दीजै याही ब्रज बसिबो'

(छीतस्वामी)

इसी भूमि में चिन्मय धाम की भावना ही ब्रजभावना है।

अहो तेऽमी कुञ्जास्तदनुपमरासस्थलमिदं
गिरिद्रोणी सैव स्फुरति रतिरङ्गे प्रणयिनी ।
न वीक्षे श्रीराधां हरि हरि कुतोऽपीति शतधा
विदीर्येत प्राणेश्वरि मम कदा हन्त हृदयम् ॥

(रा.सु.नि. २११)

अ हा हा! ये वे ही कुञ्जें हैं जो श्री युगल के काल में थीं।

यह वही अनुपम रास-स्थल है, श्री प्रिया-प्रियतम के रति रंग से प्रेम करने वाली यह वही गोवर्धन की कन्दरा है भाई, यह सम्पूर्ण ब्रज वही है, जहाँ श्रीकृष्ण एक-एक रज कणिका को पवित्र करते हुए चले हैं, दौड़े हैं, बैठे हैं और कभी-कभी तो रमण रेती आदि क्षेत्रों में रज ही बिछाते हैं, रज ही ओढ़ते भी हैं। अब कोई कहे यह तो मिथ्या कल्पना है तो मिथ्या ही सही किन्तु ऐसी मिथ्या भावनाओं से भी लोक कल्याण हो तो कितना उत्तम है। जहाँ मौग्ध्य व सर्वज्ञत्व एक कालाविच्छिन्न रहता है, वह है अति प्राकृत नर लीला। यह वो भूमि है, जहाँ भगवान् अति प्राकृत लीला करते हैं।

धामी के पूर्व अवतारकाल में वही नित्य गोलोक, साकेत यहाँ मधुपुरी व अवधपुरी के रूप में अवतीर्ण होता है।

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी ।
मम धामदा पुरी सुख रासी ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ४)

ध्यान रहे, नित्यधाम तक पहुँचने की सीढ़ी यह अवतरित अधिभूतधाम ही है। साक्षात् नित्यधाम तो कोई नहीं पहुँच सकता, इसके लिए तो माया के अवयवों का भेदन, तत्पश्चात् विरजा का सन्तरण, तब कहीं नित्यधाम की प्राप्ति सम्भव है और यदि अधिभूतधाम का आश्रय ले लिया तो बिना किसी प्रयास के सहज ही नित्यधाम की प्राप्ति हो जाएगी।

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा ।
मम समीप नर पावहिं बासा ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ४)

अतः गोस्वामीजी ने इस पुरी की वन्दना की –

बंदउँ अवध पुरी अति पावनि ।
सरजू सरि कलि कलुष नसावनि ॥

(रा.च.मा.बाल. १६)

कहाँ तक कहें, अवतरितधाम अपनी सहजता व सुलभता के कारण नित्यधाम से भी श्रेष्ठ हो जाता है।

अहो मधुपुरी रम्या वैकुण्ठाच्चगरीयसी ।

(प.पु.पा.ख.) एवं (भक्ति.रसामृतसिन्धु-१, २.२३७)

स्वयं धामी को भी अवतरितधाम, नित्यधाम से कहीं अधिक प्रिय हो जाता है।

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना ।
बेद पुरान बिदित जगु जाना ॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ ।
यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ४)

बज्र द्वारा प्रतिष्ठापित ब्रज

स्कान्दे – ८१ हजार श्लोकों का यह ग्रन्थ ब्रज-वर्णन से पुराणशिरोभूषण बन अलौकिकता को प्राप्त हो गया।

महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं –

लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी ॥

(भा. स्कन्द. माहा. १/२५)

भगवल्लीला द्विविधा है - (१) व्यावहारिकी (२) वास्तवी।

वास्तवी लीला में देश, काल, अवस्थादि का व्यवधान नहीं है, यह अक्षुण्ण रूप से चलती रहती है।

व्यावहारिकी में अजन्मा का जन्म होता है तो एक निश्चित काल पर धामगमन भी होता है। ऐसा होने से भौम धाम में लीला व्यवहित हो जाती है।

किन्तु यह मृण्मय चिन्मय धाम ऐसा है जहाँ व्यावहारिकी के साथ वास्तवी लीला भी हो रही है, जो अबाध रूप से देशातीत, कालातीत स्थिति में सतत् हो रही है।

अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम् ।
भासते प्रेमपूर्णानां कदाचिदपि सर्वतः ॥

(भा.उ.माहा. १/२८)

नाम, रूप, लीला की सनातनी पीयूषवर्षिणी है यह ब्रजभूमि किन्तु यह लीलारस, लौकिक मर्त्य विषय रस तृषित जिह्वा से आस्वाद्य नहीं है। इसके अधिकारी तो कृष्णरसलम्पट ही हैं, इनके सन्मुख स्वसंवेद्य वास्तवी लीला भी व्यक्त हो जाती है।

द्वापरान्त में श्रीकृष्ण के धामगमनोपरान्त मथुरामण्डल में बज्रनाभजी (कृष्ण-प्रपौत्र) का राज्याभिषेक हुआ।

शाण्डिल्याज्ञा से बसाया बज्र ने ब्रज

तस्माच्चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मदाज्ञया ।
वासयात्र बहून् ग्रामान् संसिद्धिस्ते भविष्यति ॥
कृष्णलीलानुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः ।
त्वया वासयता ग्रामान् संसेव्या भूरियं परा ॥

(भा.उ.माहा.१/३६, ३७)

बज्रनाभ जी के समय में ब्रज केवल सघन वन व जन शून्य स्थान था। महर्षि शाण्डिल्य ने बज्रनाभ जी को ब्रज के सार्वभौम सर्वाङ्गीण उद्धार की आज्ञा दी – “बज्र! भगवल्लीलाओं की चिरस्मृति के लिए लीला-स्थलियों पर पुर, नगर, ग्राम बसाये जाएँ, लीलानुसार उनका नामकरण हो, जिससे भावी-भावुकों के लिए यह भूमि चिरकाल तक दर्शनीय, सेवनीय, उपासनीय बनी रहे।”

प्रत्येक ग्रन्थ में वर्णित वस्तु का प्रतिपाद्य विषय अवश्य होता है। भागवत का दशम स्कन्ध इस बात का उद्घोष है कि भागवत का प्रतिपाद्य केवल श्रीकृष्ण की रसमयी लीलाएं हैं। ब्रज का कण-कण इन विश्व कल्याणकारिणी लीलाओं से अनुप्राणित है।

"प्रथम करी हरि माखन-चोरी ।
मन में यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाऊँ ॥"

(सूर-सागर)

भागवतकार ने भगवान् की जन्म से दर्भस्थली (द्वारिका) निर्माण, प्रयाण तक के लीला उपक्रम में ब्रज की समस्त लीलाओं का गान तो किया किन्तु उन पुण्यमय स्थलों का नाम निर्देश नहीं किया चूंकि लीलोन्मज्जित श्रीशुकाचार्य का लक्ष्य अधिकाधिक लीला प्रतिपादन था।

“कारणाभावात् कार्याभावः” इस सर्वमान्य न्याय सिद्धान्तानुसार कार्य के पीछे कारण की पृष्ठभूमि निश्चित है अर्थात् बिना कारण के कार्य की कल्पना भी सम्भव नहीं है अतः ब्रज है ‘कारण’ व लीला है ‘कार्य’। ब्रज के बिना लीला सिद्धि सम्भव नहीं। इसका प्रमाण दिया श्रीव्यासजी ने –

धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि ।

(भा. १/१/१)

कालाभाव में, मैं केवल कार्य (लीला) को गाऊँगा, कारण सिद्धि (ब्रज) स्वयं जान लेना।

‘धाम्ना स्वेन सदा ....’ आज प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है श्रीव्यासजी का यह कथन। धाम से ही तो माया का निरसन व भक्ति का प्रकाशन हो रहा है।

आज भी करोड़ों लोगों को ब्रज में आने से भक्ति लाभ प्राप्त हो रहा है। कैसे? धाम (कारण) से किन्तु कार्य (ब्रज-वर्णन) को भी छोड़ा नहीं श्री शुकदेवजी ने। लीलागान की शैली से सब कुछ लपेट कर सन्मुख कर दिया – ब्रज के खेट, खर्वट, वाटी, पुर, ग्राम, नगर, वन, उपवन, नदी, पर्वत, ओखर (जल आकर), पोखर (पुष्करिणी), सरोवर, कूप, पशु-पक्षी आदि। अर्थात् इन सब लीला-स्थलियों पर अभूतपूर्व लीलाओं का गान किया। ये लीला ही लीला-स्थलों का परिपुष्ट प्रमाण है अतः महामुनि शाण्डिल्य ने भी बज्रनाभ जी को ब्रज की नदी, पर्वत, घाटी, सरोवर, कुण्ड एवं वन-कुञ्जों की सेवा-संरक्षण की आज्ञा दी।

"नद्यद्रिद्रोणिकुण्डादिकुञ्जान् संसेवतस्तव"

(स्कन्द पुराण, भा. मा. १/३९)

'सच्चिदानन्दमयी इस धरा पर प्रभु ने कौन-सी लीला कहाँ सम्पन्न की, यह मुझे कैसे ज्ञात होगा? ' बज्रनाभ विचार ही कर रहे थे।

शाण्डिल्य – 'तव कृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तु मदनुग्रहात् ।'

(स्कन्द पुराण, भा.मा.१/४०)

महर्षि शाणडिल्य बोले – "मेरे अनुग्रह से तुम्हें सभी लीला-स्थलों पर कृष्ण लीलाओं का स्फुरण हो जायेगा।"

अनन्तर श्रीबज्रनाभजी द्वारा ब्रज की लीला-स्थलियों का पुनरोद्धार हुआ, आपके द्वारा प्रतिष्ठापित देव-विग्रहों में गोविन्ददेव, हरिदेव, बलदेव और केशवदेव आदि हैं।

ब्रज - एक संक्षिप्त परिचय

विक्रमकालीन ब्रज

ईसा से ५७ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् चला था। इस संवत् का पूर्व-पश्चात् ५० वर्ष का समय विक्रमकाल कहा जा सकता है। विक्रमकाल के इन शत वर्षों में ब्रज में धर्म का, राजनीति का क्या आरोहण-अवरोहण रहा, इस विषय में तत्कालीन साहित्य कुछ नहीं कहता है। विक्रमकालीन ब्रज का इतिहास, कतिपय ऐतिहासिक वस्तुओं (सिक्के, शिलालेख) द्वारा निर्णीत है।

मुद्रा (सिक्कों) द्वारा मथुरा के कुछ शासकों के नाम प्राप्त हुए हैं – ब्रह्ममित्र, दृढ़मित्र, सूर्यमित्र, विष्णुमित्र, पुरुषदत्त, रामदत्त, कामदत्त, शेषदत्त, भावदत्त, उत्तमदत्त, बलभूति, हगामीष, राजुतुल, शोडास, घटार्क आदि नामों से ज्ञात होता है कि प्रथम १० शासक हिन्दू हैं एवं अन्य ५ विदेशी थे। सिक्कों को आधारभूत मानकर महोदय एलन ने हिन्दू शासकों का काल ईसवी पूर्व तीसरी शताब्दी (अर्थात् ईसा से ३०० वर्ष पूर्व से) के प्रारम्भ से ईसा से ५० या ६० वर्ष पूर्व तक माना है। ईसा से ७२ वर्ष पूर्व शुंग वंश समाप्त हो गया था, सम्भव है कि उसी समय मथुरा के हिन्दू राजाओं ने स्वाधीनता प्राप्त की होगी परन्तु कुछ काल पश्चात् ही विदेशियों ने घुसपैठ की और ब्रज में उन्होंने अपना आधिपत्य कर लिया था।

शुंगों के साथ-साथ उत्तर-पश्चिम में शक जाति के आक्रमण होते रहे, जिससे यवन-यूनानी साम्राज्य भी क्षीण हुआ। शकों के आतंक से सौराष्ट्र, उज्जयिनी, मथुरा, काठियावाड़ त्रस्त थे। अब शक स्वयं को क्षत्रप (मण्डलाधिपति) कहने लग गये।

विक्रमकालीन हिन्दू शासकों को इन्हीं क्षत्रप शकों ने पराजित किया अतः यह कहा जा सकता है कि विक्रम संवत के प्रारम्भिक काल में क्षत्रपों का शासन था जो हिन्दू शासकों की शक्ति क्षीण करने में जुटे थे। मुद्राधार पर एलन महोदय का मत है कि मथुरा में क्षत्रपकाल ६० ई. पू. से १० ई. पू. तक रहा। यह तो निश्चित है ही कि क्षत्रप राजा ई. पू. प्रथम शताब्दी के मध्य से (अर्थात् ईसा से १०० पूर्व से) १०-५ वर्ष आगे-पीछे आसीन हो ही गया था।

पूर्वोक्त राजाओं में राजुबुल महाक्षत्रप था, इसकी पत्नी द्वारा मथुरा में एक बौद्ध-विहार की स्थापना हुई। ज्ञात होता है कि कुषाणों से भी पूर्व 'बौद्ध धर्म' मथुरा में समुचित रूप से प्रसारित हो चुका था।

शोडासकाल में दो लेख प्राप्त हुए हैं, जिसमें एक 'जैन लेख' है व दूसरा 'ब्राह्मण लेख'। इससे ज्ञात होता है मथुरा में बौद्धधर्म के साथ-साथ जैन व हिन्दू धर्म का पोषण भी हो रहा था। मथुरा के १० हिन्दू व ५ विदेशी शासकों में शोडास के समय में मथुरा में प्रथम बार कृष्ण मन्दिर बनाये जाने के उल्लेख प्राप्त हैं तथा दूसरा सर्वप्रथम ऐतिहासिक उदाहरण बेसनगर (भिलसा) के स्तंभ लेख से प्राप्त हुआ था जिसमें हेलीओडन नामक यूनानी दूत ने वर्णन किया कि काशीपुत्र भागभद्र द्वारा गरुड़ स्तम्भ की स्थापना हुई थी एवं उस यूनानी को 'परम भागवत' की उपाधि से अलंकृत किया गया। ध्यान देने की बात है – ये दोनों उदाहरण ई. पू. शताब्दी में विक्रमकाल के हैं।

बौद्ध धर्म और ब्रज

पाणिनिकृत अष्टाध्यायी में जो षोडश महाजनपदों का उल्लेख है, वहाँ शूरसेन जनपद परिगणित नहीं है परन्तु 'अंगुत्तार निकाय' बौद्धग्रन्थ में वर्णित षोडश महाजनपदों में शूरसेन जनपद का ग्रहण है। मत्स्य जनपद के पूर्व एवं कुरु-पांचाल जनपदों से दक्षिण में इसकी स्थिति निश्चित की गयी है। उल्लिखित है कि शूरसेन जनपद की राजधानी मथुरा थी।

महात्मा बुद्ध का आविर्भाव काल ई. पू. ६२३ व परिनिर्वाणकाल ई. पू. ५४३ प्रसिद्ध है अर्थात् ४५ वर्ष बौद्धधर्म प्रवर्तित हुआ। बौद्धग्रन्थों के अनुसार बुद्ध का शूरसेन जनपद में आगमन ई. पू. ५७७ में (अर्थात् ई. पू. ५८८ में बुद्धत्व प्राप्ति के ११ वर्ष पश्चात्) हुआ है। तत्कालीन शूरसेन जनपद सात्वत नारायणी धर्म का सशक्त केन्द्र था, जिसका सम्पूर्ण कार्यभार 'विप्र वर्ग' ही देखता था। बुद्ध का आगमन, बौद्धधर्म का प्रचार, विप्रों के लिए एक चिन्तनीय विषय बन गया। बौद्धधर्म के प्रचार में विप्रों ने व्यवधान डाला, जिससे महात्मा बुद्ध को अच्छा न लगा एवं बुद्ध ने स्वशिष्यों को मथुरा के पंचदोष बताये –

(१) मथुरा के मार्ग विषम हैं, (२) धूल बहुत है, (३) प्रचण्ड कुत्ते हैं, (४) अज्ञानी यक्ष हैं, (५) भिक्षा बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है।

बुद्ध का द्वितीय मथुरागमन ई. पू. ५४३ में हुआ। उस समय शूरसेन जनपद का शासक अवन्ति-पुत्र था। बुद्ध की द्वितीय यात्रा के अवसर पर मथुरा के एक गन्धी के गृह में उपगुप्त का जन्म हुआ, जो आगे चलकर प्रसिद्ध बौद्धभिक्षु हुआ। उपगुप्त द्वारा ही सम्राट अशोक बौद्धधर्म से दीक्षित हुए। बुद्ध के २ बार ब्रजागमन से ब्रज-प्रदेश में बौद्धधर्म का जो बीजारोपण हुआ था, उसको बुद्ध के श्रेष्ठ शिष्य उपगुप्त व महाकात्यायन ने पल्लवित विकसित करने का पूर्ण प्रयास किया किन्तु यह प्रबल प्रयास भी असफल रहा। बुद्ध के

परिनिर्वाण के २०० वर्ष पश्चात् तक शूरसेन जनपद में बौद्धधर्म पूर्णतया जम नहीं पाया था।

ई. पू. २७२ में मौर्यवंशी परम प्रतापी शासक अशोक सिंहासनासीन हुआ, इस समय मथुरा बौद्धधर्म के सर्वास्तिवाद का प्रमुख केन्द्र था।

ई. पू. २३२ में सम्राट अशोक के जीवनान्त के साथ मौर्य-साम्राज्य का पतन भी आरम्भ हो गया। ई. पू. १८५ में अन्तिम मौर्य शासक बृहद्रथ हुआ, जिसे उसके ही ब्राह्मण सेनापति (शुंगवंशी) पुष्यमित्र ने समाप्त कर दिया और स्वयं शासक बन गया। एक बार पुनः बौद्ध धर्म बढ़ा। लगभग शतवर्ष शूरसेन जनपद पर शुंगवंश का शासन रहा। बौद्धधर्मावलम्बी यूनानी शासक मिनेन्डर ने मथुरा-युद्ध में विजय प्राप्त की एवं मथुरा को शुंग आधिपत्य से मुक्त किया। यवनों से युद्ध करने के लिए शुंगवंशी पुष्यमित्र ने पुत्र अग्निमित्र को सेनापति बनाया। अग्निमित्र ने मथुरा स्थित मिनेन्डर पर आक्रमण कर दिया; यवन सेनापति, शासक आदि सबको मार भगाया। इस प्रकार पुनः शूरसेन प्रदेश पर शुंगों का आधिपत्य हो गया।

ई. पू. प्रथम शताब्दी में शुंग शासन समाप्त हो गया। अब शक क्षत्रपों का उत्तर भारत पर अधिकार हो गया। मथुरा को मुख्य केन्द्र बनाया गया। ये शक क्षत्रप बौद्धधर्म के प्रति आस्थावान थे। ईसवी के प्रारम्भ में शकों की एक शाखा कुषाण कम्भोज "बाल्हीक" में बस गई।

ईसवी सन् ७८ में इस वंश का राजा कनिष्क सिंहासनासीन हुआ, कनिष्क काल में भी बौद्धधर्म की बहुत उन्नति हुई। ब्रज पुनः बौद्धों का केन्द्र बन गया। कुषाणकाल ('कुशक' शब्द कुषाण अथवा कनिष्क का ही रूपान्तर है) में मथुरा में बुद्ध मन्दिरों का निर्माण व पूजा आरम्भ हुई।

ईसवी द्वितीय शताब्दी के अंत में कुषाण वंश भी ब्रज से जाता रहा। अब नागवंशी राजाओं का शासन आरम्भ हुआ, जो कि शैव थे। ब्रज-प्रदेश में परिवर्तन हुआ, बौद्धधर्म के प्रति जनरुचि का अभाव देखा गया।

ईसवी चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में "महाराज गुप्त" द्वारा मगध में गुप्तवंश का राज्यशासन स्थापित हुआ। अब मथुरा से नाग राजाओं का शासन भी जाता रहा। लगभग २३० वर्ष मथुरा (उत्तर भारत) में गुप्तों का अधिकार रहा।

भारतीय इतिहास का कहना है कि साहित्य, संस्कृति की उन्नति होने से गुप्तकाल स्वर्णकाल रहा है। यद्यपि गुप्तशासक भागवतधर्म के अनुयायी थे परन्तु उनकी धार्मिक-सहिष्णुता के कारण अन्य बौद्धादि धर्म भी निर्विघ्न चलते रहे।

चीनी यात्री फाह्यान का कहना है कि उस समय मथुरा और उसके निकटवर्ती क्षेत्र में यमुना के दोनों ओर ६ स्तूप व २० संघाराम थे, जिनमें ३००० बौद्धभिक्षु रहते थे।

महावन में एक महा-संघाराम था। सप्तर्षि टीले के दक्षिण में उस क्षेत्र को सम्प्रति बुद्धतीर्थ कहा जाता है। सन् ५२८ तक गुप्तों का शासन समाप्त हुआ और अब मथुरा-प्रदेश मौखरी वंश के शासकों के आधीन हो गया। ईसवी छठी शताब्दी के प्रारम्भ में उत्तर भारत में थानेश्वर के वर्धन वंश का राज्य स्थापित हुआ। सन् ६०६ में इस वंश का परम प्रतापी व अन्तिम राजा हुआ हर्षवर्धन। हर्षवर्धन के शासन काल में चीनी यात्री ह्वेनसांग सन् ६३५ में मथुरा आया, उस समय मथुरा स्वतन्त्र सत्तावान था। हर्ष की मृत्यु के बाद बौद्धधर्म भी जाता रहा। लगभग १५०० वर्ष बौद्धधर्म रहा।

जैन धर्म एवं ब्रज

मथुरा में ईसवी सन् से लगभग ५ शताब्दी पूर्व जैन धर्म के स्तूपों की स्थापना हुई। कंकाली टीला (मथुरा संग्रहालय से पश्चिम की ओर लगभग आधा मील दूर स्थित है) आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जैनियों का मुख्य केन्द्र था। सहस्रों की संख्या में चारों ओर श्रावक एवं श्राविका रहते थे। कंकाली टीले की भूमि में एक प्राचीन जैन स्तूप व २ मन्दिर प्रासादों के चिन्ह एवं कुषाणकालीन लेख भी प्राप्त हुए हैं। प्राचीन भारत में मथुरा का स्तूप जैनधर्मावलम्बियों का सबसे बड़ा शिलातीर्थ था।

विदेशियों की दृष्टि से ब्रज

ह्वेनसांग, फाह्यान आदि चीनी यात्रियों ने तो ब्रज का अपनी दृष्टि से वर्णन किया ही, यवन यात्रियों ने भी इस सर्वाकर्षक भूमि का वैभवदृष्टि से गान किया। प्रथम लेखक, महमूद गजनवी के मंत्री 'अल-उत्वी' ने अपनी "तीरीखे यामिनी" पुस्तक में सन् १०१७ ई. में महमूद द्वारा किये गये ९ वें आक्रमण की चर्चा की है, मथुरा को नष्ट-भ्रष्ट करने के लक्ष्य से हुए इस आक्रमण ने मथुरा को पर्याप्त क्षति पहुँचाई। महावन में कूलचन्द नामक राजा को परास्त कर महमूद मथुरा की ओर बढ़ा, जो ले जा सका उसे लूट ले गया एवं दुर्वह वस्तुओं का विध्वंस आरम्भ कर दिया। मथुरा से वह ५४८ पौण्ड से भी अधिक सोना एवं सोने के ५ विशाल विग्रह ले गया। केशवदेव मन्दिर को देखकर तो महमूद की आँखें ही चौंधिया गयीं, स्वयं लिखता है–"यह देवालय कृष्ण का प्रतीत होता है, सम्भवतः इस मन्दिर का निर्माण गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में हुआ होगा, ह्वेनसांग ने जिन ५ भव्य व दिव्य मन्दिरों का उल्लेख किया है उनमें एक यह भी रहा होगा। इस इमारत के निर्माण में १० करोड़ दीनार (स्वर्ण मुद्रा) एवं अनुभवी कारीगरों द्वारा भी २०० वर्ष से कम समय न लगेगा।"

२० दिन तक मथुरा में लगातार वज्राघात होता रहा।

महमूद के आक्रमण के पश्चात् ही मुसलमान यात्री अलबेरुनी भारत आया। जिसने १०३० ई. में "तहकीके हिन्द" नामक पुस्तक लिखी, जिसमें वायुपुराणादि का आधार लेकर शूरसेन जनपद का वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त १६ वीं शताब्दी में अलबदाऊँनी एवं मोहम्मद कासिम फरिश्ता ने भी मथुरा का विवरण दिया है। अलबदाऊँनी का कहना है – महमूद द्वारा जो मथुरा पर कहर बरसा, इससे मुसलमानों को बड़ी सम्पत्ति प्राप्त हुई। एक ही मूर्ति से ९८, ३०० मिश्कल अर्थात् १४ मन स्वर्ण प्राप्त हुआ, वस्तुतः यही केशवदेव का विग्रह था, जिसमें लगभग डेढ़ किलो का नीलम जड़ित था। इसके अतिरिक्त २५० मिश्कल का बेशकीमती पत्थर प्राप्त हुआ। राजा गोविन्दचन्द का पर्वतवत् विशाल हाथी मिला एवं ऊँटों पर चाँदी की १०० मूर्तियाँ ले जायी गयीं।

फरिश्ता ने दूसरे बड़े मूर्तिभंजक सिकन्दर लोदी द्वारा भी जो मथुरा की हानि हुई, वह लिखते हुए कहा है कि लोदी मन्दिर ध्वस्त करता एवं तत्काल वहाँ विशाल मस्जिदें खड़ी करा देता।

ई. १६५० के लगभग फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियर मथुरा आया। जन्मभूमि पर बने श्रीकृष्णमन्दिरका दर्शन किया। यह मन्दिर ३५ वर्ष पूर्व ओरछानरेश वीरसिंह द्वारा बनवाया गया था। टैवर्नियर ने भी इस मन्दिर की भव्यता का वर्णन करते हुए कहा – जगन्नाथ व बनारस के मन्दिर के बाद मथुरा का यह मन्दिर ही इतना विशाल है।

५-६ कोस दूर से दिखने वाला यह भव्य देव प्रासाद विलक्षण शोभा लिये है।

यवनकाल और ब्रज

११ वीं शताब्दी के आरम्भ से ब्रज ही नहीं समूचे भारत को विध्वंसकारियों का कठिन सामना करना पड़ा। भारत के भाग्य में उथल–पुथल आरम्भ हो गयी। धीरे–धीरे भारत वो घुमरी-परेता का खेल बना कि कई सदियों (सैकड़ों वर्षों) तक पुनरुत्थान की श्वास भी नहीं ले सका एवं हताहत होता रहा।

विनाश का घोर अंधकार ब्रज के चहुँ ओर घूमने लगा। इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ब्रज पर प्रथम यवन-आक्रमण महमूद गजनवी का ही हुआ है और यह आक्रमण जब अतीत का स्मरण कराता है तो आज भी रक्त उष्ण हो उठता है। इस धरणी की सहिष्णुता व साहस तो देखो, विधर्मियों द्वारा इसे पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट करने का भरसक प्रयास हुआ किन्तु यह सनातनी अवनि स्वयं का बार-बार सर्वाङ्गीण उद्धार कर विध्वंसकारियों को अवाङ्गमुख कराती रही। महमूद गजनवी को मथुरा की लूट में सफलता मिलने का मूल कारण था – हिन्दुओं में विघटन। महमूद के लगभग १२५ वर्ष बाद सन् ११५० में अन्तर्वेद के राजा विजयपाल ने एक विशाल विष्णु मन्दिर का निर्माण

कराया (कतिपय विद्वानों का कहना है कि इस मन्दिर का निर्माण, विजयपाल ने नहीं अपितु उसके पिता गोविन्दचन्द्र ने कराया है)। प्रबल शासक विजयपाल ने खुसरो को परास्त किया एवं अन्तिम क्षणों में पुत्र जयचन्द्र को राज्यभार सौंप दिया। जयचन्द्र ने भी अपने बुद्धिबल, बाहुबल से राज्य का विस्तार किया।

११९४ ई. में 'कुतुबुद्दीन' द्वारा चंदावर के युद्ध में जयचन्द्र मारा गया। तत्पश्चात् कुतुबुद्दीन ने मनमानी लूट-पाट की अतः ११९४ ई. से ही मथुरा यवन-शासकों के आधीन हो गया।

११९४ से १५२६ की सूक्ष्म झलक

गुलामवंश के बाद मथुरा पर खिलजीवंश का अधिकार हो गया। १२९७-९८ ई. में अलाउद्दीन खिलजी के भाई उलग खाँ ने असकुंडाघाट पर मन्दिर के स्थान पर एक मस्जिद खड़ी करा दी, जो मकदूम साहब की मस्जिद कही जाती है।

खिलजी वंश के पश्चात् मुहम्मद तुगलक ने तो धर्म पर कुठाराघात ही नहीं प्रत्युत प्रजा पर अमानवीय अत्याचारों का कहर बरसाया। १३३६ ई. में ऐसा दुर्भिक्ष पड़ा कि कृषक कृषि छोड़ डकैती करने को विवश हो गये। मुहम्मद तुगलक के बाद फ़िरोज तुगलक राज्यासीन हुआ परन्तु अब तुगलक शक्तिहीन होते जा रहे थे, तुर्की ने इस अवसर का लाभ उठाया, १३३८ ई. के आक्रमण में तुर्की ने तुगलक को परास्त किया। अब मथुरा लोदीवंश के आधीन हो गयी। १४८८ ई. में लोदी ने विजयपाल द्वारा निर्मित केशवदेव मन्दिर धराशायी करा दिया। लोदीकाल में हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुआ, यह दूसरा अवसर था महमूद के अत्याचारों को पुनः प्रकट देखने का। १४८८ से १५१६ तक इस दुष्ट यवन का दुर्वह भार वहन किया अवनि ने। गजनी से भूल में अवशिष्ट वस्तु का विनाश किया लोदी ने। देवालयों में देव-विग्रहों के खण्ड-खण्ड करा उन्हें मांस तौलने के उपयोग में लिया गया। सिकन्दर लोदी के समय में बलात् बहुत से हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन कराया गया, उन्हें यवन बनाया गया। कोई भी ब्राह्मण, हिन्दू क्षौर कराना चाहता तो बाल काटने को नाई नहीं मिलते थे। आज भी ब्रज में सम्पूर्ण मेवात क्षेत्र (जो इन कट्टर यवन शासकों के पूर्व हिन्दू ही था, वे स्वयं भी इस बात को स्वीकार करते हैं) के मुसलमान मूलतः न होकर परिवर्तित यवन हैं।

लोदीकाल में सबसे बड़ी हानि हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन की हुई। सिकन्दर लोदी का पुत्र इब्राहिम लोदी १५२६ ई. में बाबर से पानीपत के युद्ध में पराजित हो गया। अब भारत पर बाबर का राज्य हो गया। १०१७ ई. से लेकर १४८८ ई. तक ब्रज पर कल्पनातीत अत्याचार हुए किन्तु विशाल विष्णु मन्दिर लगभग पौने पाँच सौ वर्षों तक दुष्ट दैत्यों से सुरक्षित रहा।

मुगलकाल

बाबर के समय

अफगानों को पराजित कर ६ मई सन् १५२९ को घाघरा-युद्ध में बाबर ने हिमालय से ग्वालियर और चन्देरी तक स्वसाम्राज्य कर लिया। मथुरा पर बाबर का शासन वर्षाधिक न रहा। बाबर की मृत्यु के पश्चात् ३० दिसम्बर सन् १५३० ई. को हुमायूँ शासक घोषित हुआ। हुमायूँ ने स्वराज्य भाइयों को बाँट दिया। छोटा भाई 'हिन्दाल' बदखशां से जब लौटकर आया तो उसे मेवात क्षेत्र जागीर में दे दिया, जिसमें मथुरा भी था। अब मथुरा पर हिन्दाल का अधिकार हो गया। हुमायूँ सब कुछ खो बैठा।

१५४५ ई. में मथुरा शेरशाह सूरी के अधिकार में आ गया। १५४० से १५४५ ई. में शेरशाह सूरी ने आगरा से दिल्ली तक एक सड़क का निर्माण कराया जो कलकता से लाहौर (पाकिस्तान) होते हुए अफगानिस्तान के काबुल तक जाती है आज भी 'जी. टी. रोड' के नाम से जानी जाती है। शेरशाह के पश्चात् इस्लामशाह सूर सिंहासनासीन हुआ फिर उसका बेटा फ़िरोज गद्दी पर बैठा, जिसे मामा मुबारिक खाँ ने ३ दिन बाद ही हटाकर मथुरा को अपने आधीन कर लिया। यही मुबारिक खाँ आगे चलकर मुहम्मद आदिलशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आदिलशाह के पश्चात् ३० अक्टूबर सन् १५५३ से लेकर १५५५ तक मथुरा इब्राहिम सूर के अधिकार में थी। उधर आदिलशाह का बहनोई सिकन्दरशाह आगरे में बढ़ता चला आ रहा था। १५५५ ई. में इब्राहिम ८०, ००० सैनिकों की विशाल सेना लेकर "फरह ग्राम" (मथुरा-आगरा राजमार्ग पर स्थित) में आ गया। इस युद्ध में इब्राहिम परास्त हुआ, सिकन्दर द्वारा लूटपाट हुई एवं मथुरा सिकन्दर के अधिकार में हो गया। इसके पश्चात् हुमायूँ ने सेना संगठित कर सिकन्दरशाह को युद्ध में परास्त किया और पुनः सत्ता प्राप्त की। २७ जनवरी १५५६ में हुमायूँ का देहान्त हो गया। आदिलशाह का हितैषी हेमू वैश्य आगरे की ओर बढ़ा किन्तु मुगलों पर विजय प्राप्त करना कठिन देख दिल्ली की ओर बढ़ गया। इस युग का यही एक हिन्दू व्यक्ति हुआ। १५५६ के प्रारम्भ में मथुरा को हेमू का संरक्षण प्राप्त हुआ। नवम्बर में पानीपत के युद्ध में हेमू, अकबर की सेना से युद्ध करता हुआ बैरम खाँ के द्वारा मारा गया। विजय प्राप्त कर ६ नवम्बर १५५६ को अकबर ने दिल्ली पर अधिकार प्राप्त कर लिया। मथुरा भी अकबर के अधिकार में आ गई।

अकबर के समय

अन्य शासकों की अपेक्षा अकबर के शासन काल में हिन्दू धर्म का कुछ कम ह्रास हुआ अनेक वैष्णव ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र अकबर की चर्चा है। अकबर ने सर्वप्रथम १५६२ ई. में हिन्दुओं को यवन बनाने (धर्म-परिवर्तन) पर प्रतिबन्ध लगा दिया। १५६३ ई. में उसने यात्री-कर भी उठा लिया। अकबर के दरबार में श्रेष्ठ संगीतज्ञ, साहित्यकार, चित्रकार थे जिनमें कुछ ब्रजवासी भी थे। शताधिक चित्रकारों में प्रमुख चित्रकार १७ थे, इन १७ चित्रकारों में भी १३ चित्रकार हिन्दू थे। दशवन्त, बसावन, लाल, मुकुन्द, मधु, जगन, तारा, खेमकरन, हरिवंश, रामादि, ये उसकी धार्मिक रुचि के परिचायक थे। अकबर-दरबार में भक्त कवियों का बहुत सम्मान था। इस काल में हिन्दूधर्म ने बहुत उन्नति की। मथुरा, वृन्दावन एवं गोवर्धन में अनेक भव्य देव मन्दिरों का निर्माण हुआ। वृन्दावन में गोविन्ददेवजी, गोपीनाथजी, युगलकिशोरजी तथा मदनमोहनजी मन्दिर प्रसिद्ध हैं।

आमेरनरेश भगवान् दास ने गोवर्धन में हरिदेवजी के मन्दिर का निर्माण कराया था एवं १५७५ ई. में अपनी माँ (भारमल की पत्नी) की स्मृति में सतीबुर्ज का निर्माण कराया। गिरिराजजी में राजा भगवान् दास के पुत्र राजा मानसिंह ने मानसीगंगा व वृन्दावन में गोविन्ददेवजी का मन्दिर बनवाया। सन् १५५६–१६०५ तक का अकबर का शासन काल हिन्दूधर्म के लिए पूर्व की अपेक्षा कुछ सुखद रहा। अक्टूबर १६०५ में अकबर की मृत्यु के पश्चात् पुत्र जहाँगीर गद्दी का मालिक हुआ।

जहाँगीर के समय

मथुरा में बहुत कुछ विकास जहाँगीर के समय में भी हुआ है, यथा – ओरछानरेश वीरसिंहदेव द्वारा ३३ लाख रुपये में केशवदेव मन्दिर का निर्माण एवं २ विशाल सरोवरों का भी निर्माण हुआ, जिनमें (१) शेर सागर साढ़े पाँच कोस के घेरे में था एवं (२) समुद्र सागर २० कोस बड़ा सरोवर था, यवन ग्रन्थों (मासिर-उल उमरा) में इनका उल्लेख प्राप्त होता है, यह सब जहाँगीर काल में ही हुआ है। इसके अतिरिक्त लूणकरण चौहान द्वारा श्रीराधावल्लभलाल (वृन्दावन), राम मन्दिर एवं १६२७ ई. में श्रीयुगलकिशोरजी के मन्दिर का निर्माण-कार्य हुआ। ऐसे अन्य कई कार्यों को देखकर कहा जा सकता है कि जहाँगीरकाल में भी ब्रज-विकासोन्मुख रहा।

२८ अक्टूबर १६२७ ई. को लाहौर में जहाँगीर का शरीरान्त हुआ एवं पुत्र शाहजहाँ गद्दी का अधिकारी हुआ।

शाहजहाँ के समय

१६२८ ई. में जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा तो ईशतार खाँ मथुरा का फौजदार बना। १६३६ ई. में विद्रोह बढ़ रहे थे, जिन्हें शान्त करने चरित्रहीन मुर्शेदकुली खाँ आया; गोकुल में जन्माष्टमी के अवसर पर लगने वाले मेले में से बलात् सुन्दर हिन्दू-स्त्रियों, कन्याओं को अपहरण कर ले जाता, इससे ब्रज का जाट-संगठन भड़क उठा एवं १६३८ ई. में उसे जाटों द्वारा भूमिशयन करा दिया गया। अब आजम खाँ मीर मुहम्मद बकीर (इरादत खाँ) फौजदार बना, जिसने मथुरा में आजमाबाद सराय एवं बकीरपुर नामक २ ग्राम बसाये। इसके बाद शाहजहाँ ने मथुरा में मकरामक खाँ को भेजा, मकरामक के बाद ही शाहजहाँ पुत्र दाराशिकोह मथुरा का जागीरदार बन गया। दारा ने सन् १६५४-५७ के मध्य केशवदेव मन्दिर को पाषाण का सुन्दर कटघरा बनवाकर समर्पित किया। सन् १६५७ में शाहजहाँ रोगग्रस्त हुआ और इधर उसके पुत्रों में संघर्ष छिड़ गया।

दारा ने अल्लाबर्दी खाँ के पुत्र जफरखाँ को मथुरा का फौजदार बनाया और स्वयं गद्दी के लिए युद्ध को तैयार हो गया।

२९ मई १६५८ ई. को दारा श्यामगढ़ के युद्ध में औरंगजेब से परास्त हुआ। औरंगजेब ने मुराद को जीतकर शाहजहाँ को कैद में डाल दिया। बादशाह ने जफर के स्थान पर कासिक खाँ को मथुरा का फौजदार बनाकर भेजा परन्तु वह पहुँच न सका, मार्ग में मारा गया। शाहजहाँ का समय समाप्त हो गया।

औरंगजेब के समय से उसके बाद तक का काल

सन् १६५८ में २१ जुलाई को औरंगजेब सत्तारूढ़ हो गया। तहस–नहस के झंझावात ने फिर से मथुरा को झकझोरा। इधर जाटों का संगठन भी तैयार हो गया था अतः विद्रोह आरम्भ हो गया। औरंगजेब ने १६६० ई. में अब्दुल्लनवी को मथुरा का फौजदार बनाकर सेना सहित भेजा। अब्दुल्लनवी ने आते ही प्राचीन मन्दिरों को ध्वस्त कराके वहाँ मस्जिदें खड़ी करा दीं। दारा द्वारा दिया गया कटघरा केशवदेव के मन्दिर से १६६६ ई. सितम्बर में तुड़वा दिया एवं हिन्दुओं पर जजिया कर लगवा दिया। १६६९ ई. ९ अप्रैल को दूसरा आदेश निकला – "काफिरों के देवालय, पाठशाला को नष्ट कर दिया जाय, उनके धार्मिक-कार्यों को बलपूर्वक बन्द कराया जाय।"सहिष्णुता की सीमा तोड़कर जाटों का क्रोध अग्नि रूप ले बैठा।

तिलपत गाँव के वीर गोकुल सिंह (मूल नाम 'कान्हर देव' था) ने जाटों को संगठित कर अब्दुल्लनवी पर हमला किया परिणामतः वह मारा गया। यही घटना 'औरंगजेब नामा' में कुछ प्रकारान्तर से है – अब्दुल्लनवी की मृत्यु के बाद सफकिशन खाँ मथुरा का फौजदार बना किन्तु जाटों का दुर्धर्ष पराक्रम किसी से दबाया नहीं जा रहा था।

औरंगजेब स्वयं दिल्ली से आगरा की ओर आया। सफशिकन खाँ का स्थान (मथुरा के फौजदार का) हुसैनअली को सौंप दिया गया।

हुसैनअली खाँ की आँखों में भी मथुरा के मन्दिर ही चुभ रहे थे। पुनः विध्वंस आरम्भ हुआ। केशवदेव का मन्दिर ध्वस्त कराकर, मस्जिद खड़ी कराई गयी। मन्दिर की बहुमूल्य मूर्तियाँ अकबराबाद (आगरा) में कुदसिया बेगम की मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे गढ़वा दीं। कट्टर धर्मान्धता से ग्रसित औरंगजेब ने हिन्दू धर्म की धार्मिक धरोहरों के भौतिक विध्वंस के साथ साथ ब्रज के सांस्कृतिक विध्वंस का अभियान भी प्रारम्भ किया तथा मथुरा व वृन्दावन का नाम भी इस्लामाबाद और मोमिनाबाद रख दिया गया। शासन-विभाग के प्रत्येक पद पर मुसलमान थे। शाह मुहम्मद, लाल मुहम्मदादि को हुसैन खाँ द्वारा जमींदार बनाया गया। हिन्दुओं पर पुनः जजिया कर, व्यापारी कर लगाए गये, ५ प्रतिशत चुंगी बढ़ा दी गई, हिन्दुओं को पालकी, हाथी, घोड़े की सवारी भी बन्द करा दी गई एवं बलात् मुसलमान बनाया गया।

हुसैन के बाद मीरकुल मथुरा का फौजदार बना। इधर जाट संगठन भी धीरे-धीरे अपनी-अपनी शक्ति के विकास में प्रयासरत था। १६८५ ई. में नये जाट नेता सिंसनी के राजाराम एवं सोघर के रामचेरा ने जाटशक्ति को पूर्णतया बढ़ा लिया था। राजाराम ने तो सिकन्दरे में अकबर के मकबरे से अकबर की अस्थियों को जलाकर गाढ़ दिया।

यवनों व जाटों की खूब तनातनी चली। २० फरवरी १७०७ ई. में औरंगजेब की अहमद नगर में मृत्यु हो गई। अब मथुरा औरंग पुत्र मुअज्जम के अधिकार में आ गया। बहादुरशाह (मुअज्जम) के बाद फर्रुखशियर और उसके बाद मुहम्मद शाह गद्दी पर बैठा, इसी बीच मराठों, जाटों तथा मुगलों में पारस्परिक संघर्ष आरम्भ हो चुके थे। मुहम्मद शाह की विषय-विलासिता का नादिरशाह ने लाभ उठाया, मुहम्मद को नादिर से संधि करनी पड़ी।

२८ अप्रैल १७४८ को अहमदशाह गद्दी पर बैठा। अहमदशाह अब्दाली ने १७५७ ई. में सेना भेजकर हिन्दू धर्मावलम्बी प्रजा का क़त्ल कराया। बहुत से नागरिक महामारी के फैलने से स्वयं ही मर गये।

तारीखे आलमगीर सानी (पृ. १०५) के अनुसार १७५७ में २८ फरवरी से ६ मार्च तक अफगानियों ने इस पवित्र भूमि पर बिना रुके मार-काट की। जहान खाँ को अहमदशाह अब्दाली का आदेश मिला – हिन्दू नगर मथुरा को शस्त्रों से साफ कर दो, आगरा तक नर तो क्या कोई घर भी न बचे। जो जितना लूटेगा, लूटा हुआ धन उसी का होगा, हिन्दुओं के इतने सिर चाहिए कि जिनसे एक मीनार बनाई जा सके, एक सिर काटने पर ५ रुपए पुरस्कार रूप में दिए जाएंगे।

सिलैक्शन्स फ्रॉम पेशवा ऑफिस जिल्द २१ पृ. १११ पर लिखित है –

आज्ञा पाते ही प्रत्येक यवन सैनिक घोड़े पर सवार हुआ, घोड़े की पूंछ में १०-२० और घोड़े बाँध दिये एवं दोपहर होने से २ घण्टे पूर्व तक तो प्रत्येक सवार ने लूट के सामान से घोड़े लाद लिये, जिनके ऊपर अपहरित सुन्दर-सुन्दर हिन्दू कन्याएं भी थीं। बहुत से हिन्दू कैद कर लिये गये, कटे हुए मस्तकों की गठरी उन पर लादी गयी। अन्त में कैदियों का भी क़त्ल कर दिया। भालों पर टांगकर वे 'सिर' पुरस्कार प्राप्ति के लिए पेश किये गये।

तारीखे हुसैन शाही पृ. ३९ के अनुसार –

देव-मूर्तियों को खण्डित कर उन्हें गेंदों की तरह उछाला गया, तीन हजार लोगों का रक्त बहा, शेष पर एक लाख रुपया जुर्माना कर दिया, नगर में आग लगा दी। यह एक क्रूरता की परावधि का प्रदर्शन था, जो प्रतिदिन का क्रम था।

"ब्रज का इतिहास" ग्रन्थानुसार मथुरा-वृन्दावन की लूट में अब्दाली को १२ करोड़ की धनराशि प्राप्ति हुई। ब्रज-प्रदेश में जाट-शक्ति ने बृहत् टक्कर ली। सुना जाता है कि सन् १७५७ में हुए अहमदशाह अब्दाली के द्वारा भीषण संग्राम में भरतपुरनरेश सूरजमलजाट तैयार न था किन्तु पुत्र जवाहरसिंह अपनी आँखों के आगे यह नर-संहार न देख सका एवं वीर सेना को साथ लेकर मथुरा से दिल्ली मार्ग पर ८ मील दूरस्थ चौमुहा गाँव में डटकर सामना किया। २८ फरवरी १७५७ को सूर्योदय से ९ घण्टे अखण्ड रूप से युद्ध चला, जिसमें ३ हजार जाट व अफगानी भी बड़ी संख्या में समाप्त हुए। हिन्दुओं में न प्रतिरोध की शक्ति थी, न प्रतिशोध का स्वभाव, क्योंकि प्रायः सभी ब्राह्मण ही थे, हिंसावृत्ति थी नहीं। जहान खाँ के बाद नजीब खाँ ३ दिन तक शहर में डेरा डाले रहा। उसने भूमि में गढ़े हुए धन को लूटा। एक मुसलमान जो इस घटना-क्रम के कुछ दिन बाद मथुरा में आया, उसने अपनी आँखों देखी स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है – नगर जल रहा था, मकान धराशायी थे, जहाँ तक दृष्टि जाती खण्डित शव ही दिखाई पड़ते, पास में प्रवाहित यमुना का जल भी रक्त से लाल हो बह रहा था। तट के समीप कुछ वैरागी, सन्यासी महात्माओं की कुटी में गया तो वहाँ नर-मुण्ड के साथ गो-मुण्ड रखा हुआ देखा किन्तु अभी यहीं बस न था। विध्वस्त मथुरा से निकलकर रक्त-पिपासु जहान खाँ ६ मार्च १७५७ को वृन्दावन जा पहुँचा, जहाँ उसने निर्दोष वैष्णवों व धर्मप्राण प्रजा का कत्लेआम किया।

एक मुसलमान ने वृन्दावन की स्थिति लिखी –

एक-एक स्थान पर २००-२०० बच्चों के ढेर पड़े थे, जलवायु इतनी दूषित हो चुकी थी कि श्वांस लेते नहीं बनती थी। १५ दिन पश्चात् अहमदशाह अब्दाली स्वयं यहाँ आया, १५ मार्च १७५७ को मथुरा पहुँचा किन्तु मृत शवों से निकलती असह्य दुर्गन्ध के कारण मथुरा में डेरा न डाल सका, यमुना पार कर महावन में उसने अपना डेरा लगाया।

'देहली क्रोनीकल' के अनुसार –

१८ मार्च को दिल्ली में संदेश पहुँचा कि अहमदशाह अब्दाली मथुरा से वृन्दावन की ओर बढ़ गया है। महावन के निकट वल्लभ सम्प्रदायाचार्यों की गादी है। यहाँ के मन्दिरों में नागा सन्यासी ही पुजारी हैं। अब्दाली ने सेना की एक टुकड़ी गोकुल लूटने के लिये भेजी। परन्तु नागाओं के आगे सेना की न चली। ४००० नागा साधु 'भभूत लगाये, शस्त्र लिये' गोकुल के बाहर आये, २००० सैनिकों का कत्ल किया एवं स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हो गये। गोकुल की लूट में अब्दाली को कुछ न मिला। श्रीगोकुलनाथजी की प्रतिमा सुरक्षित रही इस जाग्रत प्रतिमा का यवन स्पर्श भी न कर सके।

जाटों का शासन काल एवं ब्रज

औरंगजेब द्वारा हुए विनाश से जाटों की सुप्त शक्ति जागी। सर्वप्रथम सन् १६६९ ई. के विद्रोह में जाट नन्दराम ने नेतृत्व किया, नन्दराम के बाद मुगलों के प्रति विद्रोह का नेतृत्व गोकुला जाट ने सम्भाला। उसने शाही सेना को बहुत लूटा, मुगलों को खदेड़ दिया। आगरा में मुगलों द्वारा पकड़े जाने पर गोकुला जाट का वध कर दिया। गोकुला के बाद १६८५ ई. में राजाराम जाट ने जाटों का नेतृत्व किया। थून और सिनसिनी में उसका स्वतन्त्र साम्राज्य था। धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते सिनसिनी से धौलपुर तथा मथुरा से आमेर तक इसने राज्य कर लिया। औरंगजेब जाट-शक्ति से बड़ा व्यथित रहने लगा। सन् १६८८ ई. में राजाराम जाट ने अकबर के मकबरे को लूटकर उसकी अस्थियाँ जला दी थीं। औरंगजेब ने पौत्र बेदारबख्त को, राजाराम को पकड़ने के लिए भेजा, सन् १६८८ में राजाराम युद्ध के दौरान मारा गया। अब जाटों का नेतृत्व राजाराम के पिता भज्जा सिंह ने किया। औरंगजेब ने जयपुरनरेश विशन सिंह को उस क्षेत्र का सूबेदार बना दिया। १६९० ई. में विशन सिंह व बेदारबख्त द्वारा हुए आक्रमण में राजाराम पुत्र जोरावर ने मुगल सेना से टक्कर ली। जाटों का यह आक्रोश मुगलों के लिए भारी हो गया किन्तु मुगलों के पास सेना अधिक होने से जाट नायक जोरावर मारा गया, सिनसिनी मुगलों के अधिकार में आ गई। अब जाटों का नया नायक चूड़ामन वीर बना, जो कि राजाराम का भतीजा था। औरंगजेब के दोनों पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष चल रहा था, जिसका लाभ चूड़ामन ने लिया। दोनों ही युवराजों को लूटकर अपनी सैन्यशक्ति को मजबूत किया। जाटों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर औरंगजेब के बड़े पुत्र मुअज्जल (बहादुर शाह) ने दिल्ली की गद्दी पाते ही जाट सरदार चूड़ामन से सन्धि कर ली। १७१२ ई. में बहादुर शाह मृत्यु को प्राप्त हो गया, पुत्र जहाँदरशाह शासक बना, यह भी वर्ष भर के भीतर भतीजे फर्रुखशियर द्वारा मारा गया। १७१३ ई. में फर्रुखशियर बादशाह हुआ, इसने भी चूड़ामन से सन्धि करना ही उचित समझा। सन्धि कर चूड़ामन को दिल्ली से धौलपुर तक के क्षेत्र का सूबेदार घोषित कर दिया। चूड़ामन को यह

अनुकूल काल जाट-शक्ति को प्रबल करने के लिए अच्छा मिल गया। चूड़ामन के नेतृत्व में जाट-शक्ति दुगुनी-चौगुनी हो गयी।

१७२१ ई. में चूड़ामन की मृत्यु हो गयी तब चूड़ामन के भतीजे बदनसिंह ने (१७२१–१७५५) ३४ वर्ष तक राज्य किया। बदन सिंह ने डीग और कुम्हेर में दुर्गों का निर्माण कराया एवं १७२३ ई. में दीर्घपुर (डीग) में जाट राज्य की स्थापना की। कामा में भी बदनसिंह द्वारा अनेक प्रशंसनीय निर्माण कार्य हुए। १७५५ ई. में बदनसिंह की मृत्यु हो गयी। सन् १७५५-१७६३ तक बदनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल का शासन काल रहा। सन् १७४५ से १७५३ तक अपने पिता के ही काल में शूरवीर सूरजमल ने सात युद्ध किये, जिनमें तीन युद्ध विशेष हैं।

(१) सन् १७४७ में जयपुर व मराठों के बीच युद्ध।

(२) सन् १७४८ में आगरा, अजमेर शासक जलावत खाँ के विरुद्ध युद्ध।

(३) सन् १७५३ में की गई दिल्ली की लूट।

उस समय की यवनों की दशा सूदन कवि के शब्दों में –

"रब की रजा है हमें सहना ही बजा वक्त हिन्दू का गजा है आया ओर तुरकानी का"

दिल्ली की लूट से सूरजमल को जो अपार धनराशि प्राप्त हुई, उससे उसने ब्रज के धार्मिक स्थानों में मन्दिरादि का निर्माण कराया।

देस देस तजि लक्ष्मी दिल्ली कियो निवास।
अति अधर्म लखि लूट मिस चली करन ब्रजवास॥

(सूदन कवि)

जाट-शक्ति उस समय इतनी प्रबल थी कि यदि जाट, राजपूत, मराठों में पारस्परिक विघटन न होता तो ब्रज ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण उत्तर भारत क्रूर राक्षस अब्दाली के द्वारा हुए विनाश से बच जाता। पानीपत १७६१ ई. के युद्ध के पश्चात् सूरजमल ने मुगलों की राजधानी आगरा को लूटा। आगरा के साथ-साथ हरियाणा शासक मुसब्बी खाँ को कैद कर भरतपुर भेज दिया व हरियाणा को अपने राज्य में मिला लिया। अलीगढ़, मथुरा, आगरा, धौलपुर, हाथरस, एटा, मैनपुरी, गुड़गाँव, रोहतक, रेवाड़ी, फर्रूखनगर, मेरठ के जिले उसके राज्यान्तर्गत हो गये। इस प्रकार अब यमुना से चम्बल तक विस्तृत क्षेत्र पर सूरजमल का अधिकार हो गया। वह चाहता था कि दिल्ली भी मेरा शासन स्वीकार करे। इस पर मुगल बादशाह का वज़ीर नजीबुद्दौल खौल उठा। सूरजमल सेना सहित जब दिल्ली की ओर बढ़ा तो नजीबुद्दौला ने अहमदशाह को सहायता के लिए पुनः भारत-आगमन का निमन्त्रण दिया, वह आ न सका। खेद की बात – इस युद्ध में वीर पुरुष सूरजमल वीरगति को प्राप्त हो गया। सूरजमल की मृत्यु के समय उसके कोष में १० करोड़ रुपया था। जाट-सेना बिना नायक के भी पीछे नहीं हटी,

उसी धैर्य, साहस से लड़ती रही। आश्चर्य की बात – ऐसी स्थिति में जाट-सेना ने ऐसा पराक्रम दिखाया कि यवन मैदान छोड़ भाग खड़े हुए एवं जाट वीर ध्वनि करते हुए अपने क्षेत्र लौट आये। सूरजमल द्वारा ब्रज में अनेक श्लाघनीय कार्य सम्पन्न हुए – डीग का किला सुन्दर व मजबूत करने के अतिरिक्त अनेकों सदनों का निर्माण। सूरजमल की रानी किशोरी ने गोवर्धन में किशोरी श्याम का मन्दिर एवं रानी हंसा ने मथुरा में हंसाघाट, हंसगंज घाट का निर्माण कराया, मथुरा-वृन्दावन के मुख्य मार्ग पर छोटे-बड़े वृक्ष लगवाये।

सन् १७६४ में सूरजमल पुत्र जवाहरसिंह ने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, पुनः नजीब ने घबड़ाकर हिमायती अब्दाली को निमन्त्रण दिया। जाटों ने शहादरा लूटा, नजीब को जब पराजय के अलावा कुछ दिख ही नहीं रहा था तब उसने जवाहरसिंह के आगे सन्धि प्रस्ताव रखा किन्तु जवाहर कहाँ मानने वाला? जवाहर से द्वेष करने वाले कुछ जाट भी सन्धि प्रस्ताव पर जोर देने लगे तो जवाहर लूटपाट कर बिना युद्ध के लौट गया किन्तु सन्धि नहीं की। सन् १७६८ में एक अज्ञात ने षडयंत्र कर आगरे में उसका वध कर दिया। जवाहरसिंह के बाद भाई रतनसिंह राजा बना, यह भी थोड़े दिन राज्य करने के बाद किसी कुचक्र के दौरान मारा गया। पश्चात् पुत्र हरीसिंह को राजा बनाने की बात उठी किन्तु हरीसिंह की आयु कम होने से उसके दोनों चाचा नवलसिंह व रणजीतसिंह में परस्पर कलह हो गया। इधर मराठे उत्तर भारत पर अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे किन्तु इसके लिए उन्हें पहले जाटों से मुकाबला करना आवश्यक था। सन् १७६९ में मराठों की फौज तुकोजी राव होल्कर एवं महादानी सिंधिया की कमान में आयी। नवलसिंह के पास जाट-सेना अधिक थी, उधर रणजीतसिंह मराठों में जा मिला। मथुरा के पास जाट और मराठों का भीषण संग्राम हुआ, जिसमें नवलसिंह पराजित हुआ। जाटों में तो आपसी कलह फैल ही गया था, उधर १७७३ ई. में माधवराय पेशवा की मृत्यु के बाद वहाँ भी उत्तराधिकार के पीछे विवाद बढ़ गया। इस स्थिति का लाभ लिया मुगल बादशाह शाहआलम ने। उसने वज़ीर नजफ़ खाँ को कहा – 'जाओ, जाटों द्वारा अपहृत अपना भू-भाग वापस लो।' सन् १७७३ में शाहदरा, वल्लभगढ़, कोटवन आदि कई स्थानों पर जाट और मुगलों का संघर्ष हुआ। इसमें जाटों को पीछे हटना पड़ा। सन् १७७४ में जाटों ने बरसाना में अपनी सेना का पुनः गठन किया एवं मुगलों से घमासान समर हुआ। बरसाना में जाटों ने बड़ा शौर्य प्रदर्शन किया किन्तु सैन्य-संख्या अधिक होने से मुगल जीत गए किन्तु **श्री राधारानी से रक्षित बरसाना धाम को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचा सके।**

मेवात का इतिहास

जो ब्रजभूमि सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक जीवन का हृदय है, उसका विनाश केवल चौरासी कोस का विनाश नहीं बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र और विश्व का विनाश है।

ब्रज-विनाश के मुख्यतः दो कारण –

१.विदेशी आक्रान्ता (यवनादि)

२.देशी आक्रान्ता (अनन्यता के आवरण में संकीर्ण-विचारक)

यवन-आक्रान्ताओं के भीषण अत्याचार, "बलात धर्म-परिवर्तन" आदि से हिन्दू-धर्म का सर्वाधिक ह्रास हुआ।

विधर्मियों ने केवल चौरासी कोस की भूमि ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत पर दमन चक्र चलाया।

कैसे आये भारत?

सर्वप्रथम ७१२ ई. में मोहम्मद बिन कासिम का आक्रमण हुआ, जिसने सिन्ध प्रान्त के हिन्दू राजा दाहिर को पराजित कर भीषण अत्याचार किया। तलवार के बल पर हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन किया। कुछ धर्मनिष्ठ हिन्दू राजपूत वहाँ से पलायन कर मेवाड़ आये, परन्तु उनको आश्रय नहीं मिला, धिक्कार है हमें, अपनों को भी नहीं अपना पाये। तब उनमें से कुछ मेवात क्षेत्र में आकर बस गये।

उसके बाद मोहम्मद गोरी का आक्रमण हुआ, हिन्दू हृदय सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने १७ बार उस आततायी को परास्त किया। परन्तु अन्तिम युद्ध अपनों के विश्वास घात से पृथ्वी राज हारे और बन्दी बनाए गए। मोहम्मद गोरी ने अपने गुलाम कुतुबुद्दीन एबक को दिल्ली का शासक बना दिया। गुलाम वंश के बाद तो फिर खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश, लोदी वंश और अंत में मुगल वंश का स्थापक बाबर आया, जिसका मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह (राणा सांगा) के साथ खानवा के मैदान में भीषण युद्ध हुआ दो बार राणा सांगा ने बाबर को धूल चटाई परन्तु तीसरे युद्ध में छल से बाबर ने राणा सांगा को परास्त किया और फिर वही बलात् धर्म परिवर्तन का अमानवीय कृत्य।

मुगलवंश में बाबर के बाद क्रमशः हुमायूँ पुत्र अकबर पुत्र जहाँगीर पुत्र शाहजहाँ पुत्र औरंगजेब के हाथ में सत्ता आई। इस क्रूर शासक ने उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब प्रदेश के गुर्जर व जाटों पर ऐसा कहर बरसाया कि साफ-साफ खुले शब्दों में कह दिया – 'मुसलमान बनो या सिर कटवाओ।'

हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाने की यह श्रृंखला यहाँ ही नहीं टूटी।

देखते-देखते मेवातियों का क्षेत्र बहुत बढ़ गया। आज ये अलवर, भरतपुर, गुड़गाँव, हथीन, फरीदाबाद, पलवल के अन्तर्गत बसे हुए हैं जो अधिकांश राजपूत व मीणा जाति में से हैं। आज भी मीणाओं से इनके बहुत गोत्र मिलते हैं; जैसे सिंहल, नाई, इलोत, पुण्डलोत, देहगल, धिंगल, बालातादि। ये लोग बारह पालों व चालीस गोत्रों में विभक्त हैं। यद्यपि मेव इस्लाम-धर्मी हैं किन्तु कुछ समय पूर्व तक ये होली, दिवाली, दशहरा, जन्माष्टमी आदि हिन्दू-पर्वों को ईद, मुहर्रम व शबेरात आदि इस्लाम पर्वों की भाँति मनाया करते थे। विवाह-मुहूर्त भी ब्राह्मणों से दिखवाया करते थे। वेष-भूषा भी हिन्दुओं से बहुत मिलती थी और इनकी स्त्रियाँ भुजाओं में गोदना गुदवाती थीं, जिसे इस्लाम में अच्छा नहीं समझा जाता।

सन् १३६० ई. में इन लोगों ने इस्लाम-धर्म स्वीकार किया। इस्लाम-धर्म स्वीकार कराने वालो में हजरत मीरान, हजरत सैय्यद सालार व ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का नाम उल्लिखित है। इनमें भी सैयद सालार की मुख्य भूमिका है। आज भी मेव लोग हजरत सैय्यद सालार के झण्डे की पूजा करते हैं। यह हजरत सैय्यद सालार, महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। बहुत सम्भव है कि इन तीनों मुस्लिम धर्म गुरुओं के प्रयास से ही मेवात क्षेत्र इस्लाम धर्म में परिवर्तित हो गया। क्योंकि फिरोज तुगलक के समय में तो अधिकांश मेवात की जनता हिन्दू ही बतायी जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यहाँ की जनता को मुसलमान शासकों के बहुत अत्याचार सहने पड़े। ई. सन् १२६१ में नसीरुद्दीन के वजीर अलगू खां ने हजारों मेवों का कत्ल कराया था। इसके बाद ई. सन् १२६७ में अलगू खां ने (जो उस समय बलबन नाम से बादशाह बन गया था) लगभग एक लाख मेवातियों का कत्ल कराया था। मराठों एवं अंग्रेजों ने भी इनका बहुत दमन किया। भारत स्वतन्त्रता के बाद इस्लामी कट्टरपंथियों के द्वारा भड़काये जाने पर यहाँ के मेवों ने भी उपद्रव किया। उस समय भरतपुर जिले के अन्तर्गत बहुत दंगे हुए। यह सब अंग्रेजों की चाल थी।

खानजादा पहले यादव थे।

खानजादा मेव स्वयं को राजा यदु का वंशज कहते हैं। राजा यदु मेवात क्षेत्र के अधिपति थे, जिनके वंशज यादव कहलाये। यादव चन्द्रवंशी राजपूत हैं। इस वंश का बवनपाल (विक्रम संवत् ११५० – १२१६) बयाना में राज्य करता था, जिसका चौथा वंशज 'अघनपाल' तिजारा का अधिपति था। इसका पौत्र 'लखनपाल' फिरोजशाह तुगलक के राज्यकाल में मुसलमान हो गया और सम्पूर्ण मेवात क्षेत्र को स्वाधीन कर लिया। सन् १३८८ में फिरोजशाह की मृत्यु हो जाने पर बहादुरशाह नाहर ने उसके गुलाम-विद्रोह में साथ दिया था और उनके साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया था अतः ये लोग खानजादा (गुलाम) कहलाने लगे किन्तु ये स्वयं को राजा यदु का वंशज कहते हैं एवं

मेवात क्षेत्र में सम्मानजनक दृष्टि से देखे जाते हैं। इस्लाम धर्म का पालन करते हुए भी इनके वैवाहिक-संस्कार हिन्दू-पद्धति के अनुसार होते हैं।

श्री सबरंग खान पाहट, ग्राम – सबलाना से प्राप्त

मेवों को पहले मेवड़ा कहा जाता था, जिनका निकास मेवाड़ एवं मारवाड़ से बताया जाता है। मेव जाति के बाहुल्य से यह क्षेत्र मेवात के नाम से जाना जाता है। मेवात क्षेत्र के अन्तर्गत भरतपुर, नगर, अलवर का कुछ क्षेत्र, हरियाणा राज्य में गुड़गाँव, मेवात, फरीदाबाद एवं पलवल का कुछ क्षेत्र आता है। मथुरा जिले के कुछ गाँव जिनकी भाषा मेवाती, जो मेवाड़ी अथवा मारवाड़ी से मिलती-जुलती है। पूर्व में इनका खान-पान, वेष-भूषा, विवाहादि हिन्दूधर्म के अनुसार होते थे। आज भी इनके विवाह में चाक-पूजन होता है एवं घर के वृद्धों के, पूर्वजों के हिन्दू नाम प्राप्त होते हैं। कुछ समय पहले तक ये लोग सभी हिन्दू-पर्वों को मनाया करते थे किन्तु अब हजरतों (धर्म-गुरुओं) द्वारा जमाते (धर्म-प्रचारकों) के माध्यम से इन्हें धर्म के प्रति कट्टर बनाया जा रहा है। मदरसों के माध्यम से दी जा रही धार्मिक-शिक्षा कुरान शरीफ एवं हदीशादि का अध्ययन-अध्यापन होता है। परिवार नियोजन को अहमियत न देते हुए व धर्म की अभिवृद्धि हेतु जनसंख्या-वृद्धि में इनकी विशेष रुचि है। 'एक ही परिवार' कई गाँव बसाने की क्षमता रखता है। इसीलिए अधिकतर इनके गाँवों में एक ही गोत्र के लोग मिलते हैं। डेमरोट, छिरकलोट, बाघोडिया, बालोत, पहाट, नाई मेव, दहगल, पुंगलोट, इलोट, बारह पाल, तेरह पल्लाकड़ा, पाहट............ऐसे अनेक गोत्र इनमें पाये जाते हैं। प्रायः एक गाँव पूरा एक ही गोत्र का होता है। ब्रज का बहुत सा भाग मेवात क्षेत्रान्तर्गत है बलात धर्म परिवर्तन द्वारा यहाँ के हिन्दुओं को मेव बनाया गया। भारतवर्ष को एवं ब्रजभूमि को भी नष्ट करने में हम हिन्दुओं की ही भूमिका रही।

जो धाम, दया, करुणा का ऐसा स्वरूप है कि अक्षम्य महापातकियों को भी अपनी गोद में रखता है।

सिय निंदक अघ ओघ नसाए।
लोक बिसोक बनाइ बसाए॥

(रा.च.मा.बाल. १३)

यह इस भूमि की उदारता है, जगज्जननी पराम्बा श्री जानकी जी को चारित्रिक कलंक लगाने वाले उन महद् अपराधियों को भी विशोक (शोकरहित) बनाकर अपनी गोद में निवास दिया और दूसरी ओर हम लोग गाय कटे तो हिन्दुत्व जाग्रत नहीं होता, संस्कृति, सभ्यता के नाश पर भी हिन्दुत्व जाग्रत नहीं होता और वह हिन्दू भाई जिसे बलात् धर्मपरिवर्तन कराया गया हो, यदि पुनः स्वधर्म (हिन्दू धर्म) लेना चाहे तो हिन्दुत्व जाग्रत हो जाता है, झट कट्टरता से कह देते हैं, हम तुम्हें स्वीकार नहीं करेंगे।

ऐसा कितनी बार हमारे देश में हुआ और हो रहा है।

हिन्दू कितना संकुचित हो गया!

यद्यपि यावनी प्रभाव से मेवात क्षेत्र में अधिकांश ब्रजवासी यवन बन गये हैं किन्तु अब भी वे स्थान की मर्यादा को मानते हैं।

जैसे अञ्जनी धाम मेवात क्षेत्र में है किन्तु वहाँ के मेव स्थानीय मर्यादा व महत्ता स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त –

मेवात में पावसर

हरियाणा प्रान्त के हथीन-ब्लॉक में, कोट गाँव से आलीमेव की ओर 'पावसर' गाँव स्थित है। जनश्रुति के अनुसार यह गोचारण क्षेत्र है, जहाँ श्यामसुन्दर गैया चराने आते थे, यहाँ गायों को जल पिलाया था। आज भी ऐसी मान्यता है कि यदि किसी की गाय दूध न दे तो यहाँ लाकर गाय के थन का स्पर्श करने से वह दूध देने लगती है।

कुछ लोग इस गाँव को "नार" नाम से भी जानते हैं, उनका कथन है कि यह ब्रज-परिक्रमा का "नार" है। 'नार' अर्थात् यहाँ से परिक्रमा लौटकर आती है और कुछ इसे चौखटा भी कहते हैं। जिस भी नाम से पुकारें, यह गोपाल का गोचारण क्षेत्र है ।

खजुरारी कुण्ड

ब्रजमण्डल की सीमा पर हथीन तहसील में बहीन गाँव स्थित है। बहीन गाँव में ही है खजुरारी कुण्ड। यह श्रीकृष्ण की गोचारण भूमि है। यहाँ के ग्रामवासियों की मान्यता है कि इस कुण्ड का निर्माण गोमाता के खुरों से खुंदकर हुआ।

श्रीमद्भागवतजी में भी श्रीकृष्ण की गोचारण लीला में गो-पद से पृथ्वी के खुंद जाने की चर्चा है।

युगलगीत में गोपिकाओं ने कहा है –

ब्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥

(भा. १०/३५/१६)

आज भी यहाँ के ब्रजवासी बहुत श्रद्धापूर्वक इस कुण्ड की पूजा-परिक्रमा करते हैं। यह सभी मनोरथों को सिद्ध करने वाला कुण्ड है। पूज्या गो-माता की स्मृति में यहाँ आज भी एक गोशाला में गायों की सेवा हो रही है, जिसे कान्हा दादा की गोशाला के नाम से जाना जाता है।

विदेशी-आक्रान्ताओं से कहीं अधिक हानि हुई देशी-आक्रान्ताओं अर्थात् साम्प्रदायिक संकीर्ण विचारकों के द्वारा।

आज समाज की जो विकृत दशा है वह अवर्णनीय है। सम्पूर्ण हिन्दू समाज विघटित है, इसीलिए भारतवर्ष शक्तिहीन हो गया, इसके दोषी उपदेशक व प्रचारक भी हैं, चाहे वे

धर्माचार्य हों अथवा लोकपति (नेता) हों। कहने को देश विकास कर रहा है, पर विकास के स्थान पर विनाश ही हो रहा है।

भारतवर्ष का गौरव है – हमारी आध्यात्मिकी पावन परम्परा। विकास के धोखे में यदि हमारे द्वारा अपने अध्यात्म का ही विनाश हो गया तब क्या सिद्ध होगा, विकास अथवा विनाश?

अतः भारतीय संस्कृति व संस्कारों का संरक्षण करते हुए, धार्मिक भावनाओं को आहत न करते हुए, विकास पथ पर चलें, पश्चिम की विलासिता का अंधानुकरण न करें। क्योंकि संस्कारों का एक समुदाय ही संस्कृति है, जो धर्म का आधार है। संस्कार-शून्य धर्म कैसा? धर्म क्या है? धारण करने योग्य बातें ही धर्म हैं। संकीर्णताओं ने हमारे धर्म को कलंकित कर दिया। बहुधा बात-बात में लोग धर्म-निरपेक्ष बन जाते हैं; अरे! धर्मनिरपेक्ष क्यों बनते हो, साम्प्रदायिक संकीर्णता से निरपेक्ष बनो।

आज साम्प्रदायिक संकीर्णताएँ एवं ब्रज-वृन्दावन के विकास के नाम पर हो रहे आधुनिकीकरण, ब्रज संस्कृति के लिए, यहाँ की पावन परम्पराओं के लिए एवं यहाँ के कृष्ण भक्ति परायण समाज के लिए एक अभिशाप है। प्रतीत होता है आज की इस भयावह स्थिति को श्री हरिराम व्यास जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से पहले ही जान लिया था –

अब सांचे ही कलियुग आयौ ।
मथुरा खुदति कटत वृन्दावन, मुनि जन सोच उपज्यौ ।
इतनौ दुःख सहिबे को काजै, काहे को व्यास जिवायौ ॥

(व्यास वाणी पूर्वार्द्ध -२३६)

आज चारों ओर भव्य विलास भवनों एवं उन्नत अट्टालिकाओं के निर्माण की प्रतिस्पर्धा से उपेक्षित ब्रजभूमि की वन सम्पदा, देव तुल्य पर्वत, कुण्ड, सर एवं श्री यमुना जी इस विकृत स्वरूप में आ गईं।

मत भूलो कि यह भूमि मात्र दर्शनीय न होकर उपासनीय भी है।

यहाँ के प्रत्येक वन, पर्वत, सरिता, द्रुम, खग एवं रज-कण कृष्ण प्रेम प्रदान करने में समर्थ है अतः ब्रज रज निष्ठ सन्त महापुरुष धाम की दिव्य लता-द्रुम, शुक-पिक, मृग, मयूरादि की भी वन्दना करते हैं और उनसे श्रीजी के चरणों में अक्षय अनुराग की याचना करते हैं –

हा कालिन्दि त्वयि मम निधिः प्रेयसा क्षालितोऽभूद्,
भो भो दिव्याद्भुततरुलतास्तत्करस्पर्शभाजः ।

हे राधाया रतिगृहशुका हे मृगा हे मयूरा,
भूयो भूयः प्रणतिभिरहं प्रार्थये वोऽनुकम्पाम् ॥

(रा.सु.नि.२६२)

यद्यपि आज हमारे समाज में इस दिव्य धाम निष्ठा का दर्शन दुर्लभ हो गया है, केवल वाणी तक सीमित रह गई है क्रिया में नहीं है। यदि वर्तमान में यह निष्ठा पूर्ववर्ती सन्त महापुरुषों की तरह पुष्ट होती तो आज ब्रज वृन्दावन के दिव्य वन, उपवन, गिरि, सरोवर एवं श्रीयमुना जी का वही पुरातन स्वरूप सामने होता। यद्यपि कुछ सन्त वैष्णव आज भी उस निष्ठा में विराजमान हैं और वे सतत् ब्रज के संरक्षण, सम्वर्धन व सौन्दर्यीकरण की ओर विशेष तत्पर हैं एवं उनके प्रबल प्रयत्न से ही कहीं-कहीं ब्रज का प्राचीन स्वरूप (वन, पर्वत, सरोवर) सुरक्षित है और उनका दर्शन हमको प्राप्त हो पा रहा है। यद्यपि ब्रज सेवा का यह पावन प्रयत्न सर्व समाज को करना चाहिए और वैष्णव समाज को तो अपना परम कर्तव्य समझ कर इस पावन कार्य में तत्पर होना चाहिए।

इसी लिए तो श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु जी की आज्ञा से श्री रूप-सनातन गोस्वामी पाद ने श्रीधाम वृन्दावन में निवास कर ब्रज सेवा कर ब्रजोपासना की, लुप्त तीर्थों का उद्धार कर उनका संरक्षण, सम्वर्धन किया।

तभी तो श्री व्यास जी ने गाया –

बिहारिहिं स्वामी बिनु को गावै ।
बिनु (हित) हरिबंसहि राधिकाबल्लभ को रस रीति सुनावैं ॥
रूप सनातन बिन को वृन्दाविपिन माधुरी पावै ।

आज विश्व में करोड़ों की संख्या में कृष्ण भक्त समुदाय है और उनमें लाखों की संख्या में ऐसे भी हैं जो ज्ञान की दृष्टि से, विचार की दृष्टि से, अर्थ की दृष्टि से, सर्वथा सम्पन्न हैं उसके पश्चात् भी ब्रज संकृति का इतना बड़ा ह्रास, यह आश्चर्य की बात है, इसका मूल कारण है आध्यात्मिक धरातल पर पारस्परिक विद्वेष और संकीर्णता की भावनाएं। हमारे पूर्ववर्ती आचार्य महापुरुष इन विघटनकारी भावनाओं से सर्वथा मुक्त थे। परस्पर में सौहार्द और सद्भाव चरम पर था।

स्मरण करें हमारे पूर्वाचार्यों की कितनी निर्मल उपासना थी। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी ने श्रीनाथजी की सेवा की श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामीपाद की सम्मति से, गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के सेवा काल में श्रीरूप, सनातन गोस्वामी जी व समस्त गौड़ीय वैष्णव पधारे और आज भेदवादिता के बढ़ने से स्थिति यह है कि सभी सम्प्रदाय रेल की पटरी बन गये। दोनों पटरियाँ एक साथ एक ही दिशा में चलती हैं किन्तु एक दूसरे से कभी मिल नहीं सकती हैं। यही हम सबकी स्थिति है। यद्यपि सर्व धर्म, पंथ, सम्प्रदाय के मूल उपास्य एक ही है किन्तु फिर भी हम रेल की पटरी की भाँति अलग-

अलग हैं। साम्प्रदायिक-भेद इतना अधिक बढ़ा है कि आज आचार्यों पर भी आरोप करने लगे। जिसके कारण पारस्परिक आचार्य ग्रंथों व आचार्य परम्पराओं में अभाव बुद्धि रखकर अपने अध्यात्म पथगामी होने पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। वस्तुतः सर्व ग्रन्थ, सन्त, पथ, परम्परा एवं सम्प्रदाय आदि का एक मात्र तात्पर्य विवाद मुक्त होकर विषमताओं से रहित होकर भगवच्चरण की शरणागति में ही है।

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

(कठोपनिषद् १/२/१७)

भगवदाश्रय ही सबका सार है। श्रीमद्वल्लभाचार्यमहाप्रभु के शुद्धाद्वैत का सार भी **श्रीकृष्णाश्रय** ही है। दार्शनिक दृष्टि से भले आपने शास्त्रार्थ किये किन्तु लक्ष्य केवल **कृष्ण-शरणागति** का ही था।

दार्शनिक मतभेदों को लेकर भेदवाद को नहीं बढ़ाना चाहिए। 'दार्शनिक-पक्ष' बौद्धिक-पक्ष है, इसमें विवेकी उपासक को उलझना नहीं चाहिए।

साम्प्रदायिक भेदजन्य विषमता : जाग्रत कालकूट विष

जाग्रत से तात्पर्य है – जो जीवित है, अनवरत कार्यरत है।

कालकूट विष का प्रभाव तो श्री शिवजी ने समाप्त कर दिया जिससे विश्व रक्षा हुई किन्तु इस भेदजन्य विषमता रूप कालकूट को समाप्त करने का तो कुछ भी उपाय दिखाई नहीं देता; जो न केवल भारत ही प्रत्युत सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हो रहा है। इस विष की उत्पत्ति का कारण है शास्त्र मत का अन्यथा रूप में स्थापन।

भगवान् ने संसार का सृजन किया और सनातन काल तक समाज को सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए शास्त्रीयसिद्धान्त प्रदान किये और निर्देश किया –

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ"

(गी.-१६/२४)

परन्तु जब शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुरूप हम स्वयं को ढालते हैं तो सामाजिक और व्यावहारिक जीवन में सौहार्द व माधुर्य का संचार होता है और जब अपनी मिथ्या मान्यताओं की पुष्टि के लिए अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए शास्त्र को अपने अनुरूप ढालने का कुत्सित प्रयत्न करते हैं तो समाज में कटुता व विषमताओं का कालकूट विष पैदा होता है। जोकि सनातन संस्कारों का, परम्पराओं का विनाशक सिद्ध होता है। जैसे विवाह एक शास्त्रीय परम्परा है और उसका तात्पर्य निवृत्ति है, न कि विलासिता, भोगवादिता अर्थात् संयमित और नियन्त्रित जीवनचर्या पूर्वक भजनोन्मुख होना है न कि भोग परायण होकर आत्म नाश करना। श्रीकृष्ण के द्वारा यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट है –

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना ।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥

(भा.११/५/११)

हमारी वैदिक संस्कृति में विवाह भी एक संस्कार है। मैथुन से निवृत्ति कराना ही विवाह का लक्ष्य है, जिससे कि मनुष्य एक स्त्री से ही सम्बन्ध रखे, ऐसा न हो कि वैषेयिकता के बढ़ते वह श्वानवृत्ति ही ले ले, मांस भक्षण के लिये लोग पशु-हिंसा करने लगे अतः हिंसा-निवृत्ति के उद्देश्य से यज्ञपशु के स्पर्श का विधान बनाया, मद्यपान की निवृत्ति के लिये सौत्रामणि यज्ञ में सुरा सूँघने अथवा सेवन की भी जो व्यवस्था है, उसका लक्ष्य है लोगों की उच्छृंखल प्रवृत्ति पर नियंत्रण किन्तु मनुष्य निवृत्ति पर विचार करता नहीं, यही सोचता है कि शास्त्रों ने भी प्रवृत्ति अर्थात् विषयभोग, मांस-भक्षण, मदिरापान की आज्ञा दी है।

शास्त्र में समाज को चार जातियों में विभाजित किया जिसका तात्पर्य सामाजिक व्यवस्था है क्योंकि भेद के बिना व्यवहार (व्यवस्था) सम्भव नहीं। व्यावहरिक जीवन में, सर्वत्र पिता, पुत्र, भ्राता, माता, बहन, पत्नी, वैद्य, शिक्षक अधिवक्ता आदि भेद हैं परन्तु इस भेद का तात्पर्य व्यवस्था में है न कि विषमताओं में।

इसी प्रकार भारतवर्ष में जातिव्यवस्था कल्याण की दृष्टि से बनाई गई है, और यह किसी मानव की कल्पना नहीं अपितु स्वयं भगवान् के द्वारा स्थापित है जिससे वर्ण व्यवस्था के अनुसार लोग कर्मों का आचरण करें –

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ॥

(गी. ४/१३)

अर्थात् गुण व कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र – ये वर्ण व्यवस्था मेरे ही द्वारा बनाई गई है।

ब्राह्मण को अध्ययन–अध्यापन (शिक्षा विभाग)

क्षत्रिय को युद्ध, शौर्य, पराक्रम (रक्षा विभाग)

वैश्य को कृषि, गोरक्षा, व्यापार (धनार्जन विभाग)

शूद्र को सबकी सेवा (सेवा विभाग)

सेवा वह साधना है जिससे भगवान् अतिशीघ्र प्रसन्न होते हैं।

"यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः"

(भा. ३/६/३३)

समाज के लाभ हेतु भगवान् ने चातुर्वर्ण्य की रचना की, जिससे सभी व्यवस्थायें सुचारु रूप से चलती रहें किन्तु स्वार्थी लोगों ने अपने-अपने स्वार्थ हेतु भेदबुद्धि बढ़ाकर उन्हें कलुषित कर विषमता का संचार कर समाज का विनाश किया। वोट-बैंक बनाकर प्रजातन्त्र को दूषित किया। इससे वैदिक संस्कृति "सर्वे भवन्तु सुखिनः" का पावन लक्ष्य बाधित हुआ है। आज प्रायः मानव का रिसीवर (श्रद्धात्मक ग्राहक पक्ष) दूषित है अतः सबको राग-द्वेष में बदलकर रख दिया। इसी प्रकार सम्प्रदाय-व्यवस्था भगवत्प्राप्ति का सीधा मार्ग है, जिस पर आँख बंद करके दौड़ते हुए चले जाओ। न स्खलन का भय है, न पतन का ही।

धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥

(भा.११/२/३५)

जिस प्रकार समाज में जाति-प्रथा एक विष बन गई, भेद-कलह का कारण बन गई, उसी प्रकार जो अनन्यता भगवत्प्राप्ति का सीधा मार्ग थी, गृहीता (रिसीवर) दूषित होने से वह समाज के लिए विष बन गई। अनन्यता के चक्कर में एक वैष्णव दूसरे वैष्णव का अपराध करने लग गया, सम्पूर्ण धर्म का स्वरूप तामसी हो गया। यज्ञ, व्रत, पाठ, पूजा, सब तामसी हो गये। समाज की जाति-व्यवस्था को लोकपतियों (नेताओं) ने दूषित किया तथा सम्प्रदाय-व्यवस्था को अनन्यता के चक्कर में धर्म के ठेकेदारों ने दूषित कर दिया।

अरे, क्या अपने पूर्वाचार्यों की वाणी और लक्ष्य भी भूल गये!!

आचार्यवाणी अभावोत्पत्ति के लिए थोड़े है, यह तो समझने वालों की अल्पज्ञता है कि वे उनके भाव की गहराई में तो उतर नहीं पाते, शब्दों में सिमिट जाते हैं।

जिस प्रकार समुद्र-मंथन से विष-प्राप्ति लक्ष्य न रहते हुए भी हुई, उसी प्रकार सम्प्रदाय-स्थापना भेद रूप विष प्राप्ति के लिये न होकर भगवदाराधन रूपी अमृत-प्राप्ति के लक्ष्य से हुई किन्तु उससे सर्वप्रथम भेदभाव रूपी विष उत्पन्न हुआ, जिससे सम्पूर्ण समाज विषाक्त हो, अपराध से दग्ध हो उठा।

सम्प्रदाय

"संप्रदीयते यस्मिन् सः सम्प्रदायः"

जिसमें सम्यक् वस्तु को प्रदान किया जाये, वह है सम्प्रदाय।

सम्यक् वस्तु अर्थात् अध्यात्म अथवा सद्वस्तु।

सम्प्रदायों में दीक्षाविधान इसलिए नहीं था कि हम भेदबुद्धि में पड़कर विभक्त हो जाएँ।

दीक्षा क्या है? दिव्य भाव का दान ही दीक्षा है।

दिव्यं भावं यतो दद्यात् क्षिणोति दुरितानि च ।
अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वारम्भ विशारदैः ॥

(नारद पुराण ६४/२)

गुरुदेव दिव्य भावों का दान करते हैं, जिनसे पाप की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। इन दिव्य भावों के स्थान पर यदि गुरु ने संकीर्ण विचार दे दिये तो समझो विष दे दिया। आजकल भाव के स्थान पर अभाव-दान बहुत हो रहा है। अभाव कलि का रूप है।

परम रस-रसिक श्रीहिताचार्यजी ने कलि-कालुष्य को नष्ट किया।

हरी सब कलिकाल की भय कृपा रूप जू वपु धर्‌यो ॥

(श्रीहित मंगल गान प्रकरण१२/२)

आज हम भेदोत्पन्न करके यदि कलहादि कलि-कालुष्य को बढ़ाते हैं, तो क्या यही आचार्यों का अनुगमन है?

कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ।

(भा. ११/२१/२०)

क्लेश, क्रोध – ये सब कलि के ही रूप हैं अतः एकाग्र मन से विचार करके सदसद्विवेचिनी सात्त्विकी बुद्धि के निर्णीत सिद्धान्त पर ही चलें। समग्र संसार ही गुण-दोषमय है अतः सारासार का ज्ञान आवश्यक है।

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।
सन्त हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥

(रा.च.मा.बाल. ६)

साधक को हंसवत् नीर-क्षीर का विवेक होना आवश्यक है। जिससे ग्राह्य का ग्रहण कर सके एवं त्याज्य का त्याग कर सके। यह गुण परीक्षितजी के अन्दर था –

नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ।
कुशलान्याशु सिद्ध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥

(भा. १/१८/७)

भ्रमरवत् सारग्राही राजा परीक्षित ने मलपुञ्ज होते हुए भी कलि में कोई दोष न देखकर एक महान गुण देखा।

इसी प्रकार साधक को आराधनार्थ सम्प्रदाय-परम्परा का ग्रहण एवं संकीर्णता के विष का त्याग करना चाहिए। आज एक-दूसरे सम्प्रदाय की निन्दा, आचार्य-निन्दा, आचार्य वाणी-निन्दा जैसे घोर अपराध ने सम्पूर्ण वैष्णव-समाज को तेजोहीन, शक्तिहीन व श्रीहीन कर दिया है।

रोगी को पथ्य (औषधि-सेवन) आवश्यक है लेकिन कुपथ्य का निवारण उससे कहीं अधिक आवश्यक है। अतएव श्रीनिम्बार्काचार्य जी ने कहा –

"विरोधिनो रूपमथापि ज्ञेयं"

(दशश्लोकी)

विरोधी तत्व का ज्ञान परम आवश्यक है।

इसीलिए रामचरित्र छोड़कर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने सर्वप्रथम गुण-दोष का वर्णन किया –

तेहि तें कछु गुन दोष बखाने ।
संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥

(रा.च.मा.बाल. ६)

साधक को बहुत चतुर होना चाहिए।

सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥

(रा.च.मा.अयो. २८१)

अमृत जैसी वस्तु तो केवल सुनने को मिलती है और विष जैसी वस्तु सर्वत्र प्रत्यक्ष देखने को मिलती है। इसी प्रकार कौए, उल्लू और बगुले तो सर्वत्र ही देखे जाते हैं परन्तु हंस तो एक मानसरोवर में ही पाए जाते हैं। उपासक इतना चतुर हो कि स्वयं को विषपान से बचा सके अन्यथा सुधा के स्थान पर गरलपान ही करेगा व हंस के स्थान पर काक को गुरु बनाकर अपवित्र वस्तुओं का सेवन, बक को गुरु बनाकर पाखण्ड एवं उलूक को पथ-प्रदर्शक बनाकर दुरत्यय अन्धकार में ही प्रवेश करेगा।

राजा सत्यव्रत मनु के वचन –

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥

(भा. ८/२४/५१)

संसार में ऐसे पथ-प्रदर्शक ही अधिक मात्रा में हैं, जिनका आशय दुरत्यय अन्धकार में ले जाने वाला है। लक्ष्य था भगवद्प्राप्ति का, परिणाम में अनन्त दूरी को प्राप्त हो गये।

"आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास"

अथवा

चलन-चलन सब कोई कहे विरला पहुँचे कोय ।
एक कंचन और कामिनी दुर्गम घाटी दोय ॥

चले थे भगवद्रस की प्राप्ति के लिए और पहुँच गये ममाहं मति के कूपान्धकार में।

ऐसे पथप्रदर्शकों की सर्वत्र निन्दा की गयी है।

श्रीबिहारिनदेवजी की वाणी में –

जाकौ गुरु भसकै भुसै सिषि तौंतरा खाइ ।
नाज खात मुंहुं मारियै ए दोउ पसु प्राइ ॥
ए दोइ पसु प्राइ भाइ बिनु भटकि भये खर ।
सनमुख है क्यौं सकैं डरैं बरनाश्रम के डर ॥
कहत बिहारी दास मैंड मीडै ही साकौ ।
रसिक अनन्य कहाइ कहै न सभा जस जाकौ ॥

(श्रीबिहारिन देव जी कृत वाणी, पद सं. ९०)

ऐसे गुरु भुस-भक्षी गधा एवं शिष्य कीट-भक्षी पशु हैं।

हंस जैसे गुरु तो भगवत्कृपा से ही प्राप्त होते हैं जिनके आश्रय में शिष्य विशुद्ध भक्ति का दुग्ध पान करता है।

क्या कारण है जो सनातन धर्म सबसे प्राचीन होने के साथ-साथ विश्वपूज्य था, आज उंगली पर गिनती के सनातन धर्मावलम्बी रह गये।

कारण : उपदेष्टा ही विषमता का विष पिलाने लग गये।

यह संकीर्ण उपदेश आज जन साधारण को दुरत्यय अंधकार में ले जा रहा है।

संकीर्ण उपदेशकों से सावधान!

राजा सत्यव्रत मनु के मत्स्य भगवान् के प्रति वचन –

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ।
तथापि लोको न भवन्तमन्धधीर्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥

(भा. ८/२४/५२)

हे प्रभो! सम्पूर्ण संसार के सुहृद (हितैषी) प्रिय, ईश्वर, आत्मा ही नहीं अपितु गुरु एवं ज्ञान भी आप ही हो।

लक्ष्मण जी के राम जी के प्रति वचन –

गुर पितु मातु न जानउँ काहू ।
कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥

(रा.च.मा.अयो. ७२)

हे नाथ! मैं सहज स्वभाव से कह रहा हूँ कि आपके अतिरिक्त गुरु, माता, पिता किसी को मैं नहीं जानता हूँ। परार्थनिष्ठा तो कहीं दिखाई ही नहीं देती। गुरु भी अपने शिष्य से आशा करता है, लोभ करता है।

प्रह्लाद जी के शब्दों में –

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥

(भा. ७/१०/५)

आशा करने वाला न सच्चा गुरु है न ही उपदेष्टा, एक अच्छा व्यापारी अवश्य हो सकता है।

जो गुरु करै शिष्य की आस ।
श्याम भजन ते भया उदास ॥

(श्रीबिहारिनदेवजी की वाणी-१४)

गुरु निर्मोही चाहिए, शिष्य न छाँड़ै पास ।

(श्रीबिहारिनदेव जी)

स्वार्थ से संकीर्णता ही सिद्ध हो सकती है, भक्ति तो नहीं। ऐसे गुरु जो तुम्हें संकीर्ण विचारों का विष पिला रहे हैं उनका वरण करने से तो अच्छा है, गुरु मत बनाओ। जब तक सच्चे सद्गुरु न मिलें तब तक भगवान् को ही गुरु रूप में स्वीकार करो अन्यथा जहर पिलाने वाले तो बहुत मिल जाएंगे। जीव के एकमात्र हितैषी भगवान् ही हैं।

उमा राम सम हित जग माहीं ।
गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाहीं ॥

(रा.च.मा.किष्कि.१२)

अथवा

स्वयं भगवान् श्रीराम ने कहा –

गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा ।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥

(रा.च.मा.अरण्य.१६)

गुरु, माता, पिता, बन्धु, पति, दैवादि सभी सम्बन्ध मुझ में ही स्थापित कर लो।

गुरु के द्वारा वृन्दावन छोड़ देने की आज्ञा पर श्री भगवत रसिक जी महाराज, प्रयाग के निकट अड़ैल ग्राम के समीप मढ़ी में निवास कर रहे थे।

एक समय किन्हीं सन्त द्वारा श्री भगवत रसिक जी की वाणी को पढ़ते हुए गुरु श्री ललित मोहिनी देव जी का मन बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु जब निम्नलिखित पद का क्रम आया –

चेला काहू के नहीं गुरु काहू के नाहिं ।
सखी लड़ैती लाल की रहैं महल के माहिं ॥
रहैं महल के माहिं टहल सब करैं निरन्तर ।
दंपति अति अकुलाहिं पलक कहुँ परै जु अंतर ॥
भगवत भगवत कहैं करैं नहिं हम बिन केला ।
ताते हम परिहरे देह मानी गुरु चेला ॥

(श्रीभगवतरसिक जी की वाणी- उत्तरार्द्ध.पद सं.४०)

गुरुदेव का मन कुछ सकुचाया। अन्य किसी को दिखाने, सुनाने का साहस भी नहीं हुआ। प्रातः (जिस भी भावना से प्रेरित होकर) वह पद यमुना में प्रवाहित कर दिया किन्तु सत्य के प्रवाहित होने से मन व्यथित हो उठा। दूसरे दिन यमुना स्नान को गये तो नीली धारा में बहता हुआ वह पत्र पुनः इस प्रकार सामने आ गया मानो किसी ने लाकर रख दिया हो, आश्चर्य के साथ ही मन की दुविधा भी बढ़ गयी। पत्र को ले आता हूँ तो समाज में कटु सत्य को स्थापित करना होगा और यदि नहीं लाता हूँ तो सत्य का अनादर है तो भी पत्र को जल में डुबा ही दिया, तीसरे दिन भी वही क्रम रहा पुनः वह पत्र देखकर विचार करने लगे, न भीगता है और न डूबता ही है। तब स्वयं श्री यमुना जी ने प्रकट होकर कहा – हे आचार्य प्रवर! इस पत्र में सत्य की अग्नि है, जिसे पचाने की सामर्थ्य मुझमें भी नहीं है। आप इसे ले जाइए, इसके प्रचार-प्रसार से रसिकजनों का कल्याण होगा। सत्य कटु भी हो तो क्या, वह सर्वदा स्वीकार करने योग्य है। सत्य को स्वीकार करना व कराना महापुरुषों का ही कार्य है।

श्री यमुना जी की आज्ञा से श्री ललितमोहिनी जी ने वह पत्र अपने हृदय से लगा लिया एवं शिष्यों को प्रचार-प्रसार का आदेश दिया।

इसी का अग्रिम पद है –

हम सिष स्यामा स्याम के गुरु हम स्यामा स्याम ।
ओत प्रोत अरपन कियो निज मन तनु धन धाम ॥

(भगवत रसिक जी की वाणी)

हम शिष्य भी श्यामा-श्याम के हैं और गुरु भी श्यामा-श्याम के। वस्तुतः सम्बन्ध गुरु शिष्य का हो अथवा पिता-पुत्र का वह भगवान् में जितना घटित होता है, उतना अन्यत्र नहीं। यही तो अनन्य व्रत है।

अर्थ हुआ अनर्थ

धर्म का लक्ष्य जब अर्थ हो जाता है तो वहाँ विकृतियाँ आ जाती हैं। कारण अर्थ में १५ दोष हैं।

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥

(भा. ११/२३/१८)

ये १५ दोष धन सहित धर्म में आ जाते हैं फिर धर्म अधर्म बन जाता है। धर्म का प्रयोजन भगवान् नहीं रह जाते हैं।

एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥

(भा. ११/२३/१९)

श्रेयोर्थी को चाहिए, धन को दूर से ही त्याग दे अर्थात् धन का दर्शन-स्पर्श भी न करे।

पैसा पापी साधु को परसि लगावै पाप ।
विमुख करै गुरु इष्ट तैं उपजावै संताप ॥
उपजावै संताप ज्ञान वैराग्य बिगारै ।
काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर सिंगारै ॥
सब द्रोहिनि में सिरें भक्त द्रोही नहिं ऐसा ।
भगवत रसिक अनन्य भूल जिन परसौ पैसा ॥

(श्रीभगवतरसिक जी की वाणी- उत्तरार्द्ध.पद सं.२३)

इस अर्थ ने युगों से अपवर्ग के सभी साधनों को अनर्थ बना दिया, अतएव रस रसिकता विषय रस रसिकता बन गई।

विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ।
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥

(पद्मपुराणोक्त भा.माहा. १/७१)

लोभ ने कथा-कीर्तन को भी निस्सार कर दिया। जबकि धर्मस्य .....१/२/९ नार्थस्य धर्मैकान्तस्य .....धर्म की सार्थकता अर्थ की प्राप्ति में नहीं है और अर्थ की सार्थकता धर्म में ही है, न कि भोग विलास में।

जो पै राम चरण रति होती ।
जो श्री पति महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए ।
तौ कत द्वार-द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ।
जे लोलुप भये दास आस के ते सबही के चेंरे ।
प्रभु विस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥

(तुलसी वि.प.१६८)

गोस्वामी श्री तुलसी दास जी कहते हैं - यदि श्रीरामजी के चरणों में प्रेम होता, उनकी महिमा का ज्ञान होता तो फिर टुकड़े (धन, मानादि) के लिए द्वार-द्वार पेट दिखाते हुए क्यों घूमता? जो लोभी पुरुष आशा का दास बन गया है। वही सबकी गुलामी करता फिरता है क्योंकि धन, विषयादि की कामना वाले को कभी स्त्री तो कभी सेठों की दासता करनी ही पड़ती है। वस्तुतः जिसने भगवान् पर विश्वास करके आशा को जीत लिया है, वही सच्चा सेवक है।

लोभ परायण वक्ताओं का समूह आज भगवद्कथा को सारहीन कर रहा है। इससे जगत का कल्याण न होकर विनाश ही हो रहा है।

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥

(भा. ७/९/४६)

मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्म पालन, शास्त्र-व्याख्या, एकान्त-निवास, जप एवं समाधि आदि मोक्ष प्राप्ति के साधन अजितेन्द्रिय के लिए जीविका मात्र रह जाते हैं और पोल खुलने पर जीविका भी सिद्ध नहीं हो पाती है। ऐसे अर्थलोलुप वक्ताओं ने छद्म वेश धारणकर समस्त कल्याणकारी मर्यादाओं का अतिक्रमण कर सर्वत्र निर्लज्जता का ही प्रदर्शन कर रखा है और उसके पश्चात् भी हम भक्त या विद्वान बनते हैं –

लाज न लागत दास कहावत ।
सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत ॥

(तुलसी विनय पत्रिका –१८५)

गोस्वामी तुलसीदास जी ने क्या सुन्दर चित्रण किया है हमारी मनःस्थिति का, एक बार हम अपने अन्तःकरण में झाँक कर देखें तो ज्ञात हो जाए कि हमारा क्या स्वरूप है –

कैसे देउँ नाथहिं खोरि ।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि ।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
संग-बस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि ॥
करौं जो कछु धरौं सचि-पचि सुकृत-सिला बटोरि ।
पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि ॥
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा-डोरि ।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों, बर बिराग निचोरि ॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि ।
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहिं छोरि ॥

(तुलसी विनय पत्रिका –१५८)

हे भगवन्! आपको मैं कैसे दोष दूँ? कामनाओं से घिरा हुआ हमारा यह मन आपकी भक्ति छोड़कर भटकने में लगा है। स्वयं को पुजाने में तो बड़ा प्रेम है किन्तु आपको पूजने में कुछ नहीं। हमारी मूढ़ता तो देखो, दूसरों को उपदेश देने में बहुत कुशल हो गये हैं किन्तु स्वयं किसी की शिक्षा नहीं मान सकते हैं। पाप करने में हमारा बड़ा स्नेह है किन्तु उन्हें किसी से कहते नहीं हैं परन्तु अच्छे संगवशात् एक-दो जो सुकृत बन गये हैं, उनका संसार के आगे ढिंढोरा पीटते हैं। शिलोञ्छ बीनने (खेत में पड़े दानों को बीनने) के समान अपने सुकृतों को बटोर रखा है किन्तु हे दयानिधान! यह दम्भ बलात् हमारे हृदय से उन्हें बाहर फेंक रहा है अर्थात् दम्भ से सब सुकृत नष्ट हो जाते हैं। यह लोभ हमारे मन को आशा की रस्सी से बाँधकर बन्दर की भाँति नचा रहा है तो भी हम एक विद्वान् की भाँति वैराग्य का निष्कर्ष सुनाते फिरते हैं। यह है हमारी मनःस्थिति। और भक्त की स्थिति यह है कि काल-कवलित सांसारिक वैभव तो क्या अपवर्ग भी नहीं चाहता है और एक हम हैं जो गुरु बनकर, वक्ता बनकर, रसिक बनकर, अर्चक बनकर, धर्माचार्य बनकर प्रलोभन में आशा की डोर से बँधकर संसार में नाच रहे हैं।

श्री सनकादिक के वचन –

नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं
किन्त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ।

येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः
कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥

(भा. ३/१५/४८)

हे भगवन्! आपका कीर्तनीय यश अखिल संसार के निखिल दुःखों की निवृत्ति करने वाला है। आपके चरण-शरणागत 'आपकी कथा-कीर्तन के रसिकजन' जिन्हें कथा-कीर्तन का रस मिल चुका है, वे मोक्ष भी नहीं चाहते हैं फिर कालविद्रुत स्वर्गादि के भोग व इन्द्रपद की वे क्या इच्छा करेंगे?

कथाकार को चाहिए काल कवलित सांसारिक वैभव तो क्या अपवर्ग त्याग का आदर्श रखे।

हम जैसे शुल्क स्थापित कर्ता धर्मध्वजी कथा व्यापारियों के लिये महापुरुषों ने कहा है –

वेषधारी हरि के उर सालै ।
लोभी दम्भी कपटी नट से सिस्नोदर को पालै ॥
गुरू भयो घर घर में डोलै नाम धनी को बेचै ।
परमारथ स्वपनें नहिं जानै पैसन हीं को खैंचै ॥
कबहुँक बक्ता है बनि बैठै कथा भागवत गावै ।
अर्थ अनर्थ कछू नहिं भासै पैसन ही को धावै ॥
कबहुँक हरि मन्दिरको सेवै करै निरन्तर बासा ।
भाव भक्ति को लेस न जानै पैसन ही की आसा ॥
नाचै गावै चित्र बनावै करै काव्य चटकीली ।
साँच बिना हरि हाथ न आवै सब रहनी है ढीली ॥
बिन बिवेक बैराग भक्ति बिनु सत्य न एकौ मानौ ।
भगवत बिमुख कपट चतुराई सो पाखण्डै जानौ ॥

(श्रीभगवतरसिक जी की वाणी पद सं.४)

तथा

जगत में पैसन ही की माँड़ ।

(श्रीभगवतरसिक जी की वाणी पद सं.३)

"नामहिं बेचै खाय"

(श्रीबिहारिन देव जी)

जहाँ धर्म की ध्वजामात्र है, ध्वजा के नीचे काम, लोभादि नारकीय कर्म हैं, उन धर्म ध्वजियों को देखकर नरक भी नाक सिकोड़ लेता है –

धींग धरम ध्वज धंधक धोरी ।

(रा.च.मा.बाल.१२)

सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी ॥

(रा.च.मा.बाल.२९क)

अरे, कथा-कीर्तन में शुल्क ठहराने की आवश्यकता ही कहाँ।

कथा-कीर्तन को व्यापार बनाने से अधिक नारकीय कार्य क्या होगा? अरे, भगवत्कथा तो पीयूष है, जिसके पीने से निश्चित ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है फिर इससे रोटी-दाल की प्राप्ति तो इसका उपहास है।

श्री कर्दम जी के वचन –

लोकांश्च लोकानुगतान् पशूंश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ।
परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥

(भा. ३/२१/१७)

पशुता को छोड़ दो। कथा-कीर्तन का व्यापार पशुता है। भगवत्कथा तो ऐसी सीधु (मदिरा) और ऐसी सुधा है कि भूख-प्यासादि देहधर्मों को शान्त कर देगी। क्या परीक्षित को जलान्न का स्मरण भी हुआ?

"भटकत फिरै गौड़ गुजरात"

(व्यास वाणी)

धन के लिए न जाने कहाँ-कहाँ भटकते हैं,

प्रभु पर भरोसा करके तो देखो –

भटकै मत देस-देस वेष क्यों लजावै ।
कुञ्जन के कोने पर्‌यो युगल क्यों न गावै ॥
राख विश्वास जिय पालन करिहैं श्रीराधा ।
'वंशी अलि' सत्य-सत्य पूजिहैं सब साधा ॥

धन, भोगादि प्रेय पदार्थों का अति संचय सभी अनर्थों का मूलभूत है।

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम् ।
अनन्तं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः ॥

(भा. ११/९/१)

संग्रह एक दुःखप्रद ग्रह है, जो विवेकी इस बात को जान गया वह तो अकिञ्चन बन जायेगा अर्थात् उसके जीवन से संग्रह वृत्ति ही चली जायेगी एवं अनन्त सुखधाम भगवान् की प्राप्ति हो जायेगी। संसार में अकिञ्चन बनना, गरीब बनना कोई नहीं चाहता है अतएव भगवान् से दूरी बढ़ जाती है। यह तो परम भागवत वृत्रासुर का ही साहस था।

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः ॥

(भा. ६/११/२३)

"हे नाथ! आप मेरे त्रिवर्ग का नाश कर दो"। ऐसे अकिञ्चन भक्तों को ही भगवान् की कृपा का अनुभव होता है।

'नारायण' मैं सत्य कहूँ भुजा उठाय के आज ।
जो तू बने गरीब तो मिलें गरीब निवाज ॥

पुनः

स्याम गरीबनि हूँ के गाहक ।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबाहक ॥
कहा बिदुर की जाति-पाँति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक ।

(सूर विनय पत्रिका – २०)

परम अकिञ्चन थे श्री विदुर जी जिनके हृदय में कृष्ण सेवा के अतिरिक्त और कोई अभिलाषा ही नहीं थी।

न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ।
वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनःसमृद्धयः ॥

(भा.४/९/३६)

मैत्रेय जी कहते हैं – हे विदुर जी! आपकी तरह जो लोग श्रीकृष्ण चरणारविन्द मकरंद के ही रसिक हैं, जो निरन्तर प्रभु की चरण रज का ही सेवन करते हैं एवं जिनका मन दैव गति से प्राप्त सभी परिस्थितियों में सन्तुष्ट रहता है, वे प्रभु से उनकी सेवा से अतिरिक्त अपने लिए किसी भी पदार्थ की याचना नहीं करता। ऐसे अकिञ्चन भक्तों के चिरऋणी हो जाते हैं भगवान्। अतः सूरदास जी कहते हैं –

कहा पांडव कैं घर ठकुराई? अरजुन के रथ-बाहक ॥
कहा सुदामा कैं धन हो? तौ सत्य-प्रीति के चाहक ।
सूरदास सठ, तातैं हरि भजि आरत के दुःख-दाहक ॥

(सूर विनय पत्रिका – २०)

क्या हम लोग अकिञ्चन हैं?

हम लोगों को मान-प्रतिष्ठा, धन-वैभव ......आदि की इच्छा है, यह मन की चोरी है। अभी अकिञ्चन कहाँ, चोर हैं।

विषमता एक विष

विषमता क्या है?

विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ।
विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥

(भा. ६/१६/४१)

मेरा-तेरा ही विषमता है, जो शुद्ध माया है।

मैं अरु मोर तोर तैं माया ।
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥

(रा.च.मा.अरण्य. १५)

आश्चर्य है कि चींटी से ब्रह्मा पर्यन्त सब इसी से ग्रसित हैं। जिस धर्म में मेरा-तेरा रूप वैषम्य आया, वह धर्म क्षयिष्णु है, उसे धर्म कहना भी उचित नहीं वह तो अधर्म ही है और ऐसा धर्म कभी कल्याणकारी नहीं हो सकता। कितने खेद का विषय है कि आज हमारे आध्यात्मिक सम्प्रदायों में भी कहीं-कहीं हिन्दू-मुसलमान जैसा बैर बंध गया। ये उदासी, ये संन्यासी, ये लाल वस्त्र धारी, ये श्वेतवस्त्र धारी ....

यह शुद्ध माया नहीं तो क्या?

कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ।
स्वद्रोहात् तव कोपः परसम्पीडया च तथाधर्मः ॥

(भा. ६/१६/४२)

ऐसे धर्म से क्या प्रयोजन जिसमें मेरा-तेरा का पृथक् भाव हो। पृथक् भाव से कल्याण तो नहीं समत्व दृष्टि के त्याग से स्वद्रोह एवं भेद दृष्टि से आत्म बुद्धि का त्याग रूप परसम्पीडन ही सिद्ध होता है।

जबकि भागवत धर्म कहता है –

सम्पूर्ण चराचर जगत कृष्णमय हो जाय।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ।

(रा.च.मा.उत्तर. ११२)

पुनः

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

(गी. ७/१९)

ऐसी दृष्टि, ऐसा भाव एक जन्म में कथमपि सम्भव नहीं है। कौन जाने कितने जन्म लग जाएं तो भी यह भावदृष्टि प्राप्त हो न हो।

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

(भा. ११/२/४५)

श्रीमद्भागवत जी के अनुसार उत्तम श्रेणी का भक्त वही है, जिसे अपने इष्ट के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता।

पृथक् भाव आने पर तो वे मध्यम व प्राकृत श्रेणी के हो जाते हैं।

और फिर भारतीय संस्कृति का तो सर्वोच्च आदर्श ही यही है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

आध्यात्मिक जगत पर छाये विषमता के बादल

दुर्भाग्य से आज सर्वाधिक पारस्परिक द्वेष हिन्दुओं में है। हिन्दुओं में भी विप्रवर्ग और विप्रों में भी साधु-समाज में विशेष रूप से है। जैसे सामान्य जनों में जातिवादिता, वैसे ही साधु-समाज में साधुवादिता चल पड़ी।

हिन्दू धर्म में शैव-वैष्णवों का कट्टर भेद चला। यहाँ तक भेद चला कि जिस समय श्री रामानुजाचार्य जी महाराज द्वारा भारतवर्ष में चारों ओर बड़ी तीव्र गति से वैष्णवता का प्रचार हो रहा था, चोल देश का राजा कुलोत्तुंग जो बहुत कट्टर शैव था, इसने निश्चय किया कि रामानुजाचार्य शैव धर्म स्वीकार कर लें तो ठीक है अन्यथा, मैं इनका वध करके स्वच्छंद रूप से शैव धर्म का प्रचार करूँगा। राज कर्मचारियों द्वारा श्रीमदाचार्यचरण के पास सन्देश भेजा गया कि इसी समय महाराज कुलोत्तुंग के यहाँ पहुँचें। साधु-हृदय आचार्यचरण जाने को उद्यत हो गये। आपके परम शिष्य श्री कूरेश जी कोलुत्तंग की दुष्टता से परिचित थे अतः प्रार्थना की – गुरुदेव! आपका वहाँ जाना उचित नहीं है। आप आज्ञा करें, मैं आपके बदले जाऊँगा। गुरु की आज्ञा पाते ही कूरेश जी ने आचार्य श्री रामानुज जी का रूप धारण कर लिया और चोल नरेश के दरबार में उपस्थित हुए। वहाँ शैव पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ। यह शास्त्रार्थ तत्त्वज्ञान के लिए न होकर मात्र किसी एक पक्ष को निरुत्तर करने के लिए था। श्री कूरेश जी की वाक्पटुता से विपक्षियों को पराभूत होना पड़ा। चोल नरेश यह नहीं सह सका और उसने कूरेश जी एवं श्री महापूर्ण जी- दोनों वैष्णवों की आँखें निकलवा लीं। कैसी क्रूरता .....! ये दोनों वैष्णव अब भी प्रसन्न मन से उसकी मंगल-कामना ही कर रहे थे। इस वैष्णवापराध से थोड़े ही समय बाद चोल राजा के गले में कीड़े पड़ गये। "कृमिकंठ" नामक असाध्य रोग के दुःसह दुःख में ही वह मर गया।

आज इसी विषमता के चलते सम्पूर्ण अध्यात्म जगत तेजोहीन हो गया।

सनकादिक के वचन –

न ह्यन्तरं भगवतीह समस्तकुक्षा-
वात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः ।
पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं
व्युत्पादितं ह्युदरभेदि भयं यतोऽस्य ॥

(भा. ३/१५/३३)

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तो भगवान् के उदर में ही हैं अतः विवेकी पुरुष विषमता (भेददृष्टि) न रखकर महाकाश में घटाकाश की भाँति उसमें अपना अन्तर्भाव देखते हैं। भेदभाव से अभाव होना स्वाभाविक है।

जब सामान्य जनों में भेददृष्टि अपराध है तो वैष्णवों में भेदबुद्धि, उसमें भी एक-दूसरे सम्प्रदाय, सम्प्रदायाचार्य, सम्प्रदाय-वाणी के प्रति भेदबुद्धि – यह तो प्रचण्ड अपराध है।

जहाँ भी भेद है, शुद्ध माया है।

क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः ।
शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ।
कामाग्निनाच्युत रुषा च सुदुर्भरेण ।
सम्पश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥

(भा. ३/९/८)

श्री ब्रह्मा जी के वचन – कामाग्नि असाध्य रोग है किन्तु द्वेष या भेद तो उससे भी अधिक दुर्भर रोग है अतः काम-जय करने वाले भी क्रोधाग्नि अथवा द्वेषाग्नि से दग्ध देखे गये। जहाँ भी द्वेष अथवा विषमता (भेद) है, शुद्ध माया है।

मैं अरु मोर तोर तैं माया ।
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥

(रा.च.मा.अरण्य.१५)

अनन्त जीवों में मैं-मेरा, तू-तेरा का भेद उत्पन्न करना यह माया का ही कार्य है। पशुओं में भी एक सामान्य बन्दर, लंगूर बन्दर को देखकर घुड़की देता है। इस प्रकार जीवमात्र में यह भेद व भेदजन्य विषमताएं हैं। भेद दृष्टि अपराध है, यदि भक्तों में हो जाती है तो अक्षम्य अपराध बन जाती है, जिसे भगवान् भी क्षमा नहीं कर सकते हैं। आज सर्वत्र यही अपराध हो रहा है।

ईसाई धर्म में –

एक ईसा ......एक बाइबिल धर्म ....

किन्तु लैटिन ईसाई सम्प्रदाय सीरियाई ईसाई सम्प्रदाय के गिरिजाघर में कदम नहीं रखते।

ये दोनों ईसाई सम्प्रदाय मरथोमा ईसाई सम्प्रदाय के गिरिजाघर में कदम नहीं रखते।

ये तीनों ईसाई सम्प्रदाय पेनटेकोस्ट ईसाई सम्प्रदाय के गिरिजाघर में कदम नहीं रखते।

ये चारों ईसाई सम्प्रदाय सैलेक्शन आर्मी ईसाई सम्प्रदाय के गिरिजाघर में कदम नहीं रखते।

ये पाँचों ईसाई सम्प्रदाय सेवेंथ डे ईसाई सम्प्रदाय के गिरिजाघर में कदम नहीं रखते।

ये छः ईसाई सम्प्रदाय ऑर्थोडॉक्स ईसाई सम्प्रदाय के गिरिजाघर में कदम नहीं रखते।

ये सातों ईसाई सम्प्रदाय जैकोबाइट ईसाई सम्प्रदाय के गिरिजाघर में कदम नहीं रखते।

इसी प्रकार केरल में १४६ ईसाई जातियाँ हैं परन्तु ये एक दूसरे के गिरिजाघर में कदम नहीं रखते।

यवन धर्म में –

"एक अल्लाह ...... एक कुरान, एक नेबी ...... आज कितने ही देशों में शिया और सुन्नी मुसलमान परस्पर मरने-मारने में लगे हुए हैं।

ये सब साम्प्रदायिक भेद जन्य दंगे नहीं तो क्या? शिया वाले सुन्नी सम्प्रदाय की मस्जिद में नहीं जाते। ये दोनों एक-दूसरे सम्प्रदाय की मस्जिद में नहीं जाते। ये तीनों सम्प्रदाय सूफी सम्प्रदाय की मस्जिद में नहीं जाते। ये चारों सम्प्रदाय मुजाहिरीन सम्प्रदाय की मस्जिद में नहीं जाते।

इस प्रकार मुसलमानों में १३ जाति हैं परन्तु एक-दूसरे की मस्जिद में कदम नहीं रखते।

बौद्ध धर्म में –

हीनयान, महायान आदि चार प्रकार के भेद हुए।

सर्वत्र विषमता का नृत्य हो रहा है।

यद्यपि यह विषमता, यह भेदवादिता हट नहीं सकती है, वैष्णवी माया है किन्तु अच्छा प्रयास करना कोई अनुचित नहीं है।

हमारे समाज में भी ऐसी बहुत सी बातें हैं जिन्हें भेदबुद्धि ने विवादास्पद बना दिया है। जैसे – बरसाना, वृन्दावन में ब्रज-निकुञ्जकी भेदभित्ति।

६५ वर्ष पुरानी घटना है, पूज्य बाबा महाराज एक बार श्री वृन्दावन धाम में एक स्थान पर गये। आश्रम निवासी किन्ही सन्त ने पूछा – आप कहाँ विराजते हैं? बरसाने विराजते हैं – पूज्य बाबा महाराज ने कहा। अच्छा तो ब्रज से आये हो – सन्त ने कहा। तब ज्ञात हुआ कि बरसाना के प्रति ब्रज की मान्यता है व वृन्दावन के प्रति निकुञ्ज की अर्थात् बरसाना ब्रज है और वृन्दावन निकुञ्ज है। यह जानकर पूज्य श्री का हृदय बहुत व्यथित हुआ।

क्या ब्रज और वृन्दावन भिन्न है?

यही है विषमता रूप विष।

रसिक जनों ने तो कहा –

"नायक तहां न नायिका रस करवावै केलि"

अर्थात् जहाँ नायक-नायिका का तो कथनमात्र भेद है, बाकी है तो सब रस ही।

बात केवल ब्रज और निकुञ्ज की ही नहीं है जैसे –

ठाकुर जी का मुकुट बाँई ओर झुका रहे या दाँई ओर?

इसमें भी पारस्परिक वैमत्य है एक पक्ष कहता है बाँई ओर दूसरा पक्ष कहता है दाँई ओर। भला यह भी कोई विवाद का विषय है?

जिसका जैसा भाव हो वैसा कर ले किन्तु इसी बात को लेकर लगभग १०० वर्ष पूर्व मुकदमा तक हो गया। उस समय न्यायाधीश के पद पर कोई अंग्रेज था, वह भी लम्बे समय से चल रहे इस मुकदमे से व्यथित था।

अन्त में उसने निर्णय दिया कि मुकुट न बाँई ओर रहेगा न दाँई ओर, अपितु सीधा रहेगा। समाप्त करो यह मुकदमा।

इसी प्रकार स्वकीया, परकीया में भी कलह है।

श्रीमद् राधासुधानिधि को लेकर विवाद है। गौड़िय वैष्णव कहते हैं यह हमारा ग्रन्थ है, राधा वल्लभीय वैष्णव कहते हैं हमारा है।

गौड़ीय वैष्णव कहते हैं कि श्रीनाथ जी के प्राकट्यकर्ता श्री माधवेन्द्र पुरी जी हैं एवं वल्लभकुलीय वैष्णव कहते हैं कि प्राकट्यकर्ता श्रीवल्लभाचार्य जी हैं। ऐसी बहुत सी बातें हैं, जिन्हें हमने अकारण कलह का कारण बना रखा है। (समन्वय द्रष्टव्य है "रसीली ब्रज यात्रा भाग-१")

क्या यही वैष्णवता है?

भागवत धर्म तो कहता है –

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।

तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥
द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥
अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे ।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥

(भा. ३/२९/२१, २२, २३, २४)

यदि किसी की उपेक्षा, अवज्ञा, अपमान और द्वेष करते हो तो सब भजन-साधन विडम्बना मात्र होगा, राख में किये हुए हवन के समान व्यर्थ होगा, यही नहीं प्रभु को अशान्ति प्रद होगा, असन्तोष कारक होगा और प्रभु को असन्तोष कारक होने से वह अधर्म मात्र ही होगा।

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां
हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।

(भा. ४/३१/२१)

श्री नारद जी के वचन – कुमनीषियों का ऐसा भजन भगवान् कभी स्वीकार नहीं करते हैं। इन्हीं सब कारणों से आज प्रायः वैष्णव समाज तेजोहीन हो नारकीयता को प्राप्त कर रहा है।

ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया
भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ।
द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्
गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥

(भा. ३/१६/१०)

स्वयं भगवान् कह रहे हैं – भक्त ब्राह्मण, दूध देने वाली गाय व अनाथ प्राणी, इनको जो भेद बुद्धि से देखते हैं वे निश्चित ही नरकगामी हैं, उन्हें परिणाम में भयानक नारकीय यातनाएं भोगनी पड़ेंगी। भेद बुद्धि रूप पाप में फंसने से उनके अन्तःचक्षु तो फूट ही चुके हैं। अन्तः चक्षु अर्थात् –

स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥

(भा. ४/३/१७)

अन्तःकरण की चेतना ही शुद्ध स्मृति है, अर्थात् चेतना ही वास्तविक दृष्टि है। अहंकार से यह स्मृति रूप दृष्टि दूषित हो जाती है और अन्धता आ जाती है। संसार में अधिकांश सब दृष्टिविहीन लोग हैं। कैसे आती है यह अंधता?

इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ।
चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥

(भा. ४/२२/३०)

मन ने बुद्धि की चेतना की चोरी की, चेतना के जाने पर स्मृति नष्ट हो गयी। स्मृति नाश अर्थात् ज्ञान का नाश हो गया।

अहं से चेतना की हानि

आत्मा का शुद्ध प्रकाश ही चेतना है, जो भगवद्-रूप है।

"भूतानामस्मि चेतना ॥"

(गी. १०/२२)

भगवान् बोले – इन्द्रिय, मन एवं प्राणीमात्र की जीवनशक्ति चेतना के रूप में मैं ही विद्यमान हूँ।

यह चेतना कहाँ रहती है?

कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ।
तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥
तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ।
ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्च्छितस्य मृतस्य च ॥

(भा. ११/२१/२०, २१)

चेतना सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ सब इसी से संचालित हैं। चेतना के न रहने पर मनुष्य मूर्च्छित अथवा मृत हो जाता है। चेतना के अभाव में न आँख देख सकती है, न कान सुन सकता है .... ।

अतः चेतना (स्मृति) का नाश सर्वनाश है।

चेतनाहीन व्यक्ति न स्वार्थ सिद्ध कर सकता है, न परमार्थ ही।

अहं से स्मृति (चेतना) का नष्ट होना जीव की परम हानि है। स्मृतिनाश होने पर वह महज्जनों की महिमा भूल जाता है और महद् अपराध करने लगता है।

आज चेतनाहीन हम लोग अहर्निश अपराध में लगे हुए हैं। मेरे आचार्य, मेरा सम्प्रदाय शेष सबसे विद्वेष। यह अनन्यता के धोखे में एक अपराध की नूतन परम्परा का पोषण हो रहा है। जिसका परिणाम है वहिर्मुखता की परावधि को प्राप्त होना।

अनन्यता-निष्क्रियता-बहिर्मुखता

यह बहुत गम्भीर व चिन्तनीय विषय है। बहुधा अनन्य भी बहिर्मुख हो जाते हैं। ये निष्क्रियता एवं बहिर्मुखता धामोपासना में सबसे बड़ी बाधा है। इस बहिर्मुखता का कारण है – "अदक्षता"। **अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।** (गीता १२/१६) भक्त को दक्ष होना आवश्यक है।

बड़े-बड़े विरक्त भी पतित हो जाते हैं, क्यों?

क्योंकि अदक्षता में विरक्ति का अर्थ कर्म त्याग ही समझ लेते हैं और प्रमाद ग्रस्त हो जाते हैं। जबकि श्रीकृष्ण की आज्ञा है कि प्रत्येक मनुष्य को नियत कर्म अवश्य ही करने चाहिए। कर्म त्याग का आदेश भगवान् ने कहीं नहीं दिया, फल त्याग के विषय में अवश्य अनेक बार कहा है किन्तु विपरीत ही होता है। मनुष्य फल त्याग तो करता नहीं कर्म त्याग कर बैठता है। **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।** (गीता २/४७) "कदाचन" अर्थात् किसी भी स्थिति में कर्म त्याग व फलाकांक्षा मत करना। भूख-प्यास से प्राण कंठगत भी हो जाएँ तो भी जल-भोजन की इच्छा न करना।

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाधनो धनम्।
अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा॥

(भा. ७/१५/१५)

धर्म के लिए भी धन की कामना का निषेध किया गया है। यही है विशुद्ध भागवत धर्म। प्रथम तो कुशल-अकुशल कर्मों को समझना ही कठिन है फिर कुशल कर्मों में प्रवृत्ति एवं अकुशल से निवृत्ति तो बहुत आगे की बात है।

बहिर्मुखता क्या है?

इन्द्रियों से लौकिक शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध का ग्रहण ही बहिर्मुखता है।

बाह्यस्पर्शेश्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्। (गीता ५/२१) आत्मसुख तो अन्तर्मुखता में है। बाह्य वस्तु-पदार्थों से जब मन असम्पृक्त रहेगा तो अन्तर्मुखता आएगी अन्यथा बाह्ययोग के रहते ब्रह्मयोग तो असम्भवही है। महाप्रयाण काल में श्रीमदाचार्य वल्लभ महाप्रभु का अपने पुत्रों को अन्तिमोपदेश –

यदा बहिर्मुखो यूयं भविष्यथ कथंचन।

तदाकाल प्रवाहस्था देहचित्तादयोऽप्युत ।
सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मानिति मतिर्मम् ॥

यदि तुम किसी भी प्रकार से बहिर्मुख हो जाओगे तो काल-प्रवाह में स्थित देह तथा चित्त आदि तुम्हें पूर्ण रूप से खा जाएंगे।

प्रमाद से आती है बहिर्मुखता –

श्री ऋषभदेव के वचन –

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।

(भा.५/५/४)

इन्द्रिय प्रीत्यर्थ किये जाने वाले समस्त कर्म विकर्म हैं।

प्रमाद में विकर्म होते हैं। विकर्म २ प्रकार के हैं –

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः
कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां
सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥

(भा. ३/९/१७)

कुशल कर्मों का त्याग एवं अकुशल (निषिद्ध) कर्मों में प्रवृत्ति। कुशल कर्म क्या है? 'त्वदुदिते' अर्थात् आपके द्वारा उक्त भागवत धर्म रूप आराधना ही कुशल कर्म है। आराधना रूप कर्मों का त्याग एवं इतर कर्मों को करना, दोनों ही विकर्म हैं। दोनों का दुष्परिणाम है – 'काल' अर्थात् मृत्यु।

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥

(भा. ५/५/४)

प्रमाद ही वह दोष है, जिससे मनुष्य विकर्म करता है। इस विकर्ममयी प्रवृत्ति से ही आत्मा को यह दुःखप्रद शरीर प्राप्त होता है। कथनाशय- प्रमाद जब तक है, विकर्म होंगे एवं विकर्म से बहिर्मुखता अवश्य आएगी।

यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥
पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ।
अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति ॥

(भा. ५/५/७, ८)

स्वार्थ में मूढ जीव विषय-भोगों को सत्य समझता है। आत्मस्वरुप को भूल जाने से अज्ञानवश गृह, धनादि में आसक्त हो अनेक कष्ट पाता है। दाम्पत्य व देहाभिमान की स्थूल-सूक्ष्म दुर्भेद्य ग्रन्थियों में बंधे हुए उस जीव को 'मैं-मेरेपन' का मोह और हो जाता है।

ध्यान रहे, प्रमाद कैसा भी है, बहिर्मुख बना ही देगा।

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥

(भा. १/८/२६)

बहिर्मुखता भी ऐसी कि भगवद्-उपासना तो दूर भगवान् का एक नाम भी नहीं ले सकोगे। जैसे रावण के मुख से कभी राम-नाम नहीं निकला, रामजी के लिए 'तपसी' शब्द का प्रयोग करता था।

हनुमान जी ने कहा भी –

राम नाम बिनु गिरा न सोहा ।
देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ॥

(रा.च.मा. सु. २३)

रावण ! राम-नाम के बिना वाणी की शोभा नहीं है। मद-मोह छोड़, विचार करके देख।

रावण बहुत बड़ा तपस्वी व शिवोपासक था किन्तु मद व प्रमाद से अत्यन्त निकृष्टता को प्राप्त हो गया।

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥

(भा. ८/२२/२६)

स्वयं भगवान् कह रहे हैं – अच्छे कुल में जन्म, सत्कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य एवं धनादि से स्तम्भ (ऐंठ) भाव आता है। स्तम्भ न होना ही मेरी वास्तविक कृपा है।

यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥

(भा. ८/२२/२४)

मद से स्तम्भ आता है और फिर वह मनुष्य, भक्त व भगवद् अवमानना से अपराधी बन जाता है।

मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः ।
सर्वश्रेयःप्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥

(भा. ८/२२/२७)

ध्यान रहे, अहं व स्तम्भ की उत्पत्ति श्रेय के समस्त मार्ग बन्द कर देगी।

अतः अनन्यता का मद न करें सामान्य से सामान्य भक्त के अपराध से भी सावधान रहें। रसिकों ने कहा है –

अब हौं कासौं बैर करौं ।
प्रानी सब समान अवलोकौं, भक्तनि अधिक डरौं ॥

(श्रीबिहारिनदेव जी-सिद्धांत के पद-९८)

पुनः

भक्त साधारण के अपराधहि कांपत डरनि हियो ॥

(श्रीबिहारिन देव जी-सिद्धांत के पद-५८)

पुनः

श्रीबिहारीदास सौं ऐंठि चलत सठ विषइनि कै द्वारै छंद बंदा ॥
घर घर फिरत उगाहत चंदा ।

(श्रीबिहारिन देव जी की वाणी-९१)

पुनः

कहा कियें अंहकार बिपति आपदा गहि घेरे ॥

(श्रीबिहारिन देव जी की वाणी-९२)

अहं से स्मृति का नाश होने पर भगवद् स्मृति नहीं रहती, मैं साधु, मैं विरक्त, मैं सन्यासी, मैं अनन्य .... अशुद्ध स्मृति ही रह जाती है ।

श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु जी के वचन –

नाहं विप्रो न च नरपति-र्नापि वैश्यो न शूद्रो,
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।
किन्तु प्रोद्यन्निखिल-परमानन्द-पूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दास-दासानुदासः ॥

प्रत्येक साधक यह सोचे कि मैं न ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय, न वैश्य, न शूद्र, न ब्रह्मचारी, न गृहस्थी, न वानप्रस्थी, न सन्यासी किन्तु निखिल परमानन्द के पूर्ण अमृत समुद्र गोपिकाकान्त के दासों के दासों का दास हूँ। वृत्रासुर ने भी भगवान् से दासानुदास बनने की ही याचना की थी –

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासोभवितास्मि भूयः ।

(भा. ६/११/२४)

अथवा

सन्तनि की पनहीं को रच्छक कहाऊँ ।

(श्री सूरदास मदनमोहन जी)

ईशमानिता में डूबे हम लोग अभी दासानुदास की स्थिति से सुदूर हैं।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥

(गी. १६/१४)

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को शासक, ईश्वर समझता है। एक छोटी सी कुटिया में रहने वाला विरक्त भी स्वयं को उस कुटिया का मालिक मानता है। मैं ईश्वर हूँ, मालिक हूँ, बलवान हूँ........ये सब आसुरी भाव हैं।

आसुरी भाव क्या है?

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥

(गी. १६/१७)

आत्मसम्भावना (अपने को कुछ समझना) ही आसुरी भाव है, धन और मान से मद और फिर आत्मसम्भावना आ जाती है।

श्रीकृष्ण कहते हैं –

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

(गी. १६/१८, १९, २०)

अहंकार, बल, दर्प, कामना, क्रोध, निंदा, द्वेष .... ये सब आसुरी भाव हैं, जो अनादिकाल से हम लोगों में भरे हुए हैं। ऐसे लोगों को मैं तिरस्कार पूर्वक आसुरी योनि में फेंक देता हूँ, जिससे असुर बनकर वे जन्म-जन्मान्तर तक मुझे प्राप्त न कर सकें।

ऐसे नराधमों का, किसी जन्म में कल्याण नहीं होता है। मद इतना सूक्ष्म होता है कि इसे जीव जान ही नहीं पाता फिर दूर करना तो बहुत कठिन है।

भगवान् ने भगवद्गीता १६/१६ में कहा कि दम्भ व मान मिलकर मद उत्पन्न करते हैं पुनः १६/१७ में कहा कि धन व मान से मदोत्पन्न होता है।

न केवल मनुष्य, सुरासुर सब मद से ग्रसित हैं। हिरण्यकशिपु त्रिलोक विजयी था। एक प्रकार से भगवान् ही बन चुका था। उसने प्रह्लादको कहा –

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥

(भा. ७/८/१३)

अभागे! किसे ईश्वर मानता है? मैं ही जगदीश्वर हूँ।

तब भगवान् ने उसका वध कर 'मैं' को समाप्त किया। हिरण्यकशिपु तो असुर ठहरा, - सृष्टि कर्ता ब्रह्मा भी फंस गये 'मैं' के चक्कर में।

विधि को हुआ गर्व –

ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः ।
यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥

(भा. ३/९/३५, ३६)

श्री भगवान् के वचन –

ब्रह्मा जी! आप सृष्टि के आदि ऋषि हैं, अनन्त जीवों के सृष्टा होते हुए भी रजोगुण के बंधन से मुक्त हैं। मुझ दुर्बोध ईश्वर को भी आपने जान लिया है। स्वयं भगवान् भी जिन ब्रह्मा जी की प्रशंसा कर रहे हैं उन्हें गर्व हो गया और ग्वाल, गो-वत्सों का हरण कर अपराध कर बैठे।

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥
अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत् पृथगीशमानिनः ।
अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥

(भा.१०/१४/९, १०)

ब्रह्मा जी ने कहा – प्रभो! मेरी मूढ़ता तो देखो। आपके ऊपर अपनी माया फैला कर मैंने अपना ऐश्वर्य दिखाना चाहा, भला विशाल तेजोपुञ्ज के सामने चिनगारी अपना प्रकाश दिखाना चाहे तो क्या सम्भवहै? भगवन्! मैं रजोगुण से उत्पन्न आपको समझ न सका स्वयं को जगत्कर्ता, जगदीश्वर समझ मायाकृत मोह के घोर तम में अन्धाहो गया था। आप मुझे अपना दास समझ कर क्षमा कर दें। मदान्धता में ईश विमुखता और अत्यन्त प्राकृत भाव (नास्तिकता) आ जाता है जिससे वह साक्षात् भगवान् की अवमानना करने लगता है। ब्रह्मा जी के द्वारा भगवान् की भगवत्ता का परीक्षण अवमानना ही थी अतः यह न भूलें कि यह ईशमानिता देवों में भी रहती है।

देवराज को हुआ गर्व –

तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ।
लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥

न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ।
मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥

(भा. १०/२५/१६, १७)

लोकेशमानिता से इन्द्र भी मूढ़ता को प्राप्त हो गए। यद्यपि देवता सद्भाव युक्त (सत्वगुण प्रधान) हैं किन्तु ईशविस्मय से असद्भाव (दुष्ट भाव) को प्राप्त हो जाते हैं। महाराज खट्वांग ने स्वर्ग छोड़ दिया क्योंकि – **'इयं स्वर्गभूमी रजोधिका। कर्मभूमिः पृथ्वी'** (श्रीधरी टीका २/१/१३) स्वर्ग तो क्या ब्रह्मलोक पर्यन्त सब गुणमय, मायामय लोक हैं। यद्यपि देवों की प्रार्थना पर भगवान् का अवतार हुआ किन्तु वे अजितात्मा देव भी भगवच्चरणों को ढूँढ़ते रहते हैं।

'अजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।'

(भा. ११/२/५३)

यदि इन्द्रिय, मन, बुद्धि विक्षिप्त हैं तो देवत्व प्राप्त करने पर भी कुछ उपलब्धि नहीं होगी।

ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ।
न विन्दन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥

(भा. ९/९/४६)

महाराज खट्वांग ने कहा – जिनके मन, इन्द्रियाँ विषयों में ही भटक रहे हैं वे सत्वगुण प्रधान देवता होने पर भी अपने हृदय में विराजमान आत्मरूप भगवान् को नहीं जान सकते हैं फिर जो रजोगुणी एवं तमोगुणी हैं, वो तो जान ही कैसे सकते हैं।

ईशमानिता से अपनी पूजा बंद होने पर इन्द्र को कोप हुआ।

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥
वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥

(भा. १०/२५/३, ५)

मदान्धता में इन्द्र ने कहा – इन गँवारों को देखो, कैसा धन मद हो गया है इन्हें। वनचर होकर देवों का तिरस्कार कर रहे हैं। कृष्ण वाचाल है, बालक है, अभिमानी है, मूर्ख होकर स्वयं को बहुत बड़ा ज्ञानी समझता है, परन्तु इन ब्रजवासियों को देखो, उस मूर्ख की बातों में आकर देवापराध कर रहे हैं।

माया की कैसी विचित्रता है। जिसके पास पाँच रुपये हैं, वह अपने को पाँच रुपये का मालिक मानता है और अरबों की सम्पत्ति वाला स्वयं को अरबों का मालिक मानता है। ईशता (मालकियत) का भाव दोनों में है। पाँच रुपये रखने वाला भी ईशमानी है और एक

अरबपति भी ईशमानी है। एक कमरे में रहकर गुजर करने वाला एक साधारण गृहस्थ भी ईशमानी है और एक आश्रम का महन्त भी ईशमानी है। दोनों में कोई अंतर नहीं है। स्वर्ग का देवता हो गया तो क्या, ईशमानिता ने इन्द्र को भी न छोड़ा ।

इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ।
नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥
विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ।
तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥
स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ।
जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥

(भा. १०/२५/८, ९, १०)

प्रलयंकारी मेघों के बंधन खोल दिए। बस, फिर क्या था, अतिवृष्टि, अतिवात, विद्युतपात, तुषारपात होने लगा।

ब्रजवासियों को प्राण संकट की स्थिति में देखकर प्रभु ने प्रतिविधि की। गिरिराज जी को छत्रवत् धारण कर ब्रजवासियों की रक्षा की क्योंकि –

गरब न कीजै बावरे हरि गरब प्रहारी ।
गरबहिं ते रावण गया, पाया दुख भारी ॥
जरन खुदी रघुनाथ के, मन नाहिं सुहाती ।
जाके हिय अभिमान है, वाकी तोरत छाती ॥
एक दया और दीनता, ले रहिये भाई ।
चरन गहौ जाय साधु के, रीझै रघुराई ॥
यही बड़ा उपदेश है, पर द्रोह न करिये ।
कहे 'मलूक' हरि सुमिरि के, भवसागर तरिये ॥

(श्रीमलूकदास जी)

अथवा

'गरब गोविन्दहि भावत नाहीं'

(सूर विनय पत्रिका-२८२)

जिसमें भी ईशमानिता है उसका विनाश है फिर वह साधु हो अथवा देवता।

भूलो मत,

'जाके हिय अभिमान है, ताकी तोरत छाती'

भगवान् ने इन्द्र का गर्व भंजन किया। सात दिन तक अनवरत् वृष्टि होने के बाद प्रलयकालीन मेघों का जल समाप्त हो गया।

कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ।
निःस्तम्भो भ्रष्टसङ्कल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥

(भा. १०/२५/२४)

श्री भगवान् की योगमाया का यह प्रभाव देखकर इन्द्र अतिविस्मित हो गए। अपना संकल्प पूर्ण न होते हुए देखकर उनकी सब हेकड़ी जाती रही फिर तो मेघों को अपने आप वर्षा करने से रोक दिया।

वस्तुतः भगवान् साधन से प्रसन्न नहीं होते हैं। दण्डकारण्य के ऋषियों ने क्या कम साधन किया था –

रघुबर! रावरि यहै बड़ाई ।
थके देव साधन करि सब, सपनेहु नहिं देत दिखाई ।
केवट कुटिल भालू कपि कौनप, किये सकल संग भाई ॥
मिलि मुनिवृन्द फिरत दंडक वन, सो चरचो न चलाई ।
बारहि बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई ॥
यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई ।
दीनदयालु दीन तुलसी की, काहू न सुरति कराई ॥

(तुलसी विनय पत्रिका – १६५)

अथवा

नाऊ जात चमार जुलाहे, छीपा हरि दुलराये ।
मत्सर बाढ़यो भट्ट गुसांइन, स्वामी व्यास कहाये ॥

(व्यास वाणी)

निरभिमानिता से सेन, रैदास, कबीर, नामदेव को भगवान् का स्नेह प्राप्त हुआ और उच्च वर्ण, कुलोत्पन्न भट्ट, गोस्वामियों को मात्सर्य के अतिरिक्त क्या प्राप्त हुआ?

प्रह्लाद जी कह रहे हैं –

मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजस्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥

(भा. ७/९/९)

हे नाथ! मेरी तो यह दृढ़ मान्यता है कि धन, कुलीनता, विद्या, रूप, तप, तेज, ओज, प्रभाव, पौरुष, बुद्धि, योग आदि दैवीय गुण भी भक्त वत्सल भगवान् को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं है। केवल भक्ति ही आपके सन्तोष का हेतु है –

श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के वचन –

न हि साधन सम्पत्या हरिस्तुष्यति कस्यचित् ।
भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधनम् ॥

(सुबोधिनी कारिका)

वस्तुतः साधन सम्पत्ति (ज्ञान, वैराग्यादि....) से भगवान् प्रसन्न नहीं होते, वे केवल दैन्य से प्रसन्न होते हैं अतः दीन बनो।

श्रीशंकर जी कह रहे हैं –

विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैःसतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥

(भा. ४/३/१७)

बिना दीनता के विद्या, तप, धन, अच्छा शरीर, युवावस्था और उच्च कुल मिल भी गया तो उससे केवल अभिमान ही बढ़ेगा, जिससे विवेक शक्ति का नाश हो जाएगा।

'दया दीनता दास भाव बिन मिलैं न कुँवर कन्हाई ।'

(व्यास वाणी)

साधु हो अथवा विद्वान, मान (अभिमान) चेतना को दूषित कर देगा। ऐसा देखा गया है कि ऊँची-ऊँची स्थितियों पर पहुँचने के पश्चात् भी मदोत्पन्न हो जाता है।

सेवा-धर्म की पराकाष्ठा पर पहुँचे भक्त श्रेष्ठ श्रीहनुमान जी को भी गर्व हो गया।

राम चरन सरसिज उर राखी ।
चला प्रभंजनसुत बल भाषी ॥

(रा.च.मा.लंका. ५६)

हनुमान जी का गर्व भंजन करने के लिए राम जी बहुधा भरत जी की प्रशंसा किया करते थे। अतः जब लक्ष्मण जी को मूर्छावस्था में देखा तब प्रभु बोले लक्ष्मण! भरत होता तो तुम्हारी यह दशा न होती।

गोपायतीह भरतस्तु ममानुजः किं यस्त्वामधिज्य धनुरुद्यतशक्तिपातात्

(हनुमन्नाटक)

यह सुनकर कपिश्रेष्ठ सोचते ऐसा न जाने क्या है भरत जी में। जिस समय संजीवनी बूटी लाने को हनुमान जी चले हैं तो सगर्व बोले –

हनुमान सविस्मयो रामम् हनुमति कृतप्रतिज्ञे यमोप्ययमः ।
पातालतः किमु सुधारस मानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि ।
उद्दण्डचण्ड किरणं ननु वारयामि कीनाशपाशमनियं किमु चूर्णयामि ॥

(हनुमन्नाटक)

भगवन्! आप कहें तो वस्त्र की भाँति चंद्रमा को निचोड़कर अमृत ले आऊँ, आप कहें तो पाताल फोड़कर नागों को मारकर उनका अमृत कुण्ड ले आऊँ, मुझे अधिक समय नहीं लगेगा, आप आज्ञा तो दें।

संजीवनी बूटी लाते समय भरत जी के बिना फर के बाण से जब हनुमान जी भूमि पर गिरे, तो वहाँ भरत जी ने कहा –

चढ़ु मम सायक सैल समेता।
पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥

(रा.च.मा.लंका. ६०)

हे तात! आप पर्वत सहित मेरे बाण पर चढ़कर अविलम्ब कृपाधाम श्रीराम जी के निकट पहुँच जाएंगे। यह सुनकर पुनः हनुमान जी को गर्व हुआ।

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना।
मोरें भार चलिहि किमि बाना॥

(रा.च.मा.लंका. ६०)

अरे, मेरे भार से बाण कैसे चलेगा?

दूसरे ही क्षण भगवान् के अचिन्त्य प्रभाव का स्मरण हुआ और गर्व नष्ट हुआ फिर तो हनुमान जी ने भरत जी को भी प्रभु शब्द से सम्बोधित किया।

तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरन्त।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत॥

(रा.च.मा.लंका. ६०)

अब तो हनुमान जी राम जी को भी भूलकर भरत जी का स्मरण करते हुए जा रहे हैं।

भरत बाहु बल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥

(रा.च.मा.लंका. ६०)

सत्य तो यह है –

अति प्रचंड रघुपति कै माया।
जेहि न मोह अस को जग जाया॥

(रा.च.मा.बाल. १२८)

पुनः

अतिसय प्रबल देव तब माया।
छूटइ राम करहु जौं दाया॥

(रा.च.मा.किष्कि. २१)

नारद जी को हुआ गर्व –

नारद कहेउ सहित अभिमाना ।
कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥

करुणामय भगवान् ने किया उपचार –

करुनानिधि मन दीख बिचारी ।
उर अंकुरेउ गरब तरु भारी ॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी ।
पन हमार सेवक हितकारी ॥

(रा.च.मा.बाल. १२९)

पराकाष्ठा का रस प्राप्त करने के बाद भी ब्रजगोपियों को मद हो गया।

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ॥

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥
तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥

(भा. १०/२९/४६-४८)

रास में अभी-अभी जो गोपियाँ श्रीकृष्ण को मनोनुकूल नचाने का सुख प्राप्त कर रही थीं, जहाँ रस का उद्दाम प्रवाह था, वहाँ उन गोपिकाओं को सौभाग्यमद हो गया, मद आते ही श्रीकृष्ण उन्हें छोड़कर चले गये, अन्तर्धान हो गये और तब श्रीराधारानी की आधीनता स्वीकार करने पर मद से निवृत्ति हुई। यह इष्ट का अपार अनुग्रह था। यह अनुग्रह कब होगा?

येषां स एष भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥

(भा.२/७/४२)

जब निष्कपट भाव से सर्वस्व उनके चरणों में समर्पित कर दिया जाएगा, ऐसी शरणागति के बाद ही दया होगी और उस दया से निश्चित ही दुरत्यय माया से मुक्त हो जाओगे। मायामुक्त मनुष्य की पहिचान है कि फिर श्वान व सियारों के भोजन रूप अपने और स्त्री, पुत्रादि के शरीर में ममाहम् बुद्धि नहीं रहेगी।

श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु ऐसे समय में जब वे अपनी माँ के एकमात्र पुत्र थे, उनके अग्रज गृहत्याग कर चुके थे, अनन्तर आप भी अपनी पत्नी विष्णुप्रिया जी व बिलखती वृद्धा शची माता को छोड़कर चले गये। कितना कठोर है वैराग्य धर्म! यती धर्म लेने के बाद श्रीमन्महाप्रभु जी जब नदिया आये तो विरहणी विष्णुप्रिया जी से सहानुभूति की दो बातें भी नहीं की, केवल अपनी चरण पादुका छोड़कर चले गये, मूर्च्छित माँ की ओर मुड़कर भी न देखा। ममता का त्याग बहुत कठिन है, देखने में लगता है दयाशून्य हो गये हैं । वृद्धा माँ को छोड़ा, रोती-बिलखती युवती को छोड़ा। संसार को यह दिखाया कि परमार्थ-पथ पकड़ने के बाद ममताशून्य होना परमावश्यक है। हम लोग घर छोड़ते हैं तो आश्रम में ममता कर लेते हैं। एक विरक्त भी जिस कमरे में रहता है, उसमें उसकी ममता हो जाती है। इसलिए यतीधर्म में एक वृक्ष के नीचे एक ही रात सोने का नियम है। एक से अधिक रात रहोगे तो उस वृक्ष में भी ममता हो जायेगी।

ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहम्भरवार्तिकेषु ।
गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥

(भा. ५/५/३)

भगवत्कृपा प्राप्ति के लिए अहंता-ममता का त्याग करना होगा। शरीरपोषियों से, धन, घर, स्त्री-सुतादि से ममता को मिटा दो। सम्बन्ध रखना भी है तो प्रयोजनमात्र रखो।

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अञ्जन कहा आँख जेहि फूटै, बहुतक कहौ कहाँ लौं ॥

(तुलसी वि.प.पद सं.१७४)

'तुलसी ममता राम सों समता सब संसार'

ब्रह्मा जी के वचन –

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥

(भा. ३/९/६)

यह धन, घर, बन्धुजनों के प्रति मैं-मेरेपन का दुराग्रह ही भय, शोक, इच्छा, दीनता और विपुल लोभ के रूप में अनन्त कष्ट प्रदान करता है। यही नहीं, जहाँ भी ममता है, उसके सभी शुभाशुभ कर्म तुम्हें भोगने पड़ेंगे।

ममैते मनसा यद्यदसावहमिति ब्रुवन् ।
गृह्णीयात्तत्पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥

(भा. ४/२९/६२)

पाप कर रहा है पुत्र और भोग रहे हैं माता-पिता क्योंकि पुत्र के प्रति मेरेपन की भावना है। यही नहीं, ममता बढ़ते-बढ़ते अहंता बन जाती है। फिर पुत्र का सुख तुम्हें सुखी करता है व दुःख दुखी करता है।

मेरी स्त्री, मेरा पुत्र कहते–कहते स्त्री-पुत्र के शुभाशुभ कर्म तुम्हारे ऊपर आ गये, अब इन्हें भोगने के लिए बार-बार जन्म-मृत्यु रूप संसृति चक्र में पड़े रहो। सैकड़ों स्थानों पर ममता हो जाती है अतः वहाँ से मुक्त होना तो उसके लिये असम्भव ही हो जाता है।

किसी का पुत्र उत्पथगामी है, शराबी है, चोर माता-पिता ममतावश उसे छोड़ नहीं पाते हैं और उसका पालन-पोषण करके अपने लोक-परलोक की हानि करते हैं। विदुर जी ने धृतराष्ट्र को यही कहा था –

स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते
गृहान् प्रविष्टो यमपत्यमत्या ।
पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्री-
स्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥

(भा. ३/१/१३)

भैया धृतराष्ट्र! एक दुर्योधन को छोड़ने से सम्पूर्ण कुल का मंगल हो जाएगा किन्तु धृतराष्ट्र ममता का त्याग नहीं कर सके और सर्वनाश हो गया।

"कचस्पर्शक्षतायुषः"

(भा. १/८/५)

दुर्योधन-दुःशासन का पाप केवल कौरवों को ही नहीं, सारे हस्तिनापुर को भोगना पड़ा।

"सीताभिमर्शहतमङ्गलरावणेशान्"

(भा. ९/१०/२०)

एक रावण का अपराध असंख्य असुरों सहित सारी लंका को भोगना पड़ा।

इसी प्रकार किसी सम्प्रदाय विशेष में ममत्व रखकर अन्य सम्प्रदाय से द्वेष करने का परिणाम समग्र समाज को भोगना पड़ता है।

नया ताण्डव देखो –

लगभग १९१९ के विश्वयुद्ध में एक करोड़ लोग मारे गये व दो करोड़ लोग घायल हुए। १९३७-४५ के विश्वयुद्ध में सात करोड़ लोग मरे और यदि अब विश्व युद्ध हुआ तो हो सकता है मानव जाति ही न बचे। हर देश शस्त्रों से सशक्त है। हिरोशिमा, नागासाकी में एक अणु बम गिरा था, आज हर देश अणु बम लिए बैठा है। विश्व युद्ध का कारण ही है – "मैं-मेरा, तू-तेरा"।

**एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्यामन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ।
पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥**

(भा. ७/९/४१)

प्रह्लाद जी कह रहे हैं – इस जीव की मूढ़ता तो देखो। किसी में स्वबुद्धि (मेरापन) करता है और किसी में परबुद्धि (तेरापन) आज घर-घर में मेरा-तेरा का देवयानी और शर्मिष्ठा जैसा कलह है। मेरा तेरा होता है शरीर व धन के कारण।

**देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥**

(पद्मपुराणोक्त भा.माहा. ४/७९)

गोकर्ण ने कहा – पिताजी! अस्थि, माँस, रुधिर के पिण्ड रूप शरीर से "मैं" एवं स्त्री, पुत्रादि से "मेरापन" हटाओ। अहंता-ममता से राग हटाकर वैराग्य में राग करो, इसी में कल्याण है।

उत्तम भक्त कौन?

**न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥**

(भा. ११/२/५२)

जो धन व देह में 'यह अपना है और यह पराया' – ऐसा भेद-भाव ही नहीं रखता है, सर्वत्र एक भगवान् को देखता है एवं सर्वदा शान्त रहता है, वह उत्तम भक्त है।

नरसी जी कहते हैं –

"सकल लोक मां सहुने वन्दे, निन्दा करे न केनी रे"

सम्पूर्ण जगत की वन्दना करो, किसी की भी निंदा मत करो।

**कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ।
स्वद्रोहात् तव कोपः परसम्पीडया च तथाधर्मः ॥**

(भा. ६/१६/४२)

आज सर्वत्र स्व-पर "मेरा-तेरा" की बुद्धि लेकर चलने वाले हम लोग भेद को ही रस मान बैठे हैं। कैसी वञ्चना! जब तक विषयों से पूर्णतया वैराग्य नहीं हुआ है, तब तक रस प्राप्ति तो क्या इस मार्ग को देख भी नहीं सकेंगे।

राम प्रेम पथ पेखिये दिये विषय तन पीठि ।
तुलसी केंचुरि परिहरें होत साँपहू दीठि ॥

(दोहावली)

प्रकृति का नियम है, जब तक सर्प की आँख पर कांचुरी रहती है तो उसे दिखायी नहीं देता है। थोड़े समय बाद जब वह अपने आप हट जाती है, तब सर्प को दिखाई देता है। इसी प्रकार जब तक विषयों की कांचुरी हमारी आँखों को ढके हुए है, तब तक रस की प्राप्ति तो दूर, रस का मार्ग भी दिखायी नहीं देगा। रस-प्राप्ति के लिए विषयों की ओर पीठ करनी होगी। अभी तो स्थिति यह है कि हम स्वयं कांचुरी इकट्ठा करने में लगे हुए हैं। उपदेश करते हैं त्याग का और वृत्तियाँ हैं संग्रह की तो कोई क्या त्याग सीखेगा, स्थिति तो है –

"घर-घर फिरत उगाहत चन्दा ।"

(श्रीविहारिन देव जी की वाणी-९१)

परीक्षित जी ने पूछा –

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥

(भा. १०/३३/२८)

धर्म मर्यादा को बनाने वाला, उपदेश करने वाला एवं रक्षा करने वाला ही यदि धर्म विरुद्ध आचरण करेगा तो संसार क्या सीखेगा? धर्मरक्षक में तीन बातों का होना आवश्यक है। (१) उपदेश (२) तदनुसार आचरण एवं (३) धर्म की रक्षा।

करुणावतार श्रीमच्चैतन्य देव ने एक वृद्धा महिला से बात करने पर छोटे हरिदास के प्रति कितना कठोर आचरण किया क्योंकि वे जो कह रहे हैं, उसका स्वयं आचरण करेंगे तभी तो उसकी रक्षा होगी अतः कभी-कभी कठोर आचरण भी करना पड़ता है।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

(गी. १६/२३)

श्री भगवान् बोले – जो लोग शास्त्रीय सिद्धान्त के विरुद्ध मनमाना आचरण करते हैं, वे न सिद्धि प्राप्त करते हैं, न सुख और न परम गति ही।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥

(गी. १६/२४)

अतः शास्त्रोक्त कर्म ही करो।

स्मृति कहती है –' **परद्रव्येषु अभिध्यानम्'** – मन में परधन लेने की इच्छा का आना भी पाप है।

'अभि' उपसर्ग का यहाँ बहुत महत्त्व है। 'अभिमुख्येन ज्ञानं अभिज्ञानं' कालिदास की कृति का नाम 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' है। दुष्यन्त ने अभिज्ञान किया – हाँ, ये शकुन्तला मेरी है। शरीर के तीन पापों में एक पाप अभिध्यान भी है। किसी दूसरे की वस्तु को लेना तो दूर, लेने का विचार भी आना पाप है।

किन्तु होता क्या है –

करनी और, कहै कछु औरै, मन दसहूँ दिसि टूटै ॥
जौ लौं मन कामना न छूटै ।

(सूर विनय पत्रिका –२९६)

हमारे कहने, करने में बहुत अन्तर होता है। ऐसे उपदेष्टाओं, वक्ताओं से समाज का कल्याण नहीं हो सकता है।

"कहा पुरान जु पढ़े अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटैं ।"

(सूर विनय पत्रिका –२९६)

हिरण्यकशिपु और रावण को क्या कम ज्ञान था?

हिरण्याक्ष की मृत्यु पर दिति को हिरण्यकशिपु का उपदेश –

भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते ।
दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥

(भा. ७/२/२१)

माँ! संसार तो एक प्याऊ (पानी पीने वाला स्थान) की भाँति है। यहाँ थोड़े ही समय का मिलन होता है। यहाँ अपने कर्मानुसार दैववश जीव मिलते-बिछुड़ते रहते हैं फिर इसमें शोक कैसा?

मेघनाद की मृत्यु पर रावण का उपदेश –

तव दसकंठ बिबिधि बिधि समुझाई सब नारि ।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि ॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे ।
ते आचरहिं ते नर न घनेरे ॥

(रा.च.मा.लंका. ७८)

रावण स्वयं मंद है किन्तु बात बहुत शुभ और पावन कह रहा है। अतः

कबीरदास जी कहते हैं –

पांड़े भली कथा कहि जाने ।
औरन परमारथ उपदेशे, आप स्वार्थ लपटाने ।
ज्यों दीपक घर करत उजेरो, निज तन तम सन ठानें ।
महिषी क्षीर स्रवे औरन को, आप भुसहिं रूचि मानें ।
श्रोता गोता क्यों न खावें, आचार्य फिरै भुलानें ।
हित की कहत लगत अनहित की, रज राजस में सानें ।
कहत 'कबीर' बिना रघुबीरहिं, यह पीरहिं को जानें ॥

इसी प्रकार सूरदास जी कहते हैं –

"जग सोभा की सकल बड़ाई, इनते कछू न खूटै ।"

(सूर विनय पत्रिका–२९६)

एक अच्छा वक्ता (बोलने वाला) धन व यश तो बहुत प्राप्त कर सकता है किन्तु कल्याण नहीं।

"सूरदास तबही तम नासै, ज्ञान अगिनि झर फूटै ॥"

(सूर विनय पत्रिका–२९६)

व्यास जी कहते हैं –

कहत सुनत भागवत, बढै, श्रोतहि वक्ताहि अभिमान ।
मद मत्सर न गयौ न भयौ सुख, रुख न करत चष कान ॥
भक्ति न भई विषै न गई रति, भूलि गयौ भगवान् ।
लोभी कौ लोभ न छूटौ न गयौ, कृपन कौ जु सयान ॥
केवल कृष्ण कृपा बिनु साधु, संग बिनु रंग न आन ।
'व्यास' भक्ति समुझी तबहीं, नारद के सुनत बखान ॥

(व्यास वाणी)

विशुद्ध भागवत धर्म कहता है –

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाधनो धनम् ।

(भा. ७/१५/१५)

धर्म के लिए भी धन की इच्छा मत करो और हम जैसे धन लोलुप धन के लिए भगवान् को भी बेच देते हैं।

लोलुपता धन की है या रूप की अथवा मान-सम्मान की तुम्हें भोगवादिता की ओर उन्मुख कर भगवद् विमुख बना ही देगी। सांसारिक रति से वैराग्य के पश्चात ही धाम-धामी में निष्ठा होगी और उनकी कृपा मिल सकेगी।

सौ पापन को मूल है एक रुपैया रोक ।
साधु है संग्रह करै हारे हरि सों थोक ।
साधु है संग्रह करै दूजे दिन को नीर ।
तरे न तारे और को कह गये दास कबीर ॥

बातें त्याग की, आचरण संग्रह का, ऐसे उपदेशक आत्मोद्धार भी नहीं कर सकते फिर लोकोद्धार क्या करेंगे?

श्रीकबीरदास जी के वचन –

यारो कोई सफा न देखा दिल का ।
लप-लप बातें फक-फक कपड़ा, भरा गुरुर जहन का ॥
बिल्ली देखी बगुला देखा, साँप जो देखा बिल का ।
ऊपर ऊपर सुन्दर लागे, अन्दर काले दिल का ॥
काजी देखा मुल्ला देखा, पण्डित देखा छल का ।
औरन को बैकुण्ठ बतावै, आप नरक में सटका ॥
पढ़े नहीं गुरु मन्तर कोई, भरा गुमान कुमति का ।
बैठत नहीं साधु की संगत, करे गुमान जहन का ॥
मोह फाँस में गला बंधा है, भोग करे कामिन का ।
काम क्रोध दिन रात सतावे, लानत ऐसे मन का ॥
सत्य नाम को मूढ़ पकड़ ले, छोड़ कपट सब दिल का ।
कहे 'कबीर' सुनो सुल्ताना, पहिर फकीरी खिल का ॥

कुलीनतादि कारणों से उत्पन्न हुआ अभिमान, स्तम्भ अर्थात् ऐंठ उत्पन्न कर कल्याण मार्ग अवरुद्ध कर देता है। ऐसी स्थिति में अपना ही उद्धार सम्भवनहीं है तो अन्य का कैसे? केवल भगवत्कृपा प्राप्त जीव ही इससे सुरक्षित रह पाते हैं।

कहत सुनत बहुतक दिन बीते, भक्ति न मन में आई ।
स्याम कृपा बिनु साधु संग बिनु, कहि कौने रति पाई ॥
अपने अपने मत मद भूले, करत आपनी भाई ।

बस, अपने-अपने सम्प्रदाय के मद में भर जाते हैं, मनमाना करते हैं। यहाँ तक कि मूलाचार्यों से भी विमुख हो जाते हैं।

कहयौ हमारो बहुत करत हैं, बहुतनि में प्रभुताई ॥

हजारों शिष्य हो गये, प्रभुता बढ़ गयी, अब तो हम जो कर रहे हैं वही ठीक है।

मैं समुझी सब काहु न समझी, मैं सबहिन समुझाई ।

हमने सब समझ लिया, बाकी कोई नहीं समझ सका ।

भोरे भक्त हुते सब तबके, हमतो बहु चतुराई ॥

पूर्ववर्ती रसिक तो भोरे थे, अब हम चतुर रसिक हुए हैं।

हमही अति परिपक्व भये, औरनि कै सबै कचाई ।

हम ही परिपक्व हैं, अन्य तो सब कच्चे हैं।

कहनि सुहेली रहनि दुहेली, बातनि बहुत बड़ाई ॥

कह कुछ रहे हैं और कर कुछ रहे हैं।

हरि मन्दिर माला धरि गुरु करि, जीवन के दुखदाई ।

गुरु बना लिये, तिलक लगा लिया, माला धारण कर ली और वैष्णव वेष में समाज के विनाशक बन गये।

दया दीनता दास भाव बिन, मिलै न 'व्यास' कन्हाई ॥

(व्यास वाणी)

पुनः

तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै, विषयिनि के मुख जोए ।
किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए ॥

(सूर विनय पत्रिका – ६०)

ऐसी स्थिति में रस प्राप्ति कहाँ!

रसिक कौन?

रसिक के द्वादश लक्षण महावाणी के अनुसार –

जो कोउ प्रभु के आश्रय आवै । सो अन्याश्रय सब छिटकावै ॥
विधि निषेध के जे जे धर्म । तिनको त्याग रहे निष्कर्म ॥
झूठ क्रोध निन्दा तजि देहीं । बिन प्रसाद मुख कौर न लेहीं ॥
सब जीवनि पर करुणा राखै । कबहुँ कठोर बचन नहिं भाखे ॥
मन माधुर्य रस माहि समावें । घरी पहर पल वृथा न खोवै ॥
सतगुरु के मारग पगु-धारें । हरि सतगुरु बिचि भेद न पारें ॥
ए द्वादश लच्छिन अवगाहें । जे जन परा परम पद चाहें ॥

(महावाणी, सिद्धान्त सुख –३१)

मात्र वाणी-पोथी का पाठ ही रसिकता नहीं है। उपरोक्त द्वादश लक्षण विहीन व्यक्ति रसिक नहीं हो सकता है। अभी तो प्रथम लक्षण ही कहीं दिखाई नहीं दे रहा है।

रसिक का प्रथम लक्षण –

'जो कोउ प्रभु के आश्रय आवै ।'

अर्थात् भगवान् के आश्रित हो जाएं।

आश्रय की सिद्धि के लिए द्वितीय लक्षण –

'सो अन्याश्रय सब छिटकावै ।'

अर्थात् अन्याश्रय का त्याग। आज सम्पूर्ण समाज अन्याश्रय में डूबा है। कोई अर्थ का, कोई सेठों का, तो कोई शिष्यों का आश्रय लिये है।

जो गुरु करै शिष्य की आस ।
श्याम भजन ते भया उदास ॥

(श्रीबिहारिनदेवजी की वाणी-१४)

शिष्य का आश्रय लेने वाले गुरु का भगवदाश्रय सिद्ध नहीं होगा। जीवाश्रय के रहते भगवदाश्रय कभी सिद्ध नहीं होगा। यहाँ तक कि अपने शरीर व इन्द्रियों का आश्रय भी अन्याश्रय है।

तृतीय लक्षण –

विधि कर्मों का त्याग।

चतुर्थ लक्षण –

निषिद्ध कर्मों का त्याग।

'विधि निषेध के जे जे धर्म ।
तिनको त्याग रहे निष्कर्म ॥'

नैष्कर्म्य का अर्थ ही न जानने वाले हम लोग मात्र रस-वाणी के पाठ से कैसे रसिक बन जाएंगे। शास्त्रों ने जिनको करने की आज्ञा दी है वे विधि कर्म हैं एवं शास्त्रों ने जिनका निषेध किया है वे निषिद्ध कर्म हैं यथा – चोरी, छिनारी, निन्दा, झूठ ...। विधि-निषेध का त्याग नैष्कर्म्य है किन्तु होता यह है कि विधि कर्म छोड़ देते हैं एवं निषिद्ध कर्म पकड़ लेते हैं। इस प्रकार मनमाने आचरण से नैष्कर्म्य तो सिद्ध होता नहीं, पतन अवश्य हो जाता है।

विधि-निषेध के कर्म के त्याग से तात्पर्य है श्रीभगवान् का अन्तिम गीतोपदेश।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गी. १८/६६)

हे अर्जुन! सभी कर्म-धर्मों का परित्याग करके तू मेरी शरण में आ जा। शरण में आ जा अर्थात् विधि-निषेध के त्याग के बाद शरणागति के ये छः अंग अवश्य होने चाहिए ।

आनुकूलस्य संकल्पः प्रातिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः॥

(अहिर्बुध्न्यसंहिता पाञ्चरात्रागमनान्तर्गता-३७/२८, २९)

१. इष्ट के अनुकूल ही धर्म, कर्म का अनुष्ठान हो अर्थात् वही सोचें, वही करें जो प्रभु चाहते हैं।

२. इष्ट के प्रतिकूल धर्म, कर्मों का आचरण न हो। जो प्रभु नहीं चाहते हैं, वह न सोचें, न करें।

३. भगवान् ही हमारे रक्षक हैं, ऐसा मन में दृढ़ विश्वास हो।

४. रक्षक के रूप में भगवान् का वरण करें।

५. अपने को उनके चरणों में अर्पित कर दें।

६. दीनता हो।

अब समझें नैष्कर्म्य क्या है?

स्वयं भगवान् ने गीता में कहा –

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति॥

(गी. १८/४९)

सर्वत्र असक्त बुद्धि रहे अर्थात् देह, गेहादि में कहीं भी आसक्ति न हो। 'जितात्मा' – मन को जीत लिया, विगतस्पृहः – मन इच्छारहित हो गया, यही है नैष्कर्म्य। इसके बिना रस की गन्ध भी नहीं मिलेगी फिर रसिकता तो सुदूर।

पंचम लक्षण –

'झूठ, क्रोध, निन्दा तजि देहीं।'

झूठ, क्रोध, निन्दा का सर्वथा त्याग।

आज स्थिति यह है कि समाज में इन्हीं तीन का ताण्डव है।

एक-दूसरे आचार्य, महापुरुष, शास्त्र-सम्प्रदाय की निन्दा करने वाले हम लोग रसिक कैसे?

झूठ, क्रोध व निन्दा – ये तीनों ही भक्तिमार्ग के परिपन्थी हैं किन्तु इनका त्याग अत्यन्त कठिन है।

क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्वशैश्न्या-
नस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ।
क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गो-
र्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥

(भा. ११/४/११)

ऐसा देखा गया है कि अति दुःसह भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, वर्षा-आँधी के कष्ट, यहाँ तक कि रसनेन्द्रिय व शिश्नेन्द्रिय के सिन्धु समान वेग को भी जो जीत चुके हैं, वे वीर पुरुष गाय के खुर के छोटे से गड्ढे के समान आत्मनाशक क्रोध को नहीं जीत पाते हैं। क्रोध के वश में होकर अपने सब भजन-साधन को चौपट कर देते हैं।

षष्ठम लक्षण –

'बिनु प्रसाद मुख कौर न लेहीं ।'

अर्थात् बिना भगवान् को भोग लगाये भोजन न करना।

यहाँ भी फिसल जाते हैं। मात्र इन्द्रिय तोषण के लक्ष्य से प्रसाद लेते हैं।

सप्तम लक्षण –

'सब जीवनि पर करुना राखें ।'

प्राणीमात्र पर करुणा करनी चाहिए।

पितेव पुत्रं करुणो नोद्वेजयति यो जनम् ।
विशुद्धस्य हृशीकेशस्तूर्णं तस्य प्रसीदति ॥

(भ.र.सि-१/२/११७)

प्राणीमात्र पर जो पितृवत् करुणा करता है, भगवान् उससे अतिशय प्रसन्न हो जाते हैं।

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥
अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे ।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥

(भा. ३/२९/२१, २२, २३, २४)

जीवों की निरन्तर अवज्ञा, उपेक्षा, द्वेष, निन्दा करने वाले हम लोग इस सर्वभूतशालिनी करुणा को कैसे समझ सकते हैं।

अष्टम लक्षण –

'कबहुँ कठोर बचन नहिं भाखे ।'

क्रोध से वाद-विवाद होता है। जब तक वाद-विवाद में फँसे हैं, कृष्णरस प्राप्त नहीं होगा ।

'कबहुँ कठोर बचन नहिं भाखे।' कटु वचन तो कभी न बोले। मर्म भेदी बाणों के घाव का उपचार है किन्तु हृदय भेदी वचनों के घाव का कोई उपचार नहीं है।

न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाणैः सुमर्मगैः ।
यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥

(भा. ११/२३/३)

बाणों से वैसी पीड़ा नहीं होती है जैसी परुष वचन से पीड़ा होती है।

कठोर वाणी सेवापराध है।

'निग्रहानुग्रहौ चैव नृषु च क्रूर भाषणम् ।'

भगवान् के सन्मुख किसी को दण्ड देना, आशीर्वाद आदि देना, कठोर वाणी का प्रयोग करना अपराध है।

नवम लक्षण –

'मन माधुर्य रस माहि समोवे ।'

मन सदा लाल-ललना की ललित लीलाओं के रस में डूबा रहे। ये सभी बातें क्रमशः होंगी। अब जहाँ क्रोध, कलह की भट्टी जल रही है वहाँ भला भगवल्लीला रस का उदय कहाँ से होगा।

दशम लक्षण –

'घरी पहर पल वृथा न खोवै ।'

यह सबसे महत्वपूर्ण बात है। एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट न करें। जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है। **'जे दिन गये बहुरि नहिं आवै'** जो क्षण चला गया वह कभी लौटता नहीं है अतः कोई घड़ी, कोई पहर, कोई भी पल व्यर्थ नहीं जाना चाहिए।

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् ।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेवकिङ्कराः ॥

(पद्म.पु.उत्तर खण्ड पुर्वार्द्ध, पार्वती-शिव सम्वाद-७१/१००)

एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट न करें। सतत् इष्ट का स्मरण करते रहना चाहिए। सत्य तो यह है कि श्री लाल-ललना का सतत् स्मरण से साधक के सभी विधि कर्म पूर्ण हो गये एवं उनका विस्मरण हुआ तो सब निषिद्ध कर्म अर्थात् पाप कर्म हो गये।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं –

राम सुमिरन सब विधि हू को राज रे ।
राम को बिसारिवौ निषेध सिरताज रे ॥

श्री हरिवंश महाप्रभु जी कहते हैं –

'विधि अखण्ड स्मृति सरस भूलन सोइ निषेध ।'

महावाणी –

मो चित लगौ नित इहि ठाम प्रिया जू के काम ॥
नैन राधे बसों मूरति बैंन राधे नाम ।
श्रवण राधे सुजस कीरति हृदय में विश्राम ॥
कर लगौ परिचरिया हू में पद लगौ परिक्राम ।
मधुप ह्वै मन रमौ मो इहि विपिन में अभिराम ॥
टरहु जिन इनि ठौर हू तें अहु निसा सब जाम ।
चरन-रज श्रीहरिप्रिया की करौं सिर पर धाम ॥

(सहज सुख-३७)

रसवाणी का पाठ कर रहे हैं और मन दसों दिशाओं में घूम रहा है।

रसिकजनों ने कहा है –

'घरी पहर पल वृथा न खोवै ।'

अभी तो हमारा सब समय प्रमाद और बहिर्मुखता में व्यर्थ जा रहा है, अनन्यता कहाँ है?

कर्मत्याग प्रमाद है जो कि शुद्ध तामस है –

प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥

(गी. १४/८)

कर्म का त्याग, त्याग नहीं है। कर्मफल का त्याग, त्याग है।

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥

(गी. १८/७)

कर्मत्याग में भी निषिद्ध कर्मों का त्याग ही उचित है, नियत कर्मों का त्याग तो तामस त्याग है।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥

(गी. १८/११)

प्रथम बात, कोई भी शरीरधारी पूर्णतः अकर्मा नहीं हो सकता है क्योंकि श्वास लेना भी तो एक कर्म है। पूर्णतः कर्मों को त्याग सम्भव नहीं है एवं उसकी आवश्यकता भी नहीं है। फलत्याग ही अनन्यता है। यही वास्तविक त्याग है।

मनुष्य को साधन-शून्य नहीं होना चाहिए। साधन भी इस प्रकार हो –

भगवान् के वचन –

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

(गी. ९/१४)

साधन वही है जो सतत् हो। अखण्ड कीर्तन, स्मरण होना चाहिए। अन्यथा राक्षसी, आसुरी, मोहिनी प्रकृति ही बनी रहेगी। श्रीमद्भगवद्गीता में अनेक बार सतत् साधन के लिए भगवान् ने कहा है।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥

(गी. ६/२३)

साधन से मन श्रान्त नहीं होना चाहिए। सतत् साधन से ही पाप नष्ट होंगे व अन्तःकरण स्वच्छ होगा अतः साधक चौबीस घण्टे साधन में लगा रहे। बहुधा अच्छे-अच्छे साधक भी बहक जाते हैं, अखण्ड हरिनाम संकीर्तन, सेवा छोड़कर 'हम तो केवल रस-ग्रन्थ ही कहेंगे-सुनेंगे', ऐसा कहकर साधन शून्य हो जाते हैं। दो घण्टे, चार घण्टे रस-वाणी का पाठ करने के बाद शेष सब समय इधर-उधर की निन्दा में व्यर्थ कर देते हैं। यह रस प्राप्ति का लक्षण नहीं है अतः भगवान् ने कहा –

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

(गी. १२/१६)

भक्त का लक्षण है – 'दक्ष'। भक्त को चतुर होना चाहिए। भक्त का मतलब यह नहीं कि तुम उचित-अनुचित का विचार भी न कर सको। चतुराई नहीं होगी तो किसी भी दाम्भिक के चंगुल में फँस जाओगे। चतुराई से तात्पर्य है – मनुष्य अपनी हानि को तुरन्त समझ ले। चतुर नहीं होगा तो कैसे समझेगा कि हमारा समय व्यर्थ वाद-विवाद निन्दा में नष्ट हो रहा है।

निन्दा बहुत बड़ा अपराध है।

सती जी के वचन –

कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे
धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ।
छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं
प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥

(भा. ४/४/१७)

यदि शक्ति हो तो निन्दक की जिह्वा काट डाले, ऐसा नहीं कर सकते हो तो कान बन्द करके वहाँ से चले जाओ। निन्दा करना तो पाप है ही, सुनना भी बहुत बड़ा पाप है।

सन्त संभु श्रीपति अपबादा ।
सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा ॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई ।
श्रवन मूदि न त चलिअ पराई ॥

(रा.च.मा. बाल. ६४)

परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति ।
स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥

(भा. ११/२८/२)

परनिन्दक असद् अभिनिवेश से शीघ्र ही अपने अभीष्ट साधन से च्युत हो जाता है।

दस नामापराधों में निन्दा भी एक नामापराध है।

"सतां निन्दा नाम्नः परममपराध वितनुते ।"

(पद्मपुराण ब्रह्म खण्ड-२५/१४-१७)

एकादश लक्षण –

'सतगुरु के मारगु पग धारै ।'

गुरुजनों के बताये हुए मार्ग का भलीभाँति अनुसरण करें। कल्याणकामी पुरुष को सद्गुरु की शरण लेनी चाहिये। सदगुरु कौन?

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥
तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः ।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदो हरिः ॥

(भा. ११/३/२१, २२)

जो शब्दब्रह्मनिष्ठ अर्थात् वेद-शास्त्र के ज्ञाता हों एवं परब्रह्मनिष्ठ हों, जो अपने अनुभव के आधार पर रहस्यात्मक बातों को स्पष्ट कर सकें। ऐसे गुरु प्राप्त होने पर उन्हें ही अपनी आत्मा एवं इष्ट मानकर निष्कपट भाव से सेवा करें एवं भगवत्प्राप्ति कराने वाले भागवत धर्म की क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण करे।

द्वादश लक्षण –

'हरि सतगुरु विधि भेद न पावै ।'

हरि-गुरु में भेदबुद्धि न हो अर्थात् गुरुजनों में ईश्वर बुद्धि हो जाय किन्तु ऐसा गुरुजनों के अनुकूल रहने पर ही सम्भवहै। इन द्वादश लक्षणों के बाद ही रस-सम्प्रदाय में प्रवेश होगा। ये द्वादश लक्षण ही रस-प्राप्ति की योग्यता हैं, अनन्तर रस सम्प्रदाय की दस सीढ़ियाँ भी बताई हैं –

जाके दस पैड़ी अति दृढ़ि है । बिन अधिकार कौन तहाँ चढ़िहै ॥
पहले रसिक जनन को सेवे । दूजी दया हिये धरि लेवे ॥
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि है । चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनि है ॥
पंचमि पद पंकज अनुरागें । षष्ठी रूप अधिकता पावै ॥
सप्तमि प्रेम हिये विरथावे । अष्टमी रूप ध्यान गुणगावें ॥
नवमी दृढ़ता निश्चै गहिबे । दसमी रस की सरिता बहिबे ॥

(महावाणीसिद्धान्त सुख-३१)

रस प्राप्ति का **प्रथम सोपान** है –

रसिक सन्तों की सेवा करो, उनका संग करो। इन पंक्तियों को हम लोग अपने ऊपर ही लागू करते हैं। हम रसिक हैं, हमारे पास ही आओ, हमारा ही संग करो, अन्यत्र मत जाओ, अन्यत्र रस नहीं है।

ये सब संकीर्ण विचार हैं।

द्वितीय सोपान –

रस सिद्ध सन्तों की सेवा से फिर उनकी दया के पात्र बन जाओगे।

तृतीय सोपान –

उन सन्तों के बताये हुए धर्म में निष्ठा होनी चाहिए।

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ।
विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥

(भा. ११/२१/२)

महज्जनों के बताये हुए मार्ग का निष्ठापूर्वक अनुसरण करो, यही गुण है। इसके विपरीत सब दोष हैं। सन्तों ने हमें जो बता दिया, उसे प्राथमिक साधन समझकर उपेक्षा मत करो। सेवा, कीर्तन, कथा जो मार्ग खोल दें, निष्ठा के साथ आरूढ़ हो जाओ। ऐसा नहीं कि यह हमारा नित्य नियम का समय है। सेवा कैसे करें अथवा हम साधु हैं, काम क्यों करें?

चतुर्थ सोपान –

'चौथी कथा अतृप्त होय सुनिहै ।'

भगवद्-कथा से कभी तृप्त न हो।

राम चरित जे सुनत अघाहीं ।
रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ५३)

अथवा

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना ।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥

(रा.च.मा.अयो. १२८)

ऐसे रसिक श्रोता थे श्री पृथु जी महाराज जो कथा की अतृप्ति से व्याकुल होकर बोले – प्रभो! मुझे दस हजार कान दे दो, जिससे अधिकाधिक कथा श्रवण का सौभाग्य प्राप्त होगा।

पंचम सोपान –

'पंचमि पद पंकज अनुरागै ।'

कथा-श्रवण से श्रीलाल-ललना के चरणारविन्दों में अनुराग की प्राप्ति होगी।

द्रष्टव्य है – (श्रीमद्भागवत् १/२/१६, १७, १८)

षष्ठम सोपान –

'षष्ठी रूप अधिकता पावै ।'

अनुराग के उपरान्त भगवद्-साक्षात्कार होगा।

सप्तम सोपान –

'सप्तमि प्रेम हिये विरथावै ।'

दर्शन के बाद प्रेम में वृद्धि निश्चित ही है।

प्रेम के लक्षण –

सम्यङ्कमसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः ।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥

(भ.र.सि.१, ४.१)

भाव की प्रगाढ़ता ही प्रेम है, प्रेम में प्रेमास्पद की प्राप्ति की अभिलाषा और भी तीव्र हो जाती है, हृदय भी द्रवीभूत हो उठता है एवं प्रेमास्पद के प्रति अत्यधिक ममता का दर्शन होता है।

अष्टम सोपान –

'अष्टम रूप ध्यान गुन गावै ।'

फिर प्रेमास्पद का ध्यान, ध्यान से रूप की स्फूर्ति होने लगती है।

नवम सोपान –

'नवमी दृढ़ता निश्चय गहिबे ।'

ध्यान में दृढ़ता आने पर बहुत शीघ्र इष्ट का प्राकट्य हो जाता है।

दशम सोपान –

'दशमी रस की सरिता बहिवे ।'

ध्यान में श्रीलाल-ललना के प्रकट होने पर साधक रस-सिन्धु में निमग्न हो जाता है, यही है प्रेम की पराकाष्ठा।

श्री मधुसूदन सरस्वती जी ने भी अपने 'भक्ति रसायन' ग्रन्थ में भागवत में वर्णित नारद चरित्र के आधार पर उपरोक्त दस सोपानों का निरूपण किया है।

उपायाः प्रथमस्कन्धे नारदेनोपवर्णिताः ।
सङ्क्षेपात्तानहं वक्ष्ये भूमिभेदविभागतः ॥
प्रथमम्महतां सेवा, तद्दयापात्रता ततः ।

श्रद्धाऽथ तेषां धर्मेषु, ततो हरिगुणश्रुतिः ॥
ततो रत्यङ्कुरोत्पत्तिः, स्वरूपाधिगतिस्ततः ।
प्रेमवृद्धिः परानन्दे, तस्याथ स्फुरणं ततः ॥
भगवद्धर्मनिष्ठाऽतस्स्वस्मिंस्तद्गुणशालिता ।
प्रेम्णोऽथपरमा काष्ठेत्युदिता भक्तिभूमिकाः ॥

(भक्ति रसायन-१/३३-३६)

रसराज राधा-माधव, उनकी रसमयी ब्रज वसुन्धरा व रसिकता, विशुद्ध भागवत धर्म के आस्वादन के बिना सम्भव नहीं है।

अनन्यता

नारद जी की वाणी में –

अन्याश्रयाणां त्यागो अनन्यता ॥

(ना.भ.सू. १०)

अर्थात् अन्याश्रय परित्याग पूर्वक मन की एकनिष्ठ वृत्ति का नाम ही 'अनन्यता' है। बाह्य क्रियाओं को सीमित करना अनन्यता नहीं है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

(गी. ९/२२)

मन से अनन्य चिन्तन ही अनन्यता है अतः भगवान् ने कहा –

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

(गी. १२/८)

मन मुझको दे दो फिर सभी क्रियायें अनन्यता की होगीं। मन देने का अभिप्राय मन की सभी वृत्तियों से है।

एकादशासन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ।
मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति हैकादश वीर भूमीः ॥
गन्धाकृतिस्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ।
एकादशं स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥

(भा. ५/११/९, १०)

मन की ग्यारह वृत्तियाँ हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक अहंकार। ये मन की ग्यारह वृत्तियाँ हैं। वृत्ति अर्थात् बरतना, ग्यारह प्रकार से मन बर्तता है। सभी वृत्तियों का जहाँ पर्यवसान है, वह है – अहम्। इन ग्यारह वृत्तियों की ग्यारह आधार भूमियाँ हैं, (जहाँ ये वृत्तियाँ खड़ी होती हैं।) शब्द, स्पर्श, रस, रूप व गन्ध – ज्ञानेन्द्रिय के विषय हैं। मलत्याग, रति, गमन, भाषण, आदान-प्रदान – ये कर्मेन्द्रिय के विषय हैं। शरीर को 'यह मेरा है' कहकर स्वीकार करना – अहंकार का विषय है। कुछ लोग अहंकार को मन की बारहवीं वृति और उसके आश्रय शरीर को बाहरवाँ विषय भी मानते हैं।

मन का अनन्य चिन्तन ही अनन्यता है।

हम लोग बाह्य क्रियाओं को अधिक महत्त्व देते हैं, चिन्तन पर ध्यान न देकर मात्र उपासना की पद्धति पकड़ लेते हैं, मन तो इधर-उधर दौड़ता ही रहता है। चिन्तन की

अनन्यता के बिना उपासना सिद्ध नहीं होगी क्योंकि उपासना भी मन से होती है एवं चिन्तन भी मन से ही होने वाली क्रिया है।

"रसखान गोविन्दहिं यों भजिये जिमि नागरि को चित गागरि में।"

(रसखान)

अपना रंग सखिन सौं रांचै कर छोड़े बतराये,
या विधि मन को लगाये प्रभु पाये।

(श्रीकबीरदास जी)

इतना सावधान चिन्तन चाहिए – शीश पर मांट है और हाथ छोड़कर सखी-सहेली से बात कर रही है किन्तु एक बूँद जल नहीं छलक सकता है।

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥

(भा. १०/४४/१५)

चिन्तन की इसी सावधानी से तो गोपियों का गोबर थापना, दूध दुहना, दधि मथना जैसा सामान्य कार्य भी भक्तियोग बन गया।

पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥

(भा. १०/२१/११)

हिरणियों का दौड़ना व कृष्ण को निहारना भी भक्तियोग बन गया।

येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान्।
भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम्॥

(भा. ४/२९/६०)

क्योंकि कर्म करने वाला मन ही है अतः मन की अनन्यता ही वास्तविक अनन्यता है।

श्री हिताचार्य की वाणी में –

यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहि कौने सचु पायौ।
जहाँ-तहाँ बिपति जार जुबती लौं प्रगट पिंगला गायौ॥
द्वै तुरंग पर जोर चढ़त हठ परत कौन पै धायौ।
कहि धौं कौन अंक पर राखै जो गनिका सुत जायौ॥
जै श्री हित हरिवंश प्रपञ्च बंच सब काल ब्याल कौ खायौ।
यह जिय जानि श्याम-श्यामा पद-कमल संगी सिर नायौ॥

(हित चौरासी पद सं. ५९)

एक मन को अनेक जगह देने से सुख कहाँ मिल सकता है, यही तो श्रीमद्भागवत में पिंगला वेश्या ने गाया है। अरे, कहीं दो घोड़ों पर चढ़कर एक साथ सवारी की जा सकती

है। जैसे वेश्या का पुत्र स्वयं निश्चय नहीं कर पाता है कि मैं किसका पुत्र हूँ, उसी प्रकार भगवान् के अतिरिक्त अन्यत्र मन देने वाले व्यभिचारी हैं, वेश्या-पुत्र हैं, रसिक नहीं।

अन्य से हटे और रसिक बने।

मन एक ही स्थान पर रहे, मन का जगह-जगह भटकना व्यभिचार है। अव्यभिचारिणी भक्ति ही अनन्य भक्ति है।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

(गी.१३/१०)

एक इन्द्रिय को संयमित कर शेष वृत्तियों से उपभोग करना व्यभिचार है। स्वर्ण व पीतल, दोनों का पीलापन देखने में बहुत समान होता है किन्तु क्या दोनों में समानता हो सकती है? इसी प्रकार अनन्यता-संकीर्णता को समझें।

श्रीकृष्ण का मत –

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

(गी. ७/१९)

पुनः

सीय राममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

(रा.च.मा.बाल. ८)

सर्वत्र अपने इष्ट को देखना ही अनन्यता है। यदा-कदा अपवाद भी दिखाई पड़ता है परन्तु यह उनके भाव की विशेष स्थिति है, क्योंकि वे अन्यत्र अभाव नहीं रखते। कुछ लोग कहते हैं कि केवल गुरुमन्त्र जपना ही अनन्यता है, कुछ कहते हैं अपने सम्प्रदाय की वाणी का पाठ ही अनन्यता है, कुछ कहते हैं निकुञ्ज -लीला का गान ही अनन्यता है। ये सभी बातें सत्य हैं। अब जैसे रसिकाचार्य श्रीसेवक जी की वाणी में प्राप्त होता है –

"वंश बिना हरि नाम न लैहौं ।"

हम वंश के बिना हरिनाम भी नहीं लेंगे। "हरिवंश" ही कहेंगे।

इसी प्रकार "दास बिना हरिनाम न लैहौं" किन्तु श्री सेवकजी जैसी अनन्य स्थिति सबकी तो नहीं है। सामान्य भाव होने से आचार्यवाणी में संकीर्णता लाकर हमलोग तो अपराधग्रस्त ही होंगे। सामान्य व्यक्ति इन पंक्तियों को पढ़-सुनकर मात्र भेदवाद रूप अपराध का मार्ग ही पकड़ेगा, जबकि ये सब बातें उत्तम निष्ठा के कारण कही गई हैं कि

भावना में भेद न आये और अपनी निष्ठा चलती रहे और हम मन्दमति लोग निष्ठा की बातों को संकीर्ण बना देते हैं।

नारदजी ने श्रीरामजी से याचना की –

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका ।
श्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका ।
होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

(रा.च.मा.अरण्य. ४२)

'राम नाम सभी नामों से बढ़कर हो जाये।' अब यह याचना भेद के कारण नहीं, निष्ठा के कारण की गई है।

ये ही नारदजी आगे 'नारदपञ्चरात्र' बनाते हैं, द्वारिका जाते हैं, श्रीकृष्ण से सत्संग करते हैं, निमि-योगेश्वर सम्वाद के माध्यम से वसुदेवजी को कृष्ण-भक्ति सिखाते हैं, ब्रज में आते हैं, गोपियों से सत्संग करते हैं। एक ओर वह राम नाम को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं, दूसरी ओर कृष्णभक्ति को सर्वश्रेष्ठ कह रहे हैं।

अब इससे क्या समझें?

निष्ठा एक स्थान पर होते हुए भी अन्यत्र अभाव न उत्पन्न हो, सर्वत्र भाव बना रहे, यही **अनन्यता** है। अन्यत्र अभाव हुआ तो अनन्यता संकीर्णता के रूप में बदल जायेगी।

यथा – श्री हरिराम व्यास जी महाराज का श्री कबीरदास जी के प्रति कुछ अभाव हुआ और भगवद्दर्शन बन्द हो गया।

संकीर्णता से बचें क्योंकि यह अपराध मार्ग है। भगवद्धाम से भी पतन हो जाएगा।

जे अपराध परम पद ह्वै ते उतरि नरक में परिबो ।
हरि भक्तन सों गरब न करिबो ॥

(श्री कृष्णदास जी)

जय-विजय ने जब सनकादिक मुनियों का अपराध किया तो उन्हें नित्यधाम से भी नीचे आना पड़ा।

तद्धाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः
कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ।
लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या
पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥

(भा. ३/१५/३४)

सनकादिक मुनि बोले – भगवान् के पार्षद होकर भी मन्दधी बने हुए हो अतः तुम्हारे कल्याणार्थ इस अपराध के योग्य हम तुम्हें दण्ड दे रहे हैं। तुम उन पाप योनियों में जाओ जहाँ जीव को काम, क्रोध, लोभ घेरे हुए हैं। अभावदृष्टि का परिणाम है – काम, क्रोध, लोभादि विकारों का आना। बिना अपराध के ज्वर भी नहीं आ सकता है फिर विकारों का आना तो दूर । अपने इष्ट में भाव एवं अन्यत्र अभाव, यह अपराध है। अन्याश्रय से अनन्यता नष्ट हो जाती है।

अन्याश्रय क्या है?

भगवद् व्यतिरिक्त वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ का आश्रय ही अन्याश्रय है। यहाँ तक कि अपने मन, बुद्धि, इन्द्रियादि का आश्रय भी अन्याश्रय है और जब तक अन्याश्रय है तब तक भगवद् आश्रय सिद्ध नहीं होता है। गजराज व द्रोपदी का जब तक अन्याश्रय रहा, तब तक भगवान् नहीं आये।

जब लगि गज बल अपनो बरत्यो नेंक सर्‌यो नहिं काम ।
निरबल है बल राम पुकार्‌यो आये आधे नाम ॥
द्रुपद सुता निरबल भई ता दिन तजि आये निज धाम ।
दुस्सासन की भुजा थकित भई बसन रूप भये स्याम ॥
सुने री मैंने निरबल के बल राम ।

(श्री सूरदास जी)

अन्याश्रय अर्थात् देह-गेहादि की आसक्ति से विकर्म में प्रवृत्ति होती है और विकर्म से जन्म-मरण दुःखमयी परम्परा का पुनरावर्तन होता है।

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥

(भा. ५/५/४)

विकर्म का निश्चित परिणाम पुनरावर्तन है अतः स्वजन, अर्थादि की आसक्ति दूर से ही त्याज्य है।

दूरादपास्य स्वजनान् सुखमर्थकोटिं
सर्वेषु साधनवरेषु चिरं निराशः ।
वर्षन्तमेव सहजाद्भुतसौख्यधारां
श्रीराधिकाचरणरेणुमहं स्मरामि ॥

(रा.सु.नि.३२)

बन्धु-बान्धव, सब प्रकार के सुख एवं कोटि-कोटि सम्पत्तियों का दूर से ही त्याग कर दिया जाये एवं अपने साधन का बल भी न रह जाये तब सहज, अद्भुत अनन्त सुख का निर्झर बहेगा, वह निर्झर श्रीराधारानी की चरण-रेणुका ही है, जिसका मैं स्मरण करता हूँ। इसे छोड़कर अन्य की आसक्ति व अन्य का आश्रय विमुखता है।

श्री हिताचार्य जी –

तातैं भैया मेरी सौं कृष्ण गुण संचु ।
कुत्सित वाद-विकारहिं पर धन सुनु सिख मंद पर तिय बंचु ॥
मणिगण-पुंज ब्रजपति छांड़त हित हरिवंश कर गहि कंचु ॥
पाये जान जगत में सब जन कपटी कुटिल कलियुग टंचु ॥
इहि-परलोक सकल सुख पावत मेरी सौं कृष्ण गुण संचु ॥

(श्री हित स्फुट वाणी-८)

श्री स्वामी हरिदास जी –

मत संचै रे मत संचै तिल तिल धन को ।

अन्यासक्ति, अन्याश्रय इस प्रकार त्याग देना होगा –

दे री माई अब म्हाँकों गिरिधरलाल ।
प्यारे चरण की आनि करत हों और न दे मणिमाल ॥
नातो साँगो परिवारो सारो मुँने लगै मनौ काल ।
मीरा के प्रभु श्रीगिरिधर नागर छबि लखि भई निहाल ॥

(श्री मीराबाई जी)

ससुराल को जाते समय मीरा ने अपने गिरिधर गोपाल को माँगा। मीरा की माँ बहुत-सी मणिमालायें देने लगी।

माँ – मीरा, अन्तःपुर की सभी स्त्रियों को ये मणिमाला बाँट देना, इससे तेरा सम्मान बढ़ेगा।

मीरा – किन्तु माँ, मुझे तो ये रिश्ते-नाते, कुटुम्बी-परिवारीजन सब काल रूप लगते हैं। मुझे मेरे गिरिधारी के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं चाहिए।

मीरा के प्रभु श्रीगिरिधर नागर छबि लखि भई निहाल ॥

इस अनन्यता पर तत्क्षण इष्ट-दर्शन हुआ, ऐसे थोड़े ही गिरिधर गोपाल रात-दिन मीरा के साथ खेलते थे। अपने अनन्य भक्तों प्रति भगवान् का विशेष आदर है।

समदरसी मोहि कह सब कोऊ ।
सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ ॥

(रा.च.मा.किष्कि. ३)

अनन्य कौन?

जिनकी सम्पूर्ण वृत्तियों का प्रवाह श्रीकृष्णोन्मुख है एवं जिनके समग्र सम्बन्ध केवल श्रीकृष्ण से हैं। व्यवहार में कथञ्चित प्रवृत्ति है तो केवल श्रीकृष्ण के सम्बन्ध से।

या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई ।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥

अथवा

श्रीराम जी के लक्ष्मण जी के प्रति वचन –

गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा ।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥

(रा.च.मा.अरण्य. १६)

लक्ष्मण जी के श्रीरामजी के प्रति वचन –

गुर पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबन्धु उर अंतरजामी ॥

(रा.च.मा.अयो. ७२)

नामदेव जी की वाणी में –

"भाई बन्धु सबन सों तोरे बैठिया आपुहि आवै ।"

सम्पूर्ण कर्मों का सर्वान्तर्यामी परमात्मा में ही समर्पण भाव हो।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात् ।
करोति यद् यत् सकलं परस्मैनारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥

(भा. ११/२/३६)

शरीर, वाणी, मन, इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार एवं स्वभाव से कर्म होते हैं। सभी कर्म प्रभु को समर्पित ही होने चाहिए।

यहाँ तक कि गोस्वामी जी ने कहा –

कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी ।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥

(रा.च.मा. अयो.१३०)

पुनः

चलत सोवत सुपन जागत छिन न इत उत जात ॥
नाहिन रह्यो मन में ठौर ।

(श्री सूरदास जी)

हे प्रभो! जाग्रत में स्थूल शरीर से एवं स्वप्न में सूक्ष्म शरीर से मैं आपकी ही शरण में हूँ। जाग्रत व स्वप्न की ही बात नहीं है, सुषुप्ति में भी कर्म होता है। जीव आनन्द का अनुभव करता है। सुषुप्ति, जिसे हम गाढ़ निद्रा कहते हैं यदि सुषुप्ति न हो तो व्यक्ति विक्षिप्त हो जाये। सुषुप्ति में जीव का प्रभु से सावरण मिलन होता है एवं समाधि में निरावरण मिलन होता है। समाधि में तमोगुण भी नहीं रहता है, वृत्तियाँ एक जगह सत्त्व में स्थित हो जाती हैं।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुरतु मे राधापदाब्जच्छटा
वैकुण्ठे नरकेऽथवा मम गतिर्नान्यास्तु राधां विना ।
राधाकेलिकथासुधाम्बुधिमहावीचिभिरान्दोलितं
कालिन्दीतटकुञ्जमन्दिरवरालिन्दे मनो विन्दतु ॥

(रा.सु.नि. १६४)

सुधानिधिकार कहते हैं – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्था में श्रीजी की शरणागति रहे, यही अनन्यता है।

यदि श्रीराधारानी का आश्रय है तो फिर वैकुण्ठ में रहें या नरक में, क्या प्रभाव पड़ता है?

'सरगु नरकु अपबरगु समाना ।'

(रा.च.मा.अयो. १३१)

अनन्याश्रित का नरक भी क्या बिगाड़ेगा?

यत्र यत्र मम जन्मकर्मभिर्नारकेऽथ परमे पदेथ वा ।
राधिकारतिनिकुञ्जमण्डली तत्र तत्र हृदि मे विराजताम् ॥

(रा.सु.नि. २६७)

वैकुण्ठ में जन्म हो अथवा नरक में भक्त प्रभावित नहीं होता है।

अतः सनकादिक ने कहा –

**कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ताच्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ।
वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाःपूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ॥**

(भा. ३/१५/४९)

प्रभो! हमारा चित्त आपके चरणकमलों का भ्रमर बना रहे, वाणी से आपकी चर्चा हो, कान भी आपके सुयश से परिपूर्ण रहें फिर भले पाप नरक में भी ले जाते हैं तो कैसी चिन्ता?

**नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥**

(भा. ६/१७/२८)

भगवद्-शरणागतों को नरक से कैसा भय। उनके लिए तो स्वर्ग, मोक्ष, नरक सब भगवद्-रुप ही हैं।

**यह बिनती रघुबीर गुसांई।
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंडकी नाईं ॥**

ममाहम् के रहते अनन्यता कहाँ?

**ममता तरुन तमी अँधिआरी ।
राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥**

(रा.च.मा.सुन्दर. ४७)

ममता की रात्रि में राग-द्वेष रूपी उल्लू सुखी होते हैं। जहाँ भी ममता है, कामना अवश्य उत्पन्न होगी और जहाँ कामना है, वहाँ कलि निश्चित है।

कृतान्ताने हसोः कालश्चतुर्थेऽपि युगे कलिः ।

(अमरकोष-३/३/७५३)

कलि अर्थात् कलह (लड़ाई, झगड़ा, फूट)।

संप्रहाराभिसंपातकलिसंस्फोट संयुगाः ।

(अमरकोष-२/८/११४२)

अर्थ – कलि के अनेक रूप हैं। एक सम्प्रदाय का दूसरे सम्प्रदाय से कलह, एक-दूसरे की निन्दा। यहाँ तक स्थिति है कि कोर्ट में मुकदमे तक होते हैं, मात्र स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए। इष्ट-प्रधानता के स्थान पर 'ममाहं' प्रधान हो जाता है। प्रायः अनन्यता

की घोषणा करने वाले 'ममाहं सेवी' होते हैं और जब तक अहंता ममता के प्रबल पाश में आबद्ध है तब तक नित्य हृयस्थ होने पर भी भगवत्तत्व का अनुभव सर्वथा असम्भव है।

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम् ॥

(भा.३/५/४३)

जहाँ ममाहं (मैं-मेरा) की प्रधानता हुई, इष्ट हृदयस्थ होते हुए भी सुदूर हो जायेगा। भगवान् के अत्यधिक अनुग्रह से ही ममाहम् की निवृत्ति होती है।

येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥

(भा.२/७/४२)

जिन पर भगवान् अनुग्रह करते हैं, वे कृपापात्र जीव ही मैं-मेरा रूप दुस्तर माया से पार होते हैं। अन्यथा बड़े-बड़े अनन्य घोषक भगवद्शरणागति से दूर हो जाते हैं, सर्वात्मनाश्रित नहीं रह पाते हैं। कपट आया और शरणागति बिगड़ी। ममाहं मति ही कपट है। थोड़ा-सा भी कर्तृत्व आया तो शरणागति भंग हुई।

सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥

(भा. ११/५/४१)

कर्तृत्व के रहते सम्पूर्ण शरणागति नहीं हो सकेगी। कर्तृत्व छोड़ने पर ही जीव सर्वात्मभाव से शरणापन्न होगा और तब ही धर्म की सिद्धि होगी अन्यथा कर्तृत्व से स्वामित्व, स्वामित्व से अधिकार बुद्धि हो जायेगी। अनात्म वस्तुओं के प्रति ममत्व आ जायेगा।

"एकादशं स्वीकरणं ममेति"

(भा.५/११/१०)

परकीय वस्तु में स्वकीय भाव स्थापन यह स्वीकरण है यहाँ अभूततद्भावार्थ में च्वि प्रत्यय है। संसार की कोई भी वस्तु न हमारी थी, न है, न होगी और उसे बलात् अपना बनाना, यह "अभूततद्भाव" है। इस प्रकार अनात्म वस्तुओं के प्रति हुई ममता से आत्मपात हो जाता है। ऐसी स्थिति में भगवान् से मिलना तो बहुत दूर, स्वरूप से भी विच्युति हो जाती है।

तं सत्यमानंदनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद् यत आत्मपातः ॥

(भा. २/१/३९)

भगवान् के अतिरिक्त चराचर संसार में कहीं भी आसक्ति होना आत्मपात है। आत्मपात होने के बाद अनन्यता आकाश पुष्प की भाँति कल्पनामात्र है।

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः ।
अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥

(भा. १/१७/२४)

अनात्म वस्तुओं के प्रति आसक्ति व मद रहने से धर्म के सभी चरण नष्ट हो जाते हैं और साधक अनन्यता के धोखे में ही रह जाता है। बारम्बार अनन्यता का उद्घोष करता है लेकिन स्थिति वही है **"थोथा चना बाजै घना"।**

तथापि लोको न भवन्तमन्धधीर्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥

(भा. ८/२४/५२)

कामनाओं में बँधकर मनुष्य अन्धाहो जाता है व भूल जाता है कि भगवान् हृदयस्थ ही हैं। अन्धताग्रसित स्थिति में रसानुभूति कहाँ?

रसानुभूति तो तब ही होती है जब –

मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत् स्वप्नसंस्तुतम् ।
विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत् पुमान् ॥

(भा. ९/४/१६)

अम्बरीष जी की भाँति सातों द्वीपों का ऐश्वर्य प्राप्त हो, देवदुर्लभ अव्यय लक्ष्मी प्राप्त हो, जो समस्त प्राणियों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा होने पर भी सब कुछ स्वप्नवत् तुच्छ समझा जाए क्योंकि ये सब अन्धकार है। अन्धकार में आसक्त जीव उलूक ही बन सकता है, अनन्य रसिक नहीं।

जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।

(रा.च.मा.अयो. १२७)

भगवान् को जानने वाला तो भगवद्रूप ही हो जाता है।

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥

(पा.यो.दर्शन १/४)

जैसी वृत्ति है वैसा ही स्वरूप प्राप्त होगा। वृत्ति विष्ठा-विषयिणी है अतः रसरूप तो बनेंगे नहीं, विष्ठा रूप हो जाएंगे। रसरूपता के लिए प्राकृत विषयों से पूर्ण निर्वेद सर्वथा अपेक्षित है।

और इस निर्वेद की प्राप्ति होगी श्रद्धापूर्वक भवच्चरित्र के गान व श्रवण से।

कथा श्रवण से होगा यह निर्वेद –

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमायतवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥

(भा.१०/८७/२१)

परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति, जो कि कठिन है उसे सरल बनाने के लिए ही भगवान् अनेक अवतार लेकर लीलाएं करते हैं जो अत्यंत मधुर और रसमयी होती हैं। सन्त, महापुरुषों द्वारा उन लीलावतारों की कथा इतना सुख प्रदान करती हैं कि अनुरागी जन उसके लिए अपनी घर-गृहस्थी को भी त्याग देते हैं और परमानन्द में मग्न होकर मोक्ष की भी अभिलाषा नहीं करते हैं।

ज्ञानमार्ग कठिन है।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका।
साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥

(रा.च.मा. उत्तर. ४५)

अतः भगवान् अवतार लेकर लीला करते हैं जो सहजगम्य है। यह लीला गान अमृतसिन्धु से भी कहीं अधिक मधुर व मादक है।

"हृत्कर्णरसायनाः कथाः"

(भा.३/२५/२५)

सन्त ही उन लीलाओं का ज्ञान कराते हैं। कैसी है वो लीलाकथा? हृदय व कानों के लिए रसरूप है। रसायन है अर्थात् ऐसी औषधि है जो खाने में प्रिय लगे एवं खाने के बाद लाभ करे।

इस रसायन का जो सेवन करते हैं, उनकी सब श्रान्ति दूर हो जाती है और उस परमानन्द की अनुभूति होती है जिसके आगे मोक्ष भी तुच्छ हो जाता है फिर स्वर्गादि की क्या चलाई? देह-गेहासक्ति का भी परित्याग कर देते हैं।

यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति॥

(भा. ३/५/११)

यही तो इस रसायन की विशेषता है, जो जितना सेवन करेगा, उतना ही इससे अतृप्त रहेगा। नारदादि भी जिसका निरन्तर गान करते रहते हैं, जिनके कानों में यह पड़ जाये, उसकी गेहरति नष्ट हो जाती है।

संसृति चक्र का कारण ही है “गेहरति”। गेहरति के रहते अनन्यता असम्भव ही है।

प्रह्लाद जी के वचन –

मा मां प्रलोभयोत्पत्त्याऽऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः।
तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः॥

(भा. ७/१०/२)

हे नाथ! मैं संसारासक्ति से भयभीत होकर आपकी शरण में आया हूँ।

तदा पुमान्मुक्तसमस्तबन्धनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः।

(भा.७/७/३६)

जब आसक्ति नष्ट होगी तब ही तद्भाव अर्थात् कृष्णभाव की प्राप्ति होगी। जैसी भावना होगी, वैसा ही आशय (अन्तःकरण) बनेगा।

जब वृत्ति कृष्णमयी होगी तब ही अनुशयाकृति कृष्णाकृति होगी। कृष्णाकृति अर्थात् कृष्ण-ममता प्राप्त होगी अनन्तर जन्म-मृत्यु का बीज जल जायेगा।

हम रौरव नरक की तैयारी में लगे हुए हैं और स्वयं को अनन्य समझते हैं, यह आत्मवञ्चना है।

श्री कपिल भगवान् के वचन –

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः ।
याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥

(भा. ३/३०/३३)

अन्यायोपार्जित धन से देह-गेहादि का भरण-पोषण करने वाले कुटुम्बपोषी जन अंधतामिस्र नरक की यातनायें भोगते हैं, जहाँ चरम कष्ट है।

ऐसे कुटुम्बपोषी शाब्दिक अनन्य ही हैं। इनके संग से दूर ही रहना चाहिए।

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।
त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥

(भा. ६/११/२७)

हे नाथ! जन्म-मरण से मैं नहीं डरता हूँ और मुक्ति की कोई इच्छा नहीं है। प्रार्थना यही है कि मैं जहाँ जिस योनि में जाऊँ, आपके प्राणप्रिय भक्तों से ही मेरा सम्बन्ध रहे। देह-गेहादि, स्त्री-सुतादि में आसक्त जनों से मेरा कभी किसी प्रकार का सम्बन्ध न हो।

यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ।

(भा. १/१८/२२)

देह-गेहादि की दृढ श्रृंखलाओं को तोड़ देने वाला ही धीर है।

सन्त-संग से होगा संसारासक्ति का नाश –

प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥

(भा. ३/२५/२०)

आसक्ति आत्मा का अच्छेद्य बन्धन अवश्य है किन्तु यही आसक्ति जब सन्त-महज्जनों के प्रति हो जाती है तो मोक्ष का खुला द्वार बन जाती है।

ध्रुव जी के वचन –

ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ।
ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्द सौगन्ध्यलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥

(भा. ४/९/१२)

हे प्रभो! जिनका चित्त आपमें अनुरक्त है, उनका संग करने वालों को अपने भी शरीर की स्मृति नहीं रहती फिर पुत्र, मित्र, गृह, धन एवं स्त्री में आसक्ति करने का उनके पास अवकाश ही कहाँ। वे तो सर्वात्मभाव से भगवत प्रपन्न हो जाते हैं। गीता में श्रीकृष्ण का यही अन्तिम उपदेश है –

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

(गी. १८/६२)

अथवा

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८/६६)

सभी धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा।

सर्वभाव से भगवान् के शरणागत हो जाना यही विशुद्ध भागवत धर्म है। सर्वभाव में सभी सम्बन्ध, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार – सबका ग्रहण है अर्थात् सर्वभाव से भगवान् में ही सब सम्बन्ध स्थापित कर दिये जाएं।

जिसका अन्तःकरण (मन, बुद्धि...) इन्द्रियाँ (वाणी, श्रोत्रादि....) एवं सब सम्बन्ध (गुरु, माता, पिता आदि ....) सब भगवान् में हैं, वही अनन्य है।

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥

(भा. ३/२५/३२)

ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय तथा मन की भगवान् में स्वाभाविक गति का नाम ही अनन्य भक्ति है।

"अनन्याश्चिन्तयन्तो माम्"

बाह्य क्रियाओं में अनन्यता का प्रदर्शन अनन्यता नहीं है। मन यदि इष्ट में नहीं है तो बाह्य क्रियाओं में जो अनन्यता है, वह सार्थक नहीं है। सारांश यही है –

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

(गी. १२/८)

भगवान् कहते हैं –

मन व बुद्धि दोनों मुझमें ही रहे, फिर निःसंदेह तुम मुझमें ही निवास करोगे।

मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ।

(भा. ३/२९/११)

गंगा के प्रवाह के समान मन की अविच्छिन्न गति इष्ट में होनी चाहिए।

अनन्य व्यक्ति को सदैव अपने मन पर ध्यान रखना चाहिए। कहीं मन इष्ट को छोड़कर अन्यत्र तो नहीं दौड़ रहा है।

राम जी के हनुमान के प्रति वचन –

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥

(रा.च.मा.किष्कि. ३)

हनुमान! अनन्य वही है, जिसकी बुद्धि इस निश्चय पर अटल है कि मैं प्रभु का सेवक हूँ और यह चराचर जगत मेरे स्वामी का ही रूप है।

इससे विपरीत जो स्वयं को जगत का स्वामी समझ बैठते हैं, वे मूढ़ ही हैं। अनन्य थीं विन्ध्यावली।

विन्ध्यावली जी ने कहा –

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ।
कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥

(भा. ८/२२/२०)

अरे! जो किसी वस्तु पर अपना अधिकार समझते हैं वे अनन्य क्या कुधि अर्थात् दुष्टबुद्धि के लोग हैं। कर्तुः – संसार को बनाने वाले प्रभु हैं; प्रभोः – पालन करने वाले भी वे हैं; अस्यत – संहारक भी वे ही हैं। अपनी क्रीडार्थ यह संसार बनाया था। तुम कहाँ से इसके स्वामी हो गये? वे निर्लज्ज हैं जो स्वयं को स्वामी समझते हैं।

इहिं बिधि कहा घटैगौ तेरौ?
नंदनंदन करि घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहु चेरौ ॥
कहा भयौ जौ संपति बाढ़ी, कियौ बहुत घर घेरौ ।
कहुँ हरि-कथा, कहुँ हरि-पूजा, कहुँ सन्तनि कौ डेरौ ॥

जो बनिता-सुत-जूथ सकेले, हय-गय-बिभव घनेरौ ।
सबै समर्पौं 'सूरस्याम' कौं, यह साँचौ मत मेरौ ॥

'न अन्य यस्य स अनन्य' – जिसका कोई दूसरा है ही नहीं, वह अनन्य है।

अनन्य थे ब्रजवासी –

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति न-
श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥

(भा. १०/१४/३५)

जिसका अपना कुछ है ही नहीं। घर, धन, सुहृद, प्रिय, शरीर, पुत्र, प्राण, अन्तःकरण – सब कुछ तो आपका ही है। अपने प्राण भी तो अपने लिए नहीं, वे भी कृष्ण के लिए हैं। इसलिए श्रीकृष्ण के मथुरागमन के बाद गोपियों ने प्राण परित्याग नहीं किया। असह्य वियोग का वहन करती रहीं। जो वस्तु कृष्ण की है उसे नष्ट करने का अधिकार हमें कहाँ?

आज भी ब्रजवासी गाते हैं –

रस ले तो द्वार परयो रहियो ।
जो रसिया तू रस को भूखो मारधार सबकी सहियो ॥

अनन्य के भगवान् भी ऋणी –

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(भा.१०/३२/२२)

हे गोपिकाओ ! तुमने मेरे लिए सर्वत्याग किया अतः मैं तुम्हारा भजन करने एकान्त में चला गया। मैं अनन्त सर्वशक्तिमान ईश्वर तुम्हारा ऋणी हूँ। यदि ये उत्तमर्ण (ऋण देने वाली) गोपियाँ मुझ अधमर्ण (ऋण लेने वाले) को स्वयं उऋण कर दें तो ठीक है अन्यथा मैं तो जन्म-जन्मान्तर तक इनका ऋणी हूँ।

कोई दुर्जर गेह श्रृंखलाओं को तोड़ने का साहस तो करे, भगवान् भी ऋणी हो जाते हैं। "लोक वेद की कठिन श्रृंखला तोड़ें गोपी वीर" सर्वात्म भाव की शरणागति में गुरुधर्म, मातृधर्म, आचार्य धर्म.......सभी धर्म गौण हो जाते हैं।

वृन्दानि सर्वमहतामपहायदूराद् वृन्दाटवीमनुसर प्रणयेन चेतः ।
सत्तारणीकृतसुभावसुधारसौघं राधाभिधानमिह दिव्यनिधानमस्ति ॥

(रा.सु.नि. ८)

राधासुधानिधिकार तो यहाँ तक कहते हैं कि यदि तुम्हें महापुरुष संश्रय (सद्गुरु आश्रय) की आवश्यकता भी है तो अन्यत्र क्यों जाते हो? इस धाम में सत् तारिणी निधि (सत्पुरुष तारिणी) श्री राधा रानी विराजमान हैं, जिन्होंने अनेक महापुरुष सत्पुरुषों का कल्याण किया, वे तुम्हारा भी कल्याण करेंगीं। उन्हें ही गुरु मान लो।

स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मन्दिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥

(रा.च.मा. अयो. १३०)

जड़ शरीर, सम्बन्धों में आसक्त मनुष्य जाग!

जागु, जागु, जीव जड़! जोहै जग-जामिनी ।
देह–गेह–नेह जानि जैसे घन–दामिनी ॥
सोवत सपनेहुँ सहै संसृति-संताप रे ।
बूडयो मृग-बारि खायो जेवरी को साँप रे ॥
कहैं बेद-बुध, तू तो बूझि मनमाहिं रे ।
दोष-दुःख सपने के जागे ही पै जाहिं रे ॥
तुलसी जागेते जाय ताप तिहुँताय रे ।
राम-नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥

(तुलसी विनय पत्रिका – ७३)

अरे मूढ़ जीव, जाग! इस संसार रूपी रात्रि को देख! शरीर, घर, परिवार का प्रेम तो बादलों के बीच की बिजली की तरह है, जिसकी चमक क्षणिक ही है। सभी आसक्ति, सभी सम्बन्ध भगवान् में आरोपित कर लेने मात्र से कालातीत हो जायेगा ।

श्री कपिल देव के वचन –

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥

(भा. ३/२५/३८)

जिनके प्रिय, आत्मा, सुत, सखा, गुरु, सुहृद, दैव, इष्ट सर्वस्व भगवान् ही हैं, काल की क्या सामर्थ्य जो उनका स्पर्श भी कर ले।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई ॥

(मीरा जी)

पुनः

तात मात, गुरु-सखा तू सब बिधि हितु मेरो ।
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै ।
ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै ॥

(तुलसी विनय पत्रिका-७९)

श्रीबिहारिनदेव की वाणी में –

प्रभु जू हौं तेरा तू मेरा ।
राजी खसम कहा करै काजी, लोग बकौ बहुतेरा ।
हौं तू एक अनेक गनें गुन दोस न किसहू केरा ।
जल तरंग लौं सहज समागम निर्मल साँझ सबेरा ।
कोऊ स्वामी कोऊ साहिब सेवक कोऊ चाकर कोऊ चेरा ।
बिना ममित्त इकत्त न ऐसा जगत भक्त सु घनेरा ।
तन मन प्राँन प्राँन सों सनमुख अब न फिरै मन मेरा ।
श्री बिहारीदास हरिदास नाम निज प्रेम निबेरा झेरा ॥

(बिहारीदास-३५)

पुनः

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अञ्जन कहा आंखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ।

(तुलसी.वि.प-१७४)

पुनः

श्रीरामजी के वचन –

जननी जनक बन्धु सुत दारा ।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥
सब कै ममता ताग बटोरी ।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ॥

(रा.च.मा.सुन्द. ४८)

श्री प्रह्लादजी के वचन –

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जन्तोर्यथाऽऽत्मसुहृदो जगतस्तथापि ।
संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥

(भा. ७/९/२७)

यद्यपि भगवान् की जीवों के प्रति परावर (छोटी-बड़ी) बुद्धि नहीं है तथापि पक्षपात दिखायी देता है।

यथा – हिरण्यकशिपु का वध किया व प्रह्लाद जी की रक्षा की।

भगवान् तो कल्पतरूवत् सबके लिए समान हैं। जैसे कल्पतरू के नीचे आसीन व्यक्ति को इच्छानुरूप वस्तु की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार यहाँ भावानुरूप भगवान् की प्राप्ति होती है।

'जाकी रही भावना जैसी । प्रभू मूरत देखी तिन तैसी ॥'

(रा.च.मा.बा.का.२४१)

इसमें कल्पतरू का क्या दोष?

भगवान् में परावरत्व नहीं है।

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥

(भा. ३/२४/३१)

भावना का प्रतिफल है भगवान्।

यदास्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः ।
न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥

(भा. ३/३२/२४)

यूँ तो सभी विषय पदार्थ भगवद्रूप होने से समान ही हैं किन्तु किसी की प्रकृति सत्वगुण प्रधान है तो उसे सात्विक वस्तु रुचिकर होती है, रजोगुणी को राजसी वस्तु प्रिय लगती है एवं तमोगुणी को तामसी। जैसे किसी का तो भोजन ही मद्य-माँस है और किसी के लिए वही विष तुल्य है। वस्तुतः भावों की विषमता से ही वस्तु में विषमता की प्रतीति होती है।

शुद्ध वैष्णव व भागवत धर्म पर आधारित भारतीय संस्कृति विषमता को दूर करने वाली आर्य संस्कृति है।अतः सम्पूर्ण मानव जाति के लिए पूज्य है एक उत्तम अग्रणी है इस लिए श्री मनु महाराज कहते हैं। यदि मानवीय मूल्यों को महत्त्व देना है, मानवता का उत्थान करना है तो –

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

(मनु स्मृति –२/२०)

इस देश में उत्पन्न विप्र व इस देश की संस्कृति से ही समग्र विश्व को शिक्षा लेनी चाहिए क्योंकि यह वो संस्कृति है जो समस्त विषमताओं को दूर करती है। दोष विषमताओं से आते हैं।

'हिनस्ति दोषान इति हिन्दू'

जो दोषों का नाश कर दे वो हिन्दू है।

आज की शिक्षा 'हिनस्ति गुणान्' – शम, दम, दया, तितिक्षादि दैवी गुणों को नष्ट कर भेदोत्पन्न्न करने वाली है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

(गी. १२/१३)

समस्त प्राणियों के प्रति अद्वेष, करुणा, मैत्री का होना एवं अहंता-ममता का न होना, यही है भारतीय संस्कृति। यही हिन्दुत्व है, वैष्णवता है व रसिकता भी है।

देखें महावाणी –

सब जीवनि पर करुना राखें ।
कबहूँ कठोर बचन नहिं भाखें ॥

(महावाणीसिद्धान्त सुख-३१)

रामचरितमानस में –

श्रद्धा छमा मयत्री दाया ।
मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥

(रा.च.मा. अरण्य. ४६)

विषमता आसुरी भाव है।

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनःसमं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः ।
ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात् तद्धि ह्यनन्तस्य महत् समर्हणम् ॥

(भा. ७/८/१०)

प्रह्लादजी ने कहा – पिता जी! इस आसुरी भाव को छोड़िए। अपने मन को समान बनाइये। संसार में जीव का सबसे बड़ा शत्रु यह मन ही तो है। मन में समता का भाव आना ही भगवान् की सबसे बड़ी पूजा है।

आज सर्वत्र विषमता का ही नृत्य हो रहा है।

यदास्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः ।
न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥
स तदैवात्मनाऽऽत्मानं निःसङ्गं समदर्शनम् ।
हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥

(भा. ३/३२/२४, २५)

जब चित्त की विषमता-निवृत्त होती है तो राग-द्वेषादि द्वंद्वों से स्वतः मुक्ति हो जाती है, ऐसी स्थिति में उसे सर्वत्र इष्ट-दर्शन होता है। तत्काल निःसङ्गता व समत्व में स्थिति प्राप्त कर लेता है एवं गुण-दोष से रहित होकर आत्मसाक्षात्कार कर लेता है।

अनर्थ हैं अनन्यता में बाधक

श्री ऋषभदेव जी के वचन –

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्धयेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥

(भा. ५/५/१)

भगवद्रस अथवा भगवद्प्रेम का अभ्युदय शुद्धान्तःकरण में ही सम्भव है। अन्यथा प्रेम-रस के स्थान पर अनर्थों का आविर्भाव होता रहेगा और अनर्थों के रहते नैष्ठिकी रति सम्भव ही नहीं है।

भागवत में सर्वप्रथम यही उद्घोष हुआ –

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥

(भा.१/२/१८)

अर्थात् श्रीमद् भागवत अथवा भगवद्भक्तों के निरन्तर सेवन से समस्त अनर्थ निवृत्त हो जाते हैं तब इष्ट के प्रति नैष्ठिकी रति का उदय होता है।

नैष्ठिकी-रति (शुद्ध अनन्यता) एवं अनर्थ उसी प्रकार हैं जैसे सूर्य व अन्धकार।

श्रीसनकादिक के वचन –

यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ।
दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥

(भा. ४/२२/२६)

जिस काल में इष्ट के प्रति नैष्ठिकी-रति 'अनन्य प्रेम' होगा, सद्गुरु की शरण लेकर ज्ञान-वैराग्य की प्रबलता में 'लिंग शरीर' उसी प्रकार भस्म हो जायेगा जैसे काष्ठ से प्रकट अग्नि काष्ठ को ही भस्म कर देती है।

आजकल समाज में अशुद्ध अन्तःकरण में 'अनन्यता' संकीर्णता बनकर उभर रही है। यद्यपि राग रजोगुण है किन्तु शुद्धान्तःकरण में वही राग एकनिष्ठ होकर प्रेम बन जाता है और वही राग अशुद्धान्तःकरण में त्याज्य-भोग बन जाता है।

श्रीप्रह्लादजी के वचन –

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्नापसर्पति ॥

(विष्णु.पु.१/२०/१९)

जो प्रीति अविवेकियों को विषयों में अविच्छिन्न रूप से रहती है, वही प्रीति आपका स्मरण करते समय मेरे हृदय से न जाये। वृत्ति वही रहे।

नाथ योनि सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेषु अच्युताभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥

(विष्णु पु. १/२०/१८)

हे नाथ! सहस्त्रों योनियों में जहाँ-जहाँ मैं जाऊँ, उनमें हे अच्युत! मेरी आपके प्रति अच्युत भक्ति हो।

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ ॥

(रा.च.मा.किष्कि. १०)

अतः गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा –

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ८७)

कपट छोड़कर सर्वभाव से मुझे भजने वाला पुरुष हो अथवा नपुंसक, स्त्री हो अथवा चराचर कोई भी जीव हो, वह मुझे परम प्रिय है।

कपट क्या है?

जब राग एकनिष्ठ न होकर व्यभिचार करता है तो वही कपट बन जाता है अर्थात् सत्य पर पर्दा डालना ही कपट है।

श्रीभगवान् के वचन –

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेश सेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

(गी. १३/१०)

मुझ परमेश्वर में अनन्ययोग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति करे एवं एकान्त में रहे अथवा पवित्र देश में रहे, विषयी पुरुषों से कोई सम्बन्ध न रहे।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

(गी. १४/२६)

अव्यभिचारिणी भक्ति (अनन्य भक्ति) योग से मुझ ईश्वर को जो भजता है, त्रिगुणातीत होकर ब्रह्म-प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है किन्तु हमारा राग शरीर व इन्द्रियों के प्रति है अतः कपट का आना स्वाभाविक ही है।

किन्तु भगवान् छल, कपट से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं हैं।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४४)

देहेन्द्रियात्मक वासनाओं का पोषण कपट है, उनके पोषण हेतु आत्मगोपन करना छल है और भक्त व भगवान् के प्रति अभाव छिद्र है। इसी से तो जय-विजय का परमधाम से पतन हुआ। हम विषयी होकर अनन्यता का दावा नहीं कर सकते। 'अनित्य पदार्थों का चिन्तन, इन्द्रियों की वैषयिकी प्रवृत्ति' अनन्यता तो क्या इष्ट की उत्कण्ठा को भी नष्ट कर देती है। उत्कण्ठित पुरुष का लक्षण है –

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ।
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ॥

(भा.२/६/३३)

विधि के वचन – प्रिय नारद! मेरी वाणी कभी मृषा भाषण नहीं करती है, मन कभी मृषा संकल्प नहीं करता और मेरी इन्द्रियाँ भी असत् पथ की ओर नहीं जाती हैं क्योंकि मैंने उत्कण्ठापूर्वक हृदय में श्रीहरि को धारण कर रखा है।

रस-प्राप्ति तो दूर, रस की उत्कण्ठा में ही विषय-चिन्तन एवं विकर्म की निवृत्ति हो जाती है। उत्कण्ठा का तात्पर्य है –

समुत्कण्ठा निजाभीष्टलाभाय गुरुलुब्धता ॥

(भक्ति रसामृत सिन्धु १, ३.३६)

अपने अभीष्ट (श्रीकृष्ण) की प्राप्ति के लिए अतिशय लोभ ही उत्कण्ठाहै।

इसी को भक्ति शास्त्र में उत्कण्ठा या लालसा कहते हैं।

औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः

(भा.१/६/१७)

अथवा

छुटी त्रिविध ईषना गाढ़ी । एक लालसा उर अति बाढ़ी ॥
राम चरन बारिज जब देखौं । तब निज जन्म सफल करि लेखौं ॥

(रा.उ.कां.११०)

उपनिषदों की शैली में विविदिषा एवं दर्शन शास्त्र में जिज्ञासा कहते हैं।

तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन ।

(बृहदारण्यकोपनिषत्-४/१०/२२)

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥

(ब्रह्मसूत्र १/१/१)

परन्तु इस उत्कण्ठा, विविदिषा या जिज्ञासा का उदय राग-द्वेषादि शून्य साधन चतुष्टय सम्पन्न शुद्धान्तःकरण में ही सम्भव है।

भाष्यकार भगवान् श्रीशंकराचार्य कहते हैं –

विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः ।
मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता मता ॥

(विवेक चूड़ामणि)

भगवद्तत्व की, जिज्ञासा की योग्यता के लिए सत्-असत् का विवेक, वैराग्य, शमादि षट सम्पत्ति एवं मुमुक्षा का होना आवश्यक है।

नित्यानित्यवस्तुविवेक – ब्रह्म सत्य है एवं जगत अनित्य है, यह निश्चय ही 'नित्यानित्यवस्तु विवेक' है।

वैराग्य – शरीर से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त अनित्य भोग्य पदार्थों के श्रवण व दर्शन मात्र से उनके प्रति हेय बुद्धि का होना ही 'वैराग्य' है।

शमादि षट सम्पत्ति –

शमादि षट सम्पत्ति में शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा व समाधान हैं।

शम – विषयों में बार-बार दोष दृष्टि करने से चित्त का विरक्त होकर स्व-लक्ष्य में स्थिर होना ही 'शम' है।

दम – दसों इन्द्रियों (पाँच कर्मेन्द्रियाँ –पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) को विषयों से खींच लेना ही 'दम' है।

उपरति – बाह्य विषयों का आलम्बन न लेना ही 'उपरति' है।

तितिक्षा – चिन्ता व शोक से रहित होकर बिना प्रतिकार के सब कष्टों को सह लेना 'तितिक्षा' है।

श्रद्धा – शास्त्र व् गुरु वाक्यों के प्रति सत्य बुद्धि की धारणा ही श्रद्धा है।

समाधान – बुद्धि को सदा भगवान् में स्थिर रखना ही 'समाधान' है।

मुमुक्षा – संसार से छूटने की इच्छा।

हम अनन्यता का उद्घोष (दावा) करते हैं किन्तु इन्द्रियाँ अनर्थ की ओर जा रही हैं, अनन्यता तो क्या वहाँ रति ही सम्भव नहीं है।

साँचौ नहिं निज धर्म कोउ कासों करिये प्रीति ।
ब्यभिचारी सब देखिये आवत नहिं परतीति ॥
'भगवत रसिक' अनन्य संग की सहै न आँचौ ।
कूकर हाड़ चबाय सिंह मारै गज साँचौ ॥

(श्रीभगवतरसिक जी)

कोई भी अपने धर्म के प्रति अनन्य नहीं है। सर्वत्र प्रेम के स्थान पर व्यभिचार ही दिखाई पड़ रहा है और व्यभिचारियों के लिए 'रस व रसिकों का स्पर्श' आग को छूने के समान है। कोई सिंह ही हाथी को पछाड़ सकता है। कुत्ते की सामर्थ्य तो सूखी हड्डी चबाने तक ही है। इसी प्रकार विशुद्ध रस को पचाने की सामर्थ्य किसी अनन्य रसिक में ही है। व्यभिचारी पुरुष तो चबे को ही चबा सकता है।

विष कौ कीरा विष ही खाय, मिश्री सूँघत ही मरि जाइ ॥
श्रीबिहारीदास जो जाहि हिताइ, ता बिनु तासों रह्यो न जाइ ॥

(श्रीबिहारिनदेव जी की वाणी-३९५)

अथवा

भक्ति मुक्ति के छूटे द्वार । विषै आबरन कठिन किबार ॥
बिनु बैरागै भक्ति न ग्यान । प्रगट पुकारै बेद पुराँन ॥

(श्रीबिहारिनदेव जीसिद्धान्त के पद -५)

भक्ति छोड़कर मन व इन्द्रिय-चेष्टा अनर्थ की ओर जा रही हैं तो वहाँ अनन्यता की कल्पना रात्रि में सूर्य- दर्शनवत् है। अनन्य वही है जो अपने इष्ट के नाम, रूप, गुण, लीला के अतिरिक्त न अन्य कुछ सोचता है, न कहता है, करना तो सुदूर है।

चिन्तन की अनन्यता बिगड़ती है अनिष्ट-चिन्तन से और अनर्थों के रहते इष्ट-चिन्तन नहीं, अनिष्ट-चिन्तन ही होगा।

अनर्थ-निवृत्ति का एक ही उपाय है।

श्रीप्रह्लादजी के वचन –

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥

(भा. ७/५/३२)

निष्किञ्चन महापुरुषों के पद-रजाश्रय से, भगवच्चरणाम्बुजों का स्पर्श करने से समस्त अनर्थ निवृत्त हो जाएंगे किन्तु यदि किसी निष्किञ्चन महापुरुष का पद-रजाश्रय नहीं लिया तो कुछ नहीं होगा। अतः विवेकी साधक ऐसे सन्त-महापुरुषों की चरण तल की छाया में ही निरन्तर साधन परायण रहें अयातयाम साधन की स्थिति रहे।

अयातयामास्तस्यासन् यामाः स्वान्तरयापनाः ।
शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥

(भा.३/२२/३५)

श्रीमनुजी महाराज ३० करोड़ वर्ष तक अयातयाम बने रहे। आज के कलिहत जीव प्रमादवशात् सीमित काल को भी अयातयाम नहीं बना पाते। जबकि रहनी ऐसी होनी चाहिए –

वृन्दावन में बसत ही एतो बड़ो सयान ।
जुगल चन्द्र के भजन बिन निमिष न दीजे जान ॥

(श्रीध्रुवदासजी, बयालीस लीला)

अनन्यता के धोखे में ईशरिक्तता

अनन्य हैं अथवा शून्य?

"भावो हि भवकारणम्"

(भा. १०/७४/४६)

पुनः

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवेति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

(गी. ८/५)

मृत्यु काल में भावानुसार ही जीव की गति होती है। ऐसा न हो कि अनन्यता के लोभ में हम ईशरिक्त हो जाएं।

कै हंसा मोती चुगै, कै लंघन करै उपवास ।

हंस या तो मोती चुगेगा अथवा उपवास ही करेगा। निकुञ्ज-रस की अनन्यता के लोभ में कहीं ऐसा न हो किनिकुञ्ज -रस तो हाथ आया नहीं, अन्य सख्य-रस आदि

लीलाओं को और छोड़ दिया। इसी अपराध से बचने के लिए भक्तिमार्ग में यह स्वतन्त्रता दी गई है –

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो॥
कतमोऽपि न वेनः स्यात्पञ्चानां पुरुषं प्रति।
तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्॥

(भा. ७/१/३०, ३१)

चाहे काम से, भय से, द्वेष से, सम्बन्ध से, स्नेह से अथवा भक्ति से मन श्रीकृष्ण में लग जाना चाहिए। इसका उदाहरण हैं – 'ब्रजगोपीजन, कंस, शिशुपाल, यदुवंशी, पाण्डव एवं नारदजी' जो क्रमशः इन्हीं भावों के अवलम्बी थे किन्तु अनन्यता के लोभ में जीव शून्य हो जाता है।

"चौबे जी गये छब्बे बनने दुबे ही रह गये"

साधन शून्यता में विकर्ममयी प्रवृत्ति हो जाती है।

An empty mind is a devil's workshop.

साधन शून्यता में किसी से राग होगा, किसी से द्वेष।

राग-द्वेष आने का कारण ही है 'साधन शून्यता'।

"विधि-निषेध के जे जे कर्म।
तिनको त्याग बने निष्कर्म।"

(महावाणी)

विधि अखण्ड स्मृति सरस भूलन सोइ निषेध।
व्रत अनन्य दृढ़ एक यह प्रगटा प्रगट अभेद॥

निषिद्ध कर्म तो छूटे नहीं, विधि कर्म छूट गये।

निषिद्ध कर्मों से निवृत्ति होती तो नैष्कर्म की सिद्धि होती।

प्रह्लाद जी के वचन –

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वामिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्॥

(भा. ७/५/३०)

जब तक इन्द्रियों की गति तामिस्र में है, नैष्कर्म्य कहाँ सम्भव?

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

(गी. ३/५)

जब तक श्वास है, हर जीव कर्म करने को बाध्य है।

अकर्मण्यता में प्रमाद और प्रमाद में इन्द्रिय प्रीति के निमित्त ही सब कर्म होंगे। इन्द्रिय प्रीत्यर्थ कर्म ही विकर्म हैं।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

(गी. ४/१६, १७)

कर्म व अकर्म के ज्ञान में बड़े-बड़े विवेकीजन भी मोहित हो जाते हैं। कर्मों की गति बहुत गहन है अतः कर्म, अकर्म का सम्यक् ज्ञान होना परमावश्यक है। इसके लिए श्रीमद्भगवद्गीता जी का तीसरा, चौथा, पाँचवा अध्याय द्रष्टव्य है।

विकर्म से बहिर्मुखता व अपराध प्रवृत्ति – ये दो ही विशेष रूप से बढ़ती है। उपासना तो वहाँ सम्भवनहीं अतः अपराध ही होता है।

सती जी के वचन –

नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु।
सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम् ॥

(भा. ४/४/१३)

दुष्ट पुरुष निरन्तर सन्त-महापुरुषों की निन्दा करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त वे बेचारे करें भी क्या? फिर ईर्ष्या, द्वेष दुष्टों का काम ही ठहरा। सर्वदा शान्त रहने वाले महापुरुषों पर इसका कोई प्रभाव भी नहीं पड़ता किन्तु उनकी चरणरज इस असह्य अपराध को सह नहीं पाती है और निन्दकों का तेज नष्ट कर देती है।

महद्विनिन्दा जैसा महापाप उन महापातकियों को ही शोभा देता है।

यह अपराध ही आज सम्पूर्ण समाज को तेजहीन कर रहा है अतः अनन्यता के लिए कर्मत्याग में बहुत सावधानी अपेक्षित है; अन्यथा इसका दुष्परिणाम विनाश ही होगा।

कर्मत्याग तो कामचोरी है।

भजन विमुख मात्र शाब्दिक उपदेष्टा चोर हैं। आज समाज में ऐसे उपदेष्टाओं की बहुलता देखी जा रही है, जिससे समाज निःशक्तिक हो विनाशोन्मुख हो रहा है। बिना फलत्याग के सर्वत्र ममता वृद्धि से प्राणीमात्र चोर बन रहा है और इस दृष्टि से संसार का प्रत्येक प्राणी चोर है।

समाज को समृद्ध, शक्तिसम्पन्न व दिव्ययोग से युक्त करने के लिए फलत्यागपूर्वक सेवोन्मुख होना चाहिए।

सिद्धासि भुङ्क्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥

(भा. ३/२३/८)

राजाओं को भी जो दुर्लभ है, सेवा से वे दिव्य भोग व दिव्य सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं।

ऐसी सिद्धि, सम्पदा से सम्पूर्ण देश ही समृद्ध हो जायेगा।

ऐसा सेवा भाव प्राप्त हो जाये कि जिसके आगे भगवद्दर्शन, भगवद्-मिलन भी फीका लगने लगे।

संपति सब रघुपति कै आही।
जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई।
पाप सिरोमनि साइँ दोहाई॥

(रा.च.मा. अयो. १८६)

ऐसे अनन्य भक्त को भगवान् यदि सालोक्यादि पञ्चविध मुक्ति भी देना चाहे तो भी वह स्वीकार नहीं करता है।

यही अनन्यता है, रसिकता है, सर्वोच्च वैष्णवता है।

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(भा. ३/२९/१३)

सालोक्य – भगवान् के लोक में रहना।

सार्ष्टि – भगवान् के समान ऐश्वर्य प्राप्तकर लेना।

सामीप्य – भगवान् के निकट रहना।

सारूप्य – भगवान् के समान रूप प्राप्त कर लेना।

सायुज्य – भगवान् में समावेश हो जाना।

सच्चा भक्त, सच्चा रसिक इन पाँच प्रकार की मुक्तियों को भी नहीं चाहता है। सेवा के लिए मुक्ति का भी तिरस्कार कर देता है। यदि मोक्ष की भी इच्छा है तो अनन्यता नहीं है।

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥

(भा. ३/२९/१२)

अनन्य भक्तियोग तो अहैतुक होता है, अबाधित होता है। वाचिक अनन्यता बाधित हो जाती है, जिसका गली-गली में दर्शन हो रहा है।

एषणाओं को छोड़ने से ही भक्ति अनन्य होगी।

अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः ।
निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥

(भा. ४/३१/२०)

जब समस्त एषणाएं चली जाएंगी, भगवान् बिना बुलाये हृदय में आ जाएंगे फिर उस निर्वासन चित्त से भगवान् कभी नहीं जाएंगे।

एकनिष्ठता के अभाव में वृत्ति अपराधमूलक हो जाती है। अन्य की स्मृति, अन्य की आशा, अन्य का भरोसा, अन्य का विश्वास एवं कर्तृत्वाभिमान जैसी विभिन्नताएं साधन की गति को बाधित कर जीव को ईशरिक्त बना देती है।

ईशरिक्तता आने पर मनुष्य दुर्बल हो जाता है और इष्टचिन्तन से वह प्रबल भी हो जाता है।

जब तक इष्ट-चिन्तन रहा स्वयं राम भी रावण का वध न कर सके। जबकि वाल्मीकि रामायण के अनुसार **'भस्मभास्मार्हतेजसा'** सीता जी के एक दृष्टिपात से वह भस्म हो सकता था किन्तु नहीं किया।

ब्रह्मवैवर्तपुराणानुसार : सीता जी पूर्वजन्म में वेदवती थीं, रावण ऊपर से तो जानकी जी को कभी भय दिखा रहा था तो कभी प्रलोभन किन्तु हृदय में सतत् वेदवती जी की आराधना कर रहा था। यदि वह इष्ट-चिन्तन न करता तो सीताहरण जैसा जघन्य पाप उसे तत्क्षण नष्ट कर देता किन्तु जब तक हृदय में इष्ट-चिन्तन होता रहा तो स्वयं भगवान् भी उसे नहीं मार सके।

गोस्वामी जी ने भी स्पष्ट किया है –

प्रभु ताते उर हतइ न तेही ।
एहि के हृदयँ बसति बैदेही ॥

(रा.च.मा.लंका. ९९)

त्रिजटा ने कहा – राजकुमारी! रावण-वध कोई कठिन काम नहीं है राम के लिए किन्तु इस समय वे उसे इसलिए नहीं मार रहे हैं क्योंकि रावण के हृदय में आप हो।

एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है ।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है ॥

(रा.च.मा.लंका. ९९)

रावण के हृदय में जानकी और जानकी के हृदय में स्वयं राम और राम के उदर में अनेक भुवनों का निवास है। रावण के हृदय में बाण छोड़ने का मतलब अनन्तानन्त भुवनों का विनाश।

काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान ।
तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान ॥

(रा.च.मा.लंका. ९९)

मस्तक के बार-बार कटने पर जब यह व्याकुल हो जायेगा तो उसके हृदय से इष्ट-चिन्तन छूट जायेगा। ईशरिक्तता के आते ही राम 'रावण का वध' कर डालेंगे अतः सूरदास जी ने कहा –

ताको काल रूठि कहा करिहै, जो चित चरण धरै ।
जो घट अन्तर हरि सुमिरै ॥

(सूर विनय पत्रिका-८८)

काल की सामर्थ्य नहीं कि सतत् इष्ट चिन्तन करने वाले अनन्य भक्त का स्पर्श भी कर ले।

गोपीजन हुईं ईशरिक्तता को प्राप्त –

कृष्णप्रेम की ध्वजा स्वरूपा गोपीजनों को हुआ मद और चित्त हुआ ईशरिक्त।

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥

(भा. १०/२९/४८)

पराकाष्ठा का रस प्राप्त करने के बाद भी गोपियों को मद हो गया अतः सूरदास जी ने कहा –

अपबल तपबल और बाहुबल, चौथो बल है दाम ।
'सूर' किसोर कृपा ते सब बल, हारे को हरिनाम ॥

मद-मान उत्पन्न कर देने वाला देहबल, इन्द्रियबल, प्रभावबल, विद्याबल, धनबल, जनबल आदि निश्चित है कि भगवद्विस्मृति रूप मोह उत्पन्न करता है। **"सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः"** भगवद्विस्मृति ही ईशरिक्तता है।

फलतः वास्तविक अनन्यता न रहकर 'शाब्दिक अनन्यता' ही रह जाती है।

सावधान!

शाब्दिक अनन्यता अपराधमूलक है।

मन इष्ट के प्रेम में रंग जाये, अन्यथा श्री कबीर जी की वाणी में –

मन न रंगाये रंगाये जोगी कपड़ा।
कनवा फड़ैले बाला लटकैले दढ़िया बढ़ैले जोगी होइ गये बकरा ॥

माथा मुड़ैले कपड़ा रंगैले गीता बांच जोगी होइ गैले लफड़ा ।
कहैं 'कबीर' सुनो भाई साधो जम तर बचबा बधिक जैहे पकड़ा ॥

भागवत धर्म के परमाचार्य श्री प्रह्लाद जी ने कहा –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

(भा. ७/५/२३)

विचार करें, नवधा भक्ति की स्थापना क्यों हुई? सदा न कोई सुन सकता है, न कीर्तन कर सकता है, न स्मरण कर सकता है अतः श्रवण से मन हटे तो कीर्तन, कीर्तन से हटे तो स्मरण, स्मरण में भी न लगे तो श्री विग्रह की अर्चना, वन्दना............... ।

और फिर इष्ट से मन हटने पर अनन्यता कहाँ, वञ्चना मात्र है।

अलं विषयवार्तया नरककोटिबीभत्सया
वृथा श्रुतिकथाश्रमो बत बिभेमि कैवल्यतः ।
परेशभजनोन्मदा यदि शुकादयः किं ततः
परं तु मम राधिकापदरसे मनो मज्जतु ॥

(रा.सु.नि. ८३)

रसिक बनना चाहते हो तो विषय-त्याग और उससे भी अधिक आवश्यक है विषय-चर्चा का त्याग। कोटि-कोटि नरकों से भी घृणास्पद है यह चर्चा। नारकीय यात्रा की तैयारी है। विषय, वैदिक कर्म एवं ऐश्वर्य भक्ति (परेश भक्ति) इन तीन आवरणों को पार करने के बाद है – श्रीराधा रस।

विषय-वारि के रहते श्रीराधारानी की भक्ति में मन नहीं लग सकता है।

समाज में इष्ट-चिन्तन छोड़कर, अपराधमयी प्रवृत्तियों को लिये हुए (ब्रजलीला नहीं गायेंगे, सख्यरस नहीं गायेंगे, विरह नहीं गायेंगे) शाब्दिक अनन्यता ही रह गई है बस।

हम लोग इस बात का आग्रह तो अधिक रखते हैं कि हम केवल निकुञ्ज लीला गायेंगे या अपनी आचार्य-वाणी ही पढ़ेंगे परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य (ग्राम्य, विषय) चर्चा नहीं करेंगे, क्या इस बात को भी उतनी ही दृढ़ता से कहते या स्वीकार करते हैं?

रसना कटौ जु अन रटौं, निरखि अन फुटौ नैन ।
श्रवण फुटौ जो अन सुनौं, बिनु राधा यश बैन ॥

(श्रीहित स्फुट वाणी-२३)

क्या श्रीराधा-लीला, निकुञ्ज-लीला अथवा अन्य रस-वाणियों के श्रवण-पठन के बाद हम अन्यचर्चा नहीं सुनते, करते हैं? क्या उस समय हम अपने कान, आँख फोड़ लेते हैं?

यदि नहीं तो यह कैसी अनन्यता?

धोखा है धोखा!!

संकीर्ण विचारों ने धाम को अखाड़ा बना दिया, जहाँ सब अपने-अपने मत को लिये मल्लक्रीड़ा कर रहे हैं। कुछ कहते हैं कि हम मीरा के पद नहीं गायेंगे क्योंकि मीरा ने गिरधर गोपाल को विष का भोग लगाया। जबकि विष का भोग दयाराम पंडा ने लगाया था, मीरा को तो चरणामृत कहकर विष दिया गया।

मीरा जी की वाणी से –

जब चरणामृत सुनो सरवणा राम भरोसे लै मुख ढोर्‌यो ॥
मैं अपनों मन हरि सों जोर्‌यो ।

और भोग लगाया भी हो तो 'भक्त भगवद्‌निवेदित वस्तु ही स्वीकार करता है।'

कोई-कोई तर्क देते हैं कि मीरा ने भी श्रीराधाकृष्ण को कई पदों में अपना माता-पिता कहा है –

गिरिधर कंत गिरिधर धन म्हारे, मात पिता वीर भाई ।
थे थारे मैं म्हारे राणा जी, यूं कह मीरा बाई ॥

निकुञ्जोपासना में मुख्य रूप से श्रृंगार रस की लीला है और माता-पिता का श्रृंगार रस गाने का बालक को अधिकार नहीं है अतः मीरा के पद गाने के बाद श्रृंगार रस की लीला को गाना अपराध होगा।

किन्तु मीराजी का भाव तो सभी महापुरुषों ने गाया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी में –

स्वामि सखा पितु मातु गुर, जिन्ह के सब तुम्ह तात ।
मन मन्दिर तिन्ह कें बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

(रा.च.मा.अयो. १३०)

स्वयं कपिल भगवान् ने भी कहा है –

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥

(भा. ३/२५/३८)

जिनका प्रिय, आत्मा, पुत्र, सखा, गुरु, सुहृद, दैव, इष्ट सब कुछ मैं ही हूँ, काल की भी सामर्थ्य नहीं कि उनका स्पर्श भी कर ले। गोपीजन भी कह रही हैं – हे कृष्ण! हमारे प्रेष्ठ, सुहृद, बन्धु-बान्धव सर्वस्व आप ही हैं।

प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥

(भा. १०/२९/३२)

वे मूर्ख स्त्री हैं, जो आपको छोड़ अन्यत्र नश्वर शरीरों में सम्बन्ध स्थापित करती हैं।

अनन्यता और पातिव्रत धर्म –

श्रीभगवान् के वचन –

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥

(भा. ९/४/६६)

जिस प्रकार सती स्त्री अपने पातिव्रत से पति को वश में कर लेती है, उसी प्रकार अनन्य भक्ति के द्वारा भक्त भगवान् को निज वश में कर लेता है।

पतिव्रता स्त्री के लिए उसका पति ही सर्वस्व होता है और भक्त के लिए भगवान्।

श्रीराम के लक्ष्मण के प्रति वचन –

गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा ।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥

(रा.च.मा.अरण्य. १६)

'हे तात! तुम मुझे ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति, देवता सब कुछ मान सकते हो।'

इन सभी सिद्धान्तों के विरुद्ध कुछ भ्रान्तियाँ आज समाज में फैला दी गयी हैं। "गुरु बनाना आवश्यक है" जैसी बातों से बहुत हानि हुई। प्रत्येक व्यक्ति गुरु बनने का इच्छुक हो गया।

राजा सत्यव्रत मनु के वचन –

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥

(भा. ८/२४/५०)

अन्धा अन्धों का पथ-प्रदर्शक बन गया, अज्ञानी अज्ञानियों का गुरु बन बैठा और अन्धानुकरण आरम्भ हो गया। हे भगवन्! आप सूर्य के समान प्रकाशक व इन्द्रियों के प्रेरक हैं। हम आपको ही गुरु-रूप में स्वीकार करते हैं।

न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥

(भा. ८/२४/४९)

हे भगवन्! संसार के समस्त गुरु, देवता व जीव एक साथ मिलकर भी यदि कृपा करें तो आपकी कृपा के दस हजारवें अंशांश की समानता भी नहीं कर सकते हैं।

अतः शंकरजी कह रहे हैं –

उमा राम सम हित जग माहीं ।
गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाहीं ॥

(रा.च.मा.किष्कि. १२)

हे उमा! इस जगत में रामजी जैसा हित करने वाला तो माता, पिता, बन्धु-बान्धव और गुरु भी नहीं हो सकता है।

अतः सबके परम गुरु तो आप ही हैं।

सती एवं अनन्य भक्त की एक ही शैली है।

सती धर्म में –

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा ।
कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ॥

(रा.च.मा.अरण्य. ५)

अनन्य भक्ति धर्म में –

मन क्रम बचन चरन रत होई ।
कृपासिन्धु परिहरिअ कि सोई ॥

(रा.च.मा.अयो. ७२)

सती-धर्म एवं अनन्यभक्ति-धर्म दोनों ही मन, वाणी, कर्म तीनों को लेकर चलते हैं। इष्ट के प्रति अनन्याश्रय तब ही सिद्ध होगा, जब तन, मन, वाणी तीनों का एक ही स्थान पर योग होगा।

कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मनोवृत्ति सहित अपने इष्ट में लग जाएं, यही तीव्रयोग है किन्तु अभी मन इन्द्रियतोषणयोग में लगा है तब प्रेम कहाँ से प्राप्त होगा?

खान पान सुख चाहै अपने ।
प्रेम पदारथ छुए न सपने ॥

(विहारिनदेव जी)

ऐसी स्थिति में न सती-धर्म सिद्ध होगा, न अनन्यभक्ति-धर्म।

अनन्यता व पातिव्रत की एकनिष्ठता में सूक्ष्म अन्तर

अनन्यव्रती भक्त की रति स्त्री, पति, पुत्र, धन आदि में कहीं नहीं होती है। उसकी अनन्यगति भगवान् ही हैं एवं पतिव्रता की अनन्यता अपने पति के अतिरिक्त पुत्र, धन-सम्पत्ति आदि में कहीं नहीं होती है किन्तु जहाँ पतिव्रता अपने पति को प्रधान करके

भगवान् को भी गौण कर देती है जैसे परम सती वृन्दा ने किया, तब वहाँ **अनन्य भक्त**, उस पतिव्रता स्त्री से भी श्रेष्ठ हो जाता है। यही कारण था कि व्रजगोपीजन इन पतिव्रताओं से भी कहीं श्रेष्ठ हो गईं क्योंकि परमपति तो एक श्रीकृष्ण ही हैं।

श्रीलक्ष्मीजी के वचन –

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥

(भा. ५/१८/२०)

पति तो वही है जो स्वयं सर्वथा निर्भय हो और दूसरोंकी भी रक्षा कर सके और ऐसे पति केवल भगवान हैं क्योंकि लौकिक पति अकुतोभय नहीं हो सकता है अतः श्रीमीराजी ने कहा –

ऐसे वर को क्या बरूँ, जो जनमे और मर जाय ।
वर तो बरूँ मैं साँवरा, म्हारौ चुड़लौ अमर है जाय ॥

इसका समर्थन गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी किया –

बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी ॥

(तुलसी विनय पत्रिका-१७४)

स्वयं भगवान् ने भी लौकिक प्रेम को स्वार्थ कहा है –

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते ।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥

(भा. १०/३२/१७)

किन्तु उस परम पति के लिए छोटे से छोटा कर्म भी निष्फल नहीं होता है।

श्रीब्रह्माजी के वचन –

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ।
कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ॥

(भा. ८/५/४८)

भगवदर्पित छोटे से छोटा कर्म तो क्या कर्माभास भी विफल नहीं होता क्योंकि वे भगवान् ही जीवमात्र के परम हितैषी, परम प्रियतम व आत्मा हैं। लौकिक पति आत्मा नहीं हो सकता है।

'आत्मा' अर्थात् सर्वव्यापी मातृत्व।

'आततत्वात् मातृत्वात् आत्मा'

वास्तविक मातृत्व तो भगवान् में ही है। नित्यप्रियता भी लौकिक पति में सम्भव नहीं है क्योंकि वह कूटस्थ नहीं है, गुण-विक्रियाएं होती रहती हैं एवं हित करने की शक्ति भी उसमें नहीं होती है क्योंकि वह स्वयं मरणधर्मा है, अकुतोभय नहीं है।

ब्रजगोपियों ने भी कहा –

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥

(भा. १०/२९/३३)

हे नाथ! विवेकवती स्त्री तो आपसे ही प्रेम करेगी क्योंकि आप आत्मा हैं, नित्यप्रिय हैं। संसारियों से प्रेम का स्वांग किया तो परिणाम में कष्ट ही प्राप्त होगा, यदि पातिव्रत से स्वर्गादि की प्राप्ति हो जाये तो वह भी क्षणिक है। शाश्वत् पद की प्राप्ति तो एकमात्र आपसे ही सम्भव है।

तद् यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ॥

(भा. १०/२९/२२)

स्वयं भगवान् ने गोपियों को सती सम्बोधित किया। भक्ति से सभी धर्म सिद्ध हो जाते हैं –

भगवदाराधन से स्त्री, पुत्र, पति तो छोटी बात है, सब देवों का समार्चन हो जाता है।

प्रचेताओं के प्रति नारदजी के वचन –

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥

(भा. ४/३१/१४)

जैसे वृक्ष-मूल के सिंचन के बाद उसके पुष्प, पत्र व स्कन्ध सिंचन की आवश्यकता नहीं रह जाती है, उसी प्रकार कृष्णार्चन के बाद किसी की भी अर्चना शेष नहीं रहती है।

पातिव्रत श्रेष्ठ अथवा अनन्यता –

उत्तम पतिव्रता के लिए तो संसार में अपने पति को छोड़कर स्वप्न में भी दूसरा पुरुष नहीं है। तब तो यह संकीर्णता है? नहीं, यह संकीर्णता नहीं, यह धर्म है, जिससे जन्मजात अपावन स्त्री योनि भी शुभगति प्राप्त कर लेती है, इसमें परम प्रमाण हैं वृन्दाजी, जो पातिव्रत धर्म से ही प्रभु को परम प्रिय हुईं।

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥

(रा.च.मा.अरण्य. ५)

तो क्या पातिव्रत-धर्म अनन्यभक्ति-धर्म से श्रेष्ठ हो गया? नहीं-नहीं; आगे वर्णन कर रहे हैं –

जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई ।

(रा.च.मा.अरण्य. ६)

संसार के सभी जप, जोग व धर्मों का परम फल है – **भगवान् की अनन्यभक्ति की प्राप्ति।**

सत्य तो यह है कि बिना ईश्वरोपासना के किसी भी धर्म की सिद्धि नहीं है। पातिव्रत-धर्म हो, अनन्यभक्ति-धर्म हो अथवा अन्य कोई भी धर्म।

सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ।

(भा. १०/८१/१९)

समस्त योग व धर्म की सिद्धि भगवच्चरणार्चन अर्थात् भगवदाराधन से ही है।

श्रीसूरदासजी ने भी कहा –

कर्म धर्म तीरथ बिनु राधन, है गए सकल अकाथ ।
अभयदान दै अपनौ कर धरि, सूरदास कै माथ ॥
अब मोहि सरन राखियै नाथ ।

(सूर विनय पत्रिका-२१९)

अथवा

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

(भा.१/२/८)

वैष्णव-धर्म में यदि रूचि नहीं है तो सब धर्म श्रम है।

भक्त की एक निष्ठता सर्वव्यापिनी होती है।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ११२)

यहाँ तक कि प्रभु के जनों को वह अपने इष्ट से भी अधिक मानता है।

"राम ते अधिक राम कर दासा"

(रा.च.मा. उत्तर १२०)

श्रीभगवान् के वचन –

"मद्भक्तपूजाभ्यधिका"

(भा.११/१९/२१)

पतिव्रता ऐसा नहीं कर सकती है, वह अपने पति से अधिक तो क्या, समान भी क्या, अन्य पुरुष से सामान्य व्यवहार भी नहीं रख सकती है। पतिव्रता की एक निष्ठता सीमित है, संकीर्ण है किन्तु भक्त की एक निष्ठता बहुव्यापक है।

श्रीकपिल भगवान् ने स्वयं कहा है –

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥

(भा.३/२९/७)

भक्तियोग बहुत प्रकार का है, ऐसे भी भक्त हुए हैं, जिनकी व्यापकता एक जैसी दिखाई नहीं पड़ती है। अतः श्रीनाभा जी ने कहा –

"गाऊँ राम कृष्ण नहिं पाऊँ भक्ति दांव को"

जैसे गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की अनन्यता देखें तो आपने गणेश, शिव आदि अनेक देवों की वन्दना की है तो भी रामजी के अनन्य बने रहे क्योंकि जिन-जिन का स्तवन-वन्दन किया उन सबसे रामजी की भक्ति की ही याचना की।

उदाहरण के लिए विनय पत्रिका का प्रथम पद ही देखें –

गाइये गनपति जगबंदन ।
संकर-सुवन भवानी-नंदन ॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन, बिनायक ।
कृपा-सिन्धु, सुन्दर, सब-लायक ॥
मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता ।
बिद्या-बारिधि बुद्धि-बिधाता ॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे ।
बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥

किन्तु ब्रज में ब्रजरसिकों की शैली भिन्न है। यहाँ स्वैकनिष्ठता के लिए स्वयं प्रभु ने ही इन्द्रपूजा बन्द कराई थी। इन सबका समाधान – **"भक्तियोगो बहुविधो"** ही है।

ध्यान रहे, एक निष्ठता के धोखे में भक्तों में अभाव, अपराध बन जाता है फिर चाहे वे वैकुण्ठादि लोकों के नित्य पार्षद ही क्यों न हों, इसी शिक्षा के लिए शाप का अभिनय वहाँ भी होता है, जिससे साधक जगत भक्ति बाधक तत्वों से सावधान रहे।

लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा ।
यह महिमा जानहिं दुरबासा ॥

(रा.च.मा.अयो. २१९)

यदि अनन्यता में भक्तापराध का ध्यान न रखा गया तो स्वयं की बहुत बड़ी हानि है।

अनन्यता के धोखे में संकीर्णता

नाहं न यूयं यद्दतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ।
तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥

(भा. २/६/३६)

ब्रह्माजी बोले – उस सत्यस्वरुप को न मैं जानता हूँ, न मेरे पुत्र तुम लोग और न शंकर जी ही जानते हैं फिर अन्य देवता क्या जानेंगे? उन्हें जानना तो दूर, हम माया मोहित जीव उनकी माया से रचित संसार को ही नहीं जान सकते हैं, अपनी-अपनी बुद्धि से उसे सोचते ही रह जाते हैं।

श्री भगवत रसिक जी की वाणी से –

हाथी देख्यौ आँधरन, निज मन के अनुमान ।
कान, पूँछ, पद, पीठ, गहि, करयौ सबन परमान ॥
करयौ सबन परमान, बिटौरा-सूप-पाटतर ।
झगरैं सन्त-महन्त, निगम-आगम-पुरान बर ॥
'भगवत रसिक' अनन्य, दृष्टि वर कीजै साथी ।
जिन देख्यौ गुन-रूप, अंग हिय मैं हरि-हाथी ॥

एक बार चार अन्धों को हाथी से मिलाया गया। वे देख सकते नहीं थे अतः छूने का प्रयास करने लगे तब तक एक अन्धे हाथ में हाथी का पैर आया, झट उसने हाथी का पैर पकड़ लिया। किसी ने पूछा –

हाथी कैसा है?

अन्धा बोला – हाथी तो एक खम्बा ही है।

दूसरा अन्धा पूँछ पकड़ पाया, उससे भी पूछा गया कि हाथी कैसा है?

तो वह बोला – हाथी तो एक झाड़ू के समान है।

तीसरे ने पीठ को पकड़ा था। उसे जब पूछा गया कि हाथी कैसा है?

वह बोला – कुछ नहीं, हाथी तो बिटौरा जैसा है।

चौथे के हाथ में हाथी का कान आया। उससे जब पूछा गया तो वह बोला – हाथी तो सूप जैसा है।

इसी प्रकार भगवान् को हमने देखा तो नहीं है **"आत्मसमं विचक्ष्महे"**, बस अपनी-अपनी मति के अनुसार उनका वर्णन करते हैं।

तदपि कहें बिनु रहा न कोई ।

(रा.च.मा.बाल. १३)

आश्चर्य तो यह है कि देख लेने पर भी वह मति, मत, भाषा एवं सम्प्रदाय आदि

की विभिन्नता से एक होते हुए भी अनेक दिखाई पड़ता है।

एक उदाहरण –

एक अरबी, तुर्क, पारसी, रूसी चारों यात्रा पर निकले। गन्तव्य एक ही था अतः चारों साथ ही चल दिए किन्तु थे परस्पर एक दूसरे की भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ। एक दिन बहुत भूख लगने पर चारों व्याकुल हुए।

अरबी, एनब की खोज में था।

तुर्क, उज्जम चाहता था।

पारसी, अंगूर चाहता था।

एवं रूसी अस्ताफील चाहता था।

तब तक अचानक एक अंगूर बेचने वाला दिखाई दिया, चारों के मुख पर उसे देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

"यही तो मैं चाह रहा था"

बात यह थी कि वे सब अपनी-अपनी भाषा में अंगूर ही चाह रहे थे।

यही स्थिति हम सबकी है।

एक ही वेद्य वस्तु के जिज्ञासु, एक ही गन्तव्य के पथिक हैं, एक ही प्राप्तव्य की प्राप्ति के यत्न में संलग्न होते हुए भी विषमताओं का विष पान कर रहे हैं।

लाड़ में बालक को बच्चा, बेटा, मुन्ना, लल्ला, बचुवा, बबुआ आदि अनेक नामों से पुकारने पर वह अनेक तो नहीं हो जाता।

इसी प्रकार अनेक देशों में, अनेक भावनाओं में और अनेक सम्प्रदायों में अपने-अपने अनुसार पुकारे जाने पर भी वह अनेक नहीं है।

रस्ते जुदे जुदे हैं मकसूद एक है ।
शाखायें अनेक हैं वृक्ष एक है ।

श्री कपिल भगवान् ने कहा –

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥

(भा. ३/२९/७)

माताजी! स्वभाव एवं गुणों के भेद से मनुष्यों के भाव में विभिन्नता आ जाती है फिर उसे अपने स्वभाव एवं गुणों के अनुसार ही वस्तु दिखाई देती है।

समझें –

देश, काल से जो परिच्छिन्न है, वह जीव है। देश, काल से जो अपरिच्छिन्न है, वह ईश्वर है अर्थात् ईश्वर को काल, कर्म, देश आदि की सीमा बाँध नहीं सकती है, उसका स्पर्श भी नहीं कर सकती हैं। उस ईश्वर को किसी सीमा में बाँधना ही संकीर्णता है।

अनन्यता कब बनती है संकीर्णता?

गुणाध्यास से अनन्यता, संकीर्णता का रूप ले लेती है। सब कुछ प्रभु हैं, यह अध्यास तो रह नहीं पाता है। गुरु बनने के इच्छुक लोग 'हमारे स्थान में ही रस है, अन्यत्र कुछ नहीं है, वहाँ मत जाना ....' जैसा गुणाध्यास कराते हैं। गुणाध्यास से काम पैदा हुआ, काम से कलि अर्थात् भेदबुद्धि, फूट, कलह होता है फिर एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से, एक साधु दूसरे साधु से, एक वक्ता दूसरे वक्ता से द्वेष करता है।

भगवान् उदारता से प्रसन्न होते हैं और संकीर्णता औदार्य को नष्ट कर देती है।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥

(गी. ७/१८)

प्राप्तव्य एक तो प्राप्ति के उपाय अनेक क्यों?

जब राधा-कृष्ण तत्त्वतः एक ही हैं तो सम्प्रदायों की अनेकता प्रश्नवाचक चिन्ह क्यों बन जाती है। श्री उद्धवजी की यही जिज्ञासा थी –

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ।
तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥

(भा. ११/१४/१)

हे भगवन्! आत्मकल्याण के अनेक साधन महात्माओं के द्वारा कहे गये हैं, वे सभी श्रेष्ठ हैं अथवा किसी एक की अधिक प्रधानता है?

भगवान् तो एक ही है फिर उसकी प्राप्ति के अनेक मार्ग क्यों?

श्रीकृष्ण ने कहा –

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ।
मयाऽऽदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥

(भा. ११/१४/३)

उद्धवजी! काल के प्रभाव से वेदवाणी विलुप्त हो गई थी। सृष्टिकाल में मैंने ही संकल्प मात्र से ब्रह्मा जी को इसका उपदेश दिया।

देखो, कक्षा में एक अध्यापक है, सौ विद्यार्थी हैं। अध्यापक ने सबको समान रुप से पाठ पढ़ाया फिर भी सबका परीक्षा परिणाम अलग-अलग आता है, क्योंकि सब विद्यार्थियों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उस पाठ को ग्रहण किया। कोई तो पूरा ही समझ गया, कोई दस प्रतिशत ही समझ पाया और कोई कुछ भी नहीं समझ सका। यही भगवान् ने उद्धवजी को कहा – प्रिय उद्धव! प्रारम्भ में मैंने ब्रह्मा को जो उपदेश दिया, वह केवल भक्तियोग का था।

तेन प्रोक्ता स्वपुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ।
ततो भृग्वादयोऽगृह्णन् सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥
तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ।
मनुष्याः सिद्धगंधर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥
किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षः किंपुरुषादयः ।
बह्व्यस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्वतमोभुवः ॥
याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा ।
यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवन्ति हि ॥

(भा.११/१४/४, ५, ६, ७)

ब्रह्माजी ने वह मनु को दिया और मनु से भृगु, अंगिरा, मरीचि, पुलह, अत्रि आदि सात प्रजापतियों ने ग्रहण किया। तदनन्तर देव, दानव, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, राक्षसादि ने प्राप्त किया। सबकी प्रकृति सत्त्वगुण, रजोगुण व तमोगुण के कारण भिन्न-भिन्न हैं अतः उनकी बुद्धि-वृत्ति में भी भेद आ गया। सबने अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार उसी वेदवाणी का भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण किया।

एवं प्रकृतिवैचित्र्याद् भिद्यन्ते मतयो नृणाम् ।
पारम्पर्येण केषाञ्चित् पाषण्डमतयोऽपरे ॥

(भा. ११/१४/८)

इस प्रकार स्वभाव की अनेकता से मार्ग में भी अनेकता आ गई। जितने स्वभाव उतने मार्ग। अब देखो न, बहुत से लोग तो वेदों का आश्रय लेकर बहिर्मुख भी हो गये क्योंकि उन्होंने अपने अनुसार वेदवाणी का अर्थ लगाया। इसी प्रकार यहाँ ब्रजोपासना

को लेकर चलने वाले ब्रज से ही विमुख हो गये। यह उनकी बुद्धि का दोष है; आचार्यों का नहीं।

श्रीकृष्ण कहते हैं – उद्धव! मेरी माया से जिनकी मेधा मोहित हो चुकी है, वे अपने-अपने कर्म, संस्कार एवं रुचि के अनुसार आत्मकल्याण के अनेक नये-नये साधन स्वयं ही बना लेते हैं।

मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ।
श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचि ॥

(भा. ११/१४/९)

ठीक इसी प्रकार रसोपासना में भी प्रकृति-वैचित्री से भेद आ जाता है। रस एक ही है किन्तु प्रकृति वैचित्र्याद् रस की पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न हैं। यथा –

१. स्वकीया २. परकीया – (i) कन्यका (कुमारिका) (ii) परोढा (विवाहिता)

३. नित्य दाम्पत्य

श्री निम्बार्क सम्प्रदाय में स्वकीया प्रधान उपासना है। श्री गोड़ेश्वर सम्प्रदाय में परकीया प्रधान उपासना है। श्री वल्लभ सम्प्रदाय में दोनों प्रकार की वाणियाँ प्राप्त होती हैं। श्री हरिदासी सम्प्रदाय में नित्य दाम्पत्य की उपासना है। श्री हरिवंशी सम्प्रदाय में स्वकीया एवं नित्य दाम्पत्य दोनों की उपासना है।

ब्रजभूमि का श्रृंगार रस बहुनायिकावाद है। एकाकी कृष्ण हैं व अनेक (ऊढा, अनूढा) गोपियाँ हैं। सभी प्रकार की ब्रजस्त्रियों के साथ होने वाली लीला ब्रजलीला है। रास अर्थात् "रसानां समूहः रासः" सभी रसों का प्रवाह रास है। भरत मुनि द्वारा बताये गये नाट्य शास्त्र के निम्नलिखित नवरस भी रास में हैं –

करुणवीभत्सरौद्रवीरवात्सल्यविरहसख्यश्रृंगारादि रस समूहो रासः ।

(विष्णुयामल)

भक्तिरसामृतसिन्धु में श्रीमद्रूपगोस्वामीपाद ने इन नौ रसों में तीन रस और जोड़कर भक्ति रस के कुल बारह भेद माने हैं। जिनमें मुख्य भक्तिरस के पाँच भेद – शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य व मधुर (श्रृंगार) रस हैं एवं सात रस गोण भक्ति रस के माने हैं –

१. हास्य २. अद्भुत ३. वीर ४. करुण ५. रौद्र ६. भयानक ७. वीभत्स।

इनमें मुख्य भक्तिरस के पाँच भेद शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं श्रृंगार रस को तो सभी रसिकाचार्यों ने गाया है।

श्री हिताचार्य जी की वाणी में –

शान्त रस –

देव, ऋषि, व्यास, शुकदास सब कहत निज,
क्यों न बिन कष्ट रस सिन्धु को पीजिये ।

(श्रीहित स्फुट वाणी-१८)

अथवा

आरती कीजै श्याम सुन्दर की ।
नन्द के नन्दन राधिका वर की ॥
भक्ति करि दीप प्रेम कर बाती ।
साधु संगति करि अनुदिन राती ॥
आरती जुवति - यूथ मन भावै ।
श्यामलीला (श्री) हरिवंश हित गावै ॥

(श्रीहित स्फुट वाणी १९)

दास्य रस –

जाहि विरंचि उमापति नाये ....

(श्रीहित चौरासी -१८)

सख्य रस –

वेणु माई बाजै वंशीवट ।
मुनि मन ध्यान धरत नहिं पावत, करत विनोद संग बालक भट ।

(हित चतुरासी-६४)

अथवा

तेरोई ध्यान राधिका प्यारी गोवर्धन धर लालहिं ।

(हित स्फुट वाणी-१७)

यहाँ **'गोवर्धन धर'** शब्द ब्रजलीला का द्योतक है। इसी पद में **'गोपाल'** नाम से भी ब्रजलीला स्पष्ट होती है। और देखें –

दान दै री नवल किशोरी ।

(हित चतुरासी-५१)

अथवा

आनंद आजु नंद के द्वार ।

(हित स्फुट वाणी-११)

यह वात्सल्य व श्रृंगार दोनों ही रसों का अद्वितीय पद है।

'आज तू ग्वाल गोपाल सों खेलि री ।'

(हित स्फुट वाणी-११)

ग्वाल गोपाल के साथ श्रीराधारानी खेल रही हैं। अब यहाँ कोई ग्वाल गोपाल व कुञ्जबिहारीजी भिन्न होते तो श्रीराधारानी कैसे क्रीड़ा करतीं।

वात्सल्य रस –

चलो वृषभानु गोप के द्वार ।

(श्रीहित स्फुट वाणी-१६)

श्री हिताचार्य की पवित्र परम्परा के प्रसिद्ध रसिकाचार्य चाचा श्री वृन्दावन दास जी ने तो वात्सल्य रस के दो स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की।

१.लाड़ सागर

२. ब्रजप्रेमानंद सागर

जिनमें श्रीराधा रानी की मधुर बाल-लीलाओं का विशद वर्णन है।

अथवा

तू वृषभानु गोप की बेटी मोहन लाल ....

(श्रीहित चौरासी-१८)

अथवा

बनी श्रीराधा मोहन की जोरी ।
गजनायक प्रभुचाल गयंदनि गति वृषभानु किशोरी ॥

(श्रीहित चौरासी-९)

अथवा

वृषभानु नंदिनी मधुर कल गावै ।

(श्रीहित चौरासी-८१)

अथवा

लाल की रूप माधुरी नैननि निरखि नेकु सखी ।

(श्रीहित स्फुट वाणी-२२)

श्रृंगार रस –

मोहन मदन त्रिभंगी, मोहन पुनि मन रंगी ....

(श्री हित चौरासी–६३)

यह सम्पूर्ण महारास का पद है, जिसमें शुद्ध श्रृंगार रस का वर्णन है।

श्री स्वामी हरिदास जी की वाणी में –

शान्त रस –

ए हरि मोसो न बिगारन को ।

(श्रीहरिदास जी अष्टादशसिद्धान्त के पद-५)

बिहारी जी में वर्ष भर में एक दिन मंगला, एक ही दिन चरण-दर्शन, एक ही दिन मुकुट-वंशी धारण होती है **'ऐक्य भाव'** की पुष्टि के लिए।

दास्य रस –

जहाँ जहाँ चरन परत प्यारी जू तेरे,
तहाँ तहाँ मन मेरौ करत फिरत परछाँहीं ।
बहुत मूरति मेरी चँवर ढुरावति,
कोऊ बीरी खवावति एकब आरसी लै जाँहीं ।
और सेवा बहुत भाँतिन की जैसीयै कहैं कोऊ,
तैसीयै करौं ज्यौं रुचि जानौं जाँहीं ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कौं,
भलैं मनावत दाइ उपाँहीं ॥

(केलिमाल ५३)

मानलीला में ठाकुर का दैन्य और दास्य ही है।

देखें एक झलक –

प्यारी तेरौ बदन अमृत की पंक तामैं बींधे नैंन द्वै ।

(श्रीकेलिमाल-७)

भूलैं भूलैं हू मान न करि री प्यारी तेरी भौहें मैली देखत प्रान न रहत तन ।

(श्रीकेलिमाल-१०)

सख्य रस –

प्यारी जू हम तुम दोऊ एक कुञ्ज के सखा रूसैं क्यौं बनैं ।

(केलिमाल -६२)

अथवा

हमारौ दान मार्‌यौ इन ।

(केलिमाल -६२)

प्रस्तुत पद में – **"बहू बेटी काहू की"** यह पंक्ति शुद्ध वात्सल्य की है।

साथ ही परकीया भाव भी है।

'चौकी कहाँ बदलि परी हो।' - प्रस्तुत पद भी परकीया भाव का है। यह बहुनायिकत्व ब्रजलीला में ही सम्भव है।

वात्सल्य रस –

कहो यह काकी बेटी ।

(श्रीकेलिमाल-८३)

श्रृंगार रस –

सम्पूर्ण ग्रन्थ श्रृंगार रस प्रधान है।

एक समै एकांत वन में करत सिंगार परस्पर दोई ।

(श्रीकेलिमाल-१३)

इन पाँच रसों में सभी रसों का अन्तर्भाव हो जाता है अतः सभी रसिक महापुरुषों ने मुख्य भक्ति रस के पाँचों भेदों को गाया है। इतना अवश्य है कि रुचिकर रस को अधिक गाया है।

श्री हरिव्यासदेवाचार्य जी की वाणी में –

श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी की वाणी में तो वर्षभर के समस्त पर्व हैं – जिनमें सभी रसों का अन्तर्भाव है। बधाई में वात्सल्य रस, दान में सख्य रस, होरी में सख्य रस, मान लीला में दास्य रस और इसी प्रकार शान्त रस का गान किया है। होरी लीला में सांवरी और गोरी सखियों का यूथ परस्पर होरी खेल रहा है। सांवरी सखियों का समूह श्रीकृष्ण के प्रतिरूप सखाओं का अनुकरण कर रहा है एवं गोरी सखियों का समूह श्रीराधा रानी के यूथ का। यहाँ सांवरी सखियों का यूथ भिन्न करने की कल्पना सखानुकरण है।

मदन महामहोत्सव (वसन्तोत्सव) –

आज भलीभाँति पूज्यौ बसन्त,
मिलि मृग नैनी मन हरन कन्त,
अन्हवाये सचि सुचि सुरत रंग ।

(श्रीमहावाणी, उत्साह सुख-१)

अर्थात् श्रीराधारानी ने ऋतुराज के मूर्तिमान स्वरूप अपने प्रियतम का पूजन कर उन्हें कारुण्यामृत की तरंगों, तारुण्यामृत की धाराओं एवं लावण्यामृत की बाढ़ों से स्नान कराया है।

कारुण्यामृतवीचिभिः तारुण्यामृत धारया ।
लावण्यामृत वन्याभिः स्नायितां लोपितेन्दिराम् ॥

(श्री रघुनाथदास गोस्वामी कृत प्रेमाम्बुज-मरन्द मधुस्तवराज)

इसी प्रकार होरी लीला, डोल लीला एवं आषाढ़ में जगन्नाथ यात्रा की भाँति श्रीप्रिया प्रियतम को मंजु मनोरथ रथ पर विराजकर रथारोहण लीला, ग्रीष्म की जलकेलि, अक्षय तृतीया की चन्दन लीला, श्रावण मास की लीला, पवित्र एकादशी लीला ....

किन्तु ध्यान रहे रसिकराज श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी महाराज की नित्य दाम्पत्य भाव प्रधान उपासना है अतः एक नायक-नायिका में ही सम्पूर्ण लीला घटित है।

रक्षाबन्धन लीला, जन्माष्टमी-राधाष्टमी की लीला गाकर शुद्ध वात्सल्य की पुष्टि की है, विवाह-वर्षगाँठ का गान कर शुद्ध श्रृंगार की पुष्टि की पुनः दान एकादशी, गहवरवन का नित्य विहार, साँझी लीला, विजयादशमी के पावन पर्व पर श्रीप्रियाजी ने श्यामसुन्दर से रतियुद्ध में विजयश्री प्राप्त की है।

"श्री वृन्दावन सरद जामिनी, संग लिये सत कोटि कामिनी"

(श्रीमहावाणी, उत्साह सुख-१२९)

उपरोक्त पंक्ति में बहुनायिकत्व दर्शाया है।

विवाह पंचमी में वैवाहिक प्रथानुसार बन्ना-बन्नी व गारी गान किया है एवं दीपावली के पर्व का गान भी किया है।

इसी प्रकार **'श्रृंगाररस सागर'** में **"श्री वृन्दावन सहज सुहावनौ"** इस पद में वर्णित है– क्रीड़ा में दो टोल बने। श्रीकृष्ण की ओर साँवरी सखियों का समुदाय एवं श्रीराधारानी की ओर गोरी सखियों का समुदाय।

श्यामा सखियों ने पुरुष भाव का प्रदर्शन करते हुए सख्य रस की पुष्टि की।

रसिकों ने तो यहाँ तक कहा है –

'नायक तहाँ न नायिका रस करवावै केलि ।'

अर्थात् जहाँ नायक-नायिका का कथन मात्र ही भेद है, शेष तो सब रस ही है। नायक भी रस और नायिका भी रस है फिर भी रस-सम्प्रदाय के अनुवर्ती महानुभावों द्वारा ब्रज व निकुञ्ज को अलग-अलग घोषित किया गया।

ईश्वर कौन?

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषो ईश्वरः ॥

(पा.यो.द. १/२४)

पाँच प्रकार के क्लेश, (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) चार प्रकार के कर्म, (पाप, पुण्य, पुण्य व पाप मिश्रित एवं पुण्य पाप से रहित) तीन प्रकार के कर्म फल (जाति, आयु, भोग) व आशय से (संस्कार रूप कर्मों के समूह) जो सर्वथा अलिप्त हैं, वही पुरुष विशेष अर्थात् ईश्वर है किन्तु उसे भी यशोदा मैया ने बाँध दिया।

जेहि बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल कर्म की डोर ।
सोई अबिच्छिन्न ब्रह्म जशुमति हठ बाँध्यो सकत न छोर ॥

(तुलसी विनय पत्रिका – ९८)

जिसने सभी देव, असुर, नर, नाग को कर्म की डोर में बाँधा, उसे यशोदा ने रस्सी से बाँध दिया।

यहाँ परिच्छिन्नता कैसे आ गयी?

ध्यान दें, यह लीला सम्बन्धी परिच्छिन्नता है, इसी को माधुर्य कहा गया है।

सर्वशक्तिमान भगवान् जब लीला करते-करते पूर्णतया प्राकृत बन जाता है तो माधुर्य रस का आविर्भाव होता है। ब्रज में उसकी शक्ति कहीं चली थोड़े गयी थी, माधुर्य निगीर्णित ऐश्वर्य था। नित्यधाम में भी यह माधुर्य रहता है किन्तु वहाँ ऐश्वर्य निगीर्णित माधुर्य है।

यथा –

"लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं"

(विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्, अथ ध्यानम्-३)

यहाँ लक्ष्मीकान्त में ऐश्वर्य का दर्शन है व कमलनयन में माधुर्य का दर्शन है।

पातञ्जलि योगदर्शन के अनुसार वह क्लेश रहित है फिर सीता विरह में इतना रुदन, क्रन्दन ......?

क्योंकि यहाँ परमेश्वर जान-बूझकर प्राकृत लीला कर रहा है।

किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥

(रा.च.मा. उत्तर. ७२)

किन्तु विवेकी ही इन प्राकृत लीलाओं को समझ सकेंगे, जड़बुद्धि जन नहीं।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे ।
जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥

(रा.च.मा. अयो. १२७)

जड़बुद्धि संशय करेगी, जिससे लीला लुप्त हो जायेगी।

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥

(भा. २/६/४०)

ब्रह्मा जी बोले – नारद! शरीर, इन्द्रिय व अन्तःकरण को शान्त कर लेने वाले सन्तों को ही उसका साक्षात्कार होगा। असत्पुरुषों के कुतर्क के जाल से ढक जाने पर साक्षात्कार सम्भव नहीं है।

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥

(भा. १०/९/२१)

फिर यहाँ इस भूमि में वह ब्रह्म गोपिकासुत बनकर, गँवार का बालक बनकर नरलीला कर रहा है, ऐसी स्थिति में संशय आ सकता है। श्रवण भक्ति के परमाचार्य परीक्षित जी को भी संदेह उत्पन्न हो गया और पूछ बैठे –

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥

(भा. १०/३३/२८, २९)

ब्रह्मन्! धर्म मर्यादा के बनाने वाले, उपदेश करने वाले और उसके रक्षक प्रभु ने धर्म विरुद्ध, परस्त्रियों का स्पर्श क्यों किया?

आप्तकाम होकर इस निन्दनीय कर्म का अभिप्राय क्या था?

शुकदेव जी ने समाधान किया –

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(भा. १०/३३/३७)

परीक्षित जी! ये सभी सहजता से समझी जाने वाली लीलाएं अनुग्रहपूर्वक भगवान् ने एकमात्र जीव कल्याण के लिए ही की हैं।

सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी।
फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी ॥

(रा.च.मा.उत्तर. २२)

उनकी अनन्त महिमा को जान लेने वाले भी इन प्राकृत लीलाओं में प्रेम करते हैं, आनन्द लेते हैं। यद्यपि माधुर्य लीला में राग-क्लेशादि दिखायी पड़ते हैं किन्तु –

सोउ जाने कर फल यह लीला।
कहहिं महा मुनिबर दमसीला ॥

(रा.च.मा.उत्तर.२२)

भगवान् की अनन्त महिमा के ज्ञान का भी अन्तिम फल यही है कि इन लीलाओं में प्रेम हो जाय।

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया
गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन्।
रेमे रमालालितपादपल्लवो
ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥

(भा. १०/१५/१९)

नरलीला में उन्होंने योगमाया से अपने ऐश्वर्य को छिपाये हुए गँवार बालकों के साथ ग्राम्य क्रीडाएं कीं, लक्ष्मी जी निरन्तर जिनके चरणकमलों की सेवा में रहती हैं! वो भगवान् गँवारों के साथ गँवार बन गया किन्तु परीक्षित जी। उन ग्राम्य लीलाओं में भी कभी-कभी उनका ऐश्वर्य प्रकट हो जाता था। यथा – मुख में ब्रह्माण्ड का दर्शन।

इन लीलाओं से मोह का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मोह भी दो प्रकार का है।

१. अविद्याजन्य मोह

२. विद्याजन्य मोह।

साधारण बुद्धि वाले अविद्याजन्य मोह से ग्रसित होते हैं एवं विद्याजन्य मोह गरुड़ जी को, कागभुशुण्डि जी को, सती जी को, अर्जुन को, ब्रह्माजी को हुआ।

अविद्याजन्य मोह –

काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुःखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥

(रा.च.मा. उत्तर. ७३)

जो काम, क्रोध, मद, लोभ में रत हैं, दुःखरूप घर में आसक्त हैं, वे भला रामजी को कैसे जान सकते हैं। वे मूढ़ तो अन्धकूप में पड़े हुए हैं।

विद्याजन्य मोह –

निर्गुन रुप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

(रा.च.मा. उत्तर. ७३)

निर्गुण रूप तो सहज समझ में आने वाला है किन्तु सगुण को समझना अत्यन्त कठिन है इसीलिए तो सगुण स्वरूप के सुगम व अगम चरित्रों को सुनकर बड़े-बड़े मुनि भी भ्रमित हो जाते हैं।

सगुण साकार की लीलाओं में संदेह का उत्पन्न होना मोह है।

यथा – काकभुशुण्डि जी को हुआ।

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह॥

(रा.च.मा. उत्तर. ७७)

भगवान् की बाल लीला को देखकर काक को मोह हो गया किन्तु यह मोह विद्याजन्य था अतः मोह का दुख नहीं हुआ।

सो माया न दुखद मोहि काहीं ।
आन जीव इव संसृत नाहीं ॥
हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या ।
प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ७८, ७९)

विद्याजन्य मोह भी भगवद्-इच्छा से होता है।

यथा – ब्रह्मा जी को हुआ –

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके
परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।
अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति
चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥

(भा. १०/१३/५७)

श्री शुकदेव जी महाराज ने कहा – परीक्षित! भगवद्-रूप तर्क से परे, असाधारण महिमा वाला है। स्वयं प्रकाश, आनन्द रूप एवं मायातीत है। वेद भी उसका नेति-नेति कहकर ही वर्णन करते हैं। ब्रह्मा जी स्वयं विद्यापति होकर भी उस स्वरुप को नहीं समझ सके। समझना तो दूर, उस महामहिमामय स्वरुप को सन्मुख होते हुए भी देख नहीं सके, उनकी आँखें ही बन्द हो गयीं।

तब स्वयं भगवान् ने विधि के इस व्यामोह को देखकर माया का परदा हटा दिया।

अविद्या से विद्या की उपासना में अधिक भय

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रताः ॥

(ईशावास्योपनिषद् –९)

भोगोन्मुखी कर्मविद्या जो घोर अन्धकार में ले जाने वाली है। वह अन्धकार क्या है? स्वर्गादिलोकों की प्राप्ति।

श्रीभगवान् के वचन –

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥

(गी. ९/२१)

स्वर्ग की प्राप्ति अन्धकार है। स्वर्ग भोगने से पुण्य क्षीण होते हैं और पुनः मृत्युलोक की प्राप्ति होती है। वेदोक्त सकाम कर्म का आश्रय लेने वालों की यही गति होती है, स्वर्ग

जाते हैं, पुण्य क्षीण होने पर लौट आते हैं, पुनः जाते हैं, लौट आते हैं किन्तु इससे भी ज्यादा अन्धकार विद्या (भक्ति) की उपासना में है – एक ओर भगवान् की अर्चना कर रहे हो और दूसरी ओर वैष्णवापराध, तो सीधे नरक जाओगे।

जो अविद्या के उपासक हैं, वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं किन्तु जो विद्या के उपासक हैं, वे उनसे भी अधिक अन्धकार में जाते हैं।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यां रताः ॥

(ईशावास्योपनिषद् १२)

असम्भूति अर्थात् नष्ट होने वाले देव, पितृश्वरों की उपासना करने वालों का पतन देखा जाता है परन्तु सम्भूति अर्थात् जो कभी विनष्ट नहीं होता, उसके उपासक तो परम पद से भी नीचे गिरते देखे जाते हैं जैसे जय-विजय का हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष बनना, श्री दामा गोप का शंखचूड बनना, चित्रकेतु का वृत्रासुर बनना। ऐसे और भी अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। सूरदास जी ने सहज व सरल भाषा में कह दिया –

श्रीपति दुखित भक्त अपराधे ।
मम भक्तनि सौं बैर करत है सकल सिद्धि मोहि सों साधे ॥
सन्तन द्वेष द्रोहिता करके आरत सहित मोहि आराधे ॥
सुनो सकल बैकुण्ठ निवासी साँची कहौं जनि मानो खेद ॥
तिन पर कृपा करौं मैं केहि विधि पूजत पांय कंठ को छेद ॥
जन सौं बैर प्रीति मोसों कर मेरो नाम निरन्तर लैहैं ॥
'सूरदास' भगवन्त वदत हैं मोहे भजे पै जमपुर जैहैं ॥

(सूर-सागर)

विद्या की उपासना में तो इस श्रेणी की श्रद्धा चाहिए।

श्रीरामजी की भरत जी के प्रति –

तिमिरु तरुन तरनिहिं मकु गिलई ।
गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी ।
सहज छमा बरु छाड़ै छोनी ॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई ।
होइ न नृपमदु भरतहि भाई ॥

(रा.च.मा.अयोध्या. २३२)

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिन्धु बिनसाइ ॥

(रा.च.मा.अयोध्या. २३१)

अन्धकार भले मध्यान्ह काल के तरुण सूर्य को खा जाये, असीम आकाश चाहे बादल की टुकड़ियों में समा जाये, भले ही गोपद जल में अगस्त्य जी डूब जाएं, पृथ्वी चाहे अपने क्षमाशीलता के स्वभाव को छोड़ दे और मच्छर की फूंक से भले सुमेरू पर्वत उड़ जाये किन्तु मेरे भाई भरत को कभी राजमद नहीं हो सकता है।

भक्तों के प्रति यदि इस श्रेणी की श्रद्धा नहीं है तो कोई भी साधन कल्याण करने में समर्थ नहीं फिर सम्प्रदाय भेद, आचार्य भेद, वाणी भेद करने वालों का कल्याण कैसे सम्भव है? ब्रजोपासना में तो ब्रज की सभी वस्तुएं भगवान् से अभिन्न हैं।

श्री भगवान् के वचन –

"गोपा गोप्यस्तथा गावो वृक्षा वीरुत्तृणानि च ॥"

एतत्सर्वं च विज्ञेयं ममैवानन्दविग्रहम् ।
सर्वान्व्रजस्थान्ये मत्तो भिन्नान्पश्यन्ति दुर्धियः ॥

"तेषां हि मूढ बुद्धीनां गतिर्नात्र परत्र च ।"

(आदिपुराण २४/६७, ६८, ६९)

ब्रज के गोप, गोपी, गो, वृक्ष, लता व तृणादि सबको मेरा ही आनन्द विग्रह जानना चाहिए। जो ब्रज में स्थित अखिल पदार्थों को मुझसे भिन्न देखते हैं, उनकी बुद्धि को मोह ने ढक रखा है। वे दुष्ट बुद्धि हैं। ऐसे मूढों की न यहाँ कोई गति है और न मृत्यु के बाद ही।

ब्रज व निकुञ्ज में किया भेद

ब्रज व निकुञ्ज में भेद धामापराध है, नामापराध है, भगवदपराध है। आधुनिक रसिकों का कहना है कि ब्रज और निकुञ्ज की लीला इसलिए पृथक् है क्योंकि निकुञ्ज लीला में एकरसता है। रस का एक जैसा प्रवाह है और ब्रजलीला में एकरसता नहीं है, यहाँ तो श्रीकृष्ण ब्रज छोड़कर मथुरा चले जाते हैं तो गोपियों को विरह होता है और निकुञ्ज लीला में नित्य संयोग है, वियोग नहीं है। यहाँ न मथुरा गमन है और न द्वारिका गमन बल्कि नित्य विहार है।

ब्रज की समरसता का सबसे बड़ा प्रमाण है – युगलगीत।

महारास के बाद युगलगीत का वर्णन ही ब्रज की एकरसता को प्रकट करने के लिए हुआ है। ब्रज का अचर-सचर सब रसमय है। रस का ऐसा सम्मोहन है कि चराचर सृष्टि चित्र लिखित हो जाती है।

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।
कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥

(भा. १०/३५/१५)

नदियों को देखो, रस के कारण उनके प्रवाह में स्तब्धता आ जाती है। तरु, लताओं से मधुधारा स्रवित हो रही है। सब उपासना में तल्लीन हैं। किसी के नेत्र बंद हैं तो कोई मौन धारण किये हुए है। रस की जाड्यावस्था को प्राप्त हो गये हैं। पर्वतों पर भी यही रस है, बादल भी अनुगर्जन कर रहे हैं। कैसी चिन्मयी प्रकृति है। न वाद्य की आवश्यकता है न वादक की, अपने-आप ही संगीत ध्वनि हो रही है। ब्रज के गाय, बछड़े, मोर, हरिनियाँ, नदियाँ, बादल, पर्वत ....सबमें एक ही रस का प्रवाह है। युगल गीत के माध्यम से श्री शुकदेव जी कहते हैं कि महारास के बाद रस की समाप्ति न समझें। ब्रज की चराचर सृष्टि में नित्य-रस व्याप्त है। भगवान् की प्रत्येक लीला चाहे वह संयोग लीला है अथवा वियोग लीला, वह प्रेमाभिवृद्धि के लिए ही हुई है।

प्रेम द्विदलात्मक है –

१. संयोग २. वियोग।

वियोग के बिना संयोग सम्भवनहीं और संयोग के बिना वियोग सम्भव नहीं है।

श्री हिताचार्य की वाणी में दोनों पक्षों की पुष्टि –

चकई प्राण जु घट रहैं पिय बिछुरंत निकज्ज ।
सर-अन्तर अरु काल-निशि तरफ तेज घन गज्ज ॥

तरफ तेज घन गज्ज लज्ज तुहि वदन न आवै ।
जल-विहून करि नैन भोर किहिं भाइ बतावै ॥
जय श्रीहित हरिवंश विचारि बाद अस कौन जु बकई ।
सारस यह संदेह प्राण घट रहैं जु चकई ॥

(श्री हित स्फुट वाणी-५)

चक्रवाकी चक्रवाक से वियुक्त होने पर भी जीवित रहती है। सारस की दृष्टि से यह प्रेम अपूर्ण है।

सारस कहता है –

हे चकई! तू रात भर अपने प्रियतम से अलग रहती है और मिलन की आशा में अपने प्राण नहीं छोड़ती, मेरी दृष्टि में तेरा प्रेम अपूर्ण है। प्रियतम के वियोग में तुझे प्राण त्याग कर देना चाहिए। हमारा प्रेम देख, हम कभी अकेले रह ही नहीं सकते हैं। मेरे वियोग में सारसी और सारसी के वियोग में मैं प्राण परित्याग कर देता हूँ। हम अपने प्रिय के वियोग में एक क्षण भी नहीं रह सकते हैं।

किन्तु ध्यान रहे जो विरह वह्नि को नहीं सह सकता है, वह प्रेम की तीव्रता को कभी नहीं जान सकता है। ऐसी स्थिति में सारस-सारसी का प्रेम भी अपूर्ण है।

प्रेम की पूर्णता तो संयोग व वियोग दोनों पक्षों से ही होगी, यहाँ तक कि प्रेम की उत्कृष्ट अवस्था में तो संयोग में भी वियोग की अनुभूति होने लगती है।

प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्ष स्वभावतः ।
या विश्लेषधियार्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते ॥

(भा.११/२/३५ टीका श्रीधर स्वामी)

यह है प्रेम वैचित्त्य जिसमें प्रियतम की गोद में भी विरह का आनन्द लिया जा रहा है। प्रेम वैचित्री की आवश्यकता क्यों हुई? क्योंकि इसके बिना प्रेम में उत्कण्ठा नहीं आयेगी।

प्रेम वैचित्र्य –

अङ्कस्थितेऽपि दयिते किमपि प्रलापं हा मोहनेति मधुरं विदधत्यकस्मात् ।
श्यामानुराग मदविह्वलमोहनाङ्गी श्यामामणिर्जयति कापि निकुञ्जसीम्नि ॥

(रा.सु.नि. ४६)

प्रियतम के अंक में विराजमान होकर भी प्रेमातिशय के कारण श्रीराधारानी को विरह का अनुभव हो रहा है। हा मोहन! हा श्यामसुन्दर! कह कर, मधुर प्रलाप कर रही है।

वीणां करे मधुमतीं मधुरस्वरां तामाधाय नागरशिरोमणिभावलीलाम् ।
गायन्त्यहो दिनमपारमिवाश्रुवर्षैर्दुःखान् नयन्त्यहह सा हृदि मेऽस्तु राधा ॥

(रा.सु.नि. ४८)

अपनी मधुमती वीणा पर प्रियतम की मधुर लीलाओं को गाते हुए, अश्रु बहाते हुए किसी तरह उस दिन को व्यतीत करने का प्रयास कर रही हैं।

शुद्धप्रेमैकलीलानिधिरहह महातङ्कमङ्कस्थिते च
प्रेष्ठे बिभ्रत्यदभ्रस्फुरदतुलकृपास्नेहमाधुर्यमूर्तिः ।
प्राणालीकोटिनीराजितपदसुषमामाधुरी माधवेन
श्रीराधा मामगाधामृतरसभरिते कर्हि दास्येऽभिषिञ्चेत् ॥

(रा.सु.नि.१२७)

प्रियतम के अंक में स्थित रहने पर भी जिन्हें दुःसह वियोग का भय है।

श्रीरूप गोस्वामी जी की वाणी में –

आभीरेन्द्रसुते स्फुरत्यपि पुरस्तीव्रानुरागोत्थया
विश्लेषज्वरसम्पदा विवशधीरत्यन्तमुद्घूर्णिता ।
कान्तं मे सखि दर्शयेति दशनैरुद्गूर्णशस्पाङ्कुरा
राधा हन्त तथा व्यचेष्टत यतः कृष्णोऽप्यभूद्विस्मितः ॥

(उज्जवलनीलमणि, श्रृंगारभेद प्रकरण-१५/१४८)

श्री राधारानी के सन्मुख ही श्यामसुन्दर खड़े हैं किन्तु तीव्र अनुराग के कारण श्रीजी विश्लेष ज्वर से पीड़ित हो रही हैं। अपनी सखी से कहती हैं – हे सखि, एक बार मेरे प्रियतम को दिखा दे। श्रीजीकी यह स्थिति देखकर स्वयं श्यामसुन्दर भी विस्मित हैं।

विचार करें, श्रीजी मान क्यों करती हैं?

मान में प्रियतम की ओर न देखना, न बोलना भी तो विरह है।

अप्रेक्षे कृतनिश्चयापि सुचिरं दृक्कोणतो वीक्षते
मौने दार्ढ्यमुपाश्रितापि निगदेत् तामेव याहीत्यहो ।
अस्पर्शे सुधृताशयापि करयोर्धृत्वा बहिर्यापयेद्
राधाया इति मानदुःस्थितिमहं प्रेक्षे हसन्ती कदा ॥

(रा.सु.नि. २३०)

श्रीराधारानी ने निश्चय कर लिया है, प्रियतम की ओर न ही देखूँगी, न ही उनका स्पर्श करूँगी किन्तु इस मान से न्यूनता नहीं आती, बल्कि प्रेम-रस की वृद्धि ही होती है। नित्य विहार का अर्थ नित्य संयोग ही नहीं है। श्री हित चतुरासी में चौरासी पदों में लगभग ग्यारह पदों में मान रूपी विरह का वर्णन है। सम्पूर्ण चौरासी पदों में द्वादशांश मान रूपी विरह ही है, विरह भी साधारण नहीं, उत्कट विरह है।

यथा –

चलहि किन मानिनी कुञ्ज कुटीर ।
तो बिनु कुंवर कोटि बनिता जुत मथत मदन की पीर ॥
गदगद सुर, विरहाकुल पुलकित, स्त्रवत बिलोचन नीर ॥
क्वासि-क्वासि वृषभानु नन्दिनी, बिलपत विपिन अधीर ॥
वंशी विसिख, व्याल मालावली, पंचानन पिक कीर ॥
मलयज गरल, हुतासन मारुत, साखामृग रिपु चीर ॥
"जैश्री हित हरिवंश" परम कोमलचित चपल चली पिय तीर ॥
सुनि भयभीत बज्र कौ पंजर, सूरत सुर रणधीर ॥

(श्रीहित चौरासी-३७)

श्यामसुन्दर श्री राधारानी के विरह में अधीर होकर विलाप कर रहे हैं। हे राधे! तुम कहाँ हो, तुम्हारे बिना ये वंशी मुझे बाण की तरह चुभ रही है, गले की माला सर्प की भाँति प्रतीत हो रही है। तोता और मोर का बोलना सिंह की गर्जना के समान लग रहा है। चन्दन विषवत, शीतल मन्द सुगन्धित समीर अग्नि की लपटों की तरह, वस्त्र किवाच (एक ऐसी घास जो पूरे देह में खुजली कर दे) की तरह प्रतीत हो रहे हैं। विचित्र दशा हो गयी है।

श्री विहारिन देव जी की वाणी में –

रूठनौं टूठनों यों रस बूठनों तूठनें तें अति रूठनौं भावै ।
प्रेम प्रबीन प्रिया पिउ आतुर चातुर केलि कला गुन गावै ॥
नाँहि करै तब पाइ परै हँसि आलस यौं मन मोद बढ़ावै ।
श्री बिहारिनिदासि कैं प्रेम अभंगु सु रंग मैं रंग अनंग बढ़ावै ॥

(विहारिन देव जी की वाणी पद सं-१४६)

तोंकों बोलत कुञ्जनि कुञ्जबिहारी प्रिया ललनाँ मन भाइकुरी ।
लई बोलि अमोल दै सैंन पठाइ परी न कही इतराइकुरी ॥
इहिं ओसर और न आँन गटी श्रमु मेरा वृथा न गवाँइकुरी ।
श्री बिहारीबिहारिनिदासि भनें साँवरौ सुखदाइक नाइकुरी ॥

(विहारिन देव जी की वाणी पद सं-१४७)

राधासुधानिधि में विरह –

श्लोकान् प्रेष्ठयशोऽङ्कितान् गृहशुकान् अध्यापयेत् कर्हिचिद्
गुञ्जामञ्जुलहार बर्हमुकुटं निर्माति काले क्वचित् ।
आलिख्य प्रियमूर्तिमाकुलकुचौ सङ्घट्टयेद् वा कदाप्य्
एवं व्यापृतिभिर्दिनं नयति मे राधा प्रियस्वामिनी ॥

(रा.सु.नि. १८०)

अपने विरहजन्य दुःख को कम करने के लिए श्री राधारानी कभी तो तोते को कृष्ण का गुणगान करना सिखाती हैं, कभी अपने प्रियतम के लिए स्वयं गुञ्जामाला बनाती हैं, मोर मुकुट बनाती हैं और कभी अपने प्रियतम का चित्र बनाकर उसे अपने वक्षःस्थल से लगाती हैं।

श्याम श्यामेत्यनुपमरसापूर्णवर्णैर्जपन्ती
स्थित्वा स्थित्वा मधुरमधुरोत्तारमुच्चारयन्ती ।
मुक्तास्थूलान् नयनगलितान् अश्रुबिन्दून वहन्ती
हृष्यद्रोमा प्रतिपदचमत्कुर्वती पातु राधा ॥

(रा.सु.नि. २१७)

कभी-कभी तो उच्च स्वर से उनका नाम संकीर्तन करती हैं। नेत्रों में स्थूल अश्रु-बिन्दु हैं, शरीर रोमांचित है (रा.सु.नि.२५४) कभी – हे श्याम; नाम जप कर रही हैं तो कभी प्रेमोत्कण्ठा में उच्च स्वर से नाम संकीर्तन करती हैं। अत्यन्त दुःख के कारण कभी भी जिनका मन नहीं लग रहा है, वे श्री राधारानी कभी सूर्य पर क्रुद्ध हैं – रे सूर्य! तू शीघ्र अस्त क्यों नहीं होता।

क्या ये सब श्रीजी की विरह लीला नहीं है?

विरह भीरु जनों ने रस नष्ट कर दिया।

विरहामृत भी आस्वादनीय है।

महावाणी में विरह –

मोहिं मिलाय दै री मेरी जीवनि प्रान ।
मैं बहुते करि मानिहौं मो पर तेरो अहसान ॥
तू ही तू हिय की हितू री तो बिन सरत न काज ।
अब मेरे या जीय की री है सब तोहि कौं लाज ॥
कहा करौं कैसे भरौं री बिन देखे नहिं चैन ।
मनमोहन मुख अवलोकनकौं तरसत मेरे (ए) नैन ॥
अति की गति सब होय चुकी री अब कछु रती रही न ।
तरफर तरफर करत फरफरत जैसे जल बिन मीन ॥
तन तनक न धीरज धरै री मनहू निपट अधीर ।
पलक सह्यौ नहिं परत है मोहिं सखामृग रिपु चीर ॥
जित देखौं तित दुखमई री भई दिसि बिदिसा मोहिं ।
आनंदकंदा चंद के बिनु क्यों सियराई होहिं ॥
अंग अंग सिथिलै भये री बुद्धि बिकल बेहाल ।

रहत न प्रान कपूर ज्यों (ये) बिनु गुंजा-गोपाल ॥
मनअनुसारिनि है तूही री तोसों कहा दुराव ।
श्रीहरिप्रिया निहचै लगो मेरौ मन बच तोसों भाव ॥

(महावाणी उत्साह सुख-४०)

यदि यह सब नहीं मानेंगे तो आचार्यों की वाणी के साथ रस व लीला का खण्डन होगा।

विच्छेदाभासमात्राद् अहह निमिषतो गात्रविस्रंसनादौ
चंचत्कल्पाग्निकोटिज्वलितमिव भवेद् बाह्यमभ्यन्तरं च ।
गाढस्नेहानुबन्धग्रथितमिव तयोरद्भुतप्रेममूर्त्योः
श्रीराधामाधवाख्यां परमिह मधुरं तद्द्वयं धाम जाने ॥

(रा.सु.नि. १७३)

विच्छेद के आभासमात्र से ही जिन्हें कोटि-कोटि प्रलयाग्नियों के दाह की पीड़ा हो उठती है किन्तु ध्यान रहे कि यह दाह भी बड़ा मधुर है, यह प्राकृत दाह नहीं है।

प्रेमयोग की अग्नि का मधुर दाह है। प्रेम की अद्भुत मूर्ति श्री राधामाधव दोनों ही प्रगाढ़ स्नेह-सूत्र में बंधे हैं तभी तो **"मधुराधिपते रखिलं मधुरं"** हैं। इनका विरह भी मधुर है, अति रसमय है।

स्वयं श्रीराधारानी ने विरह-गान किया है।

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥

(भा.१०/४७/११)

यहाँ काचित् का अर्थ है – 'श्रीराधा' जिसे आचार्यों ने स्पष्ट किया है –

"काचित् कापि तासां मुख्यतमैका यद्वा के प्रेमसुखे आसमन्तात् चित् विज्ञानं यस्याः सा राधा यथा आग्नेये –
गोप्यः पप्रच्छुरुषसि कृष्णनुचरमुद्धवम् ।
हरिलीलाविहारांश्च तत्रैकां राधिकां विना ॥
राधा तद्भावसंलीना वासनाया विरामिता ।
सखीभिः साभ्यधाच्छुद्धविज्ञानगुणबृंहिता ॥
इज्यान्तेवासिनं वेदचरमांशविभावनैः ॥

(श्रीमत्सनातनगोस्वामिकृतबृहत्तोषिणी)

काचित् कापि परमप्रेष्ठा सा च श्रीराधेत्यर्थः । श्लेषेण च के प्रेमसुखे आ समन्तात् चित् ज्ञानं यस्याः सेति कं सर्वेषां प्रेमसुखमाचिनोति क्षणे क्षणे वर्द्धयति या सेति च मुख्यत्वात् सैव ।

(श्रीमज्जीवगोस्वामिकृतवैष्णवतोषिणी)

जिन्हें प्रेम सुखका ज्ञान है वे श्री राधा रानी विरह में साथ दे रही हैं अतः अनेक आचार्यों ने काचित् का अर्थ श्रीराधा ग्रहण किया है।

गोपीगीत एक विरहगीत है जिसकी गायिका भी स्वयं श्रीराधारानी हैं। इसका प्रमाण है –

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥

(भा. १०/३०/२८)

श्रीराधारानी ही श्यामसुन्दर के साथ एकान्त में गई हैं और जब श्यामसुन्दर उन्हें छोड़कर चले गये तब विरह में यह गान हुआ है। भ्रमरगीत की गायिका श्री राधिका हैं। लोग ब्रजलीला का खण्डन करते हैं किन्तु ध्यान रहे बलि का राज्य छीनने की, शूर्पणखा को विरूप करने की बातें भ्रमरगीत में स्वयं श्रीजी कह रही हैं तो ब्रजलीला में श्री राधारानी मुख्य रूप से हैं।

श्रीकृष्ण ने धेनुकासुर को मारने के लिए उसके पैर पकड़े, इस लीला को सुनकर श्री राधावल्लभ सम्प्रदायानुगत नागरीदास जी महाराज मूर्च्छित हो गये। श्री राधारानी के चरणों को पकड़ने वाले करकमल कहीं गधे के पैर पकड़ेंगे। इससे परवर्ती आचार्यों ने कहा – हम भी ब्रजलीला नहीं गायेंगे। श्री नागरीदास जी की यह एक विशेष स्थिति थी किन्तु इसका आशय ब्रजलीला का खण्डन नहीं है।

" जामें मरे न बीछुरै रूठें नहिं कहू जाइ"

(विहारिनदेव जी वाणी-३७९)

इन पंक्तियों को लेकर प्रयाण लीला, वियोग लीला व मान लीला का खण्डन करने वाले अल्पज्ञ हैं। अरे, जिस लीला की गायिका स्वयं श्री राधिकारानी हैं; उसका खण्डन क्या इष्ट का अपमान नहीं है? ब्रजलीला, विरह लीला स्वयं श्री राधारानी ने गायी है।

कथनाशय संयोग, वियोग दोनों से मिलकर ही प्रेम पूर्ण होगा अतः वियोग से डरकर ब्रज व निकुञ्जको पृथक् करना अपराध ही है। ब्रजान्तर निकुञ्ज है, निकुञ्ज पृथक् नहीं है।

रसोपासना के प्राकट्यकर्ता अनन्य नृपति स्वामी श्री हरिदास जी महाराज के अष्टादश सिद्धान्त पदों में एक ही पद ने **"मन लगाय प्रीति ....."** यह स्पष्ट कर दिया कि इन आचार्यों का भाव सर्वथा भेदातीत था।

समकालिक रसिकवर श्री हरिराम व्यास महाराज ने आपके विषय में कहा –

"देह विदेह भये जीवित ही बिसरे बिस्व विलास"

(व्यास वाणी)

ललित किशोरी देव जी ने कहा –

लगी समाधि बिहार की, छूटै नही दिन रैन ।
गोर श्याम बिलसैं सदा, श्रीहरिदासी ऐंन ॥

ऐसी स्थिति में भला पृथक् भाव कहाँ सम्भव है!

स्वामी श्री हरिदास जी की वाणी में ब्रज, निकुञ्ज एवं श्री मद्भागवत –

मन लगाय प्रीति कीजै, कर करवा सौं ब्रज-बीथिन दीजै सोहनी ।
वृन्दावन सौं, बन-उपवन सौं, गुंज-माल हथ पोहनी ॥
गो गो-सुतन सौं, मृगी मृग-सुतन सौं, और तन नेकु न जोहनी ।
"श्रीहरिदास"के स्वामी स्यामा-कुञ्जबिहारी (सौं चित), ज्यौं सिर पर दोहनी ॥

(स्वामी हरिदास रस सागर, अष्टादशसिद्धान्त के पद-१२)

प्रस्तुत पद में "वन-उपवन सौं" का तात्पर्य है ब्रज। यदि ब्रज व निकुञ्ज में भेद होता तो स्वामी जी ब्रज की गलियों में सोहनी सेवा की आज्ञा क्यों देते?

पुनः –

वृन्दावन अर्थात् वृंदावनान्तर्गत समस्त वन।

श्री वृन्दावने काननेषु तदन्तर्गतेषु काम्यक वनादिषु तत्र तयोर्विहारो वेष विशेष चोक्तः ।

(श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णव तोषिनी टीका.भा.१०/२४/२५)

श्री वृन्दावनभूमौ नन्दीश्वराष्टकूटवरसानुधवलगिरिसौगन्धिकादयो बहवोऽद्रयोवर्त्तन्ते॥

(श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णव तोषिनी टीका.भा.१०/२४/२५)

वन-उपवन अर्थात् ब्रज के अन्य समस्त वन।

ब्रज भक्ति विलासानुसार –

तत्रादौ वनोपवन प्रतिवनाधिवनान्यष्ट चत्वारिंशत् तानि चतुरष्टक्रोश– परिणामस्थितानि चतुर्भागशोऽभ्यन्तरस्थितानि क्रमश आह ॥

पाद्मे :-

वनानि द्वादशान्याहुर्यमुनोत्तरदक्षिणे ।
महावनं महाश्रेष्ठं द्वयं काम्यवनं शुभम् ॥१३॥

कोकिलाख्यं तृतीयञ्च तुर्य्यं तालवनं तथा ।
पञ्चमं कुमुदाख्यञ्च षष्ठं भाण्डीरसंज्ञकम् ॥१४॥
नाम्ना छत्रबनं श्रेष्ठं सप्तमं परिकीर्त्तितम् ।
अष्टमं खदिरं प्रोक्तं नवमं लोहजं वनम् ॥१५॥
नाम्ना भद्रवनं श्रेष्ठं दशमं बहुपुण्यदम् ।
एकादशं समाख्यातं बहुलावन संज्ञकम् ॥१६॥
नाम्ना विल्ववनं श्रेष्ठं द्वादशं कामनाप्रदम् ।
इति द्वादशसंज्ञानि वनानि शुभदानि च ॥१७॥

वाराहे :-

आदौ ब्रह्मवनं नाम द्वितीयं त्वप्सरावनम् ।
तृतीयं विह्वलं नाग कदम्बाख्यं चतुर्थकम् ॥१८॥
नाम्ना स्वर्णवनं श्रेष्ठं पञ्चमं परिकीर्त्तितम् ।
सुरभीवन नामानं षष्ठ माल्हादवर्द्धनम् ॥१९॥
श्रेष्ठं प्रेमवनं नाम सप्तमं शुभदं नृणाम् ।
मयूरवन नामानमष्टमं परिकीर्त्तितम् ॥२०॥
मानेंगितवनं श्रेष्ठं नवमं मानवर्द्धनम् ।
शेषशायिवनं श्रेष्ठं दशमं पापनाशनम् ॥२१॥
एकादशं समाख्यातं नारदाख्यं शुभोदितम् ।
द्वादशं परमानन्द वनं सर्व्वार्थदायकम् ॥२२॥
इति द्वादश संज्ञानि वनान्युपवनानि च ।
इति द्वादशोपवनानि ॥

भविष्ये :-

आदौ रंकवनं श्रेष्ठं पुरसंज्ञा विराजितम् ।
वार्त्तावनं द्वितीयञ्च करहाख्यं तृतीयकम् ॥२३॥
चतुर्थं काम्यनामानं वनं कामप्रदं नृणाम् ।
वनमञ्जन नामानं पञ्चमं श्रीशुभाप्रदम् ॥२४॥
नाम्ना कर्णबनं श्रेष्ठं षष्ठं स्वप्नवरप्रदम् ।
कृष्णाक्षिपन नामानं वनं नन्दन मष्टमम् ॥२५॥
नन्दप्रेक्षणकृष्णाख्यं वनं सप्तममीरितम् ।
वनमिन्द्रवनं नाम नवमं कृष्णपूजितम् ॥
शिक्षावनं शुभं प्रोक्तं दशमं नन्दभाषितम् ॥२६॥

चन्द्रावलीवनं श्रेष्ठमेकादशमुदाहृतम् ।
नाम्ना लोहवनं श्रेष्ठं द्वादशं शुभदं नृणाम् ॥२७॥
इति प्रतिवनान्याहुर्मार्गे वामे च दक्षिणे ।
इति द्वादश संज्ञास्ते देवावासफ़लप्रदाः ॥२८॥

विष्णुपुराणे :-

मथुरा प्रथमं नाम राधाकुण्डं द्वितीयकं ।
नन्दग्रामं तृतीयञ्च गढ़स्थानं चतुर्थकम् ॥२९॥
पञ्चमं ललिताग्रामं वृषभानुपुरं च षट् ।
सप्तमं गोकुलं स्थानमष्टमं वलदेवकम् ॥३०॥
गोवर्द्धनवनं श्रेष्ठं नवमं कामनाप्रदम् ।
वनं जाववटं नाम दशमं परिकीर्त्तितम् ॥३१॥
मुख्यं वृन्दावनं श्रेष्ठमेकादशं प्रकीर्त्तितम् ।
संकेतवटकं स्थानं वनं द्वादश कीर्त्तितम् ॥३२॥
इति द्वादश संज्ञानि वनान्यधिवनानि च ।
वनानामधिपाः प्रोक्ता ब्रजमण्डल मध्यगाः ॥३३॥

१२ वन, १२ उपवन, १२ प्रतिवन, १२ अधिवन इस तरह ब्रज भूमि के कुल ४८ वन प्रमुख हैं –

वन – पद्मपुराणानुसार यमुना के उत्तर-दक्षिण दिशा में –

महावन, कामवन, कोकिलावन, तालवन, कुमुदवन, भाण्डीर वन, छत्रवन, खदिरवन, लोहजंघवन, भद्रवन, बहुलावन, और बेलवन।

उपवन –

वराहपुराणानुसार –

ब्रह्मवन, अप्सरावन, विह्वलवन, कदम्बवन, स्वर्णवन, सुरभीवन, प्रेमवन, मयूरवन, मानेंगितवन, शेषशायीवन, नारदवन और परमानन्दवन।

प्रतिवन –

भविष्य पुराणानुसार –

रंकवन, वार्तावन, करहावन, कामवन, अञ्जनवन, कर्णवन, कृष्णक्षिपनवन, नन्दप्रेक्षणकृष्णवन, इन्द्रवन, शिक्षावन, चन्द्रावलीवन और लोहवन।

अधिवन –

विष्णु पुराणानुसार –

मथुरा, राधाकुण्ड, नन्द ग्राम, गढ़, ललिता ग्राम, वृषभानपुर, गोकुल, बलदेववन, गोवर्द्धन, यावट, वृन्दावन, और संकेतवन।

कहाँ तक कहें, स्वामी हरिदास जी ने ब्रज के गाय, बछड़े, हिरण, हिरण-शावक की भी वन्दना की।

यही श्रीमद्भागवत का भी कथन है –

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि
हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेशम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥

(भा. १०/२१/११)

गोपियाँ कह रही हैं – इन मूढ़ बुद्धि वाली हरिनियों को तो देखो, जहाँ वंशी सुनती हैं, बस अपने पति कृष्णसार मृगों के साथ श्यामसुन्दर की ओर दौड़ी चली जाती हैं। विस्फारित नेत्रों से उन्हें निहारती हैं और कन्हैया के ऊपर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती हैं।

जीवन तो इनका ही धन्य है। यह सौभाग्य तो हमें भी कहाँ प्राप्त है।

जितना ब्रजगोपियों का महत्त्व है उतना ही इन हिरनियों का महत्त्व है। कारण, दोनों में सर्वत्याग है जो कि सेव्य है। इनमें मन लगाकर प्रेम करो। अन्यत्र मत देखो। यह प्रमाण है ब्रज, निकुञ्ज व श्रीमद्भागवत की एकता का।

रसिकाचार्यों की वाणी में ब्रज लीला –

श्री हित चौरासी पद सं – ३६ में 'वृषभानुनन्दिनी' व 'ब्रजराज' शब्द आया है, इसी प्रकार पद – ४३, ४५, ४८, ८१ में 'वृषभानुनन्दिनी' शब्द ब्रजलीला का द्योतक है।

स्वामी हरिदास जी ने **'ब्रज वीथिनि दीजै सोहिनी'** में तो समष्टि ब्रज गाया ही है, इसके अतिरिक्त कई अनेक पदों में ब्रज के ग्रामों को भी गाया –

सोई तौ वचन मोसौं मानि तै मेरौ लाल मोह्यौ री साँवरौ ।
नव निकुञ्ज सुख पुंज महल में सुबस बसौ यह गाँवरौ ॥
नव नव लाड़ लड़ाइ लाड़िली नहिं नहिं इह ब्रज जाँवरौ ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी पै वारौंगी मालती भाँवरौ ॥

(केलिमाल ४४)

विशेष रूप से श्री वृषभानु कुण्ड, बरसाना की लीला का गान किया –

कहौ यह काकी बेटी कहा धौं कुँवरि कौ नाँउ ।
तुम सब रहौ री हौं ही ऊतर देहौं
चले किन जाहु ढोटा बाइ बावरौ <u>गाँउ</u> ॥
सब सखि मिलि छिरका खेलन लागीं
तौलौं तुम रहौ री जोलौं हौं न्हाँउ ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी
लै बुड़की गरैं लागि चौंकि परी कहाँ हौं जाँउ ॥

(केलिमाल ८३)

सखि समुदाय के साथ श्रीराधारानी वृषभानु कुण्ड पर स्नान करने आई हैं। श्यामसुन्दर के द्वारा श्रीराधारानी का परिचय पूछे जाने पर ललिता सखी कहती हैं – अरे भाग जा, भाग जा बावरे गाँव (नंदगाँव) का छोरा।

इसी भाव का एक और पद है –

काकी सुता मन निरखत मोहै ।
प्रिया कहत तुम मौन सबै रहू गाँव बावरौ बोलत को है ॥
आवत मत्त सहचरी छिरकत हौं न्हाऊँ तन लौं मति जोहै ।
लखि हरिदासी स्याम की स्वामिनी बुड़की चौंकी पिय गर-उर सोहै ॥

(केलिमाल सौरभ-८३)

इसके अतिरिक्त रसिकवर श्री बिहारिन देव जी ने भी '**ब्रज संजोग अंग**' गाया। '**ब्रजवास कृपा वांछित अंग**' में बहुत दिव्य भावों का गान किया।

जैसे –

'कृपा मैं जानी अब ब्रज-भूप'

(विहारिन देव जी की वाणी-१४१)

अथवा

'रुचें मोहिं ब्रजवासिन के टूक'

(विहारिन देव जी की वाणी-१४२)

अथवा

'हौं ब्रजवासिन को पाल्यो पिल्ला'

(विहारिन देव जी की वाणी-१४३)

अथवा

'मोहिं ब्रजवासिन सौं बनि आई ।
जिनके तन मन बसत निरन्तर स्यामा स्याम सदाई ॥'

(विहारिन देव जी की वाणी-१४४)

प्रस्तुत पद में वैष्णव संहिता श्रीमद्भागवत के ही भाव हैं –

जिनकी चरनरेनु जाँचत ऊधो ब्रह्मा हूँ न पाई ।
तिनको सर्वसु दियो अपनपौ जानि सिरोमनि राई ॥

अथवा

मेरे गति ब्रजपति कै ब्रजवासी ।

(विहारिन देव जी की वाणी-१४५)

पुनः आगे गाया है –

श्रीकृष्णचरित्र त्रिधा त्रिभुवन बहु भक्ति भेद बिस्तार ।
जहाँ जु रस तहाँ-तहाँ वैस सुख देत सबनि उदार ॥
गाय – ग्वाल – गोप – गोपी –जन न्यारौ ब्रज ब्यौहार ।
सब तें दूरि दुर्‍यौ दुर्लभ क्यों सुलभ होत सुकुमार ॥

(विहारिन देव जी की वाणी-१४६)

अथवा

ब्रज रज काज कियो रज राखी ॥

(विहारिन देव जी की वाणी सवैया-६१)

इन परमरस-रसिकजनों ने ब्रजलीला हो अथवा निकुञ्ज लीला, चूँकि लीला तो एक ही लाल की है अतः समस्त लीलाओं को भाव की एक ही ऊँचाई से गाया है, इतना अवश्य है कि रुचिकर रस अधिक गाया है किन्तु इसका आशय अन्य लीलाओं का खण्डन नहीं है।

श्री स्वामी जी की वाणी में परकीया लीला –

काहे ते आजु अटपटे से हरि ।

(श्रीकेलिमाल-३८)

आज श्यामसुन्दर किसी अन्य गोपी से मिलकर आये हैं, श्रीराधारानी के बार-बार पूछने पर भी बताते नहीं हैं, बात को छिपाते हैं किन्तु श्री राधारानी इस अन्य मिलन को जान गई हैं।

चौकी कहाँ बदलि परी हो प्यारे हरि ।

<u>**ऐश्वर्य लीला –**</u>

तुव जस कोटिब्रह्माण्डविराजै राधे ।
श्री सोभा वरनि न जाइ अगाधे ॥

(श्रीकेलिमाल-४१)

हे राधे! करोड़ों ब्रह्माण्डों में आपका यश छा रहा है।

यही ऐश्वर्य श्री शुकदेव जी ने भी रासरस के प्रथम श्लोक में गाया –

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥

(भा.१०/२९/१)

इस रसमयी लीला को करने वाला कौन है? 'भगवान्'। यहाँ भगवान् शब्द ऐश्वर्य सूचक है –

तद्विहीनं जाराणामिव ॥

(ना.भ.सू.२३)

ऐश्वर्य विहीन होने पर तो सब लीला प्राकृत हो जायेगी। दिव्य प्रेम के स्थान पर प्राकृत प्रेमियों का जैसा प्रेम रह जायेगा अतः ऐश्वर्य का सर्वथा अपलाप नहीं किया जा सकता है। ऐश्वर्य का अपलाप होने पर प्राकृत भाव आ जायेगा एवं उपासना की सिद्धि नहीं होगी। इसलिए तो श्री शुकदेव जी ने महारास जैसी रसमयी लीला का प्रारम्भ भगवान् शब्द से किया।

महारास जैसी अन्तरंग लीला में ब्रजलीला गान है और उसमें ऐश्वर्य भी प्रकट है गोपियों ने गोपीगीत के निम्नलिखित श्लोकों में ऐश्वर्य गान किया है।

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥
न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥

(भा.१०/३१/३, ४)

स्वामी जी की वाणी में निकुञ्ज लीला –

चलि री भीर तें न्यारेई खेलैं ।
कुञ्ज निकुञ्जमंजु में झेलैं ॥
जहाँ पंछी न सहित सखी न संग कोऊ
तिहिं वन चलि मिलि केलैं ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा प्रेम परस्पर बूका बंदन मेलैं ॥

(श्रीकेलिमाल–१००)

श्यामसुन्दर श्रीराधिकारानी से कह रहे हैं – हे राधे! चलो, यहाँ से अलग एकान्त में खेलें।

भागवत में निकुञ्ज लीला –

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत्।
यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम्॥

(भा.१०/३०/३०)

शब्द मात्र का भेद है स्वामी जी ने 'न्यारेई' कहा है और शुकदेव जी ने 'रहो' कहा है बस यहाँ से निकुञ्ज लीला का प्रारम्भ हुआ और १०/३०/३५ तक अनेक श्लोकों में इस रमण का वर्णन हुआ।

संकीर्ण विचारकों का यह भी कहना है कि ब्रजलीला करने वाली श्री राधा अलग हैं व नित्यविहार की निकुञ्जेश्वरी अलग हैं। ध्यान रहे, निकुञ्ज लीला के परमाचार्य श्री हितहरिवंश महाप्रभु ने भी ब्रजलीला गाई है। निकुञ्ज लीला के कितने ही पदों में श्री राधारानी को वृषभानुनन्दिनी कहकर बरसाने का वात्सल्य गाया और ब्रज व निकुञ्ज का साम्य दिखाया।

श्री हिताचार्य की वाणी में ब्रज लीला –

चलो वृषभानु गोप के द्वार।

(स्फुट वाणी-१६)

पुनः

सुनि मेरो वचन छबीली राधा तै पायौ रससिन्धु अगाधा।
तू वृषभानु गोप की बेटी मोहनलाल रसिक हँसि भेंटी।

(श्री हित चौरासी-१८)

पुनः

नन्दनन्दन वृषभानुनन्दिनी उठे उनीदे भरि।

पुनः

अति नागरि वृषभानु किशोरी।

(श्री हित चौरासी-४३)

पुनः

आवति श्री वृषभानु दुलारी।

(श्रीहित चौरासी-४५)

पुनः

बनी वृषभानुनन्दिनी आजु ।

(श्रीहित चौरासी-४८)

पुनः

नयौ नेह, नवरंग, नयौ रस, नवल श्याम वृषभानु किशोरी ।

(श्रीहित चौरासी-५४)

पुनः

वृषभानुनन्दिनी मधुर कल गावै ।

(श्रीहित चौरासी-८१)

पुनः

आजु व देखियत है हो प्यारी रंग भरी ।
मोपै न दुरत चोरी वृषभानु की किशोरी,

(श्री हित चौरासी–८४)

अर्थात् वृषभानु की बेटी श्री राधा ही निकुञ्ज लीला की नायिका हैं।

पुनः

रूप रुचिर अंग-अंग माधुरी बिनु भूषन भूषित ब्रज गोरी ।

(श्री हित चतुरासी–८२)

और तो और श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध पद का आरम्भ ब्रज से ही है।

ब्रज नव तरुणनि-कदम्ब मुकुटमनि श्यामा आजु बनी ।
नख सिख लौं अंग-अंग माधुरी मोहे श्याम धनी ॥

(श्री हित चौरासी– २९)

निकुञ्ज के नायक भी नन्दलाल ही हैं, जिनका यश करोड़ों ब्रह्माण्डों में फैल रहा है।

आजु सखी बन में जु बने प्रभु नाचत हैं ब्रजमंडन ।
जै श्री हित हरिवंश करत अपनौ जस प्रगट अखिल ब्रह्मंडन ॥

(श्री हित चौरासी–६१)

इस अन्तिम पंक्ति में श्री हिताचार्य जी ने ऐश्वर्य लीला का भी गान किया।

पुनः

मैं जु मोहन सुन्यौ वेणु गोपाल कौ ।
चंद गति मंद भई, निरखि छबि काम गई ।

(श्री हित स्फुट वाणी-१३)

अर्थात् गैया चराने वाले गोपाल ही निकुञ्ज क्रीड़ा के नायक हैं।

पुनः

आज बन नीकौ रास बनायौ ।
विविध विषद वृषभानु.................पति ब्रजराज रिझायौ ।

(श्री हित चौरासी–३६)

अर्थात् यह महारास क्रीड़ा करने वाली नायिका वृषभानु की पुत्री ही हैं व नायक ब्रजराज नन्द के लाल ही हैं।

पुनः

आज तू ग्वाल गोपाल ....

(श्री हित स्फुट वाणी–१४)

पुनः

आनन्द आज नंद के द्वार ....

(श्री हित स्फुट वाणी–११)

पुनः

खेलत रास रसिक ब्रजमंडन............

(श्री हित स्फुट वाणी–१९)

पुनः

नन्द के लाल हरयौ मन मोर

(श्री हित चौरासी–१३)

पुनः

देखि सखी राधा पिय केलि ।
ये दोऊ खोरि खिरक गिरि-गह्वर
विहरत कुँवर कंठ भुज मेलि ॥

(श्रीहित चौरासी–४९)

खोर अर्थात् खोर साँकरी।

खेरा अर्थात् वृषभानु घेरा, ऊँचागाँव की ओर।

गिरि अर्थात् ब्रह्माचल पर्वत।

गह्वर अर्थात् गह्वर वन।

ये चारों ही बरसाने में हैं।

रसग्रन्थ केलिमाल का प्रथम पद है –

माई री सहज जोरी प्रगट भई ।
जु रंग की गोर स्याम घन दामिनी जैसे ।
प्रथम हूँ हुती अबहूँ आगै हूँ रहिहै न टरिहै तैसे ॥

अर्थात् श्री प्रिया-प्रियतम की यह सहज जोड़ी नीले मेघों में गोर विद्युतवत् प्रकट हुई है। यह जोड़ी पहले भी थी, अब भी है और आगे भी रहेगी। अर्थात् नित्य है किन्तु प्रकट लीला भी यही सहज जोरी करती है, यदि स्वामी जी को ब्रज व निकुञ्ज में कोई भेद दिखायी देता तो 'ब्रज बीथिन दीजै सोहनी' क्यों कहते।

अथवा

श्रीबिहारिन देव जी ने कहा –

'मेरे नित्य किशोर अजन्मा'

(विहारिनि देव जी की साखी-१४४)

हमारे नित्य लीला के ठाकुर अजन्मा हैं।

श्री बिहारिन देव जी का यह दिव्य भाव उस स्थिति का है जहाँ मन अनन्य रूप से श्रृंगार रस में डूब चुका है फिर प्रकट लीला करने वाला भी तो वही अजन्मा ही है, क्योंकि प्रकट लीला करने कोई अन्य भगवान् तो नहीं आयेगा।

श्री बिहारिन देव जी की इस पंक्ति को आधार बनाकर परम्परानुवर्ती महानुभाव अवतारवाद का खण्डन करते हैं। हमारे रस-सम्प्रदाय में नित्य लीला की उपासना है, अवतार लीला की नहीं किन्तु ये सब अपराधमूलक बातें हैं। यहाँ यह समझ लेना चाहिए यह निज उपासना पद्धति व निज रूचि की दृष्टि से साधक की भावना के लिए उल्लेख किया गया है न कि जन्मादि लीला में भिन्नता या निषेध की दृष्टि अपनाई गयी है।

प्रतिषेध दो प्रकार का होता है वृत्तियों के प्रतिषेध में, पहला प्रतिषेध जिसे प्रसज्य प्रतिषेध कहते हैं और दूसरा प्रतिषेध जिसे पर्युदास प्रतिषेध कहा जाता है। यह समझना आवश्यक है। प्रसज्य प्रतिषेध में तो वास्तु का सर्वथा अभाव होता है और पर्युदास प्रतिषेध में तत्समक्ष दूसरी वास्तु का उपादान हुआ करता है। जैसे – "अब्राह्मणमानय" अर्थात् ब्राह्मण को मत लाओ, ब्राह्मण मित्र को लाओ। यदि इसी वाक्य को प्रसज्य प्रतिषेध की दृष्टि से अर्थ करेंगे तो अर्थ होगा "ब्राह्मण तक को मत लाओ अर्थात् किसी को मत लाओ" यह जो ब्रज लीला सभी आचार्यों ने गाई ब्रज और निकुञ्ज में बहुत बड़ी दीवाल खेंचने के लिए नहीं और न ब्रजलीला में हेयबुद्धि रखने के लिए गई जैसे – श्रीमद् राधासुधानिधि में श्लोक संख्या २३५ या २३६ में – "हरति स्नेह वृद्धिं स्वपित्रों" – अर्थात् वहाँ श्रीनन्द-यशोदा की स्नेह धारा भी नहीं है अथवा ७३ या ७४ श्लोक में "ब्रजपतेरण्य प्रसङ्गःकुतः" किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं नन्दवृषभानु आदि का सर्वथा अभाव है क्योंकि ग्रन्थ का आरम्भ ही बरसाने से होता है "यस्याः कदापि

वृषभानुभुवोदिशेपि" आचार्यों की किसी एक पंक्ति को लेकर भेद का प्रचार करना अपराध है। रसिकों ने कहीं-कहीं अति उत्साह में या रसावेश में जो कुछ कहा है, वह उनकी दिव्यतम स्थिति का परिचायक है प्राथमिक साधक के लिए अनुकरणीय नहीं है उसमें स्वयं और समाज दोनों की क्षति है। इसलिए श्री शुकदेव जी ने महारास वर्णन के पश्चात् तुरन्त सावधान किया –

नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।
विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥

(भा.१०/३३/३०)

अर्थात् जिनमें ऐसी अचिन्त्य सामर्थ्य नहीं है उन्हें मन से भी ऐसी बात नहीं सोचनी चाहिए, शरीर से करना तो दूर रहा। यदि मूर्खता वश कोई ऐसा काम कर बैठे तो उसका नाश हो जाता है। शिवजी ने तो विषपान किया अब दूसरा कोई शिवजी का अनुकरण करते हुए विष पान करेगा तो उसका विनाश निश्चित है।

अतः आचार्यों की वाणियों का आशय बड़ा ही गम्भीर है बिना उनकी कृपा के समझ पाना सर्वथा असम्भवहै।

श्री उद्धव जी के वचन – **'भवोऽभवस्य ते'** वह अजन्मा होकर भी जन्म ले रहा है।

सनकादिक के वचन –

तं त्वां विदाम भगवन्परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन सम्प्रति रतिं रचयन्तमेषाम् ।
यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥

(भा. ३/१५/४७)

हे प्रभो! इस समय आप सगुण-साकार विग्रह से भक्तों को आनन्दित कर रहे हैं।

न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदि हात्मगोपं
गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ।
तर्ह्येव नङ्क्ष्यति शिवस्तव देव पन्था
लोकोऽग्रहीष्यदृ ऋषभस्य हि तत्प्रमाणम् ॥

(भा. ३/१६/२३)

यदि आपका अवतार न होता तो संसार से कल्याण मार्ग ही नष्ट हो जाता। यह कौन जानता कि भगवान् कौन है, भक्ति क्या है? संसार में श्रेय नाम की वस्तु ही नहीं रह जाती।

रसिकाचार्य श्री व्यास जी की वाणी में ब्रज –

धनि वृषभानु धन्य बरसानो, धनि राधा की माइ ।
तहाँ प्रगटी नवनागरि खेलत, रति सों रहि पछिताइ ॥
जाके परस सरस वृन्दावन, बरसत सुखनि अघाइ ।
ताके सरन रहत काको डर, कहत व्यास समुझाइ ॥
सुभग गोरी के गोरे पाँइ ।

(व्यास वाणी-८०)

क्या यह ब्रजलीला का खण्डन है?

क्या यह अवतार लीला का खण्डन है?

श्री वृषभानुनन्दिनी के स्पर्श से ही वृन्दावन की भूमि रसमयी हुई। उन रसेश्वरी राधारानी का जन्म हुआ बरसाने में, धन्य है बरसाना गाँव। ऐसी अवतार भूमि, अवतार लीला एवं अवतार विग्रह के प्रति जिनका भाव नहीं है वे निश्चित ही निरयगामी हैं।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥

(भा. १०/२/३२)

देवता बोले – हे प्रभो! जो आपके अवतार विग्रह का अनादर करते हैं, उनका परमपद से भी पतन हो जाता है। नित्यधाम में पहुँचकर भी वे गिर जाते हैं।

सावधान! नित्यलीला का तात्पर्य अवतारवाद का खण्डन नहीं है।

यहाँ तक कि आजकल के शाब्दिक रसिक, श्री बिहारिन देव जी की इस पंक्ति

ता ब्रज के आवरण सुनि गोपी गाइ ग्वाल ।
तिन्हुं तें बिहरत दुरैं रसिकन के प्रतिपाल ॥

(विहारिनिदास जी की वाणी-६६५)

को आधार मानकर कि निकुञ्ज में गोपी-ग्वाल विघ्न हैं, भगवान् की सख्य, वात्सल्य रस की लीलाओं का खण्डन करने का दुस्साहस भी कर रहे हैं। चार-छः घण्टे बैठकर व्यर्थ की बातें कर लेंगे किन्तु गोपी-ग्वालों की लीला, ब्रजलीला नहीं गायेंगे क्योंकि अनन्य निकुञ्ज उपासक हैं। यह कैसी वञ्चना है! कोई सख्य रस की लीला गा रहा है, वात्सल्य रस की लीला गा रहा है। उसे यह कहकर रोक देना कि ये मत गाओ, हम निकुञ्जोपासक हैं, केवल निकुञ्ज लीला गाओ तो क्या यह अपराध नहीं है? अरे, भागवत्-धर्म तो कहता है किसी प्रकार इन लीलाओं में मन लग जाये।

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥

(भा.७/१/३१)

भक्ति नवधा क्यों रखी गयी क्योंकि मन अत्यधिक चंचल है।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

(गी. ६/३४)

चंचल अर्थात् अत्यधिक चल है यह मन, जिसे रोकना वायु की तरह कठिन है। अतः श्री शुकदेव जी ने सावधान किया –

न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ।
यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥

(भा. ५/६/३)

अर्थात् मन पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। मन पर विश्वास करके बड़े-बड़े तपस्वियों और तेजस्वियों का भी तप, तेज क्षीण हो गया। अतः ऐसे अतिशय चंचल चपल मन को लक्ष्य के प्रति निश्चल और अविचल बनाने के लिए ही भक्ति में विविधता रखी गयी। श्रवण से हटे तो मन को कीर्तन में लगाओ; कीर्तन से हटे तो स्मरण में लगाओ; वहाँ से भी हटे तो पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मसमर्पण, कहीं ना कहीं इसे लगाये रखो।

इसी प्रकार लीला की विविधता का तात्पर्य भी इष्ट सम्पादन करना ही है। श्रृंगार से मन हटे तो सख्य में लगाओ, सख्य से भी हटे तो वात्सल्य में लगाओ।

कहाँ है ब्रज व निकुञ्ज में भेद?

जहाँ श्री बिहारिन देव जी "श्री वृन्दावन रस खाँनि खँदानौ" गा रहे हैं, वहीं अगले पद में "ब्रज रज राज कियो रज राखी" गा रहे हैं।

यह भेद है अथवा ऐक्य?

श्री बिहारिनदेव जी ने स्वयं ब्रज व निकुञ्ज का ऐक्य दर्शाया है।

हम लोगों का रिसीवर दूषित होने से रसिकाचार्यों की मूल वाणी व भाव समझ से बाहर हो जाता है। इन भावों को झगड़े की झोपड़ी बनाने वालों का रिसीवर दूषित है। ट्रांसमीटर व रिसीवर दोनों का सम्मिलित सहयोग आकाशवाणी (रेडियो) है। ट्रांसमीटर सही है और रिसीवर गलत है तो मूल का स्वरूप बिगड़ जायेगा।

परम भगवदीय श्री कुम्भनदास जी श्री युगल की निकुञ्ज लीला के रसिक थे। एक बार सुपुत्र श्री चतुर्भुजदास जी गोकुल गये। लौटने पर श्री कुम्भनदास जी ने पूछा – आज कहाँ गये थे? इस पर चतुर्भुजदास जी ने बताया – आज गोकुल गये थे, बाललीला का प्रकरण था।

किन्तु प्रमाणलीला में क्यों गये?

यहाँ प्रमेय लीला में ही रहते।

प्रमाण अर्थात् साधन एवं प्रमेय अर्थात् साध्य।

श्रृंगार रस साध्य है एवं सख्य, वात्सल्यादि साधन हैं। प्रमाण प्रकीर्ण में न जाकर, प्रमेय प्रकीर्ण में रहो व अनन्य रसिक बनो, कुम्भनदास जी के इस प्रकार कहने पर श्री चतुर्भुजदास जी ने गुसांई श्री विट्ठलनाथ जी से इसका आशय जानना चाहा तब श्री गुसांई जी ने बहुत सुन्दर समाधान किया – चतुर्भुज दास जी! कुम्भनदास जी का चित्त किशोरलीला (श्रृंगार रस की लीला) के आवेश में है अतः उन्होंने ऐसा कहा है। वस्तुतः भगवल्लीला में कोई भेद नहीं है।

भगवान् तो अनन्त विरोधी धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में किशोर भी हैं और बालक भी। हमारे-तुम्हारे अन्दर यह सामर्थ्य नहीं है। कोई बालक है तो बालक ही रहेगा उसी समय किशोर नहीं हो सकता है और किशोर है तो बालक नहीं हो सकता किन्तु प्रभु की यह अचिन्त्य शक्ति है कि वे एक ही समय में अनेक लीलाएं सम्पादित करते हैं। यही तो उनकी सर्वशक्तिमत्ता है। वात्सल्य रस के उपासकों को बाललीला, सख्य रस के उपासकों को सख्यलीला व निकुञ्जोपासकों को निकुञ्ज लीला का दर्शन कराते हैं –

बाल रूप यशुमति मोहिं जाने, गोपिन मिल सुख भोगूं।

(सूर सागर)

भगवान् की किसी भी लीला में सिद्धान्त से भेद नहीं करना चाहिए।

भगवल्लीला में सैद्धान्तिक भेद अपराध है। महापुरुषों की आवेश-स्थिति से सर्वथा अनभिज्ञ होने से हम लोग अन्य लीलाओं में अभाव करके अपराध करते हैं।

रस मत्तता के धोखे में हो रहा है अपराध –

श्री बिहारिन देव जी की वाणी –

भक्त साधारण के अपराधहिं काँपत डरनि हियौ।

(विहारिनि देव जी की वाणी-५८)

साधक भक्त के अपराध से भी डरना चाहिए फिर हमलोग भेदवादिता में पड़कर रसिक, आचार्य व गुरुजनों का अपराध कर बैठते हैं।

रसिकजनों की वाणी का मनमाना अर्थोपयोग क्या अपराध नहीं है?

श्री बिहारिनदेव जी कह रहे हैं –

गुरु अपराध डरौ सब कोई।
साधन श्रवन कहा फल लागै गयौ मूल गथ खोई॥
काजर सों काजर न ऊजरौ होइ किन देखौ धोई।

जोई रोग दोस सोई औषद रह्यौ आपकों रोई ॥
कृतघन उपकारहि नहिं मानत राखत तन मन गोई ।
कपट प्रीति परतीति न उपजै हला भला दिन दोई ॥
काचौ कटुक सुभाव बाकसौ (तजै) पाकौ नीबौ मीठौ होई ।
आदि मध्य अवसान बिमुखई रह्यौ विषै विष भोई ॥
जैसें जारैं अगिन कौ अगिनैं सीतल करैं न तोई ।
श्रीबिहारीदास और न उपाय अब श्री गुरु चरन सँजोई ॥

(बिहारी दास जीसिद्धान्त के पद-५९)

अर्थात् मूलाचार्यों ने जो कहा, उसे ही धारण करें, परवर्ती बातों को नहीं।

किन्तु

अधम न छाँड़ै अधमई गुरु कितौ पुकारै ।
पर की निन्दा करै पतित अपनो ब्रत हारै ॥

(विहारिनि देव जी की वाणी-३२)

हम लोग एक-दूसरे के सम्प्रदाय की निन्दा, आचार्य-निन्दा, वाणी-निन्दा जैसा जघन्य अपराध करते हैं और स्वयं को अनन्य रसिक समझते हैं।

बातें कहत बिहार की, गरे पर्‌यौ जंजाल ।
महल टहल तैं जाँनिये, कहा बजायै गाल ॥

(विहारिनि देव जी की वाणी-३७५)

इस रस की सीमा को छू पाना भी अत्यन्त दुष्कर है।

भगवत रसिक अनन्य, बधू नव गर्भ धरै उर ।
सदा सहायक सासु-स्वामियाँ जानौ सतगुर ॥

(भगवत रसिक जी की वाणी, निर्विरोध मनरंजन ग्रन्थ-१४)

अनन्य रसिक ही वो वधू हैं, जो अनन्य भक्ति रूपी गर्भ धारण करते हैं एवं **सद्‌गुरु** उस सास व पति के समान हैं जो वधू के सर्वदा सहायक हैं।

जिस प्रकार पति के सिद्धान्तों के विरुद्ध चलने वाली स्वेच्छाचारिणी स्त्री का पातिव्रत कभी सिद्ध नहीं होता, उसी प्रकार **सद्‌गुरु** के विरुद्ध चलने वाले शिष्य का अनन्य व्रत।

भरता के द्वै भामिनी बसैं, एक ही गाँव ।
सेवा साधैं औसरनि, तोरैं पति के पाँव ॥
तोरैं पति के पाँव, सौतियारौ सौ मानैं ।
ऐसेहिं सब मत बाद, करैं खण्डन मत आनैं ॥

आचरज अभिमान, आपकौं मानैं करता ।
तजि विरोध नहीं भजैं, आपनौं भगवत भरता ॥

(भगवत रसिक जी वाणी, निर्विरोध मनरंजन ग्रन्थ-१५)

एक पति की दो पत्नियाँ पति के एक-एक चरण को अपना मानकर समय-समय से सेवा करते हुए एक चरण को दबायें व दूसरे चरण को सौत का मानकर तोड़ दें और यह भूल जाएं कि दोनों चरण उसी पति के हैं जिसकी वह पत्नी हैं तो यह पति की सेवा है अथवा प्रहार?

ऐसे ही आज सभी मत व सभी वाद अन्यान्य मत-वादों के खण्डन में लगे हैं जबकि समस्त सम्प्रदाय, सम्प्रदायाचार्य, सम्प्रदाय वाणी एक ही परमपति हरि की प्राप्ति का माध्यम हैं। क्या यह अपने इष्ट का विरोध नहीं है?

भूल गये कि सभी सम्प्रदायों का परम-चरम लक्ष्य तो भगवान् ही हैं फिर उसकी प्राप्ति के मार्गों में परस्पर विरोध कैसा?

तभी तो यह रसोपासना का मार्ग सबके सामर्थ्य की बात कहाँ?

कठिन प्रीति रस रीति है समुझि गहो मन मांहि ।
एक चकोर पावक चुगै सबहिन कौ भख नांहि ॥
जो है जाति चकोर की सोई पावकै खाइ ।
और पंछी जो छुवै चोंच सों छुबत जीभ जरि जाइ ॥

(श्रीबिहारिनदेव जी वाणी-३९७, ३९८)

चातक ही अंगारा (आग का गोला) चुग सकता है, अन्य तो जीभ जला लेंगे।

रसिकाचार्या ब्रजगोपीजन

गोपाङ्गनाओं से श्रेष्ठ रसिक कौन होगा, जिनके और श्यामसुन्दर के बीच उद्दाम रस का प्रवाह हुआ। उन गोपियों ने महारास-रस में भी सख्य, वात्सल्य लीला का अभिनय किया।

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम् ।
तोकयित्वा रुदत्यन्या पदाहञ्छकटायतीम् ॥

(भा. १०/३०/१५)

एक गोपी पूतना बनी और दूसरी बालकृष्ण बन स्तनपान का अभिनय करने लगी, कोई वत्सासुर, कोई बकासुर, तो कोई कालियनाग बनी। गोपियों ने १०/३०/१५-२२ तक सभी लीलाओं का अनुकरण किया।

श्रीमद्-राधासुधानिधि में पूतना लीला –

मत्कण्ठे किं नखरशिखया दैत्यराजोऽस्मि नाहं
मैवं पीडां कुरु कुचतटे पूतना नाहमस्मि ।
इत्थं कीरैरनुकृतवचः प्रेयसा सङ्गतायाः
प्रातः श्रोष्ये तव सखि कदा केलिकुञ्जं मृजन्ती ॥

(रा.सु.नि. १६३)

स्वयं गोपियों ने महारास में पूतना, तृणावर्त वधादि लीलाओं का अभिनय किया है। जो साक्षात् महारास में श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही हैं, क्या हम उनसे भी बड़े रसिक हैं, जो इन लीलाओं का खण्डन करते हैं? यदि नहीं तो फिर भगवान् की सख्य, वात्सल्य की लीला का निषेध क्यों?

इन बातों से भगवल्लीलाओं में अभाव उत्पन्न होता है और यह अभाव भगवान् से सुदूर ले जाता है।

यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादा च्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ।
यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारा स्तांस्तान् क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ॥

(भा. ३/१५/२३)

श्री ब्रह्मा जी कह रहे हैं – तुम कितने ही ऊँचे शाब्दिक रसिक बन जाओ किन्तु भगवद्धाम की प्राप्ति कभी नहीं होगी। भगवान् की पापनाशिनी लीला-चर्चा छोड़कर व्यर्थ बातें कहते सुनते हो, ये कुकथा बुद्धि नष्ट कर देगी। अभागे लोग ही भेद व अभाव युक्त व्यर्थ-चर्चा करते व सुनते हैं।

भगवद्धाम की प्राप्ति किनको?

श्री ब्रह्माजी ने कहा –

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरेयमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ।
भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥

(भा. ३/१५/२५)

सख्य, वात्सल्य, शान्त, दास्यादि...किसी भी रस की लीला है, भगवान् की सभी लीलाओं को सुनकर जिनका शरीर रोमांचित हो उठता है, नेत्रों से अविराम प्रेमाश्रु प्रवाह होने लगता है, वे सौभाग्यशाली जन नित्यधाम की प्राप्ति कर लेते हैं।

कैसी रसिकता?

एक बार पूज्य श्री बाबा महाराज ने किन्ही महानुभाव से रस-चर्चा करते हुए श्री रामचरितमानस की एक चौपाई कह दी। इस पर वह बोले – अरे! हम तो तुम्हें अनन्य रसिक समझते थे किन्तु तुम तो अभी रामायण पर ही अटके हो।

यह कैसी रसिकता जहाँ श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामचरितमानसादि वैष्णव ग्रन्थों का कथन-श्रवण भी पाप समझा जाता हो। आश्चर्य है कि इसे ही श्रेष्ठ कोटि की रसिकता समझा जाता है।

उन्हें कुछ कहो तो कहते हैं हमारे पूर्वाचार्यों ने कहा है –

स्यामहि उपमा दीजै काकी ।
इहिं रस नवधा-भक्ति उवीठी रति भागोत कथा की ।
रहनकहन सबही तें न्यारी, 'व्यास' अनन्य सभा की ॥

(श्री व्यास वाणी-१८०)

श्री व्यास जी महाराज कह रहे हैं – हमें नवधा भक्ति अब अच्छी नहीं लगती, भागवत कथा में हमारी रति नहीं रही।

केवल इन शब्दों को पकड़कर मनमाना करने वाला तो निश्चित ही कहेगा कि हमारे पूर्वाचार्यों ने नवधा भक्ति और भागवत कथा को छोड़कर निकुञ्ज रस में डूबने को कहा है और इस प्रकार वह बहिर्मुख ही हो जायेगा। विचार करें, उन्होंने ये बातें किस निष्ठा पर पहुँचने के बाद कही हैं।

जाकी (है) उपासना, ताही की वासना, ताही कौ नाम, रूप, गुन गाइयै ।
यहै अनन्य परम धर्म परिपाटी, वृन्दावन बसि अनत न जाइयै ॥
सोई विभिचारी आन कहै, आन करै, ताको मुख देखे, दारुन दुख पाइयै ।
'व्यास' होइ उपहास त्रास कियें, आस-अछत, कित दास कहाइयै ॥

(व्यास वाणी-१७९)

क्या विकर्मों से हमारी रुचि हट गयी है? क्या विषयों से हमारी रुचि हट गयी है? या फिर भक्ति और भागवत कथा से ही रुचि हटी है।

देखा देखी रसिक न ह्वैहैं, यह मारग है बंका ।
असहन निन्दा करत पराई, कबहूँ न मानी शंका ॥

कृष्ण रस से इतर चर्चाओं से रुचि हटाओ।

रसिकों की वाणियों को भेदमूलक मत बनाओ।

यदि समझने का प्रयत्न करें तो श्रीमद्भागवत और रस वाणियों में भेद है ही कहाँ?

श्रीमद्भागवत एक अद्वितीय ग्रन्थ है, गम्भीर अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि जो युगल रस श्रीमद्भागवत में है वह अन्यत्र नहीं है। सम्पूर्ण रस ग्रन्थों का आकर ही श्रीमद् भागवत है, अन्तर इतना है की वही रस श्रीमद् भागवत में सूत्रात्मक है और आचार्यों की वाणियों में भाष्यात्मक है।

श्रीमद्भागवत की रस-परम्परा ही सम्पूर्ण रस परम्परा का आधार है। सभी रसिकों ने यह स्वीकार किया है, आधुनिक भेदवादी अल्पज्ञों को छोड़कर।

श्री हिताचार्य की वाणी में भागवतोक्त महारास –

मोहन मदन त्रिभंगी। मोहन मुनि-मन-रंगी।
मोहन मुनि सघन प्रगट परमानन्द गुन गम्भीर गुपाला।
सीस किरीट श्रवण मणि कुण्डल उर मंडित वनमाला।
पीताम्बर तन-धातु विचित्रित कल किंकिनि कटि चंगी।
नख-मनि तरनि चरन सरसीरुह मोहन मदन त्रिभंगी॥

(श्री हित चौरासी–६३)

मोहन बेनु बजावै। इहि रव नारि बुलावै।
आई ब्रज नारि सुनत वंशी-रव गृह, पति, बन्धु बिसारे।
दरसन मदन गुपाल मनोहर मनसिज ताप निवारे॥
हरषित बदन, बंक अवलोकन सरस मधुर धुनि गावै।
मधुमय श्याम समान अधर धरि मोहन वेनु बजावै॥

(श्री हित चौरासी–६३)

रास रच्यौ बन माहीं। विमल कल्पतरु छाहीं॥
विमल कल्प तरु तोर सुपेसल सदन सरद रैन बर चन्दा।
सीतल मन्द सुगन्ध पवन बहै तहाँ खेलत नन्दा।
अद्भुत ताल मृदंग मनोहर किंकिनि शब्द कराहिं।
यमुना पुलिन रसिक रस-सागर रास रच्यौ बन माहीं॥

(श्री हित चौरासी–६३)

देखत मधुकर-केली। मोहे खग, मृग, बेली।
मोहे मृग-धेनु सहित सुर-सुन्दरि प्रेम मगन पट छूटे।
उडुगन चकित, थकित ससि मंडल, कोटि मदन मन लूटे।
अधर पान परिरम्भन अतिरस, आनंद मगन सहेली।
(जैश्री) हितहरिवंश रसिक सचु पावत देखत मधुकर-केली॥

(श्री हित चौरासी–६३)

अथवा

आज गोपाल रास रस खेलत, पुलिन कल्पतरु तीर री सजनी ।
शरद विमल नभ चंद्र विराजत, रोचक त्रिविध समीर री सजनी ।
चम्पक बकुल मालती मुकलित मत्तमुदित पिक कीर री सजनी ।
देसी सुधंग राग रंग नीको ब्रज युवतिन की भीर री सजनी ।
मघवा मुदित निसान बजावत ब्रत छाँडयो मुनि धीर री सजनी ।
हितहरिवंश मगन मन स्यामा हरत मदन मन पीर री सजनी ॥

(श्री हित चौरासी–२४)

कहाँ भेद है दोनों के शारदीय रास में?

इसे यदि श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद कहें तो अनुचित न होगा।

वस्तुतः दो वाणियों में एक ही लीला है।

श्रीमद्भागवत व केलिमाल की रासलीला का साम्य –

केलिमाल में नृत्य व रमण –

अद्भुत गति उपजति अति नृत्तत दोऊ मण्डल कुँवर किसोरी ।
सकल अधंग अंग भरि भोरी पिय नृत्तत
मुसिकनि मुख मोरी परिरंभन रस रोरी ॥

(केलीमाल-३३)

भागवत में नृत्य व रमण –

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ॥

(भा.१०/२९/४६)

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः
सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः
कृष्णवध्वोगायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

(भा.१०/३३/८, १७)

केलिमाल में गान –

ताल धरें बनिता मृदंग चन्द्रागति घात बजै थोरी थोरी ।
सप्त भाइ भाषा बिचित्र ललिता गाइनि चित चोरी ॥

(केलिमाल-३३)

भागवत में गान –

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥
काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ।
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥
कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥

(भा.१०/३३/९, १०, १६)

केलिमाल में जल-विहार –

श्रीवृंदावन फूलनि फूल्यौ पूरन ससि त्रिबिध पवन बहै थोरी थोरी ।
गति बिलास रस हार परस्पर भूतल अद्भुत जोरी ॥
श्री जमुना जल बिथकित पुहुपनि बरषा रतिपति डारत त्रिन तोरी ॥
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी कौ रस रसना कहै कोरी ॥

(श्रीकेलिमाल-३३)

भागवत में जल-विहार –

सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।
वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥
ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल प्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।
चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥

(भा.१०/३३/२४, २५)

केलिमाल में देवागमन –

डोल झूलत बिहारी बिहारिनि पुहुप बृष्टि होति ।
सुरपुर पुर गंधर्व और पुर तिनकी नारि देखति बारति लर मोति ॥

(केलिमाल-७५)

अथवा

फूलीं सब सखी देखि देखि ।
जच्छ किन्नर नागलोक देव स्त्री रीझि रहीं भुव लेखि लेखि ॥

(श्रीकेलिमाल-४२)

अथवा

एक ही बार यौं छूटत जैसैं बादर वरसत इन्द्र अनख ॥

(श्रीकेलिमाल–३७)

भागवत में देवागमन –

दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ।
ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥५॥

(भा.१०/३३/४, ५)

अथवा

कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ।
कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥

(भा. १०/३३/१९)

सम्पूर्ण महारास दर्शन को इन्द्र आये हैं।

भागवत में –

'यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोग ....।'

(भा. ३/२/१२)

इस श्लोक का पद्यानुवाद –

यह कौन बात जु अबही और
अबही और अबही औरै ।
देव नारि नाग नारि और नारि ते
न होइ और की औरै ॥
पाछैं न सुनी अब हूँ आगें हूँ न है है
यह गति अद्भुत रूप की और की औरै ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी
या रस ही बस भये यह भई और की औरै ॥

(केलिमाल-५४)

अथवा

प्यारी जू जब जब देखौं तेरौ मुख तब तब नयौ नयौ लागत ।

(केलिमाल-३४)

क्या यह रसिकों की वाणी में भागवत की रस परम्परा नहीं है?

श्रीमद्भागवत में सभी रसों का विलक्षण समावेश किया श्री शुकाचार्य ने, भागवत में जैसा नित्य-दाम्पत्य, ऐकान्तिक विहार है, वह अन्यत्र कहाँ प्राप्त होता है। निकुञ्ज रस का एवं राधा प्रधान उपासना का आधार श्रीमद्भागवत ही है।

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥

(भा. १०/३०/२८)

निश्चित ही इस एकाकिनी गोपी से श्रीकृष्ण आराधित हुए हैं और यह भी श्रीकृष्ण से आराधित हुई है। कहना ही होगा कि श्रीमद्भागवत जैसी राधा प्रधान उपासना ब्रज के किसी भी साहित्य में नहीं है।

न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणाङ्कुरैः ।
खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥

(भा. १०/३०/३१)

भागवत जी के अतिरिक्त कहीं नहीं है स्कन्धारोहण लीला – श्यामसुन्दर ने श्रीराधारानी को अपने कंधे पर बिठाया।

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥

(भा.१०/३०/३२)

श्यामसुन्दर ने जब श्री राधारानी को स्कन्ध पर उठाया तो उनके भार से श्यामसुन्दर के चरण भूमि में गड़ गये। सात कोस का पर्वत सात दिन सात रात उठाया तब तो चरण भूमि में नहीं गड़े। क्या श्री राधारानी का भार बहुत अधिक था? नहीं-नहीं यह उनके देह का भार नहीं था। यह तो उनके उज्जवल प्रेम का गुरुत्व था, इसको सामान्य बुद्धि नहीं समझ सकती है। मूल रस ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में जिस रस का वर्णन हुआ है उसे अनर्पितचरी रस सरिता (जो रस पहले कभी नहीं था) कहा गया है। सृष्टि में यह रस प्रकट ही श्रीमद्भागवत के माध्यम से हुआ। इस बात को स्वयं रसिक जनों ने कहा है। सृष्टि के पूर्व श्रुतियों ने श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए रस स्वरूप भगवान् की आराधना की, उनकी कृपा से वे श्रुतियाँ गोपी बनीं।

स्वयं श्रीध्रुवदास जी ने बृहद् वामन पुराण की लीला की चर्चा की है –

बावन बृहद पुरान की, कछु इक कथा बनाइ ।
भक्तनि हित भाषा करी, जैसे समझी जाइ ॥

एक समै भृगु पिता सों, प्रश्न करी यह आनि ।
करि प्रणाम ठाढ़ो भयो, आगे जोरे पानि ॥
एक असंका उर बढ़ी, चित्त रह्यो बिस्माइ ।

सर्वोपरि सर्वज्ञ तुम, हमहिं देहु समझाइ ॥
नारदादि शुक से जिते, किये भक्त सब गोन ।
जाची रज ब्रज तियन की, यह धौं कारन कौन ॥
सुनहु पुत्र समझी न तैं, रह्यो भूलि ब्रह्म ज्ञान ।
सर्वोपरि ये हरि प्रिया, इनकी कौन समान ॥
बहुत बरष हम तप कियो, इनकी पद रज हेत ।
सो रज दुर्लभ सबनि को, हमहूँ बनी न लेत ॥
और तियन में गनहु जिन, ये श्रुति कन्या आहि ।
कियो अधीन पिय साँवरो, प्रेम चितवनी चाहि ॥

(बयालीस लीला-७)

भागवत में भी वर्णन है –

सृष्टि के बाद ही सभी अवतारों से वर प्राप्त करके गोपियों के बहुत से यूथ रास में आये हैं –

रामावतार से – जनक पुर की स्त्रियाँ, कौशल जनपद की स्त्रियाँ, अयोध्यावासिनी नारियाँ, यज्ञ सीताएँ, पंचवटी की भीलनियाँ, दण्डक वन के ऋषि-मुनि इनके अतिरिक्त जालंधर नगर की स्त्रियाँ, वैकुण्ठ की रमा सहचरियाँ, श्वेतद्वीप की सखियाँ, ऊर्ध्व वैकुण्ठ की देवियाँ, लोकालोक पर्वतवासिनी देवियाँ, सामुद्री लक्ष्मी की सखियाँ, यज्ञावतार से मोहित देवाङ्गनाएँ, धन्वन्तरि अवतार से मोहित औषधियाँ, मत्स्यावतार से मोहित सामुद्री कन्याएँ, पृथु मोहिता बर्हिष्मती पुरी की स्त्रियाँ, नर-नारायण वर से अप्सरागण, वामनावतार मोहिता सुतल लोक की स्त्रियाँ, शेष मोहिता नाग कन्याएँ आदि।

अतः श्रीमद्भागवत को न मानने वालों को रस-प्राप्ति हो ही नहीं सकती है। वे भेदभाव में ही फँसे रह जाते हैं और भोले-भाले लोगों को ऐसी भ्रमात्मक शिक्षा देते हैं कि बरसाना-नंदगाँव मत जाओ।

इससे निकुञ्जोपासना सिद्ध नहीं होगी।

बस वृन्दावन ही आओ, यहीं निवास करो।

सत्य तो यह है कि कषाय के रहते रस का उपदेश निरर्थक है।

आजकल हम जैसे रसोपदेष्टाओं की यही स्थिति है। वार्ता रस की और कार्य, कषाय का है। शाब्दिकी रसानुभूति वास्तविकी नहीं है।

जब तक चित्त में कषाय है, वह रस की अनुभूति को निष्प्रभावी कर देगा ।

मनु मलीन तनु सुन्दर कैसें।
बिष रस भरा कनक घटु जैसें॥

(रा.च.मा.बाल. ७८)

मन में तो मैल भरा हुआ है, ऊपर से शरीर कैसा सुन्दर है। जैसे – विष से भरा हुआ सोने का घड़ा।

अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्॥

(भा. १/६/२२)

जब तक सूक्ष्म कषाय भी मन में है, वहाँ रस प्राप्ति कहाँ।

स्वामी जी की वाणी में –

लोग तो भूलैं भलें भूलैं तुम जिनि भूलौ मालाधारी।

(अष्टादशसिद्धान्त के पद-१६)

अथवा

देखा देखी रसिक न ह्वैहैं, यह मारग है बंका।
कहा सिंह की सरवर करिहै, गीदड़ फिरै जो रंका।
असहन निन्दा करत पराई, कबहुँ न मानी शंका।
वृन्दावन हित रूप अनन्य रसिक जिन दीन्ह पथ को डंका।

(चाचा वृन्दावन दास जी)

बहुत टेढ़ा है यह मार्ग। सिंह की होड़ कोई गीदड़ कर सकता है भला। स्वयं को रसिक मानकर दूसरों की निन्दा करते हैं, और इतने पर भी डंके की चोट पर कहते हैं कि हम रसिक हैं।

वस्तुतः ऐसे लोग रसिक नहीं पृथ्वी का भार हैं।

गिरि सरि सिन्धु भार नहिं मोही।
जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥

(रा.च.मा.बाल.१८४)

अथवा

पर निंदा सम अघ न गरीसा॥

(रा.च.मा.उत्तर. १२१)

पृथ्वी देवी कहती हैं – लाखों पर्वत, नदी, समुद्र से मैं बोझिल नहीं होती हूँ किन्तु एक निन्दक अथवा परद्रोही पुरुष का भार मैं वहन नहीं कर सकती हूँ। भावनाओं का भार स्थूल भार से अधिक होता है।

कबिरा निन्दक न मिलो पापी मिलो हजार ।
इक निन्दक के सीस पै कोटिक पाप पहार ॥

द्रोही का भार पृथ्वी नहीं सह सकती है। मनुष्य की भावनाओं से समग्र संसार प्रभावित होता है। यदि हम राग-द्वेष से मुक्त हो जाएं तो इसका प्रभाव, इसका लाभ सब संसार को प्राप्त होता है और जब हमारी भावनाएं दूषित हो जाती हैं तो हमारे उस विषाक्त स्वभाव का दुष्प्रभाव भी सब संसार पर पड़ता है।

अतः प्रह्लाद जी ने कहा –

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥

(भा. ७/६/१)

कुमारावस्था से ही भजन करो, इस अवस्था में काम, क्रोधादि कषाय नहीं होते हैं।

भक्ति सरल होती है।

सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ।
करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ॥

(भा. ३/३१/२९)

देह के साथ मान बढ़ता है फिर मान जन्य काम-क्रोधादि विकार भी धीरे-धीरे आ जाते हैं।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥

(गी. ६/२८)

जब विगत कल्मष हो जाओगे तो प्रत्येक इन्द्रिय प्रभु का अनुभव करेगी, इष्ट साक्षात् लीला करेगा। जैसे मीरा के साथ दिन-रात गिरिधर गोपाल खेलते थे।

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ ।
रैण दिनां वाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ ताहि रिझाऊँ ।
गिरिधर म्हारो साँचों प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ।
रैण पड़ै तब ही उठ जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ ।

(मीरा जी)

जब तक कषाय है तब तक अनुभव कहाँ।

मीरा के साथ तो गिरिधारी नाचता था, हमारे साथ तो भूत भी नहीं नाचता है।

रस की तो मात्र बात ही है, अनुभूति कहाँ।

अनुभूति के लिए ऐसी स्थिति चाहिए।

श्रीहिताचार्य की वाणी में –

रसना कटौ जु अनरटौ निरखि अनफुटो नैन ।
श्रवण फुटौ जो अनसुनो बिनु राधा यश बैन ॥

(श्रीहित स्फुट वाणी-२३)

अथवा

राधानामसुधारसं रसयितुं जिह्वास्तु मे विह्वला
पादौ तत्पदकाङ्क्षितासु चरतां वृन्दाटवीवीथिषु ।
तत्कर्मैव करः करोतु हृदयं तस्याः पदं ध्यायतां
तद्भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रतिः ॥

(रा.सु.नि. १४१)

जिसकी जिह्वा केवल राधा नाम ही लेती है, जो केवल धाम में ही रहता है, जिसका शरीर केवल सेवा में ही रहता है एवं हृदय में केवल चरणों का ही ध्यान है, उसे ही रसानुभूति होगी, अभी तो हमारी स्थिति यह है कि राधा नाम ही नहीं लेते इतर चर्चा तो बहुत करते हैं, धाम में वास भी नहीं हो पा रहा है। कुछ तो स्वदोष से ही नहीं आ पाते हैं और कुछ जो आना चाहते हैं, उन्हें ऐसे मार्गदर्शक मिल जाते हैं जो कहते हैं कि धाम में निवास मत करो, अपराध होगा। ठीक है अपराध से भय करो किन्तु इस भय से धामवास मत छोड़ो। क्योंकि धामवास से ही सिद्धि मिलेगी।

नित्य लीला भूमि –

ब्रजभूमि नित्य है, यहाँ नित्य लीला हो रही है। यहाँ प्रकट लीला काल में भी नित्यलीला होती रहती है।

अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्वं सुगोपितम् ।
भासते प्रेमपूर्णानां कदाचिदपि सर्वतः ॥

(भा.उ.माहा. १/२८)

यह वही ब्रज भूमि है, जहाँ नित्य और प्रकट दोनों लीलाएँ एक साथ हो रही हैं। अधिकारी रसिक भक्तों को कभी-कभी इसका दर्शन भी होता है। नित्यलीला करने वाला सम्पूर्ण परिकर नित्य है।

कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः ।
नित्याः सर्वे विहाराद्या आप्तकामस्ततस्त्वयम् ॥

(भा.उ.माहा. १/२३)

गाय, गोप, गोपी सब नित्य हैं फिर लीला अनित्य कैसे हो सकती है।

गर्गसंहिता, अश्वमेध खण्ड में वर्णन है कि द्वारिका से तीन बार श्रीकृष्ण ब्रज में आये हैं एवं महारास लीला की है। श्री उद्धव जी को भी प्रकट लीला काल में नित्यलीला का दर्शन हुआ।

प्रकट लीला में श्रीकृष्ण के मथुरागमन पर विरह व्यथित गोपियों के कारण हुई नित्यलीला, जिसका अनुभव उन्होंने उद्धव जी को कराया।

श्री सूरदास जी के शब्दों में –

मैं ब्रजवासिन की बलिहारी ।
जिनके संग सदा हैं क्रीडत श्री गोवर्धन धारी ॥
किनहू के घर माखन चोरत किनहूं के संग दानी ।
किनहू के संग धेनु चरावत हरि की अकथ कहानी ॥
किनहू के संग यमुना के तट बंसी टेर सुनावत ।
"सूरदास" बलि-बलि चरणन की इह सुख मोहिं नित भावत ॥

स्वयं श्रीकृष्णउद्धव जी को द्वारिका से ब्रज लाये हैं एवं यहाँ नित्य लीला का दर्शन कराया है।

बल मोहन फिर ब्रजहि पधारे ऊधो को संग लीने ।
दीन्हों वास चरणरज गोपीन गुल्मलता रस भाने ॥

(सूर-सारावली-८६८)

नित्य विलास –

सदा विलास करत गोकुल में धन धन यशुमति मात ।

(सूर-सारावली-८६९)

नित्य जन्म लीला –

श्री वृषभानु राय के आँगन नितप्रति बजत बधाई ।

(सूर-सारावली-८७१)

नित्य दान घाटी में दानलीला –

कृष्ण –

देहो दधि को दान नागरी गहर न लखो चित्त ।
तुमरे काज नित्य हम ठाढ़े अरपे अपनो बित्त ॥

(सूर-सारावली-८७९)

गोपी –

वृन्दावन में धेनु चरावत माँगत गोरस दान ।
नाना खेल सखन संग खेलत तुम पायो नृपयान ॥

(सूर-सारावली-८८०)

कृष्ण –

अरी ग्वालि मदमत्त बचन की बोलत वचन विचार ।
अचल राज गोवर्द्धन मेरो वृन्दावन मँझार ॥

(सूर-सारावली-८८१)

नित्य गारी लीला –

बहुत भये हौ ढीठ साँवरे मुख पर गारी देत ।
तुम्हरे हम डरपत नाहिंन कहा कंपावत वेत ॥
श्याम सखन सों कहेउ टेर दे घेरो सब अब जाय ।
बहुत ढीठ यह भई ग्वालिनी मटुकी लेहु छुड़ाय ॥

(सूर-सारावली-८९२, ८९३)

नित्य साँकरीखोर लीला –

जाय श्याम कंकण कर लीनो मांहि हारावलि तोर ।
लूट लूट दधि खात साँवरो जहाँ साँकरी खोर ॥

(सूर-सारावली-८९४)

नित्य गह्वरवन लीला –

गहि बहियां ले चले श्याम घन सघन कुञ्ज के द्वार ।
पहिले सखी सबै रचि राखी कुसुमन सेज संवार ॥
नाना केलि सखिन संग बिहरत नागर नन्द कुमार ।
आलिंगन चुम्बन परिरंभत भेंटत भरि अँकवार ॥
कुञ्जरंध्र अवलोकि सहचरी अपनो तन मन बारे ।
निरखि निरखत दम्पति नेत्रन सुख तोर तोर तृन डारे ॥

(सूर-सारावली-८९६, ८९७, ८९८)

नित्य गोवर्द्धन की कंदरा का शयन –

गोवर्द्धन की सघन कन्दरा कीनौ रैनि-निवास ।
भोर भये निजधाम चले दोउ अति आनंद विलास ॥

(सूर-सारावली-९०१)

नित्य नन्दगाँव लीला –

नन्दधाम हरि बहुरि पधारे पौढ़ रहे निज रैन ।
यशुमति मात जगावति भोरहिं जागे अम्बुज नैन ॥

(सूर-सारावली-९०२)

नित्य मानलीला –

निज प्रतिबिंब बिलोकि राधिका हरिनख मंडल माँह ।
द्वितीय रूप देखे अबला को मान बढ्यो तन छांह ॥
चली रिसाय कुञ्ज मृगनयनी जहँ अलि करत गुंजार ।
बैठी जाय एकान्त भवन में जहाँ मानगृह चार ॥
नंद कुंवर विरहन राधा के विरह भये भरपूर ।
बैठे जाय एकान्त कुञ्ज में सखा किये सब दूर ॥

(सूर-सारावली-९१४, ९१५, ९१६)

करि दण्डवत चली ललिता जो गई राधिका गेह ।
पांयन पर पर बहुत विनय कर सफल करन को नेह ।
मान करत गिरवरधर पिय सों मानत नाहिन मोह ॥

(सूर-सारावली-९२०, ९२४)

नित्य संकेत वट लीला –

तुव बिन बट संकेत सदन वन देखत लगत उदास ।
विरह अग्नि चहुँ दिशि में धावत फूले दिखत पलास ॥

(सूर-सारावली-९३१)

नित्य मानसरोवर लीला –

मलिन भरे रस मानसरोवर मुनिजन मानस हंस ।
थकित विलोकि शारदा वर्णन करिबे बहुत प्रशंस ॥

(सूर-सारावली-९९६)

नित्य वृन्दावन लीला –

वृन्दावन निज धाम परम रुचि वर्णन कियो बढ़ाय ।
व्यास पुराण सघन कुञ्जन में जब सनकादिक आय ॥

(सूर-सारावली-९९७)

नित्य रत्न सिंहासन लीला –

गोवर्द्धन गिरि रत्न सिंहासन दम्पति रस सुखनान ।
निबिड़ कुञ्ज जहँ कोउ न आवत रस बिलसत सुखखान ॥

(सूर-सारावली-१००४)

नित्य राग गान लीला –

ललिता ललित बजात रिझावत मधुर बीन कर लीने ।
जान प्रभात राग पंचम षट मालकोस रसभीने ॥
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारंग सुरनर जान ।

सुर सांवत भूपाली ईमन करत कान्हरो गान ॥
अंछ अडाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन ।
करत विहार मधुर केदारो सकल सुरन सुख दीन ॥
सोरठ गोर मलार सोहावन भैरव ललित बजायो ।
मधुर बिभास सुनत बेलखल दम्पति अतिसुख पायो ॥
देवगिरि देशाक देव पुनि गोरी श्री सुखराम ।
जैत श्री अरु पूर्वी तोड़ी आसावरि सुखरास ॥
रामकुली गुनकली केतकी सुर सुघराई गाये ।
जैजैवन्ती जगत मोहनी सुरसों बीन बजाये ॥
सूआ सरस मिलत प्रीतम सुख सिन्धुवरि रस मान्यो ।
जान प्रभात प्रभाती गायो भोर भयो दोऊ जान्यो ॥
जागे प्रात निपट अलसाने भूषण सब उलटाने ।
करत श्रृंगार परस्पर दोऊ अति आलत शिथिलाने ॥

(सूर-सारावली-१०११-१०१९)

नित्य होरी लीला –

होरी डांडी दिवस जानके अति फूले ब्रजराज ।
बैठे सिंहद्वार पै आपुन जुरिकै गोपसमाज ॥
प्रथम दिवस होरी को नन्दराय गृहआई ।
सकल सोंज गोपीकर लेके खेलन को मनभाई ॥

(सूर-सारावली-१०५१, १०५३)

इस प्रकार प्रकट लीलाकाल में भी जहाँ नित्यलीला चल रही है, ऐसी तो ब्रजभूमि ही है। ब्रज के प्रत्येक घर, गाँव में आज भी ये लीलाएं हो रही हैं।

यह विधि क्रीडत गोकुल में हरि निज वृन्दावन धाम ।
मधुबन और कुमुदबन सुन्दर बहुलावन अभिराम ॥
नन्दग्राम संकेत खिदरबन और कामवन धाम ।
लोहबन मांट बेलवन सुन्दर भद्रबृहद बन ग्राम ॥
चौरासी ब्रज कोस निरन्तर खेलत हैं बल मोहन ।
सामवेद ऋग्वेद यजुर में कहेउ चीरत ब्रजमोहन ॥

(सूर-सारावली-१०८८-१०९०)

पुनः श्रीकृष्णका प्रतिज्ञा वाक्य –

कुञ्ज-कुञ्ज में क्रीड़ा करि गोपिन को सुख दैहों ।
गोप सखन संग खेलत डोलौं ब्रज तज अंत न जैहौं ॥

(सूर-सारावली-५८६)

इसी भूमि में अकबर के बार-बार आग्रह करने पर श्री स्वामी हरिदास जी महाराज ने अनुग्रह कर श्री यमुना जी के धीरसमीर घाट का एक टूटा हुआ कोना ठीक कराने की सेवा प्रदान की। मात्र एक टूटी सीढ़ी की मरम्मत की सेवा सुनकर ऐश्वर्याभिमानी बादशाह का मन उदास हो गया, तत्काल बादशाह के साथ स्वामी जी ने अपने एक सेवक को घाट निरीक्षण हेतु भेजा। वहाँ पहुँचकर स्वामी जी की कृपा से अकबर को इस भूमि की जिस चिन्मयता का दर्शन हुआ फिर तो वह चरणों में गिर पड़ा।

बादशाह – हम जैसे करोड़ों बादशाहों का वैभव भी इस कोने का निर्माण नहीं करा सकेगा। कृपा करके मुझे आप मेरे ही योग्य सेवा बतावें। श्री स्वामी जी – ठीक है तो ब्रजके मोर-बन्दरों के लिए चना की सेवा, साथ ही शासन की ओर से यह कानून लागू हो कि ब्रज में कोई पशु-पक्षियों का शिकार न करे, यहाँ के लता-पत्रों को कोई क्षति न पहुँचाये। एक बार अकबर ने श्री रूप गोस्वामी जी से प्रार्थना की – आप सर्दी-गर्मी वर्षा में सदा तरु-लताओं के नीचे विराजते हैं, यदि आज्ञा हो जाये तो एक कुटिया बन जाये, तब श्री रूप गोस्वामी जी ने बादशाह को ब्रज के तरु-लताओं के दिव्य रूप का दर्शन करा दिया फिर तो चरणों में गिरकर बादशाह बोला – क्षमा करें, मैं क्या जानता था कि आप ऐसे दिव्य महलों के निवासी हैं, सम्पूर्ण सल्तनत लगाकर ऐसे एक कुञ्जमहल के निर्माण में भी मैं समर्थ नहीं हूँ।

तब श्री रूप गोस्वामी जी ने भी यही आज्ञा दी – बादशाह! ऐसी व्यवस्था कर दो कि ब्रज की लता-पता एवं पशु-पक्षियों की कोई हिंसा न करे। इसी प्रकार स्वामी जी ने ओरछा नरेश श्री राजाराम बुन्देला को ब्रज-रज निर्मित पात्रों की मृण्मयता में चिन्मयता का दर्शन कराया, राजा श्री मधुकरशाह जी को भी प्राकृत धाम में ही दिव्य मणि, रत्नों से खचित नित्य भूमि का दर्शन कराया।

अतः रसिकजनों ने कहा –

यही है यही है भूलि भरमों न कोउ भूलि भरमें तें भव भटक मरिहौ ।
लाड़िलीलाल के नित्य सुखसार बिन कौंन बिधि वारतें पार परिहौ ॥
एक अनन्य की टेक उर में धरौ परिहरौ भर्म ज्यौं फूली फरिहौ ।
"श्रीहरिप्रिया" के परम पद पासू ही आसू अनयासु ही बासु करिहौ ॥

(महावाणीसिद्धान्त सुख-१२)

यही है वह भूमि जहाँ नित्यलीला, प्रकट लीला दोनों एक साथ हो रही हैं।

भगवान् की किसी भी लीला का खण्डन सर्वथा अनुचित है, अपराध है।

न वेदवादाननुवर्तते मतिः
स्व एव लोके रमतो महामुनेः ।
यथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक्
स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः ॥

(भा.४/४/१९)

जो निरन्तर स्वस्वरुप में ही रमण करते हैं व सर्वथा विधि-निषेध से उपराम हो जाते हैं। जैसे देव व मानवों की गति एक सी नहीं रहती है, वैसे ही ज्ञानी व अज्ञानी की स्थिति भी एक सी नहीं रह सकती है अतः मनुष्य को चाहिए अपने धर्म में स्थित रहते हुए भी दूसरों के मार्ग की निन्दा या खण्डन न करें।

'भाव के साथ अभाव' संकीर्णता भी है व गुण भी है यथा –

रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान् विक्षिप्तधीः पुनः।
अतन्द्रितो मनो युञ्जन् दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥

(भा. ११/१३/१२)

त्याज्य वस्तु में दोष बुद्धि होना गुण है व ग्राह्य वस्तु में दोष बुद्धि होना दोष है। कोई मनुष्य विषय-भोगों में गिर गया, अब यदि भोग के प्रति उसकी दोषदृष्टि हो तो वह वहाँ आसक्त नहीं होगा, पुनरुत्थान को प्राप्त हो जायेगा। यदि विषय के प्रति गुणबुद्धि हो गयी तो पतित ही बना रहेगा किन्तु यह दोषदृष्टि संसार व विषय भोगों के प्रति ही उचित है। भगवान् व उनकी लीलाओं के प्रति दोषदृष्टि संकीर्णता है। पूर्वाचार्य श्री स्वामी जी ने नित्य विहार को प्रकट किया व 'ब्रज बीथिन दीजै सोहिनी' ब्रज-अंग गाया, ब्रज के प्रति अभावोत्पन्न नहीं कराया क्योंकि **"स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः।"**

नित्य लीला में अनित्यता का विचार मात्र अपराध है। श्रृंगार रस की अनन्यता की दृष्टि से उसे नित्य कहा गया, इसका अर्थ यह नहीं कि जन्म व बाललीलाओं को अनित्य कह दिया जाये।

ऐसे मत, सिद्धान्तों का उपदेष्टा, अनुमोदक भगवद् विग्रह का अर्चक नहीं प्रत्युत छेदक हैं, जो अदर्शनीय, असम्भाष्य व अस्पृश्य है।

रसिकवाणी से भेदग्रहण करना मति की मन्दता, मूढ़ता का ही परिचय देना है अतः रसिकवाणी को सावधानी पूर्वक पढ़ें व किसी भेद-विहीन महापुरुष की चरण-शरण लेकर ही उसका भावार्थ ग्रहण करें। आज नये-नये रसवेत्ता समाज को विषमता का विष पिला रहे हैं।

यह रसिकता नहीं –

भेदवादिता के रहते भक्ति नहीं होगी निर्गुणा।

श्री कपिल भगवान् के वचन –

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् ।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥

(भा. ३/२९/१०)

पापक्षय के निमित्त जो अपने सभी कर्म इष्ट को समर्पित करता है किन्तु मैं-मेरा पृथक् भाव बना हुआ है, ऐसी भक्ति सात्त्विक भक्ति है।

पृथक् भाव से तात्पर्य भेदवादिता।

'हम निकुञ्ज के रसिक हैं, ये ब्रज के उपासक हैं' यह भाव भक्ति को निर्गुणा नहीं होने देगा।

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥

(भा. ३/२९/१२)

अहैतुकी (हेतु रहित) व अव्यवहित (व्यवधान रहित) भक्ति ही निर्गुणा है, जहाँ भेद का व्यवधान नहीं है।

आज भेदवादिता के चलते सम्पूर्ण समाज तेजोहीन हो गया।

सर्वत्र अपराधमूलक बातों की शिक्षा का लेना-देना ही रह गया है। परिणामतः वास्तविक रसानुभूति किसी को नहीं हो रही है। वास्तविक रसानुभूति यदि हो जाये तो सदा-सर्वदा के लिये तृष्णा समाप्त हो जाये लेकिन आज तृष्णा का ताण्डव हो रहा है। रस की बातें बनाने वाले हम लोग ऐश्वर्य की प्राप्ति व वृद्धि में लगे हुए हैं। रसिक तो वे थे, जिन्होंने निधिवनराज की रज को अंग में लपेटकर किसी महल-अट्टालिका का निर्माण आवश्यक न समझा। प्रतिदिन बिहारी जी को छप्पन भोग लगाते हुए भी स्वयं का जीवन अंगा-बाटी पर ही रखा, वह भी बिहारी जी के बहुत अधिक आग्रह करने पर।

आज ब्रज की वन-सम्पदा को नष्ट करके आलीशान भवनों की होड़ में खड़े होकर बड़े-बड़े मार्गदर्शक मात्र असती बुद्धि देने में लगे हैं – 'हमारे सम्प्रदाय का ही प्रचार करो, हमारे ही ग्रन्थ पढ़ो, हमारे आश्रम के लिये ही धन लाओ।'

किसी भी हेतु से की जाने वाली भक्ति अनन्य नहीं हो सकती है और भगवान् की किसी भी लीला का खण्डन करने वाला व्यक्ति रसिक नहीं हो सकता है।

बहुधा सख्य, वात्सल्य, विरह की लीलाओं का खण्डन करके हम लोग स्वयं को रसिक सिद्ध करना चाहते हैं। यदि कहें कि पूर्वाचार्यों ने भी तो कहा है –

दूरे सृष्ट्यादिवार्ता न कलयति मनाङ् नारदादीन्स्वभक्ता-
न्छ्रीदामाद्यैः सुहृद्भिर्न मिलति हरति स्नेहवृद्धिं स्वपित्रोः ।

किन्तु प्रेमैकसीमां मधुररससुधासिन्धुसारैरगाधां
श्रीराधामेव जानन्मधुपतिरनिशं कुञ्जवीथीमुपास्ते ॥

(रा.सु.नि. २३५)

ध्यान रहे, ये बातें ब्रज व निकुञ्ज में भेदोत्पन्न करने के भाव से नहीं कही गयी हैं। यह रस की एक मर्यादा है।

स्वयं विचार करें – 'लोक में भी सामान्य नायक-नायिका के मिलन-काल में माता-पिता साथ नहीं रहते हैं। प्रिय से प्रिय मित्र भी वहाँ नहीं जा सकता है।' वही यहाँ इस लीला में भी है – 'श्रृंगार रस के काल में नन्द-यशोदा, श्रीदामादि सखाओं से श्रीकृष्ण बात नहीं करते हैं' किन्तु इसका आशय यह तो नहीं कि सम्पूर्ण सख्य रस का बहिष्कार कर दें, यह अपराध है। यदि पूर्णरूपेण सख्य रस का बहिष्कार होता तो स्वामी जी सख्यरस न गाते किन्तु उन्होंने गाया –

'घेरो घेरो रे सखा .... ।'

आज की रसिकता ने तो फतवा जारी कर रखा है – 'सख्यरस, वात्सल्य रस के पद मत गाओ अन्यथा रसिकता भंग हो जायेगी।' मूलाचार्यों के मत से हटकर यह केवल अपराध मार्ग पकड़ना है।

आज समाज में स्वयं को अनन्य समझने वाले सब विषमता का शिकार हो गये हैं।

और जहाँ विषमता है वहाँ रस कहाँ?

विषमता का चश्मा उतरेगा तो रस का उद्भव होगा।

पूर्वाग्रह राग-द्वेष का मार्ग है। किसी भी ग्रन्थ को पूर्वाग्रह के साथ नहीं पढ़ना चाहिए।

'पूर्वाग्रही गुरु' शिष्य व सम्पूर्ण समाज का नाश कर देता है। श्रीबिहारिनदेव जी ने ऐसे गुरु की अत्यधिक भर्त्सना की है –

जाकौ गुरु जु भिखारिया सिष्य जु मचला जाँनि ।
भलौ बुरौ छाँड़ै नहीं समझै नफा न हाँनि ॥
जाकौ गुरु भटकत फिरै सिष्य बघूरौ बाइ ।
धूरि उड़ावै देस की घर बाहिरि खर खाइ ॥
गुरु तैं घर न छिपाइयै गुरु गोबिंद के दांनि ।
कल्लरु बयौ न नीपजै स्रम बाढ़ै धन हाँनि ॥

(विहारिन देव जी की वाणी-१५, १६, १७)

जिसका गुरु वासना का दास (भिखारी) है एवं शिष्य अत्यन्त चंचल है, हानि-लाभ का ज्ञान नहीं है। गुरु सर्वत्र भटकता है। शिष्य वम्वार चक्र (भवूड़ा) की भाँति एक देश से दूसरे देश की धूल उड़ाता है। घर में तो खल खाते ही हैं बाहर भी वासना का ही मोल

रखने में लगे हैं। सच्चे शिष्य का लक्षण है कि गुरु व गोविन्द से कुछ भी न छिपाये। जिस प्रकार ऊसर भूमि में बीज वपन का फल मात्र श्रम ही होता है गाँठ का धन (बीज) भी चला जाता है उसी प्रकार कपटी शिष्य को कुछ प्राप्त तो होता नहीं जो कुछ होता है वह भी समाप्त हो जाता है।

विषई भक्त न नींदियै साकत साध असाध।
वह निगुसांयों बिमुखई यह सनमुख भक्त अबाध॥
सूकौ हाड़ हरखि गहै बिमुख बिषै घर बात।
लोहू अपने गाल कौ चाटि स्वानि इतरात॥
'श्री बिहारीदास' सुख विषै कौ ज्यौं नख नेंक खुजाइ।
बिस ब्यौरै सब अंग मैं पाछे पकै पिराइ॥
संग्रह करियै गूदरी, खैयो माँगि मधूकरी।
सेईयौ नित्त ब्रज सुन्दरी, रहियौ पूता दुरादुरी॥
दूधाधारी पर घर चित्त, नागो लकरी चाहै नित्त।
मौंनी करै मीत की आस, गूदरिया रहै सदा निरास॥
निस्नेही उपकारि गुरु सिष्य सुद्ध सर्धाल।
राँभत ही थन चै चलै ज्यौं गऊ बछा पाल॥

(विहारिन देव जी की वाणी-५८, ६४, ६५, ४५, ४६, ११)

तात्पर्य है कि पूर्वाग्राहिता से व्यक्ति व समाज की हानि है। रस की अनन्यता का लक्ष्य भगवल्लीलाओं में भेद न होकर भाव-स्थापन है किन्तु हम जैसे अल्पज्ञ एक ओर भाव एवं अन्यत्र अभावोत्पन्न कराके अपराध ही करते, कराते हैं।

रसिकों की जिन वाणियों का आश्रय लेकर भेदवादी विचार फैलाते हैं, वे (रसिक-वाणियाँ) रस की मत्तता (अनन्यता) में निकली हैं जिनका लक्ष्य भेदवाद नहीं है।

राधासुधानिधिकार भी कहते हैं –

दूरे स्निग्धपरम्परा विजयतां दूरे सुहृन्मण्डली
भृत्याः सन्तु विदूरतो व्रजपतेरन्यः प्रसङ्गः कुतः।
यत्र श्रीवृषभानुजा कृतरतिः कुञ्जोदरे कामिना
द्वारस्था प्रियकिङ्करी परमहं श्रोष्यामि काञ्चिध्वनिम्॥

(रा.सु.नि. ७३)

नित्य विहार काल में सखा मण्डली (सख्य रस), नन्द-यशोदा (वात्सल्य रस) दूर ही है।

यह सब गाने के बाद भी सख्य-रस गाया है।

रा.सु.नि.- २२७, २२८ में देखें, रस की मत्तता होते हुए भी गोचारण गाया है।

इस स्थिति को समझे बिना तो भगवल्लीलाओं में अभाव ही होता रहेगा।

महापुरुषों की रति-गति को समझना बड़ा कठिन है। उदाहरण के लिए एकादशी व्रत को हरिवासर व नित्यव्रत कहा, जो वैष्णव के लिए अनिवार्य है किन्तु श्री हिताचार्य जी ने कभी एकादशी नहीं की, श्री बिहारिन देव जी ने भी "एकदशा" को एकादशी माना। निन्दक को तो निन्दा के लिए यह क्षुद्र अवसर ही पर्याप्त है किन्तु श्री नाभा जी महाराज एक निष्पक्ष महापुरुष हैं जिन्होंने इसे एकादशी का खण्डन न कहकर श्री हिताचार्य जी की महाप्रसाद के प्रति निष्ठा कहा।

सर्वसु महाप्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी ।

(भक्तमाल)

इसी स्थान पर निष्ठा की बातों को न समझने वाले लोग यह भी कह देते हैं कि आपने हरिवासर का खण्डन किया, जो कि वैष्णवता के विरुद्ध है।

महापुरुषों को महापुरुषों के द्वारा ही समझा जा सकता है, अज्ञों के कथन से नहीं। अज्ञों की स्थिति तो यह है कि अपने आचार्यों पर ही आक्षेप कर बैठते हैं।

मत्कण्ठे किं नखरशिखया दैत्यराजोऽस्मि नाहं
मैवं पीडां कुरु कुचतटे पुतना नाहमस्मि ।
इत्थं कीरैरनुकृतवचः प्रेयसा सङ्गतायाः
प्रातः श्रोष्ये तव सखि कदा केलिकुञ्जं मृजन्ती ॥

(रा.सु.नि. १६३)

उपर्युक्त श्लोक पर बहुत विवाद है।

हितधर्मी इस ग्रन्थ को अपना ग्रन्थ कहते हैं और फिर इस श्लोक को अपने ही आचार्य की भावपद्धति के प्रतिकूल भी मानते हैं।

कैसी कदर्थना! न अपने ग्रन्थ का सम्मान, न आचार्य और न आचार्य वाणी का सम्मान, केवल और केवल अपने दम्भ का सम्मान, श्रेष्ठ रसिकता की प्रतिस्पर्धा का सम्मान।

स्वयं श्री भगवान् के वचन –

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥

(गी. १६/१०)

दम्भ, मान और मदयुक्त मनुष्य कामनाओं में फंसकर अज्ञानवश मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों को धारण किये बैठे हैं।

आद्याचार्यों की वाणी व भाव को भलीभाँति न समझने के कारण ही 'परवर्ती विचारक' संकीर्ण होते-होते भेदवादी हो गये। स्वयं भी दोषमार्ग पकड़ा व अन्यों को भी यही मार्ग दिखाने लगे। साधारण स्थिति का मनुष्य जब रस-मत्तता की नकल करता है तो इस अनधिकार चेष्टा से वह अपराध से ग्रसित हो जाता है और यह नियम यहाँ से भगवद्धाम तक सबके लिए लागू है।

एकबार भगवान् नारायण से मिलने के लिए जाती हुई लक्ष्मीजी को पार्षदों ने छड़ी अड़ाकर रोकने की अनधिकार चेष्टा की, पुनः सनकादिकों को रोकने पर उन्हें भी शापित होना पड़ा; इसी प्रकार गोलोक में श्रीदामा के द्वारा अनधिकार चेष्टा होने पर लीला-दृष्टि से उन्हें असुर बनना पड़ा किन्तु इन घटनाओं को कर्म का फल नहीं समझना चाहिए। ये लीलाएं तो भगवद्-इच्छा प्रधान ही हैं।

ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ॥

(भा. ३/१६/२९)

सनकादिक के शाप को नष्ट करने में समर्थ होते हुए भी भगवान् ने इसे नष्ट नहीं किया। यह भगवद्-इच्छा ही थी और भगवान् की प्रत्येक इच्छा का हेतु जन-कल्याण है।

श्रीशुकदेवजी ने भी यही कहा है –

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(भा. १०/३३/३७)

अनुग्रह-विग्रह भगवान् की इन लीलाओं में मानवी-बुद्धि का उपयोग नहीं करना चाहिए एवं अनधिकार चेष्टा से सदा बचते रहना चाहिए।

रसिकों ने अनधिकार चेष्टा करने वालों की बहुत निन्दा की है।

साकत सूत सों जे ममता करें जाये जानि अऊत ।
दोस लगै ताकी महतारी बाप मुगल कौ मूत ॥

(विहारिनी देव जी की वाणी-५७)

'मुगल का मूत' कहकर माँ की गाली दी है। ऐसे रसिक न बनें कि माँ की गाली मिले।

साधारण लोगों की मत्तता रसमत्तता नहीं है, शिश्नोदर व ममाहं की मत्तता है।

घर छाड़्यौ हौ भजन कौं सालन कौं पछिताइ ।
चुपरी पायैं हँसि मिलै रूखौ देखि पछिताइ ॥
खाँन पाँन के स्वाद सों भजन भावना दूरि ।
श्री बिहारीदास बिहार बिनु सबै स्वाद में धूरि ॥

बाइ अगनि जल अन्न कौ इनकौ एकै संग ।
चौथे अंस अहार दै भजि अनुराग अभंग ॥

(विहारिनी देव जी की वाणी-२७१, ३०५, ३१०)

अधिक खाने वाले साधक को भजन की सिद्धि नहीं हो सकती है। इतना ही खावें कि एक अंश वायु, एक अंश अग्नि, एक अंश जल व एक अंश में अन्न रहे।

श्रीभगवान् के वचन –

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

(गी. ६/१६)

भजन की सिद्धि न बहुत खाने वाले को, न भोजन छोड़ने वाले को, न बहुत सोने वाले को और न सदा जागने वाले को ही होती है।

साधक का आहार-विहार, चेष्टा, शयन-जागरण सब युक्त होना चाहिए।

उदर अगिनि तें अधिक अघाइ, तो भरुवा कौ भजन भंडाइ ॥

(बिहारिन देव जी की साखी-२७७)

शिश्नोदर लोलुप रसिक नहीं भड़ुवा हैं।

श्रीबिहारिनदेवजी ने भाँग, अफीमादि पदार्थों की निन्दा की है और आज का रसिक इन्हीं निषिद्ध वस्तुओं की मत्तता में है।

श्रीबिहारिदास घूँमत रहै मित्त पियालै नित्त ।
सावधान सोफी सुखी विषई विमुख नसत्त॥

(बिहारिन देव जी की साखी-२९९)

धन-मत्तता –

पैसा परमेसुर भए परमेस्वर तै बाढि ।
पूजा करी न भावई पैसनि ही की डाढि ॥

पैसा ही परमेश्वर हो जाता है और परमेश्वर से बढ़कर भी हो जाता है ऐसी स्थिति में मत्तता रस की हुई अथवा धन की?

पैसनि कौं घर बन बसे पैसन कौं परदेस ।
पैसन कौं सेबक करैं पैसन कौं गुरु उपदेस ॥

(विहारिनी देव जी की वाणी-३५८, ३५९)

अथवा

घर घर फिरत उगावत चंदा ।
सब दिन दुखी दलिद्री बाहिर घर में छाँडि गये नंदनंदा ॥

हाँड़ी हाथ ताक कौडीन की मग मग रज छाँनत मतिमंदा ॥
"श्रीबिहारिदास" सौं ऐंठी चलत सठ बिषइन कैं द्वारैं छंद बंदा ॥
किये सिंगार भिखारी डोलत घर घर फिर उगाहत चंदा ॥

(श्रीविहारिन देव जी की वाणी-९१)

अथवा

माँगत भीख जनमु गयौ गई न भीख की ऊख ।
प्रेम पदारथ दूरि है बिन सेयें रज रुख ॥
बिन सेयें रज रुख दुःख सहि लेत घनेरे ।
कहा कियें अहंकार बिपति आपदा गहि घेरे ॥
होत न सकुच गिलाँनि मनहि धर्में लघु लागत ।
कहत "बिहारीदास" भीख भक्त क्यौं माँगत ॥

(श्री विहारिनिदास जी की वाणी ९१, ९२)

भिखारी बना दिया वित्तैषणा ने।

अरे, सच्चे रसिकों की स्थिति तो यह है –

हम बेपरवाह बिहारिनि के ।
श्री हरिदास कैं गर्व भरे अमनैंक अनन्य निहारिनि के ॥
महा-मधुरे-रस पाँन करें अबसाँन खता सिलहारनि के ॥
दियौ नहिं लेहि ते माँगहि क्यौं बरनैं गुन कौंन तिहारिनि के ॥
किये रहैं ऐंड़ बिहारी हूँ सों हम बेपरवाह बिहारिनि के ॥

(श्री विहारिनिदास जी की वाणी १११)

चंदा माँगने वाले उनकी कैसे नकल कर सकते हैं।

विषय मत्तता

विषइयों को रस-मत्तता कहाँ?

राति द्यौस झूठहि बोलै साँच न बोलै एक रती ।
श्री बिहारीदास यह बड़ो अचँभो बनियाँ भगत बेस्या सती ॥

(विहारिनी देव जी की वाणी-६४८)

जिस प्रकार वैश्या के सती होने में कठिनाई है, उसी प्रकार व्यापारी (अर्थ लोलुप) के भक्त होने में।

खेत बिगार्‌यौ खरतुवा सभा बिगारी सूम।
धर्म बिगार्‌यौ लालची ज्यौं केसर मिलै कसूम॥

(विहारिनी देव जी की वाणी-५०४)

लोलुपता ने आज सम्पूर्ण धर्म को निस्सार कर दिया।

प्रेम बिनाँ झखमारत डोलै।
इंद्रिन के सुख स्वारथ आरत बात बनाइ गढै गढि छोलै॥
परमारथ प्रीति न पूजा की रीति पुराँन की पोथी पचीसक खोलै॥
वृंदावन धाम सकाम बसै सठ दै नगु लैत विषै खरि तौलैं॥
श्रीबिहारीविहारिनिदासि बिस्वास न प्रेम बिनाँ झखमारत डोलै॥

(श्री विहारिनिदास जी की वाणी १०६)

इन्द्रिय सुखपूर्ति के लिए घूमने वाले कहीं रसिक हो सकते हैं भला!

विषईन कौ जल अन्न लै खाएँ बिषई होइ।
काम क्रोध घरू भरि रहै भाजति भक्ति बिगोइ॥
हत्या करत सबै डरैं हत्यारेहि डराहिं।
बड़े हत्यारे जांनियै जे हत्यारे के खाँहि॥
हत्या खाई पेट भरि भूख भक्ति गई भागि।
श्रीबिहारीदास बिन तामसी बढयौ बैरु अरु आग॥

(श्री विहारिनिदास जी की वाणी १०६)

विषइयों का संग तो दूर विषइयों का अन्न भी खाया तो विषयी बन जाओगे। एक बार के अन्न-दोष से श्रीनागरीदासजी को युगल का लीला-दर्शन बंद हो गया।

रस-मत्तता के धोखे में अपराध

आज समाज वैष्णवी माया से ग्रस्त है।

क्या है वैष्णवी माया?

संकीर्णता ही वैष्णवी माया है। संकीर्णता एकमात्र अपराध का मार्ग है, जिससे भगवत्पार्षद जय-विजय को वैकुण्ठ से मर्त्यलोक में आना पड़ा अतः इस धोखे में न रहें कि महापुरुषों को अपराध नहीं लगता है।

ब्राह्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः।
स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा॥

(भा. ४/१४/४१)

ऐसा ब्राह्मण जिसने ब्रह्म को जान लिया है, समदर्शी है, शान्त है, यदि दीनों की उपेक्षा करता है तो उसका ब्रह्मतेज भी इस प्रकार स्रवित हो जायेगा जैसे फूटे घट से जल।

भगवान् तो अधनात्मधन हैं, दीनों से प्रेम करने वाले दीनबन्धु हैं। उन्हें दीन अतिशय प्रिय हैं।

एहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई।
रघुवर रावरि इहै बड़ाई।

(तुलसी विनय पत्रिका-१६५)

जहाँ थोड़ा शास्त्र ज्ञान हुआ, धन बढ़ा, अच्छे कुल (आचार्य कुल) में जन्म हो गया, कुछ अच्छे कर्म बन गये फिर वह मदोन्मत्त होकर भगवान् के अकिञ्चन भक्तों की उपेक्षा, तिरस्कार करने लगता है। ऐसे दुर्मदों की पूजा को भगवान् कभी स्वीकार नहीं करते हैं।

जबकि भाव यह होना चाहिए, श्री हिताचार्य महाप्रभु कहते हैं –

"पाये जान जगत में जेते"

संसार के जितने जीव हैं, सबको श्यामा-श्याम प्राप्त हैं, एक मैं ही ऐसा क्षुद्रतम जीव हूँ जो इससे वंचित हूँ।

यही श्रद्धा वैष्णवी माया व वैष्णवापराध से बचायेगी अन्यथा जिन राजा चित्रकेतु को भगवान् संकर्षण के दर्शन हो गये, पार्षद स्वरूप की प्राप्ति हो गई, अव्याहत गति प्राप्त हो गई, इतने पर भी भागवतों की महिमा को नहीं समझ पाये व परम वैष्णव शंकर जी में दोषबुद्धि कर अपराध कर बैठे।

यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः।
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना स्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः॥

(भा. १०/३३/३५)

श्रीशुकदेवजी के मतानुसार साधन, कर्म व अपराधों का प्रतिफल तो नित्यधाम में है ही नहीं। भगवच्चरणकमलों के रज-सेवन से तृप्त होकर व भगवद्योग के प्रभाव से वे भक्त अपने समस्त कर्मबंधनों से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरण करते हैं।

प्रायेण मुनयो राजन् निवृत्ता विधिषेधतः।
नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः॥

(भा. २/१/७)

उनके विधि-निषेधात्मक समस्त कर्म यहीं समाप्त हो जाते हैं, और उन्हें कर्म-बन्धन नहीं होता है।

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ।
विपर्ययेण वानर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥

(भा. १०/३३/३३)

कहाँ तक कहें, पूर्वाभ्यास से वह सहज ही भगवान् की ओर आकृष्ट होता है एवं सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न होने पर शब्द ब्रह्म अर्थात् विधि-निषेध से अतीत हो जाता है। विधि-निषेधात्मक बन्धन समाप्त होने का आशय वह शास्त्रातीत हो जाता है।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥

(गी. ६/४४)

भगवज्जिज्ञासा में ही शास्त्र निवृत्त हो जाता है और फिर तो विपर्यय-कर्मों का बन्धन भी उसे नहीं लगता है।

रसानुभूति के बाद तो **'स्वैरं चरन्ति मुनयो'** – वह स्वच्छन्द विचरण करने लगता है किन्तु ध्यान रहे, लीलापराध अथवा महद् अपराध नित्यधाम में भी अक्षम्य होता है और इस नियम का चिन्मयी प्रकृति भी पालन करती है।

महदतिक्रमणशङ्कितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।
सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभिश्छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥

(भा.१०/३५/१३)

वन में श्रीकृष्ण के वेणु बजाने पर महद् अपराध की आशंका से मेघ भी मंद-मंद वंशी के स्वर और ताल के साथ गरजते हैं।

अतः नित्यपरिकर में भी लीलापराध से शापादि देखे जाते हैं। जैसे जय-विजय का हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु बनना, श्रीदामा का शंखचूड बनना। तत्समस्त लीलाओं का उद्देश्य भी लोकशिक्षा होता है। भगवल्लीला अनुग्रहरूपिणी है अतएव रसिकों ने साधारण भक्त के अपराध से भी सावधान किया है।

भक्त साधारण के अपराधहिं काँपति डरनि हियो ।

(श्री बिहारिनदेव जी-सिद्धांत के पद-५८)

ऐसी रसिकता किस काम की जो आसुरी भाव को प्राप्त करा दे, यहाँ तक कि साक्षात् निकुञ्ज भवन में पहुँचने के बाद भी लीलापराध, महद् अपराध से अत्यधिक सावधान रहें।

यों बोलियै न डोलियै टहल महल की पाइ ।
श्री बिहारिनदास अंग संगनी कहत सखी समुझाइ ॥

(श्रीबिहारिनदेव जी की वाणी-१०५)

साक्षात् निकुञ्ज-महल की सेवा भी प्राप्त हो जाये तो वहाँ सावधानी से बोलना, डोलना अन्यथा अपराध हो जाएगा। ललिता जी के अपराध से ही स्वयं उद्धव जी को नित्यधाम से आना पड़ा, सूरदास बने। स्वयं महासखी ललिता भी उद्धव-अपराध से म्लेच्छ-कन्या बनीं।

स्वास समुझि सुर बोलियै डोलि नैन की कोर ।
मैननि चैन न पावही बिहरें युगल किसोर ॥

(श्रीबिहारिनदेव जी की वाणी-१०६)

यहाँ युगल की स्वांस के सुर में ही बोलना व नेत्रों के संकेत पर ही डोलना (चलना) अन्यथा अपराध बन बैठेगा। उच्छृंखलता में अपराध होता है।

निष्किञ्चन भक्तों के अपराध से होती है विषयों में प्रवृत्ति

आज संसार में प्रायः भोगवाद का दर्शन हो रहा है। इसका कारण है – भक्तापराध। मत्स्य भक्षण करने पर सौभरि ऋषि ने गरुड़ को शाप दे डाला। आज के बाद यहाँ आने पर तुम्हारा प्राणान्त हो जायेगा। यद्यपि यह शाप मत्स्यों के क्षेम के लिये दिया गया था किन्तु इससे ऋषि को अपराध लगा। जिसके परिणाम में उन्हें भोगेच्छा जाग गयी एवं राजा मान्धाता की पचास कन्याओं से पचास रूप धारण करके विवाह किये। यह शाप अनुचित था, संसार में सभी जीवभोजी हैं।

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ।
फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥

(भा. १/१३/४६)

हाथ वालों के बिना हाथ वाले, चार पैर वालों के बिना पैर वाले, तृण, पत्रादि एवं बड़े जीवों के छोटे जीव आहार हैं अतः एक जीव दूसरे जीव का भोजन है। इसी प्रकार गरुड़ का भोजन मत्स्य है किन्तु भगवद्भक्तों की महत्ता को ध्यान में न रखते हुए तपो मद में ऋषि ने गरुड़ को शाप दे डाला। इस वैष्णवापराध से उन्हें पतित होना पड़ा।

नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते
ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्य-
मिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥

(भा. ४/९/९)

साधक हो अथवा सिद्ध, नरक में भी प्राप्त होने वाले कुणपोपभोग्य पदार्थों की जो इच्छा करता है वो नारकीय है। यह वैष्णवापराध का ही दण्ड था कि महान तपस्वी ऋषि को विषय सुख की लालसा जाग गई।

कैसे बचें भक्तापराध से?

स्वयं श्रीभगवान् ने कहा है –

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्तस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।
वाण्यानुरागकलयाऽऽत्मजवद् गृणन्तः सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥

(भा. ३/१६/११)

भक्त यदि कटु शब्द (गाली) भी कह दें अथवा किसी प्रकार का दुर्व्यवहार या ताड़ना भी दे दें तो उसकी उपेक्षा करके मुस्कान रूपी अमृत सिंचन व कमल वक्त्र से अनुरागभरी वाणी के द्वारा भक्त को प्रसन्न करना, न कि प्रतिकार।

उपाहृत (उप अर्थात् समीप, आहृत अर्थात् खींचकर लाये जाते हैं) अर्थात् भक्तसेवी भगवान् को अतिशीघ्र अपनी ओर खींच लाता है अतः स्वामीजी की वाणी में –

कै हित कीजै कमलनयन सों, कै हित कीजै साधु संगति से ।

(अष्टादशसिद्धान्त के पद-७)

अथवा

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा ।

(रा.च.मा.अरण्य. ३५)

अथवा

पहले रसिक जनन को सेवे ।

(महावाणीसिद्धान्त सुख-३१)

'भक्तसेवा' से देवदुर्लभ वैभव, योगि-दुर्लभ सिद्धि देवहूति जी को प्राप्त हुई।

भक्तद्रोह का परिणाम भी समझ लें –

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥

(भा. १०/४/४६)

जीवन-शक्ति का ह्रास होता है, मृत्यु तक हो जाती है, कल्याण के सभी साधन व द्वार बन्द हो जाते हैं। इसी भक्तद्रोह से आज समाज दुर्बल हो गया।

यस्यामृतामलयशःश्रवणावगाहः
सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ।
सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्ति-
श्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥

(भा. ३/१६/६)

मेरा निर्मल यश श्रवणकर चाण्डाल पर्यन्त सम्पूर्ण जगत अनुक्षण पवित्र हो जाता है।

यह जगत पावनी शक्ति मुझे भक्तों से ही प्राप्त हुई है, ऐसे उन भक्तों का अपराध यदि मेरी भुजा भी करेगी तो तुरन्त ही इसे काट कर दण्डित करूँगा। जो भक्तवत्सल भगवान् भक्तों के प्रतिकूल कार्य करने पर अपनी भुजाओं को ही काट डालने का संकल्प रखते हैं तब वे हम वैष्णव-विद्वेषियों पर कैसे कृपा करेंगे? फिर हम जैसे साधारण प्राणी वैष्णवापराध करने में थोड़ा भी नहीं हिचकते हैं किन्तु इसका परिणाम कितना भीषण हो सकता है। भगवान् भी स्वयं में जगत-पावनी-शक्ति का अनुभव भक्तों के कारण ही करते हैं।

यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं
सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ।
न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः
प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान् वहन्ति ॥

(भा. ३/१६/७)

यह जगत-पावनी-शक्ति व साक्षात् महालक्ष्मी से भी असंगता उन्हें भक्त-सेवा से ही प्राप्त हुई है।

नाहं तथाद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेन ।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥

(भा. ३/१६/८)

यज्ञ में निरन्तर दी जा रही घृताहूतियों से भी प्रभु इतने सन्तुष्ट नहीं होते हैं जैसा कि निष्काम भक्त के भोजन करने पर, उसके मुख में गये प्रत्येक ग्रास पर उन्हें परम सन्तोष का अनुभव होता है। इससे विपरीत –

जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई ॥

(रा.च.मा.अयो. २१८)

वैष्णवापराधी को तो निश्चित ही भगवान् की क्रोधाग्नि में जलना पड़ेगा अतः अनन्यता के आवरण में परस्पर ईर्ष्यापरायण समाज को प्रभु के कोप से बचना चाहिए।

एक बार कुलीन ग्रामवासी भक्तों ने श्रीमच्चैतन्यदेव से जिज्ञासा की – वैष्णव का क्या लक्षण है? एक बार भी जिसने कृष्ण नाम लिया, वह वैष्णव है – श्रीमन्महाप्रभु जी ने कहा किन्तु इस प्रकार तो मनुष्य मात्र वैष्णव है क्योंकि ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा जिसने एक बार भी भगवन्नाम का उच्चारण न किया हो। पूर्ण सन्तोष न होने पर उन्होंने पुनः वही प्रश्न किया – वैष्णव कौन है?

जो निरन्तर कृष्ण नाम लेता है, वह वैष्णव है, श्रीमन्महाप्रभु जी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया किन्तु सतत् नाम जप करने वाले भी कल्मषरहित नहीं हो पाते हैं। लाख-

लाख नाम जप कर रहे हैं और बगल में रहनेवाले साधकों से बोलचाल नहीं है अतः आवश्यक नहीं है कि निरन्तर नाम जप करने वाला भी प्रधान वैष्णव है।

तृतीय बार वैष्णव का लक्षण पूछे जाने पर श्रीमन्महाप्रभु जी ने कहा –

जाहार दर्शने मुखे आइये कृष्णनाम। ताहारे जानिय तुम वैष्णव प्रधान॥

(चै.च.मध्यलीला/षोडश परिच्छेद /७३)

जिसके दर्शनमात्र से मुख में श्री कृष्णनाम स्फुरित हो उठे, वही प्रधान वैष्णव है। कथनाशय एक नाम लेने वाला भी वैष्णव है।

श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी की दृष्टि में –

तुलसी जाके मुखन ते धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पगतरी मोरे तन को चाम॥

रसिकों की भी आज्ञा है – साधारण भक्तों के अपराध से भी सावधान रहो।

अपराधहिं कांपत डरनि हियो॥

(विहारिनि देव जी की वाणी-५८)

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्‌ यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥

(भा. ३/३३/६)

जिसकी जिह्वा पर भगवन्नाम विराजमान हो गया, वह चाण्डाल होते हुए भी आदर के योग्य है।

मन्येऽसुरान्‌ भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान्।
ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसेसुनाभायुधमापतन्तम्॥

(भा. ३/२/२४)

श्री उद्धवजी की दृष्टि में तो भगवान् से युद्ध करने वाले भी भागवत (वैष्णव) हैं। वस्तुतः निष्ठा तो यही है। सबमें अभेद दृष्टि ही वैष्णवता है फिर एक दूसरे सम्प्रदाय की वाणी-पोथी न पढ़ना, मन्दिरों में न जाना, एक-दूसरे आचार्यों की वाणी न गाना – यह महापाप ही है। यहाँ तक कि बहुत से सम्प्रदायानुयायी श्री मीरा जी के पद नहीं गाते। इसलिए कि वह किसी सम्प्रदाय विशेष के अनुगत नहीं थीं। कोई कहता है मीरा ने भगवान् को विष का भोग लगाया जो सर्वथा अनुचित था, कोई कहता है कि श्रीनाथजी के सेवाधिकारी कृष्णदासजी ने भी मीरा जी को आदर की दृष्टि से नहीं देखा। यह सत्य है अथवा झूठ, भगवान् जानते हैं किन्तु इतना अवश्य है कि एक भक्त दूसरे भक्त का अपराध नहीं कर सकता है।

स्वयं श्रीनाभा जी महाराज भक्तमाल जी में कह रहे हैं कि कलिकाल में गोपी-प्रेम को दिखाने वाली श्री मीरा जी ही हुई हैं।

लोकलाज कुल श्रृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायौ ।
निरअंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायौ ॥
दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीयौ ।
बार न बाँकौ भयौ गरल अमृत ज्यौं पीयौ ॥
भक्ति निसान बजायकै काहू ते नाहिन लजी ।
लोकलाज कुल श्रृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥

(भक्तमाल)

भक्तिमती मीराबाई के निन्दक दोषद्रष्टा कैसे साधु, कैसे वैष्णव और कैसे रसिक हैं?

हम मीरा के पद नहीं गाते हैं, यह किसी भक्त की अथवा रसिक की वाणी नहीं हो सकती है। महापुरुषों की वाणी का खण्डन, नामापराध है।

महद् वाणी में भेद-नामापराध है –

दस नामापराध

सतां निन्दा यतः ख्यातिं यातं कथमुसहते तद्विगर्हाम् ॥
शिवस्य श्रीर्विष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं
धिया भिन्म पश्येत् स खलु हरिनामाहितकरः ॥
गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनम् ।
नाम्नोबलाद् यस्य हि पापबुद्धिर्नविद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः ॥
धर्मव्रतत्यागहुतादि सर्वशुभक्रिया साम्यमपि प्रमादः ।
अश्रद्दधाने विमुखेऽप्यश्रृण्वति यश्चोपदेशः शिवनामापराधः ॥
श्रुत्वापि नाममाहात्म्यं यः प्रीतिरहितोऽधमः ।
अहंममादिपरमो नाम्नि सोप्यपराधकृत् ॥

(पद्मपुराण ब्रह्म खण्ड-२५/१४-१७)

१. महत्पुरुषों की निन्दा –

बहुधा अपने सम्प्रदायाचार्यों की प्रशंसा व अन्याचार्यों की निन्दा करते मंदबुद्धि जनों को देखा जाता है।

२. श्रीविष्णु-शिव के नाम में भेद करना –

हम हरे कृष्ण..... महामन्त्र ही गायेंगे, हम राधे कृष्ण.... युगल मन्त्र ही गायेंगे – ब्रज के गाँवों में ऐसे दुराग्रहों के कारण नाम संकीर्तन प्रभात फेरी में विघटन हो गया। एक दल महामन्त्र करेगा और दूसरा दल युगल मन्त्र करेगा। यह कैसी नासमझी है। पूज्य श्री बाबा

महाराज को सद्गुरुदेव अनन्त श्रीयुत श्री प्रिया शरण बाबा जी महाराज ने यही कहा – साधन बने या न बने, साम्प्रदायिक भेद, नाम भेद जैसे गम्भीर अपराधों से सदा सावधान रहना।

मानमन्दिर से संचालित श्री राधारानी ब्रज यात्रा इसका आदर्श बनी। कोई युगल मन्त्र करे, महामन्त्र करे, भगवन्नाम मात्र लेने वाला पूज्य है, प्रणम्य है।

श्रीमद्भागवत की प्रथम शिक्षा –

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद् वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

(भा. २/४/१५)

जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण व पूजन जीवों के पाप को तत्काल नष्ट कर देता है। अब यहाँ किसी विशेष नाम का निर्देश तो नहीं किया गया कि युगल मन्त्र ही पाप नष्ट करेगा अथवा महामन्त्र ही पाप नष्ट करेगा।

नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥

(भा. ३/९/१५)

हे नाथ! प्राणोत्सर्ग के समय आपके किसी भी नाम का उच्चारण चाहे वह अवतार सम्बन्धी देवकीनन्दन, नन्दनन्दन.......नाम है अथवा गुण सम्बन्धी दीनबन्धु, दयासिन्धु.......नाम है अथवा लीला सम्बन्धी माखनचोर, गिरिधारी......नाम है। किसी भी नाम का संकीर्तन जन्म-जन्मान्तरों के पाप से तत्काल मुक्त कर माया का भेदन कर आपकी प्राप्ति कराने वाला है।

३. श्री गुरुदेव की अवज्ञा –

पूर्ववर्ती मूलाचार्यों के मत-सिद्धान्तों को छोड़कर अपनी ही नवीन कल्पना करके ब्रज-निकुञ्ज का भेद, जन्म, विरह, मान, सख्य, वात्सल्यादि लीलाओं का त्याग ....यह अपने आचार्यों की अवज्ञा नहीं तो क्या?

४. श्रुति-शास्त्र निन्दा –

रस के दो-चार पद गाकर कहने लगते हैं – क्या भागवत, गीता, रामायण पढ़ते हो? रस-वाणी पढ़ो।

५. श्री हरिनाम में अर्थवाद की कल्पना – नाम की महिमा को बढ़ा-चढ़ा कर कह दिया गया है, ऐसी कल्पना करना।

६. श्री हरिनाम के बल पर पाप में प्रवृत्ति –

'महापुरुषों को पाप नहीं लगता', इन वाक्यों का आधार बनाकर कामाचारिता करना।

तिलक बनाइ चले स्वामी बन, विषइन के मुख जोये ।

(सूर विनय पत्रिका-६०)

७. श्री हरिनाम के फल के साथ यज्ञ-व्रतादि के फल की तुलना।

८. श्री नाम श्रवण व कीर्तन में असावधानता व चेष्टाशून्यता।

९. श्रद्धाविहीन को उपदेश देना।

१०. श्री नाम-माहात्म्य सुनकर भी उसे प्रधानता न देकर ममाहं की मति से विषय-भोगादि को प्रधानता देना।

आज समाज में इन विषमताओं का विरोध करने वाला कोई नहीं है।

अनन्यता का स्वरूप व प्राप्ति का सरल साधन

श्रीकृष्ण के वचन –

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

(गी. २/६४, ६५)

राग-द्वेष से रहित होने पर ही अन्तःकरण प्रसन्नता को प्राप्त होगा और अन्तःकरण की प्रसन्नता प्राप्त होने पर सभी दुःख चले जाएंगे व उस साधक की बुद्धि सब ओर से हटकर स्वतः श्रीभगवान् में लग जाएगी।

कर्ता तो मन ही है चाहे लोक हो अथवा परलोक।

येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान् ।
भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम् ॥

(भा. ४/२९/६०)

शरीर का मरना-मिटना तो वस्त्र-परिवर्तन की भाँति है अतः मन का भगवान् में लग जाना ही अनन्यता है।

मन से सतत् इष्ट-चिन्तन ही इष्ट की अनन्यता है और इष्ट-चिन्तन के सातत्य हेतु वैष्णव-शास्त्रों में अष्टयाम सेवा की भावना है।

प्राचीन काल के महात्मा नाम जप के साथ भावना किया करते थे। भावना अर्थात् भावयोग, भगवत्प्राप्ति का सहायक साधन है – भावना।

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया ते उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

(भा. ३/९/११)

भावयोग से परिभावित हृदयकमल में भगवान् सर्वदा विराजते हैं।

भावयोग कैसा?

भावुकता उद्धव जी जैसी होनी चाहिए।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

(भा. १०/४७/६१)

क्या गोपियों के पदरज की इच्छा भावुकता है? नहीं-नहीं यह तो बहुत सरल बात है।

कठिन भावुकता तो यह है –

मन्येऽसुरान् भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान्।
ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसेसुनाभायुधमापतन्तम्॥

(भा. ३/२/२४)

असुरों को भी भक्त माना जाये।

भावयोग में सातत्य अर्थात् नैरन्तर्य अपेक्षित है।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥

(गी. ९/१४)

सातत्य अर्थात् अव्यवहित भक्ति, जहाँ पलभर का अन्तर भी न हो। पलकान्तर का व्यवधान भी हुआ तो नैरन्तर्य नष्ट हो जायेगा। एक पल का व्यवधान तो बहुत अधिक है भगवान् से दूर करने में।

साधन के सातत्य के लिए ही अष्टयाम सेवा भावना रखी गई।

सेवाभावना इसलिए क्योंकि सेवा जब तक भावगत नहीं होगी, सिद्धि अप्राप्त रहेगी।

श्री मज्जीवगोस्वामी जी ने लिखा है –

"सिद्धिश्चात्रेष्टस्फूर्तिः"

सिद्धि का तात्पर्य है इष्ट की स्फूर्ति अतः समस्त सेवाएं भावगत हो जाएं।

श्री मद्वल्लभाचार्य जी की वाणी में –

कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परामता।

मानसी सेवा परा अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है किन्तु द्वितीय पंक्ति पर ध्यान दें –

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा॥

चित्त उसमें प्रवण अर्थात् बह जाये, इसकी सिद्धि के लिये ही तनुवित्तजा अर्थात् तन-धन के द्वारा सेवा की जाती है।

विश्व मंगल

विभाजन से व्यक्ति, समाज, देश एवं विश्व शक्तिहीन हो जाता है। उपासक को व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं समग्र विश्व का हित भी ध्यान में रखना चाहिए, जो संगठन से ही सम्भव है। विघटन से ही भारत परतन्त्र हुआ एवं सर्व कल्याणमयी सनातन संस्कृति का ह्रास हुआ। जिस समय समुद्र-मन्थन से उत्पन्न विषाग्नि से देव-दैत्य जल रहे थे, सब शंकर जी के शरणागत हुए।

शंकर जी के सती जी के प्रति वचन –

पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः।
प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः।
तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे॥

(भा. ८/७/३९, ४०)

हे भगवति! साधु पुरुष अपने प्राणों की बलि देकर भी दूसरे की रक्षा का पूर्ण प्रयास करते हैं। संसार में ऐसे लोग बहुसंख्यक हैं, जो परस्पर राग-द्वेष की ग्रन्थि में बँधे हुए हैं तथापि परार्थ निष्ठावान भक्त उन पर कृपा करते हैं, जिससे सर्वात्मा भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं एवं मैं भी प्रसन्न हो जाता हूँ अतः विश्व कल्याण की भावना से मैं इस विष का पान कर रहा हूँ।

स्वयं का ही नहीं, राष्ट्रहित, विश्वहित का विचार प्रत्येक भक्त को रखना चाहिए। यही है परार्थनिष्ठभक्ति, जिससे प्रह्लादजी ने आसुरी शक्ति पर जय प्राप्त की।

प्रह्लादजी के श्रीनृसिंह भगवान् के प्रति वचन –

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये॥

(भा. ७/९/४४)

हे स्वामि! स्वविमुक्ति की इच्छा से भजन करने वाले तो संसार में बहुत हैं किन्तु लोककल्याण की भावना का उनमें सर्वथा अभाव ही होता है अतः मैं इन सबको छोड़कर अकेले ही पार नहीं जाना चाहता हूँ, आप कृपा करें, आपके अतिरिक्त इनका कोई आश्रय भी तो नहीं है। यह है सार्वभौम कल्याण की परमोदार भावना।

ब्रजगोपियों ने भी कहा –

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥

(भा. १०/३१/१८)

श्रीकृष्णावतार केवल भारतवर्ष के लिए ही नहीं हुआ है। "विश्वमंगलम्"- इस अवतार का उद्देश्य विश्वमंगल था और वह पूर्ण भी हुआ। बहुत प्रसिद्ध है श्रीमद्भगवद्गीता का यह उपदेश –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

(गी. १२/१३)

'सर्वभूतानाम्' अर्थात् प्राणीमात्र के प्रति द्वेषभावना से रहित हो जाओ, प्राणीमात्र से स्वार्थरहित प्रेम एवं प्राणीमात्र पर करुणा करो, ममता-अहंता से रहित होकर, सुख-दुःख की प्राप्ति में समान होते हुए, अपराधी को भी अभयदान देने की उदार भावना रखो। यही वह उपदेश है, जिसमें गोपियों की "वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम्" यह अमोघ वाणी घटित होती है।

भारत, भारतीयता व सनातन धर्म की संकीर्णता

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥

(भा. ५/१९/२१)

इस देववन्दित वसुन्धरा की ऐतिहासिक सामग्री इतनी है कि उसका पृथक् रूप से संकलन करें तो एक स्वतन्त्र ग्रंथ ही तैयार हो जायेगा किन्तु संक्षिप्त उद्धरण की आवश्यकता समझते हुए लघु चर्चा करेंगे, सम्भव है कि यह विषय वस्तु श्रीरामचरितमानस में राजा प्रतापभानु के चरित्र की भाँति अप्रासंगिक प्रतीत हो किन्तु उतनी ही आवश्यक भी प्रतीत होगी।

भारत : एक ऐतिहासिक परिचय

चाहे प्रागैतिहासिक स्वरूप हो अथवा पौराणिक स्वरूप, भारत का इतिहास प्रारम्भ से ही बहुत गोरवपूर्ण रहा है किन्तु संकीर्ण विचारधाराओं ने इसे धूमिल करने में कोई कमी न छोड़ी। संकीर्णता की श्रंखलाओं ने इसे शक्तिहीन किया। परिणाम यह कि सहस्त्रों वर्षों की गुलामी से गुजरना पड़ा।

भारत के ऐतिहासिक काल के तीन विभाग –

(१) प्राक् ऐतिहासिक काल – पाषाण काल से हड़प्पा सभ्यता तक।

(२) आद्य ऐतिहासिक काल – हड़प्पा सभ्यता से ६०० ई. पू. तक।

(३) ऐतिहासिक काल – ६०० ई. पू. से आगे का।

निम्नलिखित इतिहास की प्राप्ति के मुख्य तीन स्रोत हैं।

(१) पुरातात्त्विक स्रोत

(२) साहित्यिक स्रोत

(३) विदेशी रचनाकारों तथा यात्रियों की रचना

पुरातात्त्विक स्रोत –

(१) अभिलेख (२) स्मारक (३) मुद्रा (४) मूर्ति एवं (५) चित्रकला से प्राप्त है।

साहित्यिक स्रोत –

(१) वैदिक साहित्य (२) बौद्ध साहित्य (३) जैन साहित्य (४) धर्मान्तर साहित्य से प्राप्त है।

विदेशी रचनाकारों व यात्रियों की रचना में –

रचनाकार	सम्बन्धित देश	रचना का नाम
मैगस्थनीज	यूनान	इण्डिका
टालेमी	यूनान	ज्योग्राफी
फाह्यान	चीन	रिकॉर्ड ऑफ बुद्धिस्ट कंट्रीज
ह्वेनसांग	चीन	बुद्धिस्ट रिकॉर्ड ऑफ वेस्टर्न वर्ल्ड
अलबरुनी	अरब	तहकी के हिन्द

अब देखें प्राक् ऐतिहासिक काल –

हड़प्पा सभ्यता सबसे प्राचीन सभ्यता मानी गयी है। जिसे सिन्धु घाटी की सभ्यता भी कहा जाता है। अनेक धर्मों ने भारत माता की गोद में क्रीड़ा की।

बौद्ध धर्म, जैन धर्म, वैष्णव धर्म, शैव धर्म, शाक्त धर्म .... ।

बहुतों का भारत पर राज्य हुआ –

हर्यक वंश, शिशुनाग वंश, नन्दवंश, मौर्यवंश – इसमें यूनानी शासक सेल्यूकस के साथ चन्द्रगुप्तमौर्य का युद्ध हुआ तदनन्तर बिन्दुसार, अशोक और मौर्यान्तर काल में शुंगवंश, सातवाहन वंश .... ।

भारत में विदेशी आक्रमण

भारत में सर्वप्रथम प्रवेश डेमेट्रिय प्रथम का है, इसके बाद भारत का कुछ भाग जीतकर यूक्रेटाइडस ने तक्षशिला को राजधानी बनाया अनन्तर मीनेंडर के द्वारा भारत में यूनानी सत्ता स्थापित हुई। यूनानियों के बाद शक (सीथियन) आये, फिर पार्थियन – जो मूल में ईरानी थे। इनके पश्चात् कुषाण – जो चीनी तुर्किस्तानी थे। कनिष्क इस वंश का पराक्रमी शासक था। आगे हुविष्क हुआ और अन्तिम सम्राट हुआ वासुदेव।

चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा गुप्तवंश स्थापित हुआ। उसके पुत्र समुद्रगुप्त द्वारा गुप्त साम्राज्य का विस्तार हुआ अनन्तर चन्द्रगुप्त, महेन्द्रादित्य, स्कन्द गुप्त आदि शासक हुए।

गुप्त साम्राज्य में विघटन हुआ तो वर्धन वंश आया, जिसमें हर्षवर्द्धन हुआ। गुजरात में प्रतिहार वंश, कन्नौज में गहड़वाल वंश, दिल्ली में चौहान वंश, बुन्देलखण्ड में चन्देलवंश, मालवा में परमार वंश, गुजरात में चालुक्य वंश, बंगाल में पाल वंश, कर्नाटक में सेनवंश, गान्धार प्रदेश में हिन्दुशाही वंश, काश्मीर में कार्कोट वंश, उत्पल वंश व लोहार वंश। दक्षिण में राष्ट्रकूट वंश, उड़ीसा में पूर्वीगंग वंश का शासन रहा।

मध्यकालीन भारत में अरबों, तुर्कों ने आक्रमण किया। इसके पश्चात् महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ। अनन्तर मोहम्मद गोरी आया। यह भारत के लिए बड़ा विध्वंसकारी काल रहा। गोरी की मृत्यु के उपरान्त उसके गुलाम कुतुबुद्दीन एबक का शासन हुआ जिसने गुलाम वंश की नींव डाली।

गुलाम वंश –

- **कुतुबी राजवंश**

  १. कुतुबुद्दीन ऐबक (संस्थापक १२०६ से १२१० ई.)

  २. आरामशाह (१२१० से १२११ ई.)

- **शम्सी राजवंश**

  १. इल्तुतमिश (संस्थापक (१२११ से १२३६ ई.)

  २. रुक्नुद्दीन फ़िरोज (१२३६ ई.)

  ३. रज़िया सुल्तान (१२३६ से १२४० ई.)

  ४. मुईज़ुद्दीन बहरामशाह (१२४० से १२४२ ई.)

  ५. अलाउद्दीन मसूदशाह (१२४२ से १२४६ ई.)

६. नासिरुद्दीन महमूद (१२४६ से १२६६ ई.)

- **बलबनी राजवंश**

१. ग़यासुद्दीन बलबन (संस्थापक १२६६ से १२८६ ई.)

२. कैकुबाद एवं शमसुद्दीन क्यूमर्स (१२८७ से १२९० ई.)

- **ख़िलजी वंश**

१. जलालुद्दीन फ़िरोज ख़िलजी (संस्थापक १२९० से १२९६ ई.)

२. अलाउद्दीन ख़िलजी (१२९६ से १३१६ ई.)

३. शिहाबुद्दीन उमर ख़िलजी (१३१६ई.)

४. क़ुतुबुद्दीन मुबारक ख़िलजी (१३१६ से १३२० ई.)

५. नासिरुद्दीन खुसरवशाह (हिन्दू से मुसलमान बना) (१५-२७ अप्रैल, १३२० ई.)

- **तुग़लक़ वंश**

१. ग़यासुद्दीन तुग़लक़ (संस्थापक १३२०से १३२५ ई.)

२. मुहम्मद बिन तुग़लक़ (१३२५ से १३५१ ई.)

३. फ़िरोज शाह तुग़लक़ (१३५१ से १३८८ ई.)

४. ग़यासुद्दीन तुग़लक़ द्वितीय (तुग़लकशाह १३८८ से १३८९ ई.)

५. अबूबक्र (फ़रवरी १३८९ से अगस्त, १३९० ई.)

६. नासिरुद्दीन महमूदशाह (१३९० से १३९४ ई.)

७. नसरत शाह तुग़लक़ (१३९५-१३९८ ई.)

८. महमूद तुग़लक़ १३९९ से १४१२ ई.)

- **सैय्यद वंश**

१. ख़िज्र ख़ाँ (संस्थापक १४१४ से १४२१ ई.)

२. मुबारक शाह (१४२१ से १४३४ ई.)

३. मुहम्मदशाह (१४३४ से १४४५ ई.)

४. अलाउद्दीन आलमशाह (१४४५ से १४५० ई.)

- **लोदी वंश**

१. बहलोल लोदी (संस्थापक १४५१ से १४८९ ई.)

२. सिकन्दर शाह लोदी (१४८९ से १५१७ ई.)
३. इब्राहीम लोदी (१५१७ से १५२६ ई.)

- **मुगल साम्राज्य** – (१५२६-१७०७ ई.)

१. बाबर – (१५२६-१५३० ई.)
२. हुमायूँ – (१५३०-१५४० ई.)
३. शेरशाह सूरी – (१५४०-१५४५ ई.)
४. हुमायूँ पुनः – (१५५५-१५५६ ई.)
५. अकबर – (१५५६-१६०५ ई.)
६. जहाँगीर – (१६०५-१६२७ ई.)
७. शाहजहाँ – (१६२७-१६५८ ई.)
८. औरंगजेब – (१६५८-१७०७ ई.)

औरंगजेब द्वारा बहुत से हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया गया। मथुरा क्षेत्र के बहुतायत गुर्जर व जाट कोप के भाजन हुए।

- **उत्तर मुगल काल**

औरंगजेब की मृत्यु के बाद भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का पदार्पण हुआ जो उत्तर-मुगलकाल था।

१. बहादुरशाह प्रथम – (१७०७-१७१२ ई.)
२. जहाँदारशाह – (१७१२-१७१३ ई.)
३. फ़र्रुख़सियर – (१७१३-१७१९ ई.)

अनन्तर ईरान के नादिरशाह का भारत पर १७३९ ई. में आक्रमण हुआ।

१७वीं शताब्दी में ही मुगल साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया होने के साथ ही देश में स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना का सिलसिला चला, इसमें सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य मराठों का था।

- **आधुनिक भारत**

भारत में यूरोपीय शक्तियों का आगमन हुआ, जिनमें पुर्तगाली, डच, अंग्रेज, फ्रांसीसी, डेन आये। भारत में सर्वप्रथम पुर्तगाली यात्री वास्कोडिगामा १४९८ ई. में आया। पुर्तगालियों का अंत १९६१ ई. में जाकर हुआ। १७९८ ई. में लार्ड वेलेजली को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त कर दिया गया और ब्रिटिश शासन का आरम्भ हो गया।

राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक शोषण के निरन्तर होते रहने से १८३७ ई. में अंग्रेजों के विरुद्ध एक महान विद्रोह हुआ जिसके प्रमुख कर्णधार थे – राणा तुलाराम, नाना साहब, तात्या टोपे, मौलवी अहमदुल्ला, बेगम हजरत महल, रानी लक्ष्मी

बाई, अमर सिंह....आदि किन्तु एकता, कुशल नेतृत्व एवं साधनों का अभाव एवं भारतीयों द्वारा भारतीयों का दमन होने से विद्रोह पूर्णतया सफल न हो सका।

यदि हाल ही की बात करें तो सन् १९४७ का संकुचन (विभाजन) स्मरण हो आता है। भारत के ही मानचित्र में होने वाला भू-भाग बर्मा, बांग्लादेश, लंका और पाकिस्तान विभिन्न देशों के रूप में घोषित हो गया। भारतवर्ष के संकुचन की यह प्रक्रिया अभी से नहीं पिछले कई हजार वर्षों से चली आ रही है।

इतिहास पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥

(भा. १/४/२०)

श्रीमद्भागवत के अनुसार महाभारत एवं पुराण ही हमारे प्राचीनतम ऐतिहासिक साहित्य हैं अतः विदेशी लेखक साइक्स, एच.जी.वेल्स, पार्जीटर आदि ने भी हमारे पुराणों के आधार पर ही नवीन इतिहास-ग्रन्थ "हिस्ट्री ऑफ पर्शिया" की रचना की जिसमें लिखा है –

कोई समय था, समग्र संसार में सूर्य वंश व चन्द्र वंश के अतिरिक्त कोई वंश ही नहीं था जन्म लेने को ।

सम्प्रति "ईरान" नाम से जाना जाने वाला देश "आर्यन" व "अजर बैजान" आदि देश ही थे जो सूर्यवंशियों के थे।

कुछ वर्ष पूर्व तक ईरान का मुसलमान शासक "रजाशाह पहलवी" उपाधि के रूप में 'आर्य-मेहर' लगाता था। जो आर्य-मिहिर का ही अपभ्रंश है। मिहिर अर्थात् सूर्य। "आर्य मिहिर" अर्थात् आर्यों का सूर्य। याद आता है वह युग जब ईरान आदि मुस्लिम देशों के निवासी सूर्यवंशी ही थे।

विदेशी लेखक पार्जीटर एक अनुसंधान के बाद इस निर्णय तक पहुँचे कि 'अरब' शब्द औंर्व का अपभ्रंश है। औंर्व दैत्यों के गुरू शुक्राचार्य का पौत्र था। जिस समय दानवराज बलि ने गुरू आज्ञा की अवहेलना कर दी थी तो रुष्ट होकर गुरू शुक्राचार्य अपने पौत्र "औंर्व" के पास अर्थात् अरब चले गये थे। यही नहीं बैबीलोनिया की गुफाओं में महाराज बलि के पूर्वज हिरण्याक्ष व वाराह भगवान् के युद्ध के चिन्ह प्राप्त हुए। "हिरण्यपुर" भी मुस्लिम देशों में है। 'कशिपु' अथवा 'कश्यप' नाम का विकृत रूप आज 'कैस्पियन' हो गया है किन्तु याद रहे नाम के रूपान्तरण से इतिहास तो नहीं बदल सकता है।

देव-दैत्यों के पिता महर्षि कश्यप की कथा से सब अवगत हैं। भारत वर्ष में आज भी कश्यप गोत्रीय हैं किन्तु उन्हें भी ज्ञान नहीं होगा कि उनका मुख्य स्थान 'कश्यप सागर' फारस की खाड़ी की ओर है।

आस्ट्रेलिया में भारतीयों का ही निवास था, श्यामदेश (थाइलैण्ड) एवं ईराक-ईरान तक किसी समय भारत का एक छत्र राज्य था। श्यामदेश (थाइलैण्ड) में सम्राट अशोक

के द्वारा बनवाया गया भव्य विष्णु मन्दिर अद्यावधि दर्शनीय है। उस समाज में हिन्दू व बौद्ध इन दोनों का ही बोलबाला था।

थाईलैण्ड, चीन, नेपाल, मलेशिया, सिंगापुर, लंका, ईरान, तिब्बत एवं भूटान जो महर्षि कश्यप की १३ पत्नियों में भूति नामक पत्नी की सन्तानों द्वारा बसाया "भद्रदेश" था। इतना ही नहीं अमेरिका से मिस्र और दक्षिण अफ्रीका से जापान तक आर्यावर्त की संप्रभुता थी।

राष्ट्र से, धर्म से प्रेम करने की दुहाई देने वालो! हमने अपनी नासमझी में बहुत कुछ गँवा दिया किन्तु अब यह धारण कर लें कि भारत केवल एक भूमि ही नहीं है प्रत्युत इस भूमि पर जिस महान संस्कृति का उद्भव व पल्लवन हुआ है, वही अधिक महत्वपूर्ण है, जिसकी रक्षा प्रत्येक भारतवासी का परम कर्त्तव्य है।

हम उन परिस्थितियों को जन्म न दें जो देश का, समाज का एवं स्वयं का विभाजन कराती हों। कटु होते हुए भी सत्य तो यह है कि विधर्मियों के द्वारा हमारा उतना विनाश नहीं हुआ, जितना हमारे अपनों के द्वारा हुआ।

इन विचारों से किसको कितना लाभ होगा, यह तो भगवदिच्छा पर ही निर्भर है ।

भागवत धर्म में सर्वाधिकार

लगभग २००० वर्षों की पराधीनता के बाद राजनैतिक रूप से १५ अगस्त, १९४७ को स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी सांस्कृतिक रूप से अपनों की ही पराधीनता से मुक्त होने की तो कोई सम्भावना भी दिखाई नहीं दे रही है।

आज इस देश के संकीर्ण विचारकों के द्वारा जो देश व संस्कृति का संकुचन हुआ और अनवरत हो रहा है, वह तो विधर्मी आक्रान्ताओं के द्वारा लाखों वर्षों तक यहाँ लूट-पाट, तोड़-फोड़, कत्लेआम किये जाने पर भी नहीं हो सकता था।

विशेषतः आज धर्म के नगाड़े बजाने वाले ही भगवद्वाणी, भगवद्रूपा आचार्यों की वाणी को सर्वथा भूल गये हैं। भूल गये कि भगवान् श्रीरामके वन-वनान्तर-भ्रमण का कारण केवट, शबरी एवं जटायु पर कृपा करना ही था। इस वन भ्रमण का उद्देश्य असुरों का वध नहीं था क्योंकि यह तो मात्र उनकी संकल्प शक्ति से भी हो सकता था। पुनः कलिकाल में श्री रामानन्दाचार्य जी के रूप में महान विद्वानों की भूमि "काशी" में उद्घोष किया –

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता अपि नित्यरङ्गिणः ।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो नहि शुद्धता च ॥

(वैष्णव मताब्ज भास्कर)

संसार में सबको भगवद्शरणागति का अधिकार है, चाहे वह समर्थ हो अथवा असमर्थ। क्योंकि भगवद्शरणागति में न श्रेष्ठ कुल की अपेक्षा है न अत्यधिक बल की ही, न उत्तम काल की आवश्यकता है, न किसी शुद्धि की ही। प्राणीमात्र शुचि-अशुचि सभी अवस्था में सभी काल में भगवद्शरणागति ग्रहण कर सकता है।

श्री सूरदास जी ने भी कहा –

हरि, हरि, हरि, सुमिरौ सब कोइ । नारि-पुरुष हरि गनत न दोइ ॥

(सूर विनय पत्रिका-१४७)

सनातन धर्म के इस सूर्य स्वरूप सिद्धान्त पर ग्रहण लगाने वाले राहु-केतु स्वरूप आज के संकीर्ण विचारक सर्वथा त्याज्य हैं।

भूल गये कि जगद्गुरू श्री स्वामी रामानन्द जी ने रैदास (जो कि चमार थे) को भी शिष्य बनाया था जो कलिकाल की गोपी मीरा के गुरू हुए।

कर्मकाण्ड प्रधान दक्षिण भारत की भूमि में प्रकट हुए शेषावतार श्री रामानुजाचार्य जी कावेरी स्नान के लिए जाते समय एक विप्र के कंधे का सहारा लेते एवं लौटते समय धनुर्दास के कंधे पर हाथ रखकर आते, इससे अन्य ब्राह्मण शिष्यों को बड़ा रोष होता।

स्नान को जाते हुए तो ब्राह्मण का स्पर्श और लौटते हुए शूद्र का स्पर्श! राम, राम, राम! ये तो आचरण भ्रष्ट हो गये हैं। बाद में श्री रामानुजाचार्य जी ने उन द्वेषियों को श्री धर्नुधरदास जी के भक्ति, त्याग एवं वैराग्यमय उदात्त व्यक्तित्व से अवगत कराया।

खेद है कि आज अपने ही धर्मग्रन्थों की वाणी व भावना को यथार्थ रूप से न समझने वाले मनमुखी ज्ञानाभिमानी अज्ञानी लोग संकीर्णता का ध्वज हाथ में लिये अपने ही धर्म को खण्ड-खण्ड करने को खड़े हैं।

भारतीय आर्य संस्कृति में अनेकानेक स्त्रियाँ जैसे देवहूति, सुनीति, सती, मदालसा, सुबुद्धिनी, ब्रज की गोपी, रतिवन्ती, अरुन्धती, अनसूया, लोपामुद्रा, सावित्री, गार्गी, शाण्डिली, गणेशदेई, झालीरानी, शुभा, शोभा, कुन्ती, द्रोपदी, दमयन्ती, सुभद्रा, प्रभुता, उमा भटियानी, गोराबाई, कलाबाई, जीवाबाई, दमाबाई, केशीबाई, बाँदररानी, गोपालीबाई, मीराबाई, कात्यायनी, मुक्ताबाई, जनाबाई, सखूबाई, सहजोबाई, करमैतीबाई, रत्नावती, कुँअररानी, कान्हूपात्रा, चिन्तामणि, पिंगला, हम्मीर, सूर्य परमाल, सरदारबाई, लालबाई, वीरमती, विद्युल्लता, कृष्णा, चम्पा, पद्मा, संघामित्रा, अहिल्याबाई आदि के रूप में आदर्श माता, आदर्श भगिनी, आदर्श पत्नी, आदर्श पुत्री, आदर्श रानी, आदर्श वीरांगना, आदर्श राजनीति निपुणा, आदर्श कार्यकुशला, आदर्श ब्रह्मवादिनी, आदर्श वक्त्री की भूमिका निभाती रही हैं। आज यदि ये न होतीं तो भारतीय आर्य संस्कृति में आदर्श स्त्रियों का स्थान शून्य ही रह जाता।

आज कोई स्त्री धर्म प्रचारिका बन जाती है तो इसका खण्डन करने भारत के ही संकीर्ण धर्म प्रचारक खड़े हो जाते हैं।

आर्यमेदिनी के युगप्रवर्तक धर्मप्रचारक तो थे स्वामी विवेकानन्द, नारी शक्ति के प्रति जिनके उदात्त विचार आज के प्रत्येक धर्म प्रचारक को पढ़ने चाहिए।

स्वामी जी का 'women of india' नामक ग्रन्थ एवं नारी शक्ति सम्बन्धी आपके अन्य सुन्दर विचारों का संग्रह 'our women' पुस्तक रूप में प्रकाशित है।

आज के युग में स्त्रियों को किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है, एक शिष्य के इस प्रकार पूछे जाने पर स्वामी जी ने कहा – छात्राओं को जीवन में सीता, सावित्री, दमयन्ती, लीलावती और मीराबाई का चरित्र सुना-पढ़ाकर अपने जीवन को इसी प्रकार समुज्ज्वल करने का उपदेश दें, इसके साथ ही शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य एवं सुरक्षा की शिक्षा भी आवश्यक है।

मेरी इच्छा है कि कुछ बालक ब्रह्मचारी एवं बालिकाओं को ब्रह्मचारिणी बनाकर उनके द्वारा देश-देश, गाँव-गाँव में जाकर अध्यात्म का प्रसार कराया जाये। ब्रह्मचारिणियाँ स्त्रियों में अध्यात्म विद्या का प्रसार करें।

वर्तमान युग में तो स्त्रियों को यंत्र ही बना दिया गया है। राम! राम! राम! क्या ऐसे ही भारत का भविष्य उज्ज्वल होगा?

शिष्य – किन्तु गुरुदेव! भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में स्त्रियों के लिए कोई मठ बनाने की बात प्राप्त नहीं होती है, बौद्ध काल में हुआ भी तो उसके परिणाम में व्यभिचार बढ़ने लगा था, देशभर में घोर वामाचार सर्वत्र फैल गया था।

स्वामी जी – मुझे एक बात समझ में नहीं आती कि एक ही चित्-सत्ता सर्वभूतों में विद्यमान है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक वेद ही जिस संस्कृति का मूलाधार हैं, उस देश में स्त्री व पुरुष में इतनी भिन्नता क्यों समझी जाती है? स्त्री निन्दको! तुमने स्त्रियों की उन्नति के लिए आज तक क्या किया? नियम-नीति में आबद्ध करके स्त्रियों को मात्र जनसंख्या की वृद्धि का यंत्र बना डाला। जगदम्बा की साक्षात् मूर्ति है भारत की नारी।

नारी निंदा मत करो, नारी नर की खान।
नारी से नर ऊपजे, ध्रुव प्रह्लाद समान॥

इनका उत्थान नहीं हुआ तो क्या तुम्हारा उत्थान कभी सम्भव है?

शिष्य – गुरुदेव! स्त्री जाति तो साक्षात् माया की मूर्ति है, जैसा कि रामचरितमानस में भी लिखा है –

“नारि विष्णु माया प्रकट”

मानो मनुष्य के अधःपतन के लिए ही स्त्री की सृष्टि हुई है, ऐसी स्थिति में क्या उन्हें भी ज्ञान-भक्ति का लाभ सम्भवहै?

स्वामी जी – किस शास्त्र में लिखा है कि स्त्रियाँ ज्ञान-भक्ति की अधिकारिणी नहीं हैं?

जिस समय भारत में ब्राह्मण-पण्डितों ने ब्राह्मणेतर जातियों को वेदपाठ का अनधिकारी घोषित किया, साथ ही स्त्रियों के भी सब अधिकार उस समय छीन लिये गये, अन्यथा वैदिक युग में देखो तो मैत्रेयी, गार्गी..........आदि ब्रह्मविचार में ऋषियों से कुछ कम नहीं रहीं हैं।

ना वेदविन्मनुते तं बृहन्तम्।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण- ३/१२/९/७)

तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन।

(बृहदारण्यकोपनिषत्-४/१०/२२)

अर्थात् जिस प्रकार पुरुष ब्रह्मचारी रहकर तप व योग द्वारा ब्रह्मप्राप्ति करते थे, उसी प्रकार कितनी ही स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी ब्रह्मचारिणी हुई हैं।

सर्वाणि शास्त्राणि षडंग वेदान्, काव्यादिकान् वेत्ति, परञ्च सर्वम् ।
तन्नास्ति नोवेत्ति यदत्र बाला, तस्मादभूच्चित्र- पदं जनानाम् ॥

(शंकर दिग्विजय ३/१६)

सभी शास्त्रों, अंगों सहित वेदों व काव्यों की ज्ञाता भारती-देवी से श्रेष्ठ कोई विदुषी नहीं थी।

अत्र सिद्धा शिवा नाम ब्राह्मणी वेद पारगा ।
अधीत्य सकलान वेदान लेभेऽसंदेहमक्षयम ॥

(महाभारत उद्योग पर्व १९०/१८)

वेदों में पारंगत शिवा नामक ब्राह्मणी ने सभी वेदों का अध्ययन कर मोक्ष प्राप्त किया।

सहस्त्र वेदज्ञ विप्र-सभा में गार्गी ने ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया। इन सब आदर्श विदुषी स्त्रियों को जब उस समय अध्यात्म ज्ञान का अधिकार था तब आज क्यों नहीं?

श्री प्रह्लाद जी ने भी तो यही कहा –

"स्त्रीबालानां च मे यथा"

(भा. ७/७/१७)

स्त्री हो अथवा बालक सबको मेरे समान ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

भारत वर्ष की अवनति का कारण ही है – नारी शक्ति का विद्रोह रूप अपमान।

फिर मनु जी ने तो कहा है –

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाक्रियाः ॥

(मनु स्मृति-३/५६)

स्वामी जी की प्रबल इच्छा थी कि भारत की अविवाहित बालिकाओं के लिए ऐसा कोई मठ बने जहाँ उन्हें निःशुल्क आवास, भोजन व शस्त्रों तथा शास्त्रों की समुचित शिक्षा प्राप्त हो सके। जो चिर कौमार्य – वृत का पालन करने की इच्छा रखेंगी, उन्हें मठ की शिक्षिका तथा प्रचारिका बनाया जायेगा, जिससे वे देश-विदेश में जाकर नारी शक्ति को प्रबुद्ध कर सकेंगी। त्याग, संयम एवं सेवा ही उनके जीवन का व्रत होगा तब फिर से यह भूमि सीता, सावित्री और गार्गी से सज्जित हो सकेगी।

कुछ ब्रह्मवादिनियों के नाम इस प्रकार हैं –

ऋग्वेद की ऋषिकायें –

घोषा गोधा विश्ववारा, अपालोपनिषन्निषत् ।
ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः ॥

इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी ।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती ॥
श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक्श्रद्धा मेधा च दक्षिणा ।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः ॥

(बृहद्देवता २/८४, ८५, ८६)

घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, निषद्, ब्रह्मजाया (जुहू), अगस्त्य की भगिनी, अदिति, इन्द्राणी और इन्द्र की माता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा और नदियाँ, यमी, शश्वती, श्री, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्री और सूर्या – सावित्री आदि सभी ब्रह्मवादिनी हुई हैं।

भूल गये, विदेहराज जनक की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्रह्मवादिनी वाचक्नवी का धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर कैसा शास्त्रार्थ हुआ था।

वहाँ तो वाचक्नवी के स्त्री होने पर कोई बात नहीं उठायी गई है फिर आज स्त्री का प्रचारिका बनना, स्त्री का कथा कहना प्रश्नवाचक क्यों है?

आश्चर्य तो यह है कि ऐसे संकीर्ण विचारकों को ही अधिक विद्वान् कहा और समझा जाता है। इससे अधिक कदर्थना क्या होगी? वस्तुतः न वे धर्मज्ञ हैं, न ही धर्म प्रचारक, हाँ, धर्मध्वजी अवश्य हैं; जो भारतीय संस्कृति को स्वतन्त्र स्वदेश में ही पल्लवित होने में परिपन्थी बन रहे हैं।

भारत व भारतीयता जिनका प्राण थी और वे स्वयं भारत के प्राण थे ऐसे महामना श्री मदनमोहन मालवीय जी, देश व धर्म का ऐसा कोई कार्य नहीं जिसमें श्री मालवीय जी के उदार हृदय ने भाग न लिया हो।

बात उस समय की है जब इन्हीं संकीर्ण विचारों के चलते कल्याणी नामक छात्रा को हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में बहुत आग्रह करने पर भी वेद-कक्षा में प्रवेश प्राप्त नहीं हुआ।

विद्वान् कहे जाने वाले संकीर्ण विचारकों का कथन था कि स्त्रियों को वेदाधिकार नहीं है।

विवादों में एक ओर समर्थन था तो दूसरी ओर विरोध। समय व्यतीत होता रहा, निर्णय तक कोई नहीं पहुँच सका। अन्त में हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ने धर्म प्राण मालवीय जी की अध्यक्षता व अनेकों गणमान्य विद्वानों की उपस्थिति में शास्त्रों के आधार पर विचार-विमर्श के उपरान्त यह निर्णय दिया –

"स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति वेदाधिकार है। २१ अगस्त सन् १९४६ को स्वयं महामना मालवीय जी ने इस निर्णय की घोषणा की। तदनुसार कुमारी कल्याणी को वेद-

कक्षा में प्रवेश प्राप्त हुआ और विद्यालय में स्त्रियों के वेदाध्ययन पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध न रहने का निर्णय हुआ।

अब भी कोई दुराग्रह करे तो इसका कोई उपचार नहीं। लोकापवाद तो सीता जी के अग्नि-परीक्षा दिये जाने पर भी समाप्त न हो सका था किन्तु इतना अवश्य है, ऐसे हठ धर्मी धर्मप्रेमी तो कदापि नहीं किन्तु काष्ठ के घुन की भाँति धर्म को खोखला करने की पहल अवश्य कर रहे हैं।

स्त्री को कथा-वाचन का अधिकार।

श्रुतिः स्मृति उभे नेत्रे विप्राणां प्रकीर्तिते।
एकेन विकलः काणः द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः॥

(हारीत संहिता)

श्रुति व स्मृति का ज्ञान ही ब्राह्मण के दो नेत्र हैं, इनमें से यदि एक का भी ज्ञान नहीं है तो वह काना है और यदि दोनों के ही बोध से रहित है तो वह अन्धा है।

किन्तु भागवत धर्म वह मार्ग है जहाँ अन्धा भी स्खलन, पतन के भय से सर्वथा मुक्त होकर दौड़ सकता है।

योगेश्वर श्री कवि जी के वचन –

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये।
अञ्जः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान्॥

(भा. ११/२/३४)

भोले-भाले अज्ञानी जन भी सुगमता से भगवत्प्राप्ति कर सकें, इसके लिये स्वयं श्री भगवान् ने अपने मुख से जो मार्ग बताया है, वही "भागवत धर्म" है। यह भागवत धर्म अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तो है ही, गोपनीय होने से स्वयं श्री भगवान् के मुख से ही प्रकट हुआ है, अन्यथा वर्णाश्रम धर्मों की भाँति मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर आदि स्मृतिकारों से भी प्रकट कराया जा सकता था।

यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥

(भा. ११/२/३५)

सबसे प्रथम बात भागवत धर्म मनुष्य मात्र का धर्म है। यह इस धर्म की महत्ता है कि बड़े-बड़े विघ्न भी भागवतधर्मावलम्बी को चलायमान नहीं कर सकते हैं। यह वो सुगम राजपथ है, जिस पर अन्धाव्यक्ति भी स्खलन-पतन के भय से मुक्त होकर दौड़ते हुए जा सकता है।

नेत्रनिमीलन से तात्पर्य जिसे श्रुति-स्मृति दोनों का ही ज्ञान नहीं है, ऐसी स्थिति में उससे यदि किसी विधि-विधान का अतिक्रमण भी हो जायेगा तो भी दोष न लगकर उसे फलप्राप्ति ही होगी।

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ।

(भा.माहा. २/६७)

वेद-उपनिषद वृक्ष ठहरे और श्रीमद्भागवत गलित मधुर फल।

फल की मधुरता, उपयोगिता को वृक्ष कभी प्राप्त नहीं कर सकता है। इसी कारण कहीं-कहीं स्मृतियों से विरोध भी देखा गया है। स्वयं श्री भगवान् ने किया –

यथा स्मृति-ग्रन्थों में समुद्र यात्रा का निषेध किया गया है किन्तु भगवान् श्रीरामने समुद्र पार सेतु निर्माण कर समुद्र यात्रा की एवं भगवान् श्रीकृष्णने तो समुद्र में ही द्वारका का निर्माण कराके निवास किया।

देश, काल परिस्थितियों के अनुसार स्वयं भगवान् ने भी स्मार्त-मर्यादा को स्वीकार नहीं किया (सभी धर्मों को छोड़कर 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' मात्र वैष्णव धर्म का समर्थन किया)।

धन्य है, यदि स्मार्त मर्यादा को मानकर सेतु निर्माण कर समुद्र यात्रा न करते तो पापिष्ठ रावण का वध कैसे होता? भगवान् श्रीकृष्ण यदि द्वारका का निर्माण करा समुद्र-निवास न करते तो दुष्ट कालयवन का वध कैसे होता? अतः धर्म को प्रधान रखते हुए, स्मार्त मर्यादा के विरुद्ध आचरण करते हुए भी भगवान् को देखा गया है।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः सः पन्थाः ॥

(महाभारत, वन पर्व-३१३/११७)

तर्केऽप्रतिष्ठा श्रुतयो विभिन्नाः नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

(गरुड़ पुराण-१, १०९.५१)

भारत के कट्टर स्मार्त लोग समुद्र पार करके देशान्तरों में सनातन धर्म का प्रचार करने नहीं गये अतः निरन्तर धर्म का संकुचन ही होता रहा। इसके विपरीत बौद्धों के द्वारा विदेशों में बौद्ध धर्म का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार हुआ। परिणाम में थाइलैण्ड, बर्मा आदि सम्पूर्ण मध्य एशिया बौद्धधर्मावलम्बी हो गया।

कोई समय था, जब एक सनातन धर्म ही समग्र विश्व में था। हमारे पौराणिक इतिहास के अनुसार सातों द्वीप सनातनी थे।

श्रीमद्भागवत के अनुसार –

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ।

(भा. ९/४/१५)

सूर्यवंशी महाराज अम्बरीष सातों द्वीपों के सम्राट थे। जो परम कृष्ण भक्त थे (महाराज अम्बरीष की अनन्य कृष्णभक्ति ९/४/१८-२१ में दृष्टव्य है) अम्बरीष जी की ही भाँति उनकी सम्पूर्ण प्रजा (सप्तद्वीपों की प्रजा) भी उत्तमश्लोक भगवान् श्री हरि की कथा प्रेम से श्रवण करती तो कभी गान करती, इसके अतिरिक्त प्रजाजनों को स्वर्ग की भी कोई इच्छा नहीं थी।

मध्यएशिया में बौद्ध धर्म के प्रचार से हानि यह हुई कि अहिंसा प्रधान बौद्ध धर्मावलंबियों पर अपनी क्रूरता, कट्टरता, हिंसा प्रधान वृत्ति के लिए कुख्यात यवनों ने धर्मान्तरण कराके उन्हें यवन बना डाला।

भारत में क्या-क्या कहर बरसाया गया था।

क्रूरकर्मा फिरोजशाह तुगलक के समय में हिन्दू पुजारी व प्रचारकों को जीवित ही आग में फेंक दिया जाता था। बाबर का पूर्वज तैमूर लंग तो ९० हजार सैनिक लेकर मेरठ, हरिद्वार, शिवालिक, नगरकोट व जम्मू तक मन्दिरों-मूर्तियों का भंजन व इस्लाम न स्वीकार करने वाले हिन्दुओं का कत्लेआम करता रहा।

बुद्धदेव नामक हिन्दू धर्म प्रचारक का मस्तक धड़ से अलग कर दिया था। सिक्खों के पंचम गुरू श्री अर्जुनदेव को क्या कम अमानुषिक यातनाएं दी गयीं, धधकते अंगारों पर बिठाया गया, ऊपर से जलती हुई बालू बरसाई गई, इतना ही नहीं, गाय की ताजी खाल खींचकर उसमें लपेटकर सिलने का उपक्रम भी किया गया और नवम गुरू श्री त्यागराय (तेग बहादुर) पर क्रूर मुगल औरंगजेब के अत्याचार आज भी हृदय में प्रतिकार की ज्वाला को भड़का देते हैं। लोहे के गर्म खंबे से चिपकाया जाना, जलती हुई बालू बरसाना और अन्त में धड़ से मस्तक अलग कर दिया जाना, क्या यह मनुष्यों का कार्य हो सकता है? दशम गुरू गोविन्द सिंह के दो पुत्र जोरावरसिंह व फतेह सिंह को इस्लाम धर्म स्वीकार न करने पर जीवित ही दीवार में चिन दिया गया। कहाँ तक करें इन क्रूरों की असच्चर्चा, भारत भूमि के तो बलिदानियों की नामावली से ही एक नया ग्रन्थ बन सकता है।

बौद्धों पर भी इन नरपिशाचों का कहर कुछ कम नहीं था। अभी कुछ समय पूर्व ही बामियान, मध्य एशिया में संसार की सबसे विशाल बुद्ध मूर्ति को तोड़ा गया और धर्मान्तरण की परम्परा तो अब तक जीवन्त है।

संकीर्णताओं ने इतना दुर्बल कर दिया हिन्दू समाज को कि कश्मीर के महाराज ने घोषणा की, जिन हिन्दुओं का बलात् धर्मान्तरण करा मुसलमान बनाया गया है, वे पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार कर सकते हैं किन्तु इस पर काशी के विद्वत्समाज ने ही विद्रोह खड़ा

कर दिया कि अब उन्हें स्वीकार नहीं किया जायेगा। ऐसे वेदज्ञान से बहुत बड़ी हानि हुई इस राष्ट्र व धर्म की।

भूल गये अपने ऋषियों का आचरण –

सरस्वत्यज्ञया कण्वो मिश्र देशमुपाययो ।
म्लेच्छान् संस्कृत्यं चाभाष्य तदा दश सहस्रकम् ॥

(भविष्यपुराण ४/२१/१६)

सरस्वती की आज्ञा से महर्षि कण्व मिस्र देश गये और वहाँ दस हजार म्लेच्छों को उन्होंने सुसंस्कृत बनाया। जो शुद्ध व पवित्र होकर भारत लौटना चाहते थे उन्हें पुनः स्वीकार कर लिया गया।

महाराष्ट्र के 'चितपावन ब्राह्मण' आज महान वेदज्ञ माने जाते हैं, जो वंशानुगत यहूदी और मिस्र देश के आसपास से आये हुए हैं। इसी प्रकार ईरानी, शक, हूण, मग एवं यहूदी आदि अनेक जातियों ने हिन्दू संस्कृति को अपनाया और उन्हें ऋषियों द्वारा स्वीकार किया गया।

स्मृति में भी स्त्री समर्थन –

आज हठधर्मिता के कारण मनुष्य इतना अन्धाहो गया कि श्रुति-स्मृति धर्मों के सिद्धान्त भी यथार्थ रूप से न समझते हुए मात्र दुराग्रह में ही पड़ा हुआ है।

ध्यान रहे, सबसे प्रमुख स्मृति शास्त्र तो श्रीमद्भगवद्गीता ही है। जहाँ स्वयं श्री भगवान् ने कहा है –

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

(गी. ९/३२)

पापयोनि होते हुए भी स्त्री, वैश्य और शूद्र सर्वथा मेरे शरणागत होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

कहाँ है स्मृति में स्त्रियों का बहिष्कार।

स्मृति-शास्त्र का अन्तिम उद्घोष है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८/६६)

सभी धर्मों को त्याग कर मेरे शरणागत हो जाओ। सर्वधर्मान् से वैदिक धर्म, श्रुति धर्म, स्मृति धर्म, सबका ग्रहण हो जाता है।

क्यों हुआ वैष्णव धर्म सर्वश्रेष्ठ?

श्री भागवत धर्म में नहीं है विषमता –

नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ।
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥
एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ।
साधवे शुचये ब्रूयाद् भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥

(भा.११/२९/३०, ३१)

श्रीभगवान् का आदेश है – दाम्भिक, नास्तिक, शठ, अश्रद्धालु, भक्तिहीन एवं अविनीत पुरुष को यह उपदेश कभी मत देना। जो इन दोषों से रहित ब्राह्मण भक्त हो, प्रेमी हो, साधु-स्वभाव हो और पवित्र चरित्रवान हो उसी को यह उपदेश सुनाना चाहिए। मेरे प्रति प्रेम रखने वाले स्त्री, शूद्र भी हैं तो उन्हें अवश्य ही यह उपदेश करना चाहिए।

नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आ वटुभ्यः ।
ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥

(भा. ५/१३/२३)

शिशु हो, युवा हो, क्रीड़ारत बालक हो अथवा ब्रह्मज्ञानियों में वयोवृद्ध हो वह पूज्य है। इससे विपरीत भक्तिहीन पुरुषों को भागवत में अधिकार नहीं है और ऐसे ही लोग "मन क्रम बचन लबार तेहि वक्ता कलिकाल महँ।।" आजकल वक्ता बनकर संकीर्णता का प्रसार कर रहे हैं जबकि भगवान् वेद व्यास ने वैदिक संकीर्णताओं के उन्मूलन हेतु भागवत-धर्म का प्राकट्य किया। श्रौत, स्मार्त धर्मों में अवश्य स्त्री, शूद्र का बहिष्कार है किन्तु वैष्णव धर्म में इस संकीर्णता को कोई स्थान नहीं है। मेहा धीमर की स्त्री जीवाबाई एवं रजोदर्शन 'सद्या प्रसूता' में वारमुखी का रंगनाथ को मुकुट धारण कराना क्या प्रमाण नहीं है?

श्रीमद्भागवत में उत्तरा के गर्भ में भगवान् का प्रवेश भी परम प्रमाण है। भक्तिहीन पुरुष ही श्री भगवान् और श्री मद्भागवत पर भी अपने संकीर्ण विचार आरोपित करते हैं। उन्हें भगवान् के ये वाक्य भी समझ में नहीं आते हैं।

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥

(भा.११/१४/२१)

श्री भगवान् के वचन – मैं सन्तों का प्रिय और आत्मा हूँ, मेरी प्राप्ति श्रद्धा व अनन्य भक्ति से ही होती है। मेरी अनन्य भक्ति में यह सामर्थ्य है कि वह जन्मजात चाण्डाल को भी अत्यन्त पवित्र बना देने वाली है।

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥

(भा.११/१४/२२)

भक्तिहीन को सत्य, दया, तपस्या एवं विद्या भी भलीभाँति पवित्र नहीं कर सकेगी, इस दृष्टि से तो संकीर्ण विचारकों से भक्तियुक्त चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। अनन्यता का दावा करने वाले भक्त नहीं, भगवद्-द्रोही हैं। स्वयं भगवान् श्रीराम ने शबरी के प्रति कहा –

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई ।
धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा ।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥

(रा.च.मा.अरण्य. ३५)

भक्तिहीन मनुष्य जलहीन बादल की भाँति शोभाहीन है। भक्ति में जातिगत विषमता का कोई स्थान नहीं है।श्रीमद्भगवद्गीता में भी तो भगवान् ने कहा –

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

(गी. ९/३०, ३१, ३२)

संसार में जितनी भी पाप योनियाँ हैं, ये सभी परागति प्राप्त कर लेती हैं। संकीर्ण लोगों को चाहिए कि वे ठीक से भागवत-धर्म समझें, विषैली आलोचनाओं के द्वारा समाज को विषमता का विष न पिलाएं। स्वयं भगवान् ने (भा. ६/१६/४१, ४२) में जो भागवतधर्म का उपदेश किया है, क्या आलोचक वक्ताओं को ये सिद्धान्त दिखाई नहीं पड़ते? क्या दिवा-उलूक हैं?

कहाँ है भागवत धर्म में विषमता –

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥
न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥

(भा.११/२/५१, ५२)

न वर्णाश्रमगत भेद है, न जातिगत भेद ही, न जन्मगत भेद है, न कर्मगत।

यहाँ तक कि देह-धर्मों का भी भेद नहीं है। ऐसा सर्वभूत शम ही उत्तम भागवत है।

श्रौत-स्मार्त धर्म की कट्टरता को नासमझ लोग भागवतधर्म में घटाने लगते हैं। भक्तमाल से वारमुखी की कथा इन्हें सुनाई जाए तो आनन्द के स्थान पर अपार कष्ट ही होगा।

भक्त रविदास, श्वपच वाल्मीकि आदि की कथा सुनने से तो प्राणान्त ही हो जाएगा।

मात्र शुद्ध भक्तों को ही इन चरित्रों के कथन, श्रवण से आनन्द की प्राप्ति होगी अन्य तो कुतर्कों के मकड़जाल में ही फँसे रहेंगे।

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥

(भा.२/६/४०)

श्री ब्रह्मा जी ने कहा – नारद! शान्त अन्तःकरण, इन्द्रियाँ एवं शरीर से ही उस परम तत्त्व का साक्षात्कार किया जा सकता है।

असत् पुरुषों के द्वारा कुतर्कों का बिछा हुआ जाल तो उसे ढक ही देता है।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

(गी. ९/३)

श्री भगवान् ने कहा – ऐसे श्रद्धा रहित लोग मुझे प्राप्त न करके मृत्यु रूप संसार चक्र में ही भटकते रहते हैं। जिस समय गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक गो हत्यारे को भगवन्नाम से शुद्ध कर अपने साथ भोजन कराया, उस समय रुष्ट होकर काशी के विद्वत् समाज ने उन्हें बहिष्कृत कर दिया जबकि श्रीमद्भागवत में शुकाचार्य का कथन है कि

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान् ।
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥

(भा.६/१३/८)

ब्राह्मण, पिता, गो, माता, आचार्य की हत्या करने वाले महापापी भी भगवन्नाम-संकीर्तन से शुद्ध हो जाते हैं।

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ।
दृष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥

(भा.६/१३/७)

एक ब्राह्मण और गो का वध करने वाला ही नहीं सम्पूर्ण संसार का वध करने वाला महापातकी भी भगवद्-आराधन से पातक-मुक्त हो जाता है। संकीर्ण, नास्तिक, अश्रद्धालु जन इन सिद्धान्तों को कभी नहीं समझ सकते, भले आजीवन कथा कहें अथवा सुनें।

इनका कथा-कथन मेढकों की ध्वनि की भाँति ही है।

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई ।
बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥

(रा.च.मा.किष्कि.१५)

श्रीमद्भागवत का अन्तिम उद्घोष है –

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

(भा. १२/१३/२३)

भगवन्नाम से सर्वपाप अर्थात् सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं।

क्या सर्वपाप में रजोदर्शन रूप ब्रह्महत्या की शुद्धि नहीं होगी?

"स्त्री को कथा कहने का अधिकार नहीं"

इस प्रकार की बातें भागवतधर्म के प्रति अश्रद्धा, अविश्वास को प्रकट करती हैं।

वैष्णव धर्म ने वैदिक धर्म मर्यादाओं के तट बन्धनों को तोड़कर भगवन्नाम की सबको अधिकारिता प्रदान की, जिससे विश्व में शान्ति व सद्भाव की वृद्धि हुई।

धन्य हैं वे धर्मप्रचारक व धर्म प्रचारिणी संस्थाएं जिनके द्वारा सम्पूर्ण विश्व में भगवन्नाम रूप वैष्णवधर्म का प्रचार-प्रसार हुआ व हो रहा है।

धन्य हैं श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद जी व उनका अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ (ISKCON), जिसके द्वारा सम्पूर्ण विश्व भर में भगवन्नाम-वैष्णवधर्म की अलख जागी।

यही है श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु जी की सच्ची सेवा। सनातन धर्म अन्य संस्कृतियों की भाँति नारी शक्ति को धकेलने, कुचलने वाला धर्म नहीं है। यहाँ तो नारी को साक्षात् ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है, सम्पूर्ण सृष्टि की उद्भव, स्थिति व संहारकारिणी आद्यशक्ति को पराशक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

मीरा, करमैती, रत्नावती ही नहीं दक्षिण में आण्डा (रंगनायकी), आवडयक्काल, इस्लाम में ताज, रबिया, हसीना-हमीदा एवं विदेश की डॉ. एनी बेसेंट, जिनका जन्म आयरलैण्ड व लालन-पालन इंग्लैण्ड में हुआ किन्तु भारत को जन्मभूमि मानने वाली यह महिला सनातन धर्म से बहुत प्रभावित थी। इसी प्रकार रूस की एच.पी.ब्लेवास्तकी, इटली की फ्लोरेन्स, साध्वी मेरी मगडालेन, अवीलाका ओल्ड केसराइल की कुमारी टेरसा, हंगरी की साध्वी एलिजाबेथ, अलक्जेन्डरिया (मिश्रदेश) की देवी सिंक्लेटिका, सायेना, इटली की साध्वी कैथेरीन ....आदि विदेशी महिलायें नारी शक्ति को ब्रह्मरूप में देखने वाली भारतीय संस्कृति से प्रभावित थीं।

जहाँ वैष्णवधर्म ने नारी-शक्ति को इतना सम्मान दिया, वहीं स्मार्त धर्म ने नारी शक्ति को बाँध दिया।

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥

(भा. ७/९/३८)

देश, काल, परिस्थिति के अनुसार धर्म में जो परिवर्तन आता है, उसे ही युगानुवृत्त कहा गया है।

वैष्णव धर्म युगानुवृत्त धर्म है किन्तु इसका अर्थ मनमानेपन को धर्म के रूप में सिद्ध करना नहीं है। स्वतन्त्रता है, किन्तु स्वच्छन्दता नहीं। अपने देश व धर्म को सशक्त व समृद्ध बनाने के लिए सम्पूर्ण नारी शक्ति को आगे आना चाहिए।

हमारी आर्य संस्कृति में नारी ही माता के रूप में प्रथम गुरु है। यदि नारी शक्ति प्रबुद्ध होगी तो देश प्रबुद्ध होगा। नारी शक्ति प्रबुद्ध होगी तो प्रत्येक बालक का भविष्य उज्जवल होगा। आलोचकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि किसी स्त्री में सनातन भागवत धर्म का प्रचार करने की क्षमता है तो उसका विरोध करने से निश्चित ही वे भगवद् कोप के भाजन होंगे।

भूलो मत एक रत्नावती के अपराध से सिंह रूप में आये साक्षात् नृसिंह द्वारा आलोचकों को उचित दण्ड प्राप्त हुआ और एक मीरा के अपराध से सारा चित्तौड़ त्राहि-त्राहि करने लगा था।

"छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम्"

(भा. ३/१६/६)

वैष्णवापराध तो यदि उनकी (भगवान् की) अपनी चिन्मयी भुजा भी करती है तो वे उसे भी दण्डित करेंगे।

दूरे हरिकथाः केचिद् दूरे चाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ॥

(भा. ११/५/४)

स्त्री, शूद्र तो विशेष दया के पात्र हैं क्योंकि बार-बार धकेले जाने से ये कथा-कीर्तन से दूर हो गये हैं अतः इनके कथा-कीर्तन की सुविधा का अवश्य ध्यान रखा जाये।

स्वयं जगद्गुरू भगवान् श्रीकृष्ण इस सिद्धान्त के पोषक हैं।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

(गी. ९/३२)

स्त्री हो अथवा शूद्र, वैष्णव धर्म में सबका समान अधिकार है। परागति की प्राप्ति के सब अधिकारी हैं। यही सिद्धान्त गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी से भी स्पष्ट हुआ है –

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न ।

(रा.च.मा.बाल. १८)

'गिरा' शब्द स्त्रीलिंग है व 'अरथ' पुल्लिंग, पुनः 'जल' पुल्लिंग है व 'वीचि' स्त्रीलिंग। कहने-सुनने में भेद है, स्वरूपतः दोनों का अभेद ही हैं।

फिर बिना शक्ति के कोई उपासना पूर्ण नहीं होगी। भगवान् शिव को अर्द्धनारीश्वर कहा गया। वैष्णवों में भी युगल (शक्ति एवं शक्तिमान) उपासना है।

लक्ष्मी-नारायण, राधा-कृष्ण, सीता-राम, उमा-महादेव ....आदि।

भागवत धर्म अथवा वैष्णव धर्म की उदारता –

सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ।
रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ ॥

(भा. ११/१२/३, ४)

दैत्य-राक्षस, पशु-पक्षी, गन्धर्व-अप्सरा, नाग-सिद्ध, चारण-गुह्यक, विद्याधर, मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्री और चाण्डालादि, राजसी-तामसी प्रकृति के अनेक जीवों ने परमपद की प्राप्ति की। जैसे – वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्म व्याध, कुब्जा, ब्रजगोपीजन, यज्ञपत्नियाँ आदि।

श्री उद्धव जी के वचन –

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥

(भा. १०/४७/५९)

ये वनचरी ब्रजगोपीजन जो व्यभिचार से दूषित, ज्ञान एवं जाति से भी हीन हैं किन्तु धन्य है श्रीकृष्णमें इनके अनन्य प्रेम को।

इससे सिद्ध होता है कि भगवान् से प्रेम करने के लिए आचार, जाति और ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती है। भला, अमृत पीने में भी आचार, जाति और ज्ञान की क्या अपेक्षा?

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥

(भा. १०/२३/३९)

और इसके विपरीत श्रीकृष्णविमुखता में उच्च कुल, ज्ञान, यज्ञ, व्रतादि की भी सार्थकता नहीं है।

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥

(भा. १०/४७/५८)

श्री उद्धव जी ने श्रीकृष्णमें प्रेम होने से वनचरियों का जीवन ही सफल व श्रेष्ठ माना। इससे रहित होने पर तो ब्रह्मा का जन्म भी व्यर्थ है।

जितमजित तदा भवता यदाऽऽह भागवतं धर्ममनवद्यम् ।
निष्किञ्चना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥

(भा. ६/१६/४०)

स्वयं भगवान् के श्रीमुख से कथित भागवत धर्म अनवद्य अर्थात् विषमता के दोष से रहित सर्वोच्च धर्म है।

विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ।
विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥

(भा. ६/१६/४१)

यह धर्म "यह मैं", "यह मेरा", "यह तू", "यह तेरा", "यह स्त्री", "यह पुरुष" के दुराग्रह से रहित सर्वथा शुद्ध है।

अन्य जिस धर्म में इस प्रकार का दुराग्रह है, वह अशुद्ध, नष्ट होने वाला अधर्म ही है।

पुरुष ही कथा कह सकता है, स्त्री को कथा कहने का अधिकार नहीं है, भागवत धर्म की दृष्टि में इस प्रकार की विषम बुद्धि की बात अधर्म ही है।

न व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ।
स्थिरचरसत्त्वकदम्बेष्व पृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥

(भा. ६/१६/४३)

भागवत धर्म में तो अचर-सचर भी समान हैं फिर स्त्री-पुरुष का भेद कि पुरुष ही कथा कहने के अधिकारी हैं, स्त्री नहीं, ये सभी मनमाने सिद्धान्त भागवत धर्म के सर्वथा विरुद्ध हैं।

यन्नाम सकृच्छ्रवणात् पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥

(भा. ६/१६/४४)

एक बार भगवन्नाम श्रवण मात्र से चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है, यह भागवत धर्म की सामर्थ्य है।

यह सामर्थ्य तो न वैदिक धर्म में है, न स्मार्त धर्म में। वेद और स्मृति के धर्म तो स्त्री, शूद्र को एक ओर करके चलते हैं।

किन्तु भागवत धर्म –

बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट?
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा की कोट ॥
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट ।
बड़ी है कृष्ण नाम की ओट ।

(सूर विनय पत्रिका-१४१)

भक्त रविदास ने जिस समय मूर्ति-पूजा आरम्भ की तो काशी के विद्वानों ने विरोध किया, राजा से शिकायत की – महाराज! रैदास का यह कर्म स्मृति धर्म के सर्वथा विरुद्ध है।

स्मृतौ –

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यपूजा व्यतिक्रमात् ।
तत्रस्तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥

अर्थात् जहाँ पूज्य की पूजा न करके अपूज्यों की पूजा होती है, वहाँ दुर्भिक्ष, मरण व भय सदा ही रहता है।

रैदास को मूर्ति पूजा का कोई अधिकार नहीं है। प्रथम तो राजा ने रैदास जी को भय दिखाया, अनन्तर परीक्षा के लिए यह निश्चय किया गया कि भगवान् को यहाँ सिंहासनासीन कर दिया जाये, उन्हें यदि रैदास की पूजा प्रिय होगी तो रैदास की गोद में आ जाएंगे और ब्राह्मणों की पूजा प्रिय होगी तो उनकी गोद में चले जाएंगे। ब्राह्मणों को यह अभिमान था कि हमें छोड़कर भला शूद्र के पास भगवान् क्यों जाने लगे अतः सबसे पहले ब्राह्मणों ने मृगचर्म, बाघम्बर पर बैठकर यज्ञादि किया, स्तोत्रों से आवाहन किया, किन्तु बहुत प्रयास के बाद भी मूर्ति हिली तक नहीं किन्तु रैदास जी को दण्डकारण्य के ऋषियों को छोड़कर, प्रभु का शबरी के आश्रम में जाना स्मरण था।

विरद हेतु पुनीत परिहरि, पाँवरन सों प्रीति ।

(तुलसी विनय पत्रिका-२१४)

श्री रैदास जी ने भावाभिभूत होकर यह पद गाया –

हे हरि आवहु वेगि हमारे ।
जैसे आये द्रुपद सुता के, गज के व्याज सिधारे ॥
ज्यों प्रह्लाद हेतु नरहरि है, प्रगटे बज्र खम्ब को फारे ।
पति राखो 'रैदास' पतित की, दशरथ राज दुलारे ॥

पद पूर्ण होते ही ससिंहासन भगवान् श्री रैदास जी के हृदय से जा लगे।

जाति भी ओछी, करम भी ओछा, ओछा वसब हमारा ।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है, कहै 'रैदास' चमारा ॥

श्री प्रह्लादजी के वचन –

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः ।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥

(भा. ७/७/५१)

अतः श्री प्रह्लाद जी ने कहा – हे असुर बालको! भगवान् को प्रसन्न करने के लिए न ब्राह्मण होना आवश्यक है, न देवता और न ऋषि होना ही।

सदाचार, बहुज्ञता, दान, तप, यज्ञ, शारीरिक-मानसिक पवित्रता एवं बड़े-बड़े व्रतानुष्ठानों की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

वेदमर्यादा सीमित है किन्तु वैष्णव मर्यादा बहुत उदार है।

नांचत, नाऊ, भाट, जुलाहौ, छीपा नीकै गावत ।
पीपा अरु रैदास विप्र जयदेव सुभलैं रिझावत ।
नाचत गावत हरि सुख पावत ।

(व्यास वाणी-२०९)

कृष्णावतार केवल ब्राह्मणों के लिए तो हुआ नहीं, गोपीजनों ने कहा –

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।

(भा. १०/३१/१८)

यह अवतार विश्वमंगल के लिए हुआ है अतः यहाँ तो कान्हा भंगी के साथ भी क्रीड़ा हुई है।

श्री ब्रह्मा जी ने भी कहा –

तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय ।
ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ।

(भा. ३/९/४)

निराकार सत्ता का साकार होने का कारण ही था – भुवनमंगलमंगलाय।

भगवान् का यह रूप सम्पूर्ण संसार के मंगल के लिए प्रकट हुआ फिर भुवनमंगल में क्या स्त्री-शूद्र का मंगल नहीं है?

जन्मजात अपवित्र वह चाण्डाल भी ब्राह्मण से श्रेष्ठ है, जिसने भगवान् में सर्वात्म समर्पण कर दिया है किन्तु सर्वात्म समर्पण करने वाला चाण्डाल कहाँ मिलेगा?

अरे भाई, यूं तो ऐसा कोई ब्राह्मण भी नहीं मिलेगा, जो सभी आर्य वैदिक मर्यादाओं का पालन कर रहा हो, आंशिक वैदिक धर्म का पालक भी जब याज्ञिक और पण्डित माना जाता है तब आंशिक भक्ति भी जिसमें है, वह क्या भक्त नहीं है?

साधक भक्त भी तो भक्त ही है।

गोस्वामी जी ने यहाँ तक कहा –

'तुलसी' जाके मुखन तें धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पगतरी मोरे तन को चाम॥

अथवा

साधन सिद्धि राम पग नेहू।

(रा.च.मा.अयो. २८९)

श्री भगवान् के वचन –

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गी. ९/३०)

जो आज आंशिक भक्ति कर रहा है, वह कल निश्चित ही सिद्धा भक्ति की स्थिति पर भी पहुँचेगा फिर भक्ति की प्राप्ति तो जप, योग व अनेकों धर्मानुष्ठानों का परम फल है।

जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई॥

(रा.च.मा.अरण्य. ६)

श्रीमद्भागवत वैष्णव ग्रन्थ है। वेदवृक्ष का फल होते हुए भी यह कर्मप्रधान नहीं है अतः –

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्॥

(भा. ७/७/५२)

श्रीमद्भागवत का इसी दृष्टि से अध्ययन व अनुशीलन होना चाहिए। यदि यहाँ भी कर्मप्रधान दृष्टि रही तो फिर श्रेष्ठ कर्मकाण्डी कर्मविद् ब्राह्मणों की भाँति पश्चाताप ही हाथ

लगेगा। कर्मकाण्ड से यदि ब्राह्मण कृतार्थ हो जाते तो अपने कुल, पवित्रता, वेदाध्ययन को क्यों धिक्कारते?

क्या उनकी याज्ञिकता में भी कोई संदेह था?

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ।
भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥

(भा. १०/२३/४९)

वे कर्मकाण्डी विप्र कृतार्थ हुए भक्ता स्त्रियों को प्राप्त करके।

"सहज अपावन नारि" में बड़े-बड़े वेदपाठी, याज्ञिकों को पवित्र करने की सामर्थ्य आ जाती है।

स्मार्त धर्म अपने स्थान पर ठीक है किन्तु भागवत धर्म में सभी धर्मों का प्रतिवाद हो जाता है, इसके अनेक उदाहरण हैं।

गर्भ से अधिक घृणित व निन्दित स्थान दूसरा क्या होगा किन्तु –

मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन ।
ददर्श पुरुषं कञ्चिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥

(भा. १/१२/७)

परीक्षित की रक्षा के लिए भगवान् ने गर्भ में प्रवेश भी किया।

वह भी शक्ति और प्रकाश रूप से नहीं अपितु साक्षात् साकार विग्रह से।

गर्भस्थ शिशु ने देखा –

अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ।
अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥

(भा. १/१२/८)

अंगुष्ठ भर आकार है, सुन्दर श्याम शरीर पर विद्युतवत् चमकता पीताम्बर एवं मस्तक पर झिलमिलाता स्वर्णिम किरीट शोभायमान है।

वैष्णवधर्म में तो एक ही विधि व एक ही निषेध है –

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् ।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः ॥

(पद्म.पु.उत्तर खण्ड पुर्वार्द्ध, पार्वती-शिव सम्वाद-७१/१००)

भगवद् स्मरण रूप विधि व भगवद् विस्मरण रूप निषेध के अन्य समस्त विधि-निषेध दास हैं।

कर्मकाण्ड में भी देखें तो नाम स्मरण से ही शुद्धि है।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यान्तरः शुचिः ॥

(प.पुराण.पाताल खण्ड.८०/११)

भागवत धर्म तो इतना विशाल है कि नाम के श्रवण या स्मरण मात्र से कुकुर-मांसभोजी श्वपच को न केवल सोमयाग की योग्यता प्राप्त होती प्रत्युत वह ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ हो जाता है।

नोट – सोमयाग एक यज्ञ विशेष है, जिसे ब्राह्मण ही कर सकता है। यह यज्ञ करने के लिए एक वर्ष सोमलता का रसपान, दूसरे वर्ष कन्दमूल का सेवन एवं तीसरे वर्ष केवल जलपान का विधान है किन्तु नाम श्रवण, उच्चारण व स्मरण की ऐसी महिमा है कि श्वपच भी सोमयाग की अधिकारिता सहज ही प्राप्त कर लेता है।

माता देवहूति जी के वचन –

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥
अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥

(भा. ३/३३/६, ७)

स्वपचहु स्रेष्ठ होत पद सेवत, बिनु गोपाल द्विज जनम न भावै ॥
सोइ भलौ जो स्यामहि गावै ।

(सूर विनय पत्रिका-१४२)

शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्ज्जाति कल्मषः ।
श्वपाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो, न वेदाढ्योऽपिनास्तिकः ॥
भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्र जपस्तपः ।
अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम् ॥

(हरिभक्ति सुधोदय ३/११)

भगवद्भक्तिविहीन ब्राह्मण का उत्तम कुल, वेदाध्ययन, मन्त्रजप एवं तपस्यादि समस्त शव के श्रृंगार की भाँति लोक-रंजन मात्र ही है।

शास्त्रों में यह सिद्धान्त जगह-जगह स्थापित है, जिसके अनेक उदाहरण हैं। श्रीमच्चैतन्य देव के जीवन में पग-पग पर अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस पर दृष्टव्य है – चैतन्य चरितामृत।

सहज अपावनि नारि की ब्रह्मरूपता –

बहुधा लोग सनातन धर्म की आलोचना करते देखे जाते हैं। इस धर्म में नारी का सम्मान नहीं कर अत्यधिक निन्दा है जबकि सनातन धर्म में ही नारी को ब्रह्म रूप में स्वीकार किया गया है।

ध्यान रहे, सनातन धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी धर्म ने आज तक भगवान् को स्त्री रूप में एवं स्त्री को भगवान् के रूप में नहीं देखा; यहाँ ही भगवान् मोहिनी बनते हैं और दैवी पुराण में स्वयं शक्ति का कृष्ण रूप में जन्म लेने की कथा वर्णित है।

श्री शिव उवाच –

यदि मे त्वं प्रसन्नासि तदा पुंस्त्वमवाप्नुहि ।
कुत्रचित्पृथिवीपृष्ठे यास्येऽहं स्त्रीस्वरूपताम् ॥

(दे.पु. ४९/१६)

श्री शिव जी ने कहा – हे देवि! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो पृथ्वी पर कहीं भी पुरुष रूप से अवतरित हों और मैं स्त्री रूप से अवतीर्ण होऊँगा।

श्री देव्युवाच –

भविष्येऽहं त्वत्प्रियार्थं निश्चितं धरणीतले ।
पुंरूपेण महादेव वसुदेवगृहे प्रभो ।
कृष्णोऽहं मत्प्रियार्थं स्त्री भव त्वं हि त्रिलोचन ॥

(दे.पु. ४९/१६)

भगवती ने कहा – हे महादेव! आपकी प्रसन्नता के लिए मैं अवश्य ही वसुदेव के घर श्रीकृष्णके रूप में जन्म लूँगी और हे त्रिलोचन मेरी प्रसन्नता के लिए आप भी स्त्री रूप में जन्म लें।

ततः समभवद्देवी देवक्याः परमः पुमान् ।
अष्टम्यामर्धरात्रे तु रोहिण्यामसिते वृषे ॥

(दे. पु. ५०/६५)

तत्पश्चात कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र वृष लग्न अर्ध रात्रि के समय भगवती ने देवकी के गर्भ से परम पुरुष के रूप में अवतार ग्रहण किया।

अतः देवीभागवत में भी वर्णन है –

या सा भगवती नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी ।
परात्परतरा देवी यया व्याप्तमिदं जगत् ॥

(देवी भागवत २/३६)

श्री भगवान् की ही भाँति भगवती भी षडैश्वर्य सम्पन्ना सच्चिदानन्द रूपिणी परात्पर तत्त्व है, जिस प्रकार ब्रह्म अपनी चिति शक्ति से सर्वव्यापी है उसी प्रकार भगवती भी जगत के कण कण में व्याप्त है अतः भगवती को भी ब्रह्म कहा गया। नारी शक्ति का इससे अधिक क्या सम्मान हो सकता है? यह ब्रह्मरूप ही सभी अवतारों का आदिकारण है –

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥

(भा. ३/९/२)

श्री ब्रह्मा जी ने कहा – ब्रह्म का यह रूप तत्त्व की दृष्टि से अवबोध अर्थात् ज्ञानमय है एवं उपासकों की दृष्टि से वह रस रूप है।

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥

(भा. ५/१२/११)

श्री जड़भरत जी ने कहा – न इसके भीतर कोई है न बाहर ही, भीतर बाहर का भाव तो वहाँ होता है जहाँ किसी वस्तु में प्रथकता होती है फिर सब कुछ तो वही है वही भीतर है वही बाहर भी। उसे ही भगवान् कहा गया है एवं उसे ही वासुदेव भी कहा गया है। ब्रह्मा जी ने उसे तात्विक दृष्टि से ज्ञानमय और आस्वाद्यदृष्टि से रसरूप कहा।

नातः परं परम यद्भवतः
स्वरूपमानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्
भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥

(भा. ३/९/३)

ब्रह्मा जी ने कहा – हे प्रभो! आपके स्वरूप का मैं दर्शन कर रहा हूँ। आपका तेज जो आनन्द मात्र है, अविकल्प अर्थात् भेद रहित है और उसका तेज अविद्ध है अर्थात् अखण्डहै, यह वही स्वरूप है जो अनन्त संसार की रचना करने वाला है अर्थात् यही निराकार है और यही साकार भी। अनन्तानन्त प्राण, बुद्धि, इन्द्रियों का आधार भी यही है, श्री शंकराचार्य जी के 'गोविन्दाष्टक' से भी यही स्पष्ट होता है –

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशम्
गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम् ।
मायाकल्पितनानाकार मनाकारं भुवनाकारम्
क्ष्माया नाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥

अनन्त आकार भी वही है और निराकार भी वही है। भुवनाकार अर्थात् अनन्त संसार के रूप में भी वही है, वेदों ने भी इसकी पुष्टि की –

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३/१९)

वह बिना चरण के चलता है, बिना हाथ के पकड़ता है, अचक्षु होकर देखता है और अकर्ण होकर भी सुनता है।

भागवत वक्त्री : पराम्बा लक्ष्मी –

भगवान् नारायण कथा कहते हैं तो एक मास कथा चलती है एवं लक्ष्मी जी कहें तो पूरे दो मास कथा चलती है। इससे अधिक पुष्टि का और क्या प्रमाण हो सकता है?

यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता ।
तदा भागवतश्रावो मासेनैव पुनः पुनः ॥
यदा लक्ष्मीः स्वयं वक्त्री विष्णुश्च श्रवणे रतः ।
मासद्वयं रसास्वादस्तदातीव सुशोभते ॥

(स्कन्दपुराणान्तर्गत भा.महा.३/३५, ३६)

जहाँ तक स्त्री की दैहिक अपावनता के कारण उसे वैदिक व स्मार्त धर्मों से बहिष्कृत किया गया है, ऋतुकाल में वह वैदिक कार्यों को करने के योग्य नहीं है किन्तु ध्यान रहे स्त्री धर्म की यह अपावनता तो स्वयं भगवती के शरीर में भी देखी गयी है।

जिस समय शिव से परित्यक्त भगवती सती ने प्राणत्याग किया और उस निष्प्राण देह लेकर विरही शिव नृत्य करने लगे, उस समय जहाँ-जहाँ भगवती के देह-खण्ड गिरे, वे स्थान महातीर्थ और मुक्तिक्षेत्र के रूप में विख्यात हुए।

ये सभी शक्ति स्थल आज भी सिद्धपीठ के रूप में हैं; जैसे अलोपी बाग, इलाहाबाद शक्तिपीठ में हाथ की उँगली गिरी, जहाँ वे ललिता शक्ति के रूप में हैं। ज्वालामुखी में जिह्वा गिरी, वहाँ देवी सिद्धिदा के रूप में हैं। कश्मीर में कण्ठ गिरा, जहाँ वे महामाया के रूप में हैं। उज्जयनी में कुहनी गिरी, जहाँ मंगल चण्डिका के रूप में हैं एवं कामगिरि में योनिभाग गिरा जहाँ वे कामाख्या के रूप में हैं।

श्री महादेव उवाच –

पीठानि चैकपञ्चाशदभवन्मुनिपुङ्गव
अङ्गप्रत्यङ्गपातेन छम्यासला महीतले ।
तेषु श्रेष्ठतमः पीठः कामरूपी महामते ॥

(देवी पुराण शक्तिपीठांक-१२/२९, ३०)

श्री महादेव जी ने कहा – इस प्रकार सती के अङ्ग-प्रत्यङ्ग गिरने से इक्यावन शक्तिपीठ हुए जिनमें कामरूप (कामाख्या) सर्वश्रेष्ठ शक्तिपीठ है।

अङ्गेषु भगवत्यास्तु योनिः श्रेष्ठतमा याः ।
योनिरूपा हि सा देवी सर्वासु स्त्रीष्ववस्थिता ॥

(देवी पुराण शक्तिपीठांक-७७/१९)

भगवती के सभी अंगों में योनि-अंग सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि वो देवी योनिरूप में सभी स्त्रियों में अवस्थित हैं।

तत्र गत्वा महापीठे स्नात्वा लोहित्यवारिणी ॥

(देवी पुराण शक्तिपीठांक-१२/३१)

आज भी त्रिदिवसीय धर्म में कामरूप (कामाख्या) के जल में कुछ लालिमा आ जाती है, उस समय वहाँ स्नान करने से ब्रह्महत्या के पाप से भी सद्यः मुक्ति हो जाती है।

न केवल भगवती, श्रीकृष्णकी रानियों में भी सामान्य स्त्रियों के धर्म देखे गये।

स्त्री कौन?

स्त्यै शब्दसंघातयोः

(धातुपाठ १/९३५ पाणिनी व्याकरण)

शब्द तथा संघात के अर्थ में 'स्त्यै' धातु का प्रयोग होता है।

जहाँ रज व वीर्य का संघात हो, वह स्त्री है, यह नियम मानव स्त्री, देव स्त्री सबमें घटित होता है।

देवस्त्रियों में देखें –

चन्द्रमा ने गुरूपत्नी से पुत्रोत्पन्न किया तब ब्रह्मा जी ने कहा – यह ब्रहस्पति का क्षेत्रज व चन्द्रमा का औरस पुत्र है।

(स्त्यै+डट्+ङीष् = स्त्री)

इसी के अनुसार भाष्यकार 'स्त्री' शब्द का अर्थ लिखते हैं –

'अधिकरण साधना लोके स्त्री स्तायत्यस्यां गर्भं इति'

अधिकरण साधना स्त्री है, जिसमें गर्भ संघात रूप को प्राप्त हो, उसे 'स्त्री' कहते हैं।

भगवान् पतंजलि के मत से –

'स्त्यायति अस्यां गर्भं इति स्त्री'

स्त्री इसलिए कहते हैं क्योंकि उसमें ही गर्भ की स्थिति होती है।

स्त्री का अवयव - संघटन ही ऐसा है रजोदर्शन, गर्भधारण आदि के कारण उसे सहज अपावन कहा गया फिर स्त्री के रूप में वह चाहे भगवती हो अथवा श्रीकृष्णकी रानी। श्रीकृष्णके द्वारका-प्रस्थान पर हस्तिनापुर की नारियों ने परस्पर कहा –

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ।

(भा. १/१०/३०)

हे सखि! ये रानी-पटरानी धन्य हैं इन्होंने श्रीकृष्ण को प्राप्त करके अपने स्त्रीत्व को धन्य कर दिया। जो स्त्री शरीर अपास्तपेशल अर्थात् स्वतन्त्रता रहित है, निरस्तशौचं अर्थात् पवित्रता रहित है।

जब श्रीकृष्ण पत्नी भी सामान्य स्त्रियों की भाँति स्वतन्त्रता एवं पवित्रता से रहित हैं तब तो शबरी का स्वयं के लिए यह कहना उचित ही था –

अधम ते अधम अधम अति नारी ।
तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ॥

(रा.च.मा.अरण्य. ३५)

किन्तु ध्यान रहे, "सहज अपावनि नारि" को वह पवित्रता प्राप्त हुई जो स्वयं भगवान् को भी प्राप्त न हो सकी।

अधिक बढ़ावत आपते, जन महिमा रघुबीर ।
शबरी पद रज परसते शुद्ध भयो सरनीर ॥

जो सर स्वयं श्रीराम के चरण स्पर्श से भी शुद्ध न हो सका, वही शबरी के चरण स्पर्श से शुद्ध हो गया।

कहाँ गई स्त्री धर्म की अपावनता?

यही तो गोपियों के विषय में भी है –

श्री उद्धव जी ने कहा –

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।

(भा. १०/४७/५९)

कहाँ ये वनचरी, व्यभिचार से दूषित स्त्री और कहाँ इनका श्रीकृष्ण में अनन्य प्रेम और आगे उन्हीं ब्रजस्त्रियों की चरणरज-वन्दना करते हैं।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

(भा. १०/४७/६३)

जदपि यशोदा नन्द अरु ग्वाल बाल सब धन्य ।
पै या रस को पाय के, गोपी भईं अनन्य ॥

(रसखान)

गोपियाँ कहती हैं –

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥

(भा. १०/२९/४०)

संसार में ऐसी कौन स्त्री है जो श्रीकृष्ण की नरलीला से मोहित न हुई हो फिर ये देवियाँ ब्रजस्त्रियों की भला क्या समानता करेंगी?

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥

(भा. १०/४७/६०)

श्रीकृष्ण ने महारास लीला में ब्रजवल्लवियों के गले में बाँह डालकर उन्हें जो प्रेमदान किया वह तो नित्य वाम वक्ष-वासिनी लक्ष्मी को भी प्राप्त नहीं हुआ फिर पद्मगन्धा देवाङ्गनाओं को व अन्य स्त्रियों को क्या प्राप्त होगा?

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय
उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः ॥

(भा. १०/८७/२३)

बड़े-बड़े योगीजन दृढ़ योगाभ्यास द्वारा इस सुख-प्राप्ति का यत्न करते हैं, श्रुतियाँ भी इसके लिए लालायित रहती हैं, यही नहीं, नरलीला का आनन्द लेने को सिद्धियाँ भी तरसती हैं।

हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाई ।
भूप पहुनई करन पठाई ॥

(रा.च.मा.बाल. ३०६)

सीता जी ने विवाह अवसर पर समस्त सिद्धियों को बुलाया, उन्हें यह लीलानन्द का अवसर दिया एवं महाराज दशरथ के स्वागत हेतु भेजा।

सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना ।
नाकनटीं नाचहिं करि गाना ॥

(रा.च.मा.बाल. ३०९)

सभी अप्सराएं भी आईं, नृत्य-गान के लिए।

सुतन्ह समेत दसरथहि देखी ।
मुदित नगर नर नारि बिसेषी ॥

(रा.च.मा.बाल. ३०९)

पुरवासियों को तो नररूप के दर्शन में 'बिसेषी' अर्थात् ब्रह्मानन्द से भी बढ़कर आनन्द की प्राप्ति हो रही है।

यह दुर्लभ आनन्द ब्रजस्त्रियों को तो बिना किसी योगाभ्यास के प्राप्त हो गया तभी तो उद्धव जैसे ब्रह्मज्ञानी त्रिलोक पावनी भगवद्कथा का गान करने वाली उन ब्रजस्त्रियों की चरण-रज वन्दना कर रहे हैं और २-४ श्लोक रट लेने वाले, पढ़े-पढ़ाये तोता (जिनका वैष्णव धर्म पर कोई चिन्तन नहीं है) स्त्रियों को कथा-कीर्तन का अनधिकारी घोषित करते हैं। जबकि भागवत प्रणयन हुआ ही स्त्रियों के लिए।

स्त्रियों के लिए हुआ भागवत-प्रणयन

जब तक भागवत धर्म का निरूपण नहीं हुआ, व्यास जी को अपूर्णता का अनुभव होता रहा। सार्वभौम कल्याण का विचार जब तक नहीं किया जायेगा तब तक भगवान् भी है तो अपूर्णता रहेगी।

वेदों के प्रणयन से तो मात्र द्विजाति का कल्याण ही सिद्ध हो रहा था।

अतः विशेषतया स्त्री, शूद्रादि पर कृपा करने हेतु ही भागवत प्रणयन हुआ।

स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥

(भा. १/४/२५)

स्त्री, शूद्रादि जो वेद के अधिकारी नहीं हैं, उनके कल्याणार्थ श्री वेदव्यास जी द्वारा इतिहास, पुराण की रचना हुई।

इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥

(भा. १/४/२०)

इतिहास व पुराण पंचम वेद हैं जिनमें सबका अधिकार है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है श्री रोमहर्षण जी, वेद-विभाजन के समय इतिहास व पुराण श्री रोमहर्षण जी को दिये, रोमहर्षण जी विलोमज हैं। स्मार्त दृष्टि से उन्हें अधिकार नहीं है।

क्षत्रियात्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ।

(मनु स्मृति)

स्मृति धर्म के अनुसार ब्राह्मण वर्ण की स्त्री व क्षत्रिय वर्ण के पुरुष से उत्पन्न पुत्र को सूत कहा गया है।

सूत का कार्य है – सारथि बनकर रथ हाँकना। कथावाचन उसका कार्य नहीं किन्तु यहाँ सूत जी कथा कह रहे हैं।

श्री सूत जी बोले –

अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः ।
दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रंमहत्तमानामभिधानयोगः ॥

(भा. १/१८/१८)

आज भगवच्चरित्र गाकर मैं पवित्र हो गया।

अतः स्त्री को श्रीमद्भागवत में सब प्रकार का अधिकार है।

श्री सूरदास जी के शब्दों में –

कह्यौ शुक श्री भागवत-बिचार ।
जाँति-पाँति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति कैं दरबार ॥
श्री भागवत सुनै जो हित करि, तरै सो भव-जल पार ।
'सूर' सुमिरि सो रटि निसि-बासर, राम-नाम निज सार ॥

श्रीमद्भागवत की ही तो आज्ञा है –

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥

(भा.माहा. ३/२५)

सदा अर्थात् सर्वकाल व सर्वावस्था में भगवद् कथा सेवनीय है –

श्री उद्धव जी तो कहते हैं –

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥

(भा. १०/४७/५९)

कोई व्यभिचारिणी स्त्री भी है, यदि उसका श्री ठाकुर जी के प्रति भाव है तो वह भी सदा शुद्ध है।

"ईश्वरप्रसादो महत्त्वे कारणं तस्य च न जातिराचारो ज्ञानं वा कारणं"

(श्रीधरस्वामीकृतभावार्थदीपिका)

जाति, आचरण, ज्ञान, कारण नहीं है, मात्र भजन ही कारण है। जैसे अभाव से अमृत पीने वाला भी तो अमर हो जाता है।

'कोटिकामारूढभावविशेषः'

(श्रीमत्सनातनगोस्वामिकृतबृहत्तोषिणी)

जहाँ करोड़ों काम एक साथ उत्पन्न होते हैं, वह विशेष भाव है। जिसे व्यभिचार कहा गया।

जो भाव लज्जा, संकोच, मर्यादा को छोड़ दे, वह व्यभिचार है।

इन वनचरियों को न लज्जा है, न मर्यादा ही, तो भी भावशक्ति से पूज्य हो गईं।

'किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥'

(भा. १०/४७/५८)

इस भाव के बिना अनेक बार ब्रह्मा बनना भी व्यर्थ है।

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥

(भा. ११/१४/२१)

भाव वह शक्ति है जिससे चाण्डाल भी अनुक्षण पवित्र हो जाता है।

इसी प्रकार नीलगिरि पर काक जी वक्ता हैं व गरुड़ जी श्रोता।

गरुड़ महाग्यानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी॥

(रा.च.मा.उत्तर काण्ड-५५)

इससे सिद्ध होता है कि जिसमें विशुद्ध भक्ति है, वही श्रेष्ठ है।

स्त्री, शूद्रादि के कल्याणार्थ पूर्व में जब तक कोई व्यवस्था न थी तब तक व्यास जी का मन असन्तोष व अपूर्णता का अनुभव करता रहा। श्रीमद्भागवत का प्रणयन कर व्यास जी ने इस न्यूनता को पूर्ण किया।

विद्याप्रकाशो विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम् ।
धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद् भागवताद् भवेत् ॥
योषितामपरेषां च सर्ववाञ्छितपूरणम् ।
अतो भागवतं नित्यं को न सेवेत भाग्यवान् ॥

(स्कन्दपुराणान्तर्गत भा. माहा. ३/१६, १७)

श्रीमद्भागवत सेवन से ब्राह्मणों को बोध, क्षत्रियों को शत्रु जय, वैश्य को धन प्राप्ति व शूद्रों को आरोग्य प्राप्त होता है। स्त्री, अन्त्यज व अन्य सबके मनोरथ पूर्ण होते हैं अतः श्रीमद्भागवत नित्य सेवनीय है।

वेदादि में सबका अधिकार न होने से दयामय श्री व्यास जी ने सबके लिए सर्वदा सेवनीय श्रीमद्भागवत का प्रणयन किया।

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ।

(भा. माहा. ३/२५)

यही है श्री व्यास जी की सर्वभूत दया।

ब्रह्मा जी के वचन –

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ।
यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥

(भा. ३/९/१२)

भगवान् सेवा-पूजा से वैसे प्रसन्न नहीं होते, जैसे सर्वभूतदया (प्राणी मात्र पर दया से प्रसन्न होते हैं।) फिर स्त्री-शूद्र तो विशेष दया के पात्र हैं।

दूरे हरिकथाः केचिद् दूरे चाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ॥

(भा. ११/५/४)

दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥

(भा.माहा.६/६)

प्रारम्भ में सप्ताह यज्ञ की विधि बताते हुए भी, स्त्री, शूद्र भगवद् कथा-कीर्तन से दूर न पड़ जाएं, विशेष प्रबन्ध की आज्ञा है। यही नहीं दयामय व्यास जी ने स्त्रियों पर विशेष कृपा करते हुए उनके असाध्य रोगों का उपचार भी श्रीमद्भागवत में श्रीमद्भागवत ही कहा है।

अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका ।
स्रवद् गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥

(भा.माहा. ६/५२)

जिन्हें रजोदर्शन न हो, एक ही सन्तान हुई हो, वन्ध्या हो, जिसकी सन्तान जन्म लेकर मर जाती हो अथवा जिसका गर्भपात हो जाता हो, वह यत्नपूर्वक अवश्य यह कथा श्रवण करे।

भागवत धर्म वैष्णव धर्म है, इसमें स्मार्त विधि-निषेधों को घटित नहीं करना चाहिए।

भागवत धर्म का विधि-निषेध तो मात्र यही है –

राम भज राम भज राम भज बावरे ।
राम को बिसारिवो निषेध सरताज रे ॥

भागवत धर्म साध्य धर्म है और अन्य सब साधन धर्म हैं।

जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई ।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई ॥

(रा.च.मा.अरण्य. ६)

अतः भागवत धर्म में स्मृति धर्मों का विधि-निषेध घटित नहीं करना चाहिए।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥

(भा. १/२/६)

श्री भगवान् में अहैतुकी व अप्रतिहता भक्ति हो जाना ही भागवत धर्म है और यह भागवत धर्म ही परम धर्म है, अन्य सब अपर धर्म हैं।

भागवत धर्म को छोड़कर मात्र त्रैकालिक स्नान, संध्योपासन ....आदि-आदि ही करते रहे तब तो सब दण्ड बैठक का परिश्रम मात्र ही रहा।

भागवत धर्म तो इतना व्यापक है –

पुरूष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ८७)

नपुंसक भी है, जो वैदिक धर्मों से पूर्णतः बहिष्कृत है, भागवत धर्म में उसका भी अधिकार है।

स्त्रियों में भी अमर्यादित भोग है जिनका, उन वेश्याओं को भगवान् ने अपने हृदय में स्थान दिया।

गनिका अरु कंदरप ते जगमहँ अघ न करत उबरयो ।
तिनको चरित पवित्र जानी हरि निज हृदि-भवन धरयो ॥
केहि आचरन भलो मानैं प्रभु सो तौ न जानि परयो ।
तुलसिदास रघुनाथ-कृपा को जोवत पंथ खरयो ॥

(तुलसी विनय पत्रिका-२३९)

गणिकाएं – जीवन्ती, सुमध्या, कान्हूपात्रा, चिन्तामणि, रूपमती, रामजनी, पिंगलादि इसका प्रमाण हैं ।

श्री भक्तमाल ग्रन्थ में वर्णित –

दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी का दर्शन कर एक वारमुखी का मन पवित्र हुआ एवं अपने सम्पूर्ण जीवन की कमाई को स्वामी जी के चरणों में अर्पित करने पहुँची। श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने उस धन को स्वयं न स्वीकार करते हुए श्री रंगनाथ भगवान् का मुकुट बनाने की आज्ञा दी। तदनुसार मणिमय मुकुट लेकर जब वह पहुँची तो स्वामी जी ने उसे अपने ही हाथों से श्री रंगनाथ जी को धारण कराने की आज्ञा दी किन्तु विकर्मों का विपाक ही था कि मन्दिर देहरी पर चरण रखते ही वह रजोधर्म हो जाने से मुकुट धारण कराने के योग्य न रही, इस पर जब वह लौटने लगी तो भगवान् ने पुजारियों के हाथ से मुकुट धारण न किया, यह कहकर कि हम तो उसके ही हाथ से धारण करेंगे।

तब तो पुजारियों ने कहा – प्रभो! यह तो बहुत बड़ी अनीति होगी। एक तो वैश्या, उसमें भी रजस्वला फिर वह आपका स्पर्श करे। श्री रंगनाथ भगवान् ने किसी की भी ओर ध्यान न देते हुए मुकुट धारण करने को उस वैश्या के सम्मुख अपना मस्तक झुका दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि भागवत धर्म में कहीं भी आचार-विचार की अनिवार्यता नहीं है। कुंभनदास जी का पुत्र समाप्त हुआ तो उन्हें मरणाशौच से भगवद्दर्शन न होने का बहुत विषाद हुआ। विषाद में कुम्भनदास जी मूर्च्छित हो गये तब श्री गुसांई जी ने कान में कहा – कुम्भनदास जी! भक्त को भला कैसा मरणाशौच? आपके दर्शन करके तो अन्यों का सूतक भी समाप्त हो जाता है अतः चिन्ता न करें, कल मन्दिर आवेंगे तो श्री ठाकुर जी के दर्शन पावेंगे।

२५२ वैष्णव वार्तानुसार –

यमुना किनारे रावल के समीप गोपालपुर में श्री गुसांईजी के कृपापात्र मेहा धीमर रहते थे।

एक समय मेहा की स्त्री ने पुत्र को जन्म दिया। उस समय मेहा स्वयं किसी आवश्यक कार्य से बाहर गये हुए थे। पुत्र के जन्म से अशौच हो जाने पर स्त्री को भगवद् सेवा छूटने का अपार कष्ट हुआ।

हाय! इस दुष्ट पुत्र के होने से मेरी भगवद् सेवा छूट गयी – कहकर रुदन करने लगी। तब स्वयं श्री ठाकुर जी ने मेहाधीमर की स्त्री को आज्ञा दी –

'रो मत, स्नान करके मेरी सेवा कर।' इस पर जब वह स्नान करके सेवा करने लगी तब तक मेहा आ गये, अशौचावस्था में भगवद् सेवा करते देख रोका तो स्त्री ने कहा – स्वयं भगवान् ने मुझे सेवा की आज्ञा की है, सुनकर मेहा अत्यन्त प्रसन्न हुए।

८४ वैष्णव वार्तानुसार –

इसी प्रकार श्रीमद् वल्लभाचार्य महाप्रभु की कृपापात्रा दामोदर दास वैष्णव की माँ वीरबाई को जब पुत्रोत्पन्न हुआ तो भगवत्सेवा छूट जाने का अपार कष्ट हुआ। दिन चढ़

आया किन्तु किसी ने ठाकुर जी को जगाया नहीं, तब वो रोने लगीं – यह पापी पुत्र कहाँ से हो गया, मेरी ठाकुर सेवा छूट गयी। उन्हें रुदन करते हुए देखकर, शय्या से ठाकुर जी बोले – वीरबाई! रोने की आवश्यकता नहीं, आकर मुझे जगाओ।

किन्तु मैं तो पुत्र जन्म के अशौच में पड़ी हूँ, आपका स्पर्श करने योग्य नहीं हूँ। वीरबाई ने कहा।

तब स्वयं भगवान् ने आज्ञा की – शरीर में गोबर लगाकर स्नान करके तुम ही मुझे जगाओ। मैं अन्य किसी से सेवा नहीं कराऊँगा। यह मेरी आज्ञा है अतः कोई अपराध नहीं लगेगा। तब वीरबाई ने ऐसा ही किया। इस प्रकार घर में अन्य परिवारी जनों के रहते सूतक, पिंडरू व ऋतुकाल में भी वीरबाई से अपनी सेवा कराते।

श्री मद्भागवत जी का कथन है –

सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्पलाद सारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ।
येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्त पार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेव वर्याः ॥
ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ।
यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥

(भा. २/७/४५, ४६)

सौभरि, उत्तंक, शिवि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, विभीषण, हनुमान, शुकदेव, अर्जुन, विदुर व अन्य जितने भी श्रेष्ठ पुरुष (धर्माचार्य) हैं, यही नहीं जो भगवद् परायण स्त्री, शूद्र, हूण, शबर (भीलादि) व अन्य पापात्मा हैं, पशु-पक्षी की योनि में भी हैं, वे सब दैवी माया को जान जाते हैं व पार कर लेते हैं।

फिर अयोनिजा द्रौपदी को भी तो रजोदर्शन हुआ और उस समय जब वह रजस्वला थी, भगवान् अधोअंग की साड़ी बन गये।

सा कृष्णमाया नमिताङ्गयष्टिः
शनैरुवाचाथ रजस्वलास्मि ।
एकं च वासो मम मन्दबुद्धे
सभां नेतुं नार्हसि मामनार्य ॥

(महाभारत द्यूतपर्व ७८/३२)

दुःशासन के खींचने पर द्रौपदी का शरीर झुक गया और वह धीरे से बोली –

रे मन्दबुद्धि दुष्टात्मा! इस समय मैं रजस्वला, एक वस्त्रा हूँ, सभा में जाने योग्य नहीं हूँ।

शास्त्र का कथन है –

प्रथमे चाण्डालिनी ज्ञेया द्वितीये रजका स्मृता ।
तृतीयस्मिन्दिने शूद्रा स्नात्वा शुद्धा ततो भवेत् ॥

रजोदर्शन होने पर पहले दिन स्त्री चाण्डालिनी के समान, दूसरे दिन धोबिन व तीसरे दिन शूद्र के समान अपवित्र रहती है अनन्तर स्नान करके शुद्ध होती है।

किन्तु भागवत धर्म में –

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥

(भा. ३/३३/७)

एक-दो दिन के लिए चाण्डालत्व को प्राप्त होने वाला नहीं, जो जन्मजात चाण्डाल है, वह भी नाम श्रवण-कीर्तन से श्रेष्ठ हो जाता है। उसे फिर अलग से तपस्या, यज्ञ, तीर्थस्नान, सदाचार व शुभाचरण की आवश्यकता नहीं रह जाती है और श्री प्रह्लाद जी कह रहे हैं –

जो ब्राह्मण धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि व योग – इन १२ गुणों से सम्पन्न है, वह भगवान् को प्रसन्न नहीं कर सकता है। गजराज में कोई गुण न था, मात्र भक्ति से भगवान् सन्तुष्ट हो गये।

मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजस्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥
विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥

(भा. ७/९/९, १०)

इन द्वादश गुणों से हीन होने पर भी जिसने मन, वचन, कर्म, धन व प्राण को भगवान् के चरणों में समर्पित कर रखा है, वह चाण्डाल भी भगवत विमुख ब्राह्मण से श्रेष्ठ है क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने सहित सम्पूर्ण कुल को पवित्र कर देगा और वह गुरुत्वाभिमानी ब्राह्मण स्वयं को भी पवित्र नहीं कर सकेगा।

अर्थात् बाह्य शौचाशौच का विचार करने वाला ब्राह्मण स्वयं को भी पवित्र नहीं कर सकता है एवं भगवद् समर्पण से जो आन्तरिक पवित्रता को प्राप्त कर चुका है, वह चाण्डाल भी सम्पूर्ण कुल को पवित्र कर देता है।

श्री शुकदेव जी के वचन –

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

(भा. २/४/१७)

उन प्रभु को प्रणाम है, जिनमें समर्पण किये बिना बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी व मन्त्रवेत्ताओं का भी कल्याण नहीं है।

स्वयं भगवान् भी जब मर्त्यलीला के उपयुक्त देह धारण करते हैं अर्थात् नरावतार लेते हैं तो उनमें सामान्य मनुष्य जैसे धर्म दिखायी पड़ते हैं। इसी प्रकार अवतार काल में महाशक्तियों में भी सामान्य स्त्री-विकार दिखाई देते हैं जैसे श्रीकृष्ण की रानी-पटरानियों में, अयोनिजा द्रौपदी में व स्वयं भगवती सती के देह में भी। इसका आशय यह तो नहीं कि इनमें अभावोत्पन्न कर लिया जाये।

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥

(भा. ३/२/१२)

श्री उद्धव जी के वचन –

योगमाया का बल दिखाते हुए श्री भगवान् ने मर्त्यलीला के उपयुक्त देह धारण किया, इसके सौन्दर्य व सौभाग्य को देखकर वे स्वयं भी मोहित हो गये।

मर्त्यावतार में प्राकृत धर्म –

रामावतार में –

सकल सौच करि जाइ नहाए ।नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए ॥

(रा.च.मा.बाल. २२७)

सकल अर्थात् बाह्याभ्यन्तर सभी प्रकार की पवित्रता के पश्चात् श्रीरामने स्नान किया।

पुनः

सकल सौच करि राम नहावा । सुचि सुजान बट छीर मगावा ॥

(रा.च.मा.अयोध्या. ९४)

इसी प्रकार कृष्णावतार में –

एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ।

(भा. १०/८/३१)

गोपियों ने कहा- कन्हैया इस प्रकार की ढिठाई करता है कि हमारे लिपे-पुते स्वच्छ घर में मेहनादीनि अर्थात् मूत्रादि त्याग देता है।

टीकाकारों ने और स्पष्ट करते हुए कहा –

'वास्तौ देवपूजार्थमामृष्टलिप्तभूमौ मेहनादीनि
मूत्रपुरीषोत्सर्गादीनि धार्ष्ट्यान्युपद्रवान् ।'

(श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिकृतसारार्थदर्शिनी)

'उपविश्य च वास्तौ देहल्यादौ मेहनादीनि पुरीषोत्सर्जनादीनि करोति ।'

(श्रीमद्विजयध्वजतीर्थकृतपदरत्नावली)

प्रायः सभी आचार्य महानुभावों ने यही अर्थ ग्रहण किया है।

"कन्हैया हमारे स्वच्छ घर में मल-मूत्र त्याग देता है।"

आप कहेंगे कि इस वपु में मल-मूत्र कैसे सम्भवहै?

तुम जो कहहु करहु सब सांचा । स काछिअ तस चाहिअ नाचा ॥

(रा.च.मा.अयो. १२७)

वे जो कुछ कहते हैं, करते हैं, वह सब सत्य है और फिर स्वांग के अनुसार नृत्य भी तो आवश्यक है। मर्त्यलीला में मर्त्योचित व्यवहार ही उचित है।

जासु नाम सुमिरत एक बारा ।
उतरहिं नर भवसिन्धु अपारा ॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा ।
जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा ॥

(रा.च.मा.अयो. १०१)

जिसके एक बार नाम स्मरण मात्र से मनुष्य अपार भवसागर पार हो जाता है, वह स्वयं नदी पार होने के लिए नाव की प्रतीक्षा में है।

कैसी मानवीयता।

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ ।
सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू ।
तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू ॥

(रा.च.मा.अयोध्या. ८७)

स्नान करने पर मार्ग की श्रान्ति दूर हो गई एवं गंगा का पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया।

जिनके स्मरण मात्र से जन्म-मरण का श्रम दूर हो जाता है, उनका श्रमित होना यही तो नररूप के उपयुक्त स्वांग है।

मानवीय स्वांग का हेतु?

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥

(रा.च.मा.अयोध्या. ८७)

प्राणीमात्र का संसार सन्तरण ही इन लीलाओं का एकमात्र प्रयोजन है।

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे।

(भा. १/९/३८)

भीष्म के तीक्ष्ण बाणों से श्रीकृष्ण का कवच टूट गया एवं सम्पूर्ण शरीर रक्त से लथपथ हो गया।

यह रक्त मानवीय विकार ही है।

मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन।
ददर्श पुरुषं कञ्चिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा॥

(भा. १/१२/७)

माता उत्तरा के गर्भ जैसे घृणित, निन्दित उस मल-मूत्र के कूप में भी भगवान् पहुँच गये और परीक्षित को उस दिव्य स्वरूप का दर्शन हुआ।

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः॥

(भा. ३/२४/३१)

यद्यपि आप अरूपी अर्थात् प्राकृत रूप से रहित हैं।

अलौकिक रूप वाले होते हुए भी आपके जो-जो स्वरूप भक्तों को प्रिय लगते हैं, आप उन्हें ही धारण करते हैं क्योंकि आपको स्वयं भी भक्तों को प्रिय लगने वाले रूप ही प्रिय हैं।

श्री मद्भागवत में यही कहा गया –

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

(भा. १०/३३/३७)

भगवान् ने तादृशी लीलाएं कीं क्योंकि जीव की स्वाभाविक प्रवृत्ति विकर्मों में होने से उन लीलाओं को वह सहज ही समझ सकता है व उनके कथन-श्रवण से मत्परायण हो सकता है।

श्री ब्रह्मा जी के वचन –

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥

(भा. ३/९/१७)

हे भगवन्! प्रायः संसार में लोग स्वधर्म पालन से उदासीन होकर विकर्मों में प्रवृत्त होते देखे जा रहे हैं और काल इन प्रमादियों की जीवन आशा को निरन्तर खा रहा है।

"परदाराभिमर्शन"

(भा. १०/३३/२८)

धर्म विरुद्ध आचरण होते हुए भी विकर्म नहीं बना क्योंकि यह इन्द्रिय प्रीति अथवा इन्द्रिय तृप्ति के लिए होने वाला कर्म नहीं था।

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥

(भा. ५/५/४)

इन्द्रिय प्रीत्यर्थ कर्म विकर्म है फिर ये तो आत्माराम, आप्तकाम ठहरे, इन्हें किसी से रमण और विहार की क्या इच्छा होगी? यह सब तो उनकी अनुग्रहकातरता (कृपा करने की विकलता) है।

सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म-
माशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ।
अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान्
वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥

(भा. ४/९/१७)

जिस प्रकार अलब्याई गाय अपने सद्यःजात शिशु को दुग्ध पिलाकर पोषण व सिंह-व्याघ्रादि से रक्षण करती है, हे प्रभो! उसी प्रकार आप भी अपने भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण व संसार भय को नष्ट करते हुए उन पर कृपा करने के लिए व्याकुल रहते हैं।

वाश्रा (अलब्याई गाय) तो मुँह से चाटकर ही अपने स्तनन्धय वत्स के मलों को दूर करती है किन्तु अनुग्रहकातर भगवान् का तो अंग-अंग कृपामय है।

'तुलसी परतीति एक प्रभु मूरति कृपामयी है ।'

(तुलसी विनय पत्रिका)

प्रभु का प्रत्येक श्रीअंग कृपापूर्ण है।

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ।

(भा.१०/१४/२)

प्रभु की कृपा से ही उनके अनुग्रहमय-विग्रह का दर्शन सम्भव है। सम्पूर्ण श्रीविग्रह ही अनुग्रह का साक्षात् स्वरूप है।

करुणा सदन वदन अवलोकत कोटि मदन मद हारी ।

(श्रीरघुराज सिंहजी)

अनुग्रह स्वरूप जटायें –

कछुक दूर आगे चलि रघुपति बिकल बिहंग निहार्यौ ।
कृपानिधान जटायु अंग रज निज जटानि सो झार्यौ ॥

(श्रीरघुराज सिंहजी)

अनुग्रहमय नेत्र –

कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद ।

(रा.च.मा.लंका १०३)

कृपापरिपूरन तरुन अरुन राजीव बिलोचन

(गीतावली)

अनुग्रहमय भृकुटि –

भ्रू सुन्दर करुनारस पूरन

(गीतावली)

अनुग्रह वानी –

मागु मागु बरु भै नभ बानी ।
परम गभीर कृपामृत सानी ॥
मृतक जिआवनि गिरा सुहाई ।
श्रवन रंध्र होइ उर जब आई ॥

(रा.च.मा.बाल १४५)

अनुग्रहस्वरूप हृदय –

हृदयँ अनुग्रह इंदु प्रकासा ।
सूचत किरन मनोहर हासा ॥

(रा.च.मा.बाल १९८)

अनुग्रहमय कर कमल –

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिन्धु रघुबीर ॥
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर ॥

(रा.च.मा.अरण्य ३०)

अनुग्रहमय चरण –

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥

(भा. १०/२/३१)

देवाताओं ने कहा – हे भगवन्! भक्तजन स्वयं तो भयानक संसार सागर से पार हो ही जाते हैं, अनेकों के सन्तरण के लिए आपके चरण कमलों की नौका को स्थापित कर जाते हैं। उन भक्तों के लिए आप अनुग्रहस्वरूप ही हैं।

करुनासिन्धु मुरारि, करुनाई को कहि सकै ।
जाको वेद पुकारि, नेति नेति भाखत रहै ॥

(श्री रघुराजसिंह जी)

जिस प्रकार सघन घटायें बरसने के लिए बंजर और उपजाऊ भूमि का विचार नहीं करती हैं, उसी प्रकार अहैतुकी कृपा कारक भगवान् की अनन्त कृपा-कादम्बिनी का निर्झर भक्त, अभक्त, पात्र, अपात्र का कुछ भी विचार न करते हुए सर्वत्र समान ही बरसता है।

अनुग्रहपरवश होकर ही वे तादृशी क्रीडा करते हैं, जिसके लिए कहीं-कहीं आर्य वैदिक मर्यादाओं से भी उसका विरोध हो जाता है।

कृपातिशयता ही तो थी भीष्म के लिए शस्त्र उठाने और वेदवाणी को मृषा करने में।

जिन गोपाल मेरो पन राख्यो मेटि वेद की कान ।
सोई सूर सहाय हमारे निकट भये हैं आन ॥

(सूरदास जी)

भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(भा. १०/३३/३७)

तादृशी अर्थात् वैसी ही लीलाएं कीं जैसी हमारी प्रवृत्ति है, जिससे कृष्ण परायण होने में हमें कठिनाई का अनुभव न हो।

चराचर जगत काम के वशीभूत है। सामान्य जनों की बात छोड़िये स्थिति यह है कि

पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ।
पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥

(भा.माहा. १/७५)

बड़े-बड़े पण्डितों को भोग के लिए भैंसा बनते देखा जाता है अतः प्रतीपाचरण भी किया भगवान् ने, जिसे सुनकर परीक्षित को मोह हो गया और पूछ बैठे –

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥

(भा. १०/३३/२८)

१६,१०८ रानियों के साथ भी इस प्रकार के विहार का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। "परदाराभिमर्शन" जैसा गोपियों के साथ हुआ है अतएव उन्हें चौरजार शिखामणि कहा गया। ऐसा चोर और ऐसा जार पुरुष आज तक नहीं हुआ।

कृष्णावतार से विषइयों का उद्धार भी हो जायेगा। विषयी भी इन लीलाओं को गायेंगे।

भव सागर चह पार जो पावा ।
राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा ॥
बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा ।
श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ५३)

यह लीला चरित्र ही ऐसा है कि विषइयों को भी सुनने में अच्छा लगता है, कानों को सुख देता है।

आज सिनेमा के कलाकार भी तो गाते हैं –

"यशोमति मैया से पूछे नन्दलाला..........."

स्त्रियों के लिए हुआ कृष्ण अवतार

ठीक है कहीं-कहीं हमारे शास्त्रों में स्त्री की बहुत निन्दा है। "स्त्री प्रत्यक्षा राक्षसी"

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

(गी. ९/३२)

श्रीमद्गीताजी में स्त्री को पापयोनि कहा।

श्रीमद्भागवत में स्त्रियों को अकरुणा, क्रूरा, दुर्मर्षा, अप्रिय साहसा कहा गया जो अपने अल्पस्वार्थ के लिए अपने पति और भाई तक का वध कर डालती हैं। रामचरितमानस में भी स्त्रियों के ८ अवगुण कहे गये।

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अबिबेक असौच अदाया॥

(रा.च.मा.लंका. १६)

और

स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥

(भा.१/४/२५)

सहज अपावन होने से श्री व्यास जी ने इन्हें वैदिक अधिकार से बहिष्कृत कर दिया, किन्तु इसका परिणाम शब्द ब्रह्म व परब्रह्म में निष्णात उन महापुरुष के मन में अशान्ति, असन्तोष, अपूर्णता बनी रही। करुणामय भगवान् की दृष्टि में स्त्री, शूद्र कोई भी हेय नहीं है।

यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः॥

(भा. १/५/९)

नारद जी ने कहा – व्यास जी! आपने धर्म-अर्थादि पुरुषार्थों का जैसा वर्णन किया वैसा श्रीकृष्ण-महिमा निरूपण नहीं किया।

श्रीकृष्ण-महिमा में तो कोई भी हेय नहीं है, उसमें भी कृष्णावतार तो स्त्रियों के लिए ही हुआ है जो न रामावतार में हुआ, न महाप्रभु चैतन्य के रूप में।

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम्।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः॥

(भा.१०/२१/१२)

आचार्यों ने इस पंक्ति का बहुत सुन्दर भाव स्पष्ट किया है।

केवलं वनितानामेवोत्सवो यत्र वनं यौवनमिताः प्राप्ताः प्राप्तवत्यः वनं सञ्जातमिति वा इतच्प्रत्ययः न हि तत्र प्रविष्टः पुनरावर्त्तते यौवनमित्यत्रापि 'यु' मिश्रणार्थे 'वन' मिति तासामेवोत्सवो भवत्विति भगवता वेषः कृतः सर्वाभरणभूषिताः सर्वा एव वनिताः यथा वेषरसं पुरुषार्थमनुभवन्ति अनेनास्मिन्नुत्सवे यासामलङ्कारादिनोत्सवो न जातस्तासां वनितात्वं व्यर्थमेव यथा रण्डानां तत्रापि

चारु मनोहरमन्तरप्यलङ्कारहेतुस्तत्र प्रेमज्ञानादिकमलङ्कारा बहिरिवान्तरपि रसानुभवश्च अनेनाप्सरसां भगवदर्थागमने सर्वोप्युपाय उक्तोनुभावकं ततो विलम्बेन प्रस्थापकमाह-श्रुत्वा चेति।

(श्रीमद्वल्लभाचार्य्यकृतसुबोधिनी)

श्रीकृष्ण का रूप व शील वनिताओं (युवती स्त्रियों) के लिए ही उत्सव रूप है।

चूँकि रामावतार में एक पत्नी व्रत धर्म में बंधे होने से सभी स्त्रियाँ उस परम सुख से वंचित रहीं और श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु के रूप में तो बहुत ही कठोर मर्यादा की स्थापना हुई। श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु स्त्री-दर्शन तो दूर स्त्री शब्द भी मुख से न कहकर प्रकृति कहते थे, इसके विपरीत श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु का चरित्र है। स्वयं भगवान् ने आचार्य चरण को विवाहाज्ञा दी और गोसाईं विट्ठलनाथजी के रूप में स्वयं भगवान् आये और उधर श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु भी भगवान् हैं और इधर गोसाईं विट्ठलनाथजी के रूप में भी स्वयं भगवान् हैं। चैतन्य महाप्रभु के रूप में स्त्री-त्याग की मर्यादा एवं पुष्टि मार्ग में स्वयं भगवान् के द्वारा स्त्री-ग्रहण की आज्ञा।

बहुधा वैराग्य के आडम्बर में लोग कहते हैं हम स्त्री दर्शन नहीं करते, हम स्त्री मुख से कथा नहीं सुनते...........आदि आदि।

फिर उदाहरण भी देते हैं – श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु ने भी तो छोटे हरिदास के प्रति वृद्धा माधवी देवी से बात कर लेने पर कितनी कठोर मर्यादा स्थापित की किन्तु क्या भूल गये श्रीरायरामानन्द जी देव दासियों (ये वे अविवाहित कन्याएं होती थीं जिन्हें बाल्यकाल से ही विषय वातावरण से दूर रखकर नृत्य-गान द्वारा भगवान् को रिझाने की शिक्षा दी जाती थी) को निभृत उद्यान में ले जाकर उनके प्रत्येक अंग पर अपने हाथ से हरिद्रा, तैलादि से मर्दन करते थे, यही नहीं अपने ही हाथों से उन्हें स्नान कराते, शरीर को पोंछते अनन्तर वस्त्राभूषण धारण कराते तथापि श्री राय रामानन्द जी का मन निर्विकार रहता।

स्वहस्ते करान तार अभ्यङ्ग मर्दन।
स्वहस्ते करान स्नान गात्र-सम्मार्जन॥
स्वहस्ते परान वस्त्र सर्वाङ्ग मण्डन।
तभु निर्विकार राय रामनन्देर मन॥
काष्ठ पाषाण स्पर्शे हय जैछै भाव।
तरुणी स्पर्शे रामरायेर ऐछे स्वभाव॥

(चै.च.अन्त्यलीला ५/१५-१९)

उन देव कन्याओं को अपना सेव्य मानकर वह उनकी सेवा किया करते। वे कन्याएं किशोरावस्था युक्त होती थीं। साक्षात् युवती नारी का स्पर्श तो दूर काष्ठ और पाषाण की

स्त्री का स्पर्श ही बड़े-बड़े साधन सम्पन्न मुनियों के चित्त में विकारोत्पन्न कर देता है। यह तो केवल श्रीराय रामानन्द जैसे परम भागवत के लिए ही सम्भव था।

प्रतिदिन राय ऐछे करये साधन।
कोन जाने छुद्र जीव काहाँ तार मन॥

यह श्री राय रामानन्द जी का दैनिक क्रम था, विषय विदूषित क्षुद्र जीव भला उनके मन की अवस्था को कैसे जान सकते हैं। स्वयं श्री मन्महाप्रभु जी ने प्रद्युम्न मिश्र को कहा –

मिश्र जी! रायरामानन्द जी की स्थिति व महिमा अनिर्वचनीय है।

एके देवदासी आर सुन्दरी तरुणी।
तार सब अंग सेवा करेन आपनी॥
स्नानादि कराय, पराय वास-विभूषण।
गुह्य - अंगेर हय ताहा दर्शन - स्पर्शन॥
तभु निर्विकार रायरामानंदेर मन।
नाना भावोद्गार तारे कराय शिक्षण॥
निर्विकार देह - मन काष्ठ पाषाण सम।
आश्चर्य तरुणी स्पर्शे निर्विकार मन॥

(चै.च.अन्त्य ५/३६-३९)

एक तो वे अविवाहित कन्याएं, उस पर वे परम सुन्दरी और फिर युवती जिनकी सर्वांग सेवा राय अपने हाथों से करते हैं, उन्हें स्नान कराते समय, पट भूषण धारण कराते समय उनके मुख-वक्षस्थलादि गुह्य अंगों का दर्शन, स्पर्श भी स्वाभाविक है किन्तु इतने पर भी राय रामानन्द का मन पूर्णतः निर्विकार रहता है और फिर नाना प्रकार के हाव-भावपूर्ण नृत्य की उन्हें शिक्षा देते हैं किन्तु मन इस प्रकार निर्विकार रहता है कि मानो किसी काष्ठ अथवा पाषाण का ही स्पर्श किया हो। युवती के स्पर्श में मन का निर्विकार रहना परमाश्चर्य का विषय है।

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्री प्रद्युम्न मिश्र जी को श्री राय रामानन्द जी की महिमा कही। क्या श्री रायरामानन्द जी को महाप्रभु जी ने त्याग दिया?

स्त्री नहीं, संग है नरक का द्वार –

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य॥

(भा. ३/३१/३९)

वस्तुतः न स्त्री, न पुरुष, संग (आसक्ति) ही नरक का मार्ग है। पुरुष के लिए स्त्री आसक्ति एवं स्त्री के लिए पुरुष के प्रति की गयी आसक्ति नरक का द्वार है।

स्त्री को है अधिकार किन्तु स्त्रैण को नहीं –

भागवत माहात्म्य का श्लोक है –

"त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः"

(भा.मा.६/२१)

विष पीना अच्छा है किन्तु दुःसंग ऐसा विष है जिसकी गन्ध को सह पाना भी अत्यन्त कठिन है।

श्रीप्रियादासजी ने मीराजी के प्रकरण में कहा –

गरल पठायौ सो तो सीस लै चढ़ायौ,
संग त्याग विष भारी ताकी झार न सँभारी है।

ये आलोचक उस विष का पान कराते हैं जिसकी झार (गंध की तीव्रता) समाज को श्रद्धाहीन व नास्तिक बना देती है। अतएव सतीजी ने कहा –

कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने।
छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः॥

(भा.४/४/१७)

प्राण देना अच्छा है किन्तु ऐसे लोगों के विचार, आलोचना एवं संग उचित नहीं हैं क्योंकि वह अनन्तकाल के लिए जीवन को भक्तिहीन बना देगा। सामान्य विष तो एक ही जन्म समाप्त करेगा किन्तु ऐसे लोगों का संग अनन्त जन्मों का नाश कर देगा।

"मिलत एक दुख दारुन देहीं"

(रा.च.मा.बाल. ५)

श्रद्धाहीनता, विमुखता एवं नास्तिक्य ही असत् पुरुषों से मिलने वाला दारुण दुःख है। अनन्त जन्म विनाशिनी मृत्यु है।

स्त्रैण कौन?

स्त्रैण अर्थात् स्त्री लम्पट

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥

(भा. ११/२६/१२)

स्त्री के द्वारा जिसका मन चुरा लिया गया है, उसकी सब विद्या व्यर्थ है। तप, त्याग, शास्त्राभ्यास, एकान्तसेवन और मौन से भी उसे कोई लाभ नहीं होगा।

श्री भगवान् के वचन –

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥

(गी. ४/२३)

आसक्ति त्याग के बाद ही यज्ञादि साधन कल्याण कर सकेंगे।

स्त्री संग का त्याग आवश्यक है, इसलिए स्वयं भगवान् श्रीराम ने कृपणवत् वन-वनान्तर में विरहलीला की।

भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः ।
स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥

(भा. ९/१०/११)

संसार यह समझ ले कि स्त्री आसक्ति का परिणाम यही है, मैं ईश्वर होकर भी रो रहा हूँ।

जह्याद् यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद् वा पितरं गुरुम् ।
तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद् यस्तेन ह्यजितो जितः ॥

(भा. ७/१४/१२)

किन्तु स्त्रैण तो स्वप्राण तक दे देते हैं स्त्री के लिए, यही नहीं अपने माता-पिता और गुरू को भी समाप्त कर देते हैं।

इससे विपरीत जो स्त्री-जयी है, वह भगवद्-जयी है।

श्री हनुमान जी के वचन –

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥

(भा. ५/१९/५)

हे भगवन्! यह नरावतार मात्र असुर संहार के लिए नहीं हुआ है, इसका मूल उद्देश्य तो मनुष्यों को शिक्षा देना ही है। अन्यथा आत्माराम ईश्वर को अपनी अभिन्ना शक्ति सीता का इतना विरह हो सकता था भला।

वक्ता कौन?

श्रीमद्भागवत के अनुसार –

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् ।
द्रष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः ॥

(भा. माहा. ६/२०)

यहाँ स्त्री-पुरुष का कोई आग्रह नहीं है।

वस्तुतः कथावाचन का अधिकार तो विरक्त को है।

विरक्त कौन?

जिसका विषयों में राग नहीं, वह विरक्त है।

ऐसा वैराग्य ठीक नहीं –

बैरागी भूखे फिरैं, रूखे निपट निरास ।
अनुरागै पावैं नहीं, बिनु भयें बिहारीदास ॥
रूठे से रिस में फिरैं, लियैं बैर अरु आग ।
आपुन ही जरि जरि मरैं, बिनु बैराग अभाग ॥
बैरागी बिषई कै जाइ । वह किनि भारि बहिनि की खाइ ।
मूँड मुँड़ावै स्वाँग लजावै । अनख बिहारीदास न भावै ॥

(श्रीबिहारिनदेव जी – २७४, २७५, २७६)

जिसका विषयों में राग है, वह विरक्त नहीं स्त्रैण है। वेष से साधु हो अथवा विद्वान्, स्त्रैण को कथा कहने का कोई अधिकार नहीं।

'सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्'

(भा. ११/१२/२)

सत्संग वही है जो समस्त आसक्तियों का नाश कर दे।

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः ।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥

(भा. ११/२/४२)

जहाँ भक्ति का अभ्युदय हुआ तो भगवदनुभव और संसार से वैराग्य स्वतः हो जाएगा।

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम् ॥

(भा. १/२/७)

वह भक्ति ही परम धर्म है, जिससे वैराग्योत्पन्न हो जायेगा। वैराग्य के बिना भक्ति वन्ध्या है।

श्री कपिल भगवान् भी कहते हैं –

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥

(भा. ३/३२/२३)

भगवान् के प्रति हुए भक्तियोग का लक्षण है, उसी क्षण संसार से वैराग्य व ब्रह्मसाक्षात्कार कराने वाले ज्ञान की प्राप्ति हो जायेगी। सांसारिक राग के रहते भगवान् में भक्तियोग कभी नहीं हो सकेगा और राग का उन्मूलन करने वाली कथा कोई विरक्त वक्ता ही कह सकता है, विषयार्थी-अर्थार्थी नहीं।

न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद् वरीयसीरपि वाचः समासन् ।
स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥

(भा. ५/११/३)

श्री जड़भरत जी के वचन –

न केवल मृत्युलोक के ही प्रत्युत यज्ञादि से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि के सुख जब तक स्वप्नवत् हेय नहीं प्रतीत हो रहे हैं, सुनने वाले (श्रोता) और सुनाने वाले (वक्ता) दोनों ही तत्व ग्रहण नहीं कर सकेंगे।

श्री प्रह्लादजी के वचन –

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥
नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥

(भा. ७/५/३०, ३२)

विषयासक्ति के रहते बुद्धि श्रीकृष्ण चरणों में न स्वतः लगेगी, न सत्संग से ही लग सकेगी। निष्किञ्चन अथवा विरक्त महापुरुषों की चरणधूलि में स्नान करने पर जब अनर्थ निवृत्ति होगी, काम रूपी कषाय समाप्त होगा तब ही नैष्ठिकी रति की प्राप्ति होगी।

श्री सनकादिक के वचन –

रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलमन्तरात्मनः ॥

(भा. ४/२२/२०)

नैष्ठिकी रति की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, जो काम कषाय अन्तरात्मा के इस मल के रहते सम्भव नहीं है।

एक विषयार्थी अथवा अर्थार्थी वक्ता विशुद्ध नैष्ठिकी रति की व्याख्या कैसे कर सकता है भला?

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा
दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः ।
असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगव-
न्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद् भवतः ॥

(भा. १०/८७/३९)

योगी यति बनकर भी जिनकी कामजटाएं बढ़ी हुयी हैं, वे न मृत्यु जीत सकेंगे, न भगवत्प्राप्ति ही कर सकेंगे। लोक-परलोक दोनों की हानि ही करेंगे क्योंकि इन्द्रियतोषणी कथा से कल्याण सम्भव नहीं है।

काम अन्तरात्मा का प्रधान दोष है। इसके रहते नैष्ठिकी रति स्वप्न-दर्शनवत् है।

ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णैस्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥

(भा. ४/२९/४०)

किन्तु ध्यान रहे धन, विषय-भोगादि की एषणाएं निरन्तर कथा सुनने से ही जाएंगी। जिस कथा को सुनने से एषणाओं की वृद्धि हुई, वह कैसी कथा?

यद्यपि आज अनवरत कथायें हो रही हैं किन्तु आत्यन्तिक क्षेम तो कहीं दिखाई नहीं देता उसका विपरीत फल ही दिखाई पड़ रहा है।

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥

(भा. ९/४/७०)

श्री भगवान् ने कहा – दुर्वासा जी! ब्राह्मणों के लिए तप एवं विद्या दोनों कल्याणकारी है किन्तु यदि ब्राह्मण उद्दण्डी और अन्यायी हो जाये तो तप और विद्या का विपरीत फल भी होने लगता है। आज संसार में क्षेम के स्थान पर विपरीत परिणाम ही दिखाई पड़ रहा है। आलोचकों का भक्ति से तो कोई प्रयोजन है नहीं, बस स्त्री-पुरुष लिंग भेद में पड़े हुए हैं अतः श्री मन्महाप्रभु जी ने कहा "जेई कृष्ण तत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय"।

(चैतन्य चरितामृत)

अतः भागवत जी में तो कहा है –

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् ।
द्रष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः ॥

(भा. माहा. ६/२०)

रसिक जनों ने भी कहा है –

प्रथम सुने भागवत भक्त मुख भगवद् वानी ।

(भगवत रसिक जी की वाणी)

भक्त-मुख से कथा सुनने की आज्ञा है, स्त्रैण-मुख से नहीं। आधुनिक-स्त्रैण (स्त्री-लम्पट) वक्ताओं की स्थिति किसी वधिक को बचाने वाले वकील की भाँति हैं, जो शास्त्रीय-सिद्धान्तों का, महद्वाणियों का दुरुपयोग करते हैं। स्वदोष को छिपाने के लिए उदाहरण देते हैं –

"सोई करतूत विभीषण केरी" विभीषण ने भी तो रावण की मृत्यु के बाद मंदोदरी को भोग्या के रूप में स्वीकार किया।

भगवान् घोर विषयी को भी स्वीकार कर लेते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवान् उनके दोषों पर ध्यान नहीं देते किन्तु सुग्रीव और विभीषण जैसी स्थिति भी तो होनी चाहिए।

सिद्धान्तों को भ्रामक न बनायें!

दस-बीस शिष्य बनाकर स्वयं को महापुरुष समझने वाले ही प्रायः इन सिद्धान्तों की पुष्टि करते हैं कि महापुरुष सर्वसमर्थ हैं। वे उचित-अनुचित सभी कार्य कर सकते हैं। वस्तुतः स्वयं को महापुरुष समझने वाले लोग पाखण्डी, दाम्भिक, अधार्मिक ही हैं।

श्री नारद जी के वचन –

विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः ।
अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत् त्यजेत् ॥
धर्मबाधो विधर्मः स्यात् परधर्मोऽन्यचोदितः ।
उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा शब्दभिच्छलः ॥

(भा.७/१५/१२, १३)

विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा और छल ये अधर्म की पाँच शाखाएं हैं जो सर्वथा त्याज्य हैं। जिस कार्य को धर्म समझकर किये जाने पर भी स्वधर्म में बाधा हो, वह 'विधर्म' है, अन्य धर्म का उपदेश 'परधर्म' है, पाखण्डअथवा दम्भ उपमा (उपधर्म) है और शास्त्र-वचनों का मनमाना अर्थ करना छल है। तब स्वयं विचार करें कि शास्त्रीय-सिद्धान्तों का मनमाना अर्थ लेकर अपने रागादि दोषों की पुष्टि करने वाला महापुरुष है अथवा सर्वथा अधर्मी?

श्री भगवान् के ब्रजकुमारिकाओं के प्रति वचन –

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥

(भा.१०/२२/२६)

हे कुमारिकाओं! जिन्होंने अपने मन व प्राण को मुझे अर्पित कर दिया है, उनमें संसारी कामनाओं का जन्म ही नहीं होगा, ठीक उसी प्रकार जैसे भुने या उबले हुए बीज में अंकुर नहीं उगता है।

किन्तु इन सिद्धान्तों का उपदेश भगवान् अथवा कोई विरक्त महापुरुष ही कर सकते हैं।

देहात्मवादी विषय-त्याग की बात नहीं कह सकता है, वह तो स्वयं विषय-सुख को सच्चा सुख समझकर उसमें लिप्त है, जिसका परिणाम है चौरासी लाख योनि भ्रमण।

देखें – श्रीमद्भगवद्गीता – 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म'

समानता सिखाने वाले प्रभु ने विषमता की शिक्षा दी –

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

(गी. ३/३७)

अर्जुन! रजोगुण से समुद्भूत इस महाशन, महापापी काम को अपना परम शत्रु समझकर समाप्त कर दे।

"प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञान नाशनम्"

(गी. ३/४१)

यह काम ज्ञान-विज्ञान का नाशक है।

सुग्रीव ने कहा –

नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं ।
मुनि मन मोह करइ छन माहीं ॥

(रा.च.मा.किष्कि. २०)

ज्ञान ही नहीं विज्ञान (अनुभवात्मक ज्ञान) की स्थिति पर पहुँच जाने वाले मुनियों का मन भी क्षुब्ध कर देता है।

श्री कपिल भगवान् के वचन –

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य ॥

(भा. ३/३१/३९)

अतः मेरी सेवा से जिन्हें आत्मलाभ अर्थात् आत्मतत्त्व का बोध हो गया है, उन्हें विषयों से सर्वथा दूर रहना चाहिए।

ध्यान रहे, जिस कथा से राग का पोषण होता है, वह कथा नहीं चाटुकारिता है।

महाराज खटवाङ्ग ने कहा –

ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ।
न विन्दन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥
अथेशमायारचितेषु सङ्गं गुणेषु गन्धर्वपुरोपमेषु ।
रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि विश्वकर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥

(भा.९/९/४६, ४७)

मनुष्य ही नहीं सत्त्वगुण प्रधान मन वाले देवता भी बन गये हों तो भी विषयों के प्रति जो राग है, वह छोड़ना होगा। अन्यथा भगवद्तत्त्व का ज्ञान कभी नहीं होगा। जब देवों को नहीं होगा तो अन्य विषयी जीवों को क्या होगा? अतः इस माया के खेल में अब मैं रमण नहीं करूँगा। सब त्यागकर सीधे-सीधे श्रीभगवान् की शरण लूँगा।

श्री कपिल भगवान् के वचन –

यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ।
सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः ॥

(भा.३/२७/२७)

माता जी! राग-निवृत्ति में अनेक जन्म लग जाते हैं, तब भी ठीक-ठाक वैराग्य कहाँ हो पाता है?

यह गुन साधन तें नहिं होई ।
तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई ॥

(रा.च.मा.किष्कि. २१)

राग की निवृत्ति भगवत्कृपा से ही सम्भवहै।

आजकल तो राग-निवृत्ति का मात्र दावा है।

आज स्त्रैण-वक्ताओं से समाज ही नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र खोखला हो गया।

श्रीभगवान् के परम प्रिय उद्धवजी के प्रति वचन –

उद्धव! श्री मान बनो, कृपण नहीं।

कृपण कौन?

'कृपणो योऽजितेन्द्रियः'

(भा. ११/१९/४४)

जो अजितेन्द्रिय है, वह कृपण है।

श्री मान कौन?

'श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः'

(भा. ११/१९/४१)

निरपेक्षतादि गुण ही 'श्री' हैं, इन गुणों से जो युक्त है वह श्रीमान है।

"कामत्यागस्तपः स्मृतम्"

(भा.११/१९/३७)

कामनाओं का त्याग ही सच्चा तप है। आज संसार में कौन श्रीमान् है अथवा कौन तपस्वी है? कृपणों की भीड़ है जो कृपणता की ही शिक्षा दे रही है। धन और भोग जुटाने वाले लोग धन व त्याग की शिक्षा कैसे दे सकते हैं?

श्री भगवान् ने कहा –

मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद् व्रतं तपः ॥

(भा. ११/१९/२३)

मेरे लिए धन, भोग और सभी प्रकार का सुख छोड़ दो।

सावधान!

श्री भगवान् के वचन –

सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ।
तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगान्धवत् ॥

(भा.११/२६/३)

सभी को चाहिए कि वे शिश्नोदरपोषी असत् पुरुषों के संग से सर्वदा दूर रहें अन्यथा उनका अनुगमन करने से वैसी ही दुर्दशा होगी जैसी एक अन्धे की दूसरे अन्धे को पकड़कर चलने पर होती है। क्यों देखा जाता है बड़े-बड़े विद्वानों में लोभ?

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक्तु मानसम् ।
दृश्या धीवृत्तयः साक्षी दृगेव न तु दृश्यते ॥

(भारतीतीर्थ स्वामी कृत- दृग्दृश्यविवेक)

रूप दृश्य है व नेत्र द्रष्टा, नेत्र दृश्य है तो मन द्रष्टा, मन भी दृश्य है तो बुद्धि द्रष्टा और बुद्धि भी दृश्य है तब वृत्ति द्रष्टा है। वृत्ति के अनुसार ही संसार का दर्शन होता है।

'वृत्तिसारूप्यमितरत्र' वृत्ति के सारूप्य से ही हमें संसार का ज्ञान होता है। विषयणी-वृत्ति विषयों में प्रवृत्त करायेगी तब किसी का रूप अच्छा लगेगा तो कभी लड्डू अच्छा लगेगा।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥

(गी. ३/३३)

बड़े-बड़े विद्वानों की भी लोभमयी वृत्ति देखी जाती है क्योंकि उनकी प्रकृति (स्वभाव) लोभमयी है। ऐसी स्थिति में निग्रह क्या करेगा?

प्रकृति अपने अनुसार सब कार्य करा लेगी। प्रकृति तीन प्रकार की है –

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥

(गी. ९/१२)

१-राक्षसी २-आसुरी ३-मोहिनी, इनके रहते बड़े-बड़े वक्ताओं की, ज्ञानियों की स्थिति भी ऊँचाई पर उड़ते हुए बाज की शव पर दृष्टि की भाँति अत्यन्त निम्न है। धर्म को व्यापार बनाकर आज कथाओं के स्थान पर विषपान् कराया जा रहा है। ऐसे लोग निश्चित ही धर्माचार्य न होकर धर्मह्रासाचार्य हैं जिनके द्वारा राष्ट्र ही नहीं समग्र विश्व क्षति को प्राप्त हो रहा है। मोह, धन और भोग से ही उत्पन्न नहीं होता, धर्म से भी मोह उत्पन्न होता है।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥
न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमाव सपत्नमृद्धंराज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥

(गी २/७, ८)

अर्जुन ने कहा – हे प्रभो! मेरा यह मोह धर्मजन्य है और यह सार्वभौम पद तो क्या इन्द्रपद प्राप्त होने पर भी दूर नहीं हो सकता है । अतःश्रीमद्भगवद्गीता के सारभूत एवं अन्तिम उपदेश के रूप में भगवान् ने कहा –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८/६६)

सभी धर्मों को त्याग दे अन्यथा ये धर्म भी चक्कर में डाल देंगे।

वर्तमान युग को धर्म-रक्षार्थ सांस्कृतिक-क्रान्ति की आवश्यकता है। इसके लिए "स्त्री को कथा-कथन का अधिकार नहीं" इस प्रकार के संकीर्ण विचारों को छोड़ना होगा। प्रयास करें कि स्त्रैण-पुरुष कथा न कहें।

वक्ता ऐसा हो जो अपरिग्रह की परम्परा में पुनः प्राण भरे।

भूलो मत, यह देश उन त्यागी, अपरिग्रही सन्तों की जन्मभूमि रहा है जिन्हें स्वप्राणों का भी मोह न था किन्तु आज यह जानकर आश्चर्य होगा कि सम्पूर्ण विश्व में जितना धन ८५ लोगों के पास है उसका आधा सम्पूर्ण संसार में है। आज धर्म के द्वारा व्यापार करने वाले लोग भूल गये कि एक प्रचारक स्वामी विवेकानन्द भी थे जो बिना ही द्रव्य के सम्पूर्ण विश्वभर में प्रचार हेतु घूमते रहे।

हमारा मंतव्य किसी व्यक्ति, समाज, जाति, वर्ग के खण्डन या मण्डन का नहीं अपितु भक्ति के माहात्म्य का प्रतिपादन करना एवं भगवद् गुणों का ओदार्य कथन एवं तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना है। स्त्री, वैश्य, शूद्र अथवा कोई जाति विशेष को महिमा मंडित करना लेखक का लक्ष्य नहीं है। क्योंकि भगवान् स्वयं गो, ब्राह्मण आदि के उपासक हैं लेकिन तुलसीदास जी ने कहा है कि जब तक सद-असद का विवेक हमको नहीं है हम घोर अन्धता को प्राप्त हो सकते हैं –

"ताते मैं गुण दोष बखाने संग्रह त्याग न बिन पहिचाने"।

राजा प्रताप भानु का चरित्र राम चरित्र के पूर्व में लिखकर तुलसीदास जी ने क्या सन्देश दिया है? यदि विवेक का आश्रय लिया जाता तो प्रतापभानु को रावण नहीं बनना पड़ता, ऐसे ही महारानी कैकेयी मंथरा की कुमन्त्रणा को समझने में विवेकवती होतीं तो सारे साम्राज्य के विनाश का कलंक क्यों झेलती। जीव की ये दुर्दशा है कि वह अपने मनमाने सिद्धान्त को सर्वोपरि मानकर किन्तु, परन्तु, क्यों, कैसे आदि की विषमताओं में विवेक शून्य हो जाता है। हम भगवान् की कृपा का आदर करते हुए, उनके द्वारा प्रदत्त मनुष्य शरीर से केवल उनकी प्राप्ति का ही मार्ग अपनाएँ, इसी दृष्टिकोण से बिना किसी भेदभाव से शास्त्र सम्मत सिद्धान्तों के कथन का ही प्रयास किया गया है। स्त्री, वैश्य, शूद्र को भी परागति की प्राप्ति होने का उल्लेख समस्त सद्-ग्रन्थों अथवा महापुरुषों की वाणियों एवं उनकी क्रियात्मक जीवन शैली तथा उनके अनुभवों से सुस्पष्ट है। यही कारण है आप सबका जीवन भी आत्मकल्याण के जिज्ञासु साधकों के लिए अवलम्ब बनता रहा है। वाल्मीकि जी, रैदास जी, कबीरदास जी, रसखान जी, रहीम जी आदि ने भगवत् प्राप्ति के साथ-साथ भगवद् भक्ति की पतित पावनी रसधारा से समस्त लोक को सिंचित किया है।

यहीं दूसरा पक्ष यह भी है कि इन सब की आलोचना सर्वत्र दृष्टि गोचर होती है। यथा तुलसीदास जी ने ही कहा है –

ढोल गवांर शुद्र पशु नारी सकल ताड़ना के अधिकारी।

शुकदेव जी महाराज ने भी शुक-रम्भा सम्वाद में स्त्रियों के वीभत्स स्वरूप को बार-बार दिखाया है –

कापट्यवेषा जनवञ्चिका सा विण्मूत्र दुर्गन्धदरी दुराशा।
संसेविता येन सदा मलाढ्या वृथा गतं तस्य नरस्य जीवितम्॥
उन्मत्तवेषा मदिरासु मत्ता पापप्रदा लोकविडम्बनीया।
योगच्छला येन विभाजिता च वृथा गतं तस्य नरस्य जीवितम्॥

शुकदेव जी के कथन का आशय केवल स्त्री आलोचना करना नहीं है इन्ही शुकदेव जी ने ब्रजदेवियों की महिमा के सन्दर्भ में कहा है कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – हे गोपियो! मैं कितने ही जन्म ले लूँ परन्तु तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हो सकता –

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन्दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥

(भा.१०/३२/२२)

इस तरह कथनद्वयप्रकारोक्ति में मन्तव्य की अज्ञेता प्राणी को मानसिक अपराध की ओर प्रवाहित कर देती है जगदाराध्य श्रीकृष्ण के गोपियों के साथ रास रस का प्रसंग भक्ति के आचार्य परीक्षित जी तक को शंका में डाल देता है –

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् ।
किमभिप्राय एतन्नः शंशयं छिन्धि सुव्रत ॥

(भा.१०/३३/२८, २९)

शंका हुई तो उसकी क्षति उठानी पड़ी रास-रस का प्रवाह जो अनन्त मंगल का हेतु था बाधित हुआ।

एक वेश्या जो निंदनीय कर्म के द्वारा घृणाकी दृष्टि से देखी जाती है उसमें भी यदि वह रजो धर्म से प्रभावित हो तो चाण्डालिनी के रूप में मानी जाती है। उसके चरित्र को भी नाभा जी ने बड़ी श्रद्धा के साथ गाया है यही नहीं उसकी उस दूषित अवस्था में स्वयं भगवान् ने उसके हाथों से स्वर्ण हार पहनने के लिए मूर्ति रूप से अपना सिर झुका दिया था। भगवान् जिसको अपनाते हैं उसकी आलोचना फिर चाहे सारा जगत करे, वहाँ फिर किसी की आलोचना का महत्व क्या?

यद्यपि श्री प्रह्लाद जी ने उपरोक्त का समाधान श्री मद्भागवत जी में पूर्व में ही स्पष्ट कर दिया है। कहते हैं कि बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण स्वयं अपने आपको भी पवित्र नहीं कर सकता यदि वह अहंता आदि गुणों से युक्त है। वहीं एक शूद्र या चाण्डाल स्वयं का ही नहीं अपितु अपने समस्त वंश को पावन बना देता है, यदि उसका समर्पण सच्चा है। समर्पण की सच्चाई मन, वाणी और सभी कर्मो के द्वारा होनी चाहिए। स्त्री, पुत्र, धन, वैभव, प्राण आदि सब कुछ समर्पित हो वही वास्तव में समर्पण है भक्तिहीन ब्रह्मा जी भी प्रशंसनीय नहीं हैं फिर साधारण आदमी की तो बात ही क्या।

भगति हीन बिरंचि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ॥

(रा.च.मा.उ.का.८६)

पुरूष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥

(रा.च.मा.उ.का.८७क)

बात समर्पण भाव की है, भक्ति की है। यदि भक्ति और भाव है तो उस प्राणी का सर्वत्र अधिकार है। आज घर-घर में कथावाचक तैयार हो रहे हैं जिसमें स्त्रियाँ भी बड़ी संख्या में अग्रसर हो रही हैं। सभी जाति वर्ग के लोग भागवत व्यास बनने को आतुर हैं और लोगों का मार्ग दर्शन भी कर ही रहे हैं परन्तु क्या वास्तव में मार्ग दर्शन हो रहा है? भागवत वक्ता कैसा होना चाहिए यह शुकदेव जी के व्यासत्व से स्वतः सिद्ध हो गया है कि शुकदेव जी जैसे नग्न व रिक्त हस्त आये थे कथा के बाद वैसे ही चले गए। क्या उस तरह की योग्यता हम में दिखाई देती है। नहीं तो .... आत्मचिंतन करके देख लें।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥
धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥

(भा.१/२/८, ९, १०)

चिन्तनोपरान्त हम यही पायेंगे कि हमारा वह जीवन पूर्णतया खोखला ही है। जरा सी दक्षिणा कम मिलती है तो हमारा मुख मलिन हो जाता है। कई बार तो मंच पर ही भेंट का वाद विवाद लोगों में परिहास का कारण भी बन जाता है। इस तरह के कथाकार बनकर क्या हम कृष्णाराधक बन पायेंगे? भक्ति की कसोटी पर खरा उतरने वाला प्राणी चाहे वह कोई भी है वह जगत पूज्य है।

आलोचकों को प्रणाम !

आलोचकों को प्रणाम करने की परम्परा उदाराशयी महापुरुषों की रही है।

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ।
जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥

(रा.च.मा.बाल. ४)

गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस के प्रारम्भ में सर्वप्रथम खल वन्दना की। सच्चे भाव से उन दुष्टों को प्रणाम किया जो अकारण ही अपने हितैषी के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। गाय की ही सामर्थ्य है – अपने सद्यःजात वत्स के शरीर पर लगे गर्भ के नारकीय विकारों को अपनी जिह्वा द्वारा चाटकर स्वच्छ करती है अतः उसे वत्सला कहा गया। संसार की अन्य कोई भी माँ गर्भ के दूषण को जीभ से नहीं चाट सकती किन्तु इससे भी अधिक वात्सल्य आलोचकों में देखा गया है –

लोके गरीयसी माता मातृतोऽप्यधिकः खलः।
माता पुनाति हस्ताभ्यां खलस्तु जिह्वयामलम्॥

पाप-भक्षण न माँ कर सकती है न अन्य ही कोई। जिह्वा से पाप चाटने का कार्य तो कोई खल ही कर सकता है अतः कहा –

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिनु पानी साबुन बिना, निरमल करै सुभाय॥

(कबीरदासजी)

श्री चरण दास जी की वाणी में –

साधो निंदक मित्र हमारा।
निंदक को निकटै ही राखूं होन न दें नियारा।
पाछे निंदा करि अघ धोवै, सुनि मन मिटै बिकारा।
जैसे सोना तापि अगिन मैं, निरमल करै सोनारा॥
घन अहरन कसि हीरा निबटै, कीमत लच्छ हजारा।
ऐसे जांचत दुष्ट सन्त कूं, करन जगत उजियारा॥
जोग जग्य जप पाप कटन हितु, करै सकल संसारा।
बिन करनी मम करम कठिन सब, मेटै निंदक प्यारा।
सुखी रहो निंदक जग माहीं, रोग न हो तन सारा।
हमरी निंदा करने वाला, उतरै भवनिधि पारा॥
निंदक के चरणों की अस्तुति, भाखौं बारंबारा।
'चरणदास' कहै सुनिए साधो, निंदक साधक भारा॥

सीमान्त ब्रज के विषय में

महापुरुषों के द्वारा होने वाले लोकोपकारों की महत्ता और व्यापकता का वर्णन मानवीय बुद्धि की परिधि से सर्वथा बाहर है।

आज पूज्यपाद श्री नारायण भट्ट गोस्वामी जी का ब्रज-बोधक अनुपम ग्रन्थ "ब्रज भक्ति विलास" ब्रज-प्रेमियों का इष्ट ग्रन्थ है पूज्यपाद का इससे भी विशाल ग्रन्थ "बृहद् ब्रज गुणोत्सव चन्द्रिका" जो बहुत प्रयासों के पश्चात् भी प्राप्त न हो सका, इस अप्राप्त ग्रन्थ में ब्रज के ६००० गाँवों का उल्लेख है। यद्यपि इसकी प्राप्ति ब्रज के स्वरूप-वैभव के प्रकाश हेतु अपूर्व ही होती किन्तु श्री मानमन्दिर की ब्रज अन्वेषक गण के अथक प्रयास से श्री राधा वल्लभ सम्प्रदाय के परम रसिकाचार्य श्री हितरूप लाल जी महाराज के शिष्य चाचा वृन्दावन दास जी का दुर्लभ ग्रन्थ "ब्रज परिक्रमा" प्राप्त हुआ, जिसने ब्रज के अनेक उपेक्षित सीमावर्ती क्षेत्रों को पुनः गौरवान्वित होने का अवसर प्रदान किया।

श्री चाचा वृन्दावन दास जी ने चार लाख पदों की रचना की थी, जिनमें वृन्दावन संग्रहालय में लक्षावधि पद ही शेष हैं। समय-समय पर धरोहर के साथ-साथ धरोहर को प्रामाणित करने वाली वाणियाँ भी लुप्त हो जाती हैं फिर यह धरा किसी महापुरुष से संविभूषित होती है, जिनके द्वारा पुनः धरोहर व प्रमाण रूप वाणियों का प्रकाश होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री चाचा वृन्दावन दास जी की वाणी एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु के सिद्ध पार्षद श्रीमद्रूप गोस्वामी जी का 'मथुरा माहात्म्य" तथा एक अन्य गौड़ीय ग्रन्थ 'भक्ति रत्नाकर' के आधार पर ही ब्रज का सीमांकन हुआ अतः इसकी प्रामाणिकता में संदेह का कोई स्थान नहीं है।

विधर्मी आक्रान्ताओं द्वारा ब्रज पर होते रहे अत्याचार से कितनी ही बार ब्रज को उत्थान-पतन का सामना करना पड़ा। बाहरी विघातक गये तो गृहजन ही विघातक सिद्ध होने लगे; पुनः अत्याचार की आँधी आई। संकीर्ण विचारकों ने, भेदवादियों ने अवशिष्ट ब्रज ध्वस्त कर दिया। संकीर्ण विचारों से अपना नाश तो किया ही सामाजिक क्षति भी पहुँचाई। आज धाम के स्वरूप की विकृत प्रस्तुति इस संकीर्णता की ही देन है। अनन्त धाम को अत्यल्प प्रस्तुत करना संकीर्णता का द्योतक है। भोले-भाले भावुक भक्तों की नजरबन्दी कर दी। ऐसी संकट की स्थिति में भक्तों की भावना पर होने वाले इस अत्याचार के निरसन निमित्त परम प्रकाशक प्रभु ने श्रीबज्रनाभ, श्रीमद्वल्लभाचार्य, श्रीचैतन्यदेव, श्रीरूप-सनातन, श्रीनारायणभट्ट गोस्वामी, श्री चाचा वृन्दावनदास, श्रीसूरदास, आदि अपने अभिन्न अंगरूप भक्तों को धरातल पर भेज संकीर्णता से आकीर्ण विचारों के धूम का निर्मूलन कराया अतः वैष्णव सम्प्रदाय के लिए आधुनिक वाणी उतनी प्रामाणिक नहीं है जितनी कि आद्याचार्यों की वाणी। वे ही निरापद सत्य का

प्रत्यक्ष निष्पक्ष वर्णन कर सकते हैं। हम लोगों में तो धन, जन, पद-प्रतिष्ठा की स्पृहा...जैसी विनाशी प्रवृत्तियाँ हैं, ये प्रवृत्तियाँ सत्य को आवृत कर देती हैं। सत्य का निराकरण परमार्थ-स्वार्थी सन्त ही कर सकते हैं। ब्रज के विषय में उदाराशयी समस्त आचार्य गोस्वामी पादों का बड़ा व्यापक दृष्टिकोण रहा है।

श्रीनारायणभट्टजी के अनुसार **'ब्रज भक्तिविलास'** (षष्ठं अध्याय के आदि) में ब्रजमण्डल प्रदक्षिणा का परिमाण ८४ कोस है।

चतुर्दिक्षु प्रमाणेन पूर्वादि क्रमतोगणत् ।
पूर्व भागे स्थितं कोणं वनं हास्याभिधानकं ॥
भागे च दक्षिणे कोणं शुभं जन्हुवनं स्थितं ।
भागे च पश्चिमे कोणे पर्वताख्य वनं स्थितं ॥
भागे ह्युत्तर कोणस्यं सूर्यपतन संज्ञकं ।
इत्येता ब्रज मर्यादा चतुष्कोणाभिधायिनी ॥

(ब्रजभक्तिविलास, ब्रह्माण्ड पुराण)

उपरोक्त श्लोकों में ब्रज के चतुष्कोण पर स्थित सीमावर्ती ग्रामों का उल्लेख किया है – पूर्व में हास्यवन (अलीगढ़ जिले का बरहद गाँव)।

पश्चिम में उपहार वन (गुड़गाँव जिले में सोन नदी तक)।

उत्तर में भुवनवन (भूषणवन, शेरगढ़ परगना)।

दक्षिण में जह्नुवन (आगरा जिले में बटेश्वर गाँव)।

(१) पूर्व में हास्य वन (अलीगढ़ जिले का हसनगढ़ ग्राम)।

(२) पश्चिम में पर्वत वन (कामां के निकट पहाड़ी तहसील)।

(३) दक्षिण में जह्नु वन (राजस्थान में भरतपुर जिले का जाजऊ ग्राम)।

(४) उत्तर में सूर्यपत्तन वन (उ. प्र. में अलीगढ़ जिले का ग्राम जेवर)।

एक ही नाम से एक से अधिक स्थलों का अभिलेख मिलने से हमें भ्रमित नहीं होना चाहिये। ब्रज भूमि अत्यन्त व्यापक रूप में प्रतिष्ठित रही है। पुरातन व आधुनिक विद्वानों तथा पुराणों के मध्य समायोजन भाव से यदि देखा जाय तो मथुरा से आगरा, बटेश्वर, गोहद (भिण्ड जिला), धोलपुर, जाजऊ, फतेहपुर सीकरी, भरतपुर, कुम्हेर, नदवई, नगर, पहाड़ी, नूंह, सोहना, पलवल, जेवर, अलीगढ (हरिदास पुर), हाथरस को परिधि के रूप में मानना युक्ति संगत होगा क्योंकि वायु पुराण में तो ब्रज भूमि का इससे भी अधिक विस्तृत (१६० कोस अर्थात् ४८० कि.मी.) स्वरूप स्वीकार किया गया है।

इसी ग्रन्थ में पुनः उल्लेख प्राप्त होता है –

अथ चतुराशीतिकोशमर्य्यादमथुरामण्डलमध्ये मर्य्यादीकृत्य चतुर्दिक्षु ब्रजमण्डलमेकविंशक्रोशपरिमाणीय चतुः सीमावनानि ।

प्रताप मार्तण्डे –

पूर्वं हास्यवनं नाम पश्चिमस्यां पहारिकम् ।
दक्षिणे जन्हुसंज्ञकं सोनहदाख्यं तथोत्तरे ॥
इति चतुः सीमा वनानि ।
अथैकं चतुर्णां चत्वारोऽधिपाः ।

नारदीयेऽन्तिमेपटले –

लीलाकमललोचनो हास्यवनाधिपो देवः ।
विधि पश्यति लोकेश्वरो पहार वनाधिपो देवः ।
लंकाधिपकुलध्वंसी जन्हुवनाधिपो देवः ।
श्री वत्सलाञ्छनः त्रिभुवनवनाधिपो देवः ॥

८४ कोस ब्रजमण्डल में मथुरा जनपद को मध्य में स्थित करके चतुष्कोण में २१-२१ कोस के परिमाण पर जो सीमावान हैं, प्रताप मार्तण्ड शास्त्र में निम्नवत् उद्धृत हैं –

पूर्व में हास्यवन (हसन गढ़), पश्चिम में पर्वत वन (पहाड़ी), दक्षिण में जन्हुवन (जाजऊ), उत्तर में सोनहद वन (सोहना ग्राम)।

साथ ही अधिष्ठातृ देवों का वर्णन भी प्राप्त होता है –

हास्यवन के अधिष्ठातृ लीलाकमललोचन हैं, पर्वतवन के अधिष्ठातृ विधि पश्यतिलोकेश्वर, जह्नुवन के लंकाधिप कुलह वंसी एवं सोनहदवन के श्रीवत्सलाञ्छन अधिष्ठातृ देव हैं।

श्रीशिवादि देवों ने चतुष्कोण रूप में ब्रजमण्डल को ८४ कोस बताया है।

चारों दिशाओं में २१-२१ कोस का ग्रहण है। यद्यपि वर्तमान सड़क मार्गों की दूरी २१ कोस से कुछ अधिक हो सकती है परन्तु पुरातन मार्ग इसी दूरी में समाहित थे।

नारदादि मुनियों का मत है कि 'ब्रज' मण्डलाकार में ८४ कोस है एवं सनकादिक मुनीश्वर ने इसी 'ब्रज' को शृङ्गाराकार में ग्रहण किया है। आदिवाराह में इन दोनों का वर्णन प्राप्त होता है –

हास्यवन एवं जन्हुवन के मध्य प्रथम विश्राम स्थान 'गोपनवन' है जो कि आग्नेयकोण में स्थित है, जन्हुवन एवं पर्वतवन के मध्य द्वितीय विश्राम स्थान 'गोमयवन' नैऋत्यकोण में स्थित है, सुन्हवन एवं जन्हुवन के मध्य तृतीय विश्राम स्थान 'कमलावन' वायव्यकोंण

में स्थित है, सुन्हवन एवं जन्हुवन के मध्य चतुर्थ विश्राम स्थान 'हरिवन' ईशानकोण में स्थित है।

शृङ्गाराकार –

इस शृङ्गाराकार परिक्रमा का परिमाण भी ८४ कोस है। मण्डलाकार व शृङ्गाराकार दोनों की तिरछे भाव से ४२ कोस प्रदक्षिणा बताई है। इस प्रकार तिरछे भाव से प्रदक्षिणा मार्ग कुल ३३६ कोस होता है। प्रतिग्राम ढाई कोस प्रदक्षिणा से ग्रामों की प्रदक्षिणा १२० कोस की है।

श्रीमद् रूप गोस्वामी पाद का व्यापक दृष्टिकोण –

"एतेन यायावरमवधिकृत्य शौकरीवटेश्वरपर्य्यन्तं मथुरामण्डलं ज्ञेयम्"

(मथुरा माहात्म्यम् - १५५)

यायावर स्थान से शौकरी बटेश्वर पर्यन्त मथुरामण्डल की सीमा है।

यही स्वरूप भक्ति रत्नाकर में भी प्राप्त है –

मथुरा मण्डल सीमा यायावर हैते ।
शौकरी बटेश्वर पर्य्यन्त शास्त्र मते ॥
यायावर विप्र नामे यायावर स्थान ।
आदि शूकरेर नाम शौकरी आख्यान ॥
बटेश्वर शिव ये हों सवार पूजित ।
श्री सूरसेनर राज्य सर्वत्र विदित ॥
वराह दशन हृद एवे कह्ये लोकेते ।
यायावर शौकरी प्रसिद्ध पुराणेते ॥

(भक्तिरत्नाकर)

पद्मपुराणान्तर्गत यमुना माहात्म्य में यायावर क्षेत्र इस प्रकार से वर्णित है –

पूर्वकाल में यायावर नामक इन्द्रियजित विप्र ने इस सुरम्य स्थान पर तप किया अतः "यायावर विप्रस्थान" नाम से यह प्रसिद्ध हुआ। ("यायावर विप्रस्थान" नाम से प्रसिद्ध यह सुरम्य स्थल पूर्वकाल में यायावर नामक इन्द्रियजित विप्र की तपोभूमि रही।) इन्द्र-शाप से मुक्ति के लिए तप संलग्न उस विप्र को श्रीयमुनाजी पवित्र करने पधारीं, फलतः रथारूढ़ हो विप्र को तो स्वर्ग प्राप्ति हुई। अनन्तर श्रीयमुनाजी मथुरा मण्डल पधारीं, मथुरा मण्डल से कुरुदेश (शूरसेन राज्य) को पवित्र करती हुई द्वादश वनों का अतिक्रम कर विश्रान्ति तीर्थ में केशव प्रभु के चरणों में विश्राम किया। श्रीभगवदालिंगन प्राप्त कर यमुना ने आगे प्रस्थान किया, ध्रुवजी के स्थान होते हुए रेणुकाश्रम (रुणकता) पहुँचीं। अनन्तर शकुन्तला-पुत्र भरत के आश्रम होते हुए पश्चिममुखी होकर मथुरा धरा को पवित्र करने लगीं। पुनः पूर्वमुखी होकर आदिवाराहदेव की जन्मभूमि शूकरक्षेत्र में पहुँचीं और

फिर पश्चिममुखी होकर कुटिल गति से प्रवाहित होती हुई इष्टकाश्रम (वसिष्ठ मन्दिर) पहुँचीं।

श्रीमद्रूपगोस्वामी जी द्वारा विरचित "श्री श्री मथुरा माहात्म्य" में ब्रज वर्णन –

प्रथम तो मथुरा मण्डल (ब्रज प्रदेश) के ५ विभाग किये।

१- जिसमें पहला विभाग पञ्च योजनात्मक।

पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम्।
कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी॥

(पद्म पुराण, नारद स्त्रीत्व प्राप्ति वर्णन-७५/१०)

किन्तु पंचयोजनात्मक स्वरूप से चित्त सर्वथासन्तुष्ट नहीं हुआ अतः क्रमशः द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पञ्चम विभाग किया –

२- द्वितीय विभाग – १ योजन पर्यंत राजधानी रूप में कहा जाता है।

३- तृतीय विभाग – द्वादश वनों का समष्टि रूप २४ कोस का है, अन्यत्र इसे ३२ वनों का समष्टि रूप भी कहा है। यथा –

आदिवाराह मथुरा खण्ड –

गव्यूति द्वादशमयी द्वादशाख्यसंयुता।
तत्रापि मथुरा देवी सर्वसिद्धिविधायिनी॥
शाखामृगगवाकीर्णं नानामृगनिवेषितम्।
द्वात्रिंशद् वनसंवीतं वैकुण्ठादपि सौख्यदम्॥

शब्दार्थ –

"चौबीस कोसीय ब्रज में १२ वन हैं, जहाँ मथुरा देवी सभी अर्थों की सिद्धि देने वाली है, अनेकों गायों से सेवित ३२ वनों से घिरा हुआ वैकुण्ठ से भी अधिक यह सुखप्रद है।"

गौतमीय तन्त्र में भी ३२ वन की समष्टि को मथुरा मण्डल कहा।

द्वात्रिंशद् वनराजिभिः राजितं सर्वतो मुखम्।
गोलोकादागतैर्दिव्यैर्वेष्टितं गो गवाष्टकम्॥

"गोलोक से आये ३२ दिव्य वनों से वेष्टित यह प्रदेश गौ-समूह से युक्त है।"

भागवते –

"प्रययुस्तेऽम्बिकावनम्"

(भा.१०/३४/१)

"पशव्यं नवकाननं"

(भा.१०/११/२८)

टीकाकारों ने भी व्याख्या में कहा –

"नवानि अवान्तराणि काननानि यस्मिन्"

बहुत से व्यष्टि वनों की समष्टि संज्ञा ही 'वृन्दावन' है।

४- चतुर्थ विभाग –

"विंशतियोजनात्मक"

वाराहे –

"विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मण्डलम्"

मेरा मथुरा मण्डल २० योजन का है।

श्रीगर्गसंहिता में भी २० योजन ब्रज का उद्धरण है –

प्रागुदीच्यां बर्हिषदो दक्षिणस्यां यदोः पुरात् ।
पश्चिमायां शोणपुरान्माथुरं मंडलं विदुः ॥
विंशद्योजनविस्तीर्णं सार्द्धं यद्योजनेन वै ।
माथुरं मंडलं दिव्यं ब्रजमाहुर्मनीषिणः ॥

(गर्ग संहिता, वृन्दावन खण्ड - १/११, १२)

अभी भी लगा कहीं व्यापकत्व संकुचित तो नहीं हो गया अतः श्रीपाद ने पंचम विभाग किया, इस पंचम विभाग में और स्पष्ट किया –

५- पंचम विभाग –

त्रिंशद् योजनविस्तारो मथुरायाश्च मंडलः ।
यत्र प्राणा विमुच्यन्ति सिद्धाः यान्ति परां गतिम् ॥

शब्दार्थ –

"तीस योजन विस्तृत मथुरा मण्डल है। जहाँ प्राण त्यागने से सिद्ध होकर जीव परागति प्राप्त कर लेता है।"

वायुपुराण में वशिष्ठजी व दिलीप के सम्वाद में भी वर्णित है –

चत्वारिंशद् योजनानां ततस्तु मथुरा स्मृता ।
यत्र देवो हरिः साक्षात् स्वयं तिष्ठति सर्वदा ॥

यह ४० योजनात्मक (१६० कोस) विस्तृत ५ वाँ विभाग है, यहाँ सर्वदा श्रीहरि विद्यमान रहते हैं।

इसी प्रकार श्री नारायण भट्ट जी द्वारा विरचित भक्ति विवेक नामक ग्रन्थ में भी पाँच विभाग प्राप्त होते हैं –

"तत्र पञ्चधा विभागाः तत्रापि केवलरसरूपः पंचयोजनात्मकः पद्मपत्रवत् श्रीवृन्दावनाख्यः एको विभागः द्वितीयस्तु योजनपरिमितः राजधानीरूपः तमेव सभामण्डप-सिंहासनात्मकं वर्णयन्ति । तत्र सत्यलोकः छत्रं श्री नारायणाद्यवताराः आवरणत्वेन स्थिताः । तृतीय द्वादशगव्यूत्यात्मके विभागे ब्रह्मरुद्रादयः । चतुर्थे विंशति योजनात्मके सर्वाणि तीर्थानि तत्तीर्थाविष्ठातारश्च निवसन्ति । पंचमे विभागे चत्वारिंशद्योजनात्मके इन्द्राद्यधिकारिण: ततो वहिः प्राकृताः इति तत्सर्ग:" ॥

(भक्तिविवेक)

परन्तु आज संकीर्णता इस व्यापक सत्य की स्वीकृति में बाधक बन रही है। संकुचित विचारों के कारण आज लोग वास्तविकता के कथन, श्रवण, अनुमोदन से हिचकिचाते हैं एवं संकुचित बातों के कथन-अनुमोदन को अनन्यता मान अंधभ्रमितवत् चक्कर काट रहे हैं। आचार्यों की वाणी किनारे कर ऐसे मनमुखी लोग महद् अपराध के साथ-साथ धाम में रहते हुए अहर्निश धामापराध, नाम लेते हुए नामापराध, सेवा करते हुए सेवापराध व अन्य सर्वविध अपराध का ही कार्य कर रहे हैं।

बार-बार ब्रज शोचनीय स्थिति में आया, ऐसे विषम काल में इन आचार्य महानुभावों ने अपनी अमर वाणी से, अमर लेखनी से ब्रज की विस्तृत लक्ष्मण रेखा खींच कर सम्पूर्ण भक्त समाज को अमूल्य एवं अनुपम निधि प्रदान की है।

चाचा वृन्दावन दास जी के अनुसार –

ब्रज रस-रसिक चाचा वृन्दावनदासजी कृत "प्राचीन ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा" ग्रन्थ में अनेकानेक पदों के माध्यम से ब्रज के विभिन्न सीमान्त ग्रामों का वर्णन हुआ है।

ब्रज सीमा का निर्धारण करते हुए पद संख्या १२७ में कुकरी, पहाड़ी ......आदि ब्रज के पश्चिमी सीमान्त ग्राम, पद संख्या – १२९ में सौंध, पुन्हाना, वनचारी, खाम्बी, वरहद, सीकरी, पद संख्या – १३४ व १३५ में पहाड़ी, सोनहद एवं पद संख्या – १३२ में आगरा, पहाड़ी, वरहद, कंजोली, मिडावली, सिंघावली.........आदि को ब्रज के सीमावर्ती ग्रामों के रूप में स्वीकार किया है।

कतिपय पद द्रष्टव्य हैं –

नमो नमो वृन्दावन प्रभुताई ।
मण्डल आठ लगे जिहि सीमा वरनौं नाम सुनों चितलाई ॥
पूरब दिशि ताको नाम तवीसा लग्यौ तरहटी उपमा पाई ।
गोकुल, रावल विदित महावन जन्म भूमि राधा हरि गाई ॥
अगिन कोण तरवाहि विदित है सो ग्रंथनि नीके समझाई ।

सीम सीकरी ताकी वरनी पुन करा हरो हद ठहराई ॥
गिरि गोवर्धन कठै लागी या प्रशंग काँठैर कहाई ।
दक्षिन दिशा नई ऋतु दूजी हद जु हलैं नौं थान चिताई ॥
पच्छिम दिश है देश भयानो श्री वृषभानु विदित ककुराई ।
ओर पहारी हद वरहानौ कामा वरषानों सुख दाई ॥
वृन्दावन सों संधि मिली जाकी या तै साँधि नाम कह्यौ भाई ।
बायव्य दिशि मण्डल नंदी स्वर नंद राय की फिरत दुहाई ॥
हौंत मिली कहैं हूठा सानी नौंहाद मिली नष बन सों आई ।
मंडरानी मण्डल रविजा तट सूरौं तो जु सींव दर्शाई ॥
उत्तर दिशि मण्डल जु लग शिवा वृन्दावन लग सींव जताई ।
कोर कनारो हर्दे हर्दुआ कुर्सी करी तिन मध्य सुहाई ॥
दिसि ईसान जु वर्हदपाटी वन रजधानी मधुर गहाई ।
श्री राधा कौ धाम अलौकिक ताकी महिमा वरण सुनाई ॥
मण्डल नाम जथा मति अपनी ताकी रच यह माल बनाई ।
सोहेगी रसिकन जु कंठ मैं श्रवन पठन करौ चित जु लगाई ॥
लीजो सुमति सुधार चूक जो कहों शिर नाय न करौं ठिठाई ।
श्रीहरि वंश प्रसाद जु दरसी कही कथा वन सुन्दर ताई ॥
दासनि दास करो वनरानी और न आशा चित्त खटाई ।
वृन्दावन हित रूप स्वामिनी हित नाते लीजे अपनाई ॥

(प्राचीन ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा/ पद संख्या १२७)

नमो नमो गुरु हित रूप बैद्यसद ।
राधा वल्लभ नाम रसायन देत जनन कों हरन जगतगद ॥
तिनकी कृपा घोष जस वरनौ नाम ग्राम दायक जु परम पद ।
ब्रजमंडल के सीस मुकट मणि ताकौं कहत पुराण सौंन हद ॥
कृष्ण जहाँ लगि कियौ गोचारण तहाँ भये तीरथ कुण्ड परसि पद ।
सर्वोपरि बाराह बखानी महिमां अघटित मनहु महांनद ॥
नंद नंदन जिभ्या रज चाटी बछरा बन झार्‌यौ विधि कौ मद ।
बृन्दावन हित रूपी महिमा और महातम फल किये सवरद ॥

(प्राचीन ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा/ पद संख्या – १२८)

नमो नमो गुरु कृपा मनाऊँ ।
उर अभिलाषा उपजी जैसी वृज महिमा जु यथामति गाऊँ ॥
हद सीमा के गाँम ठांमजे तिन कौ व्यौरौ कहि जु चिताऊँ ।
प्रथम सौंनहद पुनबन चारी षांभी षंभ गड्यौ जु सुनाऊँ ॥

ऊँची ऐंच जहा वलि जमुना ऐंची प्रगट सुचिन्ह बताऊँ ।
हूंठासानी लसति हौंठये कुर वारौ ब्रज हैरौ नाऊँ ॥
पषौधना जु विराजत पषमें कौलानौं करारि ठहराऊँ ।
बामौतीं ब्रज के जु बांम अंग सींम सिवारे कौं रह ठाऊँ ॥
उसरभ उसरि वसी जो ब्रजतें कुरवैं हदसीकरी जताऊँ ।
द्वै सैंनी जु द्वार मनो ब्रज कौ तासिर कलश मौर थर गाऊँ ॥
उषरानौ जु उसर तौ ब्रज तें पूरब मुरती सींम जनाऊँ ।
हद जु हर्दुवा कौर भीतरी जहाँ अचल तीरथ सिरनाऊँ ॥
ता आगैं कुर छौड करारौ अद रौहन जु अर्ध सम झाऊँ ।
सींम नांम सौंनौंठ विदित है यौ वरहद सौं जाय मिलाऊँ ॥
गोपी कृष्ण मनाई जहां ते यौ गोपी मानई गनाऊँ ।
वृन्दावन हित रूप घोष की विनमित लीला पारन पाऊँ ॥

(प्राचीन ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा/ पद संख्या १२९)

नमो नमो बरहद विख्यात ।
पूरब उत्तर दिस ब्रज की हद हरि गोचारन जहाँ लगजात ॥
श्री बलदेव कृष्ण के अग्रज तहां विराजत कमनीगात ।
हल मूंसल है आयुध जिनके असुर बली तिनतें जु डरात ॥
तिनके नाम कुंड तहां राजत तामें जे अनु-रागीन्हात ।
वृन्दावन हित रूप कहा कहों कटत पाप हरिधाम बसात ॥

(प्राचीन ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा/ पद संख्या १३१)

नमो-नमो कृष्ण घोस रज प्यारी ।
कौतुक लगे फिरत गोचारत ग्राम नाम धरि सींव निकारी ॥
नाम कुरसिवां कहत कुरसड़ा पूरब दिसि सीमतौ निहारी ।
सीम सैंथरी पुन जु कँठैला सरौठ अरु नैनऊँ सुभकारी ॥
मिड़ावली जु मैंड़ है ब्रज की गिह चौल माघोर अगारी ।
ततरोतो कंजौली वरनौं निकट तरनिजा सोभा भारी ॥
गऊ घाट गोधन जल पीवै कृष्ण ग्वाल नित करैं षवारी ।
ब्रज आगर आगरौ जु पूरब पौर निकसनी मंगल कारी ॥
गऊ घाट तैं दक्षिन ओरी नाम मिढ़ाषुरि मेंड़ संमारी ।
पुनि किरावली ते अछनेरौ नाम सीकरी सीमां धारी ॥
कोउ वनै राजा कौउ वनै मंत्री वैठक सिंधावली पहारी ।
चढ़ि गई गाय जहा वहनेरा रुचै खेल ये बड़े खिलारी ॥
गोधन दृष्टि परत नहि जव तव हँसि मनसुखा देत करतारी ।

धौरी धूंमरि कहि हरि टेरत सुनगायन तव सुधि जु सम्हारी ॥
हेज भरी गुन भरी सुलक्षन आई सनमुख भरत हुंकारी ।
जाय समाहद पानी प्यायौ वरहद सर न्हाये जु विहारी ॥
दूजी वरहद निकट समाहद सीमा अधिक जु न्यारी न्यारी ।
वृन्दावन हित रूप कुंड तहां वल दाऊ की मनु जल झारी ॥

(प्राचीन ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा/ पद संख्या १३२)

नमो नमो ब्रज पच्छिम ओर ।
चली समाहद तें परि करमां गोचारी जहां नन्द किशोर ॥
गाम अनेक कहाँ लग वरनों कह्यो मुख्य जैसी मति मोर ।
फर सोनहद जु दक्षन दिस फरसौ गाँव वसत है व्रज की कोर ॥
गांम नदमई नंदराय कौ वौरे वसत व्रज पैले छोर ।
ग्राम कटाहद जाके कांठै सीसवार है जाके घोर ॥
आगैं थूंन विदित थिरु थंभन नगर रसीहौ सीमा जोर ।
पुन जु सीकरी व्रज की सीमा घोस जहां कियौ गायन सोर ॥
श्याम नेरिसीं वाज घोस की श्याम करी तहां मुरली घोर ।
वृन्दावन हित रूप नन्द सुत गाय चरावत वन गिरि खोर ॥

(प्राचीन ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा/ पद संख्या – १३४)

नमो नमो ब्रज हद जु पहारी ।
तहां लग गाय चरावत मोहन ग्वाल अन्तनके अधिकारी ॥
कहूँ रचत हैं खेल गेंद कौ लपक लेत कर गगन उछारी ।
चढ़ाचढ़ी कौ खेल कहूं रचैं अपनी अपनी वदत जु वारी ॥
कबहूँ गिल्ली डण्डा खेलत चोट करैं पुन देई किलकारी ।
कबहूँ चढ़त पहार सिखर पर भैया कहाँ बिरमी छकहारी ॥
अरे गुपाल असुर बहु मारे मित्र क्यौं न यह भूख जु मारी ।
हर हर हँसे लाल मुरली धर अरे मन सुखा निपट अनारी ॥
पाहन पुतरी भूषन लागै सो कहा कारज करै बिचारी ।
बड़े बड़े करै पराक्रम जो कोऊ ताहि जानिये बड़ौ अहारी ॥
आई छाक खाय चले आगैं कठौर व्रज काठै जु निहारी ।
वैठे जाय जहाँ थलचैनौं गाय ग्वाल सब भये सुखारी ॥
नई नई इक बात विचारी भइया अब आवै जदिवारी ।
गंडा रचैं मोर पिच्छन के जाय सिंगार जु गाय सिंगारी ॥
व्रज के छोर विछोर विदित है विछुरी गाय तहां जु सम्हारी ।
अधो पगनि यै आधी ब्रज में लीला बहुत कृष्ण विस्तारी ॥

सोंनै सींग मढे गायनु के तेजु सोन हद मध वैठारी ।
सीमानाम ग्राम ब्रज अगिनित में वरनै अपु मति अनुसारी ॥
श्रीहरिबंश चिताई जैसैं तैसैं ही में वदन उचारी ।
गावै सुनै भक्त अनुरागी कृष्ण कथा जगपावन कारी ॥
गोचारन परिकरमा व्रज की समझि करी हरिगोप विहारी ।
वृन्दावन हित रूप राधिका पति की लीला सबही प्यारी ॥

(प्राचीन ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा/ पद संख्या-१३५)

यद्यपि कालक्रम से अब इन ग्रामों में कहीं-कहीं ही लीला चिन्ह रह गये हैं जो आज भी स्वयं में ब्रज-सीमा का संदेश संजोये हैं किन्तु एक बात ध्यान रहे, ब्रज के जिन सीमावर्ती ग्रामों में न कोई प्राचीन मन्दिर है, न लीला चिन्ह, न कोई इतिहास है, न पौराणिक प्रमाण, उन गाँवों में भी संस्कार रूप से भक्ति तो है ही फिर यह भूमि और इसका इतिहास तो सनातन है।

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ।
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्सन्दर्शनार्थिनः ॥

(भा.१०/६४/२५)

राजा नृग को संस्कार रूप भक्ति से ही गिरगिट बनने पर भी भगवद्दर्शन हो गया। काल और जन्म का व्यवधान भी कुछ न कर सका।

मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मर्षिदेशान्तर्गतब्रज वर्णन –

कुरुक्षेत्रं च मत्स्यांश्च पंचालाः शूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥

(मनुस्मृति - २/१९)

प्राचीन शूरसेन प्रदेश का व्यापक क्षेत्र दक्षिण में चम्बल नदी से लेकर उत्तर में वर्तमान मथुरा नगर के लगभग ५० मील उत्तर तक था। पश्चिमी सीमा मत्स्य जनपद से एवं पूर्व में दक्षिण पांचाल राज्य की सीमाओं से मिलती थी।

ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र और भी विस्तृत है –

मथुरा जिला, राजस्थान जिला में भरतपुर जिला, करौली में उत्तरी भाग (जो भरतपुर व धौलपुर की सीमाओं से मिला हुआ है, धौलपुर जिला, मध्य भारत में मुरैना एवं भिण्ड जिले और गिर्द-ग्वालियर का लगभग २६ अक्षांश से ऊपर का उत्तरी भाग, आगरा जिला, इटावा जिले का पश्चिमी भाग, मैनपुरी जिला, एटा जिला (जो फर्रुखाबाद जिले की सीमा से मिले हुए हैं), अलीगढ़ जिला (उत्तर-पूर्व में गंगा नदी की सीमा तक), बुलंदशहर जिले का आधा दक्षिणी भाग (पूर्व में अनूप शहर की सीध से लेकर), पलवल की सीध से

गुड़गाँव जिले का दक्षिणी अंश एवं अलवर जिले का पूर्वी भाग जिसमें पुराने समय में झिरका फिरोजपुर जो आज हरियाणा में है वह भूभाग भी सम्मिलित था।

इसके अतिरिक्त अन्य सुविज्ञ अन्वेषकों की दृष्टि में हम देखें तो चीनी यात्री ह्वेनसांग जब मथुरा आया तो उस समय मथुरा का विस्तार ५,००० ली था। इसके आधार पर ज्ञात होता है कि तत्कालीन ब्रज बहुत विस्तृत था। ७वीं सदी में मथुरा राज्यान्तर्गत भरतपुर एवं धौलपुर जिले एवं मध्य भारत का उत्तरी भाग लगभग आधा रहा होगा, दक्षिण-पूर्व में मथुरा राज्य जिझौती की पश्चिमी सीमा से एवं दक्षिण-पश्चिम में मालवा राज्य की उत्तरी सीमा से मिलती रही होगी। ७वीं सदी के पश्चात् मथुरा की सीमाएं संकुचित हो गयीं। कारण : कन्नौज ने अपनी सीमाओं का विस्तार करते हुए मथुरा एवं अन्य पार्श्ववर्ती राज्यों के भाग को अपने अन्तर्गत कर लिया।

प्राचीन ऐतिहासिक उल्लेखों के आधार पर शूरसेन-प्रदेश (मथुरा) के उत्तर में कुरुदेश यानि दिल्ली व उसके आसपास का क्षेत्र था, दक्षिण में चेदि राज्य यानि बुंदेलखण्ड एवं उसका समीपवर्ती क्षेत्र, पूर्व में पांचाल राज्य यानि आधुनिक रुहेलखण्ड, जो कि महाभारत युद्ध के पूर्व २ भागों में विभाजित था –

(१) उत्तर पांचाल (२) दक्षिण पांचाल। उत्तर पांचाल की राजधानी बरेली जिले में वर्तमान रामनगर एवं दक्षिण पांचाल की राजधानी कंपिल, जिला फर्रुखाबाद। शूरसेन के पश्चिम में मत्स्य यानि अलवर रियासत एवं जयपुर का पूर्वी भाग।

कनिंघम का कथन है कि उस समय मथुरा राज्य में वर्तमान “वैराट” और “अतिरंजीखेड़ा” के बीच का सारा प्रदेश ही नहीं अपितु आगरा के दक्षिण में “नरवर” और “शिवपुरी” तक का एवं पूर्व में “काली सिंध” नदी तक का भू-भाग रहा होगा। इस प्रकार इस राज्य में मथुरा, आगरा जिलों के अतिरिक्त भरतपुर, करौली, धौलपुर एवं ग्वालियर राजा के उत्तर का आधा भाग शामिल रहा होगा। पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा जिझौती से तथा दक्षिण में मालवा की सीमा से मिलती रही होगी। मत्स्यपुराण में इसी कृष्णलीलाभूमि को ब्रजमण्डल कहा गया है।

सामर्थ्य, शक्ति, देश, काल द्वारा सीमित होने से हम सीमाबद्ध हो सकते हैं किन्तु जो असीम है उसका सीमाबद्ध होना सम्भवनहीं।

कण-कण लीलामय

एक बार पूज्य बाबा महाराज के सद्गुरुदेव परम श्रद्धेय श्री श्री प्रियाशरण बाबा महाराज से किन्ही सज्जन ने पूछा – ब्रज श्री राधा-माधव की लीला-भूमि है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?

पूज्य बड़े बाबा महाराज ने बहुत नम्रतापूर्वक कहा – आपके प्रश्न का हम अवश्य उत्तर देंगे किन्तु पहले आप बताएं, आप अपने पिता के ही पुत्र हो, इसका क्या प्रत्यक्ष प्रमाण है?

बहुत नया प्रश्न था अतः प्रत्यक्षवादी महाशय तो मूक ही हो गये।

तब पूज्य बड़े महाराज जी ने कहा – देखिये महाशय, सभी बातें प्रत्यक्ष नहीं होती हैं और फिर हमारा सम्पूर्ण अध्यात्म परोक्ष पर ही स्थित है। यह विश्वास का मार्ग है।

यदि आपको प्रत्यक्ष प्रमाण ही चाहिए तो साढ़े पाँच हजार वर्षों से चली आ रहीं अति प्राचीन परम्पराएं क्या लीला का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं?

आज भी नन्दगाँव-बरसाना का वही प्राचीन सम्बन्ध जिसे वहाँ का बालक-बालक गुनगुनाता है। "बरसानो असल ससुराल हमारो न्यारो नातो"।

श्री राधा-कृष्ण विवाह के बाद आज तक बरसाने की कोई बेटी नन्दगाँव में ब्याही नहीं जाती, इस भाव से कि नन्दगाँव-बरसाना के मध्य अब मात्र श्री राधा-कृष्ण विवाह का अनूठा सम्बन्ध ही रहेगा। साढ़े पाँच हजार वर्ष पुरानी ये जीवन्त परम्पराएं क्या इन लीलाओं का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है? बरसाना-नन्दगाँव की लठामार होली क्या प्रत्यक्ष नहीं है?

क्या कहीं और भी है इतनी प्राचीन बातें या परम्पराएं, जो अब तक जीवन्त हों?

औरंगजेब ने तो वृन्दावन-मथुरा का नाम तक बदल कर मोमिनाबाद व इस्लामाबाद कर दिया था किन्तु कितने दिन जीवित रहे ये नाम? आज तक ब्रज के सभी गाँवों के नाम श्रीकृष्ण लीला से सम्बद्ध हैं।

तस्माच्चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मदाज्ञया ।
वासयात्र बहून् ग्रामान् संसिद्धिस्ते भविष्यति ॥
कृष्णलीलानुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः ।
त्वया वासयता ग्रामान् संसेव्या भूरियं परा ॥

(भा.उत्तर माहात्म्य १/३६, ३७)

महर्षि शाण्डिल्य ने कहा – बज्रनाभ! तुम मेरी आज्ञा से ब्रज को पुनः प्रकट करो।

श्री कृष्णलीलानुसार ब्रज के ग्रामों, वनों का नामकरण करो।

सच्चिदानन्दभूरेषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः ।
तव कृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तु मदनुग्रहात् ॥

(भा.उत्तर माहात्म्य १/४०)

यह भूमि सच्चिदानन्दमयी है, प्रयत्नपूर्वक यहाँ निवास करते हुए इसकी सेवा करो।

मेरे अनुग्रह से तुम्हें सभी लीला-स्थलों पर हुई लीला का ज्ञान हो जायेगा।

ऐसा ही हुआ। बज्रनाभ जी के बाद आज से साढ़े पाँच सौ वर्ष पूर्व श्री नारायण भट्ट जी महाराज के द्वारा भी इसी पद्धति से ब्रज का पुनर्प्राकट्य हुआ।

अब यह समस्या पुनः आ गई। स्थल, स्थल-ज्ञान सब कुछ लुप्त हो गया। प्रत्यक्षदर्शी कोई रहा नहीं, ऐसी स्थिति में महापुरुषों की अनुभूत वाणी के आधार पर ही लीला-रहस्य का उद्घाटन सम्भव है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भी अधिकांश सीमावर्ती ग्रामों का इतिहास, अष्टछाप के सुकवियों की वाणी पर ही आधारित है। नाम साम्य से ही गाँवों की लीला का लेखन हुआ है। नाम साम्य के आधार पर आज भी कितने ग्रामों की लीला है।

यह न भूलें कि –

ब्रज-बीथिन, पुर-गलिनि, घरै-घर, घाट-बाट सब सोर मचायौ ।

(सूर सागर)

श्री सूरदास जी तो कहते हैं – इस भूमि का कोई नगर, पुर, वन, वीथि – कहाँ तक कहें कोई घर और कोई घाट शेष नहीं रहा है, जहाँ लीला न हुई हो।

अतः यहाँ के पर्वत, कुण्ड, सरोवर, वन, उपवन एवं ग्रामों का नाम लीलानुगत ही है। जैसे – श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने से ग्राम का नाम 'खोह', मथुरा प्रस्थान के समय शीघ्र (सी) परश्वः (परसों) आने के आश्वासन से ग्राम का नाम 'सी पलसों', दूध की लीला होने से 'पयगाँव', खम्ब के गढ़ने से 'खाम्बी', वनचर होने से 'वनचारी', सत्राजित का वास होने से 'सतवास', बिछुर जाने से 'बिछोर', जहाँ श्री राधारानी ने स्वप्न देखा वह स्थल विशेष 'सुपाना' एवं नन्दबाबा का कोष होने से 'कोसी' हुआ। इस प्रकार सभी ग्रामों के नाम लीला से हैं। क्या श्री गिरिराज जी गोवर्धनोद्धरण लीला के प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं? काम्यवन की चरणपहाड़ी, भोजनथाली, स्खलिनी शिला, बरसाना की खोर साँकरी (जहाँ की शिला दही के गिरने से आज भी स्निग्ध है), छोटे भरने की मुकुट शिला, ...सम्पूर्ण ब्रज आज भी साढ़े पाँच हजार वर्ष प्राचीन धरोहर से भरा हुआ है। ऐसे अनेक प्राचीन लीला चिन्ह हैं जो श्री युगल सरकार की त्रैकालिक लीला का साक्ष्य दे रहे हैं और न केवल कृष्णावतार में यह प्रथम बार हुआ, रामावतार का सेतुबन्ध भी तो आज दर्शनीय है, जो श्रद्धाविहीनों को मात्र कल्पना ही लग रहा है। चित्रकूट में रामशय्या (जहाँ श्रीराम जी शयन करते), स्फटिक शिला, लक्ष्मण टेकरी (जहाँ लक्ष्मण जी बैठकर पहरा देते) क्या श्रीराम लीला का प्रमाण नहीं है?

श्रद्धाविहीन के लिए तो "भगवान् ही नहीं है" फिर लीलाचिन्ह कैसे? भगवान् उपासकों के लिए ही छोड़ते हैं ये लीला चिन्ह।

ये लीलाचिन्ह जो श्रद्धाविहीन जनों को देखने में प्राकृत प्रतीत होते हैं किन्तु श्रद्धालुओं को तो इन्हीं में दिव्यता की अनुभूति होती है।

क्या कारण है न केवल भारत से प्रत्युत देशान्तरों से कितने ही वैदेशिक प्रतिवर्ष इस भूमि की ओर दौड़ते हैं?

नाले की तरह बहने वाली यमुना में भी क्यों आज यमद्वितीया पर श्रद्धालुओं का समुद्र उमड़ पड़ता है?

क्यों एक साधारण सी पहाड़ी के रूप में दिखने वाले गिरिराज की परिक्रमा का क्रम कभी भंग होता दिखाई नहीं देता?

भाव का तीव्रतम आवेश तो देखो – नाचते-गाते हुए ही नहीं, १०८ शिलाओं से दण्डवती करने वाले परिक्रमार्थियों का मन उस अनन्त कष्ट और असुविधा में भी आनन्द से गुनगुनाता है –

"छटा तेरी तीन लोक से न्यारी है गोवर्धन महाराज"

क्या कारण है कि "टेढ़े रहत मोहन रसिया सों बोलत अटपटी बानी" के लिए प्रसिद्ध ब्रजवासियों को कहा गया –

ब्रज के परम सनेही लोग ।
गारी दै हँसि मिलत गहबरे अंतर प्रेम संजोग ॥
राग रूप अक्षर बन लीला यह तिनको नित भोग ।
'नागरिदास' सदा आनन्दी सुपनें हूँ नहिं सोग ॥

आखिर क्या आकर्षण है **"हरि हम कब होंगे ब्रजवासी"** की भावना से कहीं भी चार पत्थर रखकर गृह रचना करने लगते हैं भावुकजन।

"जनम-जनम दीजै याही ब्रज बसिबो"

(छीत स्वामी)

भावदृष्टि से देखने पर प्राकृत प्रतीत होने वाली ये भूमि, ये लीला चिन्ह ही दिव्य हो जाते हैं। धाम का अधिभूत स्वरूप तो सबको दिखाई दे रहा है किन्तु अधिदैव स्वरूप केवल अधिकारी जनों को ही दिखाई देता है। यहाँ तक कि स्वयं भगवान् के समय में भी धाम अपना अधिदैव स्वरूप प्रकट नहीं करता है।

किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात ।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात ॥

(रा.च.मा.अयो. २१६)

श्रीभरतजी के लिए धाम ने जो स्वरूप प्रकट किया वह तो स्वयं श्रीरामजी के लिए भी प्रकट नहीं हुआ था। समय-समय पर इस अधिभूत धाम में ही दिव्य शब्द, गन्धादि का अनुभव भी अधिकारी जनों को होता रहा है। जैसे श्रीपाद नारायणभट्ट गोस्वामी जी को इसी धाम में **"आऊँगी-आऊँगी"** की दिव्य ध्वनि सुनाई दी। वार्ता जी में वर्णन मिलता

है – एक वैष्णव को दिव्य सुगंध का अनुभव हुआ। परम रसिक श्रीबिल्वमंगलजी को इसी अधिभूत धाम में दिव्य वंशी सुनाई दी। ये सब अपनी-अपनी अनुभूति के स्तर हैं, जो भगवत्कृपा से ही होते हैं। उपासना यदि दृढ़ है तो अधिभूत धाम में ही अधिदैव का अनुभव हो जाता है।

ऐसी अनेक चमत्कारिक घटनायें इस बात को पुष्ट करती हैं।अभी हाल ही में श्री मानमन्दिर निवासी नित्यलीलालीन परम भगवदीय श्री मदन मोहन ब्रजवासी जी का नित्य श्री मानमन्दिरकी सीढ़ियों को बुहारना और गुनगुनाना –

महल राधिका का बुहारा करेंगे।
उन्हें आते-जाते निहारा करेंगे॥

साकार होता देखा गया।

दिनाँक १६ अक्तूबर २०१३ श्री राधारानी ब्रजयात्रा का प्रथम दिवस ही था, प्रातः लगभग छः बजे अपनी दैनिक सोहनी सेवा पूर्ण करने गये थे। सीढ़ी बुहारते-बुहारते किस प्रकार पार्थिव को छोड़कर नित्यलीला की सेवा में प्रवेश प्राप्त किया, यह पूर्णतः अज्ञात है। यात्रा के लौटने पर तो मान मन्दिर की सीढ़ियों से लुढ़का ब्रज रज में लिपटा प्राण रहित गात्र मात्र ही दर्शन को शेष था।

इस चमत्कारपूर्ण घटना के ठीक डेढ़ मास पश्चात् एक दूसरी अलौकिक घटना संघटित हुई। पूज्य बाबा महाराज के अत्यन्त कृपापात्र भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के साक्षात् स्वरूप श्रद्धेय श्री सखीशरण बाबा जी महाराज जिन्हें पूज्य बाबा महाराज की सर्वाधिक सेवा, सन्निधि का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री धाम गह्वरवन के प्रति आपकी अविचल निष्ठा सर्वथा गुप्त ही थी। ७६ वर्ष की अवस्था हो चुकी थी, शरीर भी उतना स्वस्थ नहीं रहता था किन्तु मन की स्वस्थता के आगे देह की अस्वस्थता पर ध्यान नहीं दिया जाता। प्रत्येक वर्ष की तरह इस वर्ष भी उसी तैयारी से ४० दिवसीय श्री राधारानी ब्रजयात्रा करने चल पड़े । वाहन में बैठना स्वीकार नहीं था अतः पदयात्रा करते रहे। अभी दस ही दिन हुए थे कि अकस्मात् एक दिन रुग्ण हुए, धीरे-धीरे रुग्णता बढ़ती रही। औषधि सेवन से भी स्थिति सुधरने के स्थान पर बिगड़ती ही गई किन्तु यात्रा नहीं छोड़ी। ३५ दिन की यात्रा सम्पन्न हुई, स्थिति के अधिक बिगड़ते देख उन्हें गह्वरवन लाया गया। अब गह्वरवन से कहीं और जाने की इच्छा नहीं थी किन्तु स्वास्थ में कोई लाभ नहीं दिखाई दे रहा था अतः यात्रा सम्पन्न होते ही पूज्य बाबा महाराज की आज्ञा से गुड़गाँव के अच्छे हॉस्पिटल में ले जाया गया, उचित उपचार आरम्भ हुआ। अर्धचेतनावस्था में भी सतत् श्री धाम गह्वरवन और अपने परम प्रिय श्री बाबा महाराज का ही स्मरण हो रहा था। दिनाँक १० दिसम्बर २०१३ की रात्रि में सहसा पूज्य बाबा महाराज का आदेश हुआ –

अभी इसी समय सखीशरण को गह्वरवन बुला लिया जाये।

इस नियोजित योजना को कौन जानता था?

बस पूज्य श्री की आज्ञा का पालन ही हो रहा था। अगले ही दिन अस्पताल में शरीर की कुछ आवश्यक जाँच होनी थी, जो स्थगित की गई। चिकित्सकों के मना करने पर भी तत्काल ऐम्बुलेंस द्वारा रात्रि में अस्पताल से चलकर प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में लगभग तीन बजे श्री गह्वरधाम में अभी पहुँचे ही थे, सेवा में उपस्थित सन्त श्रीब्रजकिशोर जी ने श्री सखीशरण बाबा को गह्वरवन पहुँच जाने का संदेश दिया। इतना सुनते ही स्मित मुख से अपार प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हुई। श्री माताजी गोशाला में चल रहे अखण्ड संकीर्तन में राधा नाम की ध्वनि को सुनते हुए नित्यधाम में प्रवेश प्राप्त किया। मानो गह्वरवन की प्रतीक्षा में ही प्राणों को उत्सर्ग की आज्ञा नहीं मिल पा रही थी। क्या यह धाम के द्वारा भाव की पूर्ति नहीं है?

यह वही धाम है जहाँ बुहारी लगाते श्री श्यामानन्द जी को वृन्दावनेश्वरी श्री राधारानी का दिव्य नूपुर प्राप्त हो गया था, यही नहीं स्वयं श्री राधारानी ने अपना वह नूपुर श्यामानन्द जी के मस्तक पर विराजमान भी किया किन्तु गुरु हृदयानंद ने इसे मनमुखी तिलक कहकर धो देने की आज्ञा दी। बहुत रगड़ने पर भी जब नूपुर का चिन्ह नहीं मिटा, तब सन्तों की पंचायत में स्वयं श्री राधारानी की आज्ञा से सुबल सखा ने साक्ष्य दिया, यह स्वयं श्री राधारानी का चरण नूपुर है।

इन वृत्तान्तों से स्पष्ट होता है कि उपासकों की भाव पुष्टि व वृद्धि हेतु ही करुणामय भगवान् अवतारकाल में लीला चिन्ह छोड़ देते हैं, जिन्हें प्राकृत नहीं समझना चाहिए।

ब्रज का चराचर चिन्मय है –

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥
तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनःप्रख्यपयःसरस्वता ।
वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो दधे ॥
स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ।
स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥
अहो अमी देववरामरार्चितं पादाम्बुजं ते सुमनःफलार्हणम् ।
नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं
गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥
नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः

कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या
वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्
पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै-
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥
क्वचिद् गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः ।
उपगीयमानचरितः स्त्रग्वी सङ्कर्षणान्वितः ॥
क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम् ।
अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥

(भा. १०/१५/१, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११)

आज कार्तिक शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि बुद्धवार का दिन है और कृष्ण व बलराम दोंनो ने गोचारण का हठ पकड़ लिया है। पौगण्ड अवस्था में प्रवेश क्या किया ये दोनों पशुपाल गोपाल बन गये। गोचारण करते हुए सखाओं के साथ पुण्य वृन्दावन धाम में घूमने लगे, वंशी बजाते हुए पुष्पित वन में प्रवेश किया, जहाँ महात्माओं के मन के समान सुन्दर, स्वच्छ व निर्मल सरोवर, जिनमें विकसित कमलों की गन्ध लिए सुगन्धित शीतल मन्द समीर बह रही है। यहाँ का जल, वायु, प्रकृति सब कुछ बहुत स्वच्छ है। श्रीकृष्ण ने देखा वृन्दावन के वृक्ष भी उपासना परायण हैं। जैसे गृहागत अतिथि को सुशोभित मंजूषिकाओं में उपहार दिया जाता है, उसी प्रकार ये वृक्ष अपने लाल-लाल पल्लवों की मंजूषिकाओं में सुगन्धित पुष्प व फलों का उपहार श्रीकृष्ण-बलराम के चरणों में अर्पित कर रहे हैं। श्रीकृष्ण बोले – दाऊ भैया! आपके चरणों की समस्त देवता पूजा करते हैं क्योंकि आप देववर (देवों में श्रेष्ठ) हैं। श्री वृन्दावन धाम के लता-वृक्ष भी उपासक ही हैं, आपके इन चरणों की अर्चना कर रहे हैं। अपने पुष्प, फल आदि समर्पित करने को कितने नत हो गये हैं।

अपना जड़ धर्म दूर करने को नहीं अपितु इनका जो दर्शन कर लें, उनके तम (जड़ता) को दूर करने के लिए ये वृन्दावन के वृक्ष बने हैं। कौन कहता है कि ये जड़ हैं। ऐसी उपासना तो चर प्राणी भी नहीं कर सकते हैं।

पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥

(भा. २/३/२२)

वे चरण तरु धर्म को प्राप्त हो जाते हैं जो भगवदुपासना का कार्य नहीं करते हैं।

दाऊ भैया इन वृक्षों की उपासना तो देखो, श्वेत, रक्त, पीत, पाटल..........कितने ही रंग के पुष्प-फल आपको भेंट कर रहे हैं।

वृक्षों द्वारा युगल सरकार की उपासना

वन की कुञ्जन कुञ्जन डोलन ।
निकसत निपट साँकरी वीथिन परसत नाहीं निचोलन ॥

(श्री हित चतुरासी-३४)

जिस वन की कुञ्ज से राधा-माधव विहार करते हुए निकलते हैं, अत्यन्त सँकरी गलियों में उलझी हुई लता-वल्लरियाँ भी सिमिट कर एक ओर हो जाती हैं, कहीं युगल के पट भूषण से हमारा स्पर्श होकर लीला में व्यवधान न हो जाये। आश्चर्य है, यहाँ के भ्रमर भी उपासक हैं। हे आदिपुरुष! गोपलीला में छिपे हुए आपको ये पहिचान गये हैं अतः अनन्त ब्रह्माण्डों को पवित्र करने वाला आपका सुयश गाते हुए उपासना कर रहे हैं। सत्य तो यह है कि भ्रमर के रूप में ये स्वयं श्रेष्ठ भक्त-मुनिगण ही हैं। हे अनघ! (अनघ अर्थात् जो अपने आश्रितजनों के अघ पर ध्यान न दे। अत्यधिक दयावान को ही अनघ कहते हैं। श्रीकृष्ण तो पाण्डवों को ही आश्रय दे सके किन्तु श्री दाऊ जी ने तो दुर्योधन पर भी दया किया। यहाँ से ही दाऊ के साथ दयाल शब्द की प्रसिद्धि हुई।) आपके स्वागतार्थ यहाँ के मयूर नृत्य कर रहे हैं। हरिणियाँ गोपियों के समान अपनी प्रेम भरी चितवन से निहार रही हैं। यहाँ की कोकिलाओं का गान तो सुनिये। जो आपके लिए स्वागतगान कर रही हैं। यह है उपासकों का वृन्दावन, जहाँ के पशु-पक्षी, लता-तरु, सबका जीवन ही उपासनामय है। आपका स्पर्श प्राप्त करके धन्य हो गयी यहाँ की धरणी, धन्य हो गया यहाँ का चर-अचर। जो आपका स्पर्श प्राप्त करके स्वयं का सौभाग्य गा रहे हैं। यहाँ की नदियाँ, पर्वत, सरोवर, वन-उपवन सब आपकी दया-दृष्टि से कृतार्थ हो रहे हैं। एक ओर ग्वाल-बालों ने कृष्ण यश गाना आरम्भ किया तो दूसरी ओर भ्रमररूपी गायकों के समूह ने राग-रागिनियाँ छेड़ीं व मधुर संगीत सुनकर श्रीकृष्ण-बलराम ने भी तान छेड़ी। अब तो हंसों ने भी क्वणन आरम्भ किया।

हंसों का क्वणन मणि नूपुर के समान होता है। इस अद्भुत संगीत गोष्ठी में जब मयूर नृत्य करते हैं, तब श्यामसुन्दर उनका अनुकरण करने लगते हैं। मयूरों की देखा-देखी कृष्ण भी दोनों घुटनों के बल झंगा को पंखवत् ऊपर तानकर नृत्य कर उठे। तब तक ग्बाल-बाल ताली पीट-पीटकर हँसने लगे –

"कन्हैया नंगो है गयो, कन्हैया नंगो है गयो।"

अनुकरण लीला में श्रीकृष्ण बहुत निपुण हैं किन्तु वृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानी जब गाती हैं मधुर तान लेती हैं तब श्याम सुन्दर मौन हो जाते हैं। न अनुकरण की क्षमता रहती है न

स्पर्धा की सामर्थ्य है क्योंकि इस मधुर वाणी की न समानता है न अतिशयता। बस मूक होकर श्रवण सुख लेते हैं।

राधे तेरे गावत कोकिला गन रहें री मौन धरि।
कोटि मदन कौ लियो है मन हरि॥
कुञ्ज महल में मोहन मधुरी तान राखी वितान तरि।
'गोविंद' प्रभु रीझ हृदै सों लगाइ लई वृषभानकुंवरि॥

(गोविन्द स्वामी)

सीमान्त का सख्य

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन्।
रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः॥

(भा. १०/१५/१९)

वह स्वयं भी तो सखा बन गया यहाँ। माधुर्य में बाधक होने से भगवत्ता को तो योगमाया द्वारा छिपा ही दिया।

एक गोप बालक का अनुकरण करते हुए नरलीला करने लगा।

भगवान् बनकर आयेगा तो किसी देव-स्थान पर ही बिठा दिया जायेगा, तब कौन उसे गाली दे सकेगा, कौन घोड़ा बना सकेगा? तब तो एकासन से बैठे-बैठे वेदस्तुति ही सुननी पड़ेगी। यह तो इस भूमि की महिमा है, यहाँ पिटने में उसे जो आनन्द है, वह वहाँ लक्ष्मी के साथ रमण करने में भी कहाँ?

फिर लक्ष्मी के भाग्य में तो चरणसंवाहन ही है, ऐसी सर्वोच्च शक्ति द्वारा सेवित होने पर भी मन नहीं लगा और यहाँ गंवारों में भूल गया सब कुछ। गंवार शब्द से यह न समझें कि यहाँ मात्र असभ्यता ही है। जहाँ नदी के रूप में भी जल नहीं प्रेम ही प्रवाहित हो रहा है, पर्वत के रूप में भी पाषाण नहीं प्रेम का घनीभूत रूप स्थित है, वायु के रूप में भी प्रेम का ही स्पर्श प्राप्त होता है। वृक्षों के रूप में भी जाड्य प्रेम का ही दर्शन होता है, हिरणियों की चितवन में टपकता प्रेम और कोकिलाओं की कूक, भ्रमरों की गुंजार एवं राजहंसों के क्वणन में भी "प्रेम का रव" ही सुनाई पड़ता है; कहाँ तक कहें, मयूरों के नृत्य में तो साक्षात् प्रेम ही नृत्य करता दिखायी देता है फिर ये तो कन्हैया के सखा हैं जो प्रेम का मूर्तिमंत स्वरूप हैं।

द्वारकेश लाल जी की वाणी में –

अष्ट सखा नंदलाल के सकल कला अवतार।
इनके पद वन्दन करत, बाढत प्रेम अपार॥

वन्दौ सखा सनेह सब ब्रज सखा समाज।
अब वनमालही देहुवरपरसन श्री ब्रजराज ॥
सूरदास सो कृष्ण तोक परमानन्द जानो।
कृष्णदास सो रिशभ, छीतस्वामी सुबल बखानौ ॥
अर्जुन कुम्भनदास, चतुर्भुज दास विशाला।
नन्ददास सो भोज स्वामी गोविन्द श्री दामा ॥
अष्टछाप आठौ सखा द्वारकेश परमान।
जिनके कृत गुणगान करि होत सुजीवन धाम ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ में नित्य सखा परिकर की वाणी का आश्रय ही यहाँ लिया गया है, जो प्रकट काल में "अष्टसखा" के रूप में अपने-अपने विलक्षण कवित्व कौशल से अष्टछाप के सुकवि भी कहलाये। श्री पुष्टि सम्प्रदाय में अष्टछाप के इन महापुरुषों का भावात्मक स्वरूप कुछ इस प्रकार है –

कवि	सखा	श्रीअंग	लीला	स्वरूप	निवास	गिरिराज द्वार	ब्रह्मसम्बन्ध
	सखी	श्रृंगार	दर्शन				
सूरदास	कृष्ण	मुख	मान	मथुरेश जी	चंद्रसरोवर सघन कन्दरा	६	महाप्रभु जी
	चम्पक लता	पाग	उत्थापन				
परमानन्ददास	तोक	श्रवण	बाल	बालकृष्ण जी	सुरभि कुण्ड श्यामतमाल नीचे	१	महाप्रभु जी
	चंद्रभागा	पाग	मंगला				
कुंभनदास	अर्जुन	हृदय	कुंज	श्री नाथ जी	आन्यौर नीम वृक्ष के तले	७	महाप्रभु जी
	विशाखा	कुलह	राजभोग				
कृष्णदास	ऋषभ	चरण	रास	मदनमोहन जी	बिलछू कुण्ड श्याम तमाल तले	४	महाप्रभु जी
	ललिता	मुकुट	शयन				
चतुर्भुजदास	सुबाहु	हस्त	अन्नकूट	गोकुलनाथ जी	रूद्र कुण्ड (आमवृक्ष के नीचे)	३	गुसाईं जी
	सुशीला	सेहरा	भोग				
नन्ददास	भोज	उदर	रास	गोकुलचंद्रमा जी	मानसी गंगा पीपल वृक्ष तले	५	गुसाईं जी
	इन्द्ररेखा	फेंटा	श्रृंगार				
छीतस्वामी	सुबल	कटिल	जन्म	विट्ठलनाथ जी	अप्सरा कुण्ड श्याम तमाल के तले	८	गुसाईं जी
	पद्मा	दुमाला	संध्या				
गोविन्दस्वामी	श्रीदामा	नेत्र	हिंडोरा	द्वारकानाथ जी	ऐरावत कुण्ड कदमखंडी	२	गुसाईं जी
	भामा	तिवारा	ग्वाल				

सख्य रस लीला सखाओं के श्री मुख से और अधिक शोभित व प्रामाणिक होगी अतः "अष्टसखा वाणी" के आधार पर लीलानुसार सब स्थलों का माहात्म्य स्पष्ट किया गया है। प्रामाणिकता में इसलिए संदेह नहीं है क्योंकि **"आप्त वाक्यं प्रमाणं"**। महत् वाणी के आगे स्वबुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता कहाँ रह जाती है।

आप्त कौन?

केवल वेद, पुराण, न्याय, व्याकरण का ज्ञाता अथवा उपाधियों से अलंकृत लब्ध-प्रतिष्ठ पुरुष आप्त नहीं हो सकता है अपितु

'रागादिवसादपि योऽनान्यथावादी स आप्तः'

(श्री नागेशभट्ट कृत लघुमंजूषा)

जो कदापि राग-द्वेष के अधीन होकर, नित्य-सिद्ध, अनादि, अपौरुषेय वेदों के विरुद्ध कुछ न कहे, वही आप्त है।

जिस रस का एक बिन्दु असंख्य ब्रह्माण्डों में रस का संचार कर देता है, जिसकी रस कणिका से सम्पूर्ण त्रिभुवन रस-सिक्त हो उठता है। ब्रजरस की उस अद्भुत स्रोतस्विनी में नित्य अवस्थित एक महापुरुष की दिव्य वाणी ही यहाँ शब्द बद्ध है अतः ग्रन्थ की प्रामाणिकता स्वतः सम्पुष्ट है।

संकीर्ण विचारक प्रस्तुत ग्रन्थ की विषय-वस्तु को सम्भव है न समझ सकें किन्तु उदाराशय ब्रजप्रेमियों के लिए तो वरवत् सिद्ध होगा।

विभु की लीला विभुता

रसभूमि श्री वृन्दावन के अतिरिक्त अन्यत्र विशेषतः सीमावर्ती क्षेत्र मेंनिकुञ्ज लीला का अनुभव कठिन है किन्तु ध्यान रहे सम्पूर्ण लीलाभूमि अवतरित है अतः सर्वत्र सभी प्रकार का रस प्रवाहित हुआ है। किसी एक निश्चित घेरे को विशेष रस का स्थल बना देना व अन्य की उपेक्षा कर देना संकीर्णता है, अपराध है।

यद् राधापदकिङ्करीकृतहृदा सम्यग्भवेद् गोचरं
ध्येयं नैव कदापि यद्धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः ।
यत् प्रेमामृतसिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि
तत् वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु ॥

(रा.सु.नि. २६५)

विभु की लीला भी विभु है, वह किसी धाम में तो क्या अधिकारिता हो तो कहीं भी, किसी भी हृदय में प्रकट हो सकती है। जिस हृदय में भी राधापद कैंकर्य है, उसको श्री धाम वृन्दावन के सम्यक् स्वरूप का दर्शन होता है अर्थात् ऐसा कोई अंश नहीं रहता, जिसे वह देख न सके।

कृपा से ही भगवद्धाम का अवतरण होता है अतः लीला की विभुता में संकीर्ण विचारों का उद्भव अपराध है –

अनेक सिद्ध सन्त-महापुरुषों द्वारा लीला धाम की विभुता अनुभूत है –

१. रसिक सम्राट श्री जयदेव स्वामी जी के लिए किन्दुबिल्व आश्रम में ही गंगा जी प्रकट हो गईं, जो जयदेई गंगा के नाम से प्रसिद्ध हुईं। (भक्तमाल छप्पय-१६३)

२. श्री हिताचार्य महाप्रभु के लिए देवबन्द (सहारनपुर) के कूप में ही रंगीलाल जी प्रकट हो गये। (भक्तमाल छप्पय-९०)

३. रसिक अनन्य श्री हरिराम व्यास जी को ओरछा में ही श्री हिताचार्य जी के कृपापात्र श्री नवल दास जी के **"आजु अति राजत दम्पति भोर"** पद गाये जाने पर दिव्यानुभव हुआ एवं श्री हिताचार्य को गुरू बनाने का निश्चय किया।

४. दाक्षिणात्य ब्राह्मण श्री रूपरसिक जी ने परम रसिक श्री हरिव्यासदेवाचार्य जी को गुरू बनाने का निश्चय किया किन्तु दक्षिण भारत से जब श्री धाम वृन्दावन आये तो ज्ञात हुआ कि आचार्य प्रवर तो नित्य-लीला में प्रवेश कर गये हैं, यह सुनकर अपार कष्ट हुआ, प्राण त्याग का निश्चय किया, तीन दिन तक भूखे-प्यासे विश्रामघाट पर पड़े रहे। इस दृढ़ निष्ठा पर श्री हरिव्यास देवाचार्य जी ने नित्यधाम से आकर दर्शन दिया।

५. गम्भीरा लीला में श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु का प्रेमावेश देखें। पुष्प वाटिका को ही वृन्दावन समझकर दौड़ रहे हैं। वहाँ के तरू-लता, पशु-पक्षियों से श्रीकृष्ण का मार्ग पूछ रहे हैं, मिट्टी के टीलों को गिरिराज पर्वत समझकर लिपट जाते। एक दिन तो गम्भीरा मन्दिर से दौड़कर समुद्र के नीले जल को ही यमुना समझकर कूद पड़े, सम्पूर्ण रात्रि उसी भावावेश में सागर के अगाध जल में डूबते-उछलते रहे।

६. श्री स्वामी हरिदास जी महाराज की कृपा से अकबर को श्री वृन्दावन के धीर-समीर घाट का दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ।

७. जिस समय राजा मधुकरशाह अपने गुरुदेव श्री हरिराम व्यास जी को ओरछा ले जाने के लिए श्री धाम वृन्दावन आये तो श्री हरिराम व्यास जी ने उन्हें श्री स्वामी हरिदास जी महाराज का दर्शन कराया तब स्वामी जी ने राजा को अधिकारी जान उन्हें दिव्य रत्न, मणि-माणिक्य खचित नित्य श्री वृन्दावन का दर्शन कराया। इतना ही नहीं स्वामी जी ने राजा का भाव देखकर उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम्हें ओरछा में भी दिव्य वृन्दावन धाम का दर्शन प्राप्त होता रहेगा, इसके बाद तो राजा मधुकरशाह को विन्ध्याचल तक उसी दिव्य श्री वृन्दावन का दर्शन होता रहा। राजा को आज यह बोध ही नहीं विश्वास हो गया कि भगवान् की ही भाँति "धाम" भी सर्वव्यापक है और उन्होंने यह पद गाया –

हमारे श्री वृन्दावन सौ गाऊँ ।

८. एक समय वृन्दावन के किसी धोबी के घर से भिक्षा ग्रहण कर लेने मात्र पर कुछ ईर्ष्यालुओं ने गुरुदेव श्री ललित मोहन देव जी से श्री भगवत रसिक जी की शिकायत की, इस पर गुरु ने उन्हें वृन्दावन छोड़ देने की आज्ञा दी, जिससे श्री भगवत रसिक जी को मन में अपार कष्ट हुआ; क्योंकि श्री धाम वृन्दावन आपके लिए मात्र रहने का स्थान नहीं था, साक्षात् इष्ट ही था। हृदय में श्री वृन्दावन धाम को धारण करके यमुना किनारे-किनारे प्रयाग पहुँच गये, अड़ैल के समीप यमुना किनारे मढ़ी में आप श्री वृन्दावन के निधिवन राज का दर्शनानन्द प्राप्त कर लेते थे, आपका तो हृदय ही वृन्दावन बन चुका था।

कालान्तर में गुरुदेव के नित्यलीलालीन होने पर कुछ सन्त आपको आचार्य गद्दी पर विराजने की प्रार्थना करने गये तब आपने यह पद गाया –

हमारौ उर वृन्दावन और ।
माया-काल तहाँ नहिं व्यापै, जहाँ रसिक-सिरमौर ॥
छूटि जात सत-असत बासना, मन की दौरा-दौर ।
'भगवत रसिक' बतायौ श्री गुरू, अमल अलौकिक ठौर ॥

श्री गुरू कृपा से हमारे तो हृदय में ही माया, काल से अतीत श्री वृन्दावन विराजित हो गया है। अब कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं रही।

बहुत प्रार्थना करने पर भी मढ़ी (प्रयाग) छोड़कर नहीं गये। महाप्रयाण की बेला में स्वयं गंगा जी आईं। कैलाश चलने की प्रार्थना की। देवराज इन्द्र ने स्वर्ग चलने की किन्तु विनाशी लोकों की ओर ध्यान न देते हुए आप श्री यमुना जी के साथ सखी स्वरूप से नित्यलीला महल में प्रवेश कर गये।

आज भी मढ़ी (प्रयाग) में श्री भगवत रसिक जी महाराज का समाधि-स्थल दर्शनीय है।

मढ़ी (प्रयाग) में रहकर उन्होंने नित्य श्री वृन्दावन में प्रवेश प्राप्त किया। क्या इन सब उदाहरणों से धाम की विभुता स्पष्ट नहीं होंती है?

२५२ वैष्णववार्ता में वर्णन है – भक्त श्री माधोदास क्षत्री को म्लेच्छों के देश काबुल (अफगानिस्तान की राजधानी) में ही श्री श्रीनाथ जी का नित्यप्रति दर्शन होता था। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण सेवा परिचर्या भी यहीं से हो जाती थी। एक समय श्री माधोदास जी अपने अचला से पंखा झला रहे थे, निकट ही बैठे श्री रूपमाधुरी जी पूछ बैठे – माधोदास जी! यहाँ तो कोई दिखाई नहीं देता है। आप पंखा किसे झल रहे हैं।

हमारे गोपाल जी गोचारण करके आये हैं थक गये हैं अतः उन्हीं को झल रहा हूँ श्री माधोदास जी ने कहा।

वे तो ब्रज में आये हैं, काबुल में थोड़े ही – रूप माधुरी जी ने विस्मित होकर कहा।

कहाँ काबुल और कहाँ ब्रज।

किन्तु श्री गोसांई जी की कृपा से परम वैष्णव श्री माधोदास क्षत्री को काबुल में ही नित्य गोवर्धन और गोवर्धननाथ का दर्शन हो जाता था।

यही तो है धाम की विभुता।

लीला, धाम की नित्यता, विभुता व चिन्मयता

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

(गी. ४/९)

भगवान् का जन्म, लीला ....सब कुछ दिव्य है, विभु है।

गर्गसंहितानुसार श्रीराधारानी सिद्धाश्रम (द्वारिका) आई हैं। तब गोपियों की प्रार्थना पर वहाँ भी रासलीला हुई है अतः केवल वृन्दावन ही महारास अथवा श्रृंगाररस का क्षेत्र नहीं है।

धाम व लीला की विभुता का स्मरण रखें।

इन्हें सीमा में आबद्ध करना अपराध है।

भूतल पर ही चिन्मयता प्रकट है।

श्री भरत जी की चित्रकूट यात्रा में इसी भौम धाम में चिन्मयता का दर्शन प्राप्त होता है –

कुस कंटक काँकरीं कुराईं ।
कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे ।
बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे ॥

(रा.च.मा.अयोध्या. ३११)

तीक्ष्ण काँटे, कुश-कंकड़-कुसमावली, शिलायें-मृदुस्पर्शी पल्लव एवं कुवस्तु (मल-मूत्रादि) सुगन्धित पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो गए।

दृश्यमान धाम में प्राकृतत्त्व की प्रतीति होती है किन्तु इसी में चिन्मय भाव द्वारा इसके वास्तविक स्वरूप की प्रतीति अवश्य होगी ।

अतः इसी भाव से धाम का सेवन करें।

गो गो-सुतन सौं, मृगी मृग-सुतन सौं, और तन नैंकु न जोहनी ।

(स्वामी हरिदास रस सागर, अष्टादशसिद्धान्त के पद-१२)

"और तन नैकु न जोहनी" अर्थात् संसार की ओर तनिक भी नहीं देखना।

यहाँ की रज, वन-उपवन, हिरणी, गाय, वत्स हीनिकुञ्ज -रस प्रदान करेंगे। यही रस मार्ग है, रसोपासना और रसिकता है।

श्री हिताचार्य ने भी तो यही कहा –

हित हरिवंश अनत सचु नाहीं, बिनु या रजहिं लिये ।

(श्रीहित स्फुट वाणी-२०)

भूमिस्थ होते हुए भी यह अवतरित धाम, नित्यधाम से भी श्रेष्ठ है, कारण? यह माधुर्याधिक्य भूमि है। सर्वशक्तिमान प्रभु की ऐश्वर्यलीला में वह माधुर्य नहीं है किन्तु जब वे नरलीला करते हैं तो वह माधुर्य रस तुन्दिला ऐश्वर्यातिशयनी लीला बन जाती है, जिसके आगे ब्रह्मानन्द तिरस्करणीय ही नहीं विस्मरणीय हो जाता है।

भा. २/१/७, ९ तथा १०/१५/१९ इसके प्रमाण हैं –

रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ।

जिसके लिए प्रभु लक्ष्मी के मृदुकरकमलों से सेवित चरणों के सुख को त्यागकर ब्रज के कंटकों में विचरण करते हैं क्योंकि ऐश्वर्य के संगोपन (छिपाने) के बाद ही माधुर्य का उद्भव (प्रकाश) होता है।

अलमति विस्तरेण, स्वयं महालक्ष्मी भी वैकुण्ठ छोड़कर इस धाम का शश्वदाश्रय लेती हैं –

श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।

(भा. १०/३१/१)

प्रभु स्वयं इस माधुर्य में ऐसे निमग्न हो जाते हैं कि लक्ष्मी को भी चरणसंवाहन का कभी-कभी ही अवसर प्राप्त होता है।

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।

(भा. १०/२९/३६)

आपकी प्रियता तो अरण्यजनों से ही अधिक है और उन वृन्दावन की वनचरियों, भीलनियों की प्रियता भी आपसे ही है।

ऐसा क्यों हुआ?

इसके उत्तर में श्री भागवतकार को कहना पड़ा –

"इत्थम्भूतगुणो हरिः"

(भा. १/७/१०)

अर्थात् अनिर्वचनीय है वह।

श्री स्वामी जी की वाणी में –

भूलीं सब सखी देखि देखि ।
जच्छ किन्नर नागलोक देवस्त्री, रीझि रहीं भुव लेखि लेखि ॥

(श्रीकेलिमाल-४२)

यक्ष पत्नी, किन्नर पत्नी, नाग पत्नी एवं समस्त देवाङ्गनायें भुव अर्थात् पृथ्वी पर कुञ्जबिहारिणी श्री राधारानी का दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं।

किन्तु यहाँ भुव कहने से यह भूमि प्राकृत नहीं हो जायेगी।

श्री स्वामी जी आगे एक दूसरे पद में कहते हैं –

सुनि धुनि मुरली बन बाजै हरि रास रच्यौ।
कुञ्ज कुञ्ज द्रुम बेलि प्रफुल्लित, मंडन कंचन मनिन खच्यौ ॥

(श्रीकेलिमाल-५२)

यह है अवतरित धाम की चिन्मयता।

पृथ्वी पर है किन्तु प्राकृत नहीं, चिन्मय है –

श्री वृन्दावन फूलनि फूल्यौ पूरन ससि त्रिबिध पवन बहै थोरी थोरी।
गति बिलास रस हास परस्पर भूतल अद्भुत जोरी ॥
श्री जमुना जल बिथकित पुहुपनि बरषा रतिपति डारत त्रिन तोरी।
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुञ्ज बिहारी कौ रस रसना कहै कोरी ॥

(श्रीकेलिमाल-३३)

वायु भी सुख का ध्यान करते हुए धीरे-धीरे बहती है, यमुना का जल स्थगित हो गया है, देव पुष्पवर्षा कर रहे हैं। भूतल पर प्रकट होते हुए भी अद्भुत है यह जोरी।

यहाँ का चर-अचर सब कुछ चिन्मय है।

धाम चिन्मय है, विभु है किन्तु इसका अनुभव सबको नहीं। जिस प्रकार भगवान् विभु, सर्वव्यापक होते हुए भी सबके दृष्टिपथ में नहीं आते हैं, कारण **"अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्"** कषाय के रहते उस सर्वगत, सर्वमय, सर्वव्यापी को देख पाना सम्भवनहीं है।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥

(भा. २/९/३३)

अन्तःकरण में ही विराजमान है किन्तु प्रतीति नहीं होगी। वस्तु की विद्यमत्ता में वस्तु की प्रतीति न होना व अवस्तु की अविद्यमत्ता में अवस्तु की प्रतीति होना, यही तो माया है।

धाम में प्राकृतत्त्व की प्रतीति होना, वस्तु में अवस्तु की प्रतीति है।

धाम में चिन्मयता की प्रतीति न होना, वस्तु में अवस्तु की प्रतीति है।

अनुपम वृन्दावन इस भूमि पर साक्षात् रूप से देदीप्यमान है। ऐसे दिव्य वृन्दावन को नेत्रवान होकर भी मानव देख व समझ नहीं पाता यही माया है ।

प्रगट जगत में जगमगै वृन्दाविपिन अनूप ।
नैन अछत दीखै नहीं, यह माया को रूप ॥

(श्रीध्रुवदास जी बयालीस लीला वृन्दावन शत-८३)

धाम का विभु रूप यदि स्वीकार नहीं करोगे तो वह उपासकों के हृदय में कैसे स्फुरित होगा?

"यद्राधा पद किङ्किरी कृत हृदां सम्यग्भवेद् गोचरम् ।"

(रा.सु.नि. २६५)

सम्यक् गोचरता अर्थात् सर्वांश में गोचरता।

विभुता स्वीकार किये बिना सम्पूर्ण लीला का स्फुरण कैसे सम्भवहै?

उसकी ध्येयता भी कैसे सम्भव है?

"ध्येयं नैव कदापि यद्हृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः"

(रा.सु.नि. २६५)

अतः धाम की विभुता को स्वीकार करना ही होगा।

श्री नारद जी के ध्रुव के प्रति वचन –

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ।
पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥

(भा. ४/८/४२)

ध्रुव! उस मधुवन में जाओ, जहाँ श्री हरि का नित्य सान्निध्य है।

नित्य सन्निधि विभु धाम में ही सम्भव है।

धाम नित्य है, तभी सान्निध्य भी नित्य होगा।

प्राकृत वस्तु में नित्य सान्निध्य सम्भव नहीं।

स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया ।
करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयङ्गमम् ॥

(भा. ४/८/५७)

ध्रुव! स्वेच्छा से अवतरित प्रभु की भावी लीलाओं को ध्यान करना क्योंकि सर्वव्यापक परमात्मा के जन्म, कर्म, लीला, धाम सब दिव्य हैं, विभु हैं। इस विभु ज्ञान से माया निवृत्ति हो जायेगी।

श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु जी ने धाम की तीन विशेषताएं बताई हैं –

हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥

(भा. १०/५/१८)

(१) धाम में भगवान् का नित्य निवास है। "सान्निध्यं नित्यदा हरेः"

(२) धाम उनका स्वरूप व आत्मा है। "वनं में देहरूपकम्"

(३) धाम में भगवदीय गुण है।

जैसे – 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो' अथवा 'प्रणतदेहिनां पाप कर्षणम्' इत्यादि शास्त्र वाक्यों से सिद्ध है कि भगवान् में पापनाशक शक्ति है और यह शक्ति धाम में भी है क्योंकि धाम और धामी सर्वथा अभिन्न हैं।

"यत् प्रेमामृत सिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि"

(रा.सु.नि. २६५)

अथवा

सिय निंदक अघ ओघ नसाए।
लोक बिसोक बनाइ बसाए॥

(रा.च.मा.बाल. १६)

जैसे भगवान् का व्यापकत्व शास्त्र सिद्ध है वैसे ही धाम की विभुता भी विस्तार से वर्णित है। यथा –

व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः, अदृश्यत

(भा.७/८/१८)

व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद् व्रज उच्यते॥
गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते।

(भा.माहा. १/१९, २०)

अतः एकदेशीय दृष्टिगत होने पर भी हरेर्निवासात्मगुणै के अनुसार भगवदीय गुण आ जाने से भगवद्धाम भी विभु है।

जिस प्रकार भगवान् भी सर्वदेशीय होते हुए लीलाकाल में एकदेशीय दिखाई देते हैं। कहीं यशोदा मैया उन्हें रस्सी से बाँध देती हैं तो कहीं गोपियाँ उन्हें पकड़कर नचा लेती हैं। उसी प्रकार विभु होते हुए भी प्रकट-धाम एकदेशीय दिखाई देता है।

सर्वदेशीय की एकदेशीयता –

सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय।
बससि सदा हम कहुँ परिपालय॥

(रा.च.मा.उत्तर. ३४)

हे भगवन्! आप 'सर्वगत' अर्थात् सबमें व्याप्त हैं।

सबके हृदय रूपी घेरे में रहते हैं, हमारा पालन करिए।

भक्त हृदय में आने के लिए तो उस सर्वदेशीय को भी एकदेशीय होना पड़ेगा अन्यथा सर्वदेशीयता में रसानुभूति नहीं होगी।

सर्वदेशीयता –

भूमि सप्त सागर मेखला।
एक भूप रघुपति कोसला॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू।
यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी।
यह बरनत हीनता घनेरी॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी।
फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी॥

(रा.च.मा.उत्तर. २२)

जिसके रोम-रोम में अनन्तानंत ब्रह्माण्ड हैं, वह सात समुद्रों की मेखला वाली भूमि का राजा हो जाये तो कौन बड़ी बात है। बल्कि अनन्तानंत ब्रह्माण्डों के स्वामी को सप्तद्वीपमयी पृथ्वी का राजा कहने में उनकी बड़ी हीनता है किन्तु हे गरुड़ जी! जिन्होंने उनकी उस महिमा को जान भी लिया है, उन्हें भी इस लीला में बड़ा प्रेम, आनन्द होता है।

सोउ जाने कर फल यह लीला।
कहहिं महा मुनिबर दमसीला॥

(रा.च.मा.उत्तर. २२)

उस महामहिमा के ज्ञान का एकमात्र फल इस लीला का अनुभव ही है।

अर्थात् रसानुभूति तो एकदेशीयता में ही होगी।

यह सिद्धान्त सर्वत्र घटित होता है अतः सभी ने स्वीकार किया है।

श्रीपादरूपगोस्वामी जी ने भी, जो प्रेम तत्त्व विभु है, उसमें विभुता के होते हुए भी रसानुभूति की दृष्टि से परिछिन्नता आदि धर्म दिखाए हैं। यथा –

विभुरपि कलयन् सदाभिवृद्धिं
गुरुरपि गौरवचर्च्चया विहीनः।
मुहुरुपचित वक्रिमापि शुद्धो
जयति मुरद्विषि राधिकानुरागः॥

(दानकेलिकौमुदी श्लोक-२)

वह विभु अर्थात् व्यापक है तो भी उसमें वृद्धि होती रहती है, यह विरोधी धर्म है। जो सबसे बड़ा है उसमें वृद्धि सम्भवही नहीं है। यदि वह वर्धमान (बढ़ रहा) है तो इसका तात्पर्य विभु (व्यापक) नहीं है।

जो श्रीराधारानी "आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका" (भा.माहा. २/१२) श्रीकृष्ण की भी आत्मा हैं तो भी गौरवचर्या (बड़प्पन) से सर्वथा विहीन हैं।

एक साधारण गोपी की भाँति लीला करती हैं। प्रतिक्षण वक्रिमा अर्थात् मान में रहते हुए भी जिनका प्रेम बहुत शुद्ध व सरल है। ऐसा मुर नामक दैत्य को मारने वाले मुरद्विषि (श्रीकृष्ण) और श्रीराधारानी का अनुराग है।

कथनाशय रसानुभूति की दृष्टि से धाम में एक देशीयता दिखाई देती है। जीव अणु है, वह विभु का अनुभव अणुता से ही सम्भव है।

किसी नदी का जल भले ही बहुत दूर-दूर तक बहता हो किन्तु पिपासु को तो एक देश, एक दिशा, एक घाट पर ही जाना होगा अतः यशोदा को मुख में ब्रह्माण्ड दिखाने वाले ने भी एकदेशीय होकर ही लीलाएँ कीं।

नित्यधाम से अवतरितधाम श्रेष्ठ क्यों?

अवतरित धाम में वे सभी लीलाएं होती हैं, जिनका नित्यधाम में प्रकाश नहीं है, जैसे – जन्म-लीला, शैशव-लीला, विवाह-लीला, परकीया-लीला ....इनके बिना लीला वैचित्री नहीं बन सकती है। लीला में विचित्रता के लिए तो –

जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करमकी डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी॥

(तुलसी विनय पत्रिका पद-९८)

उस अनन्त अविच्छिन्न ब्रह्म को एक गोपी यशोदा ने बाँध दिया। यह लीला की विचित्रता और माधुर्य की पराकाष्ठा है। यहाँ ऐश्वर्य शक्ति की पराजय एवं माधुर्य की विजय होती है।

यही इस भूमि की विशेषता है।

जाकी मायाबस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाय ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो॥

(तुलसी विनय पत्रिका पद-९८)

जिसकी माया से विधि, शिव भी नाच रहे हैं और आज तक भी उसका पार न पा सके और वह यहाँ गोपियों की ताली पर नाच रहा है।

नित्यधाम में यह लीला-सुख कहाँ?

नित्यधाम में ऐश्वर्य की प्रधानता है वहाँ माधुर्य का सुख कहाँ है क्योंकि ऐश्वर्य के प्रकाश में माधुर्य का संगोपन हो जाता है। माधुर्य का तात्पर्य –

सर्वज्ञत्वं महैश्वर्य्यमेव न तु माधुर्य्यं, माधुर्य्यं खलु तदेव-
यदैश्वर्य्यविनाभूतकेवलनरलीलत्वेन मौग्ध्यमिति ।

(रागवर्त्म-चन्द्रिका २/३)

ऐश्वर्य रहित नरलीला में उसका मुग्ध भाव को प्राप्त हो जाना अर्थात् मूर्ख बन जाना ही माधुर्य है।

महैश्वर्यस्य द्योतने वाद्योतने च नरलीलत्वानतिक्रमो माधुर्य्यम् ।

(रागवर्त्म-चन्द्रिका २/३)

जिन लीलाओं में ऐश्वर्य का द्योतन होता है, वे सहज अवगम्य हो जाती हैं किन्तु ऐश्वर्य के तिरोहित होने पर ये ही विधि, शिव को भी मोहोत्पन्न कर देती हैं। जैसे –

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

(भा.१०/३३/१७)

स्वप्रतिबिम्ब को देखकर विभ्रम हो जाना अथवा मणिस्तम्भ-लीला में स्वप्रतिबिम्ब से बात करना।

श्रीउद्धवजी के वचन –

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥

(भा.३/२/१२)

सभी प्रकार से मर्त्यलीला के योग्य आभूषणों को विभूष्य बना देने वाला यह श्रीभगवान् का विग्रह ऐसा था जिसे देखकर वे स्वयं विस्मित हो जाते थे।

और तो और ब्रजवासी भी मोह को प्राप्त हो गये तभी तो ब्रज में गिरिगोवर्धन-धारण लीला एक चर्चा का विषय बन गई।

और कभी-कभी श्रीकृष्ण बालरूप हो जाते हैं तो कभी अकस्मात् किशोरावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

बालरूप यशुमति मोहि जानें, ग्वालिन मिल सुख भोगूं ।

(सूर-सागर)

अथवा

श्रीमद्राधे त्वमथ मधुरं श्रीयशोदाकुमारे
प्राप्ते कैशोरकमतिरसाद्वल्गसे साधुयोगम् ।

इत्थं बाले महसि कथया नित्यलीलावयःश्री
जातावेशा प्रकटसहजा किन्नु दृश्या किशोरी ॥

(रा.सु.नि. १६८)

ये लीलाएं तर्कातीत हैं।

किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ७२)

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।

(भा.१०/८७/२१)

हे भगवन्! आप अवतार लेकर जो लीला करते हैं, ये अमृत से भी अधिक मधुर और मादक होने से महामृत का सागर है, जो देवों को दुर्लभ है।

जो आत्मतत्त्व दुर्बोध था, उसका ज्ञान कराने के लिए ही यह नरावतार लिया।

नरलीला को समझना सहज है किन्तु तार्किकों के लिए तो यह भी दुर्बोध है।

भागवत धर्म की सरलता व कठिनता –

द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥

(भा.६/३/२१)

यह धर्म विशुद्ध तो है साथ ही दुर्बोध भी है। विशुद्ध इसलिए कि इसमें कोई कूटता नहीं है, सरलता है, इसका ज्ञान सरल है और दुर्बोध इसलिए कि उतनी श्रद्धा हमारे अन्दर नहीं है। श्रद्धा के अभाव में तो चाहे जितना सरल हो, दुर्बोध ही रहेगा।

अतः भक्तमाल में "श्रद्धा ही फुलेल" कहा।

माधुर्य को समझने के लिए श्रद्धा का होना परमावश्यक है अन्यथा "ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पे नाच नचावें" श्रीकृष्ण का चुल्लू भर छाछ पर नाचना, घर-घर चोरी करना, दूध-दही के लिए गिड़गिड़ाना सब काल्पनिक प्रतीत होगा।

महादानि वृषभानु किशोरी तुव कृपावलोकन दान दै री ।
तृषित लोचनि चकोर मेरे तुम बदन इन्दु किरनि पान दै री ॥
सब विधि सुघर सुजान सुन्दरी सुनि लै विनती कान दै री ।
'गोविन्द' प्रभु पिय चरन परसि कह्यो जाचक को तुव मान दै री ॥

अब यहाँ वह '**भगवान्**' चरणों में गिरकर दान माँग रहा है। थोड़े से दूध-दही के लिए गिड़गिड़ा रहा है। कौन माँग रहा है, जो अनन्त संसार को देने वाला है, लक्ष्मीपति है।

बिस्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति, बेद-बिदित यह लीख ।
बलिसों कछु न चली प्रभुता बरु है द्विज माँगी भीख ॥

(तुलसी विनय पत्रिका पद सं.९८)

वेद-पुराणों में राजा बलि के द्वार पर वामन बनकर भीख माँगने की कथा बहुत प्रसिद्ध है।

नित्यधाम में भिक्षा माँगने का लीला-सुख कहाँ!

इसीलिए तो इस भूमि के प्रेमियों ने कहा –

जो सुख लेत सदा ब्रजवासी ।
सो सुख सपनेहू नहिं पैयत, जो जन हैं वैकुण्ठ निवासी ॥
यहाँ घर-घर है रह्यौ खिलौना, जगत कहत जाको अविनासी ।
'नागरिदास' विस्व ते न्यारी, लगि गइ हाथ लूट सुखरासी ॥

अथवा

कहा करों वैकुण्ठहि जाय ।
जहां नहीं वंशीवट यमुना गिरिगोवर्धन नन्द की गाय ॥
जहां नहीं यह कुञ्ज लता द्रुम मंद सुगन्ध बहत नहिं वाय ।
कोकिल हंस मोर नहिं कूजत, ताको बसिबो काहि सुहाय ॥
जहाँ नहीं वंशी धुनि बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाय ।
प्रेम पुलक रोमांच न उपजत, मन वच क्रम आवत नहीं धाय ॥
जहाँ नहीं यह भुवि वृन्दावन, बाबा नन्द यशोमति माय ।
'गोविन्द' प्रभु तजि नन्द सुवन को, ब्रज तजि वहाँ मेरी बसै बलाय ॥

(गोविन्द स्वामी)

यहाँ के पशु-पक्षी भी साधारण नहीं हैं।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
श्रृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥

(भा.१०/२१/१४)

सनकादिक, शुकादि ब्रह्मर्षि रसास्वादनार्थ पक्षी बनकर बैठे हैं।

शतककार कहते हैं ये ब्रज की गायें भी सामान्य नहीं हैं अपितु

ब्रह्मानन्दमवाप्य तीव्रतपसा सम्यक् प्रसाद्येश्वरं
गोरूपाः सकला इहोपनिषदः कृष्णे रमन्ते व्रजे ।
वृन्दारण्यतृणं तु दिव्यरसदं नित्यं चरन्त्योऽनिशं
राधाकृष्णपदाम्बुजोत्तम रसास्वादेन पूर्णाः स्थिताः ॥

(श्रीवृन्दावन महिमामृतम् १/१२)

भगवान् की ज्ञानशक्ति श्रुतियाँ ब्रह्मानंद प्राप्त करके भी जब ब्रजरस माधुरी का आस्वादन प्राप्त न कर सकीं, तब दीर्घकालिक तीव्र तप से प्रभु को प्रसन्न करके उनकी कृपाशक्ति से ब्रज में गायों के रूप में आईं और श्री राधाकृष्ण की चरणरज से अभिषिक्त वृन्दावनों के दिव्य तृणों का आस्वादन कर, युगल सरकार की दिव्य रूप माधुरी का पान कर, पूर्णत्व में अवस्थित हुईं।

और कृष्णावतार का प्रयोजन ही यह है कि जिस भगवत्प्राप्ति के लिए सुदीर्घकाल से ऋषि-मुनि अपने प्राण, मन व इन्द्रियों को वश में करके दृढ़ योगाभ्यास में लगे हुए हैं, वह सहज सुलभ हो जाये, इतना ही नहीं वही प्राप्ति उन भगवद्विद्वेषियों को भी हो जाती है जो निरन्तर द्वेष से कृष्ण-चिन्तन कर रहे हैं।

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदियन्मुनय
उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।

(भा.१०/८७/२३)

अथवा

"बयर भाव सुमिरत मोहिं निसिचर"

(रा.च.मा.लंका काण्ड.४५)

शत्रुओं ने भी भगवान् को प्राप्त किया और मुक्त हो गए।

श्रीकृष्ण के आजानुलम्बित भुजदण्ड एवं उन्नत विशाल वक्षःस्थल को देख रूपासक्त गोपियों ने काम-भाव से प्राप्त किया और दिव्य रास रस का आस्वादन दिया।

गर्गसंहितानुसार भगवान् के वरदान से सभी श्रुतियाँ ब्रज के गाँवों में गोपी रूप से आई हैं।

('रसीली ब्रज यात्रा – प्रथम खण्ड' में इसका वर्णन हो चुका है।)

रास केवल वृन्दावन में ही नहीं अपितु ब्रज के अनेक स्थलों पर हुआ है, एक समय श्रीराधारानी त्वरा में अञ्जन लगाना भूल गईं तब अञ्जनवन (आंजनौख) में महासखी श्रीविशाखाजी ने 'अञ्जनशिला' को प्रकट किया, उस समय पिपासावन (पिसाया) में रास हो रहा था।

ब्रज का घर-घर महारास स्थल है।

जब तक यह व्यापक दृष्टि नहीं होगी, संकुचित मति भेदोत्पन्न कर अपराध कराती रहेगी। **"एक में भाव, अन्यत्र अभाव न हो यही अनन्यता है। एक में भाव अन्यत्र अभाव यही संकीर्णता है। "** निष्ठा एक ही स्थान पर हो किन्तु अन्यत्र अभाव न हो तब तो वह अनन्यता है अन्यथा शुद्ध अपराध है।

असत् तर्कों से इस व्यापकता को नहीं समझा जा सकता है। ब्रज में भगवान् ने समस्त तीर्थों को निवास दिया। ब्रजवासियों ने जो-जो भी अवतार अथवा लीलाएं देखने की इच्छा की, तत्सम्बन्धित अवतार-लीलाओं को भी दिखाया एवं तीर्थयात्रा करने की इच्छा पर बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि समस्त तीर्थों को आवाहन कर उन्हें यहाँ निवास दिया। स्वर्ग देखने की इच्छा हुई तो यहीं नन्दनवन (शेषशायी के समीप) भी दिखाया। (सप्रमाण "रसीली ब्रज यात्रा प्रथम भाग" में देखें)

इसी आधार पर आधुनिक इतिहासकारों ने भी ब्रज के अनेक उपेक्षित लीला-स्थलों का महत्त्व प्रकट कर प्रशंसनीय कार्य किया है जैसे – स्वर्ग को इन्द्रौली के रूप में ब्रज में ही स्वीकार किया है।

प्रायः राग-द्वेष से ग्रसित मनुष्य, संकीर्णताओं में पड़कर सत्य को स्वीकार करने में सकुचाता है और तर्क का सहारा लेता है किन्तु अचिन्त्य विषय भावगत होते हैं और तर्कातीत भी –

अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ।

(माहाभारत, भीष्मपर्व ५/१२)

अथवा

स्वल्पाऽपि रुचिरेव स्याद्भक्ति तत्त्वावबोधिका ।
युक्तिस्तु केवला नैव यदस्या अप्रतिष्ठता ॥

(भ.र.सि.१, १.४५)

थोड़ी सी भी रुचि अथवा श्रद्धा से हृदय में भक्ति का आविर्भाव हो जायेगा किन्तु केवल शुष्क तर्क के आधार पर भक्तितत्व को समझना सर्वथा असम्भव है, कारण तर्क तो स्वयं अप्रतिष्ठित है अर्थात् –

यत्नेनापादितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।
अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥

(भ.र.सि.१, १.४६)

प्रयत्नपूर्वक सिद्ध किया जाने वाला तर्क भी उससे प्रबल तार्किक के द्वारा खण्डित हो जाता है एवं दूसरे मत की स्थापना हो जाती है फिर कोई तीसरा प्रबल तार्किक उसका भी खण्डन कर अपना मत स्थापन करता है।

“तर्क” अस्थिर रहने वाला, जिह्वा का श्रम है।

तर्काप्रतिष्ठानादपि अन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यनिर्मोक्षप्रसङ्गः ॥

(ब्रह्मसूत्र २/१/१२)

भगवत्तत्व अथवा भक्ति तत्व तर्क अथवा शुष्क युक्तियों का विषय नहीं है। यह तो मात्र श्रद्धा से अवगम्य है।

नैषां तर्केण मतिरापयेना प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्ग नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥

(कठोपनिषद् १/२/९)

फिर इस ठाकुर की तो सभी लीलाएं ऐसी ही हैं।

अजन्मा होकर जन्म लेना, कालात्मा होकर समुद्र में छिपना, आत्माराम होकर १६,१०८ विवाह करना, तभी तो गरुड़, सती एवं ब्रह्मा की मति भी खिन्न हो जाती है।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे ।
जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥

(रा.च.मा.अयोध्या. १२७)

इन लीलाओं से जड़ों को मोह एवं विवेकी जनों को चरितामृत में डूबने-उतराने का अवसर प्राप्त होता है।

विधि के वचन –

नाहं न यूयं यद्दतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ।
तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥

(भा. २/६/३६)

उसकी गति तो स्वयं मैं (ब्रह्मा), न तुम (प्रजापति), न शिव समझ सके तब अन्य देवों की क्या चलाई? हम सब तो उनकी माया से भ्रमित होकर घूम रहे हैं।

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥

(भा. २/६/४०)

जिसके संदेह के संस्कार समाप्त हो चुके हैं, चित्त पूर्णरूपेण शान्त हो गया है, वह भोली श्रद्धा वाला उसे भलीभाँति समझ लेता है।

क्योंकि हमारे प्रभु का स्वभाव है –

सर्वसु देत भुराई ही सौं, चतुरन सों चतुराई ठानत ।

(सूर-सागर)

असत् तर्क वाला कहेगा – यह कैसे हुआ?

छोटे से मुख में ब्रह्माण्ड कैसे? छोटे से नन्दग्राम में ९ लाख गाय कैसे? छोटे से चबूतरे पर रास कैसे? ये सब असत् तर्क हैं, जो श्रद्धा के अभाव में उत्पन्न होते हैं।

'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुमसमर्थः' जो सर्वसमर्थ है, उनके लिए क्या असम्भव है? एक ब्रह्माण्ड की कौन कहे, काकभुशुण्डिजी ने तो रामजी के शरीर में अनन्तानंत ब्रह्माण्डों का दर्शन किया, प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अयोध्या और प्रत्येक अयोध्या में रामावतार देखा।

उदर माझ सुनु अंडज राया।
देखेउँ बहुब्रह्माण्ड निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका।
रचना अधिक एक ते एका॥

(रा.च.मा.उत्तर. ८०)

अवधपुरी प्रति भुवन निनारी।
सरजू भिन्न भिन्न नर नारी॥
प्रतिब्रह्माण्ड राम अवतारा।
देखउँ बालबिनोद अपारा॥

(रा.च.मा.उत्तर. ८१)

यह सब दैवी माया का विस्तार है, जिसका कोई पारावार नहीं है। आधुनिक विज्ञान (NASA) के अनुसार जिस आकाश गंगा में हमारी पृथ्वी स्थित है उसमें १००-४०० अरब सूर्य हैं तथा इसका व्यास लगभग १ लाख प्रकाश वर्ष है। ऐसी करोड़ों-अरबों की संख्या में आकाशगंगायें हैं। आधुनिक विज्ञान carbon dating तकनीकी के आधार पर पृथ्वी की आयु अनुमानित ४.५४ + ०.०५ अरब वर्ष की है। ऐसे ही अनन्त करोड़ों-अरबों की संख्या में ब्रह्माण्ड हैं और ऐसे-ऐसे ब्रह्माण्ड है जो हमारी आकाश गंगा से करोड़ों-अरबों गुणा बड़े है। इन दूरस्थ आकाश गंगाओं के अनन्त सूर्यों का प्रकाश अभी तक इस पृथ्वी तक पहुँचा भी नहीं है। हमारा सौरमंडल अपने ग्रहों के समूह के साथ आकाश गंगा के केंद्र की ओर २२० किलोमीटर प्रति सेकेण्ड की गति से परिक्रमा कर रहा है। यदि हम २५ लाख जन्म लगातार लें तथा हर जन्म में हमारी आयु १०० वर्ष की हो तब हम अपने सौरमंडल के साथ २५ करोड़ वर्षों में अपनी आकाश गंगा की परिक्रमा कर सकेंगे। ब्रह्मा के एक दिन में, हमारा सौरमंडल अपनी आकाश गंगा की मात्र १७ परिक्रमा ही कर पाता है। हमारे शास्त्रों के अनुसार विष्णु भगवान् क्षीर सागर में शेष शय्या पर शयन करते है। NASA ने (https://goo.gl/VndwWJ) अंतरिक्ष में ऐसे विशाल समुद्र की खोज की है जो हमारी पृथ्वी के समस्त जल से १४०० खरब गुना बड़ा है। यह दैवी माया इतनी दुस्तर है कि इसका अनुमान लगाना ही हमारी बुद्धि के परे है।

इसे कोई क्या समझेगा? फिर ये सब तो अतीन्द्रिय बातें हैं और हमारी-तुम्हारी 'सीमित इन्द्रियाँ, सीमित मन, सीमित बुद्धि' जिनमें अपने ही शरीर के अन्दर झाँकने की

क्षमता तो है नहीं। हड्डी टूट जाये तो आँख देख नहीं सकती। 'ऐक्सरे (X-RAY) कराओ'। बुद्धि में कोई कमी आ गयी तो सी.टी.स्कैन कराओ, शरीर की सूक्ष्म नाड़ियों की जाँच के लिए एम.आर.आई. (M.R.I.) कराओ। सीमित शक्ति रखने वाली ये मायिक इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि 'भगवान् या भगवान् की माया को' क्या समझ सकेंगी? आज से १००-२०० वर्ष पूर्व तो वायुयान में उड़ना भी मनुष्य के लिए एक कल्पना थी। जबकि श्रीमद्भागवत के प्रमाण के अनुसार देवहूतिजी की निष्काम सेवा से प्रसन्न होकर कर्दम ऋषि ने उनकी प्रसन्नता के लिए एक ऐसे दिव्य विमान की रचना की जिसका (भा. ३/२३/१२) से लेकर (३/२३/२१) तक विस्तृत वर्णन है। ऐसे अद्भुत वैभवशाली विमान की कल्पना, आधुनिक वैज्ञानिक और यंत्रवेत्ता (इंजीनियर) नहीं कर सकते। श्रीमद्भागवत के युगलगीत में भी वर्णन प्राप्त होता है।

जब श्रीकृष्ण वंशी बजाते हैं तो आकाश में विमानों पर सिद्धपत्नियाँ आ जाती हैं, और अपने सिद्ध पतियों के साथ में वेणु रव का आस्वादन करती हैं।

"व्योमयानवनिताः सह सिद्धैः"

(भा. १०/३५/३)

महारासलीला में भी देवाङ्गनायें विमान पर चढ़कर दर्शन करने आती हैं और राधामाधव के ऊपर पुष्प वर्षण करती हैं।

वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो

(भा. १०/३३/२४)

गन्धर्वगण भी अपनी स्त्रियों के साथ आकाश में विमानारूढ़ होकर भगवद्यश गा रहे हैं।

दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ।
ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥

(भा.१०/३३/४, ५)

भगवद्इच्छा से धीरे-धीरे विकास हुआ और अब वायुयान में उड़ना कल्पना न होकर सामान्य-सी बात हो गई।

कथनाशय मायिक आँख, कान, मन, बुद्धि से भगवल्लीला को नहीं देखा जा सकता है, न समझा ही जा सकता है, इसके लिए तो पराश्रद्धा चाहिए। बिना किन्तु परन्तु किये इन्हें गाते, सुनते रहो; तब ये समझ में आ सकेंगी।

नाम अपभ्रंश – ब्रज की प्राचीन परम्परा

श्री चाचा वृन्दावन दास जी के प्राचीन “ब्रज परिक्रमा” ग्रन्थ के आधार पर जो अनुसन्धान किया गया है, वही प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया जा रहा है।

ब्रज के प्राचीन सीमावर्ती स्थान जो अज्ञात हैं, जहाँ कोई ब्रजयात्रा नहीं जाती है, उन समस्त स्थलों की लीला का अनुसन्धान, नाम साम्य से किया गया है। ब्रज के प्रायः सभी स्थल नाम साम्य से ही चल रहे हैं। ब्रज का कण-कण लीला पर आधारित है एवं उन लीलाओं के आधार पर उनका नामकरण है।

फिर अपभ्रंश तो ब्रज की परम्परा ठहरी।

यहाँ तो कृष्ण का नाम भी कृष्ण नहीं रहने दिया।

कृष्ण नाँव सुन्यो गर्ग ते, कान्ह कान्ह कहि बोलैं।
या ब्रज में परमेसुर ह्वके सुधरे सुन्दर नाम।
ब्रज सम और कोउ नहिं धाम ।

(नागरीदास जी)

अतः अपभ्रंश भी ग्राह्य है।

नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलंगतं वा
शुद्धं वाशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम्।

(पद्म पुराण, ब्रह्म खण्ड-२५/२३)

वह नाम शुद्ध हो अथवा अशुद्ध (अशुद्ध से तात्पर्य अपभ्रंश) उससे कल्याण तो निश्चित ही है।

अतः ब्रज भूमि में वर्तमान काल में भी जो नाम प्रचलित हैं उनका माहात्म्य उसी प्रकार है जो लीला काल में रहा होगा । वर्तमान नामानुसार स्थलों का परिचय निम्नवत है –

पुन्हाना

मेवात के बढ़ते हुए प्रभाव से ये समस्त पावन व परम पुण्यप्रद लीलास्थल लुप्त होने की श्रृंखला में थे। संकीर्णवाद के आते ही ब्रज संकुचित होता चला गया, परिणाम लीला स्थलों की उपेक्षा होने लगी जिससे पर्याप्त मात्रा में सामाजिक, धार्मिक क्षति हुई।

वास्तविक बृहद् ब्रज के विषय में किसी को कोई शास्त्रीय ज्ञान नहीं है, न स्थानीय जनों को, न आगन्तुकों को। ज्ञानाभाव से ऐसे संस्कार लोगों में पड़ गये हैं कि उनकी दृष्टि में ब्रज सीमा पर स्थित सभी स्थल ब्रज के बाहर हैं। ब्रज के अत्यन्त प्राचीन व महत्त्वपूर्ण सीमान्त स्थलों की उपेक्षा की भूल हम लोगों ने की; कहते रहे कि पंचकोसीय वृन्दावन ही मुख्य है, रस भूमि है; बरसाना, नन्दगाँव, गोवर्धन भी मत जाओ । परिणाम – यात्राओं का सीमावर्ती क्षेत्रों में आना बन्द हो गया। ब्रज का सीमावर्ती क्षेत्र ब्रज के एक अलग भाग के रूप में लोगों के मन-मस्तिष्क में स्थापित कर दिया गया, जिससे इस क्षेत्र के समस्त लीला स्थल व उनका इतिहास मूक हो गया। यह बहुत बड़ा अपराध हुआ ब्रजप्रेमी बनने वालों के द्वारा। जबकि पृथ्वी पर सम्पूर्ण धाम का प्राकट्य हुआ, उसकी सम्पूर्ण महिमा कहने में कोई भी समर्थ नहीं है।

सभी आचार्यों ने इसका गान किया – स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज, श्रीहितजी महाराज।

महावाणीकार तो कहते हैं –

श्रीहरिप्रिया प्रगट पुहुमी पर कहत होत मति पंग ।

(सहज सुख-१३)

'पुहुमी' माने इस धरा पर वह सम्पूर्ण धाम अवतरित हुआ, उसकी इतनी व्यापक महिमा है कि कहने में हमारी बुद्धि तो पंगु हो गयी है, अब चल नहीं सकती अर्थात् उसकी अनन्त महिमा का कहीं एक वाणी द्वारा वर्णन सम्भव है! .....जितना भी कहो वह न्यून है।

चाहिए तो यह कि सीमावर्ती ब्रजवासियों में अब ये संस्कार डाले जाएं कि आप ब्रजवासी हो, आपके स्थान की यह लीला है। अच्छा तो रहे वहाँ बड़े-बड़े अक्षरों में लीला-इतिहास अंकित हो। जिससे आगे सदियों तक लोग भ्रमित न हों, अपने ब्रजवासी होने के गौरव को न भूलें। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु सन् २००७ में **परम पूज्य श्री बाबा महाराज** द्वारा गहन चिन्तन, अनुसन्धान के अनन्तर प्रथम बार '**श्रीराधारानी ब्रजयात्रा**' इन सभी सीमावर्ती क्षेत्रों में आई। ६२ वर्ष अहर्निश अथक् प्रयास के पश्चात् लुप्त सीमावर्ती क्षेत्रों का पुनर्प्राकट्य हुआ।

यवनकाल से ही इस सनातनधर्म को आमूल मिटाने का प्रयास चलता रहा। औरंगजेब की हिन्दू धर्मस्थानों (देवालय, मंदिरादि) को नष्ट करने की नीति से ब्रजभूमि की भी बहुत कुछ प्राचीनता (प्राचीन सभ्यता, प्राचीन वेषभूषा) जाती रही।

ब्रजभूमि के इस अपराध से ही कुछ समय बाद ही गर्तगत् हो गया मुगल-साम्राज्य।

स्वगत उदाहरण से समझें –

मुख के अन्दर कठोर दाँत व मृदु रसना का वास है। दाँत आगन्तुक है, जन्म के बाद आता है व जरा में गिर जाता है; किन्तु रसना सनातन है, जन्म से मृत्युपर्यन्त इसके साथ ही गमनागमन होता है।

कथनाभिप्राय – सनातनधर्म मृदुरसनावत् सनातन है। इसके आमूलचूल नाश के प्रयास तो सतत् होते रहे किन्तु नाश हो न सका। यद्यपि क्षति तो बहुत हुई परन्तु पूर्ण विनाश नहीं।

एक मुस्लिम शायर इकबाल ने कहा –

ईरान तुर्क यूनान मिट गये जहाँ से,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

भारत पर साम्राज्य करने वाली ईरान, तुर्क, यूनान, रोम....आदि प्राचीन सभ्यताएँ नष्ट हो गयीं किन्तु सनातन धर्म ज्यों का त्यों स्थिर है, यद्यपि यहाँ सैकड़ों बार धर्मस्थानों को नष्ट किया गया किन्तु इस भूमि को भी अभ्यास है उत्थान-पतन की परम्परा का।

कितनी ही बार जन्मभूमि में केशवदेवमन्दिर को धराशायी किया गया किन्तु पूछो मन्दिर-मूर्ति भंजकों से, ध्वंसकारियों से – "क्या कृष्णभक्ति चली गई मथुरा से?"

"ब्रज से कृष्णभक्ति न कभी गई थी, न कभी जाएगी।"

हिन्दूधर्म में परधर्म-नाश की परम्परा नहीं है।

हिन्दूधर्म बहुत सहिष्णु है। भारतवर्ष में कितने ही जैनमन्दिर, बौद्धमन्दिर व आलीशान मस्जिदें हैं, क्या हम उन्हें कभी तोड़ते हैं? भारतभूमि की गोद में अनेक अन्य धर्म पल्लवित, विकसित हुए; यह औदार्य है इस धर्म का।

किन्तु आज यह धर्म शक्तिहीन हो गया। कारण – हम लोग उपासना रहित हो गये। हमारे अन्दर अपने धार्मिक-संस्कारों के प्रति आस्था, नियमबद्धता व दृढ़ता नहीं रही। हिन्दू बालक प्रातः उठकर टी. वी. एवं मोबाइल फोन देखते हैं, न उनकी भगवन्नाम में श्रद्धा है, न आराधना में। बिना उपासना के कैसे कोई सशक्त, श्रेष्ठ बन सकता है? आराधना रहित जीवन शव-सदृश है और तुम मिथ्या ही स्वयं को आर्य समझ बैठे हो।

जीवत सव समान तेइ प्रानी। जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी॥

(रा.मा.बा.का. -११३)

सन्तति को भक्ति नहीं सिखाई, उसकी भक्ति दृढ़ न की तो वह मुर्दा है और भक्ति रहित जीव की सेवा मुर्दे की सेवा है; उसके लिए कमाना, खिलाना सब व्यर्थ है।

विभीषण में क्या शक्ति थी रावण के सामने? ५ वर्ष के निर्बल बालक प्रह्लाद में क्या शक्ति थी हिरण्यकशिपु के सामने?

"नाम की शक्ति, आराधना की शक्ति ।"

प्रह्लादजी, विभीषणजी ने हिरण्यकशिपु व रावण को आराधना की शक्ति से ही पराभूत कर दिया।

विषयान्तर होने पर भी इस चर्चा का होना आवश्यक था क्योंकि सम्प्रति स्थिति यह है कि पुन्हाना ग्राम हरियाणा के मेवात क्षेत्र में मुस्लिम बहुल आबादी वाला ग्राम बन गया है। ये मुस्लिम भूल चुके हैं अपने पूर्व इतिहास को, जिस समय ये हिन्दू थे और मुगलकाल में इनका बलात् धर्म-परिवर्तन कराया गया। अब ये (हिन्दू-मुसलमान) परस्पर बहुत पार्थक्य ले बैठे हैं।

पुन्हाना नाम क्यों?

पुन्हाना का प्राचीन शास्त्रीय नाम है – **पुण्यवन।**

चाचा वृन्दावनदासजी का 'प्राचीन ब्रजपरिक्रमा ग्रन्थ' व श्रीनारायणभट्टजी का 'ब्रजभक्तिविलास' इन दोनों अनुपम ग्रन्थों ने ब्रजप्रेमियों का महान् उपकार किया है। इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर बहुत हद तक ब्रज का सीमावर्ती क्षेत्र सुरक्षित हुआ। इन दोनों ग्रन्थों के अभाव में ब्रज का विस्तृत क्षेत्र न कोई कहने वाला होता, न विश्वास करने वाला अतः ब्रज, ब्रजवासी, ब्रजभक्तों का परमोपकार किया युगल ग्रन्थ ने। रसिकवर चाचा वृन्दावनदासजी ने ४ लाख पदों की रचना की; जिनमें **"नमो-नमो गुरु कृपा मनाऊँ"** इस पद में सीमावर्ती अनेकानेक गाँवों की नाम सहित वन्दना की है, जिसमें पुन्हाना की भी वन्दना हुई।

पुण्यवन से पुण्याना और फिर अपभ्रंश हुआ – पुन्हाना।

पुण्यवन में देव-देवाङ्गनाओं ने आकर ब्रजवासियों के पुण्यपुञ्ज की प्रशंसा की।

धन्य हैं! ....धन्य हैं!! ....ये पुण्यराशि ब्रजवासी; जिन्होंने प्रेमपाश में बाँध परब्रह्म को अपना दारुयन्त्र बना लिया। कारयिता होकर भी इन गँवार गोपियों के प्रेमातिरेक से उनके विभिन्न गृहकार्यों में हाथ बँटाता है अर्थात् कर्ता बन जाता है, स्वामी होकर भी दास बन जाता है, अभिज्ञ होकर गोपियों की गोद में उत्तानशायी नन्हा अबोध शिशु बन जाता है, विश्वम्भर होकर दधि-तक्र पर कछनी खोल भूमि में लोटपोट होता है; यह गोपियों का प्रबल प्रेम ही है जो सर्वेश से सब कुछ करा लेता है।

श्री सूरदास जी के शब्दों में (सुरगणों ने आकर स्तुति की) –

अस्तुति करि सुर घरनि चले ।
यहै कहत सब जात परस्पर, सुकृत हमारे प्रगट फले ॥

हमारा पुण्य था जो ब्रज में सर्वेश्वर की लीला हुई।

शिव विरञ्चि सुरपति कहँ भाषत, पूरण ब्रह्महि प्रगट मिले ।
धन्य धन्य यह दिवस आजु को, जात हैं मारग करत मिले ॥
पहुँचे जाय आपुने लोकनि, अमर नारि सब हरष भरे ।
सूर स्याम की लीला सुनि-सुनि, अति हित मंगल गान करे ॥

देवगण – "लाखों वर्षों की समाधि के बाद भी जो परोक्ष रह जाता है, वही यहाँ ब्रज के गाँव-गाँव में क्रीड़ा कर रहा है।"

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ।
मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥

(भा. १०/१२/११)

ज्ञानियों के लिए प्रभु ब्रह्मानन्द, दासों के लिए षडैश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर रूप में आराध्य, मायाग्रस्त विषयान्धों के लिए सामान्य मानव-बालक बन जाते हैं; उन्हीं जगदीश्वर, सर्वेश्वर के साथ देखो तो ये पुण्यराशि गोप-बालक अनेक प्रकार की क्रीड़ा कर रहे हैं।

परमेष्ठी द्वारा प्रशंसा –

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥

(भा. १०/१४/३२)

"अहा! अहोभाग्य, धन्य भाग्य है इन ब्रजवासी गोपों का, जो परमानन्द स्वरूप परब्रह्म उनका अपना बनकर क्रीड़ा में व्यस्त है।"

यह महिमा येई पै जानैं ।
जोग-जग्य-तप ध्यान न आवत, सो दधि-दान लेत सुख मानैं ॥
खात परस्पर ग्वालनि मिलि कै, मीठौ कहि-कहि आपु बखानैं ।
विस्वम्भर जगदीस कहावत, ते दधि दोना माँझ अघाने ॥
आपुहिं करता, आपुहिं हरता, आपु बनावत, आपुहिं भानैं ।
ऐसे 'सूरदास' के स्वामी, ते गोपिनि कैं हाथ बिकाने ॥

श्री सूर के शब्दों में गोपी प्रशंसा –

धनि बड़भागिनी ब्रजनारि ।
खात लै दधि-दूध-माखन, प्रगट जहाँ मुरारि ॥
नाहिं जानत भेद जाकौ, ब्रह्म अरु त्रिपुरारि ।

सुक सनक मुनि येउ न जानत, निगम गावत चारि ॥
देखि सुख ब्रजनारि हरि-सँग, अमर रहे भुलाइ ।
'सूर' प्रभु के चरित अगनित, बरनि कापै जाइ ॥

स्वयं श्रीभगवान् ने ब्रजगोपियों की प्रशंसा की –

कहत श्याम श्री मुख यह वाणी, धन्य धन्य दृढ़ नेम हमारो ।

(सूर-सागर)

इस स्थल पर विधि, इन्द्रादि श्रेष्ठ देवों द्वारा व स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्रेमी ब्रजवासियों के पुण्य की प्रशंसा हुई अतः पुण्यवन नाम हुआ।

स्थानीय ब्रजवासियों की श्रुति है कि 'पुन्हाना' अर्थात् **पुनः आना**। ब्रजप्राण श्रीकृष्ण जब ब्रज से गये तो ब्रजवासियों ने कहा – "कन्हैया! शीघ्र पुनः आना।" अतः स्थान का नाम **पुन्हाना** हुआ। शास्त्रीय मत तो सत्य व मान्य है ही, ब्रजवासियों का कथन भी सत्य व मान्य है।

पुण्यवन सख्य क्रीड़ा क्षेत्र भी है। सख्यसमुदाय सहित श्यामसुन्दर ने यहाँ अनेकों बाल सुलभ लीलाएं की हैं।

भागवतकार ने भी इन लीलाओं को गाया –

फलप्रवालस्तबकसुमनः पिच्छधातुभिः ।
काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥

(भा.१०/१२/४)

काँच, घुँघची, मणि व स्वर्णिम आभूषणों से सुसज्जित होते हुए भी ग्वाल-वालों ने श्री वृन्दावन के रक्त - पीत - हरित फलों से स्वयं को सजाया, नव प्रवाल, गुच्छे, रंगीन पुष्प, मयूर पंख एवं रंग-बिरंगी गेरू आदि धातुओं से परस्पर को सजाया। किसी ने चमेली के गुच्छे कान में लटकाये तो किसी ने कनेर के। किसी ने पंचपुष्प की वनमाला धारण की तो किसी ने पंचफल की। अपने-अपने बेंत-लठिया को बेला की झालर से सजा एवं दूसरे कर में कमल की लम्बी नाल पकड़कर उसे घुमाने लगे।

श्री परमानन्द दास जी के शब्दों में पुण्यवन का वन्य श्रृंगार –

सिर धरें पखौआ मोर के ।
गुंजाफल फूलनि के लटकन, सोभित नन्दकिशोर के ॥
ग्वाल-मंडली-मध्य बिराजित, कौतुक माखनचोर के ।
नाचत गावत बेनु बजावत, अंश भुजा सखा ओर के ॥

तैसें फरहरात रस-भीने, छबि पीताम्बर-छोर के।
'परमानन्ददास' मोहन मनु हरत नैन की कोर के॥

होडल से पुन्हाना की दूरी २१.७ कि.मी. है।

चोखा

यहाँ पर स्थित एक महल को 'मूसी महल' के नाम से लोग जानते हैं। ऐसा बताया जाता है कि इस महल का निर्माण भगवद् इच्छा के द्वारा एक रात्रि में ही किया गया था। विशाल पत्थरों द्वारा यह निर्मित है।

होडल से चोखा की दूरी २५.७ कि.मी. है।

पिनगवाँ

पूर्व काल में यह पिंगल गढ़ के नाम से जाना जाता था। ग्रामवासियों का कहना है कि यहाँ महाराज नल का शासन रहा।

होडल से पिनगवाँ की दूरी ३१.२ कि.मी. है।

खानपुर

पहाड़ियों के मध्य बसा हुआ यह गाँव अपनी प्राचीनता को लिए हुए है। यहाँ के लोगों का ऐसा मानना है कि यहाँ से यमुना की धारा प्रवाहित होती थी। ब्रज का सीमावर्ती क्षेत्र होने से पूर्व में यहाँ ब्रज परिक्रमा भी आती थी। यहाँ पर भयाना का पर्वत है, जो ब्रज का सीमांकन करता है।

होडल से खानपुर की दूरी ३४.२ कि.मी. है।

सोहना (सौंहद)

कहीं मेंढक फुद्दी तो कहीं छाया के साथ धावन! इतनी उछल-कूद के बाद दो-तीन बार भूख लगना तो स्वाभाविक ही है और फिर शैशव में तो उदर-अग्नि भी .....! किन्तु गोमाता के रहते इन्हें क्या चिन्ता! भूख लगते ही गाय के नीचे बैठ जाते हैं, वत्सला के

आँचर से दूध स्वतः स्रवित हो उठता है। कोई-कोई तो दुग्ध की सीधी धार मुख में लगा लेते हैं, कोई दोहनी भर लेता है।

श्रीपरमानन्द स्वामी की वाणी में –

दुहि-दुहि ल्यावति धौरी गैया ।
कमल-नयन कों अति भावतु है मथि-मथि प्यावति घैया ॥

कन्हैया से वयस में कुछ बड़े हैं उसके श्रीदाम, वीरभद्र .... आदि सुहृद सखा।

इनके प्रेम में वात्सल्य की गन्ध है अतः छोटा कन्हैया तनिक सा भी क्षुधित हो या श्रांत हो तो सद्यः पद्मगन्धा का दूध दुहकर घैया (कच्चे दूध के मन्थन से घैया बनता है) पिलाते हैं, उसका अंग संवाहन करते हैं।

उष्ण जल सरोवर - सोहना

यद्यपि मन्थन दही का होता है, दूध का नहीं किन्तु उस दूध में इतनी स्निग्धता रहती कि कच्चे दूध का भी मन्थन होता, जिसे घैया कहते।

हँसि-हँसि ग्वाल कहत सब बातें सुनु गोकुल के रैया!
ऐसौ स्वाद कबहुं न चाख्यो अपनी सौंह कन्हैया!

घैया पीते हुए परस्पर हास-परिहास हो रहा है, ग्वाल-बाल बोले भैया कन्हैया! तेरी सौं ऐसो स्वाद पहले कभी नहीं आयौ। सौंह से हुआ सौनहद। सौंह अर्थात् सौगन्ध, हद अर्थात् सीमा।

मोहन! भूख अधिक जो लागी छाक बाँटि लेहु भैया!
'परमानन्द दास' को दीजै पुनि-पुनि लेत बलैया ॥

सोहना में उष्ण जल का एक सरोवर है, वहाँ पत्थर पर सोहना के बारे में एक लेख लिखा है।

प्राचीनकाल में इस नगरी को महाऋषि शौनकजी ने बसाया था। भागवत में सूतजी और शौनकजी का सम्वाद हुआ है। महान ऋषि ब्रज में रहा करते थे इसलिए इनके नाम पर

ब्रज में कुण्ड हैं जैसे कामेर गाँव में शुकदेवजी का शुक कुण्ड है, व्यासजी जहाँ रहे वहाँ व्यास कुण्ड है ; वहाँ कोई ब्रजयात्रा नहीं जाती है, केवल **राधारानी यात्रा** ही इन स्थानों पर पहुँची है।

चूँकि शौनकजी ने सोहना को बसाया अतएव अपने नाम के कारण उन्होंने इस नगरी का नाम रखा **'सोहना'**। '**शौनक'** का ही अपभ्रंश 'सोहना' हो गया। महाराज सामन्त सिंह यहाँ के राजा थे, अब भी पहाड़ पर उनके किले बने हुए हैं।

'सोहना कस्बे को महाराज सामन्त सिंह ने लगभग ८५० वर्ष पूर्व बसाया था।' यह शिलालेख १०० वर्ष पुराना है अर्थात् कस्बा सोहना ९५०-१००० वर्ष प्राचीन है। बाद में चतुर्भुज बनजारे ने यहाँ गरम कुण्ड पर गुम्बद बनवाया। गरम पानी का चश्मा यहाँ का मुख्य आकर्षण है।

यहाँ के मन्दिर भी अत्यधिक प्राचीन हैं। यह हिन्दुओं का प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है जिसका वर्णन 'आइने अकबरी' नामक ग्रन्थ में भी किया गया है। उदयपुर नरेश राजसिंह ने पर्वत पर एक किले का निर्माण करवाया था। ये वही राजसिंह है जिन्होंने औरंगजेब से युद्ध किया था एवं श्रीनाथजी को 'नाथद्वारा' में स्थापित किया। उस समय औरंगजेब के भयवश भारतवर्ष में कोई भी हिन्दू राजा श्रीनाथजी को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। मूर्तिभंजक औरंगजेब की कुदृष्टि श्रीनाथ जी के विग्रह पर थी । उस समय श्रीनाथ जी के गोस्वामी गोविन्द लाल जी ने पूरे भारत वर्ष में भ्रमण कर सभी हिन्दू राजाओं से श्रीनाथ जी को सेवा में रखने के लिए प्रार्थना की किन्तु किसी भी राजा का भयवश साहस नहीं हुआ। सभी जानते थे औरंगजेब से टकराने का तात्पर्य अपने विनाश को निमंत्रण देना है। अन्त में गोविन्दलाल जी उदयपुर नरेश राज सिंह के दरबार में गये वहाँ भी समस्त राजपूतों ने मना कर दिया।

अकबर से टक्कर लेने के कारण महाराणा प्रताप को भी वन-वन भटकना पड़ा था।

राजा राजसिंह भी जब गुसांई जी की प्रार्थना पर सभा में चुप बैठे रहे तो सभा में राजसिंह की माँ गयी, यद्यपि उस समय स्त्रियाँ राजदरबार में नहीं जाती थीं किन्तु प्रथम बार एक स्त्री राज दरबार में गयी और उसने अपने पुत्र को भरी सभा में कहा – 'अरे राजसिंह! तूने मेरा दूध पिया है जिसे पीकर भी तेरे हृदय में वीरता नहीं आई, जो श्रीनाथ जी को शरण देने से इन्कार करता है उसकी जीभ कट जाए। उठ! प्रभु तेरे ऊपर कृपा करने के लिए आये हैं, इनका स्वागत कर।' अपनी माँ की बात सुनकर राजसिंह को भी

वीरावेश आ गया और खड़े होकर बोले – गोविन्दलाल जी महाराज! श्रीनाथ जी को ले आइये, मैं इनका स्वागत करूँगा। मैं औरंगजेब से भय नहीं खाऊँगा। शरीर के टुकड़े-टुकड़े भले ही हो जाएँ लेकिन मैं उसके आगे नहीं झुकूँगा। तब गोविन्दलाल जी श्रीनाथ जी को नाथद्वारा में ले गये और तब से आज तक श्रीनाथजी नाथद्वारा में ही विराजित हैं। एक स्त्री ने इतना साहस किया उस समय, किन्तु आज समाज में फैली संकीर्णता के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठा सकता। ब्रज के स्थलों को काट-छाँटकर सीमित, संकुचित कर दिया। ब्रज और वृन्दावन में भी भेद उत्पन्न कर दिया गया।

पलवल से सोहना की दूरी ३०.६ कि.मी. है।

तिरवारा

पुन्हाना के निकट ही है – **तिरवारा,** जिसका पौराणिक नाम 'तिलक वन' है।

जिस समय समस्त गोपी यूथ श्रीकृष्णान्वेषण कर रहा था, अन्वेषण करते-करते गोपियों ने अनुकरण लीला आरम्भ कर दी, कृष्ण चिन्तन करते वे कृष्णमयी हो गयीं –

"देख - मेरी ललित गति, मैं ही तो कृष्ण हूँ।"

चूतप्रियालपनसासनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥

(भा.१०/३०/९)

गोपियों की इस तन्मयी स्थिति में यहाँ मृगावती नामक अप्सरा ने उनका श्रृंगार किया, तिलक लगाया। अनेकों तिलक वृक्षों का रोपण किया, जिससे यहाँ तिलक वन प्रकट हुआ।

ब्रजभक्तिविलासान्तर्गते –

अथ तिलकबनोत्पत्तिमाहात्म्य निरूपणं –

मृगावत्याप्सरा यत्र श्रृङ्गारतिलकं करोत् ।
गोपीनां सुकुमारीणां कृष्णबेषाभिधायिनां ॥
बहुतिलकवृक्षाणां रोपणं रमणं करोत् ।
तिलकाख्यं बनं जातं सर्वं सौभाग्यवर्धनं ॥

(वामन पुराण)

अर्थ – कृष्णभावभाविता कृष्णलीलानुकरणकारिणी सुकुमारी गोपियों का यहाँ मृगावती नाम की अप्सरा ने श्रृंगार और तिलक किया था।

बहुत से तिलक वृक्षों का रोपण करने से सर्वसौभाग्यवर्धक तिलक वन की उत्पत्ति हुई।

तिलक वन प्रार्थना मन्त्र –

श्रृङ्गारतिलकाभ्यस्तु गोपिकाभ्यो नमो नमः ।
वनाय तिलकाख्याय बनराज नमोस्तु ते ॥

(वृहद् गोतमीये)

श्रृंगार, तिलक आदि से सुशोभित गोपियों को नमस्कार है। हे वनश्रेष्ठ तिलकवन! आपको नमस्कार है।

मृगावतीकुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र –

मृगावतीकृतार्थाय तीर्थराज नमोस्तु ते ।
ताम्रवर्णपयोद्भूत ब्रह्महत्यादिघातक ॥

हे मृगावती निर्मित तीर्थराज! आपका जल ताम्रवर्ण है, ब्रह्महत्यादि पातकों का विघातक है, आपको नमस्कार है।

होडल से तिरवारा की दूरी २०.२ कि.मी. है।

सिंगार (श्रृंगार)

बिछोर से पूर्व स्थित है – सिंगार । सिंगार का शास्त्रीय नाम है – श्रृंगार वन।

अनेक प्रकार से हुई यहाँ श्रृंगार लीला –

श्रीकृष्ण द्वारा हुआ श्रीजी का श्रृंगार।

सखाओं द्वारा हुआ श्रीकृष्ण का श्रृंगार।

श्रीकृष्ण द्वारा हुआ गायों का श्रृंगार।

एई जे श्रृंगार वट कृष्ण एई खाने ।
राधिकार वेश कैला विविध विधाने ॥

(भ. र.१४१२)

श्रृंगारवन में श्रृंगारवट का दर्शन है, जहाँ कमनीय किशोर ने कान्तिमती कीर्तिदा का सर्वांग श्रृंगार किया। यद्यपि उस कनक दर्पकामोचनी, बिनु भूषण भूषित शोभांगी के श्री वपु पर श्यामसुन्दर द्वारा धारण कराई गई चन्द्रकान्त मणि, मरकत मणि व मौक्तिक माला का प्रकाश लज्जावनत मुख छिपाए बस श्री स्पर्श की प्राप्ति के आनन्द से जी रहा था। सहज-सुन्दर वस्तु को भला आभूषण क्या संविभूषित करेगा?

यह तो स्वयं का श्रृंगार करा शरणागत-शोक-शोषिका द्वारा श्रीश्यामसुन्दर के ऊपर कृपादृष्टि-वृष्टि थी।

निरखि श्याम प्यारी अंग शोभा मन अभिलाष बढ़ावत हैं ।
प्रिया आभूषण माँगत पुनि-पुनि अपने अंग बनावत हैं ॥
कुण्डल तट तखिन लै साजत नासा बेसरि धारत हैं ।
बेंदी भाल माँग सिर पारत बेनी गूँथि सँवारत हैं ॥
प्यारी नैननि को अञ्जन लै अपने लोचन अंजत हैं ।
पीतांबर ओढ़नी शीश दै राधा को मन रंजत हैं ॥
कंचुकि भुजनि भरत उर धारत कण्ठ हमेल भ्रजावत हैं ।
सूर स्याम लालच तिय तनु पर करि श्रृंगार सुख पावत हैं ॥

अचिन्त्यानन्त सौन्दर्यशालिनी, जिनके नेत्र रूप दीर्घ-सर-संधान से वंशीधर की बाँसुरी कर से गिर पड़ती है, मयूरमुकुटी का मयूर पंख मस्तक से चरणों में आ गिरता है, पीताम्बरधारी का पीताम्बर गिर जाता है, सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाता है जब श्रीजी सामने आती हैं तो ।

आज जब श्रीकिशोरी जी के नख-शिख श्रृंगार का दर्शन किया,

श्यामसुन्दर को न जाने क्या सूझा, उनसे आभूषणों की याचना करने लगे। भोरी किशोरी अपने एक-एक भूषण को उतारती गईं और श्यामसुन्दर धारण करते गये। कान में कुण्डल, तखिन (एक विशेष कर्णभभूषण जिसे ब्रज में तर्की कहते हैं) को धारण किया और नाक में मुक्ता-बेसर। ललाट पर आकर्षक, चटकीली-चमकीली बेंदी लगाई, मस्तक की माँग भरी और काले घुँघराले कुन्तलों को गूँथकर एक लम्बी वेणी बना ली। श्रीजी के लजीले नेत्रों का अञ्जन लेकर अपने चंचल लोचनों में लगाया। पीताम्बर को ओढ़नी की तरह ओढ़कर श्रीजी का मन रंजित कर रहे हैं। अब कंचुकी (कंचुकी पहले भुजाओं से पहनी जाती है) उसे पहले भुजाओं में धारण किया, जिससे वक्ष पर ठीक माप से आ जाय।

इस प्रकार श्रीजी के श्री विग्रह पर लालच करके, किशोर से किशोरी बनकर श्यामसुन्दर सुख प्राप्त कर रहे हैं। तब तक ललितादिक आरसी ले आईं। गोरी-सांवरी सखी (श्रीजी-श्यामसुन्दर) के सामने आरसी लेकर खड़ी हो गईं।

श्रीगोविन्द स्वामी जी के शब्दों में –

मुख सौं मुख मिलाइ देखत आरसी ।
विकसित नील कमल ढिंग उदित भयो किधौं ससी ॥
निरखि बदन मुसिक्याइ परस्पर करत बिहँसि गिरि जात अंक हँसी ।

'गोविन्द' प्रभु प्यारी जु परस्पर, दंपति परे प्रेम बसी ॥

मुख से मुख मिलाये प्रिया-प्रियतम ने जब स्वरूप निहारा, सांवरी सखी तो विकसित नील-कमल और गोरी सखी उज्ज्वल चंद की तरह शोभा को प्राप्त हो रही थी। मानो चंद को देखकर नील कमल प्रसन्नता में प्रस्फुटित हो रहा है। दोनों दिव्य-सुख-सिन्धु में डूब गये हैं।

श्रृंगार की अनेक लीलाएं हैं –

श्रीपरमानन्द स्वामी जी की वाणी में –

राधा बैठी तिलक सँवारति ।
मृगनैनी कुसुमायुध के डरु सुभग नंदसुत रूप बिचारति ॥
दरपन हाथ सिंगारु बनावति बासर-जाम जुगति यों डारति ।
अंतर प्रीति स्यामसुन्दर सों प्रथम समागम-केलि सँभारति ॥
बासर-गत रजनी ब्रज आवत मिलत लाल गोवरधनधारी ।
'परमानन्द' स्वामी के संगम रति-रस-मगन मुदित ब्रजनारी ॥

चाचा वृन्दावनदास जी के 'प्राचीन ब्रज परिक्रमा' ग्रन्थ में सिंगार –

"गंडा रचैं मोर पंखन के जाय सिंगार जु गाय सम्हारी ।"

गोपालक दाऊ-श्याम ने यहाँ गायों को स्वयं अपने हाथों से गण्डा बनाकर धारण कराया, भाँति-भाँति से उनका श्रृंगार किया। सखा समुदाय की सेवा भी अपूर्व थी। कोई तो दौड़कर सुनहली चादर ओढ़ा रहा है, कोई चरणों में पुष्पों के साथ नूपुर धारण करा रहा है, कोई उनकी गर्दन खुजला रहा है, कोई शृंगों को मुक्तामाल से सजा रहा है, कोई उनके मस्तक पर नीले-पीले अंगराग का तिलक लगा रहा है, कोई गुलाब, गुड़हल, कनेर, सूरजमुखी की रंग-बिरंगी माला बनाकर धारण करा रहा है, सभी अपनी-अपनी सेवाओं में व्यस्त हैं। मनसुख की सेवा विलक्षण है, सभी गायों के समीप जाता है, बद्धकर उन्हें प्रणाम करता है फिर उनके चरणों से रज को झार-पौंछकर ले आता है और उस 'गो रज' से सब गोपबालकों का तिलक करता है – ले, यह सर्वतीर्थमयी नन्दिनी की चरणरज है, यह सर्वतीर्थरूपिणी मदना की चरणरज है ।

प्यारे कन्हैया के ललाट पर भी गो रज का तिलक लगाया फिर न जाने क्या सूझा, अपनी दोनों भुजाओं में भरकर उसे पद्मगन्धा के पदों में सुला दिया –

बहुत राक्षसों ने अपवित्र किया है तुझे, आज पवित्र हो जाएगा, मनसुख बोला।

प्यारे की काली अलकावली, यहाँ तक कि नेत्र गोलक की अलक-पलक भी गोरज से भर गयीं, गोपाल का गोधूलि धूसरिताङ्ग भी एक नूतन सौन्दर्य लिए खड़ा था। ग्वाल-

बाल भी देखकर चकित थे, वाह प्यारे, तेरे अंग पर तो धूल भी फूलवत् शोभा को प्राप्त हो रही है।

श्री नंददास जी के शब्दों में –

प्यारे तेरो सो मुख करिबे को चंदा बहुत तप्यौ ।
उडुगन कौ ईश भयौ, पुनि औषधीश भयौ,
ईश शीश लौं गयो तऊ न फिर्‌यो ।
सुधामय शरीर कियौ, बाँटि बाँटि सुरन दियो,
मरि-मरि फेरि जियौ तनु धरिकै नयौ ।
नंददास प्रभु प्यारे तदपि कछु न अर्थ सर्‌यो,
जाय समुद्र में गिर्‌यो बिधि बूडन न दियौ ॥

ग्वाल-बाल बोले – कन्हैया! चन्द्रमा ने चाहा तो बहुत, तेरे जैसा स्वरूप-सौन्दर्य, इसके लिए चन्द्रमा ने बहुत तप भी किया; तप से वह तारामण्डल का राजा बन गया, औषधियों को सोमरस देने वाला औषधियों का स्वामी बन गया, महादेव के मस्तक पर चढ़ गया किन्तु तेरी बराबरी नहीं कर सका। अमृतमय इसका शरीर हो गया, प्रतितिथि पर सुरों को सुधा दान करता है। द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी आदि तिथियों में देवों को अमृत बाँटने से ही चन्द का सुधित देह घटता है, प्रति अमावस्या मरता है, पूर्णिमा को पुनः जीवित हो जाता है। बार-बार जन्म-मरण तक सहता है किन्तु इतने तप के बाद भी कन्हैया! यह तेरे तुल्य न हो सका।

अन्ततः समुद्र में गिरा तो विधि ने बचा लिया – अरे भाई, मर मत। तू किसका साम्य कर रहा है, सैकड़ों निशाकर-भास्कर का सम्प्लव-विप्लव जिनके संकल्प संकेत से हो जाता है।

गोकुलेन्दु के आगे एक लोकेन्दु की क्या बिसात, वहाँ तो असंख्य सुधित-चंद भी लज्जावनत हो जाते हैं।

जाकी सुन्दरता जग बरनत, मुख छवि लखि द्युति चन्द लजावै ।

(नारायण स्वामी जी)

ग्रामीणों के कथनानुसार इस स्थल का नाम स्वराज गढ़ था। राजा जसवान ने यहाँ पर अपना राज्य स्थापित किया।

हरियाणा राज्य में यह जिला मेवात, तहसील पुन्हाना का एक बड़ा गाँव है, जिसमें मेव (मुसलमान) लोग निवास करते हैं। यह प्राचीन गाँव है। इसकी प्राचीनता को इसकी पुरानी इमारतें दर्शाती हैं। पहले यहाँ पर नील के वृक्ष अधिक हुआ करते थे तथा नील का उत्पादन ही होता था, इसीलिए यहाँ पर एक नीलकुण्डा भी स्थित है। इस गाँव में प्राचीन मन्दिर भी हैं। प्राचीन काल में यहाँ बडगूजर जाति के लोग रहते थे, जिन्हें बाद में मेव

बना दिया गया। यहाँ के मेवों की पाल को हिरकलोत के नाम से जाना जाता है। उनके बाद बालोत गोत्र के मेव यहाँ बसे और उनसे भी पूर्व यह गाँव ब्राह्मणों का था। अभी भी यहाँ ब्राह्मणों के घर हैं। मुस्लिम बहुल आबादी होने पर भी यहाँ मन्दिर, कुण्ड एवं तालाब हैं। यहाँ के ग्रामीणों द्वारा कहा जाता है कि उनके पूर्वज हिरकलोत, यादव थे ग्रामीणों द्वारा यह भी पता चला कि पुरातन काल में यहाँ अत्यधिक सघन वन थे, जिनमें श्रीकृष्ण लीला हुई थी। यहाँ की प्रमुख लीला यह है कि श्यामसुन्दर द्वारा श्रीराधा रानी का श्रृंगार किया गया, इसी कारण से यह ग्राम श्रृंगार के नाम से सुशोभित हुआ।

होडल से सिंगार की दूरी १७ कि.मी. है।

नौगाँव

नव-नव क्रीड़ा-कौतुकी नित्य-नव किशोर-किशोरी का प्रतिपल एक नूतन सज्जा लिये रहता है। इनका वेष (वस्त्रालंकार), संवेश (शयन), अभिनिवेश (आग्रह या आसक्ति), क्रिया विनिवेश (रहन-सहन की परिपाटी) सब कुछ सदैव ही नूतन है।

श्री हित जी की वाणी में –

नयौ नेह, नव रंग, नयौ रस, नवल स्याम वृषभानु किसोरी ॥
नव पीताम्बर, नवल चूनरी, नई-नई बूंदन भीजत गोरी ॥
नव वृन्दावन हरित मनोहर, नव चातक बोलत मोर-मोरी ॥
नव मुरली जु मलार नई गति, स्रवन सुनत आये घन-घोरी ॥
नव भूषन नव मुकुट विराजत, नई-नई उरप लेत थोरी-थोरी ॥
(जैश्री) हित हरिवंश असीस देत मुख, चिरजीवौ भूतल यह जोरी ॥

यह नवीनीकरण युगल को ही भ्रम में डाल देता है।

दोऊ लाल पिया में भई न चिन्हारी ।

(ध्रुवदास जी)

हो भी क्यों न, प्रतिपल नवीनता को प्राप्त होने वाला यह रूप युगल का परीक्षण करता है।

प्यारी जू जब जब देखौं तेरौ मुख, तब तब नयौ नयौ लागत ।
ऐसौ भ्रम होत मैं कबहुँ देखी न री, दुति कौं दुति लेखनी न कागत ॥
कोटि चंद तैं कहाँ दुराये री, नये नये रागत ।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम कहत काम की सांति,
न होइ न होइ तृपति रहौं निसि दिन जागत ॥

(श्रीकेलिमाल-३४)

श्री विट्ठल विपुल देव जी की वाणी में –

नव वन नव निकुञ्जनव बाला ।
नवरंग रसिक रसीलौ मोहन विलसत कुञ्जबिहारी लाला ॥
नव मराल जित अवनि धरत पग कूजत नूपुर किंकिनि जाला ।
श्री वीठलविपुल बिहारी के उर यौं राजत जैसें चम्पे की माला ॥

श्री कृष्णदास जी की वाणी में –

नयौ कानरौ, नई मति, नई-नई तान, नवरँगी रास ॥
नित नए महल नई कुञ्ज चित्रसारी ।
नित नई नवल मनोहर राधे, नित नए लाल गोवर्धनधारी ॥
नित नए बिबिध भोग पट भूषन, नित नई कुसुम-सेज सुखकारी ।
नित नए बासर केलि-कला पर, नित नए "कृष्णदास" बलिहारी ॥

अथवा

गोवर्द्धनधारी लाल नित नवरंग ।
नववर वृन्दावन, नव घनश्याम तनु,
नवल रूप देखत बिथकित कुरंग ॥
अंग-अंग नवल कटितट, पीतपट,
नवल घोषसुन्दरी लीन्हें पिय संग ।
"कृष्णदास" प्रभु हरि नवल, नवल सीमा,
नवल नयन चल सुरत-तरंग ॥

श्री परमानन्ददास जी की वाणी में –

"देखौ ढरकनि नवरँग-पाग की"

श्री छीत स्वामी जी की वाणी में –

"नैननि भाँवते देखे री! पिय नव नंदलाल"

कहाँ तक कहें, सभी रसिक महापुरुषों ने गाई नित्य-नव-नवायमान युगल की नित्य-नवीन लीला को।

यहाँ प्राचीन श्रीराधाकृष्ण का मन्दिर, हनुमान जी, देवी माता एवं महादेव जी का मन्दिर दर्शनीय हैं।

होडल से नौगाँव ३४ कि.मी. है।

बिछोर

भक्ति रत्नाकर अनुसार –

यह वह स्थल है जहाँ प्रिया-प्रियतम की बिछोह लीला सम्पन्न हुई। रसराज (श्रृंगार) के दोनों पक्षों संप्रलम्भ-विप्रलम्भ (संयोग-वियोग) में श्रीचैतन्यदेवादि स्वानुभवी महापुरुषों ने संप्रलम्भ की अपेक्षा "ओह! तुम्ही तो हमारे संप्रलम्भ के पुष्टिकर्ता हो" यह कहकर प्रेमपूर्वक विप्रलम्भ का ही अधिक, स्नेहपूर्वक स्वागत किया है।

सङ्गमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्य।
एकः स एव सङ्गे त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥

(श्रीपद्यावली २३९)

अथवा

सङ्गम विरह विकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः।
सङ्गे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥

(साहित्य दर्पण १०/७)

सब संसार ही प्रियतम बन जाय, इससे उत्तम और होगा ही क्या?

वस्तुतः सुखद तो विप्रलम्भ ही है। संप्रलम्भ में प्रियतम के दुर्वह विरह की आशंका मात्र से नवमी-दशमी दशा (मूर्छा-मृत्यु) का दर्शन होने लगता है, जबकि विप्रलम्भ में प्रियतम की प्राप्ति की उद्भावना ही सान्द्रानन्दार्णव में उद्भ्रमण कराने लगती है।

अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभाव कुटिला भवेत्।

(उ.नी.श्रृं.प्र. - १०२)

यथा सर्प की स्वाभाविक गति वक्र है तथैव प्रेम-गति भी वक्र है। इन ब्रजवल्लभियों के बाह्य दृष्टिभूत भावों से आन्तरिक सुख-दुःख का सन्दोह समझना सरल नहीं है।

श्री प्रिया जू विरहजन्य अवसाद की वन्दना करती हैं। श्याम सुन्दर के सानिध्य की भर्त्सना करती हैं। इससे तो यही प्रदर्शित होता है कि इष्ट मनोऽभीष्ट नहीं है इन्हें किन्तु पूछो इनसे क्या ये 'अन्याभिलाषिता शून्यं' नहीं हैं? तो कहती हैं –

सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।

(भा.१०/२९/३१)

विप्रलम्भ क्या है?

"संभोगोन्नतिकारकः विप्रलम्भः"

संभोग का उन्नतिकारक है – विप्रलम्भ।

न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते ।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्द्धते ॥

(उ. नी. शृं. प्र. – २, ३)

बिना विप्रलम्भ के संप्रलम्भ की पूर्ति नहीं होती है। रंगे हुए वस्त्र को पुनः रंगने से जैसे रंग की वृद्धि होती है, उसी प्रकार विप्रलम्भ से संप्रलम्भ-सुख की वृद्धि होती है।

विप्रलम्भ –

विप्रलम्भ के ४ प्रकार हैं –

पूर्व राग (२) मान (३) प्रेम वैचित्त्य (४) प्रवास।

केलिमाल में पूर्व राग –

मिलन से पूर्व दर्शन, स्वप्न, श्रवणादि से प्रेमास्पद के प्रति जिस रति का अभ्युदय होता है, वही पूर्व राग है।

उदाहरण –

आज तृन टूटत है री ललित त्रिभंगी पर ।
चरन चरन पर मुरली अधर धरैं, चितवनि बंक छबीली भू पर ॥

(केलिमाल -१८)

मान –

परस्पर एकत्र व अनुरक्त होते हुए भी मनोऽभिलषित आलिङ्गन, दर्शन, चुम्बन आदि का प्रतिबन्धक स्व-स्व भाव ही मान है। मान ही प्रेम की पहिचान है अतः समस्त ब्रज-रसज्ञों की वाणी में इसका समादर हुआ।

केलिमाल में मान –

मानजन्य अवसादग्रस्त श्रीश्यामसुन्दर कहते हैं –

भूलैं भूलैं हूँ मान न करि री प्यारी,
तेरी भौंहैं मैली देखत प्रान न रहत तन ।
ज्यौं (जिय) न्यौछावरि करौं प्यारी तो पै,
काहे तें तू मूकी कहत स्याम घन ॥
तोहिं ऐसैं देखत मोहिंब कल,
कैसें होइ जु प्रान धन ।
सुनि हरिदास काहे न कहत यासौं,
छाँड़िब छाँड़ि अपनौं पन ॥

(केलिमाल-१०)

अथवा

तू रिस छाँड़ि री राधे राधे ।
ज्यौं ज्यौं तोकौं गहरु त्यौं त्यौं, मोकौं बिथा री साधे साधे ॥
प्राननि कौं पोषत है री, तेरे वचन सुनियत आधे आधे ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी, तेरी प्रीति बाँधे बाँधे ॥

(केलिमाल-१७)

अथवा

राधे दुलारी मान तजि ।
प्रान पायौ जात है री मेरौ सजि ॥
अपनौं हाथ मेरे माथे धरि, अभै दान दै अजि ।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम कहत री प्यारी, रंग रुचि सौं बलि लजि ॥

(केलिमाल-२२)

अथवा

प्यारी जू हम तुम दोऊ एक कुञ्ज के सखा रूसैं क्यौं बनैं ।
इहाँ न कोऊ हितू मेरौ न तेरौ जो इह पीर जनैं ॥
हौं तेरौ बसीठ तू मेरौ और न बीच सनैं ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी कहत प्रीति पनैं ॥

(केलिमाल-७९)

अथवा

काहे कौं मान करत, मोहिब कत दुख देति ।

(केलिमाल-३९)

अथवा

प्यारी जू एक बात कौ मोहिं डर आवत है री,
मति कबहूँ कुमया (प्रेम हीनता) करि जाति ।

(केलिमाल-७८)

न केवल हरिदासी सखी ने अपितु 'हितू सखी' ने भी मान का गान किया –

हित चतुरासी में मान –

यमुना पुलिन निकुञ्जभवन में, मान मानिनी ठानै ।
निकट नवीन कोटि कामिनि कुल, धीरज मनहि न आनै ॥
प्रीति की रीति रंगीलौई जानै ।

(हित चतुरासी – ४१)

प्रेम वैचित्त्य –

प्रेमास्पद की सन्निधि में भी जहाँ वियोगावसाद उपस्थित हो, यही वैचित्त्य है प्रेम का।

तुव मुख चंद चकोर मेरे नैना ।
अति आरत अनुरागी लंपट भूल गई गति पलहु लगै ना ॥
अरबरात मिलवे कौं निसदिन मिलेई रहत मनु कबहुँ मिलै ना ।
'भगवतरसिक' रसिक की बातें रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना ॥

कौन जाने, प्रेम-वैचित्त्य की इस स्थिति में सम्मिलन-सुख भी वियोगावसाद बन सकता है .....।

अङ्कस्थितेऽपि दयिते किमपि प्रलापं
हा मोहनेति मधुरं विदधत्यकस्मात् ।
श्यामानुरागमदविह्वलमोहनाङ्गी
श्यामामणिर्जयति कापि निकुञ्जसीम्नि ॥

(रा. सु. नि. ४६)

यह क्या!

प्रियतम की गोद में भी इसका मनस्ताप निरस्त नहीं होता।

हा मोहन! प्रलाप करते हुए प्रियतम के अनुराग में मदविह्वला यह मनोहराङ्गी, कौन जाने इसकी इस वाणी में सुख-सन्दोह है अथवा बिछोह का दुःख। दुःख तो इसलिए न होगा कि स्वसुखवासनागन्धशून्य तत्सुखसुखित्व की ही उपासना है यहाँ। सुख-दुःखातीत इस स्थिति को समझ पाना दुर्लभ है।

उदाहरण –

एकदा निकुञ्जेश्वरी श्रीकृष्ण के साथ विराजमान थीं। महल में सखी समुदाय सहित सखा समूह भी उपस्थित था।

मधुमङ्गल ने कहा – "अभी-अभी तो यहीं था, अब न जाने कहाँ चला गया मधुसूदन (भ्रमर)? "

भ्रमर-भाव को न समझकर 'मधुसूदन' से अपने प्रेमास्पद का विचारकर समीपासीन श्यामसुन्दर भी उन्हें (श्रीजी को) अलक्षित हो गये एवं स्वयं को कृष्ण द्वारा त्यक्त समझकर विरह-विषाद को प्राप्त हो गईं।

हा नाथ! प्राणवल्लभ!!

इस वैश्लेषिक ज्वर से जडिमा भाव को प्राप्त हो गईं।

प्रियतम के सामीप्य में यह दशा!

प्रवास –

नायक-नायिका के कुञ्जान्तर-देशान्तर गमन से उत्पन्न विरह ही प्रवास है।

हितू सखी की वाणी में कुञ्जान्तर विरह –

चलहि किन मानिनि कुञ्ज कुटीर ।
तो बिनु कुंवर कोटि बनिता-जुत, मथत मदन की पीर ॥
गद-गद सुर विरहाकुल पुलकित, श्रवत विलोचन नीर ।
क्वासि-क्वासि वृषभानु नन्दिनी, बिलपत विपिन अधीर ॥
बंशी बिसिख व्याल माला वलि, पंचानन पिक कीर ।
मलयज गरल हुतासन मारुत, साखामृगरिपु चीर ॥
जय श्री हित हरिवंश परम कोमल चित, चपल चली पिय तीर ।
सुनि भयभीत बज्र को पंजर, सुरत-सूर रणवीर ॥

(श्रीहित चतुरासी-३७)

अन्तरंगा सहचरी कहती है – हे मानिनि! कुञ्ज कुटी में क्यों नहीं चलती हो? तुम्हारे विरह में प्यारे के नेत्रों से स्रवित अश्रुधार रुक नहीं रही है। हे वृषभानुनन्दिनी..... प्राणप्रियतमा ..... कहाँ हो ...?

यह विरह क्रन्दन ऐसा है कि प्यारे को वंशी शर की तरह चुभ रही है, माला व्याल (सर्प) वत्, शुक, कोकिला की कूज सिंह की गर्जना की तरह लगती है। चन्दन विष, पवन अग्निवत्, वस्त्र कोंच की फली की तरह देह को खा रहे हैं।

अथवा

बेगि चलहि उठि गहर करत कत, निकुञ्जबुलावत लाल ।
हा राधा, राधिका पुकारत, निरखि मदन गज ढाल ॥
करत सहाय सरद ससि मारुत, फूटि मिली उर माल ।
दुर्गम तकत समर अति कातर, करहि न पिय प्रति पाल ॥
जै श्रीहित हरिवंश चली अति आतुर श्रवन सुनत तेहि काल ।
लै राखे गिरि-कुच बिच सुन्दर, सुरत-सूर ब्रज बाल ॥

(श्रीहित चतुरासी - ३८)

महावाणी में प्रवास –

दोहा -

अति की गति सब होय चुकी तन धीरज न धराहिं ।
मेरी जीवनप्रान बलि ए अलि मोहिं मिलाहिं ॥

पद -

मोहिं मिलाय दै री मेरी जीवनि प्रान ।
मैं बहुते करि मानिहौं मो पर तेरो अहसान ॥
तू ही तू हिय की हितू री तो बिन सरत न काज ।
अब मेरे या जीयकी री है सब तोहि कौं लाज ॥
कहा करौं कैसे भरौं री बिन देखे नहिं चैन ।
मनमोहन मुख अवलोकन कौं तरसत मेरे (ए) नैन ॥
अति की गति सब होय चुकी री अब कछु रती रही न ।
तरफर तरफर करत फरफरत जैसे जल बिन मीन ॥
तन तनक न धीरज धरै री मनहू निपट अधीर ।
पलक सह्यौ नहिं परत है मोहिं सखामृग रिपु चीर ॥
जित देखौं तित दुखमई री भई दिसि बिदिसा मोहिं ।
आनन्दकन्दा चन्द कें बिनु क्यों सियराई होहिं ॥
अङ्ग अङ्ग सिथिलै भये री बुद्धि बिकल बेहाल ।
रहत न प्रान कपूर ज्यों (ये) बिनु गुंजा-गोपाल ॥
मनअनुसारिनि है तूही री तोसों कहा दुराव ।
श्रीहरिप्रिया निहचै लगो मेरौ मन बच तोसों भाव ॥

(श्री महावाणी, उत्साह सुख - ४०)

ब्रज का एक-एक रज-कण सख्य-श्रृंगार की अनेकानेक लोककल्याणकारिणी लीलाओं से अनुरञ्जित है अतः एक स्थल की अनेक लीला होना स्वाभाविक ही है। ब्रज का छोर (सीमा) होने के कारण इस स्थान का नाम 'ब्रजछोर' है। 'ब्रजछोर' का अपभ्रंश ही 'बिछोर' है।

पौराणिक नाम –

ब्रजभक्तिविलास में मत्स्यपुराण के अनुसार 'विस्मरण वन' है।

यत्र गोप्यो हरिं त्यक्त्वा भ्रमेयुः कृष्णचिन्वतीः ।
कृष्णस्तु गोपिकाश्चिन्वन् भ्रमन् घोरबने मुहुः ॥

ततो विस्मरण वन प्रार्थना मन्त्र –

गोपिकादर्शनान्वेषबनाय च नमोस्तु ते ।
केशवाल्हादसंजात धूम्रवर्णाय ते नमः ॥

हे केशवाल्हाद संजात धूम्रवर्ण स्वरूप गोपिकान्वेषण वन! आपको नमस्कार है।

इस वन की मुस्कुराती मोहक माधुरी ने गोपाङ्गना समुदाय को आत्मविस्मृति करा दी।

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥

(भा.१०/३०/४४)

प्रेम की यह अद्वितीय अवस्था जहाँ ये वल्लभियाँ स्वयं ही वल्लभ बन गयीं, बिछोर की धरा की ही बात है। गौराङ्गी गोपाङ्गनाओं को एकमात्र गोविन्द ही याद थे अतः वन में गोविन्द को ढूँढ़ने लगीं।

रासपंचाध्यायी में वर्णित लीला तो गोपियों द्वारा गोविन्दान्वेषण का उद्घोष है।

किन्तु विस्मरणवन में अन्योन्यान्वेषण लीला (गोविन्द द्वारा गोपी अन्वेषण व गोपियों द्वारा गोविन्दान्वेषण) सम्पन्न हुई है।

यत्र गोप्यो हरिं त्यक्त्वा भ्रमेयुः कृष्णचिन्वतीः ।

श्री भागवतजी ने भी गान किया इस लीला का (उद्धव जी के वचन) –

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥

(भा. ३/२/१२)

श्रीराधिकारानी भी भूल जाती हैं स्वयं को व श्रीश्यामसुन्दर भी।

मैं तू तू मैं हो गये, मैं देही तू प्रान ।
अब को अनहि कहि सकै, मैं और तू है आन ॥

आत्मविस्मृति की अन्य लीला –

प्यारी जू जैसैं तेरी आँखिन में हौं अपनपौ देखत,
हौं ऐसैं तुम देखति हौ किधौं नाँहीं ।
हौं तोसौं कहौं प्यारे आँखि मूँदि रहौं,
तौ लाल निकसि कहाँ जाँहीं ॥
मोकौं निकसिवे कौं ठौर बतावौ,
साँची कहौं बलि जाऊँ लागौं पाँहीं ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा तुमहिं,
देख्यौ चाहत और सुख लागत काँहीं ॥

(केलिमाल-६)

लाड़िली जू के नेत्रों में स्वस्वरूप को देख लालजी बोले – "प्यारी जू! जैसे मैं आपके नेत्रों में स्वयं को देख रहा हूँ, क्या आप भी मेरे नेत्रों में स्वयं को......? "

प्यारी जू – "प्यारे! यदि मैं अपने नेत्र कपाट बन्द कर लूँ, तो.....कैदी फिर कैसे बाहर आएगा .....? "

लाल जी – प्यारी जू! इस कैदी को बाहर आने का मार्ग आप ही स्पष्ट करो। जब भी आपके नेत्रों को देखता हूँ, स्वयं का ही दर्शन होता है।

उपरोक्त पंक्तिमाला का अन्तर्हित भाव यही है, श्रीजी कह रहीं हैं – "यदि नेत्र-गोलक में कैद होने का भय है तो फिर हमारी ओर मत देखो।"

लाल जी – "भला यह कैसे सम्भव है? ये चक्षु अन्यत्र जाते ही नहीं।"

लाड़िली-लाल दोनों की एक ही समस्या है।

श्रीजी तो कहती हैं –

मोकों तो भावती ठौर प्यारे के नैननि में,
प्यारौ भयो चाहै मेरे नैंननि के तारे ॥
मेरे तन-मन-प्राण हूँ तें प्रीतम प्रिय,
अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोसों हारे ॥
जै श्रीहित हरिवंश हंस-हंसनी साँवल-गोर,
कहौ कौन करै जल-तरङ्गनि न्यारे ॥

(श्री हितचतुरासी - १)

तो विस्मृति से स्थल प्रान्त का नाम 'विस्मरण वन' हुआ।

यहाँ केशव नाम से विख्यात एक कुण्ड भी दर्शनीय है।

ततो केशवकुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र –

गोपिकाशक्तरूपाय केशवाय नमोस्तु ते ।
स्नपिताय भगोस्तुभ्यं विमलाङ्ग्घ्यु ते नमः ॥

हे गोपीगणों के आसक्त स्वरूप केशव! आपको नमस्कार है। आप महासौभाग्यशील के स्नान के लिए हैं, आप विमल कान्ति से युक्त हैं।

ब्रजभक्तिविलासानुसार परस्पर के अन्वेषण के पश्चात् श्रीश्यामसुन्दर व गोपीजन का यहाँ सम्मिलन हुआ, एक साथ इस सर में स्नान किया।

ब्रजजन श्रुति है कि स्नानकाल में श्रीजी का बिछुवा खो जाने से यह 'बिछुवा कुण्ड' है।

अङ्गना समुदाय श्रीकृष्ण को ढूँढ़ता, पुकारता फिर रहा है।

रंगी त्रिभंगि श्याम के अपांग रंग ध्यान में,
विचित्त पूछती फिरैं द्रुमान सों छपान में,

वियोग वह्नि सों भरी घरी उठैं उफान में।
पुकारतीं हरि-हरि हरी-हरी लतान में॥
नवेलि हे चमेलि तू प्रफुल्ल है लतान में,
बिना पिया मिले अरी न फूल हों हियान में,
बता कहाँ कन्हाई री हमें न चैन प्रान में।
पुकारती हरि-हरि हरी-हरी लतान में॥
रसाल हे तमाल हे निवास तीर्थथान में,
परोपकार धार कै तनु तपो वनान में,
कदम्ब उच्च तू समर्थ दूर के दिखान में।
पुकारती हरि-हरि हरी-हरी लतान में॥
अभीर एक पूतना पवित्र प्रेम तान में,
भई जु एक बाल नन्दलाल के प्रमान में,
बमार चक्र एक हो लगी शिशु उड़ान में।
पुकारती हरि-हरि हरी-हरी लतान में॥
भुजा धरे इकांगना इकालि अंश थान में,
कहै ललाम मो गति निहार री पयान में,
तिया पिया बनी घनी धनांग भावनान में।
पुकारती हरि-हरि हरी-हरी लतान में॥
इकालि कालिया भई द्वितीय नृत्यगान में,
प्रवीन श्याम है गई शिरो पदांक दान में,
कलिन्द नन्दिनी तटै सुधी न खान-पान में।
पुकारती हरि-हरि हरी-हरी लतान में॥
भये न व्यक्त ढूँढ़ती फिरी सबै वनान में,
मिलि सबै मतौ कियो गुणानुवाद गान में,
भई विहाल गीत गा रही अलापनान में।
पुकारती हरि-हरि हरी-हरी लतान में॥
प्रकट न तौ हु नन्द के किशोर साधनान में,
निःसाधना भई कियो विलाप सुस्वरान में,
व्रजेन्द्र चन्द्र आ मिले कदम्ब गोपिकान में।
पुकारती हरि-हरि हरी-हरी लतान में॥

इस ललित नायक के एक-एक अंग-अपांग का ध्यान कर रहीं हैं।

श्रीकृष्ण वियोग में लता-पत्र से पूछती हुई ऐसी चली जा रही हैं मानो कोई जलती मशाल। खिली चमेली को देखा तो चाल थम गई। अरी चमेली! लगता है कृष्णालिङ्गन प्राप्त हुआ है तुझे। इसीलिये नूतन फूल, प्रवाल विकसित हो रहे हैं तुझमें। हमें भी उनका मार्ग बता दे। (परस्पर कहती हैं) चलो-चलो उच्च तरुओं के पास चलें, ये लघु लताएं सुदूर देखने में असक्षम हैं। हे रसाल! हे तमाल! तुम तो परमार्थहित जीवनधारण करने वाले हो। हमारे ऊपर भी उपकार कर कृष्णमार्ग स्पष्ट करो।

केशव कुण्ड - बिछोर

आगे तो फिर गोपियों द्वारा अनुकरण लीला आरम्भ हो गई। न केवल ब्रजदेवियों द्वारा कृष्णान्वेषण हुआ अपितु विहस्त (व्याकुल) श्रीकृष्ण भी ढूँढ़ते-टेरते फिरे –

देखी कहूँ गलीन में मो प्राण जीवनी।
ऐहो सुजान प्यारी मम चूक कहा विचारी।
क्यों दुर गई लतन में देहु दरस आनन्दिनी॥
जब चलत चाल छबि सों तब हलत हार उरै सौं।
ठुम-ठुम चरण-चरण पै तू है गति गयंदिनी॥
तेरी छटा चरण की निंदत रवि किरण की।
हा हा कुँवरि किशोरी तू है सुख समूहनी॥
ये सुनत वचन मेरो पाषाण द्रवत हेरो।
'हित रूप लाल' तेरो ऐहो दुख निकन्दनी॥

बिछोर की अन्य लीला –

गोचारण काल में गायों के बिछुर जाने से भी यह बिछोर है।

वृन्दावन दास जी कृत प्राचीन ब्रजपरिक्रमानुसार –

बिछोर के बारे में यह भी प्रसिद्ध है – "ब्रज के छोर बिछोर विदित हैं"

'ब्रज का छोर' यानि सीमान्त ग्राम है – बिछोर।

"बिछुरी गाय तहाँ जू संभारी"

श्यामसुन्दर की गायें उनसे बिछुड़ गयीं, जिन्हें उन्होंने यहाँ सम्भाला।

कदम्ब चढ़ि कान्ह बुलावत गैया ।
मोहन मुरली को सब्द सुनत ही, जहाँ तहाँ तैं उठि धैया ॥

मुरलीधर की मुरली सुनते ही सब इधर-उधर बिछुड़ी गायें रँभाते, दौड़ते चली आईं।

आवो रे सब सखा संग के, पाई है एक ठैयाँ ।

कृष्ण बोले – "दाऊ दादा! सब गैया मैया आ गयी हैं, चलो अब चलें नन्दगाँव ।"

'गोविन्द' प्रभु बलदाऊ सों कहन लागे, अब घर को बगदैयाँ ॥

बिछोर से नंदगाँव की दूरी अधिक नहीं है, यह सब गोचारण-भूमि रही है। राजस्थान-हरियाणा की सीमा पर यह हरियाणा प्रांत का एक बड़ा गाँव है। यहाँ लक्ष्मण जी का प्राचीन मन्दिर है। किसी समय यह स्थल भी एक सघन वन प्रदेश था। यहाँ पर एक प्राचीन मन्दिर कूआँ एवं छतरी मौजूद है। प्राचीन काल में बिछोर में "छोंकर जाति" के राजपूत निवास करते थे। वर्तमान में यहाँ मेव बन्धुओं की बहुलता है। यवनों के आक्रमणकाल में ब्रज की सभ्यता, संस्कृति में आमूलचूल परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया। इसलिए ब्रज को बार-बार मृतिघाट का सामना भी करना पड़ा। यद्यपि ब्रज का वह प्राचीन वैभव, उदात्त देवालय, अपार गोधन, व्यापक क्षेत्र शनैः-शनैः दृष्टिपथ से लगभग विलुप्त हो गया। तथापि ब्रज की अक्षय कीर्ति का सर्वनाश किसी से सम्भवन हुआ। पूज्य गुरुदेव के द्वारा ब्रज के व्यापक क्षेत्र को पुनः ब्रज में लाने का पूर्ण प्रयास हुआ। ब्रजान्तर्गत बहुत सी लीला-स्थलियों का पुनः प्राकट्य हुआ, जीर्णोद्धार हुआ, इसके अतिरिक्त पूर्वाचार्यों की वाणी के आधार पर ब्रज की विस्तृत सीमा का प्रकाशन हुआ। संकीर्णमतधारा का आश्रय न लेकर उदारमना ब्रजप्रेमियों को ब्रज के व्यापक क्षेत्र को स्वीकार करना चाहिए। धाम की इस उपासना से निस्संदेह धामी की पूर्णकृपा का लाभ प्राप्त होगा, अन्यथा मात्र अपराधों के कुछ भी हाथ न लगेगा।

लक्ष्मण मंदिर - बिछोर

सूरदास जी के शब्दों में बिछोर –

गोपीजन राधारानी सहित प्राण प्यारे श्रीकृष्ण को ढूँढ़ रही हैं व श्रीकृष्ण सखी समुदाय सहित श्रीजी को –

कबहुँ स्याम जमुना-तट जात ।
कबहूँ कदम्ब चढ़ मग देखत, राधा बिनु अति ही अकुलात ॥

कभी तो श्यामसुन्दर श्रीयमुनाजी की ओर चले जाते हैं ढूँढ़ते हुए, तो कभी कदम्ब पर चढ़ जाते हैं, श्रीजी के बिना व्याकुल हैं –

कबहुँ जात वन कुँज धाम कौं, देखि रहत नहिं कछु सुहात ।

यहाँ की कुञ्जों में घूमते हैं, जब श्रीजी नहीं दिखाई पड़ती हैं, तो अब एक ही ठिकाना शेष है, वह है – श्रीबरसाना धाम, बरसाने आते हैं –

तब आवत वृषभानुपुरा कौं, अति अनुराग भरे नन्दतात ॥

श्रीराधारानी, श्यामसुन्दर के प्रेमपरिप्लुत इस व्याकुलता को समझकर मन ही मन गद्‌गद हो जाती हैं कि श्यामसुन्दर मुझे प्राप्त करने के लिए कितने श्रमित हो रहे हैं –

प्यारी हृदय प्रगटहीं जानति, तब वह मनहीं माँझ सिहात ।
'सूरदास' नागरि के उर में, निबसे नागर स्यामल गात ॥

नरहरि चक्रवर्ती कृत भक्ति रत्नाकर में बिछोर –

क्रीडावसानेते दोहे चले निजालय ।
विच्छेद प्रेम ते बिछोर नाम हय ॥

(भ.र.१४१०)

क्रीडा के पश्चात् प्रिया-प्रियतम निज-निजालय के लिए विलग होते हैं। श्रीजी बरसाने के लिए प्रस्थान करती हैं व श्यामसुन्दर नन्दगाँव के लिए।

इस विच्छेद से भी इसका नाम 'बिछोर' है।

देखो - ए 'बिछोर - ग्राम' - एथा चन्द्र मुखी ।
कृष्णसह मिलये संगेते प्रिय सखी ॥

(भ.र.१४०९)

दर्शन काजिये इस 'बिछोर ग्राम' के यहाँ पर चन्द्र मुखी श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण का बिछोह के बाद मिलन हुआ। साथ में प्रिय सखी भी थी।

होडल से बिछोर की दूरी १५.३ कि.मी. है।

शिव मंदिर - बिछोर

इंदाना

ईंडुरीन से स्थान का नाम 'इंडुना' नाम हुआ एवं 'इंडुना' का अपभ्रंश **'इंदाना'** हुआ। पौगण्ड पूर्व की बालोचित क्रीडा यहाँ हुई है।

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात् प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान्।
प्रबोधयञ्छृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः॥
तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः।
स्वान् स्वान् सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान् वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा॥

(भा. १०/१२/१, २)

प्रतिदिन कन्हैया मैया के हाथ से ही कलेवा करके गोचारण को जाता परन्तु आज बड़े सवेरे स्वयमेव जाग गया, स्नानादि कर गो दर्शन किया। पीताम्बर कटि में कसके, एक कर में शृङ्ग, दूसरे में लकुट और वंशी को कटि फेंट में खोंस लिया। मैया का तो अभी मन्थन-कार्य भी पूर्ण नहीं हुआ था, लाला वन-गमन की अनुमति लेने पहुँच गया।

"लाला! कलेऊ तो कर जा" मैया ने कहा।

"न मैया! न, आज कलेऊ बाँध के दे दे, वन में ही खावेंगे" श्यामसुन्दर बोले।

कलेऊ लेकर भवन से बाहर आये, अपने वत्सों को इकट्ठा किया, सींगी बजाकर सखाओं को बुलाया।

कन्हैया के साथ ही देवहार, देवप्रस्थ, कुमुद, वरूथप, सुश्लोक, सुबल, अर्जुन, गन्धर्व, बसन्त, उज्जवल, चतुर, कोकिल, विशाल, वृषभ, ओजस्वी, मरन्द, कुसमापीड, मणिबद्ध, करन्धम, स्तोककृष्ण, अंशु, भद्रसेन, विलासी, पुण्डरीक, विटंक, कलविंक, किंकिणी, सुदाम, वसुदाम, श्रीदाम, सुभद्र, मण्डलीभद्र, वीरभद्र, विजय, भद्रांग, गोभट, यक्षेन्द्रभट, भद्रवर्धन..................................आदि सहस्रों ग्वाल-बाल छींका, लकुट, सींगी, बांसुरी लेकर अपने बछड़ों के साथ घरों से निकल पड़े। न ग्वाल-बालों की कोई गणना है, न बछड़ों की। चारों ओर वत्स हैं, वत्सपाल हैं। प्रतीत होता है ब्रज से वन को वत्स-वत्सपालों का समुद्र जा रहा है। १०-१०, २०-२० का यूथ बनाये मार्ग में ही इन गोपकुमारों का ऊधम आरम्भ हो जाता है।

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः।
तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः॥

(भा. १०/१२/५)

कभी कोई किसी का छींका चुरा लेता है तो कभी लकुट और बांसुरी। जिसकी चोरी होती है, वह बेचारा जब तक रोकर नहीं दिखाता तब तक वस्तु वापस नहीं मिलती। चोरी करने वाला भी वस्तु को अपने पास नहीं रखता, किसी दूसरे को दे देता है, दूसरा तीसरे को दे देता है, तीसरा चौथे को दे देता है ....इस प्रकार एक वस्तु सैकड़ों-हाथों में घूम आती है। छींका जैसी वस्तु कई बार तो इतना घूम-फिरकर खाली हो जाती है, कई बार ज्यों की त्यों लौट आती है। मनसुख तो छींके के प्रति बहुत सावधान रहता है क्योंकि दिन भर में कई बार उदर इसके साथ अन्याय करता है, कई बार तड़फाता है, तब मनसुख न जन देखता न निर्जन, बेचारा नेत्र बन्द करके मोदक भगवान् की उपासना करने बैठ जाता है। ध्यान में ही आनन्द मिलने लग जाता है तब ताली बजाकर गाता है –

जय मोदक मधु मृदुल मेरे मानस में आजा।
क्षुधा आस बढ़ि रही उदर में आ महाराजा॥
भूख भवानी भोरते भोजन को भटकाय।
भक्तन की भट्टी भरौ, गोला रूप बनाय॥ कहाँ प्रभु छिपि रहे॥
सिच्छा मानत नहीं खूब करिलई परीछा।
उदर परी ये भूख परिछिति करिये रच्छा॥
तुम तारौ भाव भूख ते मोदक रूप बनाय।
हौं हूँ सूधे गटकि हौं, बिन ही दाँत लगाय॥ मिलन की देर है॥

(स्वामी मेघस्याम जी)

जब अपना भोजन समाप्त हो जाता है तो दूसरों के हृदय में विप्रभक्ति जगाकर ब्राह्मभोज कर लेता है, यह इसका दैनन्दिन कृत्य है।

इन चपल-चंचल गोपबालों के ऊधम में आज एक सरला ब्रजबाला फँस गयी। दधि विक्रय को जा रही थी। ऊधमी बालकों को देखते ही शीश से मटकी उतारी और दोनों करों में छिपा ली।

इनका क्या भरोसा, काँकरी मारकर ही मेरी दधि-मटुकी फोड़ दें, सोच रही थी।

दधि-मटुकी के दुराव में मस्तक की ईंडुरी गिर गई, यह उसे ध्यान न रहा। श्यामसुन्दर ने पीछे से अचक जा ईंडुरी को कटि-फेंट में छिपा लिया।

न वह कुछ बोली, न वे कुछ बोले।

जंगल पार करके चैन की दीर्घ श्वास ली, चलो आज किसी ने कुछ न कहा। मटुकी शीश पर रखने को हुई तो ईंडुरी की याद आई –'अरे! मेरी ईंडुरी कहाँ गई?'

२-४ कदम आगे-पीछे जाकर भी ईंडुरी को ढूँढ़ा, पर वह न मिली। बेचारी को लौटना पड़ा इन ऊधमियों के समीप। चारों ओर उसकी दृष्टि अपनी ईंडुरी को ढूँढ़ रही थी।

कृष्ण – "अरी भोरी! क्या ढूँढ़ रही है, तेरी ऐसी कौन-सी प्रिय वस्तु है जो तुझसे अलग हो गई है? "

श्रीगोविन्द स्वामी की वाणी में –

देखौ जू मोहन काहू अबै मेरी ईंडुरी दुराई ।
सूधें-सूधें वेगि किनि मानौ, यह कौने दीनी चतुराई ॥
कछु जो परस्पर करत सेंना बेंनी, ताहि मोहि किनि देहु बताई ।
सबें सिमट ह्यां कहत कौन सौ, ताकी फेंटि पकरै किन धाई ॥
जो पै होइ बेग किन मानों, ताहि है ब्रजराज दुहाई ।
'गोविन्द' प्रभु कछु हँसत बोहोत से मो जान तुमहि जु चुराई ॥

गोपी – देखो मोहन, अभी-अभी मैं यहाँ से निकली तो मेरी ईंडुरी गिर गई, वह तुममें से किसी बालक ने छिपा ली है, शीघ्र ही उसे लौटा दो, मुझे अबेर (विलम्ब) हो रही है।

(कृष्ण ग्वाल-बालों से)

अरे मनसुख-धनसुख, सुबल-श्रीदाम भाई किसी को यहाँ कोई ईंडुरी मिली क्या?

"ईंडुरी क्या वस्तु होती है, हम तो यह भी नहीं जानते" सब सखा एक स्वर में बोले।

गोपी – "जिसने भी यह चतुराई की है, सीधे-सीधे बता क्यों नहीं देते हो? कन्हैया, देख ये तेरे सखा परस्पर सैनाबैनी (नेत्र व मुख से संकेत) कर रहे हैं, तुझे सब पता है फिर बता क्यों नहीं रहा है?

सुबल, श्रीदाम, भद्र, देवप्रस्थ ....तुम सब इधर मेरे सन्मुख आओ और बताओ ईंडुरी किसके पास है?

कोई भी निकट नहीं आया, इसका क्या भरोसा, पकड़कर २-४ चपत ही लगा दे।

(गोपी कृष्ण से)

कन्हैया! इन सबकी फेंट में तू क्यों नहीं देखता है; जो मेरी ईंडुरी दुराये बैठा है उसे ब्रजराज (नन्द बाबा) की सौगन्ध है।

बाबा की सौगन्ध सुनते ही कन्हैया हँस गये। बस, वह गोपी भी समझ गई।

गोपी – कन्हैया, तू बड़ा ढीठ है, इतनी देर से मेरी ईंडुरी दुराये बैठा है और बोलता नहीं है, तू ही चोर है, तूने ही मेरी ईंडुरी चुराई है, ला शीघ्र दे।

गोपी ने दौड़कर कन्हैया की फेंट से ईंडुरी को निकाल लिया।

होडल से इंदाना की दूरी १०.२ कि.मी. है ।

अन्धोप

अन्धोप का प्राचीन नाम है – **अन्धक वन।** यहाँ की मुख्य है – निलयन लीला (आँखमिचौनी-लीला)। यह लीला वन की सघनता में ही भलीभाँति खेली जा सकती है; अन्धक वन की सघनता ऐसी है कि यह मार्गहीन वन है, लता-तरु-पत्र के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है।

निलयन लीला सखाओं के साथ होनी हो अथवा सखियों के साथ; इस क्रीडा का मुख्य केन्द्र अन्धोप ही है।

आँखमिचौनी खेल के लिए यूथ अन्धकवन में ही आता है। यह क्रीड़ा कैसी है? एक ढूँढ़ेगा, शेष सब छिपेंगे। ढूँढ़ने वाले की आँखों को एक कोई अपने करतल से मूँद लेगा। कुछ समय बाद ताली की ध्वनि के साथ उसके नेत्रों को अपावृत कर दिया जाएगा और तब वह ढूँढ़ना आरम्भ करेगा।

सखाओं के साथ तो नन्दनन्दन ने इस क्रीड़ा में विजयपत्र ले रखा है किन्तु जब श्रीराधिकारानी के साथ क्रीड़ाक्रम आता है तो पूर्व ही कह देते हैं – "और तो सब ठीक है बस निलयन क्रीडा नहीं होगी।"

श्रीजी– "क्यों नहीं होगी?"

कृष्ण – "हे मृगाक्षि! आपके इन कर्णान्त सुदीर्घ नेत्रों को ढकने की सामर्थ्य मेरे करतल में नहीं है, कितना ही नेत्रों को ढको, कोर तो कर में आती ही नहीं और कोर द्वारा वक्र अवलोकन फिर कुछ भी तो गोपन नहीं रहने देता।"

कानन लौं अँखियाँ हैं तिहारी, हथेली हमारी कहाँ तक फैलि है।
मूँदेहु ते तुम देखति हौ, यह कोर तिहारी कहाँ लौ सकेलि है॥
कान्हर हू कहँ ख्याल इहै, तिनको हम हाथन पर झेलि हैं।
राधे जू मानो भलो कै बुरो, आँख मूदनौ संग तिहारे न खेलिहैं॥

"या तो आपके ये चपल लोचन आँख मिचौनी के समय विशाल हो जाते हैं या फिर मेरा करतल इन नेत्रों के स्पर्श से संकुचित हो जाता है" श्यामसुन्दर बोले।

श्रीजी – "ब्रजराज कुमार! यह सब तो बहाना है बहाना। क्रीड़ा के पूर्व ही स्वेद छोड़ गये।

ठीक है, दाँव हम दे देंगी, छिप तो सकते हो कि वह भी सामर्थ्य से बाहर है?"

कृष्ण – "अरे, अन्धक वन में छिपने का ही तो आनन्द है, इसकी सघनता ऐसी है – रविकिरण भी प्रवेश न पा सके।"

अन्य सखियों सहित श्रीकृष्ण भी अन्धक वन में छिपे। केलिविदग्धा के लिए किन्तु न छिपना कठिन है, न ही ढूँढ़ना।

एक निविड़ निकुञ्ज में निश्चिन्त बैठे नन्दनन्दन पर ही प्रथम वार किया श्रीजी ने; जाकर कर पकड़ लिया।

श्रीजी – "क्यों, बस छिपना भी इतना ही जानते हो?"

कृष्ण – "राधे! तुम जानती हो, हमें आँख मिचौनी खेलने का अभ्यास नहीं है।"

ललिता – "राधे! अब कृष्ण का दाव है, इन्हें दाव तो देना ही पड़ेगा। पहले हमने तुम्हारे सुकुमार नेत्र ढके। अब इनके चंचल लोचनों की बारी है।"

हाँ, हाँ ऐसे नहीं छोड़ेंगी, सब सखी एक साथ बोलीं।

विशाखा – "अरी! छोड़ दो, यदि बलपूर्वक तुमने नेत्र बन्द कर दिये तो दिखना भी बन्द हो जाएगा अन्धकवन में नन्दनन्दन को। इतना अत्याचार ठीक नहीं है।"

अनल्पदयावर्षिणी श्रीराधा बोलीं – "हाँ अनुराधा, तुम ठीक कहती हो, अब इन्हें नन्दालय का सीधा मार्ग दिखा दो और छोड़ दो।"

यहाँ की आँख मिचौनी लीला का सरस गान सूरदासजी ने भी किया है –

बैठी रही कुँवरि राधा हरि अँखियाँ मूँदि आइ।
अति हि विशाल चपल अनियारे नहिं पिय पानि समाइ॥
खन खेलत खन ढांकत नागरि मुख रिस मन मुसुकाइ।
ज्यों मणि धर मणि छाँड़ि फिरि फन तर धरत छिपाइ॥
स्याम अँगुरिअनि अंतर राजत आतुर दुरि दरसाइ।
मानो मरकत मणि पिंजरनि में विवि खंजन अकुलाइ॥
कर कपोल बिच सुभग तरौना शोभा बढ़ी सुभाइ।
मनो सरोज द्वै मिलत सुधानिधि विवि रवि संग सहाइ॥
अपने पानि पकरि मोहन के कर धरि लिए छिड़ाइ।
कमल चकोर चंचरि जनु द्वै शशि दिवकर जुगति सगाइ॥
उपमा काहि देउँ को लायक देखी बहुत बनाइ।
'सूरदास' प्रभु दंपति देखत रति सों काम लजाइ॥

होडल से अन्धोप १३.९ कि.मी. है।

बामनारी (आरी)

गाँव का नाम तो आरी है किन्तु ब्राह्मण प्रधान होने से यह बामनारी हुआ। सम्प्रति मुस्लिम बहुल है यह गाँव, किन्तु किसी समय हिन्दू प्रधान था। इस्लाम शासन काल में भय द्वारा, लोभ द्वारा, बल द्वारा अनेक कूटनीतियों का सहारा लेकर बलात् हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया और इस प्रकार पारस्परिक कलह उत्पन्न कर हिन्दू शक्ति को कमजोर करने में विधर्मी सफल रहे।

आज भी यवन प्रधान अरब......आदि देशों से भारतीय मुसलमानों के लिए पैसा आता है, जिससे हिन्दू-मुसलमान के मध्य कलह, द्वेष की दरार बनी रहे। इसी प्रकार हिन्दू से बलात् ईसाई बनाये गये। विदेशी ईसाई मिशनरियाँ ईसाइयों के लिए पैसा भेजती है, इन्हें भय है कि कहीं अब पुनः ये स्वधर्म (हिन्दू धर्म) स्वीकार न कर लें।

आरी दुर्वासा मंदिर – आरी गाँव

विडम्बना है कि यह महान देश सदियों से शतरंज की गोट की तरह इधर-उधर लुढ़कता रहा। विदेशी शक्ति ने इसका उपयोग एक खिलौने के रूप में किया, जिसने जैसा चाहा चाबी ऐंठ मन भरकर नचाया। धर्म-परिवर्तन के पश्चात् ऊपर से दूसरा आघात इस विस्तृत ब्रज को संकुचित करने का हुआ, इसे छिन्न-भिन्न करने का यह प्रयास आस्तिक कहलाने वालों के द्वारा ही हुआ। कदर्थना है!!

दुर्वासा जी – आरी गाँव

पूज्य बाबा महाराज का कहना है कि ६२ वर्ष हमें ब्रजवास करते हो गये किन्तु इन क्षेत्रों में हमने किसी भी यात्रा को आते-जाते न देखा, न सुना।

प्रथम बार पूज्य श्री के संरक्षण में **'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा'** जब सीमावर्ती क्षेत्र में आई तो यहाँ के ब्रजवासी बड़े उत्साहित दिखे, अपने स्थान का इतिहास सुन स्वयं को ब्रजवासी जान मन में गौरव का अनुभव हुआ। ब्रजवासियों का कहना था – "बाबा! सैकड़ों वर्षों बाद कोई यात्रा सीमान्त क्षेत्र में आई है, आपके द्वारा इस लुप्त परम्परा का पुनर्प्रकटीकरण हुआ। प्रतिवर्ष पधारें तो यात्रा के आने से स्थानीय जनों में अवश्य

जाग्रति आएगी।" बामनारी के हिन्दू ब्रजवासियों द्वारा '**श्रीराधारानी ब्रजयात्रा**' का बहुत स्वागत-सत्कार हुआ।

बामनारी (आरी) का पौराणिक इतिहास –

चाचा वृन्दावनदास जी की वाणी में –

**"नमो नमो गुरु हित रूप वैद्यसद ।
ब्रजमण्डल के सीस मुकुटमणि, ताको कहत पुराण सौंनहद ॥"**

सोनहद (सौंध) क्षेत्र को ब्रज का मुकुट स्वरूप कहा और सोनहद के समीप ही है **वामनारी,** तो यह सम्पूर्ण क्षेत्र अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

"कृष्ण जहाँ लगि कियौ गोचारण, तहाँ भये तीरथ कुण्ड परसि पद ।"

यह सब गोचारण क्षेत्र रहा है, यहाँ के समीपवर्ती ग्राम, कुण्ड, तीर्थों में बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों का निवास था। जैसे – बामनारी में दुर्वासा जी का प्रवास रहा।

**"सर्वोपरि वाराह बखानी, महिमां अघटित मनहु महांनद ।
नंदनंदन जिभ्या रज चाटी बछरा बन, झार्यो विधि कौ मद ॥"**

ब्रजराज ने इसी ब्रजरज को बछरा बन अपनी रसना से चाटा, ब्रज का प्रत्येक रज-कण श्रीकृष्ण द्वारा आस्वादित है अतएव ब्रज महामहिमामय है।

"वृन्दावन हित रूपी महिमा और महातम फल किये सवरद ॥"

"नमो नमो गुरु कृपा मनाऊँ" इस पद में भी पुनः सोनहद का नाम गान किया। सोनहद का समीपवर्ती होने से यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, पौराणिक स्थान है।

**"नमो नमो ब्रज हद जु पहारी ।
तहँ लगि गाय चरावत मोहन ग्वाल अन्तन के अधिकारी ॥"**

ग्वालवालों के साथ पहाड़ी में गोचारण कर श्रीकृष्ण कामा आये। खिसलनी शिला, भोजनथाली आदि स्थलों पर –

**कबहुँ रचत हैं खेल गेंद को, लपक लेत कर गगन उछारी।
चढ़ा चढ़ी को खेल कहुं रचैं, अपनी अपनी वदत जु वारी ॥**

गेंद को ऊपर उछालते हैं और कौन पकड़े, कौन लपके इस स्वधर्म में छोटे ग्वाल तो झट से उत्तुंग गोपों के स्कन्ध पर चढ़ जाते हैं और सवार हो निर्देश करते हैं – दक्षिण भागो, यहीं ठहरो, ...

कबहुँ गिल्ली डण्डा खेलत चोट करै कोऊ दे किलकारी ।

गिल्ली-डण्डा तो इन छोटे-बड़े सभी गोप-ग्वालों का प्रिय खेल है।

"जतन सौं राखियो हमारो गिल्ली डंडा"

इस प्रकार क्रीड़ा करते-करते सख्य समुदाय से समावृत श्रीकृष्ण-बलराम बामनारी आते हैं। लगता है आज प्रातः इनमें से किसी ने कलेवा नहीं किया और अरण्य में भी बिना छाक लिये भाग आये। कौन जाने प्रातः इन्हें कृष्ण के दर्शन की शीघ्रता रहती है अथवा गो-दर्शन की!

बामनारी पहुँचते ही इनके जठर की ज्वाला तीव्र हुई, अब तो बहुत भूख लगने लगी।

ग्वालों ने परिहास किया – "लाला कन्हैया! तैने बहुत से असुर संहारे पर एक असुर तो रह ही गयौ।"

कृष्ण – "वह कौन?"

मनसुखलाल उदर पर कर फेरते हुए बोला – "लाला! भूखासुर। दिन में कई बार मोकूं या असुर को सामनो करनो पड़ै और या युद्ध में प्रत्येक बार मेरी ही पराजय होय।"

असुर बहु मारे मित्र क्यों नहीं भूख जू मारी।
हर हर हँसे लाल मुरलीधर अरे मनसुखा निपट अनारी॥

हा ऽ हा ऽ हा ऽ हा ऽ हा ऽऽ हाऽ ऽ ऽ ....मनसुखा की बात सुन श्रीकृष्ण मुक्त कण्ठ हँसे, बोले – "अरे मनसुखा! तू तो बड़ौ गँवार है, अनाड़ी है।"

पाहन पुतरी भूख न लागे, सो कहा कारज करे बिचारी।
बड़े-बड़े करे पराक्रम जो काऊ ताहि जानिये बड़ौ अहारी॥

स्वयं को अनाड़ी सुन अब तो मनसुखा ने ज्ञान की बात आरम्भ कर दी।

मनसुखा – "ऐसौ लगै कन्हैया विधि ने तोकू २ बाप दीन्हे, २ मैया दीन्हीं पर बुद्धि एकहू नहिं दीन्ही।

देख, पत्थर की मूर्ति कू भूख नहीं लगै तो वह न चल-फिर सकै, न कोई कार्य कर सकै।

हम कोई पत्थर की मूर्ति थोड़े हैं, हम तो तेरे साँच-माँच के सखा हैं। भूख भी लगै, खावैं भी हैं और फिर आहार ते प्राप्त पराक्रम भी दिखावैं।"

कृष्ण – "मनसुखा! बात तो साँची कह रह्यौ है तू।"

मनसुख – "देख कन्हैया, चोरी ते ही सही, दधि-दूध, तक्र, नवनीत खवा-खवाके हमने तोकू पहलवान बना दियो। यशोदा मैया ने तोकू इतनो दूध पिवायौ कि छठी के दिना ही ६ कोस की पूतना कू मार तैने अद्‌भुत पराक्रम दिखा दियौ, यदि तू दूध नहीं पीतौ तो छठी के दिना गोलोक गमन भी है जातो।

या लिए ठोक-पीट के समझ ले जीवन में भोजन को बहुत महत्त्व है।

अब देख, कहूँ ते कोई छकहारी आती दीख रही है तो बता।"

छोटा अंशू – "हाँ कन्हैया दादा! बहुत अबार है गयी, कहीं मैया छाक भेजनो तो नहीं भूल गई?"

कृष्ण – "चलो चारों दिशा में हम सब छकहारी कू टेरें, क्योंकि यह वन भी सघन है, कहीं वह मार्ग न भूल जाय।"

सुबल, श्रीदामा, तोष उत्तर की ओर, रसाल, विशाल, मकरन्द, सदानन्द दक्षिण की ओर, रक्तक, पत्रक व पत्रि पश्चिम में और कृष्ण-बलराम, मनसुख पूर्व में (वृन्दावन की ओर) छकहारियों को टेरने लगे – आरी ऽ ऽ ऽ ऽ! आरी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ!! "आरी" आह्वाहन किया।

दुर्वासा कुण्ड – आरी

दोनों पक्षों से यह आह्वाहन हुआ है; एक ओर से ग्वाल-बाल सहित श्रीकृष्ण-बलराम भैया छकहारियों को टेर रहे हैं, दूसरी ओर छकहारी भी श्रीकृष्ण-बलराम को टेर रही हैं।

तुमको टेर-टेर मैं हारी, धनि कान्ह, धन्य राधा गोरी ।

(श्रीसूरदास जी)

यह प्रीति धन्य है, प्रीतिमूर्ति श्रीप्रिया-प्रियतम धन्य हैं, यह भूमि धन्य है, यह वन (गोपीखेड़ा वन) धन्य है, यह ग्राम धन्य है। दोनों पक्षों से आह्वाहन हुआ अतः स्थान का नाम 'आरी' हुआ।

आरी ग्राम की यही मुख्य लीला है।

श्रीभगवान् दास जी के शब्दों में बामनारी (आरी) –

राम-श्याम चाहे जितना सुदूर सीमान्त प्रान्त में गोचारण के लिए जाते, मैया छकिहारियों को वहीं भेजती।

"आगे आवो री छकिहारी ।"

एक दृश्य –

दूर से ही राम-श्याम मार्ग निर्देश कर रहे हैं, अरी ओ! आगे आ, इधर आ ऽऽऽ।

"मैया छाक सवेरे पठई, तुम कित रही अंवारी ॥"

"अरी ओ छकहारी! मैया ने तो तोकू बहुत शीघ्र छाक देके भेज दियो, तैने मार्ग में कहाँ विलम्ब कर दियौ" राम-श्याम बोले।

मनसुख – "हाँ, कहाँ विलम्ब कर दियौ, मेरौ तो पेट ही पींठ ते लग गयौ।"

छकहारिन बोलीं – "लाला! या सघन वन में एक स्थान ते दूसरे स्थान तक जानो भी बड़ौ कठिन है। हम मार्ग भूल गयीं यासौं विलम्ब है गयौ। भूख के मारै मनसुख की ध्वनि कछु तीव्र निकस रही, याको आरी-आरी को आह्वाहन सुन हमें मार्ग को ज्ञान भयौ और हम भजी चली आईं।"

जब तुम टेरे तब हम आयीं, सुनी न टेर तुम्हारी।
अहो गोपाल गैल वन भूलीं, मधुर बोलन पर वारीं ॥
गोवर्द्धन उद्धरण धरि सों, प्रीति बढ़ी अति भारी।
जन 'भगवान्' मगन भई ग्वालिन, तन की दशा बिसारी ॥

यह 'आरी' संबोधन यहाँ केवल छकिहारी गोपीजनों के लिए ही नहीं हुआ है;

भागवत जी के अनुसार श्रीश्यामसुन्दर ने यहाँ गायों को भी आरी-आरी कहकर आह्वाहन किया है।

बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
कर्हिचित् सबल आलि स गोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥
तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥

(भा. १०/३५/६, ७)

गोपियाँ कह रहीं हैं – "अरी! उस नन्दतनय के मस्तक पर मयूरपिच्छ है, स्निग्ध अलकावली में पुष्पगुच्छ गुम्फित है, ब्रजरज का तिलक व रंग-बिरंगी धातुओं से कर-पद, मुख पर सुन्दर पत्रावली की हुई है, नवप्रवालों को चारों ओर सबने ऐसे सज्जित किया हुआ है मानो कोई वज्रकाय पहलवान है। दाऊ दादा ग्वाल-बालों के साथ वंशी से गायों का आह्वाहन कर रहे हैं - आरी कजरारी, आरी धौरी, आरी गंगा, आरी कावेरी। यह 'आरी-आरी' की मधुर ध्वनि से वेगवती यमुना की गति स्थगित हो जाती है, निःस्पन्द हो वह वंशी का सुष्ठु-स्वर ध्यानपूर्वक श्रवण करने लगती है, स्पृहा करती है कि किसी भी प्रकार यह शीतल समीर श्यामसुन्दर की पदरज हमें प्राप्त करा दे; इसके लिए ये मौन नहीं बैठतीं, चंचल लहरों से इस प्रकार तरंगायित होती हैं मानो लहर रूपी भुजाओं से श्रीकृष्णको बुला रही हैं।"

ब्रजगोपियाँ कहती हैं – "ये नदियाँ भी हमारी तरह मन्दभाग्य हैं, रमणकाल में जिस प्रकार हमारी भुजाएँ कम्पित हो उठती हैं, उसी प्रकार इनकी तरंग रूपी भुजा भी २-४ बार ऊपर उठकर प्रेमातिरेक में जड़ता को प्राप्त हो जाती है।"

वेणु गीत में गायों का आह्वाहन –

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥

(भा. १०/२१/१९)

विचित्र गति वाले ये गोरे-साँवरे किशोर सिर पर सुनहरा नोवना (दोहन काल में गायों के पैर बाँधने वाली रज्जु) व कंधों पर फंदा (भागती हुई गायों को पकड़ने वाली रज्जु) रख गायों को वन-वनान्तर में हाँककर ले जाते हैं।

अनुवन अर्थात् गोचारण कोई एक वन में नहीं हुआ, ब्रज के अन्तर्वेदी-सीमान्त स्थित प्रत्येक वन में गोचारण लीला हुई है।

आगे-आगे गैयां पीछे-पीछे ग्वाल साँवरे के साथ बाँसुरी के स्वरों को जब छेड़ते हैं तो अचर-सचर, पशु-पक्षी, नदी-वृक्ष में व्यत्तय व्याप्त हो जाता है।

'व्यत्तय' अर्थात् चेतन प्राणियों में जाड्य व जड़ में चेतना का स्फुरण दिखाई देने लगता है।

बामनारी का एक प्राचीन नाम 'गोपीखेड़ा वन' भी प्राप्त होता है क्योंकि ब्रज में पहले कोई गाँव नहीं था, प्रत्येक ग्राम एक वन के रूप में था। वनों के साथ ही उनके प्राचीन नाम भी लुप्त हो गये।

सख्य के अतिरिक्त श्रृंगार रस की लीलाओं से भी रञ्जित है यह वनस्थल। 'आरी' आह्वाहन सूचक शब्द है।

श्रृंगार रस में भी –

प्रथम तो किशोर-किशोरी ने आहूत किया एक-दूसरे को। पश्चात् लीलारम्भ हुई, निविड़ निकुञ्ज में नित्य नव किशोर-किशोरी एक-दूसरे का आनख-शिख श्रृंगार कर एक अदृष्टचर नवीन सज्जा के साथ अवस्थित हुए। सम्पूर्ण वनस्थल नीली-सुनहली द्युति से भर गया।

तभी लता-जाल से शब्द रव ध्वनित हुआ।

चरण श्रवित रस निर्झर-सीकर कोटि रसार्णव जिम्भृत होवें ।
वपु नीरज माध्वीक लहर सौं, आह्लादित हरि रसमय होवें ॥

अंगन की गोरता श्यामता को, पीतरंग में यो रंग देवें।
विद्युच्छटा मेघ पर ज्यो निज, कान्ति प्रखरता थिर प्रगटावें॥

(स्वर वंशी के शब्द नूपुर के)

इस भूमि के लता-पत्र निर्जीव नहीं हैं, स्थिर दर्शन के मनोरथ से गति तो इन्होंने स्वयं ही स्वीकार नहीं की। बस प्रिया-लाल जू के अन्योन्यसुख निमित्त उपकरण रूप देह व तज्जन्य क्रिया-कलापों का दर्शन करती हैं। युगल का यह प्रेम स्वसुख-वाञ्छा की कलुषित छाया से सर्वथा अस्पृष्ट ही है।

गोपियाँ कहती हैं –

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्॥

(भा. १०/३१/१८)

ब्रज के वनों में लीला बिहारी ने जो लीलाएं कीं, इन लीलाओं से समस्त संसार का पाप नष्ट हुआ। संसार का पाप क्या है? स्वार्थ।

संसार में सर्वथा सर्वांश में बस स्वार्थ ही स्वार्थ है। संसार का प्रत्येक प्राणी स्वार्थी है। जबकि प्रेम एक सेवा है जो दूसरे के सुख, आनन्द के लिए किया जाता है। प्रेम में प्रेमास्पद के प्रति निःस्वार्थ भाव से सर्वसमर्पण किया जाता है।

गोपियाँ कह रही हैं – "हे नाथ! आपकी ब्रज लीला से सम्पूर्ण संसार का पाप नष्ट हो गया।"

अन्यों के लिए तो प्रेमाधिष्ठातृ दिव्य-दम्पति के इस अप्रतिम प्रेम के पथ को समझ पाना भी कठिन है।

श्रीसूरदासजी के शब्दों में –

प्रीति की रीति को पैंड़ो ही न्यारो।
कै जाने वृषभानुनन्दिनी, कै जाने वह नन्द दुलारो॥
बातन प्रीति न होय सखी री, यह अपने जिय सोच विचारो।
'सूर' स्याम यह प्रीति कठिन है, सीस दिये बिनु होय न गुजारो॥

ब्रज में अनेकों स्थानों पर श्रेष्ठ ऋषि-महर्षियों का निवास रहा। **बामनारी** में श्री दुर्वासा जी का मन्दिर है, यहाँ दुर्वासा जी का निवास रहा, यद्यपि कामेर ......आदि में भी दुर्वासा जी रहे किन्तु ब्रज लीला बहुत व्यापक है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न लीला रसवर्षण हुआ, उस लीलामृत पान के लिए ऋषि-महर्षियों का प्रवास भी परिवर्तित होता रहा, लीलानन्द के लिए सर्वत्र पहुँचे ये।

बृहस्पति जी के शिष्य, श्रीकृष्ण के दयित सखा श्रीउद्धवजी, जब से श्रीकृष्ण मथुरा आये, उनके चिरसंगी बन गये हैं, क्षण भर भी श्रीकृष्ण से विलग नहीं होने देते स्वयं को। सर्वेश ने भी उद्धव जी को स्वतुल्य कह दिया।

नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः ।

(भा.३/४/३१)

यदुवंशियों में सर्वश्रेष्ठ भाग्य वाले हैं उद्धवजी। श्रीकृष्ण की ही नहीं स्वामिनी श्रीराधारानी की भी अत्यन्त कृपा इन्हें प्राप्त हुई। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार श्रीजी का शिष्यत्व प्राप्त हुआ उद्धव जी को। वियोगार्त ब्रजवासियों के समीप उद्धवजी को श्यामसुन्दर ने इसी अभिप्राय से भेजा था कि मैंने जो कुछ शिक्षा ली ब्रजवासियों से, वह सब इन्हें भी प्राप्त हो, अणुमात्र भी अन्तर न रह जाय मुझमें व मेरे दयित सखा में। युगल की कृपा से ब्रजरस, ब्रजप्रेम का ज्ञान भी हुआ उद्धव जी को। जिस समय उद्धव जी का मिलन श्री विदुर जी से हुआ तो वहाँ उद्धव जी द्वारा चतुःश्लोकों में विशेषतः ब्रज, ब्रजेश और ब्रजवासियों की ही चर्चा हुई है।

कृष्ण रूप का वर्णन –

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥

(भा. ३/२/१२)

कृष्ण रूप का गोपियों पर प्रभाव –

यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ।
ब्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥

(भा. ३/२/१४)

श्रीजीकी चर्चा की है –

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्त कामः ।
बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥

(भा.३/२/२१)

श्रीकृष्ण की दयालुता –

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं ब्रजेम ॥

(भा.३/२/२३)

ब्रज लीला का यह वर्णन सर्वगम्य नहीं है। कृपाभाजन ही समझ सकते हैं इस गोपन ब्रज रहस्य को। उद्धव जी का एक ही श्लोक पर्याप्त है सम्पूर्ण ब्रजलीला का ज्ञान कराने के

लिए। शत-सहस्र बार पठन-श्रवण से भी यह स्पष्ट नहीं हो सकता है; बस कृपा ही स्पष्टीकरण कर सकती है इसका।

उद्धव जी कह रहे हैं –

यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ।
व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥

(भा.३/२/१४)

श्रीकृष्ण की प्रेम परिप्लुत हँसी और लीलामय अवलोकन से सम्मानित होकर ये ब्रजदेवियाँ तो गृहकार्यों को अधूरा ही छोड़ देतीं और जड़ पुतलियों की तरह खड़ी की खड़ी रह जातीं और निर्निमेष नेत्रों से निहारने लगतीं श्रीकृष्ण का असमोर्ध्व सौन्दर्य-सार-सर्वस्य स्वरूप।

यह स्वरूप दर्शन से जो गोपिकाओं को आत्मविस्मृति हुई, यही है **विस्मरण वन की लीला**।

सब कुछ भूलकर गोपियों ने यहाँ श्रीकृष्ण को ढूँढ़ा। 'अन्धोप' जिसका मूल नाम **अन्धकवन** है, यहाँ तक मिलन नहीं हुआ था; आरी में जाकर मिलन हुआ है। 'आरी' से तात्पर्य **आओ**।

श्रीकृष्ण मिलन के अनन्तर सबने परस्पर एक-दूसरे को बुलाया – आरी! आरी!! आरी!!!

बामनारी (आरी) में संघर्ष के स्थान पर हुआ स्वागत वर्षों पुराना हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा इस लीला स्थल को विभीषिका में पहुँचा रहा था। २००० पुलिसकर्मी सदल-बल सदैव यहाँ छावनी डाले रहते, न जाने कब पारस्परिक संघर्ष खड़ा हो जाय। १५ हजार यात्रियों का ऐसे संघर्षमय स्थल पर जाना उचित न था अतः लोगों ने प्रार्थना की पूज्य श्री से कि दंगा हो सकता है, आप वहाँ न जाएं किन्तु सब प्रार्थना व्यर्थ थी।

वही हजारों का समूह नाचते-गाते जब गाँव के अन्दर पहुँचा तो संघर्ष के काले बादल छिन्न-भिन्न हो गये पूज्य श्री की अलौकिक-प्रतिभा रूप रवि को उदित देखकर।

सानन्द यात्री नृत्य-गान करते हुए शिविर में आ पहुँचे। ऐसे अनेक संघर्षभावी क्षेत्र जहाँ अन्य यात्रायें डरती थीं आने में। वर्षों से यात्राओं का आना बन्द हो गया था। सीमायात्रा आरम्भ करने के पूर्व यही समस्या आई पूज्य बाबा श्री के सामने; लोगों का कहना था कि अन्तर्वेदी यात्रा ही ठीक है, बाहर सीमायात्रा में मुस्लिम क्षेत्र होने से उत्पात की सम्भावना है, ये क्षेत्र बहुत भयावह हैं, यहाँ यात्रा का जाना मतलब लुटना किन्तु पूज्य बाबा श्री ने गुनगुनाया –

लगन प्रभु से लगा बैठे जो होगा देखा जाएगा ।
उन्हें अपना बना बैठे जो होगा देखा जाएगा ॥

(ब्रज भावमालिका - श्री बाबा महाराज द्वारा रचित)

“आज तक कहीं पराजय नहीं हुई श्रीराधारानी ब्रजयात्रा की, तो अब क्या होगी?”

सीमायात्रा का सबने विरोध किया किन्तु इन महापुरुष की लोककल्याण-कारिणी भावना ने विवश किया इन्हें सीमावर्ती यात्रा के शुभारम्भ के लिए। यात्रा बड़ी निर्विघ्नता से पूर्ण हुई। संघर्ष सम्भावी क्षेत्रों में स्थान-स्थान पर भव्य स्वागत हुआ, सहयोग प्राप्त हुआ एवं उत्साह का दर्शन हुआ।

होडल से आरी गाँव की दूरी १६.८ कि.मी. है।

नागल

वनचारी से पूर्व स्थित नागल ग्राम का वास्तविक नाम ‘नागर’ है। यहाँ केलि विदग्धा ब्रजयुवतियों ने श्रीकृष्ण को नागर की उपाधि दी। नागर अर्थात् रति की समस्त विधाओं में विदग्ध। यह वैदग्ध्य किन्तु केलि-विदग्धा कीर्तिकुमारी के वैदग्ध्य-सिन्धु का सीकरमात्र है।

श्री हित सहचरी के वचन –

आज नीकी बनी राधिका नागरी ।
ब्रज - जुवति - जूथ में रूप अरु चतुराई,
सील सिंगार गुन सबन तें आगरी ॥
कमल दक्षिण भुजा बाम भुज अंस सखि,
गावती सरस मिलि मधुर स्वर राग री ॥
सकल विद्या विदित रहसि हरिवंश हित,
मिलत नवकुञ्ज वर श्याम बड़ भाग री ॥

(श्रीहित चतुरासी – २५)

"सौन्दर्य, चातुर्य, सौशील्य व श्रृंगार के धैर्य, औदार्य ......आदि गुणों का आगार है यह संभोग श्रृंगार की श्रेष्ठ श्री, अतः नागरी कहा। दक्षिण कर में लीला कमल घुमाते हुए, वाम भुजा प्रिय सखी के अंस में स्थित करते हुए मधुलापिनी ने राग-गान किया।

श्री हितू सहचरी कहती हैं – सुरत की सकल विद्याओं में निष्णात, निकुञ्ज प्रचारिणी श्रीराधा एकान्त-गह्वर-विपिन में श्यामसुन्दर से मिलने गयीं।"

यहाँ की लीला से सम्बन्धित ऐसे अनेकों पद प्राप्त होते हैं, जिनमें युगल को सकल केलि-कला-निलय होने से नागरि-नागर कहा।

यथा –

युगल के प्रति सहचरी वचन –

मधु ऋतु वृन्दावन आनन्द न थोर ।
राजत नागरी नव कुशल किशोर ॥

(श्री हितचतुरासी–२७)

अथवा

आज अति राजत दंपति भोर ।
सुरत रंग के रस में भीने नागरि-नवल किशोर ॥

(श्री हितचतुरासी–३१)

अथवा

आजु नागरी किशोर भांवती विचित्र जोर,
कहा कहौं अंग-अंग परम माधुरी ।

(श्री हितचतुरासी–१०)

अवर्णनीय माधुर्य लिये हैं आज दिव्य-दम्पत्ति का अंग-अंग।

हौं बलि जाऊँ नागरी श्याम ।

(श्री हितचतुरासी–५६)

बार-बार बलि जाती हूँ, परम चतुर युगल की।

अथवा

नागरता की रासि किसोरी ।
नव नागरकुलमौलि सांवरौ, बरबस कियौ चितै मुख मोरी ॥
रूप रुचिर अंग-अंग माधुरी, बिनु भूषन भूषित ब्रज गोरी ॥
छिन-छिन कुसल सुधंग अंग में, कोक रभस रस सिन्धु झकोरी ॥
चंचल रसिक मधुप मोहन मन, राखे कनक कमल कुच कोरी ॥
प्रीतम नैन जुगल खंजन खग, बाँधे विविध निबंधन डोरी ॥
अवनी उदर नाभि सरसी में, मनौं कछुक मादिक मधु घोरी ॥
जैश्री हितहरिवंश पिवत सुन्दर वर, सींव सुदृढ़ निगमनि की तोरी ॥

(श्री हितचतुरासी-८२)

हितू सहचरी की वाणी में उपर्युक्त पद पर्याप्त हैं नागरि श्रीश्यामाजू के रति-वैदग्ध्य को प्रकट करने में।

श्रीश्यामसुन्दर के श्रीजी के प्रति वचन –

अति नागरि वृषभानु किशोरी ।

(श्री हितचतुरासी-४३)

शैया विहार के नागरि-नागर
नवल नागरि नवल नागर किसोर मिलि,
कुञ्ज कोमल कमल दलनि सिज्या रची ॥

(श्री हितचतुरासी–५०)

श्री स्वामी हरिदास जी की वाणी में नागरि-नागर –

झूलत डोल श्री कुञ्जबिहारी ।
दूसरी ओर रसिक राधावर, नागरि नवल दुलारी ॥

(केलिमाल-१०८)

श्री महावाणी जी में –

नवलवर नागरी नागर दोऊ रूप उजागर ।
दोऊ सोभा के सागर दोऊ सुन्दरता की रासि ॥

अथवा

नागरि का सुनर्तन –

नागरी नागर निर्तत रास में नई-नई गति लीने ।
हस्तक भेद विभेद-परायन पायन बरजति बीने ॥
उघटत ता धित्ता धित्ता धे त त तं तं त त कीने ।
श्री हरिप्रिया निरखि तन मन धन न्यौछावर करि दीने ॥

(महावाणी, उत्साह-सुख – १२७)

अथवा

नचत नवल नागर रहसि रास रंगे ।

अथवा

जयति नवनित्य नागरि निपुन राधिके रसिक-सिरमौरि मनमोहनी जू ।

(महावाणी, सुरत-सुख – १)

नागल का निकटवर्ती ग्राम है – वनचारी, जहाँ सख्य प्रधान लीलाएं हुईं।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि न केवल सुरत-सुख में प्रत्युत दान लीला में भी बड़े नागर हैं श्रीकृष्ण।

दान दै री नवल किसोरी ।
माँगत लाल लाड़िलौ नागर, प्रगट भई दिन-दिन की चोरी ॥

(श्री हितचतुरासी – ५१)

श्रीराधासुधानिधि में भी 'नागरवरेण' व 'सुनागर' कहा है –

केनापि नागरवरेण पदे निपत्य संप्रार्थितैक परिरम्भरसोत्सवायाः ।
सभ्रू -विभङ्गमतिरङ्गनिधेः कदा ते श्रीराधिकेनहि नहीति गिरः शृणोमि ॥
श्यामेति सुन्दरवरेति मनोहरेति कन्दर्प-कोटि-ललितेति सुनागरेति ।
सोत्कण्ठमह्नि गृणती मुहुराकुलाक्षी सा राधिका मयि कदा नु भवेत्प्रसन्ना ॥

(रा. सु. नि. – ९, ३७)

इस प्रकार अनेक रससिद्ध महापुरुषों ने महती महिमा से मण्डित 'श्री नागल' का सुयश-गान अपनी वाणियों में किया। स्थल की अलौकिकता को लीला-ज्ञान से ही समझा जा सकता है।

होडल से नांगल की दूरी १४.२ कि.मी. है।

सौंध

सौंध का प्राचीन नाम **सौनहद** है। विष्णु रहस्य ग्रन्थ में इसका नाम त्रिभुवन वन है।

गोपीभ्यो शतकोटिभ्यो बहूत्सवमनोरथैः ।
यतस्त्रिभुवनं नाम वनं जातं महीतले ॥

अर्थ – शतकोटि ब्रजाङ्गनाओं के मनोरथों को पूर्ण कर श्रीकृष्ण ने विलास-वैचित्री पूर्वक त्रिभुवन के उत्सवों का सुख प्रदान किया, इसलिए महीतल पर त्रिभुवन वन की उत्पत्ति हुई।

त्रिभुवन वन प्रणाम मन्त्र –

नमस्त्रैलोक्यसौख्याय मंगलोत्सवहेतवे ।
कलानां निधये तुभ्यं धनधान्यादिदायकः ॥

(विष्णु रहस्य)

हे धनधान्यादिदायक विविधकलानिधे त्रिभुवन वन! आप त्रैलोक्य सुखकारक और विविध माँगलिक उत्सवों के हेतु हैं।

कामेश्वर कुण्ड प्रणाम मन्त्र –

विष्णु रहस्य के अनुसार यहाँ स्थित कुण्ड का नाम कामेश्वर कुण्ड है।

काम्योत्सवप्रपूर्णाय तीर्थराज नमोस्तु ते ।
धनधान्यसुखोत्पत्ति सौख्यरूपाय ते नमः ॥

(विष्णु रहस्य)

हे धनधान्य सुखोत्पत्तिकारक काम्येश्वर तीर्थराज! आप विविध कामनाओं और उत्सवों के पूरक हैं, आपको नमस्कार है।

द्वापरयुग अर्थात् श्रीकृष्णलीला काल में इसका नाम शोणपुर था। **शोणपुर** का अपभ्रंश **सोनहद** पश्चात् और अपभ्रंश हुआ तो '**सौंध**' नाम हो गया।

व्रजे शोणपुराधीशो गोपो नन्दो धनी महान् ।
भार्याः पञ्चसहस्राणि बभूवुस्तस्य मैथिल ॥

(ग.सं.मा.खं. १५/१)

कृष्णलीला काल की बात है, शोणपुर में नन्द नामक राजा थे (ये कृष्ण पिता बाबा नन्द से भिन्न हैं)। नन्द बहुत धनवान् राजा थे। इनकी ५ हजार रानियाँ थीं, जिनसे सहस्र गोपियाँ प्रकट हुईं। ये गोपियाँ कौन थीं?

श्रीभगवान् के प्रत्येक अवतार काल में उन्हें देखकर मोहित होने वाली दैवीभाव-सम्पन्न स्त्रियों को वर प्राप्त था कि द्वापरान्त में तुम सभी का मनोऽभीष्ट सिद्ध होगा अर्थात् श्रीकृष्ण की प्राप्ति होगी। अतः सौंध और सौंध के समीपवर्ती क्षेत्र में कृष्ण प्राप्त्यर्थ साक्षात् लक्ष्मीजी की सखियाँ ही प्रकट हुई हैं अतः यहाँ बद्रीनाथ जी का भी मन्दिर है।

सौंध वह स्थल है जहाँ लक्ष्मी जी की सहचरियाँ प्रकट होकर गोपी बनी थीं।

रमावैकुण्ठवासिन्यः श्रीसख्योऽपि समुद्रजाः ॥
ऊर्ध्वं वैकुण्ठवासिन्यस्तथाऽजितपदाश्रिताः ।

(ग.सं.मा.खं. ११/३, ४)

विष्णु भगवान् के वर से समुद्र से उत्पन्न श्री सहचरी व ऊर्ध्व वैकुण्ठवासिनी देवाङ्गनाएं सौंध में प्रकट हुईं।

कर में अमृत कलश लेकर अत्यन्त सुन्दर धन्वन्तरि भगवान् प्रकट हुए, जिस समय प्रभु सुधा कलश देकर जाने लगे तो औषधियाँ रोने लगीं। इसके पश्चात् उन सबने तप किया, तप करते हुए ४ युग व्यतीत हो गये। प्रभु प्रकट हुए, वर माँगने को कहा। तपोरत औषधियों ने कहा – "भगवन् आपकी सन्निधि चाहिए हमें।"

द्वापरान्त में लता रूप से तुम सब श्रीवृन्दावन में प्रकट होओगी, श्रीभगवान् ने वर दिया।

बड़भागिनी औषधियों को ब्रजभूमि में लता गोपी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस समय भगवान् ने मत्स्यावतार ग्रहण किया, यह रूप समुद्रवासिनी कन्याओं का आकर्षण केन्द्र बन गया। श्रीभगवान् ने इन सभी को द्वापरान्त में ब्रज में जन्म प्राप्ति का वर दिया।

समुद्र से उत्पन्न इन सभी श्रीसहचरी, ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिनी देवाङ्गनाओं, औषधि रूपी देवियों, सिन्धुवासिनी कन्याओं का सौंध व सौंध के समीपवर्ती क्षेत्र में जन्म हुआ।

पृथु अवतार से मोहित नगर स्त्रियों ने प्रभु की प्राप्ति के लिए तप किया एवं महर्षि अत्रि से प्रभु प्राप्ति का उपाय पूछा। इस पर महर्षि बोले – "यद्यपि यह प्राप्त होना बहुत कठिन है किन्तु चिन्ता न करो, अगले जन्म में तुम गोपी बनोगी और तब तुम्हें प्रभु की प्राप्ति हो जाएगी।"

ये नगर स्त्रियाँ शोणपुर में गोपी रूप में प्रकट हुईं।

इसी प्रकार नर-नारायण अवतार काल में उस दिव्य तेजोमय रूप से मोहित

बद्री नारायण मंदिर - सौंध

अप्सराओं का जन्म भी यहाँ सौंध में ही गोपी रूप में हुआ।

वामनावतार के समय सुतल लोक की देवियाँ मोहित हुईं, जो वामन भगवान् के वर से सौंध में गोपी बनीं। शेषावतार में शेष जी से मोहित नागकन्याएं भी सौंध में गोपी रूप से प्रकट हुईं।

यह पौराणिक इतिहास इस स्थल की महिमा के परिचय में पर्याप्त है, इसे पढ़कर समझा जा सकता है कि यह स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है।

शोणपुर के राजा नन्द के यहाँ उनकी कन्याओं के रूप में इन सब दिव्य देवाङ्गनाओं का जन्म हुआ। उस समय दुर्वासा जी का प्रवास आरी में था। आरी से एक दिन दुर्वासा जी सौंध पधारे और इन सब कन्याओं को श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए यमुना पंचांग द्वारा श्री यमुना जी की उपासना बताई, जिससे उन्हें दुर्लभ रास-रस की प्राप्ति हुई।

नोट – ग्राउस ने हरियाणा प्रदेश के सौंध को भी सोनहद माना है।

अन्वेषणपुर नाम क्यों?

श्रीकृष्ण-प्रेम में स्वानुसन्धान भी न रहा इन गोपियों को। जिसका स्मरण था, उसी का अन्वेषण करने लगीं। इन गोपियों द्वारा श्रीकृष्णान्वेषण यहाँ हुआ अतः अन्वेषणपुर नाम हुआ।

कचनार कुण्ड - सौंध

गोपियों द्वारा श्रीकृष्णान्वेषण तो हुआ ही; इसके अतिरिक्त इसी वन क्षेत्र में एक बार कन्हैया की प्यारी गैया श्यामा खो गई।

कन्हैया तो श्यामा को खिलाये बिना, उसका सिर सहलाये बिना, गला खुजलाये बिना छाक भी नहीं खाता।

छाक का समय आया और अपने दोनों घुटनों पर सिर रखकर रोने लगा, सन्नाटा छा गया सखा समुदाय में।

(परस्पर से)

आखिर कन्हैया को हुआ क्या?

सब विदूषक, विनोदी सखा भी हार मान गये हैं। आज हँसना तो दूर, कन्हैया बात भी नहीं कर रहा है।

सूरज कुण्ड -सौंध

"हटो, हटो, तुम सब दूर बैठो। मुझे पता है कृष्ण को क्या हुआ?" मनसुख बोला।

"फिर इतनी देर से चुप क्यों हो मनसुख, हमें बताते क्यों नहीं?" सभी सखा बोले।

मनसुख – "देखो, छाक आरम्भ करने से पूर्व कन्हैया २ ग्रास निकालता था प्रतिदिन – एक गो-ग्रास, दूसरा विप्र-ग्रास; 'गो-ग्रास' श्यामा का और 'विप्र-ग्रास' मेरा।"

सखा – "हाँ, हाँ यह तो हम भी जानते हैं, श्यामा आती ही होगी, फिर कन्हैया आरम्भ करेगा अपना दैनिक कृत्य।"

"श्यामा ....ओ श्यामा रानी.................शीघ्र आओ, कन्हैया विक्षिप्त है तुम्हारे बिना" सखाओं ने टेरा।

श्यामा हो तो आये ....

"किन्तु श्यामा आज गई कहाँ? " सखाओं ने परस्पर पूछा।

मनसुख – "यही तो मेरे और कृष्ण के लिए चिन्ता का विषय है। 'गो-ग्रास' नहीं निकला तो फिर 'विप्र-ग्रास' भी नहीं .... ।"

वैतरणी कुण्ड - सौंध

ऋषभ - "मनसुख! तुम नहीं सुधरोगे, जब देखो तब पेट की बात। भूखे ही पैदा हुए थे क्या?"

(छोटा स्तोककृष्ण, कन्हैया के सुचिक्कण काले केशों को अपनी नन्ही-नन्ही उँगलियों से सहलाने लगा।)

स्तोककृष्ण – "कन्हैया दादा! चिन्ता न करो, चलो हम सब श्यामा को ढूँढ़ेंगे।"

विशाल ने कन्हैया को उठाया और अपनी गोद में ले लिया।

सखाओं में सबसे लम्बा है 'विशाल'। सम्पूर्ण ब्रज इसे कृष्णाश्व के रूप में जानता है।

विशाल – "कान्हा! उँगली पकड़कर श्यामा को ढूँढ़ेगा अथवा स्कन्ध पर चढ़कर?"

मौन तोड़ दिया कन्हैया ने।

कन्हैया – "स्वयं चलकर ढूँढूंगा श्यामा गैया को। चलो भाई, सब चलो श्यामा को ढूँढें।"

अन्वेषण आरम्भ हो गया।

अन्वेषणपुर में चतुर्दिक् श्यामा ....! ओ श्यामा ....!! की ध्वनि सर्वत्र गूंजने लगी । श्यामा तक किन्तु यह ध्वनि नहीं पहुँच सकी। अब श्यामसुन्दर ने कटि में बँधी फेंट से वंशी निकाली, अधर पर रख श्यामा का आह्वाहन किया।

विशाल – "देख लिया.....मैंने देख लिया, वो आ रही श्यामा.................युगल कर्ण शंख की भाँति खड़े हैं;

....आओ श्यामारानी, ...आओ।"

मनसुख – "अरे भाई, यह तो अतिशीघ्र समीप आ गई, लगता है यह भी कहीं कृष्ण का अन्वेषण कर रही थी,

बेचैन थी कृष्ण के बिना।"

आते ही छोटे से कन्हैया से लिपट गई श्यामा। कन्हैया की नन्ही-नन्ही भुजाओं में केवल उसके श्रृंग ही आ सकते थे, वह नहीं।

एक अद्भुत बात, श्यामा के आते ही कन्हैया अपना पीताम्बर उतारकर कोमल घास में कर-पद फैलाकर सो गया। अब श्यामा ने अपना कार्यक्रम आरम्भ किया – कन्हैया को अपनी कोमल जिह्वा से चाटने लगी, मानो अपने वत्स को चाट रही है। सारा वात्सल्य तो गोपाल पर ही उड़ेल देती है, वत्स को भी कहाँ मिल पाता होगा इतना वात्सल्य?

मनसुख – "कान्हा! श्यामा भूखी है और इधर यह दुर्बल विप्र मनसुख भी, शीघ्र गो-ग्रास और विप्र-ग्रास निकाल।"

कन्हैया द्वारा श्यामा का अन्वेषण होने से भी यह **अन्वेषणपुर** हुआ।

सुरत-सुधानिधि है यह -

श्रीकृष्ण दास जी की वाणी में –

बरनत तउ न बनै सुनि सजनी! जु रगमग्यौ बेष बन्यौ गोपाल कौ।
रसना जो होहिं लख कोतिक, रूप गोवर्द्धन धारी लाल कौ॥
स्याम धाम कमनीय बरन सखि! मानों तरुन घन तरु तमाल कौ।
जुवती लता गात अरुझानी पान करत मधु, मधुप माल कौ॥
नखसिख मदन-कोटि लखनि छबि भूषन वसन नैंन विसाल कौ।
"कृष्णदास" प्रभु सुरत सुधानिधि ताप-हरन तिय विरह ज्वाल कौ॥

उस दिन इसे देखकर मेरे अन्तस में एक अप्रतिम परमानन्द सिन्धु उच्छलित हो उठा और सदा के लिए मैं इसकी हो गई। प्रतिक्षण नवीन होता है यह स्वरूप।

कोई वस्तु या कोई अलंकार क्या शोभित करेगा ?

बात तो उसके श्री अंग में ही है।

ग्वाल-बालों का भी नियम बन गया है, प्रतिदिन वन में श्रृंगार करने का।

दर्शनीयतिलको वनमाला दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः।
अलिकुलैरलघुगीतमभीष्टमाद्रियन् यर्हि सन्धितवेणुः॥

(भा. १०/३५/१०)

दर्शनीय तो यही स्वरूप है जो सौन्दर्य, माधुर्य का सार है, साँवले ललाट पर केसर की खौर तो देखते ही बनती है, चरणों को छू रही है पंचपुष्पों से बनी वनमाला जिसमें "दिव्यगन्ध तुलसी मधुमत्तैः" अथवा "मालया दयित गन्ध तुलस्याः" तुलसी की गन्ध ने सम्पूर्ण कानन को सुरभित कर दिया है, वनमाला के चारों ओर घूम रही है गुंजार करती

हुई भ्रमर-पंक्ति और उनके गुंजार का सम्मान करते हुए यह चतुर वेनुवादक जिस स्वर से गुंजार हो रहा है उसी स्वर में वंशी बजा रहा है –

बर्हप्रसूननवधातुविचित्रताङ्गः प्रोद्दामवेणुदलश्रृङ्गरवोत्सवाढयः ।

(भा. १०/१४/४७)

मस्तक पर मनोहर मोरमुकुट है, काले घुंघराले बालों में सुगन्धित वन्य-सुमन गुँथे हुए हैं रंगीन धातुओं से श्री अंग पर सुन्दर चित्रकारी है, कभी बंशी बजाते हुए तो कभी सींगी बजाते हुए और कभी-कभी पत्तों का अलगोजा बनाकर उसे फूँकते हुए आ रहे हैं।

विमल सरोवर – सौंध

श्री चतुर्भुजदास जी की वाणी में –

आजु गोपाल-छबि अधिक बनी ।
जरकसी पाग केसरिया बागो उर राजत गिरिधर के मनी ।
सूथन लाल छौरी सोहै अरु सौधें सो भीजी तनी ।
"चतुर्भुज" लाल गिरिधर की कवि पै छबि नहिं जात गनी ॥

जरकसी पाग है, केसरिया रंग का बाघा है, छापेदार लाल सूथन शोभित हो रहा है, सम्पूर्ण श्री अंग सौंध अर्थात् अद्भुत सुगन्ध से भीगा हुआ है। असंख्य छबियों का संग्रह यह सरूप, कहीं वाणी का विषय हो सकता है।

इस अद्भुत सौंध (सुगन्ध) से यही वनस्थल सुवासित हुआ अतः सौंध नाम हुआ।

होडल से सौंध ८.५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

होडल

यूं तो ग्वालवाल, गोपियों से कहीं भी कन्हैया की प्रतियोगिता हो जाती है, किन्तु यह एक ऐसा प्रतियोगिता-स्थल है जहाँ ग्वाल-गोपियों का समुदाय कृष्ण सहित मुख्यतया प्रतियोगिता के लिए ही आता है। राधा-माधव की रूप-प्रतियोगिता, माधव-मयूर की नृत्य-प्रतियोगिता, होड़, नृत्य होड़, गान होड़। असंख्य छबियों का जहाँ संग्रह है, कहो तो रूप होड़ कर बैठें, पल-पल में रूप परिवर्तित करने वाले ये युगलकिशोर परस्पर भी पराभूत नहीं होते हैं। जब होड़ होती है तो वन के खग-मृग भी लता-गवाक्ष से झाँक-

झाँककर दर्शन करते हैं। चराचर सहित सम्पूर्ण वन, दर्शक बन जाता है। हो भी क्यों न, यहाँ के प्रत्येक जीव का अभियोग है श्रीकृष्ण से।

कमल-नयन कौ रूप देखत, मोहन मृग-खग ।
घास कवल मुख मँह न संभारत, चलि न सकत पद तें एक पग ॥
सुनत स्रवन पुट मधुर बेनु कल, मन बुधि अंतःकरन बिथकित थग ।
कृष्णदास प्रभु मोहन-मूरति, करतल गोवर्द्धन अभिनव नग ॥

इधर श्रीजी भी अद्‌भुत रूप-राशि हैं।

राधे! रूप की तू रासि ।
मदन-मृग हँसि सुबस कीन्हों, रची भौंहनि पासि ॥
हसन-दामिनि, दसन बीज-पंगति, मधुर ईषद हास ।
नंद-नंदन रसिक रिझवत, सुरत रंग बिलास ॥
सघन नवल निकुञ्जमें सखि, विविध उर उपहास ।
तुव सहित गिरिधरन-कीरति, गान करै कृष्णदास ॥

प्रतिपल परिवर्तनशील प्रिया-प्रियतम के इस रूप में जब आज होड़ पड़ी तो न्याय का अवसर ही नहीं मिल पा रहा था।

श्री स्वामी जी के भाव – (श्रीजी का रूप)

यह कौन बात जु अबही और अबही और अबही औरै ।
देव नारि नाग नारि और नारि ते न होइँ और की औरै ॥
पाछैं न सुनी अब हूँ आगैं हूँ न है है,
यह गति अद्‌भुत रूप की और की औरै ॥
श्रीहरिदास के स्वामी श्यामा कुञ्जबिहारी,
या रस ही बस भये यह भई और की औरै ॥

(श्रीकेलिमाल-५४)

श्री चतुर्भुजदास जी के भाव – (कृष्ण का रूप)

माई री आजु औरु काल्हि औरु प्रति छिनु औरहिं औरु,
देखिये रसिक गिरिराज धरन ।
नित प्रति नव छबि बरनें सो कौन कबि,
नित ही सिंगारु बागे बरन बरन ॥
स्याम तन अंग अंग मोहत कोटि अनंग,
उपजी सोभा तरंग विश्व के मनु हरन ।

'चतुर्भुज' प्रभु कौ रूप सुधा नैनपुट,
पान कीजै जीजै रहिये सदाई सरन ॥

श्रीराधारानी ने जब श्यामसुन्दर का दर्शन किया, मन किसी भी श्री अंग से हटाये नहीं हट रहा था। प्रथम तो अलकजाल में उलझ गया, वहाँ से गिरा तो नेत्राम्बुज पर जम गया, वहाँ से हटाया तो नासिका से जा लगा, वहाँ से भी हटाया तो अधरोष्ठ पर बैठ गया, यहाँ से भी बलपूर्वक हटाया तो चिबुक पर जा चिपका ....।

पाँडु सरोवर – होडल

मो मन गिरिधर छबि पे अटक्यो ।
ललित त्रिभंगी अंगनि ऊपर, चलि गयौ तहाँई ठटक्यौ ॥
सजल स्याम घन नीलवरन है, फिरि चित अनत न भटक्यौ ।
'कृष्णदास' कियौ प्रान न्योछावरि, यह तन जग सिर पटक्यौ ॥

श्रीकृष्ण को कहाँ से प्राप्त हुआ यह रूप?

चैतन्यचरितामृते –

मोर रूपे आप्यायित हय त्रिभुवन ।
राधार दर्शने मोर जुड़ाय नयन ॥

(आदि लीला, चतुर्थ परिच्छेद, पयार - २००)

श्रीकृष्ण की शोभा देखकर गोपीजन जब आनन्दित होती हैं तो उनके आनन्द को देखकर कृष्ण की शोभा स्वयमेव बढ़ जाती है किन्तु यह प्रक्रिया **तत्सुखसुखित्व प्रेम** में ही होती है, जहाँ स्वसुख-वासना नहीं है।

श्रीसूरदास जी की वाणी में रूप-होड़ –

निदरि अंग-अंग छवि लेति राधा ।
यह कहति, कितिक सोभा करेंगे स्याम,
मेटिहौं आजु मन सबै साधा ॥
उतहिं हरि-रूप की रासि, नहिं पार कहुँ,
दुहुनि मन परस्पर होड़ कीन्हौ ।
ये इतहिं लुब्ध वे उतहिं उदार चित्त,

दुहुनि बल-अंत नहिं परत चीन्हौ ॥
जुरे रन वीर ज्यौं एक तैं एक सरस,
मुरत कोउ नहीं दोऊ रूप भारी ।
'सूर' के स्वामि स्वामिनी राधा सरस,
निरस कोउ नाहिं लखि लई नारी ॥

यहाँ 'निदरि' से अभिप्राय है – 'एक अंग से नेत्र हटाकर दूसरे अंग पर नेत्र ले जाने के लिए पूर्वांग का निरादर करना ही पड़ता है।'

यहाँ श्रीजी का श्यामसुन्दर के किसी भी अंग से मन नहीं हटता है, बलपूर्वक जब ले जाती हैं तो पूर्वांग का निरादर होता है व दूसरे अंग का आदर।

अंग-अंग निहार रहीं हैं, विचार कर रहीं हैं – 'आज तुम्हारे समीप रूप का जो भी भण्डार हो उसे उड़ेल देना, कितनी शोभा तुम बढ़ाओगे..........जितनी बढ़ा सको बढ़ाना, आज मैं भी अपने मन के सभी मनोरथ सिद्ध करूँगी।'

पाँडु वन विहारी मंदिर – होडल

श्रीजी ने श्यामसुन्दर के रूप-सिन्धु को ललकार दिया है जो ओर-छोर रहित है, दोनों में होड़ मच गई है। दोनों ही तट रहित रूप-सिन्धु हैं।

"राधे! रूप की तू रासि ।"

(कृष्णदास जी)

दोनों रूप-समुद्र प्रतिपल उल्लसित, आन्दोलित, उद्वेलित और परिवर्तन-परिवर्द्धनशील हैं। सम्पूर्ण वन इन्हें देखकर प्रेमरस की अनन्त उद्वेलित ऊर्मियों से भर जाता है। इस रूप-प्रतियोगिता में श्रीजी श्यामसुन्दर का सब लूट लेना चाहती हैं एवं उदार कृष्ण सब कुछ लुटा देने को कटिबद्ध हैं। दोनों के बल का कोई अन्त नहीं है अर्थात् न उनके लूटने का अन्त हो रहा है, न उनके लुटाने का। वीर योद्धा की भाँति आज दोनों का रूप-संग्राम में डटकर सामना हो रहा है। दोनों ही अति सरस योद्धा हैं, दोनों में से कोई भी तो कम नहीं है, अन्यथा गोपियाँ ही ताली बजाकर अतिशीघ्र किसी को विजेता घोषित कर दें। न कोई मुड़ रहा है, न कोई पीछे हट रहा है।

सती कुण्ड सत्य सरोवर – होडल

स्वामिनी श्रीराधारानी एवं स्वामी श्रीकृष्ण दोनों एक से एक सरस, सबल हैं; कोई भी न नीरस है, न निर्बल।

श्रीसूरदास जी कह रहे हैं – 'हमने तो दोनों की करनाड़ी पकड़कर भलीभाँति देखकर ही यह बात कही है।' अब श्यामसुन्दर की बारी आई, जब राधारानी का सर्वांग दर्शन करने बैठे तो मन छविधामिनी रूप पर लुब्ध-विमुग्ध हो गया।

श्रीहित हरिवंशजी के भाव –

श्रुति पर कंच दृगंजन कुच बिच,
मृगमद है न समात ॥
कहा कहो इन नैनन की बात ।

श्यामसुन्दर चाहते हैं – मैं श्रीजी का कर्णभूषण (कुण्डल) बन जाऊँ, वक्ष पर विराजने वाली 'मृगमद कस्तूरी' बन जाऊँ, नेत्रों का अञ्जन बन जाऊँ..........। दोनों, दोनों पर विमुग्ध हैं।

श्रीकृष्णदासजी के भाव –

कहा बरनों? रूप गुन निधि अंग-अंग सुहावने ।
उरज मृगमद-रस सुचित्रित स्रमजल-बूँद सुहावने ॥
विमल नभ नव तारिका-गन, नख जु चंद सुहावने ।
सुरत-संगर मदन प्रति भट जीति, नदत सुहावने ॥
लाल मोहन संग सुख-निधि केलि, हास सुहावने ।
सूर वर गिरिधरन बस, कृष्णदास सुहावने ॥

किसको कम कहूँ व किसको अधिक ....? विचार में पड़ गये कृष्णदास जी, अन्त में मध्य का मार्ग निकाला, दोनों को ही श्रेष्ठ कह दिया।

राजति नव-नागर संग नवल नागरी ।
अति सुन्दर रस मूरति, मदन मोहन मधुर सूरति,
सुखकारी प्यारी सब गुननि-आगरी ॥
नख सिख सौभग सिंगारू, बिरचित अंग-अंग चारू,
सोहत करत कोमल पिय-अंग लाग री ।
पंकज मुख अति सुदेस सिथलित सिर कुसुम केस,
घूमत युग नैंन चपल निसि उजागरी ॥
हसनि मंद आनंद-कंद प्रीतम मन हरन,
सुछबि बोलनि मृदु बचन-रचन सानुराग री ।

तरुनि-तिलक राधे! रसिक बस कीन्हे,
कृष्णदास नट नाइक गिरिवरधरन केलि-सागरी ॥

आनन्द की बात, पद का प्रारम्भ तो दोनों से किया किन्तु अन्त में श्रीराधारानी के रूप-प्रशंसा पर आ गये।

'श्री रूप' को श्रेष्ठ कहना चाहते थे। मन ने भी समर्थन किया, 'श्री रूप' को श्रेष्ठ कहोगे तो श्रीकृष्ण की प्रसन्नता मिल जाएगी।

अतः अब स्पष्ट कह दिया – "रूप-होड़ में जीतीं श्रीराधारानी।"

आजु तेरी छवि अधिक बनी नागरी,
माँग मोतिनि छटा, बदन पर कच-लटा,
नील पट घनघट, रूप गुन-आगरी ॥
कबरी लज्जित फनी, नैंन कज्जल अनी,
त्रिक रेखा बनी अचल सुहाग री ।
नासिका सुक-चंचु, अधर बंधूक-दुति,
बीज दाड़िम दसन, चिबुक पर दाग री ॥
बलय कंकन, चुरी, मुद्रिका अति रूरी,
बेसरि लटकी रही कामरस-आगरी ।
ताटंक मनि जटित, किंकिनी कटि तटित,
पोत मुक्ता दाम, कुच कंचुकी लाग री ॥
रुचिर मंजीर धुनि - नख चक्र चंद्रमा,
मृदुल मुसिकान बढ्यो परम अनुराग री ।
कहि कृष्णदास गिरिधरन बस किए,
भरत जब मधुर सुर कल्यान राग री ॥

नृत्य-प्रतियोगिता –

नाचति मोहन-संग राधिका ब्रजजुवतिनि के जूथ लिये ।
बाहु परस्पर जोरि प्रेम-बल मुदित गंड पर गंड दिये ॥
कंकन कुनित, धुनित पग नूपुर, सुनत स्रवन खग सुर मुनियें ।
बाजत ताल रसाल सरस गति, मालव राग सुदेस गियें ॥
सुघर संगीत प्रवीन नागरी, तिरप लेति आनंद हियें ।
लटकत सीस सुभग पद पटकत, बदति स्याम सौं होड़ किये ॥

सुख भर भरत परस्पर मंडल, संचित रस लोचननि पिये ।
'कृष्णदास' हित बदत सहाइक, बृथा कहा सत कल्प जिये ॥

आज होडल में नृत्य की होड़ पड़ी। सहस्रों सखियों से समावृत श्रीराधारानी के साथ श्रीकृष्ण नृत्य कर रहे हैं, प्रेम से बहुत मुदित हैं। सुकपोलिनी के कपोल पर कपोल रखे हुए हैं। कंकण का क्वणन, नूपुरों का छम-छम दोनों ही शब्दायमान हैं। सुरगण, खगगण, मुनिगण सब यह ध्वनि सुन रहे हैं। सरस गति से ताल बज रही है, सुन्दर गान हो रहा है। सुघर संगीत में प्रवीण नागरी तिरप गति ले रही हैं, हृदय में बहुत आनन्दित हैं।

जब चरण भूमि पर ताल के साथ पड़ते हैं तो श्रीजी का शीषफूल मस्तक पर झूलने लगता है और श्रीश्यामसुन्दर का मयूरपंख।

राधा-माधव में नृत्य की होड़ मच गई है। कभी सुख में भरकर एक-दूसरे को भुजा में भर रहे हैं, कभी नेत्रों से रसपान कर रहे हैं।

श्रीकृष्णदास जी कह रहे हैं – इस होड़ में हित है। यह होड़ परस्पर सुखदान करने वाली है। दीर्घकाल तक (१०० कल्प तक) भी जीवित रहने से क्या लाभ यदि ऐसी छवि में मन नहीं अटका।

अनन्य नृपति स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज के भाव –

होड़ परी मोरनि अरु स्यामहिं ।
आवहु मिलहु मध्य सचु की गति, लैहिं रंग धौं कामहिं ॥
हमारे तुम्हारे मध्यस्थ राधे और जाहि बदौ ।
बूझि देखौ तृन दै कहा है यामहिं ॥
'श्रीहरिदास' के स्वामी कौ चौपारि कौ सौ खेल ।
इकगुन दुगुन त्रिगुन चतुरागुन री जाके नामहिं ॥

(श्रीकेलिमाल-८२)

इस पद की प्रथम पंक्ति के २ भाव हैं –

श्रीश्यामसुन्दर और मयूर में नृत्य की होड़ पड़ गई है।

श्रीराधारानी व श्यामसुन्दर दोनों ही मयूर के साथ होड़ लगाकर नृत्य कर रहे हैं।

मयूर के साथ यह होड़ बड़ी सच्चाई से लग रही है। मध्यस्थ श्रीराधिकारानी को बना लिया है। इस नृत्य-प्रतियोगिता में कौन विजयी होगा, यह निर्णय श्रीराधारानी के ही हाथ में है। यह नृत्य, चौसर जैसा खेल हो रहा है। नृत्य में श्यामसुन्दर व मयूर इकगुन, दुगुन, त्रिगुन, चौगुन फिरकैंया ले रहे हैं।

अब विजय निर्णय –

नृत्य हो अथवा गान श्रीजी का ध्वज ऊँचा रहना स्वाभाविक ही है।

स्वामी जी के शब्दों में श्रीजी की विजय –

श्रीजी श्यामसुन्दर को नृत्य सिखा रही हैं।

कुञ्ज बिहारी नाचत नीके, लाड़िली नचावति नीके ।
औघर ताल धरैं श्रीस्यामा ताताथेई,
ताताथेई गावत संग पी के ॥
तांडव लास और अंग को गनैं,
जे जे रुचि उपजति जी के ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कौ मेरु,
सरस भयौ और रस गुनी परे फीके ॥

(केलिमाल–६०)

व्यासजी की वाणी में श्रीजी की विजय –

राधिका सम नागरी नवीन को प्रवीन सखी,
रूप गुन सुहाग भाग आगरी न नारि ।
वरुन नागलोक भूमि देवलोक की कुमारि,
प्यारी जू के रोम ऊपर डारौं सब वारि ॥
आनन्दकन्द नन्दनन्दन जाके रसरङ्ग रच्यौ,
अङ्ग वर सुधङ्ग नाँचति मानतु है अति हारी ।
ताके बल गर्वभरे रसिक 'व्यास' से न डरे,
लोक वेद कर्म धर्म छाँड़ि मुकुति चारि ॥

गायन में भी हारे (पराभूत हुए) श्यामसुन्दर –

रास काल में एक गोपी श्यामसुन्दर के स्वर में स्वर मिलाकर गा रही थी किन्तु श्रीजी ने श्रीकृष्ण के स्वर की अपेक्षा जब उच्च स्वर से राग आलापा तब उस विलक्षण, उत्तम स्वर को सुनकर कृष्ण वाह, वाह ....धन्य है ....धन्य है ....कहकर प्रशंसा करने लगे।

यही, देखें

श्री गोविन्द स्वामी जी की वाणी में –

राधे तेरे गावत कोकिला गन रहें री मौन धरि ।
कोटि मदन कौ लियो है मन हरि ॥
कुञ्ज महल में मोहन मधुरी तान राखी वितान तरि ।
'गोविंद' प्रभु रीझ हृदै सौं लगाइ लई वृषभानु कुंवरि ॥

वन के विहङ्ग भी मूक हो जाते हैं, जिस समय श्रीजी गाती हैं। श्रीजी के साथ प्रतियोगिता के पूर्व ही श्यामसुन्दर कह देते हैं –

स्वामिनी जू के साथ होड़ का मतलब ही है "हमारी हार"।

कोसी से होडल की दूरी १३.४ कि.मी. है।

भुलवाना

मनमोहन की रूपमाधुरी ने क्या नहीं भुलाया इन ब्रज-वामाओं का। सब कुछ भूल बैठीं ये गोपियाँ।

श्री सूरदास जी की वाणी में –

अँखियाँ निरखि श्याम-मुख भूलीं ।
चकित भईं मृदु हँसनि चमक पर, इंदु कुमुद ज्यौं फूलीं ॥
कुल-लज्जा, कुल-धर्म, नाम कुल, मानतिं नाहिंन एकौ ।
ऐसे है ये भजीं श्याम कौं, बरजत सुनतिं न नेंकौ ॥
ये लुब्धीं हरि-अंग-माधुरी, तनु की दसा बिसारी ।
सूर श्याम मोहिनी लगाई, कछु पढ़ि कै सिर डारी ॥

अरी वीर! मेरे ये दोनों नेत्र इंदीवरदल श्याम को देखकर स्वयं को भूल गये हैं। श्यामसुन्दर का स्मित-हास, उसमें दमदमाती उज्जवल-धवल दन्त पंक्ति को देखकर मेरे ये नेत्र चकाचौंध हो गये।

जैसे चन्द्र को देखकर कुमुदिनी खिल जाती है, उसी प्रकार मेरे ये नेत्राम्बुज कृष्ण के सस्मित-मुख-मयंक को देखकर खिल जाते हैं। अब ये नेत्र न कुल की लाज मानने वाले हैं, न कुल-धर्म का निर्वाह करने वाले हैं, इन्हें कुल के नाम की भी अब कोई परवाह नहीं है। ये तो ऐसे अनुरक्त हो गए हैं उसकी मोहन-मूर्ति पर कि हजार बरजने पर भी नहीं मानते हैं।

प्यारे श्यामसुन्दर की अंग-माधुरी पर ऐसी लुभा गई हैं कि देह-दशा को भी भूल गयीं हैं। अवश्य कन्हैया ने इनके ऊपर कुछ मोहिनी डाल दी है, मस्तक पर मन्त्र पढ़कर जादू-टोना कर दिया है।

मथुरा की नारियों ने भी प्रशंसा की गोपियों की। '**लावण्य सार**' जिससे परे कोई रूप नहीं है, जो अनन्य सिद्ध है, जिससे कभी तृप्ति नहीं होती क्योंकि प्रतिक्षण नूतन है, सब यश, सौन्दर्य, ऐश्वर्य इसके आश्रित हैं; इस रूप का दर्शन केवल गोपियों को मिला।

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य
रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ।
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुरापमेकान्तधाम
यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥

(भा. १०/४४/१४)

श्रीछीतस्वामीजी की वाणी में –

अरी! हौं स्याम-रूप लुभानी ।
मारग जात मिले नँद-नंदन, तन की दसा भुलानी ॥
मोर मुकुट सीस पर वाँकौ, बाँकी चितवनि सोहै ।
अँग-अँग भूषन बने सजनी! जो देखें सो मोहै ॥
जब मो तन मुरिके मुसिकाने, तब हौं छाकि रही ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर की चितवनि, जात न कछू कही ॥

सखियों की स्थिति सुनकर श्रीजी ने उनकी बहुत प्रशस्ति गाई –

धन्य हौ धन्य तुम घोष-नारी ।
मोहिं धोखो है गयो, दरस तुमको भयौ, तुमहिं मोहिं देखि री बीच भारी ॥
जा दिन संग मैं गई अस्नान कौ, जमुना के तीर देखे कन्हाई ।
पीड़ सीखण्डसिर, वेष नटवर कछे, अंग इक छटा में रही भुलाई ॥
दिवस इक आइ ठाढ़े भए द्वार पर, आजु हरि गए है, द्वार मेरे ।
'सूर' प्रभु ता दिन तुमहिं कहि दियौ, मोहिं, आजु मैं लखो सोउ कहे तेंरे ॥

तुम सब धन्य हो ....धन्य हो ....

परम प्रशंसनीय हो ....

मैं तो धोखे में ही रह गई और तुम सब कृष्ण दर्शन प्राप्त कर गईं। तुम्हारे और मेरे मध्य बहुत अन्तर है। उस दिन मैं भी तो गई थी तुम सबके साथ यमुना-स्नान, तट पर कन्हैया को मैंने भी देखा। उसके मस्तक पर मयूर-पिच्छ लहरा रहा था, नटवर वेष था ....बस इतना ही देख सकी थी मैं।

सर्वांग पर तो अभी एक बार दृष्टि भी नहीं गई थी, मैं तो उसकी एक ही अंग-छबि में भूली रह गई। उसके बाद एक दिन तो मेरे द्वार पर भी आ खड़े हुए, तब तुम लोगों ने मुझे बताया – 'राधे! ये ही हैं श्यामसुन्दर।'

और आज भी जब वे मेरे द्वार से होकर निकले तो मैंने तुम्हारे कहने पर उन्हें देखा किन्तु मैं यह समझ नहीं पा रहीं हूँ कि तुम उनका दर्शन कैसे कर लेती हो?

तुम कैसे दरसन पावति री ।
कैसे स्याम अंग अवलोकति, क्यों नैननि ठहरावति री ।
कैसे रूप हृदैं राखति हो, वे तो अति झलकावत री ।
मोकौं जहाँ मिलत हैं माई, तहँ-तहँ अति भरमावत री ।
मैं कबहूँ नीकें नहिं देखे, कह कहौं कहत न आवत री ।
'सूरस्याम' कैसे तुम देखति, मोहिं दरस नहिं द्यावत री ॥

उसका अंग-प्रत्यंग कैसे देख लेती हो? मैं तो आज तक भी उसका सर्वांग दर्शन नहीं कर सकी। जिस श्री अंग का ये खंजन नेत्र प्रथम दर्शन करते हैं, अतिशय चंचल होने के बाद भी वहाँ से उड़ नहीं पाते। मैं जानती हूँ अवश्य ही कृष्ण दरस के बाद ये स्ववश नहीं रह पाते।

श्याम रूप देखन की साध भरी माई ।
कितनौ पचि हारि रही, देत नहीं दिखाई ॥

श्रीजी कह रहीं हैं – अरी सहचरी, एक बार उसका नख-शिख रूप देखने की मन में भारी लालसा है, प्रयत्न भी बहुत किए किन्तु सब निष्फल रहे, उसका सुरूप मैं देख नहीं पाई।

मन तौ निरखत सु अंग, मैं रही भुलाई ।
मोसौं यह भेद कहौ, कैसे उहिं पाई ॥
आपुन अंग-अंग बिध्यौ, मोकौं बिसराई ।
बार-बार कहत यहै, तू क्यों नहिं आई ॥

जब भी वह सन्मुख आता है, यह मन तो उसे देखने में लीन हो जाता है और मैं आत्म-विस्मृत हो जाती हूँ।

हे सखि, अब तो तू ऐसा कोई दांव-पेंच बता दे, जिससे उस अगाध-सौन्दर्य-सिन्धु में निमज्जित न होकर उसका आस्वादन कर सकूँ।

यह मन उसके अंग-अंग में विद्ध हो गया है और तो और उस मन ने मुझे ही भुला दिया। अब तो वह बार-बार यही कहता है – मैं तो श्याम के समीप आ गया, तू क्यों नहीं आई?

कबहूँ लै जात साथ, बाँह गहि बुलाई ।
सूरश्याम छबि अगाध, निरखत भरमाई ॥

अब मैं नहीं, यह मन ही कभी-कभी मेरी बाँह पकड़ अपने साथ कन्हैया के समीप ले जाता है और मैं उसके अगाध-रूप-समुद्र को देखकर भ्रमित हो जाती हूँ।

मार्ग में तब तक मनमोहन से आमना-सामना हो गया।

मिलि हरि सुख दियौ तिहिं बाल ।
तपति मिटि गई, प्रेम छाकी, भई रस बेहाल ॥
मग नहीं डग धरति नागरि, भवन गई भुलाइ ।
जल भरन ब्रजनारि आवति, देखि, ताहि बुलाइ ॥
जाति कित है डगर छाँड़े, कह्यौ, इत कौं आइ ।
'सूर' प्रभु कै रंग राँची, चितै रही चित लाइ ॥

आज इसे सब सुखों का आस्वादन करा दिया श्रीकृष्ण ने। आलिङ्गन करके उसके तन-मन-नयन की तपन का शमन किया। इस रस-सागर में डूबकर वह तो विह्वल हो गई।

चलने में भी असमर्थ हो गई, पग डगमगाने लगे; इतने पर ऊपर से घर का मार्ग भी भूल गई। कोई दूसरी गोपी जल भरने कूप की ओर जा रही थी, उस विपथगा को देखा तो पहिचान गई।

अरी ओ ....मार्ग भूल गई क्या? तेरे घर का मार्ग तो इधर से है। जा सीधी चली जा।

किन्तु वह तो कृष्ण रंग में रच-पच गई थी, मार्ग बताने वाली अपनी सहेली से भी कुछ न बोली, बस एकटक उसे देखती रही।

पुनः चल पड़ी यह दिवानी।

चली भवन मन हर हरि लीन्हौं ।
पग द्वै जाति, ठठकि फिरि हेरति, जिय यह कहति, कहा हरि कीन्हौं ॥
मारग भूलि गई जिहिं आई, आवत कै नहिं पावति चीन्हौं ।
रिस करि खीझि-खीझि लट झटकति, श्याम-भुजनि छुटकायौ ईन्हौं ॥
प्रेम-सिन्धु में मगन भई तिय, हरि कै रंग भयौ उर लीनौ ।
'सूरदास' प्रभु सौं चित अटक्यौ, आवत नहिं इत, उतहिं पतीनौ ॥

घर को चल तो पड़ी किन्तु मन हरि ने हर लिया था। २ कदम आगे बढ़ती............ रुक जाती.............मुड़कर कृष्ण को देख लेती ....

मन ही मन कहती – हे हरि, यह क्या कर दिया तूने। अभी-अभी जिस मार्ग से आई थी, उसे ही भूल गई। बार-बार खीझकर बस कपोलों पर झूल रही काली अलकों को झटक देती और कहती – ये ही हैं बैरिन अलकें, जिन्होंने प्रियतम की भुजाओं से मुझे पृथक् कर दिया। कृष्ण प्रेम-सिन्धु में निमज्जित उसका हृदय कृष्ण रंग में रंग गया था। मन ऐसा अटक गया था कि अब वह पुनः इस बेचारी के निकट ही न लौट सका।

जैसे-तैसे घर तो पहुँच गई किन्तु अब जब भी कृष्ण-दरस के ब्याज से दधि-विक्रय को जाती तो वहाँ गोरस का नाम ही भूल जाती।

गोरस कौ निज नाम भुलायौ ।
लेहु लेहु कोऊ गोपालहिं, गलिनि गलिनि यह सोर लगायौ ॥

(सूरदास जी)

"दधि लो", "दधि लो" के स्थान पर "गोपाल लो", "गोविन्द लो", "कन्हैया लो", "श्याम लो" बस यही पुकारती जाती।

गोविन्द गोपाल मोहन मुरारी, राधा रसिक श्याम राधा विहारी ।
श्याम मिलन को बेचन चली दधि, दधि लो ये भूली औ हरि लो ये कहती,
मटकी लिये शीश गाती दिवानी, राधा रसिक श्याम राधा विहारी ॥

(ब्रज भाव मालिका)

गोरस का नाम भूलना भी भूलने की एक सीमा थी किन्तु धन्य है ....अब तो यह स्वयं को भूलकर कृष्ण ही बन गयी।

माई री श्यामा श्याम-श्याम रट श्यामा श्याम भई ।
अपनी सखिन सौं यों पूछति है, श्यामा कहाँ गई ॥
ब्रजवीथिन में ढूँढ़त डोलत, बोलत राधे राधे ।
रही विचार विहार सोचकर, सखी सकल मौन साधे ॥
प्रेम लगन जाके जो लागत, ताहि कहो सुधि कैसी ।
कहे 'भगवान्' हित रामराय प्रभु, लगन लगे जब ऐसी ॥

अब इससे अधिक क्या भूलती ....। भुलवाना में सब कुछ भूल बैठीं गोपियाँ।

होडल से भुलवाना की दूरी २.५ कि.मी. है।

वनचारी

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।
वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥
वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥

(भा. १० /३५/८, ९)

सखीगण कह रही हैं कि देखो तो! मनसुख, विशाल, अर्जुन, मण्डली, कुण्डली, सुबल, श्रीदामादि प्रिय सखागण छवि-सार-सिन्धु श्रीकृष्ण की पवित्र कीर्ति गा रहे हैं, जिस प्रकार देवता अनन्ताचिन्त्य ऐश्वर्य के स्वामी आदिपुरुष भगवान् नारायण की स्तुति करते हैं।

वीर! देख तो, वनचर बनकर वन्यलीला सम्पादित कर रहे हैं, वन्य वस्तुओं का श्रृंगार है, वन्य फलों का भोजन है।

अंग्रेज कवि वर्ड्सवर्थ ने कहा था – nature is near to god. प्रकृति भगवान् के अधिक समीप है। आधुनिक सभ्यता कृत्रिम होने से भगवान् से दूर करने वाली ही है। प्रकृति के अत्यधिक निकट होने से यहाँ अचिन्त्यानन्त ऐश्वर्य के स्वामी को वनचर कहा। ऊपर से नीचे तक देखो तो वन्य श्रृंगार ही है तन पर। मयूरों का गिराया पिच्छ ही किरीट है, ललाट पर गोरोचन का तिलक है, गले में गुञ्जमाल व कटि में मटर की करधनी है। अतएव श्रीकृष्ण को वनचर कहा गोपियों ने। वनचर का यह केलिस्थल वनचारी नाम से विख्यात हुआ।

दाऊ जी – वनचारी

आगे गोपियाँ कहती हैं –

इनकी वन्य लीला तो देखो – अचिन्त्यैश्वर्य-पूर्ण होकर वृन्दावन में विहार करते हैं। गिरिराज-गोवर्धन की तलहटी में चरती हुई गायों को वंशी में नाम ले-लेकर बुलाते हैं। वेणु विहारी की यह वेणु ध्वनि कौन जाने किस अभिनव-रस का संचार करती है। अचर लता-तरु भी चैतन्य हो उठते हैं, देखते ही देखते फल-फूल से लदकर शाखा रूप भुजाओं से इस प्रकार भूमि स्पर्श करते हैं मानो प्रणाम कर रहे हैं; कृष्णप्रेम से इनका तन-मन, रोम-रोम पुलकायमान हो गया है। अधिक क्या कहें प्रत्येक लता से मधुधारा बह रही है, सम्पूर्ण वृन्दावन की भूमि मधुधारा से अभिषिञ्चित हो गई है।

दाऊ जी मंदिर – वनचारी

भक्ति रत्नाकर में वनचारी –

वनचारी आदिग्रामे अद्भुत बिलास।
ए सब ब्रजेर सीमा अहे श्री निवास॥

हे श्रीनिवास जी! यह बनचारी आदि समस्त ग्राम ब्रज के सीमावर्ती ग्राम है। जहाँ अद्भुत विलास लीला सम्पन्न हुई।

होडल से वनचारी की दूरी ६.१ कि.मी. है।

मोहन कुण्ड – वनचारी

लीखी

निगूढ़तम रस के प्राकट्यकर्ता श्री हरिव्यास देवाचार्य जी, जिनके साढ़े बारह शिष्यों में एक पूर्ण शिष्य थे– श्रीउद्धवदेवजी महाराज। श्रीराधा-माधव के दिव्य रस में उन्मज्जित युगल-बल का मान ठानकर रहते, इस कारण उद्धव देव नाम प्रथित होकर घमण्डी नाम हो गया।

वस्तुतः महापुरुषों की विज्ञप्ति उनकी बाहरी क्रियाओं से कदापि सम्भवनहीं है; उनकी आन्तरिक स्थिति या तो वे स्वयं ही जान सकते हैं किंवा अन्तस्थ भगवान्।

यही हुआ श्रीउद्धवदेवजी के साथ भी; रसमत्तता में इन्हें अवसर ही कहाँ था किसी जीव-जगत् से बात करने का, बस लोग इन्हें घमण्डी समझने लग गये। माना कि उनमें घमण्ड था किन्तु अस्मिता वाला नहीं।

एक पंक्ति में समझा दिया श्री ध्रुवदास जी ने –

घमण्डी रस में घुमड़ि रह्यौ वृन्दावन निज धाम।
वंशीवट तट वास कियो गायौ स्यामा स्याम॥

सामान्य जन कैसे समझ सकते हैं सन्तों की रस-रहस्यमय वाणी। इस स्थिति को जो प्राप्त कर गया है, वही समझ सकता है। जैसे –

श्री अली किशोरी जी के भाव –

हम हैं राधे जू के बल अभिमानी।
पड़े रहैं अलमस्त झकोरे, सिर पर राधारानी॥
टेढ़े रहत मोहन रसिया सों, बोलत अटपटि बानी।
किशोरी अली के प्राण जीवनधन, बरसानो रजधानी॥

अथवा

श्री बिहारिन देव जी के भाव –

हम बेपरबाह बिहारिनि के ।
श्री हरिदास कैं गर्व भरे अमनैंक अनन्य निहारिनि के ॥
महा-मधुरे-रस पाँन करें अबसाँन खता सिलहारनि के ॥
दियौ नहिं लेहि ते माँगहि क्यौं बरनैं गुन कौंन तिहारिनि के ॥
किये रहैं ऐंड़ बिहारी हूं सों हम बे परबाह बिहारिनि के ॥

अथवा

श्री व्यास जी के प्रति भाव –

(श्री नाभा जी के शब्दों में) –

उतकर्ष तिलक अरु दाम कौ भक्त इष्ट अति व्यास के ॥
काहू के आराध्य मच्छ, कच्छ नरहरि सूकर ।
वामन, फरसा धरन, सेतु बन्धन जु सैलकर ॥
एकन के यह रीति नेम नवधा सों लाये ।
सुकुल सुमोखन सुवन अच्युत गोत्री जु लड़ाये ॥
नौगुण तोरि नूपुर गुह्यौ महत सभा मधि रास के ।
उतकर्ष तिलक अरु दाम कौ भक्त इष्ट अति व्यास के ॥

(भक्तमाल, छप्पय ९२)

भगवद्कृपा संबलित श्री उद्धव घमण्डदेवाचार्य जी ने गुरुदेव श्री निम्बार्काचार्य हरिव्यास देव जी से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर सुदृढ़ भक्ति में स्थित हो गये। ब्रज में यत्र-तत्र निवास किया। करहला ग्राम में आपके द्वारा रासलीलानुकरण आरम्भ हुआ और तब से अद्यावधि चली आ रही है रासलीला मंचन की यह प्राचीन, पुनीत परम्परा।

लीलाभूमि लीखी में श्रीघमण्डदेवाचार्य जी का प्रवास रहा। उस समय तरु-लता-झाड़ी से वन इतना सघन था कि ब्रजवासी इन्हें झाड़ी वाले बाबा भी कहते थे। रस निमग्न रसिक जन चमत्कृतियों से सर्वथा दूर ही रहते हैं।

एकबार इनके लीखी प्रवास के समय श्रीयमुनाजी का प्रवाह तीव्र हुआ, होते-होते स्थिति यह आ गई कि यमुनाजी के उस प्रलय रूप से सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। ऐसा लगा मानो आज सब कुछ विनष्ट हो जाएगा तब सर्वसमर्थ इन महापुरुष ने परहितैक-दृष्टि से चमत्कार यह दिखाया कि अपने भजन-बल से श्रीयमुनाजी को स्तम्भित कर दिया। प्रवाह आगे न बढ़ सका, सीमा परिबद्ध हो गया।

श्री उद्धव घमण्डदेवाचार्य जी का लीला संवरण काल यहीं लीखी में व्यतीत हुआ।

एक बार ब्रजवासियों की इच्छा हुई रथारूढ़ श्रीकृष्ण का दर्शन करने की –

"लाला! सुन्यो है कि तू रथ पे चढ़ के भी चल्यो करै, एक बार दर्शन तो करा या छबि के।"

ब्रजवासियों की इच्छापूर्ति की प्रभु ने। अपना रथ पर विराजमान स्वरूप दर्शन कराया। रथ के चक्राकार पहियों की इस भूमि में लीख खिंच गयी अतः ग्राम का नाम **'लीखी'** हुआ।

लीला भूमि तो यह है ही, अन्यथा रसिक महापुरुष श्री उद्धव घमण्डदेवाचार्य जी यहाँ क्यों विराजते?

दुःख है कि ये सभी लीला स्थल, आचार्य स्थल भेदवादिता के कारण नष्ट प्राय हो चुके हैं। न कोई आता-जाता है, न ही स्थान सम्बन्धी कोई लीला जानता है। प्रभु के चरणों में प्रार्थना है इनके संरक्षण, सम्वर्धन की।

लीखी में श्री राधा मोहन जी का मन्दिर भी स्थित है।

हसनपुर से लीखी की दूरी ५.१ कि.मी. है।

खाम्बी

भक्ति रत्नाकरानुसार –

एई ब्रज सीमा खम्भ हरे खाम्बी ग्राम ।
एथा गोचारय रंगे कृष्ण बलराम ॥

(भ.र.१४३०)

खाम्बी ब्रज सीमा का ग्राम है। खम्ब से खाम्बी नाम हुआ यहाँ श्रीकृष्ण-बलराम ने सानंद गोचारण किया अतः यह गोचारण क्षेत्र है।

भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ के अनुसार यह गोचारण स्थान भी है।

खाम्बी का मूल नाम स्तम्भी वन है।

दाऊ जी द्वारा स्थापित खम्ब

दाऊ जी द्वारा स्तम्भ स्थापित होने की कथा यहाँ प्रसिद्ध है। ग्रामीणों से भी जब यहाँ के इतिहास के विषय में पूछा गया तो उनका भी यही कहना था – "यह स्तम्भ ब्रजसीमा-निर्धारण का है, स्तम्भ के इस ओर ब्रज है एवं उस ओर ब्रज नहीं है।" किन्तु ये बातें उचित इसलिए नहीं हैं क्योंकि इनसे

समाज में संकीर्णता का प्रचार होता है, ऐसे ही विचारों से ब्रज का अधिकांश भाग उपेक्षित हो गया।

चाचा वृन्दावनदास की वाणी में खाम्बी व समीपवर्ती क्षेत्र –

नमो नमो गुरु कृपा मनाऊँ ।
उर अभिलाषा उपजी जैसी ब्रज महिमा जु यथामति गाऊँ ॥
हद सीमा के गाम ठाम जे तिनकौ ब्यौरौ कहि जू चिताऊँ ।
प्रथम सोनहद पुनि वनचारी षांभी (खाम्बी)
षंभ (खम्ब) गड़यौ जु सुनाऊँ ॥
ऊँची ऐंच जहाँ बलि जमुना ऐंची प्रगट सुचिन्ह बताऊँ ।
ऊंठासानी लसित हौंठये, कुरवारौ ब्रजहेरौ नाऊँ ॥

खाम्बी से आगे ऊंठासानी ....आदि ये सब ब्रज ही है। केवल खाम्बी तक ब्रज है, ये संकीर्ण वाक्य है। ब्रज का प्रत्येक रजकण प्रभु की अनुपम लीलाओं से अनुप्राणित है।

स्तम्भी वन में दाऊ जी द्वारा ही स्तम्भ स्थापन क्यों हुआ? यह कार्य तो श्रीकृष्ण द्वारा भी सम्भवथा व श्रीराधारानी द्वारा भी सम्भवथा।

इसका समाधान बस यही है कि प्रभु जिससे जो कराना चाहें।

(और फिर यह पूर्व से ही निश्चित व्यवस्था है – श्री भगवान् की ३ प्रधान शक्तियाँ ह्लादिनी, संधिनी और संवित्; जिनमें ह्लादिनी, प्रेम व आनन्द मात्र है। ह्लादिनी शक्ति से होने वाले रास-विलास, प्रेम का अभिवर्धन करने वाली समस्त लोककल्याणकारिणी लीलाओं की अधीश्वरी श्रीराधारानी हैं। संधिनी ऐश्वर्य प्रधान शक्ति है जिसके अधीश्वर श्री दाऊ जी महाराज हैं, इन्हीं के अंश से महाविष्णु का भी प्रादुर्भाव है।)

रेवती रमण जी

आपका कार्य है – धाम का प्रकटीकरण, संरक्षण व सम्वर्धन।

इसीलिये कहते भी हैं –

"दाऊ दयाल ब्रज को राजा"

अथवा

"ब्रज के राजा इनको कहियत दीनदयाल बड़े बलराम ।"

(रसिया रसेश्वरी)

अथवा

"अलबेलो छैला मतवारौ ब्रज कौ ठाकुर दाऊदयाल ।"

दाऊ जी के अनेक रूप हैं; संकर्षण रूप से आप ही पौढ़ानाथ की शय्या हैं, कहीं छत्र रूप है, तो कहीं पादुका रूप।

स्वधाम गोलोक का धरा पर अवतरण फिर उसका संरक्षण, सम्वर्धन प्रभु अपनी संधिनी-शक्ति अर्थात् श्री सकर्षणदेव (दाऊ जी) से कराते हैं, इस प्रकार स्वयं श्रीहरि ने ही दाऊ जी को ब्रज-प्रहरी बनाया है।

देखें गर्ग संहिता में –

गोलोकोत्पत्ति वृत्तान्त में श्री नारद जी वर्णन करते हैं –

स्वधाम्नि ब्रह्म साकारमिच्छया व्यरचीकरत् ।
प्रथमं चाभवच्छेषो बिसश्वेतो बृहद्वपुः ॥
तदुत्संगे महालोको गोलोको लोकवन्दितः ।
यं प्राप्य भक्तिसंयुक्तः पुनरावर्तते न हि ॥

(गं. सं, गि. खं. ९/७, ८)

"**गोलोक** पुरुषार्थ चतुष्टय प्रदान करने वाला प्रभु का नित्य धाम है। एक समय श्रीप्रभु ने स्वसंकल्प से स्वस्वरूप में साकार ब्रह्म प्रकट किया। सर्वप्रथम तो श्वेत वर्ण वाले, बृहदाकार श्रीशेषनागजी का प्रादुर्भाव हुआ; बृहदाकार इसलिए कि अभी इसी स्वरूप से बृहद धाम का भी प्राकट्य होना है। विशालकाय शेष जी की ही गोद में विशाल महालोक गोलोक धाम प्रकट हुआ, जिसकी प्राप्ति के पश्चात् पुनरावर्तन की परम्परा ही समाप्त हो जाती है।"

इस प्रकार श्रीदाऊजी से ही धाम का प्राकट्य होता है व दाऊजी द्वारा ही ब्रज का संरक्षण, सम्वर्धन भी होता है।

कलियुग में भी हुआ दाऊ जी द्वारा ब्रज संरक्षण

क्रूर औरंगजेब द्वारा ब्रज को नष्ट-भ्रष्ट करने का जब-जब भी प्रयास हुआ, उस समय ब्रज में जहाँ-जहाँ दाऊ जी की प्रतिमायें थीं, बहुत चमत्कार दिखाया दाऊ जी ने। गोकुल

महावन से आगे रीढ़ेग्राम - बलदेव (दाऊ जी) भी पहुँचा औरंगजेब, तो वहाँ दाऊ जी ने ऐसा चमत्कार दिखाया कि उस क्रूर विध्वंसी को दिखाई देना ही बन्द हो गया फिर तो वहाँ से ऐसा भागा कि पुनः आने का साहस भी न कर सका।

सर्वप्रथम विद्रुम वन में श्री बज्रनाभ जी द्वारा ब्रजरक्षार्थ ब्रजप्रहरी श्री बलदेव विग्रह की स्थापना हुई।

बज्रनाभ श्री विग्रह थाप्यो, अचल विराजत रीढ़े ग्राम ।
उग्र प्रताप दिखायो कलि में, यवन दबाये पद अभिराम ॥

"यवन दबाये पद अभिराम" इस पंक्ति से सुस्पष्ट है कि श्री संकर्षण ने ब्रज विध्वंसियों का विध्वंस कर ब्रज की रक्षा की।

अब स्वरूप वर्णन कर रहे हैं –

नीलाम्बर धर गर मूसल हर, दुष्ट प्रहारन भक्तनि हेत ।
मन बच क्रम जे तुमहि अराधत, तिनको मनवाञ्छित फल देत ॥
रोहिणी यशुमति के जू लाड़िले, बाबा नन्द परम सुख देत ।
मिश्री माखन खीर महाप्रिय, सबहिं समर्पित मन रुचि खाय ॥

दाऊ जी का प्रिय भोजन है – मिश्री और खीर। यहाँ दाऊ जी के लिए विशेष प्रकार की खीर बनती है एवं भांग का भोग लगता है।

वाम भाग शोभित जू दुलहिनी, रेवती नाम छबीली भाम ।
'वृन्दावन' हित रूप प्रीति सौं, गाय सदा मन इन गुन ग्राम ॥

ब्रज के सीमावर्ती अधिकांश ग्रामों में ब्रज रक्षा के उद्देश्य से श्रीदाऊजी के विग्रह विराजमान हैं। जैसे – किरावली, अछनेरा, मिढोकुर, अग्रवन (आगरा), बटेश्वर, जाजऊ, गोहद, हसायन, मेंडू, बरहद, बेसवां (धरणीधर), खेरेश्वर, बलदेव, मगोरा, रूपवास, सीकरी एवं गोमत आदि में विराजित होकर ब्रज की रक्षा कर रहे हैं इधर स्तम्भी वन में विराजित हो ब्रज की रक्षा कर रहे हैं।

स्तम्भ स्थापन का मुख्योद्देश्य धाम को दृढ़ता प्रदान कर उसकी सुरक्षा करना है, न कि सीमा निर्धारण द्वारा धाम को संकुचित करना।

छीत स्वामी जी के शब्दों में –

मांदल बाज्यौ री! ब्रजजन कें प्रगटे श्रीबलराम ।
रोहिनी –कूंखि प्रगट पुरुषोत्तम, ब्रजजन-मन अभिराम ॥
जो जन विनय करत, दुःख तिनके काटत हैं तिहि जाम ।
टेरत कोउ जात तहाँ भाजे, और कछू नहिं काम ॥

स्याम राम कौ भेद न जानत, करत जुदाई मन में।
'छीत-स्वामी' मुख सों कहा बरनों! आगि लगो ता तन में॥

भगवान् में भेद करना भी एक अपराध है फिर दाऊ जी तो श्रीकृष्ण की संवित-शक्ति हैं। राम-श्याम में भेद कैसा?

ये प्रभु की अनन्तानन्त शक्तियाँ हैं, जिससे जो कराना चाहें यह उनकी इच्छा।

हसनपुर से खाम्बी ९ कि.मी. है।

हसनपुर

यही है यमुना का प्रवेश द्वार, जहाँ से यमुना को ब्रज में प्रवेश प्राप्त हुआ।

राजस्थान की अरावलियों का जल मिलने से किसी समय यमुना का सिन्धु सदृश स्वरूप था, अब उस जल के रुकने से वह स्वरूप नहीं रहा। कुछ लोगों के मतानुसार ब्रज में यमुना का प्रवेश द्वार ऐंच है एवं कुछ अन्य जनों के मतानुसार हसनपुर है, जिसके नाम से ही विज्ञप्ति हो जाती है, ब्रज भूमि में प्रवेश करते ही उस अपार प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हँसने से हुई अतः नाम हसनपुर हुआ।

ब्रज की सुषुम्ना : यमुना

ब्रज में प्रवाहित होने से गंगा से भी शतगुणित महिमा है श्रीयमुना की।

गंगा शतगुणा प्रोक्ता माथुरे मम मण्डले।
यमुना विश्रुता देवी नात्र कार्या विचारणा॥

(वाराह पुराण १५०/३०)

फिर पद्मपुराण व ब्रह्मवैवर्तपुराण में तो श्रीयमुनाजी को श्रीकृष्ण का ही स्वरूप कहा गया है अतः इनका एक नाम कृष्णा भी है –

रसो यः परमाधारः सच्चिदानन्द लक्षणः।
ब्रह्मेत्युपनिषद्गीतः स एव यमुना स्वयम्॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

ब्रह्म की रसरूपता ही यमुना है।

सनत्सुजातीय संहिता के अनुसार श्रीयुगल सरकार के विहार का श्रम ही श्रीयमुना है।

यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियं भावुका
समागमनतो भवत्सकलसिद्धिदा सेवताम् ।
तया सदृशतामियात्कमलजा सपत्नीवय-
हरिप्रियकलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम ॥

(श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित यमुनाष्टक – ५)

"गंगा भी जिसके समागम से सबको सिद्धि देने वाली बन गई, वो कालिन्दी हमारे मन में रहे।"

सत्य तो यह है कि गंगावतरण में भगीरथ का तप एवं सरस्वती का शाप गोण कारण है।

मुख्य कारण है – श्रीराधारानी की इच्छा एवं श्रीयमुनाजी की कृपा।

नारद जी के द्वारा गंगावतरण पूछे जाने पर स्वयं श्री नारायण भगवान् ने कहा –

श्रीराधारानी एवं श्यामसुन्दर के श्रीअंग से प्रकट हुई गंगा उनका अंश व उन्हीं का स्वरूप है। एक समय गोलोक में गंगा श्रीकृष्ण के पार्श्व में विराजमान होकर ललित नेत्रों से श्रीकृष्णरूपसुधा का पान कर रही थीं, तब तक असंख्य सखियों के समूह से घिरीं श्रीराधारानी वहाँ आईं। जीवों पर अनुग्रह करने हेतु श्रीराधारानी ने कोप लीला की।

रतिवर्धन सुख मान कुँवरि को ।

(महावाणी)

श्रीराधारानी के नेत्रों में लालिमा और फड़कते ओठों को देखकर स्वयं श्रीकृष्ण ने श्रीराधारानी की स्तुति की। गंगा भी सिंहासन से नीचे खड़ी होकर स्तवन करने लगी, नेत्र बंद करके श्रीकृष्ण के चरणों की शरण में गयी। श्रीकृष्ण ने उस समय अत्यधिक डरी हुई गंगा को आश्वस्त किया। अब गंगा निर्निमेष नेत्रों से सिंहासनासीन श्रीयुगल का दर्शन करने लगी। इस पर श्रीराधारानी ने पूछा – 'हे प्राणनाथ! आपके प्रसन्न मुखाम्बुज को निहारने वाली यह देवी कौन है? आप भी इसकी ओर देखकर मधुर-मधुर हँस रहे हैं। मैंने अनेक बार आपको अनेकों से प्रेम करते हुए देखा है। बार-बार क्षमा कर देने का मेरा स्वभाव बन गया है। एक बार आपने विरजा से प्रेम किया, मेरे देख लेने पर वह देह-त्याग कर महान नदी के रूप में परिणित हो गई। शोभा से प्रेम किया तो वह भी देह-त्याग कर चंद्रमंडल चली गई। प्रभा से प्रेम किया तो वह शरीर त्यागकर सूर्यमण्डल चली गई और एक समय 'शान्ति' नामक गोपी के साथ रासमण्डल में देखा, वह तो देह त्यागकर भुजा में ही लीन हो गई। मैंने आपको क्षमा से प्रेम करते देखा तो उस समय वह देह त्यागकर पृथ्वी पर चली गयी।'

श्रीराधा इस प्रकार कह ही रहीं थीं कि उनके अभिप्राय को जानकर 'पूर्ण योग सिद्धा गंगा' भी श्रीकृष्ण-चरणों में विलीन हो गई तब श्रीराधा ने गोलोक, वैकुण्ठ, ब्रह्मलोकादि में

गंगा को बहुत ढूँढ़ा किन्तु वे नहीं मिलीं। सर्वत्र जल का नितान्त अभाव हो गया। ब्रह्मादि देवों ने गोलोक आकर श्रीकृष्ण को प्रणाम कर उनका स्तवन-आराधन किया। श्रीकृष्ण बोले – 'ब्रह्मन! मैं समझ गया हूँ, आप सब गंगा को ले जाने के लिए यहाँ आये हैं किन्तु इस समय वह मेरी शरण में है।

कृपा कुपिता श्रीराधा उसका पान करना चाहती थीं, उसने मेरी शरण ग्रहण की। यदि आप गंगा की पूर्ण रक्षा कर सकें तब ही मैं दे सकूँगा।'

समस्त देवताओं ने राधारानी की स्तुति की – 'हे देवि! यह गंगा आपके और श्रीकृष्ण के श्रीअंग से समुत्पन्न है। रासमण्डल में शंकर के संगीत ने आपको मुग्ध कर दिया था, उसी अवसर पर यह द्रव रूप में प्रकट हो गई। आप दोनों के श्रीअंग से समुत्पन्न होने के कारण यह आपकी प्रिय पुत्री के समान है। इस प्रकार ब्रह्माजी के स्तुति करने पर राधारानी प्रसन्न हो गईं एवं गंगा को निर्भय कर दिया। तब गंगा श्रीकृष्ण के चरणाङ्गुष्ठ के नखाग्र से निकलकर विराजमान हुईं। श्रीकृष्ण के चरणकमल से प्रकट होने से गंगा 'विष्णुपदी' कहलाईं, किन्तु जब से गंगा ने श्रीकृष्ण चरणों को छोड़ा तब से आज तक उनका बहना बन्द नहीं हुआ अर्थात् जीवन में विश्राम नहीं आया।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की वाणी से –

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ! यह समुझ सबेरो ॥
बिछुरे ससि-रबि मन-नैननितें, पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत श्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, श्रुति संदेहु निबेरो ।
'तुलसिदास' सब आस छाँड़ि करि, होहु रामको चेरो ॥

रे मूढ़ मन! मेरी यह सीख मान ले। आज तक किसी भी भगवद्विमुख को सुख नहीं मिला, शठ!

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।

(यजुर्वेद.पुरुष सूक्त-३१/१२)

वेद कहते हैं 'सूर्य, चन्द्र' भगवान् के नेत्रों से प्रकट हुए किन्तु ये भी भगवान् के नेत्रों से बिछुड़े। उन्हें भी आज तक विश्राम नहीं मिला तब से दिन-रात चल ही रहे हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग हो गया, द्वादश आदित्यों में पूषा के दाँतों को वीरभद्र ने तोड़ा एवं रावण से पराजित होकर सूर्य का लोलार्क (काशी में एक स्थान) में पतन

हुआ। ब्रज में सूर्यपत्तन वन (सामईखेड़ा) में भी सूर्य आकर गिरे हैं। भगवान् की शरण लेने से रक्षा हुई। इसके अतिरिक्त राहु-केतु भी इन्हें समय-समय पर ग्रस लेते हैं।

इसी प्रकार एक बार चरणों से बिछुड़ जाने पर गंगा जी को भी आज तक घूमना पड़ रहा है। ब्रह्माजी ने वह जल अपने कमण्डलु में रख लिया।

अनन्तर गंगा को उन्होंने श्रीराधा मन्त्र की दीक्षा, स्तोत्र, कवच, पूजा एवं ध्यान-विधि बताई।

भगवान् ने कहा – हे ब्रह्मन! आप गंगा को स्वीकार करो। विष्णो! महेश्वर! विधाता! गोलोक में काल चक्र का कोई प्रभाव नहीं है किन्तु इस समय कल्प समाप्त होने के कारण सम्पूर्ण विश्व प्रलय-जल में डूब गया है। कई ब्रह्मा, शिवादि समाप्त हो चुके हैं और कितने ही होंगे।

विष्णुपत्नी गंगा

नारद जी ने पूछा – भगवन्! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा एवं तुलसी ये चारों भगवान् नारायण की प्रिया हैं, इनमें से गंगा को विष्णुप्रिया होने का सौभाग्य कैसे प्राप्त हुआ, आप कृपा करके बताएं।

भगवान् नारायण बोले – एक समय ब्रह्मा जी गंगा को साथ लेकर वैकुण्ठ आये। प्रभु को प्रणाम करके बोले – भगवन्! श्रीराधाकृष्ण के अंग से समुद्भूत गंगा इस समय एक सुशीला देवी के रूप में विराजमान हैं जो श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी का वरण करना नहीं चाहती हैं किन्तु मानिनी श्रीराधा ऐसा नहीं चाहती हैं, वे तो गंगा का पान ही कर रही थीं कि गंगा ने कृष्णचरणाश्रय लेकर बहुत बुद्धिमानी का कार्य किया। मेरी प्रार्थना है कि अब आप सुरेश्वरी गंगा को पत्नी रूप में स्वीकार करें। ब्रह्माजी की प्रार्थना पर परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण दो भागों में विभक्त हो गए – (१) द्विभुज कृष्ण (२) चतुर्भुज श्रीहरि।

श्रीराधा भी दाहिने अंश से श्रीराधा ही रहीं और उनके वामांश से लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ।

नारद जी! इस प्रकार ब्रह्मा जी ने श्रीहरि के साथ गंगा का विवाह कराया और वहाँ से चले गये। गंगा, तुलसी, लक्ष्मी व सरस्वती ये चारों ही चतुर्भुज श्रीहरि की प्रिया हैं। एक समय सरस्वती ने डाह से गंगा को मृत्युलोक में जाने का शाप दे डाला, उधर गंगा ने भी सरस्वती को शाप दे दिया। एक-दूसरे के शाप से दोनों का मर्त्यधरा पर अवतरण हुआ। (ब्रह्मवैवर्त/प्रकृति खण्ड/अध्याय ११, १२ ......)

श्रीयमुनाजी की कृपा से गंगा को भी मिला ब्रज में प्रवेश ।

कहाँ से हुआ यमुना का ब्रज में प्रवेश

गर्गसंहितानुसार –

जिन श्री यमुना के बिना श्री राधा रानी ने भूतल पर आने से इन्कार कर दिया।

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ॥

(ग.सं.गो.ख.३/३२)

श्रीजी बोलीं –

श्री वृन्दावन, श्रीयमुना,

श्री गोवर्धन के बिना तो मेरा मन कहीं भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। गर्गसंहिता में २ बार इस श्लोक की चर्चा है।

श्रीजी की प्रसन्नता के लिए श्यामसुन्दर ने –

गोवर्द्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि ।

(ग.सं.गो.ख.)

स्वयं श्रीहरि ने नित्य गोलोकवासिनी यमुना जी को धराधाम पर जाने की आज्ञा दी। यमुना को गमनोद्यत देख गंगा और विरजा दोनों उनमें विलीन हो गयीं।

तदैव विरिजा साक्षाद् गंगा ब्रह्मद्रवोद्भवा ।
द्वे नद्यौ यमुनायां तु संप्रलीने बभूवतुः ॥
परिपूर्णतमां कृष्णां तस्मात्कृष्णस्य नंदराट् ।
परिपूर्णतमस्यापि पट्टराज्ञी विदुर्जनाः ॥

(गर्ग.सं.वृन्दावन खण्ड.३/२, ३)

कलिन्दजा के कारण ही वृन्दावन बैकुण्ठ से भी अधिक महिमामण्डित हो गया।

वैकुण्ठान्न्परोलोको न भूतो न भविष्यति ।
एकं वृन्दावनं नाम वैकुण्ठाच्च परात्परं ॥
यत्र गोवर्धनो नाम गिरिराज्ये विराजते ।
कालिन्दी निकटे यत्र पुलिनं मंगलायने ॥

(गर्ग.सं.वृन्दावन खण्ड.१/१५, १६)

क्योंकि यमुना तट -संनिकट कुञ्ज ही राधा-माधव की पावन खेलन स्थली है। तदनन्तर विरजा व ब्रह्मद्रव का भेदन करती हुई महानदी यमुना ब्रह्माण्ड के शिरोभाग में विराजमान ब्रह्मद्रव में प्रविष्ट हुई।

ध्रुवमण्डलस्थ वैकुण्ठ होती हुई ब्रह्मलोक का लंघन कर ब्रह्ममण्डल से नीचे गिरीं और क्रमशः देवलोकों में होती हुई सुमेरु गिरि के शिखर पर वेगपूर्वक गिरीं।

अनेकों गिरि-चट्टानों का भेदन करती हुई जब मेरुगिरि से दक्षिण दिशा की ओर बढ़ीं तब यहाँ 'श्रीयमुना' गंगा से पृथक् हुई। यहाँ से आगे मार्ग बदल गया। 'गंगा' हिमवान् गिरि पर गई और 'कृष्णा' कलिन्दशिखर पर, इसी से इनका एक नाम 'कालिन्दी' हुआ। कलिन्द गिरि से कालिन्दी अनेक देश पवित्र करती हुई खाण्डव वन या इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) आई। ब्रज के कुछ निकट आई अतः श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने की इच्छा से यहाँ खाण्डववन में तप करने लगीं। पिता सूर्य ने अपनी पुत्री के लिए जल के अन्दर ही एक दिव्य गेह का निर्माण कर दिया। खाण्डववन से वेगवती कालिन्दी ब्रज की ओर बहीं। ब्रज में सर्वप्रथम "ऐंच ग्राम" में प्रवेश हुआ।

वृन्दावन समीपे च मथुरा निकटे शुभे ।

(ग.सं.वृ.खं. ३/१६)

तब श्रीवृन्दावन-मथुरा के निकट पहुँचीं।

यमुना को ब्रज में प्रवेश कराने वाला यही स्थान विशेष है।

नामानुसार "ऐंच" यमुनाजी का प्रवेशद्वार है।

सम्प्रति हसनपुर भी यमुनाजी का प्रवेश द्वार है। यह कोई बड़ी बात इसलिए नहीं है क्योंकि गाँवों की स्थिति जल के प्रवाह से परिवर्तित होती रही है।

ब्रज में प्रवेश करते श्रीयमुनाजी निश्चित ही प्रसन्न हुई और प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हँसी द्वारा ही हो सकती है अतः "हसनपुर" हुआ।

गर्गसंहिता में लिखा है – जब वे ब्रज से आगे जाने लगीं तो ब्रजभूमि के वियोग से विह्वल हो, प्रेमानन्द के आँसू बहाती हुई पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुईं। ब्रज से बाहर जाने का इतना विरह व्याप्त हुआ यमुना जी को।

अथो व्रजाद्व्रजन्ती सा व्रजविक्षेपविह्वला ।
प्रेमानन्दाश्रुसंयुक्ता भूत्वा पश्चिमवाहिनी ॥

(ग.सं.वृंदा.खं. ३/१८)

कहाँ से हुआ?

गर्गसंहितानुसार –

श्रीगोकुले च यमुना यूथीभूत्वातिसुन्दरी ।
श्रीकृष्णचन्द्ररासार्थं निजवासं चकार ह ॥

(ग.सं.वृंदा.खं. ३/१७)

श्रीगोकुल में आने पर श्रीयमुनाजी ने विशाखा सखी के नाम से ब्रजकिशोरियों का एक यूथ बनाकर एवं रासलीला में प्रवेश के लिए वहीं निश्चित निवास किया।

अथो व्रजाद्व्रजन्ती सा व्रजविक्षेपविह्वला ।
प्रेमानन्दाश्रुसंयुक्ता भूत्वा पश्चिमवाहिनी ॥

(ग.सं.वृंदा.खं. ३/१८)

ब्रजभूमि से आगे बढ़ने पर श्रीयमुनाजी वियोग से विह्वल हो उठीं। प्रेमानन्दाश्रुओं के साथ पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुईं। तीर्थराज प्रयाग पहुँचने पर गंगा से संगम हुआ। गंगा को साथ लिए क्षीरसागर गयीं अनन्तर समुद्र यात्रा की।

हे गंगे त्वं तु धन्याऽसि सर्वब्रह्माण्डपावनी ।
कृष्णपादाब्जसंभूता सर्वलोकैकवन्दिता ॥

(ग.सं.वृंदा.खं. ३/२२)

यमुना बोलीं – समस्त ब्रह्माण्डों को पवित्र करने वाली गंगे! तुम धन्य हो। श्रीकृष्णचरणों से प्रादुर्भूत तुम सभी लोकों की वन्दनीय हो।

ऊर्ध्वं यामि हरेर्लोकं गच्छ त्वमपि हे शुभे ।
त्वत्समानं हि दिव्यं च न भूतं न भविष्यति ॥

(ग.सं.वृंदा.खं. ३/२३)

हे शुभे! मैं तो अब यहाँ से ऊपर श्रीहरि के लोक में जा रही हूँ, तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी मेरे साथ चलो। हे गंगे! तुम सर्वतीर्थमानी हो अतः मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ।

हे कृष्णे त्वं तु धन्याऽसि सर्वब्रह्माण्डपावनी ।
कृष्णवामांससंभूता परमानन्दरूपिणी ॥
परिपूर्णतमा साक्षात्सर्वलोकैकवन्दिता ।
परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥
पट्टराज्ञीं परां कृष्णे कृष्णां त्वां प्रणमाम्यहम् ।
तीर्थैर्देवैर्दुर्लभा त्वं गोलोकेऽपि च दुर्घटा ॥
अहं यास्यामि पातालं श्रीकृष्णस्याज्ञया शुभे ।
त्वद्वियोगातुराऽहं वै पानं कर्तुं न च क्षमा ॥
यूथीभूत्वा भविष्यामि श्रीव्रजे रासमण्डले ।
यत्किंचिन्मे प्रकथितं तत्क्षमस्व हरिप्रिये ॥

(ग.सं.वृंदा.खं. ३/२५-२९)

समस्त ब्रह्माण्ड को पवित्र कर देने वाली तुम धन्य हो। श्रीकृष्ण के वामाँग से प्रादुर्भूत हो। परम आनन्दस्वरूपिणी हो। साक्षात् परिपूर्णतमा हो, समस्त लोकों की एकमात्र वन्दनीय हो। साक्षात् परिपूर्णतम श्रीकृष्ण की पटरानी हो। सब प्रकार से उत्कृष्ट तुम कृष्णा को मैं प्रणाम करती हूँ। समस्त तीर्थों व देवों के लिए भी दुर्लभ हो। गोलोक में भी तुम्हारा दर्शन अत्यन्त कठिन है। मैं तो श्रीकृष्णाज्ञा से पाताल लोक में जाऊँगी। मैं तुम्हारे वियोग-भाव से अत्यन्त व्याकुल हूँ किन्तु इस समय तुम्हारे साथ चलने में असमर्थ हूँ। हाँ, मैं रासमण्डल में तुम्हारे यूथ में अवश्य ही सम्मिलित रहूँगी। हे हरिप्रिये! मैंने यदि कुछ अप्रिय कह दिया हो तो क्षमा करना।

इस प्रकार दोनों नदियाँ परस्पर एक-दूसरे को प्रणाम करके अपने-अपने गन्तव्य को चली गयीं। गंगा तो पाताल में भोगवती गंगा के नाम से प्रसिद्ध हुई एवं वेगवती श्रीयमुना सप्तग्राम मण्डल का भेदन करते हुए लोकालोक पर्वत पर गयीं। वहाँ से ऊर्ध्वगमन करते हुए स्वर्गलोक और फिर क्रम से जन, तप और महर लोक को पार करते हुए ब्रह्मलोक पहुँचीं।

पुनः

श्रीकृष्णगोलोकमारुरोह सरिद्वरा ॥

(ग.सं.वृंदा.खं. ३/३६)

ब्रह्माण्ड-शिखर से होती हुई नदियों में श्रेष्ठ यमुना अपनी यात्रा पूर्ण करते हुए नित्य धाम गोलोक में आ गयीं।

यमुना जी का स्वरूप –

अवध के उत्तर में सरयू है उसी प्रकार श्री वृन्दावन में चहुँ ओर कङ्कणाकार श्री यमुना जी प्रवाहमान हैं।

रंगनाना तरंगें सुपुंजे । कमल-कुल लब्ध अलि करत गुंजे ॥

(महावाणी सिद्धान्त सुख पद स.३)

राधा रुपी प्रेम लक्ष्मी का निवास भी यहाँ कलिन्द-नन्दिनी के कूल पर है। जो अपने जनों के मन में यावक युत श्री पद प्रस्थापित कर देती हैं। ये प्रेम लक्ष्मी श्री राधा अन्यत्र नहीं मात्र तपनतनया के तट पर ही मिलेंगी।

कालिन्दी कूलकल्पद्रुमतलनिलयप्रोल्लसत्केलिकन्दा,
वृन्दाटव्यां सदैव प्रकटतररहो वल्लवीभावभव्या ।
भक्तानां हृत्सरोजे मधुररससुधास्यन्दिपादारविन्दा,
सान्द्रानन्दाकृतिर्नः स्फुरतु नवनवप्रेमलक्ष्मीरमन्दा ॥

(रा.सु. नि-१२६)

युगल सरकार और यमुना का परस्पर आराध्य-आराधक सम्बन्ध है। कभी युगल रसराज आराधक बनते हैं, कभी यमुना।

श्री सीताराम भगवान् द्वारा यमुनाराधन

वनवास काल में यमुना राम-सीता-लक्ष्मण द्वारा पूजित हुईं।

पुनि सियँ राम लखन कर जोरी । जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ॥

(रा.च.मा.अयो.काण्ड.११२)

वाल्मीकि रामायण में भी आता है –

कालिन्दी मध्यमायाता सीतात्वेनामवन्दत
स्वास्ति देवि तरामि त्वां पारयन्मे पतिव्रतं ।
यक्ष्ये त्वां गो सहस्रेव सुराघटशतेन च
स्वस्ति प्रत्यागते राम पुरीभिक्ष्वाकृपालितां ॥

(रा.च.मा.अयो.काण्ड.५५/१९, २०)

श्री जानकी जी जब यमुना पार करने लगीं तो सर्वप्रथम यमुना-पूजन किया। स्तवन करते हुए बोलीं – हे यमुने! इक्ष्वाकु से पालित इस अयोध्या में मेरे स्वामी यदि स्वरित (सुरक्षित) लौट आए तो मैं सहस्रों गायों और सैकड़ों देवदुर्लभ पदार्थों से आपका पुनः पूजन करूँगी।

अपना प्रण पूर्ण करने हेतु सीता जी ने ब्रज (अशोक वन) में यमुना पूजन व निवास किया।

ब्रज भक्ति विलासानुसार –

सितवास वृक्षश्रेष्ठ सौख्य रूपाय ते नमः ।

श्री सीता जी की इस यमुना भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीयमुना जी ने मिथिला में भी अवतार लिया।

गंगावतार विरजा यमुनी यमुना स्वयम् ।
येषा दुग्धमती मध्ये स्वयमेव सरस्वती ॥
पुष्करादीनि तीर्थाणि यानि सन्तीह भूतले ।
एतासां तु त्रियंमानां कलां नांहन्ति षोडशीम् ॥

(श्री मिथिला माहात्म्य ३/२७, २८)

श्री मिथिला क्षेत्र में श्री विरिजा गंगा जी का अवतार हैं और यमुनी के रूप में स्वयं यमुना जी हैं तथा मध्य में दुग्धमती साक्षात् सरस्वती हैं। इस भूतल पर श्री पुष्कर राज

आदि कितने महान तीर्थ हैं, ये सब मिलकर भी इन तीनों नदियों की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हो सकते हैं।

श्री पराशर उवाच –

यमुना दुग्धमति मध्ये पलार्द्धमपि यो वसेत्।
विधूप सर्वपापानि प्रयाति परमं पदम्॥

(मिथिला माहात्म्य, अध्याय १४/१)

श्री पराशर जी बोले – श्री यमुना तथा दुग्धमती जी के मध्य प्रदेश में जो आधा पल भी निवास करता है वह समस्त पापों को धोकर परम पद को प्राप्त होता है।

यमुना द्वारा कृष्णाराधन –

बर्हिर्णस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः।
कर्हिचित् सबल आलि स गोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः॥

(भा. १०/३५/६)

मुरलिका से गायों का आह्वान करने लगे तो यमुना जी का प्रवाह रुक गया और तरंग रुपी भुजाएँ बार-बार उत्थित होने लगीं युगल चरणरज की प्राप्ति के लिए। मानो चरणरज की याचना कर रही हैं। तत्क्षण शीतल-मन्द-सुगन्ध समीरण ने वह रज लाकर यमुना को दी। तत्क्षण तरंगे भी तिरोहित हो गयीं।

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः॥

(भा. १०/२१/१५)

वेणुविहारी के वेणुनिनाद से नीली-कल्लोलनी स्तब्धित हो गयी और क्षण-२ में नव-नव आवर्तों का निर्माण करने लगीं।

ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि कालिन्दी कृष्ण का आलिंगन चाहती थीं। श्रीकृष्णका आलिंगन करने के लिए तरंग रुपी भुजाओं के द्वारा कमल कुसुम का उपहार लेकर कृष्णपदों में अर्पित कर रही हैं, यह है कालिन्दी द्वारा कृष्णाराधन। इतना प्रगाढ़ प्रेम है तभी तो श्रीकृष्णके पूर्व ही पृथ्वी पर आ गयीं। ब्रज कोकिल **श्री नन्ददास जी** कहते हैं।

नेह के कारण यमुना जी प्रथम आईं।

श्री भगवान् से पहले श्री यमुना जी का अवनि पर अवतरण हुआ। भक्तों के लिए आपका यह अवतरण आपकी अतिशय कृपा है अतः समस्त कृष्ण भक्तों, ब्रज के भक्तों का परम कर्तव्य है, यमुना-परिचर्या।

भक्तन पै करी कृपा श्री यमुना जू ऐसी।
छांड़ि निजधाम विश्राम भूतल कियौ।

प्रकट लीला दिखाई हो तैसी ॥

कृष्णकाल में यमुना जल इतना शुद्ध था कि ग्वाल-बाल उस स्वादु जल को बिना क्षुधा-तर्षा के पी जाते थे और उसके आगे दूध-दही को भी नीरस कहते थे।

तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ।
ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥

(भा.१०/२२ /३७)

बड़ा शुद्ध, उज्ज्वल, शीतल, मंगलमय यमुना जल था। इस जल का पान करने के बाद औषधियों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

सरिता इतनी शुद्ध होनी चाहिए कि नर और सुर ही नहीं अपितु भगवान् भी उसके शुद्ध, स्वादु जल की प्रशंसा करें।

चले ससीय मुदित दोउ भाई । रबितनुजा कइ करत बड़ाई ॥

(रा.च.मा.अयो.काण्ड-११२)

भगवान् श्रीरामने सरयू जी की भी प्रशंसा की है।

नदी पुनीत अमित महिमा अति, कहि न सकहि शारदा विमलमति ॥

(रा.च.मा.बाल काण्ड-३५)

विद्या की देवी शारदा भी सरयू अथवा यमुना की शुद्धि एवं स्वच्छता का स्वल्प सा वर्णन नहीं कर सकतीं।

फिर अन्य देवों की तो चर्चा ही क्यों करें।

दरस परस मज्जन अरु पाना । हरहिं पाप कहे वेद पुराना ॥

(रा.च.मा.बाल काण्ड-३५)

जिसके दर्शन, आचमन अथवा पान से समस्त पापों का भंजन हो जाता है। स्नान से दुर्लभ भक्ति की प्राप्ति हो जाती है। यह यमुना केवल सरिता स्वरुप नहीं है। भगवान् की कृपा का स्वरुप है।

वहन्ति काम श्रियां हरेः, मुदा कृपा रूपिणीं ।
विशुद्ध भक्तिमुज्ज्वलां, परे रसात्मिकां विदुः ॥

स्वर्ग का अमृत तो लौकिक है और श्री यमुना जी का जल अलौकिक अमृत है।

सुधां श्रुतीं अलौकिकीं, परेश वर्ष रूपिणीं ।
भजे कलिन्द नन्दनी, दुरन्त मोह भंजनी ॥

(श्री हरिवंश महाप्रभु विरचित यमुनाष्टक)

यमुना की पवित्रता समस्त लोकों में विख्यात है।

लोक समस्त विदित अति पावनि ।

(रा.च.मा.बाल.३५)

इन्द्र, सूर्य, चंद्र, वरुण, समस्त सुरगण यमुना जी की वन्दना करने आते हैं।

सुरेन्द्रनन्द वन्दिता, रसादधिष्ठितेवने ।

स्वयं सूर्य ने कालिन्दी के लिए यमुना जल में निवासार्थ भवन बनवाया । जब तक उन्हें कृष्ण दर्शन नहीं हुए तब तक उन्होंने उसी भवन में निवास किया।

कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनेजले ।
निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥

(भा. १०/५८/ २२)

यमुना जल में निवास करने से अतिशीघ्र कृष्ण प्राप्ति हो गयी श्री कालिन्दी को।

स्वयं भगवान् ने भी कहा –

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा ।
मम समीप नर पावहिं बासा ॥

(रा.च.मा.उत्तर.४)

श्री नन्ददास जी का कथन है कि सरिताओं में सर्वश्रेष्ठ श्री यमुना जी हैं।

सरिता रुचे तो बसो श्री यमुना तट ।
सकल मनोरथ पूरण काम ॥

श्री गोविन्ददास जी की वाणी में श्री यमुना-वन्दना –

श्री यमुना यह विनती चित धरिये ।

सूरदास जी की वाणी में यमुना-वन्दना –

श्री यमुना जी तिहारो पुलिन मोहिं भावै ।

नन्ददास जी की वाणी में यमुना-वन्दना –

ताते श्री जमुना, जमुना जु गावौ ।
शेष सहस मुख गावत, निस दिन पार न पावै ॥१॥
सकल सुख देनहार तातैं करो उच्चार,
कहत हौ बारम्बार भूलि जिन जावो ।
'नन्ददास' की आप श्री जमुना पूरन करी,
तातै घरी–घरी चित लावो ॥२॥

रसिक जी की वाणी में यमुना-वन्दना –

तुम सम और न कोई यमुना जी ।

परमानन्द जी की वाणी में यमुना-वन्दना –

हीन जान दीजै यमुना जी ।
नन्दकुमार सदा वर मांगो गोपिन की दासी मोहि कीजै ॥

अथवा

यह प्रसाद हौ पाऊँ यमुना जी ।
तुम्हारे निकट रहो निशवासर रामकृष्ण गुण गाऊँ ॥

छीत स्वामी जी की वाणी में यमुना-वन्दना –

दोऊ कूल खम्ब-तरंग सीढ़ी श्री यमुना जगत बैकुंठ निसेनी ।

ब्रजपति की वाणी में यमुना-वन्दना –

निरखत ही अति आनन्द भारो, देख प्रभात प्रभाकर कन्या ।
ब्रजपति की तुम अति ही पियारी, तुम संगम ते जाहन्वी धन्या ॥

कृष्णदास जी की वाणी में यमुना-वन्दना –

नमो तरणि तनया परम पुनीत जगतपावनी कृष्ण मन भावनी रुचिर नामा
अखिल सुखदायिनी सब सिद्धि हेतु श्री राधिका रमण रति करण स्यामा ॥

गदाधर जी की वाणी में यमुना-वन्दना –

मेंरे कुल कल्मष सब नासे देख प्रभात प्रभाकर कन्या ।
दियो चाहे गदाधर हू को चरण-शरण निज भक्ति अनन्या ॥

गोविन्ददास जी की वाणी में यमुना-वन्दना –

श्री यमुना जी यह विनती चित धरिये ।
गिरधर लाल मुखारविंद रति जन्म-२ नित करिये ॥

ब्रजाधीश जी की वाणी में यमुना-वन्दना –

श्री यमुना जी की महिमा मोपै बरनि न जाई ।

अब आगे यमुना महिमा क्या है, यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

हसनपुर का एक और इतिहास –

ब्रज के प्रत्येक ग्राम का नाम भगवल्लीला से सम्बद्ध है। श्रीकृष्ण-बलराम के बाल सुलभ, चपल केलि-विलास से रमणीय यह स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कभी व्यावहासी (परस्पर में हँसी) में व्यस्त रहते हैं तो कभी केलि-कलह में। नादान इतने हैं कि बिना

किसी बात पर एक-दूसरे की शिकायत करने नन्द सदन में मैया-बाबा के निकट पहुँच जाते हैं। बाबा नन्द गोपराज हैं, उन्हें तो अनेक प्रकार के कार्य रहते हैं अतः नन्हे बालकों का मुकद्दमा तो मैया ही सुलझाती है।

श्याम चराय ला गैया, तोय माखन दूँगी ॥
दाऊ संग रहियो, अलग न जइयो ।
सब रहियो इक ठैया, तोय माखन दूँगी ॥

(रसिया रसेश्वरी)

यूँ तो प्रतिदिन मैया भलीभाँति सिखा-समझा कर ही भेजती है दोनों को, तो भी प्रतिदिन कोई न कोई नूतन समस्या आती है। ठीक भी तो है यदि वह इन लीलाओं को न करे तो इन स्थानों का इतिहास कैसे बने? कौन जाने यह ब्रज है।

ग्रीष्म बढ़ रही थी, यमुना किनारे-किनारे होने लगी गोचारण लीला। एक दिन जन्म लीला को लेकर ही विवाद छिड़ गया।

उनका विवाद भी अबूझ है, कौन जाने क्या हार्द छिपा है उसके पीछे।

कृष्ण – “दादा! बहुत खिजाते हो न तुम मुझे, आज चलो मैया के निकट बताऊँगा कितना अन्याय है अग्रज का अनुज के प्रति।”

श्री सूरदास जी के शब्दों में –

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिजायो ।
मो सों कहत मोल को लीन्हो, तू यशुमति कब जायो ॥
गोरे नन्द यशोदा गोरी तू कत श्यामल गात ।
कहा करौं एहि रिस के मारे, खेलन हौं नहिं जात ॥
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात ।
चुटकी दै दै ग्वाल हँसत हैं, हँसत सबै किलकात ॥
तू मोही को मारन सीखी, दाऊ कबहूँ न खीझै ।
मोहन को मुख रिस समेत लखि, बातन सुनि-सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूर्त ।
'सूर' श्याम मोहि गोधन की सौं, मैं जननी तू पूत ॥

आज कान्हा का भागते हुए सदन में प्रवेश हुआ।

मैया तो चिन्तित है गई, लाल कू कहा है गयो? मैं तो आरती थाल सजा रही ही।

यशोदा – "लाला, कहा भयौ, प्रतिदिन तो तू बड़े धैर्य सों खड़े हैके आरती करातौ और आज .... भाग के गृह प्रवेश? "

(मैया तो अलकावलि से गोधूलि झाड़ने लगी और लाला सुबक-सुबक के रोने लगा।)

यशोदा – "प्यारे लाल! बोल तौ सही।"

(श्रीकृष्ण रोते हुए)

कन्हैया - "दाऊ दादा ने आज बहुत खिजायो मोकू।"

यशोदा – "ऐसो कहा कह दियो दाऊ ने।"

कन्हैया – "ग्वाल-बालन के सामने कह रह्यो, अरे सुबल, श्री दाम, ऋषभ, अर्जुन ....सब ध्यान ते सुनो कन्हैया को इतिहास; एक बार बाबा मोकू मैया के संग पेंठ में लैके गये, बाबा ने कही – बलराम! तोकू जो खिलौना रुचिकर लगै, खरीद ले। मैंने सोची मेरे संग खेलवे वारो कोई नहीं है तो मैंने बाबा ते कन्हैया कू खरीदवे की कह दई। बाबा ने देख्यो दाऊ घर में अकेलौ है याको मन नहीं लगै, एक ते दो है जाएंगे, तो कन्हैया कू खरीद लियौ पेंठ ते। आज यह रहस्य मैंने खोलो। अब भली प्रकार समझ ल्यो लाला बाबा-मैया को नहीं, पेंठ ते खरीदो भयो है।

मैया! पहले तो सखान कू विश्वास नहीं भयो, बोले – दादा! कछू भी कह, बिना प्रमाण के हम यह बात नहीं स्वीकारेंगे। तब दाऊ दादा बोले – भैया! याते बड़ौ कहा प्रमाण होयगो – बाबा-मैया गोरे हैं फिर यह कारो कहाँ ते है गयो।

मैया! अब मोकू सब "पेंठ को कारो" कहके चिढ़ावैं, मेरी खिल्ली उड़ावैं, तारी दे-देके हँसें।

मैं कल ते न गैया चरायवे जाऊँगो, न खेलवे जाऊँगो।

तू भी दादा को पक्ष लेवे और यदि तोकू भी लगै कि मैं पेंठ को खरीदौ माल हूँ, तो जा पेंठ ते मोकू लाई है वहीं छोड़ आ।

आज तक कबहू तेने गोदी में लेके मोकू लाड़ नहीं कियौ, बस दाऊ दादा-दाऊ दादा कू ही बूझै-पूछै। कबहू झूठे कू भी तेने दादा पे क्रोध नहीं कियौ।"

छोटे से लाला के छोटे से मुख ते क्रोध में बड़ी-बड़ी बातन कू सुनके मैया मुसकाई।

(कन्हैया कू छाती लगा के बोली)

यशोदा – "लाला! तेरो दाऊ दादा तो जन्म ते ही धूर्त है। यापे साँच बोलवो तो आवै ही नहीं। मैं इन सब ९ लाख गैयान की शपथ लेके कह रही हूँ, साँची बात तो ये है – मैं तेरी ही मैया हूँ और तू मेरो ही लाला है।"

किन्तु न्याय से सन्तोष नहीं है कन्हैया को। कान्हा तो चाहते हैं किसी भी प्रकार एक बार मैया दाऊ दादा कू चोखी सी डांट लगावै।

यशोदा मैया दाऊ दादा ते अधिक प्रेम करै या कारण दाऊ कू कबहूं नहिं डांटे और रोहिणी मैया को स्नेह कन्हैया के प्रति अधिक है।

श्यामसुन्दर ने विचार कियो व्यर्थ ही मूंड़ पचायौ – यशोदा मैया के समीप; मैया रोहिणी ते कहतो तो अवश्य अब तक डांट पड़ गयी होती।

(अब प्रथम श्रेणी की अदालत में पहुँचे श्रीकृष्ण – मैया रोहिणी के निकट।)

दूर से ही रोते-बिलखते, चिल्लाते हुए पहुँचे - मैया ऽऽऽ! ओ बड़ी मैया ऽऽऽऽ!! रोहिणी मैया ऽऽऽऽऽ!!!

(सब कार्य छोड़ के, रोहिणी मैया दौड़ती भई आयी, छाती पे हाथ धर्‌यो।)

रोहिणी – "लाला! कहा है गयौ।"

कृष्ण – "मैया! आज दाऊ दादा ने यमुना किनारे बहुत खिजायौ मोकू।"

(यमुना किनारे, यही हसनपुर की लीला है।)

रोहिणी – "लाला, तोकू सौ बार समझायो मैंने, यमुना किनारे खेलवे मत जायौ कर। तेरो दाऊ दादा बड़ौ ऊधमी है, यह तोते लड़ै, तोकू खिजावै। या लड़ाई में कोई यमुना में गिर गयौ तौ! "

श्री परमानन्ददास जी के शब्दों में –

देख री रोहिणी मैया कैसे हैं बलदाऊ भैया,
जमुना के तीर मोहे झुझुआ बतायो री॥
सुबल श्री दामा साथ हँस-हँस बूझत बात,
आपु डरापै अरु मोय डरपावै री॥
जहाँ जहाँ बोलैं मोर चित रहत ताही ओर,
भाजो रे भाजो रे भाजो रे भैया,
आपु रहै तरु चढ़ मोहे छाँड़्यो वाही तर,
उछंग सौं लियो लगाय, कंठ सों लियो लपटाय,
वारी री वारी मेरो हियो भर आयो री॥
'परमानन्द' रानी द्विज बुलाय वेद मन्त्र पढ़ाय,
बछिया की पूँछ हाथनि दिवाय री॥

कृष्ण – "बड़ी मैया! यमुना किनारे दादा ने मोते कही – लाला, संभल के रहियो यमुना किनारे झुझुआ (हौआ) रहै। मैंने पूछी – दादा! यह हौआ कहा वस्तु है? तो दादा बोले – कन्हैया! वह बालकन कू पकड़के लै जाय और उनके नाक, कान खा जाय। यदि तू वाके पकड़ में आ गयो तो नेंकहु नहीं छोड़ेगो।

क्योंकि तेरे नाक, कान तो बड़े सुन्दर हैं। मैया, मैं सुनके डर गयौ। दादा ने सुबल, श्रीदामादि सखान कू सिखा-पढ़ा दियो।

वे बार-बार पूछ रहे – दादा! झुझुआ कितनौ बड़ौ होय? कैसो होय? कैसे खावै?

दादा बोले – अरे छोराओ! वाके इतने लम्बे-लम्बे सूंड़ से दांत होंय, तलवार से पैने बाल होंय ....। और मैया, झुझुआ कू हाथ के झाले ते बुलावैं, आजा झुझुआ आजा ....।

दादा ने तो मोकू इतनो डरायो – अरे झुझुआ आ गयौ, झुझुआ आ गयौ ....भाग जाओ, सब भाग जाओ कह के स्वयं तो पेड़ पे चढ़ बैठे; सुबल, श्री दाम कू भी टेर लियो, सब सखा वृक्ष पे जा बैठे। दादा ने कही – या कन्हैया कू नीचे ही छोड़ द्यो। यह बहुत ऊधम करै, आज झुझुआ याकी नाक खावे आवैगो।

बड़ी मैया! तू जानै मैं बारो सो तेरो लाला, मोपे पेड़ पे चढ़वो नहिं आवै। मेरी छाती धक्-धक्, धक्-धक् करवे लग गई। तू हाथ धरके देख अबहू श्वास ठीक सों नहीं आ रही है,

मेरो कलेवर काँप रह्यो है, वाणी लड़खड़ा रही है ....।"

सुनते ही रोहिणी मैया ने कन्हैया कूं लपक के गोदी में ले लियो, अपनी छाती सौं लगा लियो, मैया को हियो भर आयो।

हे विधाता! ये छोरा कितने ऊधमी हैं; मेरे भोरे से, बारे से लाला कू कैसे डरा दियो, अब कहूं भय के मारे लाला बीमार न है जाय।

मैया ने अतिशीघ्र वेदज्ञ विप्र बुलाये, स्वस्ति वाचन करायो। बछिया की पूंछ को झाड़ो दियो और अंक में सुला दियो।

अब संध्या कू दाऊ दादा को जैसे ही सदन में आगमन भयौ। रोहिणी मैया ने खूब डाँटो।

दाऊ दादा समझ गये आज कन्हैया पहले ही वन ते भाग आयो, याको ही करौ धरौ है सब।

दाऊ दादा बद्धवाङ्ग खड़े हैं, डाँट खा रहे हैं और कन्हैया मुख कू हाथ ते ढक के हँस रहे हैं।

हसनपुर ग्वाल-बालों का व्यावहासी क्षेत्र है। गोचारण काल में अनेक खिजाने की, डराने की, हँसाने की लीला यहाँ सम्पन्न हुई।

४/११/२००७ को घटी घटना –

हसनपुर में देखा हजारों यात्रियों ने चमत्कार –

'राधारानी ब्रजयात्रा' होने से यूं तो प्रत्येक वर्ष यात्रा में कोई न कोई अभूत घटना संघटित होती है, यह इसकी अपनी अनूठी पहिचान है। इस वर्ष भी साक्षात् दर्शन किया हजारों यात्रियों ने श्रीराधारानी की कृपा का।

आज हसनपुर में पड़ाव पड़ा हुआ है, दूर-दूर तक यात्रियों के तम्बू हैं, समुचित विद्युत-व्यवस्था है। रात्रि में देखो तो कोई दिव्य लोक मालूम पड़ता है। अखण्ड नाम ध्वनि के साथ सभी ब्रजयात्री अपनी कल की यात्रा के लिए तैयारी में जुटे हैं। प्रबन्धकों द्वारा पता चला कि कल की यात्रा स्थगित करने का विचार है क्योंकि यमुना जी में एकदम १० फुट जल चढ़ गया है, केवल एक नाव है जिससे १५ हजार यात्रियों का पार होना कल सन्ध्या तक भी सम्भवनहीं है। स्थानीय ब्रजवासियों का भी यह कहना था – हसनपुर में एक दिन और विश्राम किया जाय अथवा सेतुमार्ग से यमुना पार की जाय किन्तु सेतुमार्ग में २० कि. मी. का मार्ग बढ़ जाता है अतः वृद्धयात्रियों के लिए यह सम्भवनहीं है। कल की यात्रा हजारों यात्रियों के लिए चिन्ता का विषय बन गई थी। यात्रा के प्रबन्धकगण भी चिन्तित थे यह बात लेकर किन्तु पूज्य बाबा श्री तो कहाँ रुकने वाले हैं। भीषण वर्षा में भी अनेक बार पूज्य बाबा श्री अकेले ही यात्रियों को छोड़कर यात्रा करने चल दिये थे, दैव ही पराभूत हो जाता पूज्य श्री नहीं। प्रातः होते-होते पूज्य बाबा श्री का अबाध गति से यात्रा के लिए निकल देना एवं इधर यमुना का भी तट तोड़ने वाला तीव्र प्रवाह .... । प्रबन्धकों को बहुत शोचनीय स्थिति का सामना करना पड़ रहा था।

"न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गाम्भः स्थ इव द्विपः ॥"

(भा.११/७/२९)

पूज्य बाबा महाराज तो हजारों के लिए जो प्रतिकूल थी उस परिस्थिति में भी आनन्दित थे। संध्याकालीन सत्संग में अपना अटल विचार सुना भी दिया, कल की यात्रा होगी, यमुना के आरोहण-अवरोहण से श्रीराधारानी ब्रजयात्रा स्थगित नहीं होगी। सहज ही निर्णय दे दिया मानो कल होने वाला चमत्कार इन्हें पूर्व ही विदित था। यात्री भी तैयार थे कल के लिए, जब पूज्य बाबा महाराज जाएंगे तो हम सभी जाएंगे। इधर रात्रि में १२ बजे यात्रा समिति के सदस्य वाहनों द्वारा यमुना जी की स्थिति जानने गये। इन्हें नींद कहाँ? देखा कि प्रवाह बराबर बढ़ ही रहा है।

"होइहि सोइ जो राम रचि राखा ॥"

(रा.च.मा.बा.कां.- ५२)

कहकर सो गये ....। प्रातः श्रीराधामानबिहारी लाल की आरती के साथ शंखनाद हुआ, घंटा-घड़ियाल की ध्वनि हुई, जय ध्वनि हुई, श्रीजी की ध्वजा उठाई और पूज्य श्री के संरक्षण में चल पड़ा हजारों यात्रियों का समूह।

आज कीर्तन में भी भाव की विलक्षण तीव्रता थी। प्रत्येक यात्री के मुख से उच्च स्वर में निकल रहा था – युगल नाम संकीर्तन।

राधे कृष्ण राधे कृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे।

राधे श्याम राधे श्याम श्याम श्याम राधे राधे॥

मध्य-मध्य में श्री यमुना महारानी की जय .... श्री यमुना महारानी की जय .... जयघोष हो रहा था।

यात्रियों के कदम बढ़ रहे थे यमुना जी की प्रवाह तीव्रता देखने को। जैसे ही निकट आये, हजारों यात्रियों को कृष्णावतार की घटना साकार हुई।

मघोनि वर्षत्यसकृद् यमानुजा गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला।
भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः॥

(भा. १०/३/५०)

जल केवल ३ फिट ही रह गया था। यमुना जी ने मार्ग दिया इन ब्रजयात्रियों को पार होने का, हजारों यात्री सहज ही यमुना पार आ गये।

श्री यमुना महारानी जू की जय! श्री यमुना महारानी जू की जय!!

अब समझे सब यात्री ओह! यही कारण था पूज्य श्री का प्रतिकूलता में भी आनन्दित होने का।

तुमसौं कहा छिपी करुनामय, सबके अन्तरजामी॥

(सूर-विनयपत्रिका -१९५)

जब यात्रा श्रीराधारानी की तो यात्रियों के सुख-दुःख का ध्यान भी उन्हें!

इससे तो यही समझ में आता है – "भावना में यदि शुद्धि हो तो इष्ट कृपा का अवश्य अनुभव होता है।"

प्रतिवर्ष तो क्या इन महान विभूति के निकट बैठकर देखो तो प्रतिदिन ही चमत्कार दिखाई देते हैं।

२३/१०/२००८ – हसनपुर में पुनः घटी घटना

इस बार भी यात्रियों को हुआ श्रीजी की कृपा का अनुभव। विपत्ति पर कृपा का यह क्रम हर बार ही देखने को मिलता है और मन श्रीसूरदास जी की पंक्तियों को गुनगुना उठता है – **मनसा करि सुमिरत हे जब जब, मिलते तब तब ही** ....(सूरदास जी) इस बार यात्रा में बड़ा विकट संकट आया, हजारों यात्री एक साथ डायरिया से ग्रस्त हो गये। यात्रा समिति के प्रबन्धकों द्वारा तुरन्त ही यात्रियों को हसनपुर, मथुरा, वृन्दावन अस्पतालों में पहुँचाया गया किन्तु उचित उपचार के बाद भी महामारी पर लगाम न लग सकी। २३/१०/२००८ को जब यात्रा हसनपुर पहुँची; संध्याकालीन सत्संग से पूर्व

प्रबन्धक व समिति सदस्यों ने पूज्य बाबा श्री से प्रार्थना की – "इस बार यात्रा का यही विसर्जन कर दिया जाय तो उचित रहेगा अन्यथा यह अनियंत्रित महामारी जिस वेग से बढ़ रही है, ऐसा लगता है २-५ दिन में तो और भी उग्र रूप लेकर सबका काल बन जाएगी।" कुछ क्षण मूक रहकर पूज्य बाबा श्री ने कहा – "क्या भगवन्नाम पर भरोसा नहीं है? यात्रा में यह कोई प्रथम संकट तो आया नहीं और फिर जब-जब बाधायें आयीं, श्रीजी ने रक्षा की। सब लोग भगवन्नाम लो।"

कुछ समय बाद संध्याकालीन सत्संग आरम्भ हुआ। आज अन्य कुछ गाने-कहने के पूर्व पूज्य बाबा श्री ने श्रीव्यास जी महाराज का एक विलक्षण पद गाया –

आधो नाम तारिहैं श्री राधा ।
रा के कहे रोग सब मिटिहैं, धा के कहे मिटै सब बाधा ॥
जुग अक्षर की महिमा को कहै, गावत वेद पुराण अगाधा ।
'अली किशोरी' नाम रटत नित, लागी रहत समाधा ॥

लगभग एक घण्टा यह पदगान हुआ, सम्पूर्ण वातावरण राधानाममय हो गया।

बस फिर क्या था, अगले दिन ही सूचना प्राप्त हुई – "डायरिया नियन्त्रित हो गया है, यात्री स्वस्थ होकर अस्पताल से लौट रहे हैं।" यह साक्षात् श्रीराधारानी की कृपा का अनुभव हजारों यात्रियों ने किया। प्रतिवर्ष प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती अवश्य हैं परन्तु श्रीराधारानी की यात्रा होने से वे सब विद्युतवत् चमक कर गायब हो जाती हैं।

होडल से हसनपुर की दूरी भिड़ूकी होते हुए १५.६ कि. मी. है। खाम्बी-लीखी होते हुए १८.७ कि.मी. है।

लोहरवारी

लोहरा वारा- ये दोनों ही शब्द एक-दूसरे के पर्याय हैं। ब्रजभाषा में लोहरा का अर्थ है छोटा एवं वारा का अर्थ भी छोटे से है। यशोदा मैया तो कन्हैया को अधिकांश "मेरा वारा" कहकर ही पुकारती है। दाऊ भैया भी कभी कटिपट, कभी नटखट, कभी मर्कट और फिर प्यार से "वारा भैया" (छोटा भैया) कहकर गोद में लिटा लेते हैं। सबका स्नेहांचल बिछा रहता है इसके लिए, कन्हैया के प्रति इतना वात्सल्य है सबका । सम्पूर्ण ब्रज इस वारे कन्हैया के लिए माता के वात्सल्य से भरा हुआ है। यह केवल यशोदोत्सङ्गलालित नहीं है अपितु आश्चर्य तो यह कि ब्रजौकसोत्सङ्गलालित हैं। ये नन्हे मुन्ने जो इससे भी वय में कम हैं, मरंद, मणिबन्ध, देवप्रस्थ..... जब कन्हैया को देखते हैं तो स्वयं को बहुत बड़ा समझने लगते हैं। कोई अपने गोद में वारे कन्हैया का मस्तक रखकर उसे दबाता है। कोई अपनी कटि फेंट से व्यजन डुलाने लगता है फिर कोई तोतली वाणी में – वाला भैया, तू श्क्लांत हो गया है न, ला तेले चलन दबा दूँ।

छोटी-२ अंगुलिका चरणों को मात्र सहला पाती है और कन्हैया इस दो-दो तीन-तीन वर्ष के नन्हे सखाओं का स्नेह देखकर ही विश्रम हो जाता है। अपने से बड़े के लिए तो यह वारा (छोटा) है ही, अपने से छोटों के लिए भी यह वारा (छोटा) ही है।

इन ब्रज पुरवासिनियों को तो "वारा कन्हैया" कहने का इतना अभ्यास हो गया है कि मैया को उराहना देने भी जाती है तो वहाँ भी –

वारे कन्हैया ने ऐसा किया!

वारे कन्हैया ने वत्स खोल दिए!!

वारे कन्हैया ने मांट लुढ़का दिए!!!

वारे कन्हैया ने चूनर फाड़ दी!!!!

इनके उलहाने में भी स्नेह झरता है।

यह भूमि इसी वात्सल्यसिक्त लीलाओं की है।

श्रीगोविंद स्वामी की वाणी में –

बरजि-बरजि सुत अपनो री वारौं ।
सदा विग्रह ग्रह काज करें क्यों चोर चपल चतुर अति भारो ...

एक गोपी – मैया! "देखे में यह वारो दीखै, काम करत अति भारो" ३ बिलांद का यह नील बालक चोरी, चापल्य, चातुर्य सबमें पारंगत है, तू इसे बरजती (डांटती) नहीं?

तूँगी – अरी यशोदा, लगता है तू ही इसकी गुरु है, ये पढ़ाई तू ही इसे पढ़ा रही है।

पीवरी – हाँ तू ठीक कहती है, जीजी! यशोदा ही कन्हैया के कठुला, कडूला ..... आभूषण धारण करके भेजती है – जा लाला अब गोपियों के घर के अँधेरे को चीरते हुए तू अपने कार्य में सिद्ध होगा।

देख तो सही, कैसा बैठा मस्तक नत करके, जैसे हमारी भाषा इसे समझ ही नहीं आ रही है, बेचारा कुछ जानता ही नहीं है। चोरी का तो आज तक नाम ही नहीं सुना इसने।

मैया यह तेरा लोहरा वारा कन्हैया पृथ्वी पर काला भवन बन गया है। अतिशीघ्र अपने कारनामों से तेरा यश चहुँ ओर फैलाएगा।

यह सुनकर मैया को हंसी आ गई। मैया ने मुख को अंचल से ढक लिया।

यदि गोपियों के सामने हँसती तो गोपियाँ और दो-चार सुनातीं।

भागवतकार ने भी गाई लोहरवारी की लीला –

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥

(भा.१०/८/३०)

यशोदा – तुम दूध-दही को ऊँचे छीके पर क्यों नहीं रखती हो?

गोपीजन – अरी यशोदे! हमारे तो ऊँचे छीके पर माट मटका भी खाली हो गये।

यशोदा – वह कैसे?

गोपीजन – इस वारे कन्हैया के छोटे-२ कर ही तो छींके तक नहीं पहुँच पाते हैं किन्तु यह स्वयं तो पहुँच जाता है पीढ़ा पर पीढ़ा रखकर तो कभी ऊखल पर पीढ़ा रखकर फिर भी दूर रह गया तो विशाल, सुभद्र के स्कन्ध पर खड़ा हो जाता है तब तो यह मटकी से भी उन्नत हो जाता है। जब कभी इतना श्रम करने का मन नहीं होता तो एक दूसरा उपाय भी है इसके सम्मुख।

यशोदा – वह क्या?

गोपीजन – १०-२० हाथ का बांस तो इसके सुहृत सखा सदैव रखते हैं, समय-२ पर वह सभी प्रकार के असुर संहार में उपयोगी होता है, कभी कंस से प्रेरित असुरों को मारने में तो कभी उदर से प्रेरित क्षुधासुर के संहार में।

धरती सूंघा है धरती सूंघा। दूर से ही इसे गंध आ जाती है, किस माट में क्या है?

यशोदा – एक उपाय और है।

गोपीजन – मैया! शीघ्र कह दे।

यशोदा – कन्हैया अँधेरे से बहुत डरता है, तुम अपने माट मटका भीतर अंधेरी कोठरी में रख दिया करो।

गोपीजन – मैया, तूने इसे आपाद मस्तक जो मणिमय आभूषण धारण करा रखे हैं, इनकी कान्ति से कहीं अन्धेरा रह सकता है भला?

जहाँ पहुँच जाता है स्थान जगमगा जाता है।

निर्जीव धातु में प्रकाश भला कहाँ से आया?

ये तो कन्हैया के ही श्री अंग की कान्ति है जो आभूषणों को भी प्रकाशित करती है।

'परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्'

(भा. ३/२/१२)

सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥

(रा.च.मा.बा.का ११७)

वह सबका प्रकाशक उसका प्रकाशक कोई नहीं ..

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति तोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

(कठोपनिषद्२/२/१५)

मैया! इस ब्रजमयंक के रहते ब्रज में अन्धेरा कहाँ रह सकता है?

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः।
द्विजालिकुलसंनादस्तबका वनराजयः॥

(भा. १०/३/३)

तू भूल गई, जब यह मध्य रात्रि को जन्मा था, उस घोर रात्रि के अवसर पर भी ब्रज में ऐसा प्रकाश हुआ कि सरोजों को भ्रम हो गया यह रात्रि है अथवा दिन! इस भ्रम में बेचारे मध्य रात्रि को ही खिल उठे।

बरसाना से लोहरवारी की दूरी २० कि.मी. है।

भड़ोखर

ब्रजेश नन्दराय जी की सबसे बड़ी खिरक (गोशाला) भड़ोखर में थी। गोदुग्ध से भांड (मिट्टी के पात्र) यहाँ भरे जाते थे। इस ग्राम का शास्त्रीय नाम 'भांडोखर' है। चहुँ ओर हरे-भरे वृक्षों से घिरा रमणीक 'भड़ोखर कुण्ड' ग्राम की शोभा का वर्धन करता है। यहाँ एक

प्राचीन रासमण्डल भी है, जो इस बात का रहस्योद्घाटन करता है कि ब्रजाङ्गनाओं सहित रासेश्वरी और रासेश्वर की रासलीला का भी यह क्षेत्र रहा है। गाँव की ओर जाते समय सघन वृक्षावली दिखायी देती है, ग्रामवासियों के अनुसार पूर्वकाल में यहाँ कदम्ब और पीलू के वृक्ष ही अधिक थे किन्तु वर्तमान में तो कीकरों का झुण्ड ही दिखायी देता है। प्राचीन मन्दिर की दुर्दशा होने पर उसकी जगह राधामाधव के नूतन मन्दिर का निर्माण किया गया है। ग्रामवासियों के अनुसार सौ वर्ष पूर्व यहाँ 'भगोरी वाले बाबा' नामक एक सिद्ध सन्त ने निवास किया। उन महापुरुष का इस गाँव के जनमानस पर ऐसा अमिट प्रभाव अंकित हुआ कि तब से भड़ोखर की मान्यता उन्हीं के नाम से सर्वव्यापी है।

बरसाना से भड़ोखर की दूरी १८.२ कि.मी. है।

ऐंच

चाचा वृन्दावन दास जी के अनुसार –

ऊँची ऐंच जहाँ बलि जमुना ऐंची प्रगट सुचिन्ह बताऊँ ।

(प्राचीन ब्रज-परिक्रमा)

श्री दाऊ जी महाराज ने यमुना जी को यहाँ खींचा अतः ऐंच नाम हुआ। कुछ लोगों की मान्यता है कि ब्रज में यमुना का प्रथम प्रवेश ऐंच में हुआ है।

हसनपुर से ऐंच की दूरी ११.१ कि.मी. एवं होडल से ऐंच की दूरी २२.३कि.मी. है ।

लालपुर

विधाता ने इन ब्रजस्त्रियों के आँचर में न जाने कितना वात्सल्य भर दिया है।

पूतना, शकट, तृणावर्त, वत्स, बक, अघ, धेनुक, प्रलम्ब, शंखचूड़, अरिष्ट, केशी, व्योम ....इतने असुर इस कन्हैया ने मार दिये तो भी कन्हैया इन्हें सद्योजात बालक ही दिखाई देता है।

हजार हाथियों के बल वाले कुवलयापीड़ को जिसने मार दिया, चाणूर-मुष्टिक जैसे वज्रमय मल्लों को मृत्यु के घाट उतार दिया, इतना ही नहीं कंस को भी पछाड़ दिया। जिस समय कन्हैया ने केश पकड़ कंस को पछाड़ा, नन्द बाबा ने यह सब देखा था किन्तु वात्सल्य में भीगा उनका हृदय आँखों देखी बात भी स्वीकार नहीं कर रहा था।

उद्धव जी जब ब्रज आये तो नन्द बाबा ने कहा –

"दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ।"

(भा. १०/४६/१७)

"कंस को मेरे कन्हैया ने नहीं, उसके पापों ने मार दिया। कंस के पाप ने कंस को समाप्त किया है, मेरा सुकुमार कन्हैया भला कैसे मारता उसे? "

इन्हें तो प्रत्यक्ष भी सत्य नहीं लगता, बस इनका वात्सल्य जो कह दे, वही सत्य है।

केवल गोपियों की ही बात नहीं, ग्वाल-बालों में भी – कन्हैया से वयस में छोटे होने पर भी कन्हैया के प्रति अपार वात्सल्य है। वन में चलते-चलते यदि कन्हैया को स्वेद आ जाय तो ये छोटे-छोटे ग्वाल उसे स्कन्ध पर बिठाने को तैयार हो जाते हैं, इसका क्या परिणाम होगा, इस बात की उन्हें चिन्ता कहाँ?

न केवल गोपियों का लाड़ला लाल है यह, प्रत्युत सम्पूर्ण ब्रज का लाड़ला है।

लाड़ में बालक का नामापभ्रंश हो जाना स्वाभाविक है। दिन में न जाने कितनी बार कन्हैया का नामकरण होता, गणना से बाहर हो गये इसके नाम।

श्री नागरीदास जी के भाव –

ब्रज-सम और कोउ नहिं धाम ।
या ब्रज में परमेसुरहू के, सुधरे सुन्दर नाम ॥
कृष्ण नाम यह सुन्यो गर्ग ते, कान्ह कान्ह कहि बोलै!
बालकेलि रस मगन भये सब, आनँदसिन्धु कलोलै ॥
जसुदानंदन, दामोदर, नवनीत प्रिय, दधिचोर ।
चीरचोर, चितचोर, चिकिनियाँ चातुर नवलकिसोर ॥
राधा-चंद-चकोर, साँवरौ, गोकुलचंद, दधिदानी ।
श्री बृंदाबनचंद, चतुरचित, प्रेम-रूप-अभिमानी ॥
राधारमन, सु राधाबल्लभ, राधाकान्त, रसाल ।
बल्लभ-सुत, गोपीजन, बल्लभ गिरिवर-धर छबिजाल ॥
रासबिहारी, रसिकबिहारी, कुञ्जबिहारी स्याम ।
बिपिनबिहारी, बंक बिहारी, अटल बिहारऽभिराम ॥
छैलबिहारी, लालबिहारी, बनवारी, रसकंद ।
गोपीनाथ, मदनमोहन, पुनि बंसीधर गोविंद ॥
ब्रजलोचन, ब्रजरमन, मनोहर, ब्रज उत्सव, ब्रजनाथ ।
ब्रजजीवन, ब्रजबल्लभ सबके, ब्रजकिसोर, सुभगाथ ॥
ब्रजमोहन, ब्रजभूषन, सोहन, ब्रजनायक, ब्रजचंद ।

ब्रजनागर, ब्रजछैल, छबीले, ब्रजवर, श्रीनँदनंद ॥
ब्रज आनँद, ब्रजदूलह नितहीं, अति सुन्दर ब्रजलाल ।
ब्रज गउवन के पाछे आछे, सोहत ब्रजगोपाल ॥
ब्रज सम्बन्धी नाम लेत ये, ब्रज की लीला गावै ।
नागरिदासहि मुरलीवारो, ब्रज को ठाकुर भावै ॥

वात्सल्य में भीगी इन गोपियों को नाम भी लेने का अवसर कहाँ, ये तो कन्हैया को लाल, ललन कहकर ही बुलाती हैं।

लाल की शोभा कहत न आवे ।
संध्या समय खिरक मुख ठाढ़े, अपनी गाय दुहावे ॥
लाल पाग सिर ऊपर सोहे, मोर चंद छबि पावे ।
मोसों कह्यो सुन जा तू बातें, छतना बूँद चुवावे ॥
लटकत चलत जबहि घर अपने, युवतिन बोल सुनावे ।
श्री विट्ठल गिरधरन लाल छबि, यशुमति के जिय भावे ॥

सखी, अवर्णनीय है लाल की शोभा!

संध्या की बेला है, खिरक द्वार पर खड़ा होकर गो-दोहन कर रहा है। देख तो, इसके मस्तक पर लाल पाग की शोभा, मुख-मयंक पर मयूर पिच्छ कैसा लहरा रहा है। मुझसे कहता है – 'थोड़ा इधर आकर मेरी बात तो सुन जा।' मैं निकटवर्तिनी हुई तो छत्र (छाता) टेढ़ा कर जल गिराने लगा मेरे ऊपर।

मार्ग में कहीं भी मिल जाय तो बिना बोले नहीं निकलता। मार्ग चलते बोलने की आदत है इसे। इतना चंचल, इतना नटखट तो भी यशोदा का लाड़ला है।

सखी – "क्या तेरा लाड़ला नहीं है? "

गोपी – "हाँ, है तो, परन्तु .....मैं तो इसे झड़क भी देती हूँ।

एक दिन तो, ढिठाई की सीमा भी पार कर दी इसने।"

गोपी वचन –

मोसों क्यों बोले रे नंद के लाल तेरो कहा लिये जात ।
छाँड़ दे अँचल होत है गहरु जानत हो ऐसी बाल ॥
वन ते आवत कमल फिरावत, ता पर गावत तान रसाल ।
'धोंधी' के प्रभु हाथ दूर राखो, टूटेगी मोतिन माल ॥

"लाल! हम तुम्हारा क्या छीनकर ले जा रहीं हैं, पनघट जाती हैं तो भी तुम बोलते हो, दधि-विक्रय को जाती हैं तब भी बोलते, खिरक में गो-दोहन को जाती हैं, उस समय भी बोलने आ जाते हो।

ऐसी कैसी बोलने की आदत!

अब मेरा आँचल छोड़ो। मुझे ऐसी-वैसी सरला बाला न समझ लेना। छोड़ो मेरा आँचल, देखते नहीं कितना विलम्ब हो गया है मुझे। तुम्हें क्या कार्य, वन से कमल घुमाते, तान छेड़ते आ जाते हो।

अपना हाथ दूर रखो, मेरी बहुमूल्य मुक्ता-माल यदि टूट गई तो .... ।"

इनकी परस्पर की यह रार-तकरार भी प्रेम भरी है।

सच तो यह है कि कन्हैया की इस प्रकार की चलन-बोलन, छेड़-छाड़ उनके सुख के लिए है। ये घर में जल के भरे मांट लुढ़का देती हैं और पानी के मिस पनघट पर आ जाती हैं। मार्ग में कन्हैया निकट से निकल जाय, न बोले, न आँचल पकड़े, छेड़-छाड़ से इनका अभिवादन न करे तो इन्हें अच्छा नहीं लगता।

श्री परमानन्ददास जी की वाणी में –

तिहारी बात मोहि भावति लाल ।
बार-बार जसोमति के भवने, यह सुननि हौं आवत लाल ॥
पार-परोसनि अनख मरति हैं और कछू लगावति लाल ।
ताकी साखि विधाता जाने, जिहि लालच उठि धावति लाल ॥
दधि-मंथन अरु गृह कौ कारज, तिहारे प्रेम बिसरावति लाल ।
'परमानन्द' प्रभु कुँवर भाँवतो, तुम देखे सचु पावति लाल ॥

लाल! तेरी ये छेड़-छाड़ भरी बातें मन को बहुत भाती हैं। यही तो एक कारण है जो बार-बार मैं यशुदा के भवन में आती हूँ, पार-परौसिनें तो अनखनाती (खीजती) हैं, अनेक झूठी बातें भी लगाती हैं किन्तु मैं जिस लोभ (कृष्ण दरस, परस, वार्ता) से यहाँ आती हूँ, इसका साक्षी तो विधाता ही है।

लाल, तेरे प्रेम में दधि-मंथनादि गृह के सभी कार्य भूल जाते हैं मुझे। जब तक तुझे देख नहीं लेती हूँ, मन को किसी भी तरह धैर्य नहीं दे पाती हूँ।

लाल-ललन शब्दों से जुड़ी हुई यहाँ की गाथा ब्रजपुरवासिनियों के प्रेम को प्रकट करती है।

ललना –

ललना तुम मेरे मन अति बसों सुन्दर चतुर सुजान ललना ॥
कर गहि मोहन मुरलिका नीके सुनावो तान ललना ॥
मोर मुकुट शोभा बनी सुन्दर तिलक सुभाल ।
मुख पर अलकावल बिछुरी मनहु कमल अलिमाल ॥
अधर दशन वर नासिका ग्रीवा चिबुक कपोल ।
पीताम्बर और क्षुद्र घंटिका लाल काछनी डोल ॥
नख सिख अंग वरनो कहा अंग अंग रूप अतोल ।
पटतर को कोऊ नहीं अति मीठे मृदु बोल ॥
एक दिना सेनन मिले नवल कुँवर ब्रजराज ।
गृह ते आवन नां बन्यो भई सबे कुल लाज ॥
गृह ते गोरस मिस चली, लाज छांड़ कुल ऐन ।
वे मुसकनि हृदय बसी अति अनियारे नैंन ॥
कहा जाने तुम कहा किये गृह अँगना न सुहाय ।
बिनु देखे नागर प्यारो युग समान पल जाय ॥
सकल लोक मोहि बरज ही पचिहारे समुझाय ।
नहिं भावै मोहिं कुल कथा मोहिं तिहारी चाह ॥
ग्वालिन पर गिरिधर रीझे लीला कही न जाय ।
'गोपालदास' प्रभु लाल रंगीलो हँस लीनी उर लाय ॥

सौंख से आकर बसे ग्रामीण लालपुर में अब निवास करते हैं। यहाँ एक प्राचीन तालाब, कूप एवं बिहारी जी और हुनमान जी के मन्दिर स्थित हैं । पूर्व में यहाँ सघन वन था। उसी सघन वन में रबर के वृक्ष भी हुआ करते थे।

होडल से लालपुर की दूरी ६.५ कि.मी. है।

पखौदना

कौन नहीं जानता कि कन्हैया पशुपाल है।

चलसि यद्व्रजाच्चारयन् पशून्नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥

(भा. १०/३१/११)

कमल से भी सुकोमल चरण युगल प्रातः गायों के पीछे-पीछे दौड़ते हैं तो मार्ग में कुश, कंटक और कंकड़ अवश्य चुभते होंगे, यही सोचकर इन गोपियों का मन व्यथित है।

श्री राधा कृष्ण मन्दिर पखोदना

मैया का वात्सल्य तो कार्तिक शुक्ल अष्टमी को भी कहाँ अनुमति दे रहा था गोचारण की किन्तु बालक का हठ और फिर बाबा भी चाहते हैं कि बाल्यकाल से ही स्वधर्म में रूचि हो जानी चाहिए बालकों की।

अतः गोचारण का तिलक हो ही गया।

वन में कंकड़, काँटे और धूप के अतिरिक्त है ही क्या।

लाला का कोमल सा वदनाम्बुज मेरी गरम श्वास से ही कुम्हला जाता है, कैसे सहेगा आतप का ताप! कभी छत्र, पादुका धारण करने को कहती भी हूँ तो गोपालनधर्म सिखाने लगता है।

गोपालनं स्वधर्म्मो नस्तास्तु निश्छत्र-पादुकाः।
यथा गावस्तथा गोपास्तर्हि धर्म्मः सुनिर्म्मलः॥
धर्मादायुर्यशो वृद्धिर्धर्म्मो रक्षति रक्षितः।
स कथं त्यज्यते मातर्भीषु धर्म्मोऽस्ति रक्षिता॥

(गोविन्द लीलामृत पंचम सर्ग – २८, २९)

जो वन जानहि चहौ तुम, दऊँ मै छत्र धराये।
लेहु पहर पग पादुका, तब मोहिं धीरज आय॥

कन्हैया –

स्वधर्म हमारौ है यही, गोधन सेवा हम करें।
उनके छत्र न पादुका, तो हम कहौ कैसे धरें।

गोधन पीछे गोप है, आगे उनहिं धरावो ।
देव उघारे तन फिरैं, तो काहे दास सजावो ॥

न छत्र धारण करता है, न पादुका, क्योंकि ये गायें भी तो बिना पादत्राण और बिना छत्र के चलती हैं। यदि सब गायें पादुका पहिनें तो यह भी पहनेगा।

इसे कौन समझाये कि गाय पादुका नहीं पहनती हैं।

मिल गई स्वीकृति और आद्य पौगंड में ही बन गया (भा.१०/२१/२) अब स्वयं तो पशुपाल बना ही, अपने साथ सहस्त्रों गोप बालकों को पशुपाल बना दिया। अब प्रतिदिन प्रातः पशुपालों का टोल ब्रज से वन को निकलता है, "सहपशुपाल" सहस्रशः ग्वाल-बालों सहित वन गोचारण करते हुए श्यामसुन्दर ने वंशी बजाई।

टप्पल से पखोदना की दूरी २०.३ कि.मी. है।

मारव

मारव का मूल नाम मार्कण्डेय नगर है, महान् तपस्वी मार्कण्डेय ऋषि ने यहाँ तप किया। पुराणतिलक श्रीमद्भागवत की इति श्री इन्हीं महर्षि के वृत्त से हुई। अद्भुत, अभूत चमत्कृति वैशिष्ट्य-युक्त आपका जीवन रहा, जिसे काल के दुर्निवार द्वन्द जरा-मरण भी त्रस्त नहीं कर पाये, असमय में प्रलय दर्शन किया। श्रीमद्भागवत में वर्णन प्राप्त होता है कि शौनक जी ने जिज्ञासा की (महाभाग सूत जी से) – "इस कल्प में तो कोई प्रलय हुई ही नहीं तब मार्कण्डेय जी को प्रलय दर्शन कैसे हुआ? "

श्री सूत जी ने वर्णन किया – "मृकण्ड ऋषि पुत्र श्री मार्कण्डेय जी ने विधिवत् वेदाध्ययन कर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का व्रत धारण किया।

अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन् सन्ध्ययोर्हरिम् ॥

(भा. १२/८/९)

प्रातः-सायं दोनों समय अग्निहोत्र, सूर्योपासना, गुरु वन्दना, विप्र-पूजन, मानसी पूजा, आत्मस्वरूप की भावना द्वारा भगवदाराधन में ही कालक्षेप करते।"

मारव ग्राम में आज भी सूर्यमन्दिर, सूर्यकुण्ड दर्शनीय है। सूर्यमन्दिर, सूर्यकुण्ड का इतिहास है – "यहाँ मार्कण्डेय जी द्वारा दीर्घकाल तक सूर्योपस्थान, सूर्य-पूजा हुई।"

ग्रामीणों को ही इन सब स्थलों की लीला का ज्ञान नहीं है, अन्य को तो क्या होगा।

दीर्घकाल पर्यन्त ऋषि के तप का यह क्रम यहाँ चलता रहा।

"आराधयन् हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥"

(भा.१२/८/११)

६ मन्वन्तर (१ अरब ८० करोड़ वर्ष) व्यतीत हो गये भगवद्ध्यान में। मरणयोग का अतिक्रमण कर सुदुर्जय मृत्युजयी हो गये। यह मृत्यु-जय देखकर विधि, शिव, अन्यान्य देव, नर-पितर सब विस्मित हुए।

भगवदाराधन वह शक्ति है जिसके द्वारा मृत्यु आदि अटल योग भी टल जाते हैं।

इन्द्र ने सदल-बल कामदेव को भेजा। योग में भोग बहुत बड़ा विघ्न है।

कहावत है –

"तपेश्वरी सो राजेश्वरी और राजेश्वरी सो नरकेश्वरी ।"

तप से वैभव आया, राजा बन गये और राजा बनकर भोग आया, नरक में चले गये।

कामदेव ने कामोद्दीपक पंचशर का प्रयोग किया।

मदनोन्मादनौ चैव मोहनः शोषणस्तथा ।
संदीपनः समाख्याताः पंचबाणा इमे स्मृताः ॥

(अमर कोष १/१/२६)

मदन – 'रूप मद, यौवन मद उत्पन्न करने वाला।'

उन्माद – 'पागलपन उत्पन्न करने वाला।'

मोहन – 'मोह उत्पन्न कर चित्त विकृत करने वाला।'

शोषण – ब्रह्म धर्म "सरसता" को नष्ट कर वृत्तियों को सुखा देने वाला।

संदीपन (तापन) – ताप उत्पन्न करने वाला।

पंचशर के पंचसायक (शर का अग्रिम स्वरूप) –

अरविन्दं अशोकं च चूतं च नवमल्लिका ।
नीलोत्पलं च पंचैते पंचबाणस्य सायकाः ॥

(अमर कोष १/१/२६)

कमल, अशोक पुष्प, आम्र मंजरी, बेला, नीलकमल।

काम के पंचसायक युत पंचशर का प्रहार व्यर्थ ही रहा, ऋषि के तपोबल से धर्षित हो सदल-बल भाग खड़ा हुआ।

काम, क्रोध का क्या साहस जो भगवद्भक्त के हृदय में प्रवेश कर सके।

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः ।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥

(भा.११/२/५०)

काम, काम सम्बन्धी कर्म व काम का बीज भी प्रवेश नहीं कर सकता उत्तम भक्त के हृदय में।

यदि भक्तापराध किया तो फिर ये ऐसे आ जाएंगे कि आजन्म साधन के बाद भी काम-क्रोध वृत्तियों से निवृत्त न हो सकोगे।

मृत्यु-जय के पश्चात् महर्षि का काम-जय दूसरा महान् आश्चर्य बना विधि-शिवादि के लिए।

इस बार स्वयं नर-नारायण महर्षि के निकट पहुँचे। मार्कण्डेय जी ने प्रभु से माया दर्शन (प्रलय-दर्शन) की इच्छा की। कुछ समय बाद प्रलयकाल उपस्थित हुआ, मार्कण्डेय जी देखते हैं कि प्रलय का समुद्र बढ़ता आ रहा है, देखते-देखते उस भीषण जल प्रवाह में महर्षि का आश्रम बह गया, अब तो वे प्रलयकालीन जल में प्राण रक्षा हेतु तैरने लगे, तपोबल से लाखों-करोड़ों वर्ष तक तैरते रहे, किन्तु प्रलयान्त न देख घबड़ा गये, तब तक समुद्र में एक विशाल वट वृक्ष दिखाई पड़ा, ईशान कोण की ओर उसकी शाखा के एक विशाल पत्र पर नन्हा सा शिशु खेल रहा है। जहाँ संसार का अस्तित्व भी शेष न रहा, इस प्रलयरात्रि में सूर्य-चन्द्र भी न रहे; यह नीलमणि बालक ....!!! यह बालक ....कहाँ से आया? ऋषि विस्मयान्वित हुए।

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तं ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि ॥

(श्रीबिल्वमंगल कृत गोविन्द दामोदर स्तोत्र-१)

चरण का दक्षिणाङ्गुष्ठ चूसते हुए विशाल चंचल नेत्रों से इतस्ततः देखता है, क्षण भर में ही उस मनहर शिशु के दिव्य श्री अंग से निकलती नील द्युति ने प्रलयान्धकार को चीर दिग्दिगन्त आलोकित कर दिया।

यह उत्तानशायी बालमुकुन्द स्वयं अखिल ब्रह्माण्डाधिपति भगवान् हैं, ऐसा विचार कर मार्कण्डेय ऋषि ने प्रणाम किया उन्हें। बालक को गोद में लेने को जैसे ही आगे बढ़े, उसकी श्वास के साथ भीतर उदर में जा पहुँचे।

आश्चर्य...! महान आश्चर्य ...!! उदर के अन्दर भी सम्पूर्ण सृष्टि का दर्शन किया – वही हिमगिरि.., वही पुष्पभद्रा नदी..., वही ऋषि का आश्रम.....। प्रभु की इस अतिशय विस्तीर्ण, दुरत्यय माया का दर्शन कर ऋषि बालमुकुन्द की श्वास के साथ उदर के बाहर आये तो देखा वही प्रलयकाल है, वही प्रलयजल है, ऋषि उस प्रलय के पानी में गिर पड़े, पुनः शिशु की ओर बढ़े तो इस बार वह अदृश्य ही हो गया। साथ ही वट वृक्ष, प्रलय जल, ...सब कुछ अदृश्य हो गया, स्वयं को आश्रम में बैठे हुए देख मुनि बड़े विस्मित थे।

यह विलक्षण है प्रभु की माया! करोड़ों वर्ष तक मैं जल में तैरता रहा नन्हे से शिशु के उदर में, सब संसार देखा, बाहर आने पर समुद्र देखा और अब सब अदृश्य हो गया।

महर्षि भगवान् की माया का आनन्त्य विचार करते हुए भगवद्ध्यान में डूब गये। पार्वती जी की प्रार्थना पर स्वयं भगवान् भोलेनाथ मार्कण्डेय जी से सत्संग करने आये। भगवान् शिव ने मार्कण्डेय जी की वन्दना की।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥
श्रवणाद् दर्शनाद् वापि महापातकिनोऽपि वः ।
शुध्येरन्नन्त्यजाश्चापि किमु सम्भाषणादिभिः ॥

(भा.१२/१०/२३, २५)

भगवान् शंकर कह रहे हैं – "हे ऋषिश्रेष्ठ! केवल जलमय तीर्थ, तीर्थ नहीं है, जड़ विग्रह देवता नहीं होते। सबसे श्रेष्ठ तीर्थ व देव तो आप जैसे सन्त ही हैं, जिनके दर्शन मात्र से शुद्धि हो जाती है, तीर्थों का तो बहुत समय तक किया गया सेवन भी वैसी पवित्रता प्रदान नहीं कर सकता। महापातकी, अन्त्यज भी आप जैसे महात्माओं के चरित्र श्रवण व दर्शन मात्र से शुद्ध हो जाते हैं, फिर यदि सम्भाषण, सहवास आदि का अवसर मिलने पर शुद्ध हो जाएँ तो यह कोई विशेष विस्मित कर देने वाली बात नहीं है। अब आप कोई वरदान माँग लें।"

मार्कण्डेय जी – "हे नाथ! आप स्वयं ईश्वर होकर मुझ क्षुद्र जीव की स्तुति कर रहे हैं, समझ में नहीं आता! जहाँ तक रही वरदान की बात तो –

भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥

(भा. १२/१०/३४)

भगवान् में, भगवद्परायण भक्तों में व आपमें मेरी अखण्ड भक्ति सर्वदा बनी रहे।"

भगवान् शिव वर देकर चले गये। महाप्रलय का दर्शन कर ऋषि समझ गये थे –

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥

(भा. १/३/२८)

सबके मूल तो श्रीकृष्ण ही हैं अतः उनकी भक्ति करना ही सर्वोत्तम है, ब्रज में (माड़व में) यहाँ आये। शिवजी का उन्हें वरदान तो था ही कि तुम्हें कृष्णभक्ति मिलेगी, भक्तों की भक्ति मिलेगी।

ब्रजवासियों से बड़ा भक्त कौन है! ब्रज, ब्रजराज, ब्रजवासियों की भक्ति प्राप्त हुई। मार्कण्डेय ऋषि का निवास होने से, उनकी तपोभूमि होने से ग्राम का नाम हुआ - मार्कण्डेय नगर, जिसे ब्रजवासी माड़व कहते हैं।

टप्पल से मारव की दूरी ११.५ कि.मी. है।

मानागढ़ी

विलक्षण लीलाओं को संजोये यह भूमि परम पुण्यप्रद है। **मानागढ़ी** नाम होने के २ कारण हैं –

प्रथम कारण – ब्रज की अन्तिम सीमा (हद) मानने से इसका नाम मानागढ़ी हुआ।

द्वितीय कारण – श्रीराधारानी ने विचित्र मान किया यहाँ।

शास्त्राधार पर तो यहाँ किसी समय कदम्ब वृक्षों का सघन वन भी था। सम्प्रति मानागढ़ी में कदम्बखण्डी है। ब्रज में पहले अनेकों कदम्बखण्डी थीं, देखते-देखते ब्रजवासियों द्वारा ही वे नष्ट कर दी गयीं, जबकि लीलाभूमि की दृष्टि से, पर्यावरण की दृष्टि से सर्वविध आवश्यक है – **वृक्ष रक्षा।** स्थानीय ब्रजवासियों को लीलाभूमि **'ब्रज'** मात्र दर्शनीय न होकर उपासनीय है, यहाँ के वन, पर्वत, नदी, द्रुम, खग-मृग आदि ये सभी भगवद्स्वरूप हैं, तभी तो सबने इसका प्रशस्तिगान किया। भक्ति प्रवर्तक श्रीमदाचार्य चरणों ने तो जहाँ एक ओर इसका गान किया वहाँ इसका सम्वर्धन-संरक्षण कर सेवा-साधना का पल्लवन किया। स्थानीय ब्रजवासियों का कर्तव्य है – ब्रज की वन श्री की समृद्धि को चिरस्थिर करने हेतु वन संरक्षण पर पूर्ण ध्यान दें।

मानागढ़ी का इतिहास

बाजना के समीप ही स्थित है **मानागढ़ी,** बाजना व मानागढ़ी की लीला का परस्पर सम्बन्ध है। बाजना में गोपों का संगीत-महोत्सव चल रहा था। गोपों के कई समूह भिन्न-भिन्न वाद्य वादन कर रहे थे – कुछ वेणु, कुछ सींगी, कुछ घुँघरू ....और संगीत प्रिय ये लघु वत्स तो गले में बंधी क्षुद्र घण्टिका को भी ताल से विलग नहीं होने दे रहे थे।

यह सामूहिक नाद जब ब्रजनागरियों से समावृत श्याम-स्वामिनी ने सुना तो निकट से देखने की इच्छा हुई।

श्रीजी पूछती हैं –

द्वारे मेरे वंशी कौन बजावै ।
नई नई तान लेत मुरली में, ठाढ़ौ गोरी गावै ॥
चलो री सखी वाको मुख निरखैं, जो बाबा की धेनु चरावै ॥
'सांवरी सखी' वही बड़भागी, जाहि हँस हरि कंठ लगावै ॥

सम्पूर्ण सखी समुदाय चल पड़ा वार्षभानवी के साथ। केलिवन (बाजना) में प्रवेश किया, लता-जाल से देखी गोष्ठी की एक झलक। सघन-कानन कृष्णाकर्षिणी के परिमल से सुरभित हो उठा।

निकुञ्जेश्वरी की

बिम्बमाल सी अधर शोणता........
पिकमाल सी स्वर सुस्वरता........
मधुमाल सी मधुर स्वादिता.........
कमलमाल सी वपु कोमलता.........
चन्द्रमाल सी वपु शीतलता..........
कुसुममाल सी वपु सुगन्धिता.........
मेघमाल सी सुकेश श्यामलता...........

देखने को मृगीशावकवत् चंचल हो उठे नंदसूनु के युगलनयन।

तब तक श्रीजी सहित सखी परिकर सन्मुख आ गया। अब तो वेणुबिहारी इस गर्व में भरकर वंशी वादन करने लगे कि हमसे अच्छी वंशी कोई नहीं बजा सकता।

गोपियों को जब सौभगमद हुआ तो श्रीकृष्ण ने अन्तर्धानलीला कर उसका प्रशमन किया।

प्रण भी है –

करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥

(रा.च.मा.बाल. काण्ड–१२९)

पर आज लीलाबिहारी ने बांस में फूंक देने का ही गर्व ठान लिया, अब इनके गर्व का हरण कौन करे? यह तो केवल श्रीजी ही कर सकती हैं।

फिर क्या था, श्रीकृष्ण का मान भंग करने के लिए गर्वमोचिनी ने झट से कृष्ण कर से बांसुरी छीन ली।

श्री सूर के शब्दों में –

प्यारी कर बांसुरी लई।

बड़ा गुमान है तुम्हें वंशी में हवा फूंकने का, अभी तो कुछ आता-जाता भी नहीं है, ललितादिक ने कहा।

अभी तो वंशी पकड़ना भी नहीं सीखे हैं, श्रीजी बोलीं।

सन्मुख होइ तुम सुनहु रसिक पिय, ललित त्रिभंग भई ॥

श्यामसुन्दर! यहाँ मेरे सामने बैठो, मैं सिखाती हूँ वंशी वादन। श्रीजी ललित त्रिभंग गति से खड़ी हो गईं। ग्रीवा, कटि, पाद में जो वक्रता से लालित्य बढ़ा, श्यामसुन्दर के लिए तो यह अदृष्टचर ही था। अब तक इस बांसुरी ने कृष्ण-अधर रस का ही आस्वाद किया था, आज जब श्रीजी के अधरोष्ठ पर विराज राधाधरामृत का पान किया तो इसे बजाने की आवश्यकता कहाँ रह गई थी? अनायास अभिनव राग-रागिनियों का उद्भव होने लगा।

उठत राग रागिनी तरंगन, छिन छिन उपज नई।

क्षण-क्षण की जो नूतन उपज थी, उसे सुनने के लिए श्यामसुन्दर के कान आल-ब्याल (जल को रोकने के लिए खेत में बनाई जाने वाली मेंड़) का कार्य कर रहे थे, कहीं नाद सुधा का सीकर भी बाहर न सरक सके।

आलबाल नंदलाल श्रवण वर, जनु मोहिनी भई ॥
नमित सुधाकर बदन अमित छवि, मनमोहन चितई।
मानहुँ मत्त चकोर मेचक मृग, तनु सुधि बिसर गई ॥
कटि पीताम्बर छाइ नाह को, छलबल कैरिअई।
सूर सखी हँसि कमलनयन कह, राधे अंक दई ॥

यह एकदम नूतन नाद था, जिसे सुनकर चकित-विस्मित श्यामसुन्दर बहुत ध्यानपूर्वक देख रहे थे श्रीराधारानी को।

धन्य है ....धन्य है ....

आज की शोभा तो देखो – गोर चन्द वंशी बजाते हुए डूब गया है नाद-सिन्धु में और इधर इस नीले चकोर की दृष्टि मानो चिपक ही गयी है गोरे चांद पर, इसे अपने देह का भी अनुसन्धान नहीं है; जैसे – हिरन नाद सुनकर स्वयं को भूल जाता है, वैसे ही यहाँ श्यामसुन्दर को भी देहानुसंधान नहीं है। मोहन-मन-मोहिनी का न जाने यह कौन-सा सम्मोहन-शर था, सब कुछ भुला दिया जन-मन-मोहन का; इतना ही नहीं बेसुध साँवरे सुकुमार का कटि-पीताम्बर उतारकर स्वयं धारण कर लिया।

पिया पीताम्बर मुरली जीती।
हा-हा करत न देत लाड़िली, पांय परत निशि बीती ॥
राखी चुराय सघन कुञ्जन में, ललितादिक रहत सचीती।
बिट्ठल बिपिन बिनोद बिहारी सों, प्रगट करत रसरीती ॥

(बिट्ठलबिपुल देव जी)

सब सखियों ने प्रार्थना की – "स्वामिनी जू! अब सावधान करो, बेसुध बनवारी को।"

उदारमना श्रीराधा गयीं और जाकर श्यामसुन्दर को हृदय से लगा लिया। अब कुछ सचेत हुए श्यामसुन्दर अन्यथा नादसिन्धु में खो बैठे थे स्वयं को।

"बड़ा स्वयं को वंशीधर समझते थे, अब कुछ समझ आया? तुम केवल वंशी वाहक हो, वंशी वादक नहीं।" सब सखियों ने हँसते हुए कहा।

एक बार की कहाँ, यह तो बार-बार की बात है। होरी लीला में भी देखें –

श्रीनन्ददास जी का अनुभव –

चली है कुंवरि राधे खेलन होरी।
पंकज पराग वर लीये भरि झोरी॥
बांसुरी छिड़ाइ लीनी छलके किसोरी।
तारी दै दै हँसे सब कहैं हो हो होरी॥
राधा जू अधर धरी बांसुरी बिराजी।
ऐसी कबहूँ साँवरे पिय पैन बाजी॥

(श्रृं.र. सा.)

श्रीराधारानी द्वारा श्यामसुन्दर को वंशी वादन का जो मान था, वह यहीं भंग हुआ अतः स्थान का नाम मानागढ़ी हुआ।

श्रीबल्लभ जी की वाणी में –

मानागढ़ी में श्रीजी ने किया लाल जी के वंशीवादन का मान मर्दन –

बैठे हरि राधा संग कुञ्ज भवन अपने रंग,
कर मुरली अधर धरे सारंग मुख गाई।
मोहन अति चतुर सुजान, परम चतुर गुण निधान,
जान-बूझ एक तान चूक के बजाई॥
प्यारी जब गह्यो बीन, सकल कला गुण प्रवीन,
अति नवीन रूप सहित वही तान सुनाई।
बल्लभ गिरिधरन लाल रीझि दई अंक माल,
कहत भलें-भलें लाल सुन्दर सुखदाई॥

मानागढ़ी में हुआ विपरीत मान –

विशेष बात कि यहाँ विपरीत मान की लीला हुई है। मान के अनेक भेद हैं, जिनका वर्णन रसग्रन्थों में प्राप्त होता है।

एकं काञ्चनचम्पकच्छवि परं नीलाम्बुदश्यामलम्,
कन्दर्पोत्तरलं तथैकमपरं नैवानुकूलं बहिः।

किञ्चैकं बहुमानभंगिरसवच्चाटूनि कुर्वत् परम्,
पश्य क्रीडति कुञ्जसीम्नि तदहो द्वन्द्वं महामोहनम् ॥

(रा. सु. नि. - १६९)

एक है गोर तेज (श्रीजी) और दूसरा है नील तेज (श्याम सुन्दर)। एक सुरत सुख के लिए समुत्सुक है और दूसरा वामागति में अर्थात् सुरत सुख से विमुख है (किन्तु यह उसकी केवल बाह्य दशा है, आन्तरिक अभीष्ट तो उसका भी यही है)।

एक मान करता है तो दूसरा मनुहार। लीला में प्रायः मानिनी श्रीराधारानी हैं व मान-मनावन श्यामसुन्दर हैं।

किन्तु मानागढ़ी में हुई विपरीत मान की लीला, यहाँ पात्र परिवर्तित हुए। मान किया श्यामसुन्दर ने व मनाया श्रीराधारानी ने।

एक समय निकुञ्ज स्थित श्रीराधा बोलीं –"आज कोई पृथक् क्रीड़ा करें? "

श्यामसुन्दर – "अवश्य, प्राणवल्लभे! ....."

"मैं तो सदैव ही मान करती हूँ और तुम सदैव ही मनाते हो, क्यों न आज तुम मान करो और मैं मनाऊँ।" श्रीजी बोलीं।

"मेरी भी इच्छा थी – एक बार मनुहार-श्रम का आप अनुभव करें।" श्यामसुन्दर बोले।

"मान क्या इतना आसान समझते हो, कितना कठिन है प्रेमास्पद की मनुहार पर स्वयं को रोकना। एक बार बैठो मान करके तो समझ सकोगे।" श्रीजी बोलीं।

"तो फिर हो जाय ठनाठनी" कहकर श्यामसुन्दर मान में प्रवेश कर गये।

किन्तु बात तो सत्य यही है कि मनुहार का अधिक अभ्यास श्यामसुन्दर को है व कठिन मान का सम्यक् अभ्यास श्रीजी को ही है।

मन्मथ-मानस-मन्थिनी श्रीजी जब मनमोहन के समीप पहुँची तो देखा – मुख मोड़ रखा है, चढ़ी हुई वक्र भृकुटी है, नेत्र कोर से कभी-कभी मुझे निहार लेते हैं, प्रथम तो लाल जी के मान का यह अभिनय देखकर श्रीजी हँस ही पड़ीं किन्तु मनुहार करने वाले को एक भय सदैव रहता है – पता नहीं, मैं मानमुक्त कर भी पाऊँगा या नहीं।

श्री सूर के शब्दों में –

नागरि हँसत हृदय डर भारी ।
कबहुँ अंक भरि लेत उरज बिच, कबहुँ करत मनुहारी ॥

श्रीजी ने मान मुक्त करने के लिए मानबिहारी को अंक में भर लिया और बोलीं – "अब मान भी जाओ प्यारे ....! "

नानाविध मनुहार करने लगीं। इस अवसर पर श्यामसुन्दर को बड़ी कठिनाई हो गई मन को व मान को रोकने में। श्रीजी की मनुहार पर मन बारम्बार मानमुक्त होना चाहता है। जब प्रेमास्पद स्वयं उदारता से सुरतान्त सुख प्रदान करने को उद्यत है, उस समय मान तो स्वयं की अवमानना के समान दुःखद है। आज ज्ञात हुआ – मान करना भी कोई सहज नहीं है।

मान करत नीके नहिं लागै दूरि करौ यह ख्याल।
नेक नहीं चितवत राधा तन निठुर भए नंदलाल॥

बहुत मनुहार पर भी जब श्यामसुन्दर ने मान त्याग नहीं किया तो,

श्रीजीबोलीं – "देखो जी, चाहे कुछ भी कहो, तुम मान करते हुए अच्छे नहीं लगते हो, मान में तुम्हारी शोभा नहीं है।"

किन्तु निष्ठुर नंदलाल ने तो देखा भी नहीं श्रीजी की ओर कि क्या कह रहीं हैं ....? कहाँ बैठी हैं ....?

शीश धरति चरणन लै पुनि-पुनि पिय को रूप निहारत।
सूरदास प्रभु मान धर्‌यो दृढ़ धरणी नखन बिदारत॥

जब-जब राधारानी मान करती थीं, प्यारे श्यामसुन्दर उनके कोमल पदकमलों को कभी स्वशीश पर धारण करते, कभी चरण तल पर अपना कोमल ललाट घिसते।

आज विपरीत मान की इस लीला में श्रीराधारानी श्यामसुन्दर के पदकमलों को बार-बार अपने शीश पर धारण करती हैं, एक-एक पदाङ्गुली को ध्यान पूर्वक निहारती हैं, कभी कोमल कर से सहलाती हैं फिर विशाल नेत्रों को ऊपर कर गाढ़ मान में गढ़े "मानी घनश्याम" का दर्शन करती हैं।

श्यामसुन्दर भी अनेक बार मान-मर्यादा को तोड़ श्रीजी की ओर देख लेते हैं किन्तु पुनः सावधान होकर मानी बन जाते हैं।

यह मान की विधा है – 'कोई क्या कह रहा है, सुना नहीं जाता; क्या कर रहा है, देखा नहीं जाता।'

श्यामसुन्दर भी चिबुक को घुटनों पर रख चरणनख से धरणी कुरेदने में संलग्न हो गए मानो न कुछ सुनना चाहते हैं, ना ही कुछ देखने की इच्छा है।

मान की यह विधा श्यामसुन्दर ने सीखी गोपाङ्गनाओं से ही है। भागवतानुसार प्रणयगीत के पूर्व ब्रजदेवियों ने भी ऐसा ही मान किया था।

बाजना से मानागढ़ी की दूरी ९ कि.मी. है।

जैदपुरा

भागवतानुसार जिस समय श्रीकृष्ण ने अघासुर का वध किया तो सबने वहाँ स्वागत किया।

ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ।
गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः ॥

(भा. १०/१२/३४)

देवगण दिव्य पुष्पों की वृष्टि कर रहे हैं, अप्सरायें नृत्य कर रही हैं, गन्धर्व गा रहे हैं, विद्याधर वाद्य बजा रहे हैं, विप्रगण वेद ध्वनि कर रहे हैं, प्रिय पार्षद जय-जयकार कर रहे हैं – "श्री वृन्दावनचन्द्र की ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ जय!

निखिल जगन्नियन्ता जगदाधार जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ जय!!"

"वाह कन्हैया.......! वाह!! अद्‌भुत पराक्रम दिखायौ तेने" कहते हुए ग्वाल-बालों ने भी जय घोष किया –

बोल नन्द के लाला की ऽ ऽ ऽ जय!

मैया के लाला की ऽ ऽ ऽ जय!!

जय हो हमारे कारे कन्हैया की,

सदा ही जय हो!

सदा ही जय हो!!

सदा ही जय हो!!!

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् ।
श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद् दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥

(भा. १०/१२/३५)

स्तुति, वाद्य, जय-जयकार, आनन्दोत्सव की ये मङ्गल ध्वनियाँ ब्रह्मलोक तक पहुँचीं। हंसारूढ़ हो विधि भी झट से वृन्दावन आये एवं श्रीकृष्ण की महती महिमा का दर्शन कर विस्मित हो गये तो जयध्वनि से नाम 'जैत' हुआ। मथुरा राजमार्ग (हाइवे) पर चौमुहा के समीप स्थित है जैतग्राम।

यही लीला हुई माड़व के निकट जैदपुरा ग्राम में भी। महर्षि मार्कण्डेय जी को कृष्णोपासना में तन्मय देख देवों ने जयघोष किया। इसका प्रमाण श्रीमद्भागवत जी में देवों का अनेक बार गोपरूप में ब्रजागमन का प्रसंग प्राप्त होता है।

यथा –

गोपजातिप्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः ।
ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥

(भा. १०/१८/११)

जिस प्रकार नट अपने नायक की प्रशंसा करते हैं, ठीक उसी प्रकार देवगण ग्वाल-वेष बनाकर, गोपजाति में स्वयं को छिपाकर लीला कर रहे राम-श्याम के बीच आते व उनकी स्तुति करते, जय ध्वनि करते। यह जयध्वनि ही जैदपुरा का इतिहास है।

टप्पल से जैद पुरा की दूरी १४.२ कि.मी. है।

सिवारे

'सवारे' ब्रजभाषा का एक शब्द है, जिसका अर्थ है – "बड़े सबेरे"। सवारे हो या सकारे, दोनों समानार्थक शब्द हैं, अष्टछाप के सुकवियों ने इन दोनों ही शब्दों का प्रयोग किया है अपनी वाणी में। कहीं सवारे तो कहीं सकारे।

सवारे का अपभ्रंश हुआ- सिवारे। सवारे से यहाँ तात्पर्य है "रात्रि का तृतीय प्रहर"।

कन्हैया की लीला का, समय से कोई समझौता नहीं है, यह तो स्वयं कालातीत है। जब इसकी पलक खुल जाए तभी से लीला का प्रारम्भ हो जाता है और फिर इसका तो सोना भी लीला है, वह भी "योगतन्द्रा" है।

श्री शुकदेव जी –

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात् प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।
प्रबोधयञ्छृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥

(भा. १०/१२/१)

आज तो कन्हैया ने बड़े भोर वनगमन किया। कलेवा भी नहीं किया, इतनी व्यग्रता पहले तो कभी नहीं देखी। अभी तो दाऊ दादा भी नहीं जागे थे, तब तक चौपाल पर कन्हैया ने श्रृंग नाद कर दिया, श्रृंगी सुनते ही घर-घर के द्वार से ग्वाल-बालों व गो-वत्सों की लम्बी पंक्ति निकल पड़ी। गो-वत्सों को आगे करके कन्हैया स्वयं पीछे-पीछे सहस्रशः सखाओं के साथ चल पड़े। ऐसा लग रहा है मानो प्रातः होते ही कमल विकसित हुआ और उसमें से सहस्रशः भ्रमर निकल पड़े।

गोपाल माई कानन चले सकारे ।
छींके काँध बाँधि दधि ओदन, गोधन के रखवारे ॥
प्रातकाल गो-रंभन सुनि करि गोपनि पूरे श्रृंग ।
निकसे कमल-पत्र संपुट ते निकसि चले जनु भृंग ॥
बेनु बेति लीला कर मेली मोर-पंख सिर सोहै ।
नटवर भेखु धर्‌योब्रज नाइक देखत सुर नर मोहै ॥
खग मृग तरु सबहिन सुख मान्यों गोप-वधु बिलखानी ।
बिछुरत कृष्ण-प्रेम की बेदन जन 'परमानन्द' जानी ॥

श्रृंग नाद से गोपालक बालक तो बाहर आते ही हैं, ये गोपबालाएं भी किसी न किसी कार्य के बहाने घर से बाहर आ जातीं और फिर दर्शन करके लौट जातीं।

इन गोपबालाओं को भी कहाँ चैन?

गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् वास्तून् समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन् ॥

(भा. १०/४६/४४)

अभी कुछ रात शेष थी और इनके घर में दीपक जल गये, घर की देहरी पर वास्तुदेव का पूजन हुआ एवं घर की स्वच्छता कर दधि-मंथन करने बैठ गयीं। घर-घर से घर्र-घर्र ध्वनित होने लगा –

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद् ध्वनिः ।
दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥

(भा. १०/४६/४६)

गोपिकाएं दधि-मन्थन करते हुए कृष्ण गुण गाने लगीं।

ले ले मथानी दधि को बिलोती गाती मधुर बैन कहती सप्रीती ।
प्यारी मथानी तू ये गीत गा दे, राधा रसिक श्याम राधा बिहारी ।
गोविन्द गोपाल मोहन मुरारी राधा रसिक श्याम राधा बिहारी ।

(श्रीबाबा महाराज कृत 'बरसाना')

श्रीकृष्णका मंगलमय गान उनके दधि-मन्थन की ध्वनि से मिलकर दसों दिशाओं का अमंगल दूर करने लगा। गोपियों का इतना गृहकार्य तो सूर्योदय के पूर्व ही हो जाता।

"भगवत्युदिते सूर्ये"

(भा.१०/४६/४७)

अनन्तर सूर्योदय होता।

यह आभीर-सुन्दरी भी आज बड़े भोर गोमय पाथने निकली थी, मार्ग में ही मिल गया नटखट।

कोई इससे बोले या न बोले किन्तु इस नटखट को तो सबसे बोलना है।

कृष्ण – मैं आप ही को प्रणाम कर रहा हूँ।

गोपी – न जाने क्या सोचकर सोई थी, ऊधमी स्वप्न में भी मिला और सवेरे-सवेरे भी मिल गया।

कृष्ण – प्रतीत होता है कि रात्रि में भी क्रोध करके ही सोई थीं।

गोपी – कैसा है यह निगोड़ा ब्रज ......? न चाहने पर भी बोलना पड़ता है यहाँ।

कृत्रिम-रोष का अच्छा अभ्यास है इन्हें।

श्रीसूरदास जी के शब्दों में –

प्राचीन श्री राधा कृष्ण मंदिर - सिवारे

श्याम मेरे ढिंग सौं कबहुं न जावै।
दूध दुहत दोहनी में बैठे घूँट-घूँट गटकावै।
दधि मंथन बिच बैठ मथनिया सदा ही माखन खावैं।
जल भरिवे यमुना पै जाऊँ आगे-आगे धावै।
लहर-लहर में देखूँ उनि-उनि गागर आप समावै।
पकरन जाऊँ हाथ नहिं आवै गूँठा मोहिं दिखावै।
पौढ़ूँ तो पलका पै सोवै गृहस्वामी बन आवै।
भाजूँ तो गहि भुजा प्रिया कहि हँस हँस कंठ लगावै।
सौऊँ तो सपने में ठाढ़ो मुरली मधुर बजावै।
चैन न लेन देय निशिवासर ये दुःख कौन मिटावै।
छाया ज्यों संग लागो डोलै तनक लाज न आवै।
हा हा खाय कहूँ विधिना सों यासौं पिण्डु छुड़ावै।
'सूर' प्रेम की अद्भुत लीला गाय-गाय सुख पावै॥
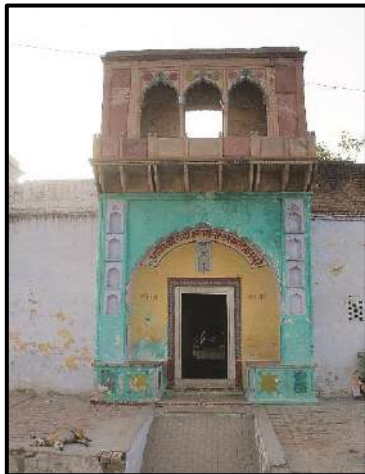
श्री कुंभनदास जी की वाणी में –

माई री! श्याम लगो संग डोलै ।
जित जाऊँ तित हरि आवतु है बिना बुलाय बोलै ।
कहा री! करों ये नैना लोभी, बस कीनें बिनु-मोलै ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर, हंसि कर घूँघट खोलै ॥

जेवर से ६.७ कि.मी. की दूरी पर सिवारे गाँव है।

जेवर

जेवर का अर्थ है आभूषण। स्पष्ट है कि इस सीमावर्ती ग्राम में श्याम सुन्दर व उनके सखाओं के द्वारा वन्य सामग्रियों द्वारा श्रृंगार लीला हुई है। श्री शुकदेव जी ने परम संहिता श्री भागवत जी में भी यहाँ की लीला का कुछ इस तरह से वर्णन किया है –

फलप्रवालस्तवकसुमनःपिच्छधातुभिः ।
काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥

(भा.१०/१२/४)

मधुराधिपति गोविन्द तथा उनके सखा कांच, गुंजा, मणि एवं स्वर्णाभूषणों से विभूषित होने पर भी इस वन के सरस फलों, नूतन कोपलों, गुच्छों, रंग-बिरंगे पुष्पों, मोर पंखों और गेरू आदि रंगीन धातुओं से अपने दिव्य अंगों को सज्जित करने लगे। यहाँ पर सखाओं ने श्यामसुन्दर का जैसा श्रृंगार किया, उसका चित्रण अष्टछाप के महाकवि श्री कृष्णदास जी ने इस प्रकार किया है –

मोहन मोहिनी सिर पाग ।
मोहन भाँति विचित्र सिंगारी श्रीदामा अनुराग ॥
उज्जवल स्याम सुरंग बिराजित कुलह फूल बहुलाग ।
देखत नयन न अघात सुभगता 'कृष्णदास' बड़भाग ॥

मनमोहन के शीश पर अत्यन्त मनमोहक पाग सुशोभित हो रही है। श्री दामा ने अत्यधिक अनुराग के साथ इस स्थल पर अपने लाड़ले सखा का अद्भुत श्रृंगार किया है। श्याम सुन्दर के उज्जवल श्याम रंग की आभा अति मनोरम प्रतीत हो रही है। मुकुट में जड़ा कुलह अनेक पुष्पों से घिरा हुआ अति आकर्षक प्रतीत हो रहा है। कृष्णदास जी कहते हैं कि नयनाभिराम नटनागर की इस सर्वाकर्षक रूपमाधुरी को निहार कर गोपियाँ अपने को बड़भागिनी मानती हुई परस्पर में यही कहती हैं कि मधुपति की इस

मधुरातिमधुर छबि का बारम्बार अवलोकन करने पर भी हमारे ये तृषित नेत्र कभी तृप्त नहीं होते हैं।

हसनपुर से जेवर की दूरी ३४.५ कि.मी. है।

टप्पल

ये गोपाङ्गनाएं नित्य सिर पर गोरस से भरी मटकियाँ रखकर श्यामसुन्दर से मिलने के लिए सुदूरवर्ती ब्रज सीमांत के स्थलों तक जाती हैं। हृदय में उस चित चोर को गोरस अर्पित करने की भावना तो रहती ही है, साथ ही गोरस का दान लेने-देने के ब्याज से उसके दरस-परस के अनिर्वचनीय सुख प्राप्ति की उत्कट लालसा भी रहती है।

श्री सूरदास जी ने यहाँ की लीला का इस प्रकार गान किया है –

सखा और संग लिए कन्हाई ।
आपुन निकसि गये आगे को मारग रोक्यो जाई ॥
यहि अंतर युवती सब आईं बन लाग्यो कछु भारी ।
पछि युवति रहीं तिन टेरत अबहिं गई तुम हारी ॥
तरुणी जुरि यक संग भईं सब इत-उत चलीं निहारत ।
सूरदास प्रभु सखा लिये संग ठाढ़े इहै बिचारत ॥

(सूरसागर.८२)

अब देखो तो सही, इस वन में कन्हैया अपने ग्वाल सखाओं को तरु-शाखाओं पर बिठाकर स्वयं चल पड़ा इन दधि बेचनहारी गर्वीली ग्वालिनों का मार्ग रोकने। तब तक कुछ ब्रजयुवतियाँ इस स्थल पर आ पहुँची। दान लीला की सम्भावना देख जो ब्रजाङ्गनाएं पीछे रह गई थीं उन्हें शीघ्र ही अपने निकट बुलाया और कहा – "तुम सब अभी से श्रान्त हो गई हो, उस छलिया का सामना होने पर तुम्हारी क्या स्थिति होगी? " समस्त ब्रजबालायें एक साथ होकर चौकनी दृष्टि से देखती हुई सघन अरण्य में प्रवेश करने लगीं। श्याम सुन्दर अपने सखाओं के साथ वृक्षों की ओट में छिपकर इन सखियों के साथ आज की दान लीला के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक विचार-विमर्श कर रहे थे। जैसे ही इन गोप-देवियों का वन में प्रवेश हुआ, श्यामसुन्दर ने अपने गोप-सखाओं को नेत्रों में ही संकेत कर दिया।

ग्वालन सैन दियो तब श्याम ।
कूदि-कूदि सब परहु द्रुमनते जात चली घर वाम ॥
सैन जानि तब ग्वाल जहां तहं द्रुम-द्रुम डार हलाए ।
बेनु विषान शंख मुरली ध्वनि सब एक शब्द बजाए ॥

चकृत भईं तरु-तरु प्रति देखति डारनि- डारनि ग्वाल ।
कूदि-कूदि सब परे धरणि में घेरि लईं ब्रजबाल ॥
नित प्रति जात दूध-दधि बेचन आजु पकरि हम पाई ।
सूर श्याम को दान देहु तब जैहों नन्द दोहाई ॥

(सूरसागर.८४)

फिर क्या था? वृक्षों की शाखाओं पर छिपे ये नटखट ग्वाल टपाटप कूद पड़े जैसे पका हुआ फल स्वयं ही नीचे गिर पड़ता है।

एक-एक द्रुम, डाल-डाल से सभी सखा नीचे आ कूदे और परस्पर मिलकर वेणु, शंख, मुरली और विविध वाद्य यंत्रों की ध्वनि करने लगे। समस्त ब्रज नारियाँ वन के प्रत्येक वृक्ष की डाल से टपाटप नीचे कूदते इन चंचल श्याम सखाओं को देखकर अत्यधिक आश्चर्य चकित हो गईं। सखाओं ने अपने नायक सहित इन नायिकाओं को चहुँ ओर से घेर लिया और ग्वालिनों को चुनौती देते हुए बोले – "तुम लोग प्रतिदिन इस मार्ग से होकर दूध-दधि बेचने जाती हो। हमारा नायक कन्हैया समस्त ब्रज का सम्राट है, अपने राजा को कर चुकाये बिना ही तुम इठलाती हुई यहाँ से निकल जाती हो। आज तुम हमारी पकड़ में आयी हो। हम नंद बाबा की सौगंध खाकर कहते हैं कि इस ब्रजराज को दान दिये बिना तुम लोग आगे नहीं जा सकती हो। पहले हमारा दान दो तब आगे का मार्ग पकड़ो।"

जेवर से टप्पल की दूरी ९.८ कि.मी. है।

जट्टारी

एक दिन सूर्योदय के पूर्व ही नन्दनन्दन के सखा जाग उठे और कन्हैया को जगाने हेतु नन्द भवन पहुँच गए, बारम्बार पुकारने लगे –

"कान्हा! शीघ्र जागो।"

ग्वालबालों की पुकार सुनकर मैया यशोदा ने अपने कुंवर कन्हाई को जगा दिया। तब तो सखाओं को साथ लेकर कन्हैया कालिन्दी तट पर गए और उनसे कहने लगे – " अच्छा हुआ जो तुम लोग भोर में ही मेरे पास आ गए। ब्रज गोपियाँ नित्यप्रति वन मार्ग से होते हुए दधि विक्रय हेतु मथुरा जाती हैं। इस समय वे जाग गयी हैं और निज ग्रहों से दधि लेकर आती ही होंगी। तुम लोग जाकर उनका मार्ग रोको।"

अपने नायक का आदेश पाकर समस्त गोपबालक ताली बजाकर हँसने लगे। उनके लिए तो यह अतिशय आनन्दप्रद और कौतुक भरा कार्य हो गया। श्यामसुन्दर ने अपनी प्रकृति (स्वभाव) से मिलते पाँच हजार गोप-बालकों का जट्ट (यूथ) अपने समीप रखा

तथा जो अत्यन्त अल्प वयस के थे उन्हें घर को भेज दिया। अब एक ओर से ग्वाल-बालों के यूथ हैं और दूसरी ओर से गोरस विक्रयणी ब्रज गोपिकाओं के यूथ (जट्ट) चले आ रहे हैं।

गोरस लेन-देन के सम्बन्ध में जट्ट के जट्ट (यूथ के यूथ) गोप-गोपिकाओं का यहाँ सामना हुआ इसीलिए 'जट्टारी' नाम से यह गाँव पुकारा जाने लगा।

अष्टछाप के मूर्धन्य सन्त कवि श्री सूरदास जी ने यहाँ की लीला का इस प्रकार से गान किया –

भली करी उठि प्रातहि आए ।
मैं जानत सब ग्वारि उठी जब तब तुम मोहि बोलाए ॥
अब आवति ह्वैहैं दधि लीन्हे घर-घर ते ब्रज नारी ।
हँसे सबै कर तारी दै-दै आनन्द कौतुक भारी ॥
प्रकृति-प्रकृति अपने ढिग राखे संगी पांच हजार ।
और पठाइ दिए सूरज प्रभु जे-जे अतिहि कुमार ॥

(सूरसागर.७५)

गोमत से जट्टारी की दूरी १७.७ कि.मी. और टप्पल से जट्टारी की दूरी ८ कि.मी. है।

गोमत

ब्रह्ममूहूर्त में ही इन प्रेम दीवानी ब्रजयुवतियों ने शीश पर गोरस की मटकियों को धारण कर वन में गोचारण हेतु गए गोपाल के दर्शन करने के लिए गृह से प्रस्थान कर दिया। प्रियतम के प्रेम में आत्म-विस्मृत हुई ये ब्रजांगनाएं शीघ्रता के साथ बहुत दूर तक चलती हुई इस स्थान पर आईं। मार्ग की श्रान्ति को दूर करने के लिए समस्त ब्रज देवियाँ यहाँ बैठकर परस्पर विचार विमर्श करने लगीं। नित्य-सिद्धा गोपिकाएं साधन-सिद्धा गोपिकाओं से –

श्री रेवतीरमण जी मंदिर

"अरी सखियो! आज तो हम सूर्योदय से पूर्व ही दधि विक्रय हेतु निज गृह से निकल पड़ी हैं किन्तु तुम लोग विलम्ब क्यों करती हो? शीघ्र ही

यहाँ से चलो ताकि जल्दी ही हम गोरस बेच आयें।"

शीघ्र ही गोरस विक्रय करने से इनका आशय शीघ्र श्यामसुन्दर का दर्शन करने से है। केवल दर्शन करना ही नहीं वरन् दधि, दूध का जी-भरकर उसको भोग लगाना उनका लक्ष्य है। नवनीत, दधि और घृत को अच्छी प्रकार से मटकियों में भरकर ये मथुरा जाने का विचार करती हैं। अगणित ब्रज सुन्दरियों ने सोलह श्रृंगार से अपने अंगों को भलीभाँति सुसज्जित कर लिया है। इनकी इस देह-सज्जा का उद्देश्य भी अपने प्राणवल्लभ मुरली मनोहर को रिझाना ही है।

सूरदास जी कहते हैं कि न तो एक पल को ये कृष्ण प्रेम को अपने हृदय से उत्सर्जित कर सकती है और न इनके प्रेमाराध्य प्रेम की ध्वजा रूपा इन प्रेयसियों के दिव्य प्रेम को पलभर भी विस्मृत कर सकते हैं।

उद्धवावतार सन्त शिरोमणि सूरदास जी ने 'गोमत' के निर्जन अरण्य में बैठी गोरस शीघ्र ही विक्रय हेतु विचार करती कृष्ण प्रेम रंगी इन प्रेमिकाओं की अद्भुत प्रेमावस्था का अपने पद के माध्यम से इस प्रकार चित्रण किया है –

ब्रज युवती मिलि करति विचार ।
चलो आजु प्रातहि दधि बेचन नित तुम करति अबार ॥
तुरत चलो अबहीं फिरि आवैं गोरस बेचि सवारै ।
माखन दधि घृत साजति मटुकी मथुरा जान बिचारै ॥
षटदशसहस श्रृंगार करति हैं अंग-अंग सब निरखि सँवारति ।
सूरदास प्रभु प्रीति सबनि की नेक न हृदय बिसारति ॥

(सूरसागर.७८)

किसी समय बाजना, गोमत, सजना, लोई भालई, टैंटी एवं मांट होते हुए ब्रज परिक्रमा जाती थी।

ब्रज चौरासी कोस में बसत गोमत गाँव ।
गाय चराने आमते कभी कृष्ण बलराम ॥

यहाँ श्रीराधा-कृष्ण का मन्दिर था जिसमें अष्टधातु की बड़ी विशाल मूर्तियाँ थीं जो लगभग ५०वर्ष पूर्व चोरी हो गईं। मन्दिरजीर्णशीर्ण होकर नष्ट हो गया, इसके अतिरिक्त यहाँ दाऊजी का मन्दिरभी है जो पूर्व में 'गोमठ' के नाम से विख्यात था अतः गोमत हो गया। इसे ब्रज सीमा का अन्तिम गाँव कहा गया है। दाऊजी के मन्दिरका आज भी प्रत्यक्ष चमत्कार है कि यहाँ आने पर सभी कामनाएं पूर्ण होती हैं। मित्तल परिवार के लाला जोधराज ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था, जिन्हें स्वप्न में मन्दिर निर्माण का आदेश हुआ था।

नौहझील से २० कि.मी. एवं बाजना से १४ कि.मी. की दूरी पर स्थित है गोमत अथवा **खेरेश्वर धाम (अलीगढ़) से गोमत की दूरी २५.३ कि.मी.।**

वामोती

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम्।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः॥

(भा. १०/३५/२)

अरी सखी! जब यह अपने वाम कपोल को वाम भुजा की ओर झुका लेता है और सुभ्रूनर्तन के साथ बांसुरी को अधर पर रख, छिद्रों पर कोमलाङ्गुली घुमाते हुए मधुर तान छेड़ता है तो प्रतीत होता है कि यह वंशी हमारे लिए ही बज रही है।

"नादः पञ्चधा भवति मुखस्य परितः समतया उपरधिश्च धारणेन तत्र स्त्रीणां कामोद्बोधकः वामपरावृतः स्त्रीणां पुरुषाणां च् दक्षिणदेवानामुच्चैः अधस्तिररश्चां समतया सर्वेषामेचेतनानां च् तत्र देवस्त्रीणां कामोद्बोधकः वामपरावृत्त एवेति"

(श्रीमद्वल्लभाचार्यकृतसुबोधिनी)

इस नाद में न जाने क्या जादू है, जो सुनता है उसे लगता है मानो मेरे लिए ही यह नाद हुआ है फिर यहाँ तो विशेष रूप से बाईं ओर मुख करके ही बजाई है अर्थात् हमारे लिए ही यह बजी है।

श्री हित जी की वाणी में –

लाल की रूप माधुरी नैनन निरखि नेकु सखी।
मनसिज मनहरन हास, सांवरौ सुकुमार रासि,
नख सिख अङ्ग अङ्गन उमँगि सौभग सींव नखी॥
रंग मगी सिर सुरंग पाग, लटकि रही वाम भाग,
चंप कली कुटिल अलक बीच–बीच रखी।
आयत दृग अरुण लोल, कुण्डल मण्डित कपोल,
अधर दसन दीपति की छबि, क्यों हूँ न जात लखी।
अभयद भुज दण्ड मूल, पीन अंस सानुकूल,
कनक निकष लसि दुकूल दामिनी धरखी।
उर पर मंदार हार, मुक्ता लर वर सुढार,
मत्त दुरद गति तियन की देह दसा करखी॥
मुकुलित वय नवकिशोर, बचन रचन चित के चोर,

मधु रितु पिक शाव नूत मंजरी चखी।
(जै श्री) नटवत हरिवंश गान, रागिनी कल्याण तान,
सप्त स्वरन कल, इते पर मुरलिका बरखी॥

(श्रीहित स्फुट वाणी-२२)

उसकी रूपमाधुरी को तनिक देख तो, अंग-अंग अनन्त, अपरिसीम, सौन्दर्य-सुधानिधि है। सुकुमारता की राशि श्यामसुन्दर की मुसकान जो कि मदन-मनहारी है। नख से शिखा पर्यन्त प्रत्येक अंग में असीम सौन्दर्य है। मस्तक पर बंधी लाल पाग बाँई ओर (श्रीराधारानी की ओर) झुकी हुई है। उनकी घनी घुंघराली काली अलकों में चम्पा लोचन हैं, कुण्डल-मंडित कपोल हैं, उनके अधर व दन्त द्युति की ओर बरबस दृष्टि चली जाती है। अभयदान देने वाली जानुविलम्बित भुजा और सुपुष्ट स्कन्ध हैं। सांवले श्री विग्रह पर पीताम्बर ऐसे सुशोभित है जैसे कसौटी पर खिंची स्वर्ण रेखा। पीताम्बर की द्युति विद्युत को भी विलज्जित कर रही है। उर में मंदार की माला, मुक्तामाला और मत्त गजराज जैसी गति देखकर स्त्रियों को देह-सुधि बिसर गई है। खिलता हुआ नव-कैशोर, उसमें चित्त को चुराने वाले उनके वचन, मानो बसन्त ऋतु में आम्रमंजरी चाखकर कोकिला का बालक कूज रहा है। देख तो सही वंशी में सप्त स्वरों का आश्रय लेकर कल्याण रागिनी गा रहे हैं। स्वरों के द्वारा वंशी से सुधा-वर्षण ही हो रहा है। बाँई ओर मुख करके, ब्रजस्त्रियों के लिए वंशी बजी यहाँ।

प्राचीन शिव मंदिर जिसकी दीवारों और छत पर कृष्ण लीलाएं अंकित

अंसालम्बितवामकुण्डलधरं मन्दोन्नतभ्रूलतं
किंचित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साचिप्रसारीक्षणम्।
अलोलाङ्गुलिपल्लवैर्मुरलिकामापूरयन्तं मुदा
मूले कल्पतरोस्त्रिभङ्गललितं ध्याये जगन्मोहनम्॥

(श्रीलीलाशुक)

बाजना से वामोती की दूरी ३४.८ कि.मी. है।

उसरम

कोई नहीं देगा दान।

आज तो निश्चय कर लिया इन हठीली ब्रजगोपियों ने।

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

कबहुँ न दान सुन्यौ गो-रस कौ ।
तुम तौ कुँवर! बड़े के ढोटा पार नहीं कछु जस कौ ॥
रोकत हौ पर-नारि विपिन में, नेंकु नहीं जिय कसकौ ।
'परमानन्द' प्रभु मिस जो दान कौ, है कछु और ही चसकौ ॥

'गो-रस का दान न कभी देखा गया, न सुना गया, नये-नये नियम बनाने वाले तुम कौन हो? ' एक गोपी ने कहा।

'माना कि तुम नन्दराय जी के पुत्र हो, सब ब्रज तुम्हें जानता है पर एकान्त वन में परस्त्रियों को इस तरह से रोकना यह आर्यपुरुषों का कार्य नहीं होता।' दूसरी गोपी बोली।

'क्योंकि गो-रस का दान तो हमने कभी नहीं सुना अतः आज तुम हमें स्पष्ट कह दो। तुम्हें दान गो-रस का ही चाहिए अथवा गो-रस के मिस अन्य कोई रस?' तीसरी गोपी बोली।

किन्तु इन गोपियों के वर्जन-तर्जन से वह डरने वाला कहाँ है। मार्ग में दोनों कर-पद फैलाकर खड़ा हो गया एक दृढ़ शासक की भाँति। 'मुझे दान में जो भी रस चाहिए, मैं लेकर ही तुम्हें यहाँ से जाने दूँगा।' बहुत अधिकारपूर्वक बोला।

श्री गोविन्द स्वामी की वाणी में –

तुम पैंड़ोई रोकें रहत कैसें क आवें जाँहि ब्रजवधू –
अब तुम हीं बिचारि देखौ परम सुजान ।
खिरकि दुहावन दिन-दिन ही आयौ चाहें ऐसे कैसे बनें –
गुंसाई इत-उत गह्वर गैलो ऊ न मान ॥
ऐसी अटपटी कित देत हो जु लाड़ले कुँवर –
जो कबहुँ परैं ब्रजराज के कान ।
'गोविन्द' प्रभु सौ कहति प्यारी की सखी –
तुम धौ नेकु इत उसरो हमें देहु धौ जान ॥

कन्हैया! तनिक विचार तो करो, प्रतिदिन तुम मार्ग अवरुद्ध करके इस प्रकार खड़े हो जाते हो, कोई ब्रजबधू कैसे तो आये और कैसे जाय। हम खिरक दुहाने जाएं तो भी तुम्हें

श्री राधा कृष्ण मंदिर - उसरम

दान चाहिए, दधि बेचने जाएं तो भी तुम्हें दान चाहिए, ऐसा कैसे सम्भव है? और फिर कोई दूसरा मार्ग भी तो नहीं जहाँ से हम जा सकें। इन सब ऊधमों को पूर्व ही छोड़ दो अन्यथा नन्दबाबा के कान तक बात गई तब तो छोड़ने ही पड़ेंगे। चलो, उसरो अर्थात् परे हटो और हमें जाने दो।

बाजना से उसरम २७.८ कि.मी. है।

हसनगढ़ (हास्यवन)

श्री ब्रज भक्ति विलास के अनुसार –

पूर्णायाञ्च सितेपक्षे वैशाखे ब्रजयात्रया ।
प्रारम्भो शुभदो प्रोक्तो हास्य नाम बनाच्छुभात् ॥
सर्वा राधादिगोप्यस्तु गोपालं हास्यमाचेरुः ।
यतो हास्यबनं जातं नाम विख्यातकीर्तितं ॥

(ब्रज भक्ति विलास)

हास्यवन की उत्पत्ति की महिमा के विषय में कूर्म पुराण में वर्णन है वैशाख पूर्णिमा को ब्रजयात्री हास्यवन की यात्रा प्रारम्भ करें। यह वह स्थान है जहाँ श्री राधारानी ने गोपीजनों सहित श्रीकृष्ण से हास्य किया अतः स्थान की हास्यवन नाम से ख्याति हुई।

हास्यलीला –

जय मोदक मधु मृदुल मेरे मानस में आजा।
छुधा आस बढ़ि रही उदर में आ महाराजा॥
भूख भवानी भोर ते भोजन को भटकाय।
भक्तन की भट्टी भरौ, गोला रूप बनाय॥
कहाँ प्रभु छिपि रहे॥
सिच्छा मानत नहीं खूब करिलई परीछा।
उदर परी ये भूख परिछित करिये रच्छा॥
तुम तारौ भाव भूख ते मोदक रूप बनाय।
हौ हूँ सूधे गटकि हौं, बिन ही दांत लगाय॥
मिलन की देर है॥

(स्वामी मेघस्याम जी)

हास्यवन प्रार्थना मन्त्र –

गोपीहास्यस्वरूपाय कृष्णलोलविधायिने।
नानाल्हादविनोदाय नमो वैमल्यमूर्तये॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य सप्तभिस्तु नमश्चरेत्।
सर्वदा हास्यक्रीड़ाभिर्जायतेऽहर्निशं सुखं॥
वियोगं न कदा पश्येत् विनोदं लभते सदा॥

हे गोपियों के हास्यस्वरूप! हे श्रीकृष्ण को चंचल करने में विलक्षण स्थल! आपको प्रणाम! आप नाना प्रकार के आह्लाद एवं विनोद प्रदान करने वाले विशुद्ध विग्रह हैं। इस मन्त्र का पाठ करते हुए सात बार प्रणाम करने से सर्वदा हास्य, क्रीड़ा, आनन्द रहता है, इससे कभी वियोग नहीं होता है।

हास्यवन स्थित गोपालकुण्ड में गोपीजनों ने श्री गोपाल को रूंधकर महोत्सवपूर्वक स्नान कराया एवं चिबुक का चुम्बन किया अतः यह 'गोपालकुण्ड' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गोपालकुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र –

मनोरमाय गोपीनां कृष्णाल्हादनतत्पर।
नमो गोपालकुंडाय तीर्थराज नमोस्तु ते॥

हे गोपियों के मनोहर! हे श्रीकृष्ण के आह्लादन में तत्पर! हे तीर्थराज गोपालकुण्ड आपको नमस्कार है।

इस मन्त्र को नित्य पाठ करते हुए १४ बार नमस्कार, स्नान एवं आचमन करना चाहिए। ब्रह्मा जी के द्वारा कही गई इस विधि से गोपालकुण्ड में स्नान, आचमन करने से मनुष्य मुक्तिवान, धनवान एवं गोवान होता है।

राया से हसनगढ़ की दूरी ३७.८ कि.मी. है और बाजना से हसनगढ़ ३९ कि.मी.दूरी पर स्थित है।

मुंजाटवी (मंडियारी)

माट-नौहझील रोड पर १५ कि.मी. दूर स्थित छोटा सा गाँव है मंडियारी, श्रीमद्भागवत में इसी को 'मुंजाटवी' की संज्ञा दी गयी है। शुकदेव जी ने यहाँ की लीला का जो वर्णन किया है उसमें गोविन्द का अपने ग्वाल सखाओं, गोओं के प्रति उनके दिव्य प्रेम और ब्रज की वन संपदा के संरक्षण की सुदृढ़ भावना का परिचय मिलता है।

भागवत जी में यहाँ की लीला का वर्णन विस्तार से १०/१९/१ से १०/१९/१२ तक किया गया है।

एक बार प्रलम्बासुर वध के उपरान्त अति आनन्द से उत्साहित हो सभी गोपवृन्द वन में क्रीडासक्त हो गये, तब तक चहुँ ओर छायी हरीतिमा से आकर्षित गोएँ हरी-हरी घास के लोभ से एक वन से दूसरे वन में होती हुई बहुत दूर निकल गयीं। उधर ग्रीष्मकालीन प्रखर ताप ने उन्हें व्याकुल कर दिया तो अन्त में डकराती हुई वे 'मुंजाटवी' (सरकंडों के वन) में प्रवेश कर गयीं। राम, श्याम और उनके सखाओं ने देखा कि हमारा गोधन तो दूर-दूर तक कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। अब तो अपने खेलकूद पर पछतावा करते हुए वे गोओं का अन्वेषण करने में लग गये लेकिन उनका कुछ भी पता न मिलने से अपनी जीविका का साधन गोधन की अप्राप्ति से अचेत से होते हुए वे मार्ग में गोओं के दाँतों से कटी घास तथा पृथ्वी पर गोओं के खुर चिन्हों से उनकी खोज करते हुए आगे बढ़े, तभी उन्हें 'मुंजाटवी' में अत्यधिक वेदना ग्रस्त गो-ध्वनि सुनायी पड़ी। अपनी शोकार्त धेनुओं को देखकर वे उन्हें बाहर निकालने का प्रयास करने लगे किन्तु असह्य थकावट और प्यास से बेहाल होने के कारण अति विकल हो गये।

उनकी ऐसी दशा देखकर करुणावरुणालय गोपाल जी अपनी मेघसदृश्य गम्भीर गिरा से गोओं का नाम ले लेकर उनका आवाहन करने लगे। गोविन्द द्वारा अपना नाम पुकारे जाने पर अत्यधिक हर्षित हुई गोएँ भी प्रतिध्वनि करने लगीं। इसी बीच सहसा वन में चहुँओर दावाग्नि प्रकट हुई जो भीषण वेग वाली आँधी से सहायता पाकर अपनी प्रचण्ड ज्वालाओं द्वारा वन के चराचर जीवों को भस्मीभूत करने लगी।

भयंकर दावानल को अपनी ओर बढ़ते देख ग्वालबाल और गोएँ अत्यधिक भयभीत होकर कृष्ण-बलदेव के शरणापन्न हो आर्तभाव से उन्हें पुकारने लगे। अपने ग्वाल सखाओं की दीनता भरी प्रार्थना सुनकर दीनबन्धु-दीनानाथ बोले – "भयभीत मत हो, अपनी आँखें बंद कर लो।"

अपने संकट मोचन सखा की ऐसी आज्ञा सुनते ही समस्त ग्वारियाओं ने 'बहुत अच्छा' कहकर अपने नेत्र निमीलित कर लिये। तदनन्तर योगाधीश श्यामसुन्दर ने उस भयंकर अग्नि का अपने मुख से पान कर लिया एवं अपने आश्रित गो व गोपालकों को उस घोर संकट से मुक्त किया।

वर्तमान काल में इस लीलास्थली का प्राचीन स्वरूप लुप्त हो चुका है। मुंजाटवी की पहचान अब छोटी सी बस्ती 'मंडियारी' के रूप में है। मुंजवन तो कट चुका और मुंजकुण्ड के स्थान पर जुता हुआ खेत दृष्टि गोचर होता है। गाँव के प्राचीन मन्दिर में मुंज बिहारी और राधारानी के विग्रह स्थापित हैं। ग्रामवासियों के अनुसार यह मन्दिर वृन्दावन के रंगनाथ जी के समय का है।

उझानी

देखह 'उजानि'-स्थान-यमुना एखाने।
वहये उजान श्रीकृष्णे वंशीगाने॥

(भक्ति रत्नाकर, १४३३)

श्री भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ के अनुसार ये वह क्षेत्र है जहाँ वेणु बिहारी श्रीकृष्णकी वंशी ध्वनि से तपन तनया यमुना में उफान आ गया था किन्तु यह कोई नयी बात नहीं है, ऐसा तो कृष्ण जन्म के अवसर पर भी हुआ था। जिस समय वसुदेव जी अपने नवजात शिशु को लेकर नन्द-गोकुल की ओर चले हैं उस समय यमुना जी का स्वरूप ऐसा ही था –

मघोनि वर्षत्यसकृद् यमानुजा गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला।
भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः॥

(भा. १०/३/५०)

मेघों के बरसने से अथवा यह कहें कि श्रीकृष्णचरणालिंगन प्राप्त करने के अपार आनन्द में श्री यमुना जी के नेत्रों से ऐसे प्रेमाश्रु प्रवाहित हुए कि बाढ़ ही आ गई। अगाध जल का प्रवाह तीव्र होता गया। लहरों के टकराने से जल फेनिल हो गया, सैकड़ों भयानक भँवर पड़ने लगीं।

पुनः श्रीमद्भागवत में यमुना का उफान –

अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥

(भा. १०/१८/६)

नदियों में अगाध जल भरा हुआ है, पातालस्पर्शी ह्रद हैं। ऊपर से उछलती लहरें तटों को चूम लेती हैं व पुलिनों से टकराते हुए उन्हें स्वच्छ कर देतीं हैं। जल का यह उच्छलन आस-पास की भूमि को सदा ही गीला रखता है। सूर्य की सीधी किरणें भी घास को सुखा नहीं पाती हैं।

श्री हिताचार्य की वाणी में –

ब्रजाधिराज-नन्दनाम्बुदाभ गात्र चन्दना-
नुलेप गन्ध वाहिनीं भवाब्धि-बीजदाहिनीम् ।
जगतत्त्रये यशस्विनीं लसत्सुधा पयस्विनीं,
भजे कलिन्द-नन्दिनीं दुरन्त मोह भञ्जिनीम् ॥

व्रजेंद्रसूनु एवं राधिका के हृदय में भरे हुए महान रस के समुद्र से पूरित अति तीव्र वेग के साथ श्री यमुना जी प्रवाहित हो रही हैं। अत्यन्त वेगवती होने से दोनों तट बन्धनों को तोड़ते हुए जल-छलक रहा है। वस्तुतः यह उफान श्री राधाकृष्ण के हार्द-रस का उच्छलन ही है।

नौझील से उझानी खादर की दूरी १२.२ कि.मी. है।

मोरकी

विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधुहंसकैः ।
बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥

(भा.१०/१२/८)

पक्षियों की छाया के साथ दौड़ना, यह भी कोई खेल है।

महैश्वर्यस्य द्योतने वाद्योतने च नरलीलत्वानतिक्रमो माधुर्य्यम् ।

(रागवर्त्म चन्द्रिका द्वितीय प्रकाश-३)

प्रभु की जिन लीलाओं में ऐश्वर्य का द्योतन है, वे तो फिर भी समझी जा सकती हैं किन्तु जहाँ वह अति प्राकृत बन गया है वहाँ तो विधि को भी व्यामोह हो जाता है –

(रा.सु.नि. १६८)

कभी वह बाल केलि कर रहा है और कभी अकस्मात् कैशोर को प्राप्त हो जाता है। तर्कातीत है ये लीला।

"किये चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप"

(रा.चरि.मा.उत्तर. ७२)

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः ॥

(भा.१०/८७/२१)

जिस आत्मतत्त्व का ज्ञान मनुष्यों के लिए असम्भव सा ही था, उसके ज्ञान के लिए ही श्रीभगवान् ने नरावतार लिया, नरानुरूप लीला की। अर्थात् उनकी नरलीला को समझना बहुत सहज है।

गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ।

(भा. ६/३/२१)

वस्तुतः भागवत धर्म जहाँ बहुत सहज है, वहाँ उतना कठिन भी है।

यह धर्म विशुद्ध है अर्थात् कटुता नहीं है अतः इसे समझना अत्यन्त सरल है किन्तु श्रद्धा के बिना यह दुर्बोध भी है अतः **"श्रद्धा ही फुलेल औ उबटनो श्रवण कथा मैल अभिमान अंग-अंगनि छुड़ाइये"** अभी हमारा अंग अहं से मलिन है, कहाँ से परा श्रद्धा होगी। बिना परा श्रद्धा के भागवत धर्म को समझना सम्भव कहाँ।

अब यहाँ समवयस्क बालकों के साथ शुक और कपोत की छाया के पीछे दौड़ रहा है, कितना अबोध बन गया।

कभी पीताम्बर के दोनों छोर पकड़कर झूमता हुआ हंस की गति से चल रहा है। वाह कन्हैया वाह, पीताम्बर तो बिलकुल पंख ही लग रहा है, श्रीदामा बोला।

वारि डारौं री! तेरी सूधि चलनि पर हौं कोटि हंस गतिनि ।
वाम कर कटि देकें, दच्छिन भुज खरावति,
मन्द मन्द चरन धरति छवि भाँति भाँतिनि ॥

(कृष्ण दास जी)

सुबल, अर्जुन भी कटिफेंट को पंखवत् धारण कर कन्हैया के पीछे दौड़ने लगे। विनोदी मनसुख बगुले की तरह ध्यान लगा, मौन हो बैठ गया।

भैया मनसुख! ध्यान मत्स्यों का लगा रहे हो या लड्डुओं का – तोष ने विनोद किया, सब सखा हँस पड़े। दाऊ भैया का नीलाम्बर धारण कर अब कन्हैया ने मोर की भाँति नृत्य किया।

मोर की भाँति नृत्य करने से ही यह स्थान "मोरकी" प्रसिद्ध हुआ।

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

छबि मोरनि की भाँति देखि नाचै गोपाला।
मिलवत गति भेद नीके मोहन रिपुकला॥
गरजत घन मंद-मंद दामिनि दरसावै।
झिमिकि-झिमीकि बूँद परै राग मलार गावै॥
चातक पिक सिखर कुञ्ज बार-बार कूजै।
वृंदावन-कुसुम-माल चरन कमल पूजै॥
सुर नर मुनि कामधेनु देखनि कौतुक आवै।
भगत उचित बारि फेरि 'परमानन्द' परवै॥

मयूर-नृत्य आरम्भ हुआ, श्यामसुन्दर मयूरों के गति-भेद (ग्रीवा मटकाना, पंख फैलाना, मयूर की ध्वनि करना) सुन्दर ढंग से लेने लगे।

मयूर मेघ को देखकर नाचता है। यहाँ मयूर को देखकर मेघों की गर्जना आरम्भ हुई, विद्युत कौंधने लगी, रिमझिम-रिमझिम वर्षा आरम्भ हुई और सखा समूह “मलार” आलापने लगा। सम्पूर्ण वन पक्षियों के रव से गूँज उठा। सुर, नर, मुनि और स्वर्गीय कामधेनु श्यामसुन्दर का मयूर-नृत्य देखने को आये, दर्शन कर स्वयं को कृतकृत्य समझने लगे।

होड़ परी मोरनि अरु स्यामहिं।
आवहु-मिलहु मध्य सचु की गति,
लैहि रंग धौ कामहिं॥
हमारे तुम्हारे मध्यस्थ राधे और जाहि बदौ,
बूझि देखौ तृन दै कहा है यामहिं।
श्री हरिदास के स्वामी कौ चौपर कौ सो खेल,
इकगुन, दुगुन त्रिगुन चतुरागुन री जाके नामहिं॥

(श्रीकेलिमाल-८२)

पुनः –

नाचति मोरनि संग स्याम मुदित स्यामाहिं रिझावत।
तैसीयै कोकिला अलापत पपीहा देत सुर तैसेई मेघ गरजि मृदंग बजावत॥
तैसीयै स्याम घटा निसि सी कारी तैसीयै दामिनी कौंधि दीप दिखावत।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी रीझि राधे हँसि कंठ लगावत॥

(श्रीकेलिमाल-९६)

बाजना से होडल-हसनपुर रोड पर मोरकी २.३ कि.मी. की दूरी पर है।

नौहझील

भगवल्लीलाओं का क्षेत्र कोई बहुमंजिला आवासीय परिसर नहीं अपितु वन-उपवन, नदी-सरोवर एवं सुरम्य पर्वत श्रेणियाँ ही रहे हैं, मथुरा से ३० मील दूर एक कस्बा नौहझील है जो कभी ६ मील लम्बी झील के किनारे बसा था। उस समय एक किले व भव्य मन्दिरों के अवशेष यहाँ पाए गए थे। झील शब्द में अप्रतिम प्राकृतिक सौन्दर्य का

नौहझील किले के अवशेष

वह विहंगम दृश्य समाया हुआ है, जहाँ विशाल जल भण्डार में अटखेलियाँ करते अनगिनत जलचर, नाना प्रकार के रंग-बिरंगे दुर्लभ पक्षियों का मनहर कलरव, किनारों पर सघन वृक्षों की श्रृंखला तथा अत्यन्त दुर्लभ प्रजातिओं के वन्य जीव जो स्वभावतः पारस्परिक शत्रुता के आदी होते भी इन प्राकृतिक अभ्यारण्यों में साधिकार निर्द्वन्द

विचरण करते दिखाई देते हों। यमुना की तलहटी में मथुरा के पश्चिम में स्थित नौहझील की झील अति विस्तृत रही थी। इतना बड़ा जल भण्डार ब्रज में अन्यत्र नहीं था। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार कालियनाग सपरिवार इसी झील में निवास करता था। इस कारण यहाँ का जल विषैला हो गया था। इस झील में खिलने वाले कमल पुष्प भी अधिकांशतः नीले रंग के थे। नील कमलों की यह झील नाग झील भी कहलाती थी जो बाद में नौहझील के नाम से जानी जाने लगी। लोक कथाओं के अनुसार कंस यहाँ के नील कमल और उसमें कालिया के निवास से विषाक्त जल से अवगत था। उसने श्रीकृष्ण वध के षड्यंत्र में नन्दबाबा को भगवान् शंकर की पूजा के लिए वहाँ से १०८ पुष्प लाने का सन्देश दिया था। नंदबाबा राजाज्ञा से विचलित रहने लगे। सर्वज्ञ श्रीकृष्ण ने नंदबाबा की चिन्ता को जानकार इस झील को विषमुक्त करने का निश्चय किया। श्रीकृष्ण ने उस झील में छलांग लगा दी और १०८ कमल पुष्प ले आये जिनसे कंस ने शिवपूजन किया। देवाधिदेव महादेव को उन पुष्पों में भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन हुए। दर्शन की लालसा में भगवान् शिव ने गोपी रूप धारण कर गोपेश्वर नाम प्राप्त किया। जहाँ से श्रीकृष्ण ने यमुना में छलांग लगाई थी बसई गाँव में आज भी वे चरण चिन्ह दर्शनीय हैं। इन चरण चिन्हों को वृक्षों ने आच्छादित कर रखा है। यह गाँव भगवान् कृष्ण की लीलाओं का मनोहारी स्थल है।

श्री राधा गिरिधारी मंदिर - नौहझील

नौहझील से गोमत २० कि.मी. एवं छाता से नौहझील की दूरी २३.६ कि.मी. है।

बाजना

ब्रज के समस्त लीला-स्थलों का प्रकाश हो, इस दृष्टि से सन् १९८८ से चल रही श्रीराधारानी ब्रजयात्रा के संरक्षक पूज्य बाबा श्री द्वारा अन्तर्वेदी यात्रा क्रम के साथ-साथ सन् २००७ में सीमावर्ती यात्रा क्रम का शुभारम्भ हुआ। यवन बहुल क्षेत्र होने से लूट-पाट, उत्पात के भय ने सीमावर्ती यात्रा परम्परा को लुप्त ही कर दिया था। परिणाम, यात्रियों का आवागमन बन्द होने से सीमावर्ती स्थल उपेक्षित हो गये।

दीर्घकाल के विरोध के बाद पूज्य बाबा श्री का कहना था – 'इस बार की यात्रा सीमावर्ती यात्रा होगी।' यात्रा प्रारम्भ हुई, आश्चर्य था कि सभी क्षेत्रों में यात्रा का भव्य स्वागत हुआ। यात्रा ने जब बाजना में प्रवेश किया तो लोगों का कहना था कि इस क्षेत्र में यात्रा जाएगी तो दंगा होगा किन्तु श्रीहरिनाम संकीर्तन की तुमुल ध्वनि के साथ जब पूज्य श्री के संरक्षण में यात्रीगणों का ग्राम में प्रवेश हुआ तो मानस वाणी साकार हुई –

जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी।
तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी॥

(रा.च.मा. अयो. कां.-२६२)

यात्रा का भव्य स्वगत हुआ, ब्रजयात्रियों को ब्रजवासियों का अपार स्नेह प्राप्त हुआ। मार्ग में कई कि.मी. तक मची कीच पर ग्रामवासियों ने ट्रॉली की ट्रॉली मिट्टी डाल उसे पाट दिया। ब्रजवासियों के स्नेह से द्रवित हजारों ब्रजयात्रियों ने उस स्वच्छ-सुन्दर मार्ग में चलते हुए कीर्तन की वो धूम मचाई – समस्त ग्राम नृत्य-गान (ब्रज रस) में डूब गया।

आज की यात्रा के बाद यात्रियों को अद्भुत आनन्द की अनुभूति हुई। संध्याकालीन सत्संग में पूज्य बाबा श्री ने ब्रजवासियों की मुक्त कण्ठ से जब प्रशंसा की तो ब्रजयात्रियों ने भी करतल ध्वनि से ब्रजवासियों का हृदय से अभिनन्दन किया।

पश्चात् पूज्य बाबा श्री ने कहा कि – देखो, ब्रजयात्रियो व ब्रजवासियो! श्रीराधारानी ब्रजयात्रा २ मुख्य उद्देश्यों को लेकर चल रही है – प्रथम तो लुप्त लीला स्थलों का प्रकाश, द्वितीय ब्रज के गाँव-गाँव में भगवन्नाम संकीर्तन की गूँज।

वस्तुतः नाम में वह शक्ति है जो नामी में भी अलक्षित ही रही। जब से हम ब्रज में आये ५४ वर्ष हो गये, अनेक बार अनुभव किया इस शास्त्रोक्ति का।

ब्रजवासियो! हम द्रव्य का सहयोग तो किसी से चाहते ही नहीं हैं। हमें सहयोग चाहिए केवल भावनाओं का। आप यदि इस 'नाम प्रचार' महायज्ञ में सहयोग देते हैं तो सबसे बड़े समाज सेवी हैं, सबसे बड़े देश सेवी हैं।

आज भारतवर्ष शक्तिहीन हो गया, १२-१३ बार इसका विभाजन हुआ, पहले बर्मा, श्रीलंका ये सब भारतवर्ष के ही आधीन थे। १९११ में लंका भारत से विभक्त हुआ, १९३७ में बर्मा तथा १९४७ में पाकिस्तान फिर बांग्लादेश पृथक् हुआ, काश्मीर को भी पाकिस्तान ने ले लिया। चीन ने तिब्बत को ले लिया, कुछ अरुणाचल प्रदेश का भाग लिया और तो और भारत की निधि कैलाश मानसरोवर को भी चीन ने ले लिया। इस प्रकार ३ बार चीन ने, ३ बार बांग्लादेश ने भारत-भाग को हड़पा। कच्चातीवू तत्कालीन प्रधानमंत्री ने स्वयं दे दिया किन्तु अभी तक भारतवासियों की आँख नहीं खुल रही है। कहने को भारत स्वतन्त्र है किन्तु भारतीय न राम मन्दिर बना सकते, न कृष्ण मन्दिर, यह है सांस्कृतिक गुलामी। ऐसी परिस्थिति में भारत केवल भगवन्नाम द्वारा ही सशक्त हो सकता है।

भिक्षा माँगकर खाने वाला यह स्थान (श्री मानमन्दिर), जहाँ चौका-चूल्हे तक का कोई प्रबन्ध नहीं है। सभी साधु-साधक भिक्षावृत्ति से रह रहे हैं, यह भगवन्नाम का ही चमत्कार है; ४० हजार से अधिक गायों की सेवा, यमुना रक्षा अभियान, ब्रज के कुण्ड, वन, पर्वतों की रक्षा, ३० हजार से अधिक गाँवों में नाम प्रचार के साथ-साथ निःशुल्क ढोलक-माइक वितरण, १५ हजार से अधिक यात्रियों की सेवा, ४० दिन तक उनके आवास, औषधि, भोजन-पानी व अन्य सभी आवश्यकताओं की पूर्ति ......यह सब कैसे हो रहा है, कोई नहीं जानता है किन्तु इतना अवश्य है कि भगवन्नाम की शक्ति ही इसे चला रही है। इसे ज्वलन्त-जाग्रत् उदाहरण न कहा जाये तो क्या कहा जाये?

बाजना के विषय में –

संगीतगोष्ठी का यह क्षेत्र अपने नाम से ही लीला का ज्ञान करा रहा है। **बाजना –** जहाँ वाद्य वादन हुआ। भागवत जी में अनेक बार भिन्न-भिन्न संगीत गोष्ठियों की चर्चा हुई है। अनेक बार संगीतगोष्ठी की चर्चा करने का अभिप्राय यही है कि संगीतगोष्ठी एक बार, एक स्थान पर नहीं हुई है। अनेक बार अलग-अलग स्थान पर सम्पन्न हुई है, जैसे – गानवन, मानागढ़ी, पारासौली तथा बरौंठ आदि में संगीतगोष्ठी हुई।

यहाँ बाजना में भी संगीत सभा हुई है।

केचिद् वेणून् वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन ।
केचिद् भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥

(भा. १०/१२/७)

केवल कन्हैया ही नहीं, ब्रज–वृन्दावन के ये सभी बालक सकल-कला कुशल हैं; कुछ वेणु वादन कर रहे हैं, कुछ सींगी वादन और कुछ तो चिन्मय-वृन्दावन के महान् गायक भ्रमरों के साथ खरज के स्वर में राग-आलाप रहे हैं, कुछ कोकिलाओं के साथ अतितार के स्वरों में गा रहे हैं।

नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ।
गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥

(भा. १०/१५/१५)

तोष का नृत्य देखकर तो लगता है मानो नृत्य कला का जनक है यह और तो और कन्हैया का नृत्यगुरु भी यही है किन्तु विनोदी मनसुख को यह अच्छा नहीं लगता कि मेरे रहते कान्हा का अन्य कोई गुरु बने।

मनसुख – "कन्हैया! हम तेरे दादा गुरु हैं।"

कृष्ण – "सो कैसे? "

मनसुख – "देख, तेरो गुरु है तोष और तोष के भी गुरु हैं हम। यह हमारौ कण्ठीबन्द शिष्य अवश्य है पर अभी हमारी तरह नृत्य नहिं जानै। अभी हमने याकू सब कला नहीं सिखायीं हैं। नृत्यशास्त्र में सबसे कठिनहै – पेट कू मटकानो। नेत्र, ग्रीवा, कटि कू यह मटका सकै पर पेट नहीं। पेट की मटकन हमते सीख।"

कटि पर कर रख विनोदी मनसुख ने ज्यों ही पेट घुमाया, सब सखा हँसते हुए लोट-पोट हो गये। छोटे अंशु ने तो मनसुख का पेट ही पकड़ लिया; बस दादा बस, अब अधिक नहीं अन्यथा भूख लग आवेगी।

ये नन्हे ग्वाल-बाल यहाँ नृत्य-गान तो करते ही हैं, जिससे ग्राम का नाम बाजना है किन्तु इनकी यह दैनिक क्रीड़ा यहीं समाप्त नहीं हो जाती, जब तक कुश्ती नहीं लड़ लेते, इनका नित्य-नियम पूर्ण नहीं होता अतः इस क्षेत्र का शास्त्राधार पर केलिवन नाम भी प्राप्त होता है, जो संगत ही है।

छोटे-मोटे ये सभी बालक जब कछनी काछकर केलिवन की कोमल-शीतल बालुका में कुश्ती को कूदते हैं तो कृष्ण-बलराम एक-दूसरे का कर पकड़कर वाह-वाह कहते नहीं थकते।

अंशु, स्तोककृष्ण ....इन नन्हे-मुन्हों को तो अभी दाँव-पेच का भी ज्ञान नहीं है, इनके लिए तो बस जांघ प्रदेश पर करतल ठोंकना, 'आ जा-आ जा' कहकर मित्रों को ललकारना और फिर बालू में गिरकर कलामण्डी खा लेना ही कुश्ती है। स्नेहार्द्र ये नन्हे-मुन्हे एक-दूसरे की छाती पर लगी धूल को झारते हैं, युद्धश्रम की श्रान्ति को दूर करने के लिए कहो तो कछनी खोलकर ही ब्यार डुलाने लगते हैं, नग्न होने की भी परवाह नहीं है इन नादानों को, कटि पर कर रखकर पूछते हैं – "कान्हा दादा और बड़े दादा! आज केलिवन की कुश्ती-क्रीड़ा में हममें ते कौन-सो मल्ल जीतो? "

कृष्ण बोले – "अरे अंशु! तू तो ऐसो युद्ध करे कि कोई मल्ल हू नहिं कर सके, तू तो मल्लगुरु है।"

सुनकर अंशु ने अपनी दोनों भुजा फैलायीं और झूल गया कान्हा दादा के गले से।

दादा! फिर तो तू भी हमते मल्लयुद्ध सीख लै, अंशु बोला।

अवश्य, अवश्य अंशु, कृष्ण बोले।

अरे भाई कन्हैया! मल्ल बाद में बनियो पहले नाच के दिखा, श्रीदाम बोला।

हाँ-हाँ कन्हैया आज तो नृत्य दिखानो ही पड़ेगो, सब सखा बोले।

बस फिर क्या था, हो गई लीलारम्भ –

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ।
वेणुपाणितलैः श्रृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥

(भा.१०/१८/१०)

कन्हैया ने जब नृत्यारम्भ किया तो स्तोककृष्ण ने बांसुरी बजाना आरम्भ किया, आयु में तो अभी बहुत छोटा है यह कृष्ण से किन्तु है पूरा प्रतिरूप ही।

अवसर पाते ही कन्हैया की कामर कंधे पर रख, त्रिभंग खड़ा हो, बांसुरी बजाकर ब्रज में अनेक बार गोपिकाओं को भ्रमित कर देता है; वे कहती हैं – "अरी, देखो तो यह नीलमणि चाचा नन्दन का है अथवा बाबा नन्द का! "

अब तो सब स्तोककृष्ण को छोटा कन्हैया ही कहते हैं। श्रीकृष्ण जब-जब नृत्य करते हैं, यह पार्श्व में खड़ा होकर बांसुरी बजाने लगता है, ऐसा प्रतीत होता है मानो एक कन्हैया तो नृत्य कर रहा है व दूसरा वंशी-बादन।

ऋषभ, अर्जुन मिलकर सींगी वादन कर रहे हैं, विशाल व भद्र करतल से ताल दे रहे हैं। मनसुख की तो सभी क्रिया विचित्र है, कुछ न तो पेट पर ही ढोल बजाने लगा। दाम, सुदाम, वसुदाम, विजय, सुभद्रादि शेष सब सखा इस अद्भुत गायन-वादन युत नृत्य की वाह-वाह...! क्या उत्तम गति है..!! कैसा विलक्षण पदविन्यास है....!!! कहकर प्रशंसा करने लगे।

क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ।
शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥

(भा. १०/१८/१३)

मधुमंगल – "कन्हैया! तोकू ताल देते-देते हमारे ढोल (पेट) के फटवे की स्थिति आ गई है, यदि तेने नृत्य बन्द नहीं कियो तो ढोल को सब मसालो बाहर आ जायगो।"

कृष्ण – "दादा मनसुख! तू कहा चाहे? "

मनसुख – "तेरे नृत्य को वनवास और हमारे नृत्य को राज्यतिलक।"

(सभी सखा हँस पड़े)

अच्छौ तो अब तू नाचनो चाहै, हँसते हुए कृष्ण बोले।

मनसुख – "हाँ-हाँ यही बात है।"

अब राम-श्याम ने गायन-वादन आरम्भ किया व अन्य सब सखाओं ने नृत्य।

ये सब, सकल-कला-निष्णात हैं।

इनके नृत्य-गान को देखने विधि-शिव पारमेष्ठ्य, कैलाश छोड़कर यहाँ आते हैं, स्तुति-वन्दना करते हैं। इसका प्रमाण है – श्रीमद्भागवत। अभी ये कुमारावस्था (१ से ५ वर्ष तक) के ही शिशु हैं और इनकी संगीतगोष्ठी में सम्मिलित होना तो कठिन है, उसका दर्शन ही मिल जाय तो देवगण स्वयं को कृतार्थ समझते हैं, कभी स्तुति करते हैं तो कभी पुष्पवृष्टि।

भागवत जी में अनेक बार देवों द्वारा राम-श्याम व ग्वाल-बालों की स्तुति की चर्चा है –

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम्।
नन्दसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार॥
मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं मानयन् मलयजस्पर्शेन।
वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः॥

(भा. १०/३५/२०, २१)

गोपीजन कह रहीं हैं – "पुण्यशाली यशोदा मैया को कोमल चित्त वारे लाला की प्राप्ति भई है, सदैव सखाओं को सुख पहुँचाने वाली सेवा (हास-परिहास, तन्मनोनुकूल चेष्टा) करते हैं, कुन्दकली का हार पहनकर गो-ग्वालों से समावृत हो कालिन्दी-कूल पर जब क्रीड़ा करते हैं तो वायु चन्दन की तरह शीतल-सुगन्धित होकर मन्द-मन्द जाती है और श्यामसुन्दर के श्री अंग का स्पर्श करती है, उस समय गन्धर्व आदि उपदेव स्तुति-वन्दना करते हैं, उपहार देते हैं।"

इसी प्रकार आगे भी **"वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः" में** देवों द्वारा वन्दना की चर्चा है।

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः॥

(भा. १०/३५/२२)

उक्त श्लोक में सभी आचार्यों ने माना ब्रह्मा जी आदि देव आये हैं।

"वृद्धैर्ब्रह्मादिभिः पथि वन्द्यमानचरण यस्य"

(श्रीधरी कृत 'भावार्थदीपिका' में)

"वृद्धैर्ब्रह्मादिभिः पथि वन्द्यमानौ चरणौ यस्य"

(श्रीमद् वीरराघवाचार्य कृत 'भागवत चन्द्रचन्द्रिका' में)

"वृद्धैः ज्ञानेन वयसा च सर्वेभ्यः श्रेष्ठैः
ब्रह्मादिभिर्वन्द्यमानौ चरणौ यस्य सः"

(श्रीमच्छुकदेव कृत 'सिद्धान्तप्रदीप' में)

'ब्रह्मा आदि' से शिव, वरुण, अरुण ....सभी देवों का ग्रहण किया गया है।

काम्यवन में भी जिस समय गोपक्रीड़ा चल रही थी, देवों ने पुष्पवर्षा की है।

सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।
हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥
महदतिक्रमणशङ्कितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।
सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभिश्छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥
(भा. १०/३५/१२, १३)

गोपियाँ कह रहीं हैं – "अरी सखी! मैया के पहनाये मणि कुण्डल तो न जाने कहाँ फेंक दिये इस साँवरे सुकुमार ने, लाल-पीले फूल कर्ण में धारण कर रखे हैं, बलराम के साथ गिरि-शिखर/चरण पहाड़ी पर बांसुरी बजा रहे हैं।"

"बांसुरी का तो क्या बजाना, इस ब्याज से हर्ष में भरकर वेणुनाद से समग्र विश्व का मंगल कर रहे हैं" दूसरी गोपी बोली।

"किन्तु यह कैसा आकस्मिक हर्ष है? " एक ने पूछा।

"अरी, तू नहीं जानती, यह अवगुण्ठित हर्ष है; अवश्य ही इसने गिरि-शिखर से श्रीकुण्ड पर छविधामिनी-इन्दुहासिनी श्रीराधारानी को देखा है, बिना श्रीराधा दर्शन के यह वाणी और वर्ण से अप्रकट ही रहने वाला हर्ष सम्भवनहीं है।" एक सखी ने कहा।

श्री परमानन्द स्वामी का भी यही कथन है –

आनन्द सिन्धु बढ्यो हरि तन में ।
श्रीराधा मुख पूरन शशि निरखत ॥

पूर्णमासी के चन्द्र को देखकर ही समुद्र में ज्वार-भाटा आता है, यहाँ नीलसिन्धु श्रीकृष्ण में गोरचन्द्र श्रीराधा को देखकर जातहर्ष – हर्ष का ज्वार-भाटा आया।

और तो और सृष्टि भी स्तुति कर रही है –

इन मेघों को देखो, महद् अपराध के भय से मन्द-मन्द वेणु के स्वर में ही गर्जना करते हैं, इतना ही नहीं सूर्य की किरणें तनिक भी उष्ण होती हैं तो तुरन्त छत्र का छाया करते हैं मानो प्रेम से उमड़े इन मेघों ने अपना जीवन ही श्यामसुन्दर को न्यौछावर कर दिया है, पानी की नन्ही-नन्ही शीतल-कोमल फुहियों की ऐसी वृष्टि करता है मानो पुष्पवर्षा कर रहा है। इसी क्रम में अवसर पाते ही देवगण भी दिव्य पुष्पों की झरी लगा देते हैं।

नौझील से बाजना की दूरी ६.६ कि.मी. है।

कोलाना

आज तो न जाने क्या सूझा इन ऊधमियों को कि बेचारे सुबल को श्रान्त कर दिया।

किन्तु इन लीलाओं से कृष्ण को यथेष्ट आनन्द देना ही इनका लक्ष्य है, इनकी सुख-संविधान की प्रणाली भी अनूठी है, कौन बूझे?

प्रतिदिन की भाँति आज भी ये ग्वाल-बाल अपने-अपने घर से छाक लाये थे।

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में छाक –

फेनी बाबर खुरमा खाजा गूझा मिस्री लड्डुआ लीजै।
बांटि देत ग्वाल-बाल कौ परमानन्द जननी कर लीजै॥

अथवा

सखा-मंडली समेत जेंइये बलि जाउं कहति जसोदा माई।
खीर खांड़ घृत माखन मिस्री जो चाहौ सो लेहौ भाई॥

अथवा

इह मोदक पकवान मिठाई खीर सँजावलि अधिक बनाई।
आनिहु खिचरी बहुत सँधाने पापर सेकि धर्यो गुन लाई॥
सूप सस्तुली पूरी दधि ओदन बहुत जु रूचि करि खाई।

वन की शोभा देखते हुए सब ग्वाल-बाल आगे बढ़ रहे हैं किन्तु मनसुखा का उदर सबसे पहले क्षुधा की घंटी बजाता है।

मनसुख – अरे कन्हैया, आज तो यहीं भोजन किया जाय।

कृष्ण – भैया, भोजन तो बाद में भी हो जायगा, पहले इस वन की शोभा तो देख लें, देख, आज ये तरु श्रेणी कैसी नूतन सज्जा के साथ अवस्थित है, कानन सुरभित सुमनों से आच्छादित है अलिकुल का गुंजार तो सुन, लगता है खरज का षड्ज लगा रहे हैं।

चतुर्दिक हरीतिमा का साम्राज्य हो गया है।

शीतल-मन्द सुगन्धित पवन भी सेवारत है।

मनसुख – अच्छा ठीक है, तुम वन की शोभा देखो किन्तु मुझे तो कुछ और ही दिखाई पड़ रहा है।

मनसुख की दृष्टि आज सुबह से सुबल के कंधे पर लटकते लड्डुओं के छींके पर है। बहुत सावधानी से उसका अनुगमन कर रहा है।

कंधे पर बढ़िया घी से तर बेसनी लड्डू लकुटी में लटकाकर ओर लकुटी को अपने कन्धों पर रखकर सुबल गाता हुआ जा रहा है –

ओ ऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ कदम तर आय जइयो

कटीले कजरा वारी।

नैक मुखड़ा सुघर दिखाय जइयो,

कटीले कजरा वारी।

पीछे-पीछे विनोदी मनसुख अनुगान करते हुए अवसर पाकर सुबल के छींके से चुपचाप एक लड्डू निकाल लेता और एक कनैल का गोता (कनेर के फूल में लगने वाला फल, जो कि खाया नहीं जाता है) डाल देता एवं पुनः अनुगान करने लगता।

कटीले कजरा वारी, ओ लजीले नैना वारी ऽऽऽ इस प्रकार धीरे-धीरे मनसुख ने सुबल के सब लड्डू निकाल लिये व कनैल के फल से उसका छींका ज्यों का त्यों भर दिया।

मनसुख – अरे कन्हैया, बहुत भूख लगी है।

ओ सुबऽऽऽऽऽऽल, ओ श्री दामाऽऽऽऽ चलो भोजन आरम्भ करें, कन्हैया ने सबको पुकारा।

अहो अहो सुबल अहो श्री दामा अर्जुन भोज बिसाल ।
अपने अपने ओदन लावहु आज्ञा दई है गोपाल ॥

(परमानन्द स्वामी)

मुखिया की आज्ञा पाते ही सभी बालक दौड़ पड़े अपनी-अपनी छाक लेकर।

कर अँगुरिनी अँगुरिनीबिंच राखे बाँटि बाँटि सबहिन को देत ।
'परमानन्द' स्वामी-संग क्रीडत प्रेम पुंज को बाँध्यो सेत ॥

कोई कदलीपत्र में अपना भोजन रख रहा है तो किसी ने कमलपत्र को थाली की तरह बिछा लिया है, किसी ने नारिकेल फल को कटोरा बना लिया है तो कोई पलाश-पत्र बिछाये बैठा है, कोई अँगुलि-संधि में सेब, आंवले के मुरब्बे को दबा रहा है। विविध पक्वान्न वन्य पात्रों में सजा दिये गये हैं। मनसुख ने भी अपने छींके से सुबल के बेसनी लड्डू निकाले और लगा खाने।

श्री दामा – अरे पेटू, पात्र में रखकर तो खा।

मनसुख ने (उदर की ओर संकेत करते हुए) कहा – ये है तो सही इतना बड़ा उदरपात्र।

(सब हँस पड़े)

भैया सुबल, तुम्हारे छींके में आज क्या माल है मनसुख ने पूछा।

सुबल ने बहुत प्रसन्नतापूर्वक छींके में हाथ घुसाया।

सुबल – किन्तु ये लड्डू इतने कड़े कैसे हो गये?

जैसे ही हाथ बाहर निकला तो देखा ये लड्डू नहीं कनैल के गोते हैं, सुबल के उदास मुख को देखकर सब सखा हँस पड़े।

अरे सुबल, आज तो तेरी मैया ने कनैल के लड्डू बनाये हैं, मनसुख बोला।

श्री शुकदेव जी ने भी गाया –

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ।
तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥

(भा. १०/१२/५)

कोई किसी का छींका चुरा लेता है, तो कोई किसी का लकुट या बाँसुरी। चुराने वाला किसी दूसरे के पास फेंक देता है, दूसरा तीसरे के पास, तीसरा चौथे के पास .... इस तरह परस्पर परिहास करते हैं।

सख्य क्रीड़ा में इस प्रकार का कोलाहल होता है। यह कोलाहल ही इस क्षेत्र का इतिहास बना। कोलाहल का अपभ्रंश ही कोलाना हुआ, जिसे परमानन्द स्वामी जी ने गाया –

हँसत परस्पर करत कलोल ।
बिंजन सबै सराहै माधौ मीठे कमल नयन के बोल ॥
तोरि पलास-पत्र बहुतेरे पनवारौं जोरयो बिस्तार ।
चहुँ दिसि बैठी ग्वाल मंडली जेंवन लागे नंदकुमार ॥
कौतुक देखहिं सबै देवता जज्ञपुरुष हैं नीके रंग ।
सेस प्रसाद अबहिं हम पायौ 'परमानन्द दास' हौ संग ॥

ग्वाल लीला में हुए कोलाहल से ही बना **"कोलाना ग्राम"।**

बाजना से होडल हसनपुर रोड पर ३.६ कि.मी. पर स्थित है कोलाना ग्राम।

पारासौली

पिथौरा के समीपस्थ है – श्री पारासौली ग्राम। सन् २००७ में प्रथम बार **'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा'** का यहाँ आगमन हुआ, तो स्थानीय ब्रजवासियों से स्थान माहात्म्य के विषय में पूछा गया। ब्रजवासियों का कहना था कि यह पारासौली ग्राम श्रीसूरदास जी की भजन भूमि है, जबकि सूरदास जी की भजन स्थली – गोवर्धन के समीप वाली पारासौली है। लीला स्थलों की उपेक्षा व ग्रन्थों के अनवलोकन से स्थानीय

ही स्थान-माहात्म्य को भूल क्या गये, उससे अनभिज्ञ रहे। सच तो यह है कि **"स्पर्श लीला"** से पारासौली नाम हुआ है।

सखी समुदाय को राधा-माधव का व राधा-माधव को परस्पर का शीतल, सुखद स्पर्श यहाँ प्राप्त हुआ।

श्री ब्रजईश जी के शब्दों में –

हौं कैसें जमुना जल जाऊँ री, हरि मो तन हेरै॥
नीचे व्है घूँघट के मेरे सनमुख दर्पन लाय।
मुख प्रतिबिम्वहिं निरखि कैं, मेरी छिन छिन लेत बलाय॥
डगर वुहारै काँकरी री, डारत दूरि उठाइ।
मृदु वचनन मोसों यौं कहैं, तेरे चरनन जिनि चुभ जाय॥
जब ही हौं गागरि भरौं री, तब हीं बैठि अन्हाय।
तू जिनि परसै सीत में, कहै मोही पै जु भराय॥
हँसि कर सौं उठावै री, छल कर पकरै वाँह।
क्यों हूँ हठको ना रहै, मेरी मिसि करि परसै छाँह॥
जदपि सकल ब्रज सुन्दरी री, सब सों खेलै फागु।
मन वच क्रम ब्रजईश सों, नित मोही सों अनुराग॥

(श्रृं.र.सा.)

अब तो मेरा प्रत्येक कार्य एक समस्या बन बैठा है। यमुना जाती हूँ तो वह मुझे देखता है। घूँघट करती हूँ तो एक कर अपने जानु पर रखकर, दूसरे कर में दर्पण लेकर उसे मेरे सन्मुख कर देता है, दर्पण में मुखप्रतिबिम्ब को निहारता है और क्षण-क्षण में उसकी बार-बार बलैया लेता है। चलती हूँ तो अपनी कमरिया से ही मार्ग का मार्जन करने लगता है।

जहाँ-जहाँ चरन परत प्यारी जू तेरे,
तहाँ-तहाँ मन मेरौ करत फिरत परछाँहीं।

(श्री केलिमाल – ५३)

मार्ग का एक-एक कंकड़ कर से फेंकता है फिर मीठी वाणी से कहता है – "अरी ओ सुकुमारी! अब निशंक चली आ, मार्ग के सब कंकड़-कण्टक मैंने बीन-बीन कर फेंक दिये हैं नहीं तो तेरे कोमल चरणों में चुभ जाते।"

स्नान करने बैठती हूँ तो समीप ही आसीन हो जाता है, गागर भरने लगती हूँ तो बाँह पकड़कर कहता है – "अरी ओ! सुन, तेरी गागर मैं भर दूँगा, तू जाड़े में जल स्पर्श मत करना, नहीं तो ठिठुर जाएगी।"

यह ढोटा छल से कभी मेरी बाँह पकड़ता है, डांटने पर परछांई छूता है। ब्रज में कितनी ही गोपिका हैं किन्तु सर्वाधिक अनुराग इसका मुझसे ही है।

राधासुधानिधि में

अकस्मात्कस्याश्चिन्नववसनमाकर्षति
परां मुरल्या धम्मिल्ले स्पृशति कुरुतेन्याकर धृतिम् ।
पतन्नित्यं राधापद कमलमूले ब्रजपुरे
तदित्थं वीथीषु भ्रमति स महा लम्पटिमणिः ॥

(रा. सु. नि.- २३२)

गोपियों का एक समुदाय जो दधि-विक्रय को जा रहा था, तभी छोटे-छोटे बालकों के साथ उस चंचल ने एक गोपी का अंचल खींचा, वह सिर से सरक गया परन्तु इस गर्वीली ने भी मुड़कर देखा तक नहीं। नटखट ने तुरन्त फेंट में कसी वंशी निकाली, वंशी से जूड़े का जब स्पर्श किया तो उसका जूड़ा खुल गया। आश्चर्य कि उस गजगामिनी ने इतने पर भी मुड़कर नहीं देखा। अब तो एक ही अस्त्र रह गया था साक्षात् "कर स्पर्श"। आगे बढ़कर जैसे ही उसके कर से कर मिलाया, वह डूब गई उसके स्पर्श-सुख-सिन्धु में। यही थी पारासौली की लीला।

होरी लीला व पारासौली की लीला का परस्पर निकटतम सम्बन्ध है

रूप बावरो नंद महर कौ बहुरि बन्यौ होरी को छैल ।
रोकत टोकत घूँघट खोलत भरि पिचकारी,
तकत उरोजनि गोकुल री माई चलत न गैल ॥
छल सो मसल गुलाल कपोलन निरखि रहत,
पुनि लाज न आवत हियें भरत होरी कै फैल ।
कहिये कहा और सहचरि सुख मदन मवास,
रहत ब्रज जाके अंग अंग जु कटीली सैल ॥

(श्रृं.र.सा.)

सम्पूर्ण विश्व में festival of colours के नाम से जाना जाने वाला होलिकोत्सव बहुत ही व्यापक है। होरी लीला एक ऐसी लीला है जो सम्पूर्ण ब्रज में हुई है। होलिकोत्सव ब्रज के सीमान्त गाँवों में भी हुआ। विशेष बात कि आज तक ब्रज के सभी गाँवों में भिन्न-भिन्न प्रकार से होलिकोत्सव मनाया जाता है। गोकुल की होरी अलग है, जतीपुरा की अलग है, नन्दगाँव-बरसाने की अलग है, रार-बाटी की अलग है, जाव-बठैन की, मुखराई की ....सब जगह की होली अलग-अलग प्रकार से खेली जाती है।

पारासौली में हुई होली लीला

होली के अवसर पर तो बिना अरस-परस के कोई यहाँ से निकल नहीं सकती। किसी का घूँघट खोल देना, किसी के उरोज पर रखकर पिचकारी चलाना, किसी के कपोलों पर गुलाल मल देना .... । इसी रस को संजोये है पारासौली।

बाजना से ४.९ कि.मी. की दूरी पर स्थित है पारासौली ग्राम।

पिथौरा

पिछोरा का अपभ्रंश ही 'पिथौरा' है। पिथौरा का सम्बन्ध श्यामसुन्दर के पीताम्बर अथवा पिछोरा से है। यहाँ की लीला का गायन अनेकों महापुरुषों द्वारा हुआ।

श्री परमानन्द स्वामी के भाव –

लीला प्रथम

पीताम्बर को चोलना पहरावत मैया।
कनक छाप ऊपर दई झीनी एक तैया॥

मैया यशोदा ने अपने साँवरे सुकुमार को मृदुल नील कलेवर पर आज नूतन पीत परिधान धारण कराया, उस कौशेय वस्त्र को लहराते-फहराते लाड़ले लाल जब पिथौरा आये तो यहाँ की गोपियों ने उन्हें घेर लिया।

१ गोपी – "प्यारे साँवरे! आज कहाँ से माँग लाये यह पिछोरा? "

कृष्ण – "माँगकर थोड़े लाया हूँ, ये तो मेरी मैया ने धारण कराया है।"

२ गोपी – "चम्पा, सुदेवी देखो तो इस पिङ्गल दुकूल में कैसी सुनहली छाप है! "

३ गोपी – "और एक ओर का छोर कितना झीना है! "

लाल इजार चुनाव की जरकस कौ चीरा।
पहुँची जरी जराव की उर राजत हीरा॥
कंठ कौस्तुभ-आवली मोतिन कौ हार।

इजार, जरकस यह एक वस्त्र विशेष है, जिसकी होली लीला में अनेकों बार चर्चा है। ये सब प्राचीन परिवेश के प्रकार हैं।

१ गोपी – "देख तो लाल के कर में पहुँची भी जराव की है।"

२ गोपी – छाती पर दप्-दप् करता वृत्ताकार हीरा और चमकती चपला की कान्ति को हेय बनाने वाली झूलती मुक्तामाल में कौस्तुभ मणि सम्पूर्ण दिङ्मण्डल को विद्योतित कर रही है।

काजर दै बेंदी दई हाँसें ब्रज की नार ॥
बेलि गुलाब जु मालती चंपे कौ हार ।
देखें खरीं ब्रज-भामिनी कछु तन न सँभार ॥

पिथौरा की गोपिका सब ओर से श्यामसुन्दर को घेरे खड़ी हैं, परस्पर कहती हैं –

१ गोपी – "अरी, तूने देखा, मैया ने लाला के नेत्र में अञ्जन लगाकर कैसा चौड़ा ठप्पा लगाया है! "

२ गोपी – "हाँ-हाँ, मैंने देख लिया, यशोदा मैया को और किसी का तो नहीं, हम गोपियों का ही भय रहता है, कहीं ये मेरे लाड़ले गोपाल को नजर न लगा दें।"

सब गोपियाँ बेसुध हो कन्हैया के अनुपम सौन्दर्य-सुषमा को विलक्षवत् देखती रह गयीं।

नंद बाबा मुरली दई, कहैं तान बजाउ ।
जोई सुनै ताकौ मन हरै परमानन्द गाउ ॥

पहली गोपी – "नन्द बाबा ने कन्हैया को यह बांसुरी पकड़ाई है।"

दूसरी गोपी – "कन्हैया! अब कोई सुमधुर तान छेड़ो।"

आरम्भ हुआ श्यामसुन्दर का वंशीवादन और मधुस्यन्दी स्वरों ने अपनी ओर केन्द्रित कर लिया गोपियों का तन-मन-वचन।

श्रीमद्भागवत में भी विशद चर्चा है पिछोर की।

लीला द्वितीय

गोविन्द लाड़लो लड़वोरा ।
अपने रंग फिरत गोकुल में, स्याम वरण जैसें भौंरा ॥
किंकिणि क्वणित चारु चल कुण्डल, तन चन्दन की खोरा ।
नृत्यत गावत वसन फिरावत, हाथ फूलन के झोरा ॥
माथे कनक वरण को टिपारो, ओढ़े पीत पिछोरा ।
परमानन्ददास को जीवन, संग डिठोना गोरा ॥

मैया-बाबा का, गोप-ग्वालों का, गोपियों का, सबका लाड़ला है यह। यहाँ तक कि ब्रज के गैया-बछरा, सब खग-मृग इसके परिचित हैं, इसके अपने हैं। सबके लाड़ में डूबा हुआ

यह लड़बोरा, गोकुल की गली-गली में रसलोभी मधुपवत् रसास्वादन (ब्रजगोपियों से रार-तकरार, तर्जन-वर्जन, हास-परिहास) करता हुआ घूम रहा है। पतली सी कटि में मणि किंकणी का अनवरत क्वणन होता रहता है, कर्ण कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, श्रीअङ्ग पर चन्दन की आड़ी, तिरछी खोर (चन्दन द्वारा की गई एक विशेष प्रकार की चित्रकारी)।

"नृत्यत गावत वसन फिरावत, हाथ फूलन के झोरा ॥"

गोपीजन कह रही हैं – अवश्य ही श्यामसुन्दर केलिवन (बाजना) की संगीत गोष्ठी से आ रहे हैं नृत्य करते, गाते। अरी, देखो तो सही, एक कर से स्वर्णिम पीत-वस्त्र का छोर घुमा रहे हैं तो दूसरे कर में रंग-बिरंगे पुष्पगुच्छ लिये हैं और नीले ललाट पर पीला तिलक कितनी अद्भुत शोभा को प्राप्त हो रहा है! नूतन मेघ-सदृश श्यामल कलेवर है, पर पीत-परिधान की भी अचिन्त्य शोभा हो रही है।

पिथौरा में पीताम्बर धारण करके मदनमोहन ने नृत्य किया है।

"परमानन्ददास को जीवन, संग डिठोना गोरा ।"

यह अन्तिम पंक्ति बहुत महत्त्व की है, डिठौना काला होता है किन्तु यहाँ डिठौने को गोरा कहा श्री परमानन्ददास जी ने; इसका कारण है – श्यामसुन्दर तो हैं काले और श्रीराधिकारानी हैं गोरी। गौराङ्गी श्रीराधा ही कन्हैया का डिठौना हैं, ऐसा क्यों?

डिठौना अर्थात् काजल से लगाया गया एक मोटा बिन्दा, जो नजर प्रतिरोधक होता है। नजर सबसे पहले डिठौना पर टिकती है, डिठौना नजर को खा जाता है और सौन्दर्य सुरक्षित रहता है।

यहाँ श्रीराधारानी श्यामसुन्दर के साथ में हैं, सबसे पहले इस गोरे चाँद पर ही नजर जाती है तो नीला चाँद आल-बवाल से बच जाता है।

ग्वाल-लीला, गोचारण लीला में बहुत उपयोगी है यह पिछोर। गायों के लिए तो गोपाल का पीताम्बर ही दिशा-निर्देशक है।

श्री प्रियदयाल जी के शब्दों में –

बोलत कान्ह बुलावत गैया ।
गिरि गोवर्धन ऊपर ठाढ़े, कर पीताम्बर लैया ॥

गिरि की उच्च शिखर पर चढ़कर मात्र पीतवस्त्र से संकेत करना होता है कि गायें थोड़ी देर में एकत्रित हो जाती हैं।

लागी भूख पियो चाहत हैं, याको पय मथि घैया ।

भूख लगने पर झट से 'घैया' निकालकर खा लेते हैं। 'माखन' और 'घैया' में अन्तर है – माखन के लिए तो पहले दूध जमाओ, दही बनाओ, फिर दधि-मन्थन से प्रकट होता

है 'माखन'। धैया में अधिक कुछ करने की आवश्यकता नहीं, कच्चे दूध के मन्थन से 'धैया' निकल आता है।

वन में 'धैया' ही गोप-ग्वालों का मुख्य भोजन है। जहाँ भूख लगी, मनमोहन पिङ्गल दुकूल का छोर हिला देते हैं। गायें भी समझ जाती हैं बालक भूखे हैं, दौड़ पड़ती हैं उनकी भूख मिटाने हेतु। वात्सल्य के कारण वत्सला के पयोधर झर-झर स्रवित होने लगते हैं; इन छोटे-छोटे ग्वाल-बालों की क्या चलाई, ब्रज का कण-कण सिक्त व तृप्त कर देती है अपने दुग्ध से। बालकों को दोहन भी नहीं करना पड़ता, बस पात्र हटाना पड़ता है, पात्र पूरित हो जाता है, आश्चर्य है कि दूध समाप्त नहीं होता। दुग्ध मन्थन कर धैया निकालते हैं और खा-पीकर अपनी भूख मिटाते हैं।

श्यामसुन्दर का यह पिछोरा गो-सेवा में भी बड़ा उपयोगी है। कभी कंधे से उतार उससे गायों का मुख पौंछते हैं, शृङ्ग पौंछते हैं, धूल झारते हैं।

श्रीचतुर्भुजदास जी के शब्दों में –

लीला तृतीय

गोविन्द गिरि चढ़ि टेरत गाय।
गाय बुलाई धूमर धौरी, टेरत वेणु बजाय॥
श्रवणनाद सुन मुख तृण धर सब, चितईं सीस उठाय।
प्रेम विवश है हूँक मार, चहुँ दिस ते उलटी धाय॥
चतुर्भुज प्रभु पट पीत लिये कर, आनन्द उर न समाय।
पोंछत रेणु धेनु के मुख ते, गिरि गोवर्धन राय॥

गायें नन्हे गोपाल के विवस्त्र तन को जब जिह्वा से चाटती हैं तो यह तो विगत श्रम होता ही है, गायों का श्रम भी दूर हो जाता है।

मोचयन् व्रजगवां दिनतापम्॥

(भा. १०/३५/२५)

...गोपियों ने कहा।

लीला चतुर्थ

एक दिन पिथौरा में कोई नयी-नवेली वधू आई। नन्दलाल चाहते हैं, कोई नव वधू ग्राम में आये तो प्रथम परिचय, प्रथम दर्शन उसे मेरा ही हो। अभी आज ही आन गाँव से आई थी, नन्दसूनु को जानती नहीं थी, कारण-पिथौरा से नन्दग्राम दूर है अतः गाय-

ग्वालों को लेकर स्वयं ही पहुँच गये उससे परिचय करने को, उसे अपना दर्शन देने को। बाहर ग्वाल-बालों के कोलाहल ने उसे विवश कर दिया झरोखे से झाँकने को। झाँका तो उसी अवस्था को प्राप्त हो गई, जो ब्रज की प्रत्येक गोपी की हो चुकी है व होती ही रहती है।

एक दिन तो मूक ही रही, उस अवर्णनीय रूपसिन्धु की लहरों में निमज्जित किसी को कहती भी तो क्या ....बताती भी तो क्या ....परन्तु कब तक न कहती, कब तक न बताती। विवश हो गई पूछने को और साथ की सहेली से पूछ ही बैठी –

श्रीमानदास जी के शब्दों में –

आवत काल्ह की साँझ देख्यो री गायन माँझ,
कौन को ढोटा री माई,
सीस मोर पगिया।
अतसी कुसुम तन चंचल दीरघ नयन,
मानो रस परी लरत युग जखियाँ॥
धातु को तिलक दिये, गुंजन के हार हिये,
उपमा न बने दिये जेती तेती नखियाँ।
राजत पीत पिछोरी मुरली बजावे गोरी,
देख भई बोरी एकटक रही अँखियाँ॥
चलत न सूधे मग डगमगत परत पग,
भामिनी भवन लाई हाँथ धरे कखियाँ।
मानदास प्रभु चितचोर जिऊँ देखत,
ओर ना उपाव दाव सुनो मेरी सखियाँ॥

नववधू – "अरी, आज वह नहीं आया? "

सहेली – "कौन? "

नववधू – "वही जो कल आया।"

सहेली – "कौन आया था कल? "

नववधू – "गाय-ग्वारियाओं के मध्य नीलम-नगीना, किसका लाला था वह?

केकी-पुच्छ भी शोभा को प्राप्त हो रहा था उसके मस्तक पर.........

अतसी कुसुम-सा उसका नीला-वपु ....

कर्णान्त सुदीर्घ चंचल युगल नयनों से जब वह इधर-उधर झाँकता तो ऐसा लगता मानो उसके दोनों नेत्र परस्पर झगड़ रहे हैं ....

ब्रज की लाल-पीली रज का ललाट पर तिलक था ....

वक्ष पर गुंजा की माला झूलती हुई कुछ गुनगुना रही थी ....

और क्या वर्णन करूँ ....जो देखा था उसका वाणी व वर्ण द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता ....

कटि में बद्ध पटपीत, अधर पर विराजित मुरली और मुरली से जब बजी राग गोरी की स्वर लहरी, मैं तो हो गई बौरी।

बैठी मृगनैनी खोल बैन सुखदैनी ऐन,
सजन सिंगार लागी अँगना दिवारी में।
नन्दराम तोलौं मनमोहन मधुर प्यार,
मधुर बजाई फूंकी बांसुरी किआरी में॥
अटकी करेजे तान अटकी अनोखे नेन,
चटकी चली दै ताल पटकी पिछारी में॥
सेज गिरी जेहरी (चरणाभूषण) अंगूठी देहरी के द्वार,
मारग में बाजूबन्द बांक फुलवारी में॥

मेरी दृष्टि अपलक टिक गई उस अनिन्द्य सुन्दर पर। उस लकुटीधर की चाल भी मानो जाल थी, देखा सो फँसा ....

त्रिभंग चाल, त्रिभंग ही उसकी गति, मद भरे गजराज की तरह झूमता, डगमगाता चला जा रहा था।"

आखिर इतना प्रिय क्यों है पटपीत?

श्री सूरदास जी के शब्दों में –

बलि बलि बलि हों कुँवरि राधिका नंदसुवन जासों रति मानी।

बलिहारी है उन श्रीराधिकारानी की जिनके प्रेम में बिक गये नन्दलाल।

वे अति चतुर तुम चतुर शिरोमणि, प्रीति करी कैसे होत है छानी॥

दोनों ही बड़े चतुर हैं। प्रेमराज्य में प्रेम को सुगुप्त रखने में जो कुशल है, वही चतुर है। दोनों बड़े कुशल प्रेमी ठहरे। प्रेम को बहुत छिपाया किन्तु प्रेम भी वह वस्तु है जो छिपाए नहीं छिपती।

वे जु धरत तन कनक पीतपट, सो तो सब तेरी गति ठानी।

सखियाँ कह रहीं हैं – राधिका का नीलाम्बर और श्यामसुन्दर का पीताम्बर प्रेम का ही परिचायक है।

राधा का वर्ण है सुनहला-पीला : पीताम्बर का धारण करना अर्थात् श्रीजी की कान्ति को अंक में धारण करना।

ते पुनि श्याम सहजबे शोभा, अम्बर मिस अपने उर आनी ॥

श्रीजी भी उस नीलमणि की नीली कान्ति को नीली चोली, नीला निचोल व नीलाभ शाटिका के ब्याज से निज अंक में धारण करती हैं।

पुलकित अंग अबहिं ह्वै आयो, निरखि देखि निज देह सियानी ।
'सूर' सुजान के बूझे, प्रेम प्रकाश भयो बिहँसानी ॥

सखियों का यह सम्वाद सुनते ही लजीली-सकुचीली वृषभानुजा का रोम-रोम पुलकावली मण्डित हो गया – 'अरे! ये सब कैसे जान गयीं इस अवहित्थामय (आन्तरिक भाव-गोपन) व्यवहार को ....! '

श्रीमद्भागवत जी में भी अनेक बार चर्चा हुई पिछोरा की –

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥

(भा. १०/२३/२२)

अथवा

पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

(भा. १०/३२/२)

इस प्रकार श्रीशुकदेव प्रभु ने भी पिथौरा का लीला-गान किया।

नौझील से शेरगढ़-हसनपुर रोड पर ६.६ कि.मी. की दूरी पर स्थित है पिथौरा।

भदनवारा

इस स्थलविशेष को भद्रासखी (यूथेश्वरी) की निवास स्थली के रूप में भी वर्णित किया गया है। कतिपय ग्रामवासियों के अनुसार अतीत में कुण्ड के पास वनिकावन था, जो वर्षों पहले नष्ट हो गया। यहाँ पाँच सौ वर्ष पूर्व गोपालदास बाबा नामक एक सन्त रहा करते थे, उन्होंने ग्रामवासियों को यहाँ की लीला के बारे में बताया था कि गाँव के इस टीले पर श्यामसुन्दर अपने गोप सखाओं के साथ गोचारण और विश्राम किया करते थे। उनकी प्राचीन पुस्तक में यह लीला लिखित है।

हरनौल से चार कि.मी. की दूरी पर और नौझील से (शेरगढ़-नौझील रोड पर) १४.१ कि.मी. की दूरी पर स्थित है भदनवारा।

सुरीर

नेपाल से प्राप्त एक अत्यन्त प्राचीन पुस्तक में सुरीर का शास्त्रीय नाम **'सुरभि वन'** दिया गया है।

सुरभिवन के २ इतिहास हैं –

प्रथम तो यहाँ श्री सौभरि ऋषि का निवास रहा।

द्वितीय परिमल प्रसारिणी श्रीराधारानी के अङ्ग-सौरभ से यह वन सुरभित हुआ। युगल के श्री अङ्गों से यहाँ विशेष प्रकार की सुगन्ध का प्रसार हुआ, निकटवर्तिनी यमुना भी उस दिव्य सुगन्ध से भर गयी।

श्री हित जी की वाणी में –

ब्रजाधिराज नंदनांबुदाभगात्रचंदनानुलेप
गन्धवाहिनीं भवाब्धिबीजदाहिनीम् ।
जगत्त्रये यशस्विनीं लसत्सुधा पयस्विनीं
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरंतमोहभंजिनीम् ॥ १ ॥
रसैकसीमराधिका पदाब्जभक्ति साधिकां तदंगराग
पिंजर प्रभातिपुञ्ज मञ्जुलाम् ।
स्वरोचिषाति शोभितां कृतां जनाधि गंजनां
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरंतमोहभंजिनीम् ॥ २ ॥

(यमुनाष्टक)

ब्रजाधिराज श्रीकृष्ण के जलपूरित मेघ-सदृश नीले कलेवर में जो पीला चन्दन लगा हुआ है, इस अपूर्व सौरभ से सम्पूर्ण सुरभिवन, यमुना सुगन्धमय हो गई और तो क्या दिशाएँ भी सुरभित हो उठीं। तीनों लोकों में जिसकी प्रसिद्धि है, यह सुगन्ध भवबीज को, जीव-मोह को जला देने वाली है।

श्रीमद्भागवत में सुरभिवन

महारास से सम्बन्धित लीला भी यहाँ हुई है। महारास का क्षेत्र मात्र पंचकोसीय नहीं है, बहुविस्तृत क्षेत्र में यह लीला हुई है। इसका प्रमाण –

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥

(भा. १०/३०/४)

जिस समय श्रीकृष्ण अन्तर्धान हुए, गोपियों ने किसी एक विशेष वन में नहीं वन-वनान्तर में श्रीकृष्ण को ढूँढ़ा।

शरच्चन्द्रांशुसन्दोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ।
कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥

(भा. १०/३२/१२)

राधा-माधव के श्री अंग की सुगन्ध से सम्पूर्ण वन महक रहा था। रासरत रासेश्वर ने जब चन्दन व नीलकमल की गन्ध से युक्त अपनी भुजा एक गोपिका के स्कन्ध पर रखी, उस गोपी ने रोमाञ्चित होकर झट से श्रीकृष्ण की भुजा को चूम लिया।

श्रीव्यास वाणी में सुरभि वन

आज सखी-समुदाय के साथ क्रीड़ा चल रही थी, सहसा श्रीकृष्ण रुके और बोले – "अवश्य ही अमानवी राधा इधर आ रही है।"

"कहीं दिख तो नहीं रही फिर तुम्हें कैसे पता? " सब सखियों ने पूछा।

कृष्ण – "देख नहीं रही हो, इन्दुहासिनी की चन्द्र-ज्योत्स्ना से पूरा वन उद्भासित हो गया है, चारों ओर सरस किशोरी के सौरभ ने सुरभित कर दिया है वन को –

देख सखी राधा इत आवत ।
गोरे अंग को परिमल महकत, मैं पहिचानो मदन बढ़ावत ॥"

पूज्य बाबा श्री बताते हैं लगभग ६०-६२ वर्ष पूर्व जब वे प्रथम बार सुरीर आये थे तो उस समय यहाँ एक बड़े अच्छे महात्मा रहते थे, जिनका नाम था –हीरानन्द, वे अपने चरणों में घुँघरू बाँधकर नृत्य करते थे, उनका भी यही मत था कि सौभरि ऋषि की तपोभूमि होने से 'सुरीर' नाम हुआ है। यद्यपि वृन्दावन के समीप सुनरख गाँव में भी सौभरि ऋषि का आश्रम है किन्तु यह कोई आवश्यक नहीं है कि एक ऋषि की एक ही तपोभूमि रही है।

श्री सौभरि ऋषि

श्री यमुना किनारे सौभरि ऋषि तप कर रहे थे। गर्ग संहिता में वर्णित है कि १० हजार वर्ष तक यह तप चला है। सुरीर और सुनरख दोनों ही यमुना के तटवर्ती स्थान हैं। प्राप्त मिथकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दोनों ही स्थानों पर ऋषि ने तप किया है।

एक समय यमुनादह में क्षुधित श्रीगरुड़ जी आये और मत्स्य भक्षण करने लगे। सन्ध्या वन्दन करते हुए सौभरि ऋषि ने जब देखा तो गरुड़ जी को ऐसा करने से मना किया किन्तु क्षुधार्त गरुड़जी नहीं माने, मत्स्य भक्षण कर अपनी क्षुधा शान्त करने लगे। सौभरि ऋषि को क्रोध हुआ और उन्होंने शाप दे दिया कि अब यदि यहाँ गरुड़ आयेंगे तो उनका प्राणपात हो जाएगा।

ऋषि के शाप भय से वहाँ गरुड़ का आवागमन बन्द हो गया किन्तु शाप की बात केवल कालिय जानता था, अन्य सर्प नहीं।

तमर्थं कालिय एव परं वेद, नान्यो लेलिहः सर्पो जानाति ।

(सुबोधिनी भा.१०/१७/१२)

अतएव निर्भीक यमुनादह में रहने लगा।

सौभरि ऋषि को गरुड़ जी का अपराध लगा क्योंकि क्षुधित गरुड़ जी के भोजन में उन्होंने शाप देकर विघ्नाचरण किया था।

श्री गरुडस्यापराधः परिहृतः किन्तु तस्य मुनेरेवापराध इति भावः ।
क्षुधितस्य महत्तमस्य भक्ष्यभक्षणविघ्नाचरणात् ॥

(श्रीमज्जीवगोस्वामिकृता वैष्णवतोषिणी – भा.१०/१७/९)

अब मत्स्य तो गरुड़ जी का भक्ष्य है। जाति उचित भक्ष्य में सौभरि ऋषि ने बाधा उपस्थित की, इससे उन्हें अपराध लग गया। यह भक्तापराध था।

श्री वैष्णवापराधेन तस्य तपो भङ्गादि परमानर्थः फलितः तच्च नवमस्कन्धे वर्णितं किञ्च तत्रत्यक्षेमार्थ सङ्कल्पोपि विपरीत एवाभवत् तत्रास्तु तावज्जलचराणां वार्त्ता कालियनिवासेन तीरवर्तिनां वृक्षादीनामपि तथोपरि गच्छतां खगादीनामपि मरणं प्राप्तमिति केवलं श्रीवृन्दावनयमुनाश्रयमाहात्म्येन श्रीभगवत्कृपयाऽनतिचिरेण तदपराधस्सद्यः फलमिव विवेकिनां नरकतुल्यमेव विषयभोगं कृत्वा तेन पश्चात् निस्तारणमिति ।

(श्रीमज्जीवगोस्वामिकृता वैष्णवतोषिणी – भा.१०/१७/११)

(सनातन गोस्वामी पाद ने भी टीका में यही भाव ग्रहण किया है।)

इसी वैष्णवापराध से ऋषि की सब तपस्या नष्ट हो गई, यह परम अनर्थ हुआ और इसी अपराध का परिणाम था – (नवम स्कन्ध में वर्णित है) कालान्तर में ऋषि भोगपरायण हो गये।

तद्धाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ।
लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥

(भा. ३/१५/३४)

वैकुण्ठ निवासी पार्षदों ने सनकादिक का अपराध किया तो उन पर भी चढ़ बैठे काम, क्रोध, लोभ। क्षेम का जो संकल्प था उसका विपरीत फल हुआ, कल्याणकारिणी तपस्या वैष्णवापराध से विनाशरूपिणी हो गई।

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे।
त एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा॥

(भा.९/४/७०)

तप, विद्यादि कल्याणरूप साधन भी दुर्विनीत को नष्ट कर देंगे।

कालिय के विष से यमुना विदूषित हुई। कालिय भी भक्तापराधी था।

गर्गसंहिता में कालिय के पूर्वजन्म की कथा

देवर्षि नारद जी राजा बहुलाश्व को यह कथा सुना रहे हैं –

हे राजन्! स्वायम्भुव मन्वन्तर में भृगुवंशी ऋषि वेदशिरा विन्ध्य गिरि पर तप कर रहे थे, उन्हीं के आश्रम पर अश्वशिरा ऋषि तप करने पहुँचे।

कुछ बात पर परस्पर कलह हो गया।

क्रुद्ध वेदशिरा – "अश्वशिरा! क्या मेरा ही आश्रम मिला तुम्हें तप करने को? इतनी लम्बी-चौड़ी भूमि है, कहीं भी चले जाओ।"

क्रुद्ध अश्वशिरा – "भूमि तो न तुम्हारी है, न मेरी; यह तो श्री भगवान् की है। यहाँ कितने ही ऋषि-मुनियों ने उत्तम तप किया है, तुम व्यर्थ में क्यों काले सर्प की तरह फुफकार रहे हो? जाओ सर्प ही बन जाओ और तुम्हें गरुड़ से भय प्राप्त हो।"

वेदशिरा – "दुर्मते! छोटी-सी बात पर बिना विचार किये तुमने मुझे महान् दण्ड दे दिया। अपना कार्य सिद्ध करने के लिए काकवत् पृथ्वी पर घूमते हो, जाओ काक बन जाओ।"

दोनों ऋषियों के कलह में भगवान् को प्रकट होकर मध्यस्थ होना पड़ा।

श्री भगवान् – "हे मुनियो! आप दोनों मेरी भुजा समान हैं। चिन्ता न करें, शाप द्वारा प्राप्त काक व सर्प की योनि में तुम्हें किसी प्रकार का क्लेश नहीं होगा। वेदशिरा! सर्प बनने पर तुम्हारे मस्तक पर हमारे चरण अङ्कित होंगे और अश्वशिरा! तुम्हें काक बनने पर उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होगी।"

तब वेदशिरा ही कालियनाग हुए व अश्वशिरा 'काकभुशुण्डि' हुए।

(गर्गसंहिता, वृन्दावन खण्ड, अध्याय - १३)

कालिय के यमुना में आने से जल विषाक्त हो गया। यदि जल के ऊपर से कोई पक्षी उड़कर चला जाता तो वह गिरकर समाप्त हो जाता।

यह भी एक अपराध ऋषि के द्वारा हो रहा था। केवल धाम व यमुनाश्रय की महिमा थी कि 'ऋषि का अपराध' थोड़ा ही नरक भोगने से समाप्त हो गया।

वह नरक क्या था? विषय भोग से लिप्त वैषेयिक जीवन।

मान्धाता की ५० कन्याओं से विवाह किया, हजारों सन्तानें हुईं, गार्हस्थ्य जीवन जिया। भगवद्कृपा से बहुत जल्दी कल्याण हो गया अन्यथा प्रभु की क्रोधाग्नि में जन्म-जन्मान्तर जलना पड़ता।

"राम रोष पावक सो जरई ॥"

(रा.च.मा.अयो.कां.- २१८)

एक मीराबाई का अपराध करने वाली चित्तौड़ की सम्पूर्ण राज्यसत्ता समाप्त हो गई।

कौतुक कहँ आए पुरबासी । मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ॥
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी । नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ॥

(रा.च.मा.सु.कां.- २५)

एक हनुमान जी का अपराध करने वाले लंकावासियों के घर-द्वार तक नहीं बचे, तत्क्षण अपराध का परिणाम सामने आ गया। प्रकृति विरुद्ध कार्य हुआ, सोना कभी आग में नहीं जलता है, परन्तु सब सोने की लंका धूं-धूं कर जल गई।

पुनः भक्तापराध किया विभीषण का।

परिणाम –

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा । भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा ॥
अस कहि चला बिभीषनु जबहीं । आयूहीन भए सब तबहीं ॥

(रा.च.मा.सु.कां. – ४२)

भक्तापराध से लंका का सर्वनाश हो गया, क्यों न हो?

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥

(भा. १०/४/४६)

आयु, श्री, यश, धर्म व सभी लौकिक कामना, प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है महदतिक्रम से। इसके साथ ही कल्याण के सभी मार्ग बन्द हो जाते हैं।

यहाँ तक कि नाम, सेवादि साधन से भी कल्याण की सिद्धि नहीं होती है, अतएव कहा –

"सेवा सुमिरन सावधान चरण राघव चित लाये ।"

(भक्तमाल)

वैष्णवापराध के साथ होने वाला जप, तप, पाठ-पूजा कुछ भी स्वीकार नहीं करते प्रभु।

भक्तिमार्ग में भक्तापराध से बचने पर ही भक्ति का वास्तविक फल मिलेगा अन्यथा सब भजन-साधन यथार्थ फल से रहित हो जाएगा।

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।
श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु ॥

(भा. ४/३१/२१)

प्रभु का अपने अकिञ्चन भक्तों से बहुत प्रेम है, उन भक्तों की भक्ति कितनी मधुर होती है यह वे जानते हैं। शास्त्रज्ञान, धन, कुल और कर्मों के मद से उन्मत्त जन जब उन निष्किञ्चन भक्तों का अपमान करते हैं, ऐसे दुर्बुद्धि, दुर्विनीत, दुर्मदों की पूजा कभी भगवान् स्वीकार नहीं करते हैं।

मन्दिरों में भी भक्तों की भीड़ को चीरते हुए, किसी को धक्का मारते हुए, किसी का पाँव कुचलते हुए फिर प्रभु के आगे देहरी पर मस्तक रगड़ते हैं, क्या भगवान् यह भक्ति स्वीकार करेंगे?

मन्दिरों में नित्य चोरी होती है, किसी का जूता गायब हो गया, किसी का द्रव्य चोरी हो गया, किसी की चेन काट ली ....भगवद्धाम में आकर लोग भक्तापराध करते हैं, जिसका मार्जन भी सम्भव नहीं है।

महान् तपस्वी सौभरि ऋषि द्वारा भी धाम में भक्तापराध हुआ, जिसका फल उन्हें भोगना पड़ा।

ऋषि ने प्रथम तो गरुड़ जी के जात्योचित भोजन में विघ्न करके भक्तापराध किया, इससे दूसरा अपराध यह हुआ कि भक्तापराधी कालिय को यमुना में आश्रय मिल गया। कालिय के यमुना में आने से जल विदूषित हुआ और असंख्य जीव मृत्यु को प्राप्त हुए।

अत्रेति ह्रदे प्रविश्य यदि मत्स्यान् खादति तदा सद्यः प्राणैर्वियुज्यते, यदि च मत्स्यान्न खादति तदा त्वसद्यः किञ्चिद्विलम्बेनेति तत्प्रवेशमात्रे शापस्तत्खादने तु तदतिशयः इत्यर्थः । ब्रवीम्यहमिति तपोबलाभिमानं सूचयति । अत्र भगवन्नित्यपार्षदे गरुडे सोभरेराज्ञाप्रदानं तदभीष्टप्रातिकूल्यञ्च मीनदयया तत्र कोपश्चेत्यपराधत्रय, तस्मादेव दयनीय मीन सङ्गोत्थैतद्दुर्वासनया चिरार्जिततपः सक्षयो विषयानन्दानुभववपुरभूत् महदपराधिनस्तस्य तत्रत्यक्षेम चिकीर्षा रूपा दयापि विपरीत फला"

(श्री बलदेवविद्याभूषणकृता वैष्णवनन्दिनी)

महद्पराधिनः कृपापि विपरीतफलव भवेदिति द्योतितम् ।

(श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्ति कृता सारार्थदर्शिनी)

सौभरि ऋषि का शाप था कि यहाँ आकर गरुड़ मछली खायेंगे तो अनुक्षण मृत्यु को प्राप्त हो जाएंगे; 'यदि केवल आयेंगे और मत्स्य भक्षण नहीं करेंगे तो भी मृत्यु को प्राप्त होंगे किन्तु अनुक्षण नहीं' यह वाक्य ऋषि के तपोबलाभिमान को सूचित करता है।

यहाँ (१) प्रभु के नित्य पार्षद गरुड़ जी को शापित करना।

उनके अभीष्ट के प्रतिकूल आज्ञा।

मछली पर दया करना।

ये तीन अपराध ऋषि द्वारा हुए। जिस मछली पर दया की, उसी के संभोग को देखकर दुर्वासना हृदय में जागी, जिसने चिरार्जित तप को नष्ट कर दिया, तपोमय जीवन भोगमय हो गया। मछलियों पर जो दया की गई थी, महद् अपराध से वह भी विनाशकारी सिद्ध हुई।

नौझील से १३.१ कि.मी. की दूरी पर स्थित है सुरीर ग्राम।

भीमागढ़ी

हैं तो ये सब आद्य पौगण्ड के बालक किन्तु कार्य कोई भी इनसे अछूता न रहा। केवल चोरी से ही सम्बन्ध नहीं है इनका, शौर्य व पराक्रम में भी पारङ्गत हैं।

यह वह गढ़ है जहाँ इन नन्हे-मुन्हों ने परस्पर किया शौर्य का प्रदर्शन और अपना भीम रूप प्रकट कर दिखाया। ये बालक भी न, विचित्र चरित्रवान् हैं। कभी हौवा से डर जाते हैं और कभी दूसरों के लिए स्वयं हौवा बन जाते हैं। क्यों न हो इनका स्वामी "कृष्ण" भी तो ऐसा ही है, कहो तो अँधेरा देख के रो दे............ और कहो तो अघ के अंधकार भरे मुख में चला जाय।

बिना दीपक सदन में हरि नेंकु धरत नहिं पाइ।
अघासुर मुख पैठि निकसे, बाल वच्छ छुड़ाइ॥
बलि-बलि चरित गोकुलराइ ....

(सूरसागर)

नमन हैं इनके अनवगम्य चरित्रों को!

ये चोरी चाहे दिन-रात करें किन्तु अपना पराक्रम नहीं भूलते हैं और फिर चोरी भी तो एक पराक्रम (साहस का कार्य) है। कायर तो चोरी भी नहीं कर सकता और शूर शौर्य का प्रदर्शन शत्रु पर ही नहीं करते, स्वजनों के साथ भी उनका युद्धोत्साह देखा जाता है।

प्रायः प्रकृतिशूराणां स्वपक्षैरपि कर्हिचित् ।
युद्धकेलिसमुत्साहो जायते परमाद्भुतः ॥

(भ.र.सिं./उ. वि./तृतीय लहरी)

एक बार श्रीकृष्ण ने बुआ कुन्ती के सन्मुख ही गाण्डीवधारी अर्जुन को परास्त कर दिया था।

तथा गाण्डीवधन्वानं विक्रीडन्मधुसूदनः ।
जिगाय भरतश्रेष्ठं कुन्त्याः प्रमुखतो विभुः ॥

(हरिवंश पुराण)

शूर को शत्रु की आवश्यकता कहाँ? उसका शौर्य तो स्वजनों पर भी देख लिया जाता है ....और शैशव में तो यह कन्हैया वृद्धा गोपियों के आगे ही ताल ठोकने लगता था।

बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ।
बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥

(भा. १०/११/८)

अब देखो न, वृद्धा गोपियों के कहने पर मस्तक पर पींढा रखकर ले आता है।

वृद्धा गोपियाँ कहती हैं – कन्हैया! तुम्हें आगे बड़े-बड़े कार्य करने हैं, जाओ वह बटखरे उठा लाओ तो। ये वृद्धाएं जानती हैं, इसे आगे गिरि भी तो धारण करना है अतः पहले से ही अभ्यास करा रहीं हैं।

किन्तु इस कन्हैया से जब बटखरे उठाये नहीं बनते तो वहीं गिरकर रो उठता है।

गोपियाँ कहती हैं – "लाला, नहीं उठते तो छोड़ दे। शीघ्र मेरे समीप आ। देख, यह पद्मगन्धा का पौष्टिक दुग्ध है, शीघ्र पी ले फिर देख, तू सब उठा लेगा।"

पद्मगन्धा का दुग्ध पीकर कन्हैया ने कमर पर कर रखा और पूछा – "अब क्या लाऊँ? "

गोपी – "देख वहाँ पौरी में मेरी पन्हैया रखी हैं, उन्हें ले आ।"

दूध के आवेश में छोटा कन्हैया झटपट गया और पन्हैया उठाकर ले आया।

कन्हैया – "और कुछ? "

गोपी – "न-न लाड़ले, अब बैठ जा।"

परन्तु यह अतिशय चपल बालक बैठने वाला कहाँ? यह तो उन वृद्धाओं के आगे अपने दक्षिण कर से अपनी गोल-मटोल जांघ को ठोकने लगा, कन्हैया के इस चपल कृत्य को देख वृद्धा गोपीं आँचर से मुख छिपाये हँसने लगीं।

और यह उनका कर पकड़कर खींचने लगा –

एक बार तो आ जा ....।

एक बार तो आ जा.................।

कभी कर पकड़कर खींचता है तो कभी आँचर पकड़कर, और इन बेचारी वृद्धाओं को खड़ा होना ही पड़ता है। इतना ही नहीं, मल्लगुरु बनकर सब सिखाने लगता है।

कन्हैया – "अरी, मल्ल बनने के लिए पहले लहंगा की लांग बना अन्यथा लुढ़क जाएगी।"

वृद्धा गोपीं कहती हैं – "अरे कन्हैया, अब क्या बुढ़ापे में मल्ल बनाएगा हमें? जा, जा अपने सखाओं के साथ खेल। मल्ल बनाना ही है तो देख – स्तोक को मल्ल बना, देवप्रस्थ को मल्ल बना, अंशु को मल्ल बना ....।"

कन्हैया – "इन्हें मैं क्या मल्ल बनाऊँगा, ये तो जन्मजात मल्ल हैं। अनेक बार मुझे भी पराजित कर देते हैं युद्ध में। अब मैं जा रहा हूँ अपने सखाओं के पास, आज कालिन्दी के किनारे क्रीड़ा निश्चित हुई है।"

आज इन छोटे-छोटे मल्लों का टोल इस गढ़ में अपना-अपना ध्वज स्थापित करने आ गया है।

बलभद्र भैया के पास अपने-अपने आभूषण उतारकर सुरक्षित रख दिये हैं।

दो-दो की जोट से एक बार में बहुत से ग्वाल-बाल युद्ध कर रहे हैं।

"अपराजितमानिनं हठाच्चटुलं त्वामभिभूय माधव! ।
धिनुयामधुना सुहृद्गणं यदि न त्वं समरात्पराऽञ्चसि ॥"

(भ.र.सिं./उ. वि./तृतीय 'वीरभक्तिरस' लहरी)

मनसुख ने कहा – "कन्हैया, तू सोचता है – तुझे कोई हरा नहीं सकता। देख, मैं ठहरा विप्र, छल-छिद्र मुझे आता नहीं, यदि तू छल छोड़कर सच्चाई से युद्ध करे तो आज मैं तुझे परास्त कर दूँ।"

संरम्भप्रकटीकृतप्रतिभटारम्भश्रियोः सादुभुतं
कालिन्दीपुलिने वयस्यनिकरैरालोक्यमानस्तदा ।
अव्युत्थापितसख्ययोरपि वराहङ्कारविस्फूर्जितः
श्रीदाम्नश्च बकीद्विषश्च समराटोपः पटीयानभूत ॥

(भ.र.सिं./उ. वि./ तृतीय 'वीरभक्तिरस' लहरी)

श्रीदाम और श्रीकृष्ण परस्पर बहुत अच्छे मित्र हैं किन्तु आज तो ये दोनों भी परस्पर ही भिड़ गये। कालिन्दी के किनारे अपना-अपना विक्रम दिखाने लगे। अन्य सखा इनका युद्ध देख रहे हैं और ये परस्पर गर्जन-तर्जन पूर्वक युद्ध कर रहे हैं।

अब सब सखा एक ओर एवं दूसरी ओर एकाकी श्रीदामा।

सखिप्रकरमार्गणानगणितान् क्षिपन् सर्वत
स्तथाऽद्य लगुडं क्रमाद् भ्रमयति स्म दामा कृती।
अमंस्त रचितस्तुतिर्व्रजपतेस्तनूजोऽप्यमुं
समृद्ध पुलको यथा लगुडपञ्जरान्तःस्थितम्॥

(भ.र.सिं./उ. वि./ तृतीय 'वीरभक्तिरस' लहरी)

चारों ओर से सब सखाओं ने घेर लिया बेचारे श्रीदामा को एवं रुई से भरे चमड़े के फर वाले अगणित बाण उस पर छोड़ने लगे। अब तो श्रीदामा ने भी आवेश में आकर ऐसी लाठी घुमाई चारों ओर कि एक बाण भी स्पर्श न कर सका। श्रीदामा के इस अद्भुत शौर्य की स्वयं कृष्ण ने भी प्रशंसा की।

धन्य हो श्रीदामा, धन्य हो। थोड़े ही समय बाद इन छोटे-छोटे बालकों में मल्लयुद्ध छिड़ गया।

हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः।
विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया॥
अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी।
शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः॥
परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः।
उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुन्धताम्॥
उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि।
परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः॥

(भा. १०/४४/२, ३, ४, ५)

हाथ से हाथ, पाँव से पाँव, पंजों से पंजे, घुटनों से घुटने, माथे से माथा और छाती से छाती भिड़ाकर परस्पर चोट कर रहे हैं।

अभिनेता की भाँति नये-नये पैंतरे बदल रहे हैं। कभी कोई किसी को घुमाता है तो कोई किसी को दूर ढकेल देता है, कोई किसी को कसके जकड़ लेता है तो कोई किसी से लिपट जाता है, कभी उठा-पटक करते हैं। कभी बन्धन छुड़ाकर भागते हैं, कभी पीछे हट जाते हैं। कोई किसी को रोकता है, कोई किसी पर प्रहार करता है, कभी कोई भूमि पर गिर पड़ता है तो दूसरा उसे अपने घुटने व चरणों में दबाकर उठा लेता है। कोई हाथों से

ऊपर ले जाता है तो कोई किसी को ढकेल देता है। इतना ही नहीं कोई-कोई तो प्रतियोद्धा के कर-चरण इकट्ठे करके गाँठ भी बाँध देता है।

कत्थितास्फोटविस्पर्धा विक्रमास्त्रग्रहादयः ।
प्रतियोधस्थिताः सन्तो भवन्त्युद्दीपना इह ॥

(भ.र.सि. ४, ३.११)

साथ ही इस वीर रस में आत्मश्लाघ, ताल ठोकना, प्रतिस्पर्द्धा, विक्रम, अस्त्र धारण करना आदि उद्दीपन-विभाव भी दिखाई पड़ रहे हैं।

आत्मश्लाघा

पिण्डीशूरः भोजनमात्रपुरः, अबलांगमपि कैतवेन जित्वेत्यर्थः,
कलापी तूणवान् सभूषणो वा पक्षे मयूरः ॥

(भ.र.सि. ४, ३.११ दुर्गमसंगमनी टीका)

स्तोककृष्ण ने ललकारा कन्हैया को।

स्तोककृष्ण – "अरे ओ कन्हैया! तू केवल भोजन में चतुर है, तूने छल से सुबल को हराया है। अब अपने मुख अपनी प्रशंसा मत कर, तेरी इस विशाल भुजा रूपी सर्प का गर्व का हरण तो मैं करूँगा मैं।" कहकर स्तोक, कन्हैया के आगे ताल ठोकने लगा।

वीर-रस के अनुभाव में कत्थित

प्रोत्साहयस्यतितरां किमिवाग्रहेण मां केशिसूदन! विदन्नपि भद्रसेनम् ।
योद्धुं बलेन सममत्र सुदुर्बलेन दिव्यार्गलाप्रतिभटस्त्रपते भुजो मे ॥

(भ.र.सिं./उ. वि./तृतीय 'वीरभक्तिरस' लहरी-४, ३.१५)

अब भद्रसेन बोला – हे केशिसूदन कृष्णा! तुम मेरे वीर्य-पराक्रम को जानते हो फिर भी इस अत्यन्त दुर्बल बलदेव के साथ मेरा युद्ध कराना चाहते हो।

नहीं, नहीं मैं इसका प्रतियोद्धा नहीं बनूँगा। दुर्बल से लड़ने में मेरी भुजाएँ लज्जित होती हैं।

वीर-रस के अनुभाव में आहो पुरुषिका

धृताटोपे गोपेश्वरजलधिचन्द्रे परिकर
निबध्नत्युल्लासाद् भुजसमरचर्य्यासमुचितम् ।

सरोमांचं क्ष्वेडानिबिडमुखबिम्बस्य नटतः
सुदाम्नः सोत्कण्ठं जयति मुहुराहोपुरुषिका ॥

(भ.र.सिं./उ. वि./तृतीय 'वीरभक्तिरस' लहरी-४, ३.१६)

अब स्वयं कन्हैया आगे आये। चारों अँगुलियों को अंगुष्ठ से दबाये, मूंठ बनाकर, दोनों कर ऊपर कर गर्जना करते हुए "मैं ही सर्वोत्कृष्ट योद्धा हूँ" कहकर कटि के वस्त्र को कसा।

तब तक सुदामा सखा भीषण सिंहनाद करते हुए सामने आया। बड़ा विचित्र है यह, युद्ध में भी नृत्य करने लगा। नाचते हुए बोला – "मेरे समान योद्धा तुममें कोई भी नहीं है अतः सर्वोत्तम योद्धा तो मैं ही हूँ।"

तब तक श्रीदामा व भद्रसेन आमने-सामने हो गये।

शुण्डाकारं प्रेक्ष्य मे बाहुदण्डं मा त्वं भैषीः क्षुद्र! रे भद्रसेन! ।
हेलाऽरम्भेणाद्य निर्जित्य रामं श्रीदामाऽहं कृष्णमेवाह्वयेय ॥

(भ.र.सिं./उ. वि./तृतीय 'वीरभक्तिरस' लहरी-४, ३.२०)

श्रीदामा बोला – अरे नीच भद्रसेन! मेरी गज-सूण्ड-सदृश भुजाओं को देखकर तू डर रहा है, भय मत कर। मैं आज तुझे नहीं, बलराम को पराजित करूँगा पश्चात् कृष्ण को भी युद्ध के लिए ललकारूँगा।

बलस्य बलिनो बलात्सुहृदनीकमालोडयन्
पयोधिमिव मन्दरः कृतमुकुन्दपक्षग्रहः ।
जनं विकटगर्जितैर्बधिरयन् स धीरस्वरो
हरेः प्रमदमेककः समिति भद्रसेनो व्यधात् ॥

(भ.र.सिं./उ. वि./तृतीय 'वीरभक्तिरस' लहरी-४, ३.२१)

बड़ा अद्भुत पराक्रम दिखाया आज भद्र ने। बलराम व बलराम के सभी साथियों का इस प्रकार मन्थन कर दिया जैसे मंदराचल गिरि ने सिन्धु का मंथन किया था। कृष्ण का बहुत पक्षधर है भद्र। मन्द स्वर में बोलने वाले इस भद्र ने आज ऐसी भीषण गर्जना की, कि सब सखा बहरे हो गये, इस प्रकार से भद्र ने श्रीकृष्ण को आनन्दित किया।

यह वही स्थल है जहाँ सखाओं के साथ इस प्रकार कृष्ण-बलभद्र ने क्रीड़ा की, वीर-रस का विकास किया।

सुहृदेव प्रतिभटो वीरे कृष्णस्य न त्वरिः ।
स भक्तक्षोभकारित्वाद्रौद्रे त्वालम्बनो रसे ॥

(भ.र.सिं./उ. वि./तृतीय 'वीरभक्तिरस' लहरी-४, ३.२४)

इस युद्ध में भी श्रीकृष्ण के सुहृद अर्थात् सखागण ही प्रतियोद्धा हैं। वीर रस की लीला में श्रीकृष्ण के शत्रु प्रतियोद्धा नहीं हो सकते हैं।

शत्रुओं के साथ युद्ध में वीर-रस नहीं अपितु रौद्र-रस उत्पन्न हुआ है।

वीर रस व रौद्र रस में अन्तर

रागाभावो दृगादीनां रौद्रादस्य विभेदकः ।

(भ.र.सिं./उ. वि./तृतीय 'वीरभक्तिरस' लहरी)

रौद्र-रस में क्रोधावेश है एवं वीर-रस क्रोध रहित है। रौद्र रस में नेत्रों का लाल-पीला हो जाना, जबकि वीर-रस का उदय हास-परिहास में भी हो जाता है।

नौझील से होडल हसनपुर रोड पर १२.८ कि.मी. की दूरी पर स्थित है भीमा गढ़ी।

श्री जटवारी

अभी-अभी पौगण्ड में प्रवेश हुआ है, "शेष कौमार" (कौमार का अन्तिम चरण) को विदा किया है।

मैया-बाबा ने वत्सचारण की आज्ञा तो दी किन्तु साथ ही वन से शीघ्र ब्रज-प्रत्यागमन की विशेषाज्ञा दे रखी है। इस शैशव में कन्हैया का चापल्य कुछ अधिक हो गया है।

शैशव चापल्य

पारीर्भिनत्ति विकिरत्यजिरे दधीनि
सन्तानिकां हरति कृन्तति मन्थदण्डम् ।
वह्नौ क्षिपत्यविरतं नवनीतमित्थं
मातुः प्रमोदभरमेव हरिस्तनोति ॥

(भ.र.सिं./ पश्चिम विभाग/चतुर्थ लहरी-४, ३.३९)

जहाँ जनशून्य गृह देखते हैं, दूधपात्र भंग कर देते हैं, कभी आँगन में दधि फैला देते हैं, कभी माखन चुराते हैं तो कभी मन्थन-दण्ड ही तोड़ देते हैं और कभी-कभी घर का सब माखन अग्नि को भोग लगा देते हैं अर्थात् आग में डाल देते हैं; किन्तु मैया का वात्सल्य भरा हृदय इन चपल कृत्यों से कभी क्रोधित नहीं होता, अपितु प्रसन्न हो जाता है। मैया तो इसकी चपलता देखकर बस यही सोचती है, अब मेरा वारा कन्हैया बड़ा हो रहा है।

जटवारी की लीला

आज कन्हैया, दाऊ भैया, मधुमंगल, विशाल, ऋषभ, अर्जुन, वरूथप, मण्डली, कुण्डली, दण्डी, तेजस्वी, देवप्रस्थ, अंशु, तोककृष्ण, श्रीदाम, सुबल, भद्रसेन.........आदि सब सखाओं ने अपनी-अपनी जोट बनाई, अपना-अपना यूथ बनाया। सूत्रधार कृष्ण ने सबको दिशा-निर्देशित की।

कन्हैया – "सुनो, सुनो, सुनो...आज हम सब सफल चोरी करेंगे।"

सब सखा – "कन्हैया, सफल चोरी अर्थात्? "

कन्हैया – "सफल चोरी" माने हमारे हाथ सब कुछ लग जाय और हम किसी के हाथ न लगें।

सब सखा – "हाँ, हाँ कन्हैया ....सफल चोरी करेंगे।"

मधुमंगल – "कन्हैया, मैं तुम्हारे मत से सहमत हूँ। ये गोपियाँ हमारे भूखे पेट की पीड़ा को क्या जानें? इनके घर में तो यदि कोई रक्षा की दृष्टि से भी झाँकता है तो मैया से जाकर चोरी की शिकायत कर देती हैं।"

यह वही स्थल है जहाँ ग्वाल-बालों ने अपना-अपना यूथ बनाया, अपनी-अपनी जोट बनाई।

भ्रमर तुल्य कान्ति वाले मण्डली ने मस्तक पर पाटल (गुलाबी) पगड़ी बाँधी एवं हाथ में लाठी लेकर कहा – "कन्हैया, मैं तेरे साथ रहूँगा।"

तब तक विजय, वीरभद्र और सुभद्र भी बोल पड़े – "कन्हैया, हम भी तेरे साथ रहेंगे।"

यह सबका स्नेह भाजन है अतः सब इसके साथ रहना चाहते हैं।

कन्हैया – "अरे भाई, तुम सब एक ही जुट में आ जाओगे तो 'सफल चोरी' नहीं हो पाएगी।"

श्रीपरमानन्ददासजी की वाणी में –

संग लरिकवन कर जोटी ।
खेलत-फिरत गोपाल घोष में, धावत सिसु-अंग छोटी ॥
खोरि-खोरि प्रति, भवन-भवन प्रति, सैनै दै दै बतावै ।
जाके घर गोरस बहुतेरौ, अंगुरिन कै कै दिखावै ॥

इह कुमार-लीला हरि केरी, गोपीजन मन भावै ।
चोरी करत, हरत दधि माखन, कछु 'परमानन्द' पावै ॥

कृष्ण – "१ बड़े सखा के साथ २ छोटे सखा रहेंगे, इस तरह से जुट बनेगा।

दाऊ भैया के साथ देवप्रस्थ, ओजस्वी और अंशु रहेगा। मेरे साथ विशाल, श्रीदाम एवं सुदाम रहेंगे। मनसुख के साथ स्तोककृष्ण, विटंक व विलासी रहेगा। अर्जुन के साथ सुबल, उज्जवल एवं कोकिल रहेगा। वीरभद्र के साथ मरन्द, मणिबद्ध एवं वृषभ रहेगा। भद्रांग के साथ करन्धम, कुसुमापीड व सुदाम रहेगा। सुभद्र के साथ वरूथप, किंकिणी व विलासी रहेगा। शेष भद्रवर्धन, गोभट, यक्षेन्द्रभट, पुण्डरीक, भद्रसेन, कलविंक सभी यूथों के सहायक रहेंगे।

एक विशेष बात, हम लोग ब्रज में खेलते-कूदते हुए प्रवेश करेंगे, जिससे ब्रजवासी निशंक रहें – हम चोरी करने नहीं आये हैं बल्कि खेलने आये हैं।"

कृष्ण के इङ्गित का अनुगमन करने वाले ये सब सखा संकेत पाते ही खेलते-कूदते खिरक (ब्रज) में पहुँच गये।

इधर से उधर दौड़ रहे हैं, कूद रहे हैं, कोलाहल कर रहे हैं। कोई यूथ पूर्वभाग को घेरे है तो कोई पश्चिम भाग को। गली-गली में क्रीड़ा हो रही है, साथ ही नैन-सैन भी चल रहे हैं। प्रत्येक गली में, प्रत्येक भवन पर आज इनकी दृष्टि टिकी हुई है। सेंन-संकेत में बातें हो जाती हैं – 'इस गली के इस भवन में इतना माल है, उस भवन में कोई नहीं है।' चोर का प्रवेश ही अच्छे माल वाले घर में होता है और फिर ब्रज का तो घर-घर गोरस का भण्डार है।

ये गोपिकाएं भी सर्वदा घर का यह भण्डार खोले रखतीं हैं, यदि न रखें तो कन्हैया घर में कैसे आएगा।

कन्हैया को देखकर ये जान-बूझकर छिप जाती हैं और मन ही मन प्रार्थना करती हैं –

वंशी वारे तू मेरी गली आय जा रे ।
कोरी-कोरी मटुकी में दही जमायो, अपने ही हाथन खाय जा रे ॥

(रसिया)

गोपीजन-मन-पूरन कन्हैया आता है, दधि-माखन की चोरी करता है और गोपीजनों को सुख देता है। वस्तुतः इनका आगमन ही प्रेमरसनिर्यास के लिए हुआ है। यह तो थी सख्य में सखाओं की जोट।

अब देखें जटवारी में रसराज श्रृंगार में रचे-पचे श्रेष्ठ नायक-नायिका की जोट –

चलहि किनि देखन कुञ्ज-कुटी ।
सुन्दरस्याम मदन मोहन जहाँ, मनमथ-फौज लुटी ॥

सुरत सौर में लरत सखी की, मुक्ता-माल टुटी ।
उरज-तेज कंचुकि चुरकट भई, कटि पट ग्रंथि छुटी ॥
चतुर-सिरोमनि सूर नंदसुत, लीनी अधर-घुटी ।
'परमानन्द' ग्वालनि गोविन्द-संग, नीकी जोट जुटी ॥

"जटवारी" वारी अर्थात् बगिया। इस बगिया में जब युगल की जोट जुड़ जाय तो मन्मथ भी सदल-बल लुट जाता है। सुरत के इस संग्राम में नायिका की मुक्ता-माल का टूटना, कुच पट का हट जाना, कटि पट (नीवी वस्त्र) का खुल जाना और फिर रति-केलि-कला-कुशल, नंद बाबा के लाला परम सूर श्रीकृष्ण का गोपी के अधर-रस का आस्वादन करना।

एक रस का दाता बन जाता है तो दूसरा रस का भोक्ता। विहार रस में निमज्जित युग्म लाल-ललना की यह जोट यहाँ इस वारी में जुटी अतः स्थल विशेष जटवारी नाम से संज्ञित हुआ।

श्री कृष्णदास जी की वाणी में –

बिराजत नीकी कुञ्ज-कुटी ।
मदन मोहन राधा सौं मिलि जहाँ, रस बस जोट जुटी ॥
मुदित भए मन मगन मनोभव – लीला सुरति ठटी ।
कृष्णदास प्रभु की छबि निरखत, गिरिधर रस लपटी ॥

न केवल सख्य रस का प्रवाह यहाँ हुआ प्रत्युत निखिलरसामृतमूर्ति लीलाबिहारी श्रीकृष्ण ने श्रृंगार रस के उद्दाम-विलास का विकास भी यहाँ किया। सकल-रस-सिन्धु की बिंदु का एक-एक सीकर तो ब्रज के कोने-कोने को प्राप्त है। रस के इस सीकर तक भी मन की पहुँच अत्यन्त दुर्गम है।

किन्तु उसकी चर्चा भी उसकी कृपा का परिचायक है।

नौझील से कोसी शेरगढ़ रोड पर १२.४ कि.मी. पर स्थित है जटवारी ग्राम।

टेंटी गाँव

काबुल में मेवा करी, ब्रज में टेंटी खाय ।
कहूँ-कहूँ गोपाल की, भूल सिटिल्ली जाय ॥

बादाम, काजू, पिस्ता तो काबुल की मेवा है। ब्रज की मेवा है – टेंटी। मेवा ही नहीं टेंटी तो औषधि स्वरूप है, टेंटी सेवन से उदर-रोग नहीं होता है। 'टेंटी' करील वृक्ष पर लगने वाला एक फल है। करील बड़ा काँटेदार वृक्ष होता है। ब्रज में पहले करील के बहुत

से जंगल थे, शनैः-शनैः ये सब नष्ट होते गये। आज तो करील का कहीं-कहीं दर्शन होता है। ब्रज की शोभा ही इन वृक्ष और वनों से थी।

श्री रसखानादि महापुरुषों ने स्थापन बल की जो श्रद्धा ब्रज के कूप-सर, बाग-तड़ाग, कुञ्ज-वनों के प्रति स्थापित की, बहुत विलक्षण है।

या लकुटी और कामरिया पे, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवों निधि को सुख, नन्द की गाय चराय बिसारौं॥
कोटिक हू कलधौंत के धाम, करील की कुञ्जन ऊपर वारौं।
'रसखान' कबै इन नैनन सौं, ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारौं॥

ब्रज की करील-कुञ्जों पर कोटि-कोटि सुनहले महलों का न्यौछावर भी कम है। इस महान् मही का प्रत्येक रज-कण नीली-पीली द्युति का द्योतक है अर्थात् राधाकृष्ण स्वरूप है। जब तक ब्रज के कण-कण, पत्र-पत्र के प्रति यह भाव नहीं हो जाता, न ब्रजयात्रा सफल है, न ब्रजवास।

श्रीकुम्भनदासजी महाराज, जिन्होंने झरबेरिया और टेंटी को अपना मोदी कहकर मानसिंह को मना कर दिया द्रव्य लेने से –

"हम तुम्हारा दिया हुआ न लेना चाहते हैं, न हमें आवश्यकता है। ६ महीने झरबेरिया से काम चल जाता है, ६ महीने टेंटी से।"

"आप रूखी-सूखी रोटी खाते हैं, यदि आज्ञा हो तो मोदी बाँध दें, यहीं सब सामान पहुँचा देगा।" राजा मानसिंह ने प्रार्थना की।

परम निर्वासिक चित्त वाले महापुरुष श्रीकुम्भनदास जी ने राजा मानसिंह की सेवा को ठुकरा दिया।

इसीलिये नाथजी भी ५६ भोग छोड़कर कुम्भनदासजी की टेंटी का साग खाने आते थे।

बड़ो मेवा एक ब्रज में टेंटी।
जाको होत है साक संधानो और बेझर की रोटी॥
भरि भरि डला जब बीनन लागी बड़े गोप की बेटी।
कुम्भनदास प्रभु गोवर्धन धर भुज ओढ़नी लपेटी॥

आलू, गोभी, मटर, टमाटर लेकर क्या करेंगे, हमारे टेंटी के साग के लिए तो नाथजी भी तरसते हैं। कुम्भनदास जी के यहाँ स्वयं नाथ जी टेंटी का साग और बाजरे की रोटी खाने आते थे। उस समय ब्रज में बड़े-बड़े धनी गोप की बेटी भी टेंटी बीनने जाती थीं, डला भर-भरकर टेंटी तोड़तीं, वहीं श्यामसुन्दर भी आ जाते और उनकी ओढ़नी को अपनी भुजाओं में लपेटकर टेंटी बिनवाते।

यही प्रेमवश्यता रास में भी प्रकट हुई –

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।
स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥

(भा. १०/३२/१३)

जब श्रीकृष्ण आये तो सब की सब ब्रजगोपाङ्गनाओं ने वक्ष की सुगन्धित कुङ्कुम से सनी अपनी-अपनी ओढ़नी को उतारा, एक के ऊपर दूसरी फरिया को बिछाती गयीं, थोड़ी ही देर में केसर सनी रंग-बिरंगी फरियाओं का एक उच्च सिंहासन बन गया। पुष्पों की कोमलता भी उन फरियाओं के तल्प के आगे कुछ न थी।

"आ हा हा! ....इतना सुकोमल आसन तो आज तक कभी नहीं मिला।" योगेश्वरों के हृदय कमल पर बैठने वाले श्यामसुन्दर बोले।

यहाँ भी उन गोपबालाओं की ओढ़नी भुजा में लपेटकर उनके साथ-साथ टेंटी बीन रहे हैं।

श्रीमद्भागवत जी में भी वन्यफल खाने की चर्चा है –

बिभ्रद् वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे
च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।
तिष्ठन मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्
नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः ॥

(भा. १०/१३/११)

देवगण देख रहे हैं –

"बड़े-बड़े यज्ञों में यज्ञभाग श्यामसुन्दर नहीं खाते हैं और यहाँ टेंटी फल का अचार उँगलियों में लिए बड़े प्रेम से खा रहे हैं।"

नौझील से टेंटी ग्राम की दूरी १८.१ कि.मी. है।

करारी (कराहरी)

जब से इस नन्हे कन्हैया का गोचारण का तिलक हुआ है तब से इन ब्रजवासियों के मन में भय बैठ गया है, कहीं कोई मरखनी इसे श्रृंग न मार दे, अभी कल ही तो उसने पौगण्ड में प्रवेश किया है। अतिशय प्रेम में ऐसी अनिष्टाशङ्का स्वाभाविक ही है।

पर कन्हैया से प्रेम केवल ये गोप-गोपी ही थोड़े करते हैं, यहाँ के पशु-पक्षी, सबका प्यारा है यह।

आज तो वन में ग्वाल-बालों के साथ कन्हैया ने गो-दोहन लीला की, जिसे इस ब्रजदेवी ने देख लिया। ब्रज में आकर अपनी संगिनी से कहने लगी – कल तो गोचारन का तिलक हुआ है इस छोटे कन्हैया का और आज वन में गो-दोहन कर रहा था।

"परन्तु अभी तो छोटे-छोटे करों से गोथन भी नहीं पकड़ पाता होगा फिर गो-दोहन तो कठिन कार्य है, संगिनी ने कहा।

अरी, इसे दुहन की आवश्यकता ही कहाँ है। इसे देखते ही गायों के थन से दुग्ध स्रवित होने लगता है।

कपिला, कामदा .... दुग्ध चाहिए, इतना सुनते ही वे अपने वत्सों के भाग का दूध भी इसे ही दे देती हैं। पूरे आँचर का दूध उड़ेल देती हैं कन्हैया पर। इसकी दोहनी भर जाती है, उदर भी भर जाता है और शिख से आनख दुग्धाभिषेक भी हो जाता है" वह बोली।

श्री कुंभनदास जी की वाणी में –

छबीलौ लाल दुहत धनु धौरी ।
बारक फिरि चितयो मो महियां निरखि वदन भई बौरी ॥
कंकन कुनित, चारू चल कुण्डल, तन चन्दन की खौरी ।
माथे कनक वरन कौ टिपारो, ओढ़े पीत पिछौरी ॥
कहा करों मोपे रह्यौ न परतु सखि! मेली है कठिन ठग्यौरी ।
'कुंभनदास' तव सुख गिरिधर कों जब भेंटों भरि कौरी ॥

दोनों घुटनों के मध्य दोहनी को दबा लिया है और बैठ गया है उज्जवल नन्दिनी के नीचे। छोटी-छोटी अँगुलियों से गुलाबी-गुलाबी थन को पकड़ रखा है। धार खींचते समय कर-कंकण क्वणन कर रहे हैं। दर्पण-सदृश सुचिक्कण कपोलों पर श्रुति मंडनकारी- कुण्डल दौड़-भाग कर रहे हैं, पूरे ललाट पर पीला चन्दन सुशोभित हो रहा है। घुंघराले काले अलकजाल के ऊपर एक ओर सुनहरा टिपारा

प्राचीन शिव मंदिर - करारी

(मस्तक पर धारण किया जाने वाला भूषण) झिलमिला रहा है। नवीन मेघ के सदृश नीलाभ तन को ढके हुए हैं रेशमी पीताम्बर।

कन्हैया को अपने कार्य में अविराम संलग्न देखकर यह ब्रजदेवी थोड़ी सी उसके सम्मुख हुई।

आ हा हा .... अचिन्त्य सौभाग्य है मेरा जो श्यामसुन्दर की इस लीला को मैं देख सकी। तब तक नीलमयंक की दृष्टि मिल गई उसके प्यासे नेत्रों से और यह तो बावरी ही हो गई। भूल गई स्वयं को।

हृत्पटल पर अंकित हो गई, कन्हैया की यह अद्भुत छबि। न जाने कौन सा जादू कर दिया कन्हैया के नेत्रों ने इस भोली गोपी पर।

बेसुध होकर गिरने ही वाली थी धरा पर, तब तक दौड़कर कौरी में भर लिया इस जादूगर ने। यह वही स्थल है, जहाँ कौरी में भरा था उसने मुझे। अभिलषित स्पर्श प्राप्त हुआ।

लीला विशेष से स्थान का नाम हुआ कौरी।

अपभ्रंशित नाम है – करारी।

नौझील से (होडल-हसनपुर रोड / शेरगढ़-नौझील रोड पर) २१ कि. मी. की दूरी पर स्थित है करारी ग्राम।

कुरवारा

सम्पूर्ण ब्रज सीमान्त क्षेत्र गोपाल का गोचारण क्षेत्र है। इसके गोचारन से ही तो ब्रज की सीमा का निर्धारण हुआ है। सीमा क्षेत्र सख्य रस प्रधान है। ब्रज का कोई भी क्षेत्र लीला विरहित नहीं है।

यहाँ की रज का कण-कण लीला विहारी की लीलाओं से अनुस्यूत है।

सीमान्त क्षेत्र सख्य रस प्रधान है। यहाँ जो लीला हुई, वह स्थान उसी नाम से गोरवान्वित हुआ। काल प्रवाह से वे लीला सम्बन्धी नाम कुछ अंश में बदलते रहे, कुछ स्थान सहित विलुप्त भी हो गए।

याद रहे, जब-जब यह संस्कृति अवसान की ओर गई, स्वयं भगवान् ने इस धरा पर सन्त-महापुरुषों के रूप में प्रकट हो उसे जीवन्त किया।

यहाँ की गोपरमणियों ने जब गोचारण करते हुए गोपाल को देखा।

वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ।
गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥
क्रीडिष्यमाणस्तत् कृष्णो भगवान् बलसंयुतः ।
वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥

(भा. १०/१८/७, ८)

आज श्यामसुन्दर यहाँ आने वाले हैं। इन वृक्षों को दूर से ही सुवास आ जाती है कन्हैया की।

अपूर्व सौरभ से दसों दिशा तो सुरभित हो जाती हैं, कानन का हर तरु कुसुमित हो जाता है, स्वामी के श्रेष्ठ समर्चन के लिए। फलों से लद जाते हैं छोटे-बड़े सभी पादप। सुन्दरता का तो जैसे स्रोत ही बन गये हैं। कहीं विविध रंग के विहंगमो की चहचहाहट है तो कहीं मोरों की पैकौं ऽऽऽऽऽऽऽऽऽ पैकौं की कूक, कहीं भौरों की गुंजार है तो कहीं कोकिलाओं की कुहक। सारसों का अपना संगीत चल रहा है व मृगों की अपनी दौड़। इस अद्भुत शोभा को देखकर राम-श्याम के मन में वन-विहार की इच्छा हुई।

आगे-आगे गैया चलीं, पीछे-पीछे ग्वाल-बाल और मध्य में दाऊ भैया के साथ बाँसुरी बजाते हुए चले श्रीकृष्ण।

दाऊजी का एक हाथ कन्हैया के स्कन्ध पर है तथा दूसरे में लकुट की अपूर्व शोभा है। बस, यही दुर्लभ दर्शन मिला, इन ब्रज-सीमावासिनी गोपियों को।

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

आवै-आवै गोपाल बन्यो देखौ ब्रज-नारी ।
कमल-नयन रूप ऊपर तिलु-तिलु करि वारी ॥
हाथ लकुट काँख बेंत मोरचंद माथै ।
जठर बसन पानि बेनु गोधन के साथै ॥
धुरि-धूसर गोप-भेष ग्वालनि कौ संगी ।
नंदनंदन आनंदकंद नटवर बहुरंगी ॥
बिस्वमोहन भुवनपाल कमल-नाल फेरै ।
श्यामसुन्दर बार-बार मधुवन तन हेरै ॥
जाके चरन-कमल सेवत मुनि लोभी रज-बासा ।
उनि मूरति प्रति रति बाढौ 'परमानन्ददासा' ॥

कितना सुन्दर है यह ....!

कैसा नव नीरद वर्ण है इसका ....!

अंग-अंग में असमोर्ध्व सौन्दर्य है ......!

इसके नेत्रकमलों पर ....

नहीं-नहीं इसके रोम-रोम पर “करिवारी” सर्वस्व वारी (सब न्यौछावर) है।

यही वह स्थान है जहाँ गोपियों ने अपना सब कुछ वार दिया था।

हाथ में लकुट है, कक्ष में बेंत दबाये हुए हैं,

मस्तक पर तिरछी मयूर-चन्द्रिका बंधी हुई है।

कटि में झालरदार फेंट बंधी हुई है, हाथ में वेणु है।

गायों के समुद्र में इस ब्रजमयंक की कैसी शोभा हो रही है .....। इसकी अलकावली तक गोधूलि से सनी हुई है, ग्वारियाओं के साथ गोप-वेष में कितना मनमोहक लग रहा है ये ....! विश्व-जन-मनमोहन, कमल को कैसे चारों ओर घुमाता हुआ बार-बार वन की ओर देख रहा है।

दर्शन का यही सुख पाने के लिए तो बड़े-बड़े ज्ञानी, कर्मी और तपस्वी एवं ब्रह्मा, शंकर, लक्ष्मी भी लालायित हैं किन्तु यह उन्हें सुलभ कहाँ?

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥

(भा.१०/९/२०, २१)

गोपिकासुत, गोपिकाओं को ही सुलभ है।

नौझील से (वाया गोराई रोड) २६.६ कि.मी. पर स्थित है कुरवारा ग्राम।

श्री हरनौल (हिण्डोल)

हरनौल का शास्त्रीय नाम ‘दोलावन’ है। दोलावन से हिण्डोल हुआ और उसका अपभ्रंश हुआ – **"हरनौल"।**

हिण्डोल अर्थात् झूला। यहाँ की मुख्य लीला है – ‘झूलन लीला’।

श्रीकृष्ण आद्य पौगण्डावस्था में प्रवेश कर चुके हैं किन्तु चांचल्य निवृत्त नहीं हो रहा है।

अर्जुन, ऋषभ, भद्रसेन, बलराम समझाते भी हैं – "कन्हैया! अब गम्भीर हो जाओ।"

कृष्ण – "दादा! गम्भीर अर्थात् ....? "

(थोड़ा रोष का अभिनय करते हुए दाऊ जी)

बलराम – "कम से कम बोला करो।"

कृष्ण – "पर दादा, आप रोष क्यों कर रहे हैं, मैंने यही तो पूछा कि गांभीर्य में किन-किन अवान्तर गुणों का होना आवश्यक है? "

(हँसते हुए दाऊ जी)

बलराम – "अरे तो कन्हैया, मैंने भी तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का ही उत्तर दिया। गम्भीर होने के लिए प्रयोजन मात्र प्रलाप करना चाहिए, असम्बन्ध प्रलाप से गाम्भीर्य निरस्त हो जाता है।"

तब तक वर्षा के जल से भरे हुए छोटे-छोटे गड्ढों के किनारे छोटे ग्वाल मेढक की तरह बैठ गये।

इन छोटे-छोटे गोपबालकों के खेल-कूद से वनों का नामकरण हो जाता। कहीं आश्रय की चर्चा की तो वन का नाम ही 'आश्रितवन' हो गया, कहीं झूला झूल लिये तो दोलावन (हिण्डोल) नाम हो गया।

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ।
कदाचित् स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥

(भा. १०/१८/१५)

आज की क्रीड़ा मेढक-फुद्दी से आरम्भ हुई। मेढक बने हुए छोटे-छोटे ग्वाल जल भरे गड्ढों में कूदने लगे। कोई-कोई तो कूदकर कृष्ण चरणों में ही बैठ जाता, इन शीतल चरणों की छाया पाकर पुनः खेल-कूद का मन नहीं होता।

'अरे-अरे, तुम सब मेढक मेरे समीप क्यों आ गये' कहकर कन्हैया पीछे को हटते किन्तु ये चरण ही ऐसा चुम्बकीय आकर्षण थे कि एक-एक करके सब नन्हे गोपकुमार कृष्ण-चरणों में आ गये और मेंढक-फुद्दी क्रीड़ा सम्पन्न हो गई।

झूलन लीला

सुबल, देवप्रस्थ, अंशु, तोककृष्ण ....ये छोटे ग्वाल आयु में कन्हैया से बहुत छोटे हैं।

जब 'कन्हैया दादा-कन्हैया दादा' कहकर पुकारते हैं तो ६ वर्ष के कन्हैया की भी छाती चौड़ी हो जाती है। हाँ, मैं बड़ा हूँ न तुमसे, 'बोलो आज कौन-सा खेल खेलोगे?'

देवप्रस्थ – "दादा! देख वहाँ विशाल दादा, ऋषि (ऋषभ) दादा, मधुमंगल दादा, दाऊ दादा व अन्य सब दादा उच्च कदम्ब पर झूला झूल रहे हैं, हम भी झूलेंगे।"

"हाँ-हाँ, कन्हैया दादा! हम भी झूलेंगे – हम भी झूलेंगे" अंशु, तोककृष्ण, सुबल सबने एक साथ कहा।

(कृष्ण कमर पर कर रखकर)

कृष्ण – "किन्तु वह वृक्ष बहुत ऊँचा है और तुम अभी बहुत छोटे हो, जब मेरे समान बड़े हो जाओगे तो ही वहाँ झूल सकोगे।"

यह सुनकर तोककृष्ण तो रो ही पड़ा।

"अरे तोक! रो क्यों रहा है, ले मैं तुझे यहीं झूला झुला देता हूँ" कहकर तोक को उठाया और अपनी बाँह पर लटका लिया। 'ले अब झूल कितना झूलना है।' कन्हैया की दोनों बाँहों पर लटककर झूलने लगे तोक व अंशू। प्रसन्नता में दोनों की दँतुलियाँ खिल पड़ीं।

युगल भी झूले यहाँ –

झूलत फूलत कुञ्जविहारी ।
दूसरी ओर किसोर वल्लभा श्रीवृषभान दुलारी ॥
किलकत हँसत खसत कुसुमावलि सुन्दर झूम्मक सारी ॥
कबहुँक पटतरि झुलवति गावति प्यारिहि पिय रसिया री ॥
देखति नैंन सफल करि खेलत, कोटि 'व्यास' बलिहारी ॥
झूलत डोल श्रीकुञ्जबिहारी ।
दूसरी ओर रसिक राधावर नागरि नवल दुलारी ॥
राखे न रहत हँसत कहि कहि प्रिया बिलबिलात पिय भारी ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत री प्यारी अबकैं राखि हा हा री ॥

झूला झूलैं राधा प्यारी, चुनरिया फहर-फहर फहरै ॥
सावन की हरियाली छाई
कारी घटा बड़ी घिर आई
ऋतु झूलन की है मन भाई
जमुना तीर बहै पुरवैया सरर-सरर सररै ।
झूला पर्यो कदम की डरियाँ
झीनी पर रहीं नहनी बुंदियाँ
झोटा देय रही सब सखियाँ
मुख पै लटक रही लट कारी लहर-लहर लहरै ।
उरझ परी वैजन्ती माला
सुरझावत हैं श्री नन्दलाला
खैंच लियो तब भोरी बाला
टूट परी मोतिन की माला छहर-छहर छहरै ।

ररकैं मोती झूला पर ते
सखियाँ बीन रहीं नीचे ते
टपकैं खिले फूल ऊपर ते
फूलन गहना हार झरैं हैं झहर-झहर झहरैं ॥

(रसिया रसेश्वरी)

नौझील से हरनौल की दूरी २४ कि.मी. है।

नसीटी

छांहरी (आश्रित वन) व नसीटी की लीला का परस्पर सम्बन्ध है। आश्रितवन में आश्रय की सिद्धि हुई किन्तु कब? जब समस्त सांसारिक आसक्ति नष्ट हो गई। नष्ट होने से **नसीटी** नाम हुआ। आश्रय सिद्धि के लिए आसक्तियों का उन्मूल आवश्यक है।

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ ॥

(रा.च.मा.अयो.काण्ड-१८५)

उस सम्पत्ति, उस सुख, उस घर, उस सुहृद, उस माँ, उस पिता, उस भाई को आग दे दो अच्छा है जो भगवदोन्मुख होने में परिपन्थी सिद्ध हो रहा है। सभी सम्बन्ध या तो समाप्त हो जाएं या श्रीकृष्ण में पर्यवसित हो जाएं।

यथा –

श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के भाव –

भजूँ तो गोपाल एक सेऊँ तो गोपाल एक,
मेरो मन लाग्यो सब भाँति गोप बाल सौं ।
मेरे देव देवी गुरु मात पिता बन्धु इष्ट,
मित्र अरु अरि नाते सब गोप बाल सौं ॥
हरिश्चन्द्र और सौं न कछु सम्बन्ध मेरो,
आसरो सदैव एक लोचन विशाल सौं ।
माँगूं तो गोपाल सौं न माँगूं तो गोपाल सौं,
रीझूँ तो गोपाल सौं खीजूँ तो गोपाल सौं ॥

श्री तुलसीदास जी के शब्दों में –

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ॥

(दोहावली- २७७)

श्री मीराबाई जी के भाव –

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ॥
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु, आपनो न कोई ॥

श्री गोपीजनों की वाणी प्रणयगीत में –

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं
नृशंसं सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥
यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥

(भा.१०/२९/३१, ३२)

हे नाथ! हम सभी विषयों को त्यागकर आपकी चरण-शरण में आई हैं। हे गोविन्द! स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धव इस संसार के सभी सम्बन्ध परिणाम में कष्टप्रद हैं अतः हमने संसार से सभी सम्बन्धों को समेटकर आपमें स्थापित कर दिया है।

नन्दलाल सौं मेरो मन मानो, कहा करेगो कोय री ।
हौं तो चरणकमल लिपटानी, होनी होय सो होय री ॥
गृहपति मात पिता मोहिं त्रासत, हँसत बटाऊ लोग री ।
अब तो यह ऐसी बनि आई, विधना रच्यो संजोग री ॥

(श्रीपरमानन्ददास जी)

भ्रमरगीत में –

स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥
यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट् कृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥

(भा. १०/४७/१६, १८)

कृष्ण के लिए हमने सब संसार नष्ट कर लिया।

इतनी सहज नहीं है आश्रय की सीढ़ी चढ़ना, सर्वस्वनाश के बाद ही आश्रय की सीढ़ी पर चढ़ सकोगे। गोपियों द्वारा समस्त आसक्ति, सम्बन्ध, ऐहिक-आमुष्मिक कामना-वासनाओं के नाश की चर्चा यहाँ हुई अतः नसीटी नाम हुआ।

नौझील से नसीटी ग्राम की दूरी २७.७ कि.मी. है।

जैसवां

लीला बिहारी के अद्भुत पराक्रम, अभूतपूर्व क्रियाकलापों को देखकर इसके सखा अति उत्साह में भरकर इसकी कीर्ति का मुक्त कंठ से गान करने लगते हैं फिर कन्हैया बक को मारे अथवा प्रलम्ब को, बिना जयघोष के ये इसका सत्कार करना नही भूलते हैं फिर जयघोष के लिए किसी असुर का मरना भी तो आवश्यक नहीं है। एक वन से दूसरे वन में प्रवेश करते हुए, गायों को घेरते हुए, सर्वदा ही अपने कन्हैया की जय का मंगल उद्घोष करते रहते हैं। यहाँ आकर तो इन गोपवृन्दों ने अपने कन्हैया का उच्च स्वर से जयघोष किया। इनके जयकारों की तुमुल ध्वनि से यहाँ की चराचर प्रकृति गुंजायमान हो उठी।

क्वचिद् गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः।
उपगीयमानचरितः स्रग्वी सङ्कर्षणान्वितः॥

(भा.१० /१५/१०)

सभी ग्वालबाल संकर्षण के साथ गोविन्द का यश गा रहे हैं, जयजयकार कर रहे हैं। उधर ये मुरली मनोहर मतवाले भौंरों की सुरीली गुनगुनाहट में अपनी स्वरलहरी को मिलाकर मधुर संगीत की तान छेड़ देते हैं।

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः।
गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः॥

(भा.१०/१५/१८)

कुछ गोप बालकों के हृदय में प्रेम का स्रोत उमड़ने लगता तो वे गोपाल द्वारा की गई लीलाओं के अनुरूप गीत गाने लगते, उनका यशोगान करने लग जाते।

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम्।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः॥

(भा.१०/१५/४२)

श्यामसुन्दर की घुँघराली अलकें गोधूलि से सनी हुई थीं, सिर पर मोर पंखों का मुकुट तथा बालों में सुन्दर जंगली पुष्प गुंथे थे। मधुर चितवन और मुख पर मनोहारी मुस्कान

की बात ही क्या? वह मधुर मुरलीवादन कर रहे थे और साथी गोपबालक अनुगमन करते हुए उनकी लोकपावनी कीर्ति का गान कर रहे थे, उनकी जय-जय बोल रहे थे।

इस प्रकार गोप-बालकों द्वारा अपने प्रिय सखा गोपाल का यशोगान किये जाने, बारम्बार उनकी जय-जयकार किये जाने से यह स्थल जैसवाँ नाम से संज्ञित हुआ।

नौहझील से २९.१ कि.मी. की दूरी पर स्थित है जैसवां ग्राम।

जावरा

जावरा का अतीत कालीन नाम जूनागढ़ है। ब्रिटिश कालीन भारत में ब्रज के बारे में खोजी पुस्तक लिखने वाले अंग्रेज प्रशासनिक अधिकारी ग्राउस ने अपनी पुस्तक 'मथुरा, ए डिस्ट्रिक्ट मैमायर' में लिखा है कि इस स्थल का सम्बन्ध चन्द्रसखी से है। अपनी पुस्तक में उसने यहाँ पर चन्द्रवन, वैरागी बाबा की गुफा और एक कुण्ड का भी उल्लेख किया है। वर्तमान काल में तो यहाँ केवल एक कुण्ड ही दृष्टिगत है। गुफा नज़र नहीं आती और वन भी सैकड़ों वर्षं पूर्व अपने अस्तित्त्व को खो चुका है। वयोवृद्ध ग्रामवासियों के अनुसार पूर्वकाल में यहाँ चन्दन के वृक्ष थे, साथ ही बहुत से कदम्ब वृक्ष भी थे, जो अब नष्टप्राय हो चुके हैं।

यह ग्वाललीला का स्थल है। श्यामसुन्दर अपने गोपसखाओं के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। विविध प्रकार की क्रीड़ाओं में अब ऐसी क्रीड़ा यहाँ आरम्भ हुई कि जय-पराजय के परिणाम स्वरूप पराजित बालक को अश्व बनकर विजित बालक को वहन करना होता था। श्रीदामा की विजय हुई और कन्हैया पराजित हुए किन्तु इस लीला विहारी को अच्छा कौतुक सूझा, बेईमानी पर उतर आया, पराजय को स्वीकार नहीं किया, अश्व बनना स्वीकार नहीं किया तो इसके सखा भी कहाँ इससे कम हैं, वे भला कैसे सह लेते इसकी उद्दण्डता, उन्होंने भी स्पष्ट कह दिया –

सूरदास जी के शब्दों में –

खेलत में को काकौ गुसैयां ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रुसैयां ॥
जाति पांति हमते बढ़ नाहीं, ना हम बसत तुम्हारी छैयां ।
अति अधिकार जनावत याते, हैं कछु अधिक तुम्हारी गैयां ॥
रूठ करै तासौं को खेलै, हा हा खात परत तब पैयां ।
सूरदास प्रभु खेल्यो चाहत, गेंद दियौ कर नन्द दुहैयां ॥

गोपबालक बोले – कान्हा! बेइमानी क्यों करता है? हार गया तो अपना दांव क्यों नहीं देता, घोड़ा क्यों नहीं बनता? अच्छा, अब समझ में आया, स्वयं को बड़ा माने बैठा है। जा, बड़ा कैसे हो जायेगा तू। तेरे बसाये हम थोड़े ही बस रहे हैं। अरे सखाओ, इस धूर्त के साथ मत खेलो, इसको हटाओ, गेंद छीन लो। अगर तुझे खेलना है तो, दाँव दे, घोड़ा बन, चल जा, बड़ा कुछ भी नहीं है तू।

इस तरह प्रेम कलह में सखाओं द्वारा फटकारे जाने वाले शब्द – 'जा, बड़ा' नहीं है तू – इस 'जा-बड़ा' से ही इस स्थान का नामकरण 'जावरा' हो गया।

राया से जावरा की दूरी २० कि.मी. है

छांहरी

ब्रज नाम से संज्ञित होने वाली यह दिव्य धरा वन, उपवन, प्रतिवन व अधिवनों का समष्टि स्वरूप है। दुःख है कि ब्रज के इस स्वरूप पर आघात हुआ, वन काट-काट कर खेत बना दिए गये, वनों के नाश के साथ-साथ लोग उनके प्राचीन नामों को भी भूलते चले गये। जबकि कृष्णकाल में यहाँ खेत नहीं थे, चारों ओर हरे-भरे सघन वन थे।

स्वयं श्रीकृष्ण कह रहे हैं –

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम्।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः॥

(भा. १०/२४/२४)

"बाबा! आप इन्द्र की पूजा क्यों करते हैं? हमारे पास न तो किसी देश का राज्य है, न कोई नगर है, यहाँ तक कि गाँव और खेरा भी हमारे पास नहीं है। हम तो वन-शैल निवासी अर्थात् वन और पर्वत पर रहने वाले हैं।"

जिन वन-पर्वतों पर भगवान् का निवास रहा, उन्होंने लीलाएं सम्पन्न की, कालगति के विपरीत होने से उस वन रूप ब्रज श्री का नाश हुआ, साथ ही वनों के नाम भी लुप्त हो गये, जो अब किसी भी पुस्तक में नहीं हैं और न उन पर कोई अनुसन्धान कार्य हुआ है। मात्र उन वनों के अपभ्रंश नाम शेष हैं, जिनके आधार पर स्थान-इतिहास व लीला-ज्ञान होता है।

तत्समस्त सामग्री सप्रमाण प्रस्तुत ग्रन्थ में दी जा रही है –

जैसे – छांहरी ग्राम का मूल नाम मिला 'आश्रितवन'। ब्रजवासियों की यहाँ सामूहिक गोष्ठी हुई, जिसमें कृष्णाश्रय की चर्चा हुई। स्वयं सृष्टिकर्ता ने इस गोष्ठी का प्रशस्ति गान किया। न केवल लौकिक प्रत्युत वैदिक आर्य-मर्यादाओं को भी जिन्होंने त्याग दिया,

अन्य देवी-देवों का आश्रय ग्रहण करना तो सुदूर अपने कन्हैया के अतिरिक्त अन्य किसी भी देव से परिचित भी नहीं थे।

अनन्य कृष्णाश्रित ब्रजवासी

आपत्ति-विपत्ति का पर्वत ब्रज पर बार-बार गिरा किन्तु ब्रजवासियों की अचल निष्ठा डगमगायी नहीं। इन्द्र का कोप उनके लिए मरण संकट बन गया था। एक बछड़े तक के बचने की आशा न थी। चारों ओर स्तम्भ-सदृश वर्षा की स्थूल-धारा, अनवरत तुषारपात, भीषण गड़गड़ाहट; नन्हें शिशुओं को गोद में लेकर उपलपात से रक्षा के लिए कढ़ाई से सिर को ढक लिया। पथ-पृथ्वी का तो दर्शन ही बन्द हो गया, बस चारों ओर अपार जलराशि बार-बार मृत्यु का दर्शन करा रही थी; ऐसी स्थिति में भी इन अनन्यजनों को केवल श्रीकृष्ण ही दिखाई दे रहे थे, उनका ही स्मरण हो रहा था।

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ।
त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद् भक्तवत्सल ॥

(भा.१०/२५/१३)

ब्रजवासी बोले – "हे कृष्ण! हे महाभाग! जीवन रहे या हो मरण, ब्रज के एकमात्र नाथ तुम ही हो और तुम ही रहोगे।"

यही कहलाता है एकाश्रय –

"ऐसे नहीं हम चाहनहार जो आज तुम्हें कल और को चाहैं ।"

(भक्तमाल - प्रथम खण्ड, कवित्त-३ 'टीका में')

तुम तोड़ दो मोह हमारा सखे, हम मोह कदापि न तोड़ने वाले ।
तुम मोड़ लो चाहे भले मुख को, हम स्वप्न में चित्त न मोड़ने वाले ॥
तुम जोड़ लो प्रीति किसी से भले, हम और से प्रीति न जोड़ने वाले ।
तुम छोड़ दो चाहे भले हमको, हम किन्तु तुम्हें नहीं छोड़ने वाले ॥

थोड़े से कष्ट में फिसलने वाला एकाश्रित नहीं हो सकता। मरण कष्ट से घबराकर शरण बदलने वाले नहीं थे ब्रजवासी जन।

उनका तो स्पष्ट निर्णय था – "हे कृष्ण! हमारे एकमात्र आश्रयणीय तुम हो और तुम ही रहोगे।"

ब्रजवासियों की गोष्ठी में यहाँ एकाश्रय अर्थात् श्रीकृष्णाश्रय की चर्चा हुई अतः 'आश्रितवन' नाम हुआ।

भक्त रसखान जी के शब्दों में एकाश्रय –

मानुष हौं तो वही रसखान बसों ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की गाय मंझारन॥
जो खग हौं तो कहा बस मेरो, बसौं नित कालिन्दी कूल की डारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो कियो कर छत्र पुरन्दर कारन॥

हम हर हाल में तुम्हारे ही रहें, यह है एकाश्रय।

श्री नागरीदास जी के शब्दों में एकाश्रित ब्रजवासियों का भाव –

हमारो मुरली वारो श्याम।
बिनु मुरली वनमाल चन्द्रिका, नहिं पहिचानत नाम॥
गोपरूप वृन्दावनचारी, ब्रजजन पूरन काम।
याही सौं हित चित्त पर्‌यो है, पल छिन आठों याम॥
नन्दीश्वर गोवर्धन गोकुल, बरसानो बिश्राम।
नागरिदास द्वारिका मथुरा, इनसों कैसो काम॥

हमारा तो बस मुरली बजैया कन्हैया है। मुरली, वनमाल और मयूर मुकुट से ही उसकी पहिचान है। हम ब्रजवासियों की इच्छापूर्ति भी वो मयूरमुकुटी, मुरलीधर, वनमाली वृन्दावनबिहारी ही कर सकता है, मथुरानाथ, द्वारिकानाथ नहीं।

ब्रज तजि हम न तो मथुरा गये, न द्वारिका। कृष्ण भले मथुरा-द्वारिका गये किन्तु ब्रजवासी नहीं गये, यही तो था एकाश्रय।

विधि भी मान गये वास्तव में ब्रजवासियों जैसा श्रीकृष्ण के प्रति सम्पूर्ण समर्पण अन्यत्र लक्षित नहीं हो सकता और ब्रह्ममोह लीला के पश्चात् एक बात कहकर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया – हे देवों के देव! मैं पूछता हूँ आप इन अनन्याश्रितों को इनके सर्वसमर्पण के बदले क्या दे सकते हैं? मैं समझता हूँ कि प्रथम तो आप इन्हें कुछ दे ही नहीं सकते, साहस करके जो कुछ भी देंगे वह थोड़ा होगा।

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति न-
श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुह्यति।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते॥

(भा. १०/१४/३५)

इन भोले-भाले आश्रितजनों के पास कुल ८ ही वस्तु हैं और वे सब इन्होंने आपको समर्पित कर दी हैं –

धाम – घर, द्वार ....इनका घर भी अपने लिए नहीं है।

अर्थ – धन, गोधन ....इनकी कोई भी सम्पत्ति अपने लिए नहीं है।

अब न वह आश्रय रहा, न वो चमत्कार।

आजकल तो सम्पत्ति के लिए, जमीन-जायदाद के लिए सब जीवन ही मुकद्दमा लड़ने में निकल जाता है। कलह का कारण है – मेरेपन का दुराग्रह।

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥

(भा. ३/९/६)

ब्रह्मा जी ने ही कहा है – जब तक जीव आपके अभयप्रद पादाम्बुजों का आश्रय नहीं लेता, तभी तक धन, घर और बन्धु-बान्धवों में 'मैं-मेरा' का दुराग्रह बना रहता है, जो भय, शोक, इच्छा, दीनता और लोभ का मूल है। कहीं भी यदि मेरेपन का दुराग्रह है, वहाँ काम, क्रोध, लोभ अवश्य पीड़ित करेंगे फिर इन ब्रजवासियों का तो अपना स्वदेह भी नहीं था। यदि वहाँ भी 'मेरा-तेरा' होता तो निश्चित कलह होता और फिर प्रेम रस के संचार का अवसर कहाँ रह जाता; प्रतिदिन नये-नये मुकद्दमे लड़े जाते, कोर्ट-कचहरी होती परन्तु वहाँ माया-मूल 'मेरापन' ही नहीं था।

मैं अरु मोर तोर तैं माया ।
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥

(रा.च.मा.अर.काण्ड-१५)

वहाँ मेरी वधू, मेरा बालक कहने का भी अवसर न था। क्योंकि –

सुहृद – उनका जो भी कुछ पारिवारिक सम्बन्ध था, वह भी श्रीकृष्ण से था।

आत्मा – यह देह भी श्रीकृष्ण के लिए था।

स्वयं भगवान् ने अर्जुन को कहा –

आदिपुराणे –

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते ।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ प्रेमभाजनम् ॥

ये ब्रजदेवी स्वदेह को भी मेरी प्रसन्नता के लिए सजाती हैं, खिलाती-पिलाती हैं, नहलाती हैं ....। इनका प्रत्येक कार्य-व्यापार मेरे ही निमित्त होता है अतः ये मेरी निगूढ़ प्रेम भाजना हैं। मैं इनका सर्वस्व हूँ तो ये मेरी सर्वस्व हैं। लीला की सहायिका भी हैं, गुरु भी हैं, शिष्या भी हैं, भोग्या भी हैं, बान्धव भी हैं एवं सहधर्मिणी भी हैं। अधिक क्या कहूँ, ब्रजगोपी मेरी क्या नहीं हैं अर्थात् सर्वस्व हैं।

तनय – इनके बेटा-बेटी भी सब कृष्णार्पित थे।

प्राण – प्राण भी श्रीकृष्ण के लिए।

आशय – अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) भी श्रीकृष्ण का।

इसके अतिरिक्त और कुछ होता भी तो नहीं है, यदि होता तो वह भी आपका ही व आपके लिए ही।

अब आप बतावें, आप क्या दे सकते हैं इन अनन्याश्रिताओं को?

यदि आप कहते हैं कि समग्र विश्व का एकमात्र फल तो मैं ही हूँ, मैं इन्हें अपने आपको देता हूँ तो यह न्याय नहीं। क्योंकि हे गोपेश! अपना स्वरूप तो आपने जहर पिलाकर मारने की इच्छा से आई हत्यारिन राक्षसी पूतना को भी दे दिया था और न केवल उसे ही अपितु उसके सब खानदान बकासुर, अघासुर....भाइयों को भी दे दिया और वही स्वरूप इन अनन्याश्रयी ब्रजवासियों को भी देने को कहते हैं तो कहाँ से उन्मुक्त होंगे इनके ऋण से?

इससे अधिक आप दे भी क्या सकते हैं? अतः बात यही रहने दीजिए अर्थात् इन ब्रजवासियों के ऋणी ही बने रहिये।

स्वीकार की स्वयं श्रीकृष्ण ने यह बात और कह भी दिया –

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(भा. १०/३२/२२)

हे ब्रजवामाओ! अमर देह से अनन्तकाल तक भी मैं सेवा करके तुम्हारे निश्चल, निर्मल, निर्दोष प्रेम का बदला नहीं चुका सकता। मैं तो सदा-सर्वदा के लिए तुम्हारा ऋणी हो गया हूँ।

भक्ति रत्नाकर के अनुसार –

ए हेतु 'छाहेरी' नाम ग्राम एइ हाय ।
यमुना निकट स्थान देख शोभामय ॥

(भ.र.१६८५)

यमुना किनारे वृक्षों की सघन छाया होने के कारण इस स्थान विशेष का नाम छांहरी हुआ।

माँट से छाँहरी की दूरी ३.५ कि.मी. है।

आसा की गढी

मुरली मनोहर की वेणुमाधुरी से आकृष्ट हुई ब्रजाङ्नाएं देह-गेह की समस्त दुर्जर श्रृंखलाओं को तोड़कर इसी स्थल पर दौड़ी आयीं और यहाँ आकर उन्होंने यह श्लोक कहा था –

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥

(भा. १०/२९/३३)

हे गोविन्द! हमने तुम्हारे लिए ही आशा लगा रखी है। हमारी आशा को मत तोड़ो। अतएव इस स्थान का नाम 'आशा की गढी है।' रास का एक अंग ही है – 'आशा की गढी'। ब्रजगोपिकाएं अथवा भक्त लोग आशा से ही जीवन धारण करते हैं। जैसे मीरा जी ने गाया है –

लगी जिन तोड़ो रे गिरिधर लाल ।
तुम मेरे ठाकुर तुम मेरे साहू कठिन ब्याज मत जोड़ो रे ॥
मैं तो तुम्हरी नाव चढ़ी हूँ बीच धार मत बोरो रे ।
मीरा के प्रभु गिरिधरनागर बाँह पकड़ मत छोड़ो रे ॥

माँट से आसा की गढ़ी ५.८ कि.मी. है।

अरुवा

कृष्णावतार का एक निमित्त ब्रजवासियों का सुख संविधान ही था। ब्रज के घर-घर में जन-जन को यह कन्हैया प्रेम वितरित करना चाहता था। राम रूप में तो वितरण नहीं कर सका क्योंकि राजा का उठना-बैठना, बोलना-चालना सब व्यवहार मर्यादित होता है और यहाँ **"ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः"(**भा.१०/१५/१९) ग्राम्य बन गये। रामावतार में राजा थे, राजा चोर को दण्डित करता है और यहाँ कृष्णावतार में स्वयं चोरी कर रहे हैं, सखाओं को चोरी सिखा रहे हैं। चोरी तो अधर्म है तो क्या अधर्म स्थापन हुआ?

नहीं, नहीं, यह तो स्तेययोग था। इसी ने तो गोपियों का श्रीकृष्ण से व श्रीकृष्ण का गोपियों से योग कराया।

श्री सूरदास जी की वाणी में –

प्रथम करी हरि माखन चोरी ।
ग्वालिन मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज की खोरी ॥
मन में यहै विचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ ।
गोकुल जनम लियौ सुख कारन, सबकै माखन खाउँ ॥

बालरूप जसुमति मोहि जानै, गोपिनि मिलि सुख भोगूँ ।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं, ये मेरे ब्रज लोगू ॥

इसीलिए ब्रज में स्थान-स्थान पर दधि-दान लीला हुई है, घर-घर में माखन चोरी हुई है।

ब्रज के प्रत्येक गाँव के प्रत्येक घर का माखन खाने के निश्चय से ही चोरी और दान लेने की लीला आरम्भ हुई।

गोवर्धन से बरसाने के मार्ग में एक गाँव है अड़ींग, जहाँ श्यामसुन्दर ने अड़के अर्थात् जबरदस्ती अथवा हठपूर्वक दान लिया, वही लीला यहाँ की भी है। अरवा अर्थात् अड़के श्यामसुन्दर ने दान लिया। जहाँ-जहाँ श्रीकृष्ण ने दान लिया वो सब स्थल दान लीला के हुए। जैसे गोवर्धन में दानघाटी, बरसाने में दानगढ़, सांकरी खोर, अड़ींग में भी अड़कर दान लिया और यहाँ अरुवा में अड़कर अर्थात् हठपूर्वक दान लिया है। इस प्रकार दान लीला के ब्रज में बहुत से स्थान हैं। बिना अड़े दान नहीं लिया जा सकता है।

महापुरुषों ने दान लीला के सैकड़ों पद गाये हैं –

राधा सों माखन हरि माँगत ।
औरन की मटकी को खायो, तुम्हरो कैसो लागत ॥

गोपियों से तो बहुत छीना-झपटी की किन्तु राधारानी से याचना की।

कृष्ण – हे राधे! इन गोपियों का माखन तो चाख लिया है, आप भी अपनी मटकी का माखन चखा दो।

लै आयीं वृषभानुसुता हँसि, सद्लौनी है मेरी ।
लै दीन्हो अपने कर हरि मुख, खात अल्प हँसि हेरी ॥

कृपामयी हँसते हुए अपनी मटकी ले आईं। बात यहाँ समाप्त नहीं हुई, श्रीजी ने स्वयं अपने हाथ से श्रीकृष्ण को नवनीत खिलाया।

खाते समय ब्रजेश खा कम रहे हैं, प्यासे चकोर की तरह श्रीराधारानी के मुख चन्द्र की ओर अधिक देख रहे हैं –

सबहिन मीठो दधि है यह मधुरे कह्यो सुनाइ ।
सूरदास प्रभु सुख उपजायो ब्रजललना मन भाइ ॥

कृष्ण – हे राधे, सबके गोरस में स्वाद है किन्तु आपका सर्वाधिक सुस्वादु है, आश्चर्य तो यह है कि श्यामसुन्दर वह माखन खाते हुए अघा नहीं रहे हैं क्योंकि माखन का खाना तो बहाना है वे तो सर्वश्रेष्ठ वस्तु का उपभोग कर रहे हैं। वह है – श्रीराधारानी का मुख दर्शन।

गोपिन हेतु माखन खात ।
प्रेम के वश नंदनंदन नैक नहिं अघात ॥

विशेष बात यह है कि बहुत खाने पर भी माखन समाप्त नहीं हो रहा है।

सबै मटुकी भरी वैसेहि प्रेम नहिं सिरात ।
एक कर दधि दूध लीने, एक कर दधि जात ॥

वस्तुतः प्रेम की समाप्ति है ही नहीं। न प्रेम की कोई सीमा है, न उस मटकी के माखन की। ये बातें असत् तर्क से नहीं समझी जा सकतीं। तर्क से तो मन में यही होगा कि अरे, एक छोटा सा बालक कितना माखन खा सकता है?

सूर प्रभु को निरखि गोपी मनहि मनहि सिहात ॥

सही बात तो यह है कि जिन्होंने इन लीलाओं को असंदिग्ध चित्त से स्वीकार किया, उन्हें उसका अनिर्वचनीय आनन्द भी प्राप्त हुआ।

योग, यज्ञ, तप, ध्यान न आवत, सो दधि दान लेत सुख मानैं ।
खात परस्पर ग्वालन मिलिके मीठो कहि-कहि आपु बखानैं ॥
विश्वंभर जगदीश कहावत, ते दधि दोना मांझ अघाने ॥
आपुहि हरता आपुहि करता, आपु बनावत आपुहि माने ॥
ऐसे सूरदास के स्वामी, ते गोपिन के हाथ बिकाने ॥

जो न योगियों के ध्यान में आता है, न तपस्वियों के और न यज्ञाहुतियों से सन्तुष्ट ही होता है, उसे यहाँ हठपूर्वक दान लेने में सुख मिल रहा है। सखाओं के साथ परस्पर बाँटकर खा रहा है और मधुर-मधुर कहकर उसकी प्रशंसा कर रहा है। जो सम्पूर्ण संसार का उदर भरने वाला है, ईश्वर है वो एक दोना दधि में सन्तुष्ट हो रहा है, गोपियों ने अपने प्रेम से खरीद लिया इस जगत के स्वामी को।

माँट से अरूआ (बारी की नगला होते हुए) की दूरी ८.३ कि.मी. है।

ऊधर गाँव

देवगुरु ब्रहस्पति के शिष्य और भगवान् श्रीकृष्ण के सखा व मंत्री उद्धव जी ब्रज में अपने मित्र की प्रेरणा से आये तो थे विरह से सन्त्रस्त ब्रजवासियों को कान्हा के ऐश्वर्य व तत्त्वज्ञान का बोध कराकर, उनकी विरह व्याधि का शमन कर उनके हृदय में शान्ति का संचार करने परन्तु ब्रजवासियों, विशेषकर ब्रजाङ्गनाओं के अगाध कृष्ण प्रेम को देखकर उनके ज्ञान की तो गुदड़ी बन गयी और वे स्वयं ब्रजदेवियों को ही अपना गुरु मानकर, छः

मास तक ब्रजवास करके उनसे प्रेमशास्त्र का गहन अध्ययन करने लगे और अपनी झोली पसारकर प्रभु से याचना कर उठे –

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

(भा. १०/४७/६१)

साथ ही साष्टांग दण्डवत करके ब्रजदेवियों की वन्दना करने लगे –

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

(भा. १०/४७/६३)

ब्रजाङ्गनाओं की सर्वोच्चतम प्रेम दशा व प्रेमशिक्षा से अभिभूत उद्धव जी सम्पूर्ण ब्रज में विचरण करते रहे।

भागवत जी में भी ब्रजवीथियों में विचरणशील प्रेम दीवाने उद्धव जी का वर्णन है –

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान् ।
कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥

(भा. १०/४७/५६)

ब्रजप्रेमी उद्धव जी कभी नदी तट पर जाते, कभी वनों में विचरण करते, कभी गिरिराज जी की घाटियों में भ्रमण करते। कभी रंग-बिरंगे पुष्पों से लदे वृक्षों में ही रम जाते एवं यहाँ ब्रजविहारी ब्रजपति ने कौन सी लीला की है, ऐसा प्रश्न पूछकर ब्रजवासियों को ब्रजराज व उनकी लीलाओं के चिन्तन में तन्मय कर देते।

ब्रजप्रेम पगे, ब्रजभ्रमण करते उद्धव जी का ब्रज के एक अन्य जिस स्थल पर आगमन हुआ उसका नाम है उद्धव नगर, जिसे वर्तमान में 'ऊधर गाँव' के नाम से जाना जाता है। यह उद्धव जी से जुड़ा स्थल है। जाबरा-जैसवा मार्ग पर स्थित इसी गाँव में गोपिकाचरणरजाभिलाषी उद्धव जी का वन भी है। स्थानीय ब्रजवासी इसे 'ऊधर की झाड़ी' कहते हैं। यह वन ८०० एकड़ तक विस्तृत है, जिसमें कदम्ब, खंडिहार, पसेंदू तथा पीलू आदि प्राचीन व्रज-तरुओं की अनुपम छटा सुशोभित है। उद्धव जी के नाम से ही जुड़ा हुआ सरोवर 'उद्धव कुण्ड', मनोहर वृक्षावली से आच्छादित होकर अनुपम छटा धारण किये है। कृष्णलीला काल में उद्धव जी ने कुछ काल पर्यन्त यहाँ निवास किया था। अतीत में उद्धव जी का टीला भी इस वन में था। प्रत्येक वर्ष चैत्र माह की पूर्णिमा को आयोजित होने वाले मेले में श्रद्धालु भक्त 'ऊधर की झाड़ी' की परिक्रमा करते हैं।

माँट से उधर ग्राम की दूरी ११.३ कि.मी. है।

धरणीधर (बेसवां)

श्रीकृष्ण क्रीड़ाभूमि को बनाया ऋषियों ने तपोभूमि!

सीमान्त ब्रज में भी रहा ऋषियों का प्रवास!!

क्रीड़ाभूमि एवं ऋषियों की तपोभूमि होने से ब्रज के गोरव तीर्थों में हुआ इस धरणीधर क्षेत्र का परिगणन। ब्रजमण्डल के उत्तरीय कोण में स्थित इस पावन स्थान पर महर्षि विश्वामित्र जी ने दीर्घकाल तक तप किया। यहाँ धरणीधर तीर्थ नामक सुन्दर सर है, जो महर्षि के यज्ञकुण्ड का स्मारक है।

धरणीधर सरोवर

अलीगढ़ जिले में अलीगढ़ से ३२ कि.मी. की दूरी पर स्थित धरणीधर तीर्थ के प्रति ऐसी जनमान्यता है – यह सरोवर महर्षि विश्वामित्र जी का यज्ञ कुण्ड था। इसके पौराणिक प्रमाण भी प्राप्त हैं।

विश्वामित्र जी ने यहाँ क्यों किया यज्ञ?

तीर्थगुरु पुष्करराज पृथ्वी का दक्षिण चक्षु है, पंजाब का प्रमुख तीर्थ कटाक्षराज वाम चक्षु है। कुरुक्षेत्र पृथ्वी-देवी का वक्ष व गंगा-यमुना इडा-पिंगला नाड़ी है। परोक्ष प्रवाहित सरस्वती सुषुम्ना नाड़ी है। गंगा-यमुना के मध्यस्थ अन्तर्वेद तीर्थ पृथ्वी का उदर है। प्रयागराज से आगे पूर्व का भाग चरण है, दक्षिणोत्तर का भाग भुजा है। उदर में नाभिमण्डल देह का मध्यभाग है और इसीलिए भगवान् संकर्षण ने पृथ्वी को धारण किया। माप-तोलकर मध्य भाग को मस्तक पर धारण किया। इसी प्रकार शेष जी के ठीक शीश

विश्वामित्र - धरणीधर

के ऊपर धरणी की नाभि है। पृथ्वी की यह नाभि ही धरणीधर है; धरणी अर्थात् पृथ्वी एवं धारण करे सो धरणीधर।

महर्षि विश्वामित्र को पृथ्वी का यह नाभिमण्डल अथवा मध्यकेन्द्रबिन्दु ही रुचिकर लगा अतः यहीं उन्होंने यज्ञ किए।

नाभि में घृत, तैलादि के लगाने से जिस प्रकार सम्पूर्ण शरीर में स्निग्धता आ जाती है, इसी प्रकार धरणी का नाभि स्वरुप धरणीधर में यज्ञादि करने से समग्र संसार की तृप्ति होगी, यह सत्य ही है। सुदीर्घ समय तक महर्षि श्री विश्वामित्र जी ने यहाँ यज्ञ किया अतः नगरी का नाम विश्वामित्र पुरी हुआ, जिसका अपभ्रंश बेसवां हुआ।

धरणीधरतीर्थ-सर छोटे-बड़े देव मन्दिरों से घिरा हुआ आज भी अपनी अलौकिक छटा से दर्शनार्थियों को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।

पतनालों से यज्ञकुण्ड में घृताहुति

वनखण्डी महादेव – धरणीधर

सर के ईशानकोण में विराजित हैं – श्री वनखण्डी महादेव, समीप ही साधुघाट पर है – श्री रघुनाथ जी का प्राचीन मन्दिर। यहाँ रघुनाथ जी महर्षि विश्वामित्र जी के आराध्यदेव के रूप में विराजमान हैं। आग्नेय कोण में है श्री हनुमान जी का प्राचीन मन्दिर, निकट ही हैं – मार्कण्डेश्वर महादेव, दाऊ जी मन्दिर, गुप्त गुफा एवं भूतेश्वर महादेव।

धरणीधर सर के जीर्णोद्धार में निकले पाषाण के दो विशाल पतनाले। लोकविश्रुति है कि इन पतनालों से यज्ञकुण्ड में घृताहुति

दाऊ जी – धरणीधर

दी जाती थी।

भूमिगत ४ पतनालों में २ पतनाले तो निकाल लिये गये किन्तु अन्य २ पतनाले भार में अत्यधिक होने से भूमिगत ही रहे।

सहस्रों शालग्राम शिलाएं भी निकलीं, इसके अतिरिक्त जब खनन कार्य में जली हुई हव्यसामग्री निकली तो यह क्षेत्र यज्ञस्थली के रूप में और भी सिद्ध हो गया।

पश्चिम दिशा में है – श्री विश्वामित्र घाट, जहाँ १२ द्वारी मन्दिर में विराजित हैं – श्री धरणीश्वरनाथ महादेव, ये इस क्षेत्र के अधिष्ठातृ देव हैं। शिवरात्रि के पवित्र पर्व पर बहुसंख्यक श्रद्धालुओं द्वारा कांवर में गंगाजल लाया जाता है।

राया से धरणीधर (बेसवां) की दूरी १७.४ कि.मी. है।

नयावास

गोपाल ने अपने पिता नन्दबाबा से कहा –

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥

(भा. १०/२४/२४)

हमारा कोई निश्चित निवास स्थान नहीं है। गोसेवक हम लोग ब्रज के अनेकों वनों में गोचारण किया करते हैं। आज गायें यहाँ हैं, कल वहाँ पहुँच गयीं, कहीं अन्यत्र रुक गयीं तो हमें भी उनका अनुसरण करते हुए प्रतिदिन नये-नये स्थलों पर निवास करना पड़ता है।

श्यामसुन्दर द्वारा इस कथनानुसार तथा प्रतिदिन ग्वालों द्वारा नये-नये स्थलों पर वास करने के कारण इस स्थान का नाम हुआ 'नयावास'।

बेसवां से नयावास की दूरी ३.३ कि.मी. है।

काला आम

जितनी भी काली वस्तुएं हैं, वे कृष्ण के नामानुसार ही होती हैं। इसी तरह से संसार में विविध कोटि के आम हैं। वर्तमान काल में वनों का अस्तित्व नहीं रहा, लगभग सम्पूर्ण वन कट चुके हैं किन्तु पुरातन काल में यहाँ के वनप्रान्त में कोई ऐसा फल होता होगा, जो कृष्णवर्ण का रहा होगा, इसीलिए यह ग्राम 'काला आम' के नाम से पुकारा जाने लगा।

नयावास से काला आम की दूरी १.५ कि.मी. है।

गढी पिथौरा

यहाँ पर भी राम-श्याम की गोपबालकों सहित सख्य-रस की क्रीड़ा हुई है, उस लीला के अनुसार ही यह ग्राम इस नाम से संज्ञित हुआ।

काला आम से गढ़ी पिथौरा की दूरी १.५ कि.मी. है।

सौनई

सोनइ शब्द अपभ्रंश है। मूल में सोना से 'सोनई' हो गया। जहाँ सब कुछ सुनहला दिखायी पड़ा, वह है 'सोनई'। सब कुछ सुनहला क्यों दिखायी पड़ा, इसका उत्तर ये है कि श्री वृषभानुनन्दिनी ब्रज के वन-वनान्तर समस्त स्थलों पर विहार करने के लिए विचरण किया करती हैं, इस स्थान पर भी उनका आगमन हुआ है, तभी तो इसका नाम सोनई पड़ा है। श्रीजीके यहाँ आने पर क्या चमत्कार होता था –

गोराः भृङ्गकुरंग कोकिलगणाःगोराः शुकाः सारिकाः
गोराः सर्वमहीरुहाः वनचयाः गोराणि पुष्पाणि च
गोराश्चक्रकपोतबर्हिविहगाः गोरं च वृन्दावनं
राधादेहरुचाद्भुतं सखिवृतः श्यामोऽपि गोरायते ॥

श्रीपाद रूपगोस्वामी जी ने लिखा है कि गोरांगी श्री राधारानी के पधारने पर काले (कृष्णसार) हिरन, काले भ्रमर, काली कोकिलाएं – ये सब उनकी स्वर्णिम अंगकान्ति के प्रभाव से काले नहीं रहते, सुनहले हो जाते हैं। हेमांगी श्यामा जी के वर्ण का ऐसा प्रभाव है। भ्रमर काले हैं किन्तु जब गोरांगी का गोरतेज उन पर पड़ता है तब काले की जगह वे भी गोरे दिखायी पड़ते हैं। वन-विहार के समय कृष्णसार मृग दूर से दौड़ते हुए श्री प्रिया-प्रियतम के निकट आये तो गोरवर्णा किशोरी जी की अंगकान्ति के प्रभाव से वे गोरे हो गये। इसी प्रकार वृक्षों पर कोकिलाएं आसीन थीं –

अम्ब की डारि कोकिला बैठी राधा राधा गावै हो।
प्रीतम रसिक देखिकैं पुनि पुनि सुनि सुनि ग्रीव ढुरावैं हो ॥
तरु की छाँह बिरमि रहे दोऊ खग गावत जस भावै हो ॥
'वृन्दावन' हित रूप स्याम ता सुर सौं सुर जु मिलावैं हो ॥

कोयल राधा नाम का गायन कर रही है और उसे सुनकर श्रीजीके प्रेम में श्यामसुन्दर के नेत्रों से अश्रुपात हो रहा है। राधारानी की गोरी पीठ पर काली वेणी इस प्रकार

सुशोभित हो रही है मानो नागिन लहरा रही हो। कोकिला के राधानाम उच्चारण करने पर जब राधारमण लाल जी ने ऊपर देखा तो वह उनको सोने की दिखायी पड़ी। तोता-मैना आदि पक्षी भी गोरांगी की अंग प्रभा से सोने के बन गये।

चकवा-चकवी, कपोत, मयूर – ये सब स्वर्णिम बन गये। सम्पूर्ण वृन्दावन गोरा हो गया।

सखियाँ कहती हैं – देखो, राधारानी के अंग की अद्भुत छटा, ये श्याम भी गोरे बन गये।

ऐसा केवल रूप गोस्वामी जी ने ही नहीं लिखा, महाकवि बिहारी ने भी लिखा है –

मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै श्याम हरित दुति होई॥

मेरी बाधा का हरण वे राधारानी ही करेंगी, जिनके अंग की कान्ति पड़ने पर श्याम भी हरे हो गये। नीले में पीले रंग का मिश्रण किया जाये तो वह हरा हो जायेगा अतः श्यामसुन्दर हरे रंग के दृष्टिगोचर होते हैं अथवा हरित दुति का तात्पर्य है कि उनके अंग की कान्ति छिप गयी, कालिमा चली गयी।

आगे वर्णन किया गया है कि हेमांगी श्रीराधा की अंग प्रभा से कृष्णवर्णा यमुना भी पीली हो गयी।

किशोरी जी जब यमुना स्नान करती हैं तो हेमांगी के पीत अंगराग के नील यमुना सलिल में प्रवाहित होने से यमुना भी पीली हो गयी।

अतः ऐसा यह दिव्य स्थान है जहाँ वृषभानुजा की स्वर्णिम अंग कान्ति से सब कुछ स्वर्णमय हो गया, सुनहला हो गया, सोने का सा हो गया इसलिए 'सौनई' नाम से चर्चित हुआ।

धरणीधर से सोनई की दूरी १५.५ कि.मी. है।

तिरवाया (तिलक वन)

वर्तमान काल में तिरवाया नाम से संज्ञित यह गाँव वस्तुतः वामन पुराण में वर्णित तिलक वन है, जिसका चित्रण अपने अमूल्य ग्रन्थ **ब्रज भक्ति विलास** में नारदावतार **श्री नारायण भट्ट जी** ने इस प्रकार किया है –

मृगावत्याप्सरा यत्र श्रृङ्गारतिलकं करोत् ।
गोपीनां सुकुमारीणां कृष्णवेषाभिधायिनां ॥
वहुतिलकवृक्षाणां रोपणं रमणं करोत् ।
तिलकाख्यं बनं जातं सर्वं सौभाग्यवर्धनं ॥

मृगावती नामक अप्सरा ने यहाँ कृष्णवेषधारी सुकुमारी गोपिकाओं का श्रृंगार तिलक किया था।

बहुत से तिलक वृक्षों का रोपण तथा रमण किया अतः यह तिलक वन सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है।

तिलक वन (तिरवारा) की वृहद्गौतमीय तन्त्र में इस प्रार्थना मन्त्र से वन्दना की गयी है।

तिलकवन प्रार्थना मन्त्र –

श्रृङ्गारतिलकाभ्यस्तु गोपिकाख्यो नमो नमः ।
वनाय तिलकाख्याय बनराज नमोस्तु ते ॥
इति मन्त्रं दशावृत्या प्रणतिं कुरुते नरः ।
सकलेष्टप्रदां नित्यं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥

श्रृंगार तिलक वाली गोपियों को नमस्कार है, तिलक वन वनराज! आपको नमस्कार है।

जहाँ मृगावती ने गोपियों के साथ स्नान किया था, वह पृथ्वी तल पर मृगावती कुण्ड के नाम से विख्यात हुआ।

मृगावती कुण्ड की महिमा और इसमें स्नान-आचमन करने का मन्त्र इस प्रकार है।

मृगावतीकृतं स्नानं गोपिकाभिः समन्विता ।
यतो मृगावतीकुण्डं विख्यातं पृथिवीतले ॥

मृगावती से उत्पन्न तीर्थ, ताम्र वर्ण के जल से पूर्ण, ब्रह्म हत्या का नाश करने वाले ऐसे तीर्थराज को नमस्कार है।

बेसवां (धरणीधर) से तिरवाया की दूरी १६.२ कि.मी. है।

सौंखखेड़ा

यह कृष्ण-बलदेव के गोचारण की, क्रीड़ा करने की स्थली है। यहाँ पर इन दोनों भ्राताओं ने अपने गोप सखाओं के साथ ऐसी विविधक्रीडाएं कीं जैसे बहुत छोटे बच्चे किया करते हैं। कभी फिरंगी घुमाते हैं, दौड़ते-कूदते हैं।

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः
कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय
धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥

(भा. १०/१५/७)

अपने ज्येष्ठ भ्राता से गोविन्द कहते हैं – हे दाऊ भइया! तुमको देखकर इस वन के मयूर नृत्य कर रहे हैं, हिरनियाँ प्रसन्न होकर भ्रमण कर रही हैं। जिस प्रकार गोपिकाएं प्रेम पूर्वक तुमको देखती हैं, उसी प्रकार यहाँ की हिरनियाँ भी तुम्हारी ओर देख रही हैं। जिधर जाओ, उधर ही कोकिलाएं मधुर गान सुनाती हैं। इस भूमि के पशु-पक्षी धन्य हैं जो तुम्हारा स्वागत कर रहे हैं। यहाँ की लताएं, यहाँ के वृक्ष तुम्हारे चरणों का स्पर्श होने से धन्य हो रहे हैं।

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्
पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै-
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥

(भा. १०/१५/८)

यहाँ की नदियाँ, यहाँ के टीले, यहाँ के खग-मृग सब प्रेम से तुम्हारा प्रेक्षण कर रहे हैं।

यह वही भूमि है।

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं
गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥

(भा. १०/१५/६)

यहाँ के भ्रमर भी राधारानी और गोविन्द का गुणगान कर रहे हैं। ब्रजधरा के ये दिव्य भ्रमर भी गीत गाते हैं अतः नन्दनन्दन कहते हैं – हे दाऊ! ये भ्रमर तुम्हारा यशोगान कर रहे हैं। ये जानते हैं कि आदिपुरुष कृष्ण-बलराम आये हैं अतः इनका भजन करो।

प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥

(भा. १०/१५/६)

ये भ्रमर तुम्हारे भक्त वे ही मुनिजन हैं, जिन्होंने लाखों वर्ष तक तप किया और तपोपरांत ब्रज में भँवरे बने, तत्पश्चात् इनको तुम्हारा दर्शन हुआ और अब ये तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। तुम यहाँ गुप्त रूप से गोपबालक के रूप में छिपे हो, आदिपुरुष के रूप में नहीं हो, गोचारण कर रहे हो परन्तु ये भ्रमर पहचान गये कि ये हमारे आत्मदेव हैं।

बालक्रीड़ा करते हुए इस स्थल पर गोविन्द ने इस प्रकार बड़े भइया बलदेव का यशोगान किया।

राया से सादाबाद-राया मार्ग होकर १०.६ कि.मी. की दूरी पर स्थित है सौंखखेड़ा ग्राम।

गोसना

नेपाल के विद्वान् 'कवि प्रसाद गोतम' ने अपनी पुस्तक 'सख्य रस और भाव निकुंजी' में ब्रज के अगणित स्थलों का शास्त्रीय आधार पर निरूपण किया है। इस पुस्तक के अनुसार गोसना गाँव की स्थिति 'सुमिरन घेरा' तथा 'गोप वन' के अन्तर्गत है। गोप मंजरी सखी का प्राकट्य यहीं हुआ। श्यामसुन्दर के मथुरा प्रवास के उपरान्त भी सुमिरन घेरा और इसके अन्तर्वर्ती गोसना ग्राम के गोपी-गोपवृन्द क्षणभर को भी उनको विस्मृत न कर सके।

सदा-सर्वदा अपने सन्निकट ही मनमोहन की अनुभूति में तन्मय रहा करते थे। गिरिराज महाराज के पूजन के एक वर्ष पश्चात् सुमिरन घेरा के ग्वालवृन्द गिरिगोवर्द्धन की एक शिला अपने साथ ले आये तथा गोसना के टीले पर विराजमान करके उनकी अर्चना की। उसी समय से गोसना वासिनी गोपमंजरी सखी ने इस कृष्णमयी गिरिराज शिला की नित्य आराधना और इसकी नित्य परिक्रमा को अपनी दैनिक दिनचर्या का नियम बना लिया।

गोसना गाँव से थोड़ी दूर पर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित गोसना टीला है, जो अपने भीतर आश्चर्यजनक किंवदंतियाँ समेटे हुए है। एक ग्रामवासी के अनुसार – इस टीले पर भरतपुर नरेश की गढ़ी (कच्चा किला) थी, इससे जुड़ी अन्य किंवदंतियाँ सत्य नहीं हैं।

राया से हाथरस-मथुरा रोड पर ६.६ कि.मी. की दूरी पर स्थित है गोसना।

मावली

ये युगल विलग कहाँ? यूँ तो ये दिव्य दम्पत्ति सदा मिले ही हुए हैं। रस-प्रवाह हेतु, किन्तु

"मिले ही रहत मानो कबहुँ मिले न"

(भगवद्रसिक जी)

इन विलक्षण लीलाओं की सिद्धि भी करते हैं। यह क्षेत्र इन्हीं अद्भुत लीलाओं को संजोये है। वस्तुतः विलग होने से ही मिलन की शोभा है, वियोग में ही रस का विकास है। इसीलिए तो नित्य विहार की लीलाओं में भी मान होता है। नित्य विहार के प्राकट्य कर्ता अनन्य नृपति स्वामी श्रीहरिदास जी महाराज ने मान-गान किया –

मानि तूब चलि री एक संग रह्यौ कीजै, ... ॥
तू रिस छाँड़ि री राधे राधे, ... ॥
राधे दुलारी मान तजि, ... ॥
काहे कौं मान करत मोहिंब कत दुख देति, ... ॥
बचन दै मान न करौं, ... ॥
प्यारी जू हम तुम दोऊ एक कुञ्ज के सखा रूसैं क्यों बनैं, ... ॥

श्री हित हरिवंश जी महाराज ने भी मान-गान किया –

चलहि किन मानिनि कुञ्ज कुटीर .... ॥
बेगि चलहि उठि गहर करत कत निकुञ्जबुलावत लाल .... ॥
खेल्यौ लाल चाहत खन.. ॥
छाँड़ि दै मानिनी मान धरिबौ.................................... ॥

सभी रसिकाचार्यों ने जहाँ संयोग गाया, साथ ही वियोग की चर्चा की। जहाँ मिलन गाया, पूर्व में विलग की भावना भी की।

श्रीकृष्णदासजी की वाणी में मावली का मिलन –

नैंन मिलाबति प्यारे सों प्यारी ।
आधौ बदन दुराइ घूँघट-पट, चितै रही ब्रजनारी ॥
कछु मुसकाति नचावति मन्मथ, चपल भौंह अनियारी ।
काननि जुगल उदित हिम-आकर, ताटंक अलक घुंघरारी ॥

'कृष्णदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि, इहि रसाल सुकुमारी ।
हिलिमिलि रहसि दियौऽब आलिंगन, लाल गोवर्द्धनधारी ॥

सकल कला कोविदा श्रीराधा घूँघट की ओट से श्यामसुन्दर को देख रहीं हैं, आधा मुख आवृत कर रखा है।

ब्रज में आज भी लज्जाशीला ब्रज-गोपियाँ ज्येष्ठ, श्वसुरादि के सन्मुख घूँघट में सेठा कर लेती हैं, कोई दो अंगुली से तो कोई एक अंगुली से। मात्र नेत्र-पुतलियाँ ही दिखाई पड़ती हैं उनकी। ये सुनायिकाओं के लक्षण हैं।

सर्व ढके सोहत नहीं उघरे होहिं कुवेश ।
अर्द्ध ढके सोहत सदा कवि अक्षर कुच केश ॥

श्रीजी थोड़ा-सा मुस्कुरा देती हैं, फिर पट-घूँघट में ही धनुराकार भ्रू को नचा देती हैं। यह वङ्किम भ्रू-विलास मदन के शर-संधान को भी हेय बना देता है।

भ्रू-नर्तन क्या, इस समय तो ऐसा लगता है मानो श्रीराधा साक्षात् कामदेव को नचा रहीं हैं। कान में श्रुति-मण्डनकारी कुण्डलों के जगमग का प्रकाश ऐसा लग रहा है मानो दो चन्द उदित हो गये हैं। दोनों ओर कुण्डलों पर झूलती काली-घुँघराली अलकें मानो कलंकित चन्द को सूचित कर रहीं हैं, ताटंक कलंक का कार्य कर रहा है।

श्रीकृष्णदास जी कह रहे हैं – इधर रसिक-सिरमौर श्रीकृष्ण हैं और उधर रसभरी सुकुमारी श्रीराधा।

श्यामसुन्दर श्रीजी के निकटवर्ती हुए एवं श्रीजी को आलिंगन दिया।

श्रीसूरदासजी की वाणी में –

बिहँसि राधा कृष्ण अंक लीन्ही ।
अधर सौं अधर जुटि, नैन सौं नैन मिलि,
हृदय सौं हृदय लगि, हरष कीन्ही ।
कंठ भुज-भुज जोरि, उछंग लीन्ही नारि,
भुवन-दुख टारि, सुख दियौ भारी ।
हरषि बोले स्याम, कुञ्ज, बन-घन-धाम,
तहाँ हम तुम संग मिलैं प्यारी ।
जाहु गृह परम धन, हमहुँ जैहैं सदन,
आइ कहुँ पास मोहि सैन दैहौ ।
'सूर' यह भाव दै तुरतहीं गवन करि,
कुञ्ज-गृह-सदन तुम जाइ रैहौ ॥

श्यामसुन्दर ने हँसते हुए श्रीजी को अपने अंक में ले लिया। दोनों के अधर से अधर, नेत्र से नेत्र, हृदय से हृदय मिल गये। श्यामसुन्दर को अद्भुत मिलन का आनन्द प्राप्त हुआ। श्रीराधिकारानी के स्कन्ध पर अपनी नील भुजा को रखा एवं श्रीजी ने श्यामसुन्दर के स्कन्ध पर अपनी भुजा स्थापित की। इस अवसर पर नील गगन में उदित गोर चन्द भी लज्जित हो रहा था।

इसके बाद तो श्यामसुन्दर ने श्रीराधारानी को अपनी गोद में ही उठा लिया। उनके सभी क्लेश दूर कर, विशेष सुख प्रदान किया।

श्यामसुन्दर बोले – "हे स्वामिनी जू! अब हम-तुम वन की किसी सघन-निकुञ्ज में मिलेंगे। अभी तो तुम भी अपने गृह को जाओ और मैं भी नन्दसदन में जा रहा हूँ। कल जिस निकुञ्जमें विहार-क्रीडा होनी हो, मेरे समीप आकर तुम मुझे सैन-संकेत में बता देना और फिर हमारा-तुम्हारा वहीं मिलन होगा।" ऐसा कहकर श्रीकृष्ण अपने घर लौट आये एवं श्रीजी वृषभानुपुर आ गईं।

श्रीस्वामीजी की वाणी में मिलन-लीला –

ऐसी जिय होत जो जिय सौं जिय मिलै,
तन सौं तन समाइ लैहुँ तौ देखौं कहा हो प्यारी।
तोहिं सौं हिलगि आँखैं आँखिन सौं मिली रहैं,
जीवत कौ यहै लहा हो प्यारी॥
मोकौं इतौ साज कहाँ री हौं अति दीन तुव बस,
भुव छेप जाइ न सदा हो प्यारी।
श्री हरिदास के स्वामी श्याम कहत राखि लै री,
बाहु बल हौं बपुरा काम दहा हो प्यारी॥

(श्रीकेलिमाल-३४)

श्यामसुन्दर कह रहे हैं – "प्यारी जू! ऐसी इच्छा होती है कि आपके जिय (हृदय) से मेरा जिय (हृदय) मिला रहे।"

सम्पूर्ण एकता में ही मन से मन मिलने की स्थिति आती है। लोक में तो यह ऐक्य है ही नहीं, इसीलिए आए दिन विवाहोपरान्त तलाक की स्थिति आ जाती है।

श्यामसुन्दर कह रहे हैं – "हे प्यारी! आपके तन से मेरा तन मिलकर एक हो जाय फिर आपके अतिरिक्त अन्य कुछ दिखाई ही नहीं देगा। मेरे ये नेत्र आपसे ही लगे रहें, जीवन का यही परम लाभ है। मुझमें ऐक्य की सम्यक् सज्जा शक्ति नहीं है, मैं तो दीन हूँ, आपके आधीन हूँ।

आपका भ्रू-क्षोभ भी मैं सहने में असक्षम हूँ अर्थात् मैं आपका मान नहीं सह सकता हूँ। मुझ बेचारे को यह काम जला रहा है, आप अपनी भुजा के बल से मेरी रक्षा करो।"

पानी गाँव से ३ कि.मी. दूर स्थित है मावली गाँव।

राया

राया शब्द रै धातु से बना है "रै" शब्द अमरकोष के अनुसार धनवाची है।

द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु।
हिरण्यं द्रविणं द्युम्नमर्थरैविभवा अपि॥

(अमरकोष २/९/९०)

धन के ये बारह नाम हैं – द्रव्य, वित्त, स्वापतेय, ऋक्थ, धन, वसु, हिरण्य, द्रविण, द्युम्न, अर्थ, रै, और विभव।

जिस समय नंद बाबा का महावन में प्रवास था उस समय राया उनकी धनस्थली थी और जब नन्द गाँव में नंद जी रहे तो "कुशवन" कोसी में उनका कोषस्थल रहा।

नंदबाबा का कोई कोषस्थल था, इसका क्या प्रमाण है? इसका प्रमाण है – भागवत।

अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः।
वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन् सद्व्ययं विभुः॥

(भा. ३/२/३२)

जिस समय नन्द बाबा का धन बहुत अधिक बढ़ गया, उस धन के सद्व्यय की दृष्टि से श्रीकृष्ण ने गोवर्धन-पूजा रूप "गो यज्ञ" कराया।

धन यदि बढ़े तो सत्कार्य में लगाने में ही उसकी सार्थकता है, अन्यथा मृत्यु के बाद धनार्जन में हुआ पाप ही मनुष्य के साथ जाता है।

धन संग्रह स्वयं में एक बड़ा पाप है।

इस पाप से बचाया कन्हैया ने नन्दबाबा को अतः गोयज्ञ-महोत्सव कराया।

बहुत विशाल था यह उत्सव।

घरों से गिरिराज जी तक कहीं पंक्ति-भंग दिखाई नहीं देती थी।

पैड़ो नहिं पावत तहं कोऊ ब्रजवासिन भीर।

(सूर-सागर)

एक जगह तो सूरदास जी वर्णन करते हैं –

योजन बीस एक अरु अगरो डेरा इहि अनुमान।
ब्रजवासी नर नारि अंत नहिं मानो सिन्धु समान॥

(सूर-सागर)

पूरे इक्कीस योजन अर्थात् चौरासी कोस में तो केवल ब्रजवासियों के डेरा (शिविर) लगे थे, अभ्यागतों के शिविर अलग थे।

गोपन को सागर गिरि भयो मंदराचल।
रत्न भई सब गोपिका श्याम बिलोवनहार।
ब्रज चौरासी कोस परे गोपन के डेरा।
तापै चौवन कोश आज ब्रजवासिन घेरा॥

(सूर-सागर)

वैष्णव भोज, विप्रभोज ब्रजवासी भोज, अतिथि भोज हुआ। अनेक प्रकार का दान हुआ, इस प्रकार नन्द बाबा के धन का सदुपयोग कराया कन्हैया ने, अतिथिसेवी तो पूर्वजन्म से ही थे बाबा।

पूर्व चरित्र

पूर्व जन्म में श्री नंद-यशोदा दोनों तपस्वी और बड़े ही अतिथि सेवी थे। एक बार समिधा के लिए पति जंगल में गये हुए थे, अतिथि सेवा की परीक्षा हेतु स्वयं भगवान् नारायण एक युवक के रूप में व महादेव और भगवती पार्वती उनके वृद्ध माता-पिता के रूप में वहाँ आये।

युवक ने कहा – हे तपस्विनी! मैं व मेरे माता-पिता बहुत ही भूखे हैं, कुछ खाने को मिल जाये तो बड़ी कृपा हो किन्तु तपस्विनी बोली- अभी मेरे तपस्वी पति कंदमूल लेने जंगल में गये हैं, आप विराजिये, वे आते ही होंगे। (थोड़ी देर बाद)

युवक – मेरे माता-पिता भूख के कारण दुर्बल एवं अचेत हो गये हैं। देवि! कोई व्यवस्था करें।

अतिथि सेवा रूप धर्म की रक्षा हेतु वह तपस्विनी श्रीपति वैश्य के समीप गई।

वन से थोड़ी दूर पर एक कस्बे में श्रीपति वैश्य रहता था। वह तपस्विनी के रूप लावण्य पर मोहित था। कामी पुरुष अच्छी वस्तु को निजभोग्य समझता है एवं भक्त उसे भगवद् भोग्य समझता है। भक्तों की दृष्टि में जो भगवती है, कामुकों की दूषित दृष्टि उसे भोग्या के रुप में देखती है। श्रीपति प्रायः तपस्विनी से कहता था – देवि! कभी हमें भी सेवावसर दो किन्तु वह परम सती थी, उसकी दुर्भावना को जानती थी अतः उसका दूषित द्रव्य नहीं लेती थी।

आज अतिथि सेवार्थ वह उसके दुर्भाव को जानते हुए भी उसके पास गई। तपस्विनी को देखते ही श्रीपति बहुत प्रसन्न हुआ और बोला – आइये, आइये! आज तो मेरा भाग्योदय हो गया। क्या सेवा करूँ आपकी?

हमारे यहाँ कुछ अतिथि आये हैं, बड़े भूखे हैं, आपके यहाँ से सीधा-सामान लेने आई हूँ, तपस्विनी ने कहा। ये आटा, दाल, चावल ...... जो चाहिए सब ले जाओ, यह आपकी ही दूकान है, श्रीपति ने कहा।

तपस्विनी ने अतिथियों के लिए कुछ सीधा सामान ले लिया किन्तु इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है तुम्हें देने को, उसने कहा।

आपके पास बहुत कुछ है देने को, हमें यही चाहिए, श्रीपति ने तपस्विनी के वक्षस्थल की ओर दूषित दृष्टि से देखते हुए कहा।

तपस्विनी ने तत्क्षण दुकान से तीक्ष्ण धार वाला छुरा उठाया और अपने दोनों स्तनों को काटकर थाल में आगे करके बोलीं – तुम्हें यही चाहिए न, यह लो अपना दाम। श्रीपति देखकर घबड़ा गया।

रक्त से लथपथ छाती को एक वस्त्र से काटकर बाँधा और आश्रम में चली आई तपस्विनी।

अतिथि सेवार्थ कितना बड़ा बलिदान किया।

सामान्य जन क्या सेवा कर सकते हैं?

सबते सेवक धरम कठोरा .....

भाव से की गई एक क्षण की सेवा भी श्रेष्ठ है और बिना भाव के तो गधा भी जन्म भर ईंट-पत्थर, गिट्टी-मिट्टी ढोता है किन्तु क्या जन्मभर ढोने से भी वह उत्तम सेवक बन जाता है?

तपस्विनी को अपनी मृत्यु की चिन्ता नहीं थी, मरणासन्न अतिथि के मरने का भय था।

सामग्री लेकर दौड़ते हुए आश्रम में आई, देखा पति भी आ गये हैं। शीघ्र रसोई बन गई अनन्तर दम्पत्ति ने अतिथियों से भोजन की प्रार्थना की।

अपने भूखे माता-पिता के साथ वह युवक भोजन को बैठ गया।

तपस्विनी की छाती पर बंधे वस्त्र से रक्त बह रहा था।

देवि! यह रक्त कैसा? – युवक ने पूछा

तपस्विनी ने युवक से छिपाना चाहा बात को किन्तु पति के पूछने पर सब बताना पड़ा। सब वृत्तान्त सुनकर तपस्वी पति तो बड़े प्रसन्न हुए।

धन्य है देवि, तुमने सेवा के लिए प्राण-परवाह नहीं की। प्राण छूटना पाप नहीं है किन्तु "सेवा धर्म" का छूटना पाप है – तपस्विनी के पति ने कहा। उनकी सेवानिष्ठा को देखकर वह अतिथि युवक साक्षात् भगवान् नारायण रूप में प्रकट हो गये, उनके वृद्ध

पिता भगवान् शंकर के रूप में एवं वृद्धा माता जो कि स्वयं भगवती थीं, अपने साक्षात् रूप में प्रकट हो गईं।

हम उस दुष्ट वैश्य श्रीपति को समाप्त कर डालेंगे देवि, तीनों ने कहा।

तपस्विनी ने तीनों के चरण पकड़ लिये, भगवन्! आप कदापि ऐसा न करें, अन्यथा मुझे कष्ट होगा। उस बेचारे ने तो भोजन सामग्री देकर मेरे "अतिथि धर्म" की रक्षा की है।

ठीक है, अब तुम, हम तीनों से वरदान माँग लो।

आप श्रीपति वैश्य पर क्रोध नहीं करेंगे – यही मैं अपने प्रथम एवं अन्तिम वरदान के रूप में आपसे माँगती हूँ और कोई इच्छा नहीं है।

देवि, तुमने मेरे लिए अपने स्तन भी काट दिये, मैं अगले जन्म में तुम्हारे इन्हीं स्तनों का दुग्ध पिऊँगा, तेरे ही दुग्ध से मेरा शरीर पुष्ट होगा।

द्वापरान्त में यही तपस्विनी "मैया यशोदा" बनीं।

जब नारायण तुम्हारे पुत्र बनेंगे तो मैं भी तेरी पुत्री बनूँगी, भगवती ने कहा।

जब नारायण और भगवती तुम्हारे पुत्र-पुत्री बनेंगे तो मैं तुम सबकी चरण-रज प्राप्ति के लिए पर्वत बनूँगा, शंकर जी बोले।

अतएव नंदगाँव में शंकर जी नन्दीश्वर पर्वत बने। पूर्वजन्म की सेवा के इसी पुण्य से श्री नन्द-यशोदा का वैभव इतना बढ़ा। प्रभु ने पुनः उस बढ़े हुए धन से गिरिराज महोत्सव द्वारा ब्रजवासियों की सेवा कराई।

द्वितीय लीला

रै धातु से राया शब्द बना है। रै अर्थात् धन। राया नंदबाबा का कोषस्थल तो था ही, इसके अतिरिक्त यहाँ गोपियों ने भी अपने एकमात्र "धन" की चर्चा की।

श्रीकृष्ण रूपी धन की चर्चा।

धन नहीं, वह तो परम धन था।

पुञ्जी भूतं प्रेम गोपाङ्गनानां, मूर्तीभूतं भागधेयं यदूनाम्।
एकी भूतं गुप्तवित्तं श्रुतीनां, श्यामीभूतं ब्रह्म मे सन्निधत्ताम्॥

(श्रीविष्णुस्तुतिमञ्जरी, तृतीयो भाग-कृष्ण स्तुति-२६)

समस्त ब्रजगोपाङ्गनाओं के प्रेम का एकत्रित घनीभूत रूप थे श्रीकृष्ण। यदुवंशियों के भाग्य का एकत्रित मूर्तिमान स्वरूप थे श्रीकृष्ण। श्रुतियों के गुप्त धन का एकत्रित रूप थे – श्रीकृष्ण। वह ब्रह्म ही श्याम रूप में आया यहाँ। विशुद्ध प्रेम ही श्रीकृष्ण हैं। ब्रजवासियों का यही एकमात्र धन था।

ब्रह्मा जी ने भी यही कहा –

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति न-
श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुह्यति ।
सद्वेषादिव पूतनादि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥

(भा.१०/१४/३५)

ब्रजवासियों का धाम अर्थात् घर-मकान आदि भी श्रीकृष्ण थे, अर्थ भी कृष्ण थे, सुहृद भी कृष्ण थे, प्राण भी कृष्ण थे, चित्र भी कृष्ण थे। जिसकी ये वस्तुएं कृष्ण ही हैं, वही वास्तविक ब्रजवासी है।

काल क्रम से ये बातें अब नहीं रहीं ब्रज में किन्तु वह एक ऐसा समय था, ब्रज के गोपी-ग्वाल ही नहीं पशु-पक्षी भी कृष्ण परायण थे।

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥

(भा.१०/२१/१३)

गैया भी कन्हैया की वंशी सुनकर अश्रु प्रवाहित करती थीं, उसके स्वरूप-सौन्दर्य को देखकर रोमांचित होती थीं, कानों को खड़ा करके वे नादामृत पीती थीं।

उनके छोटे-छोटे वत्स मुख में भरा हुआ दूध का घूँट न उगल पाते थे, न ही निगल पाते थे।

प्रणय गीत में गोपियाँ कह रही हैं।

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥

(भा. १०/२९/४०)

ऐसी कौन सी महाशक्ति है जो कृष्ण रूप को देखकर रोमांचित न हो या उसकी आँखों से अश्रु प्रवाहित न हो। इस रूप को देखकर तो लता-तरुओं को भी रोमाञ्च हो जाता था।

राया में श्रीकृष्ण रूपी परम धन की चर्चा ब्रजगोपियों द्वारा हुई।

श्री गोविन्द जी की वाणी में –

हमहिं ब्रजराज लाड़ले सों काज ।
यश अपयश सों हमें कहा डर, कहनो होय सो कह ल्यो आज ।
किधौं काहू कृपा करी धौं न करी, जो सनमुख ब्रज नृप युवराज ।
'गोविन्द' प्रभु की कृपा चाहिए, जो है सकल घोष सरताज ॥

श्रीकृष्ण ही परमधन है हमारा। अब यश-अपयश की क्या परवाह ....?

नारद जी ने कहा –

लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्मलोकवेदत्वात् ।

(नारद भक्ति सूत्र-६१)

लोकहानि की चिन्ता करने वाला न भक्त है, न हो सकता है –

जो अपनी हस्ती रखते हैं वे प्रेम निभाना क्या जानें?
जीवन से अपने मोह जिन्हें वो मरना मिटाना क्या जानें?
जो मीठे भोजन खाते हैं, वो ठोकर खाना क्या जानें?
जो इन्द्रिय सुख के भोगी हैं, प्रभु हेतु तड़फना क्या जानें?

(श्री बाबा महाराज कृत ब्रज भाव मालिका)

प्रेमी यश की इच्छा नहीं रखता है केवल प्रेमास्पद की कृपा ही उसे अभीष्ट है।

कृपा श्री लालन जू की चहिये ।

(सूरदास जी)

केवल गोपियों ने ही नहीं, सभी ब्रजवासियों ने यही कहा –

श्री परमानन्द स्वामी जी की वाणी –

यह दान धर्म ही तें पायौ नीके राखि यशोदा मैया, नारायन घर आयौ ॥
जा धन को मुनि जप तप साधत, निगमहु पार न पायो ।
जा धन धर्यो छीर सागर में, ब्रह्मा जाइ जगायो ॥
जा धन ते गोकुल सुख लहियत, बिगरे काज सँवारे ।
सो धन बार बार उर अंतर, परमानन्द बिचारै ॥

अरी यशोदा मैया, सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड का एक ही धन है – कृष्ण, जो तेरी गोद में आ गया है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इसकी खोज में हैं किन्तु आज तक प्राप्त नहीं कर सके।

कहाँ से आया यह धन? देवों की प्रार्थना पर क्षीर सागर से आया है, जनकल्याणार्थ।

अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

(गी. ९/३)

हे मनुष्यो! तुम मृत्यु कूप में पड़े हुए हो, क्योंकि तुमने मेरी प्राप्ति नहीं की। **(भा.११/२३/१५)** इस विनाशी धन से आज तक किसी को सुख प्राप्त नहीं हुआ और

जिसने कृष्ण रूपी धन को संजोया, उसके सब बिगड़े काम बन गये। तू भी इस धन की महिमा को जानती है। इसीलिए जब दुग्ध पिलाती है कन्हैया को तो अपने आँचर में उसे छिपा लेती है, जिससे दूसरे की नजर न लग जाये।

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ
पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् ।
दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥

(भा. १०/८/२३)

कृष्ण रूपी परम धन की चर्चा होने से भी यह स्थान विशेष राया हुआ।

मथुरा से राया की दूरी १५.७ कि.मी. है।

अरजुनिया

ब्रज के प्रत्येक गाँव का जो भी नाम है, वह नाम किसी लीला के ऊपर आधारित है। इस गाँव का सम्बन्ध 'अर्जुन' नामक गोपबालक से है, वह नन्दलाल का सखा था। प्यार से सम्बोधित किये जाने के कारण अर्जुन से 'अरजुनिया' नाम से पुकारा जाने लगा अतः उससे सम्बंधित होने के कारण इस गाँव का नाम भी 'अरजुनिया' कहलाया। यहाँ पर ग्वाल-लीलाएं हुई हैं।

राया से सादाबाद-राया मार्ग पर १०.८ कि.मी. की दूरी पर स्थित है अर्जुनिया ग्राम।

खेरेश्वर धाम (अलीगढ़)

अलीगढ़ जिले में श्री खेरेश्वर धाम परम रम्य स्थल है। खेर अर्थात् टीला। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा खेर (टीले) पर यहाँ शिवलिंग की स्थापना हुई, जिसे खेरेश्वर के नाम से सिद्धि प्राप्त हुई।

अलीगढ़ नगर को किसी समय कौशाम्बी के नाम से एवं बाद में "कोल" नाम से भी पुकारा जाता रहा है। अलीगढ़ शहर से लगभग ५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है यह स्थान।

संस्कृत, पाली तथा प्राकृत साहित्य में जिन षोडश जनपदों की चर्चा है, महाभारत युद्ध से पूर्व भारत में ये सोलह बड़े जनपद थे। उन सोलह बड़े जनपदों में एक शूरसेन जनपद जिसका उल्लेख श्रीमद्भागवत जी में भी प्राप्त होता है –

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम् ।
माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा ॥

(भा.१०/१/२७)

राजधानी ततः साभूत् सर्वयादवभूभुजाम् ।
मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥

(भा.१०/१/२८)

उस समय यदुवंशी राजा थे – शूरसेन, जिनसे शूरसेन जनपद हुआ। इन्होंने मथुरा को अपनी राजधानी बना लिया अतः मथुरा में रहकर ही माथुर मण्डल और शूरसेन मण्डल की शासन व्यवस्था देखने लगे।

उस समय कौशाम्बी नगर (अलीगढ़) शूरसेन जनपदान्तर्गत ही आता था। महाभारत के समीक्षाकार के अनुसार द्वापर युग में कौशिरिव कौशल नामक चन्द्रवंशी राजा का यहाँ शासन था, उस समय यह उनकी राजधानी थी, जो कौशाम्बी नाम से विख्यात थी (वाल्मीकि रामायण में भी इसका वर्णन है)।

राजा कौशिरिव को पराभूत कर कोल नामक असुर यहाँ का शासक हुआ, उसने कौशाम्बी का नाम "कोल" कर दिया। असुर के द्वारा धर्म के ऊपर दमन चक्र की गति तीव्र हो गई। श्रीकृष्ण दाऊ भैया के सहित रामघाट गंगा स्नान को ससैन्य जब यहाँ से निकले तो कोल नगर से लगभग ५ कि.मी. दूर स्थित इस खेर अर्थात् टीले पर ही उन्होंने शिविर डाला। कोल के आतंक से स्थान को मुक्त करने के लिए दाऊ महाराज ने कोलासुर से युद्ध किया। अंत में उसे हल के प्रहार से समाप्त कर दिया। आगे एक जलाशय में उन्होंने अपना शस्त्र प्रक्षालित किया, वह स्थान हल्दुआ (हर्दुआ) के नाम से जाना जाता है।

गंगा स्नान के पश्चात् पाण्डवों को यहाँ बुलाकर उन्हें यहाँ का राज्य सौंप दिया गया। अनन्तर प्रभु ने यहाँ खेर (टीले) पर शिवलिंग की स्थापना की, जिनकी खेरेश्वर महादेव के नाम से प्रख्याति हुई। आज भी देवछट के दिन यहाँ दंगल होता है जो दाऊ जी के मल्लयुद्ध का प्रतीक है।

ऐतिहासिक दृष्टि से –

यह तो सर्वविदित ही है कि भारत वर्ष सैकड़ों वर्ष गुलाम रहा, कितनी ही विदेशी जातियाँ यहाँ आईं, भारत की गोद ने सबको स्थान दिया किन्तु उन्होंने इस औदार्य का अनुचित लाभ उठाया। कुषाण, शक, शुंग .... आदि ने भारत में भी मथुरा को राजधानी

बनाकर यहाँ स्थाई रूप से निवास किया, इस अवसर पर कोल नगर में भी इनका राज्य रहा। ईसापूर्व – चौथी शताब्दी से पूर्व ही शूरसेन जनपद में शिव, शक्ति तथा वासुदेव की भक्ति का प्रचलन था। मथुरा में वासुदेव मन्दिर एवं कोल में खेरेश्वर महादेव की उस समय बहुत ख्याति व मान्यता थी। मथुरा से खेरेश्वर महादेव तक सीधा मार्ग होता था। मथुरा से खेरेश्वर दर्शन को जाने वाले बहुसंख्यक भक्त होते थे।

ईसापूर्व चौथी-पाँचवी शताब्दी में जिस समय सिकंदर ने आक्रमण किया, उस समय उसके साथ आये इतिहासकार टालमी, एरियन व टिलनी ने मथुरा व कोल नगर का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। टालमी ने तो प्रभावित होकर ब्रज को "देव क्षेत्र" कहा।

भारत का सर्वाधिक विनाश किया गजनवी के आक्रमणों ने। भारत में भी ब्रज का सर्वनाश इनका मुख्य लक्ष्य था। न रहेगी धरोहर, न बचेगी संस्कृति।

गजनवी के नौवें आक्रमण का केन्द्र बिन्दु था मथुरा का वासुदेव मन्दिर व कोल नगर का खेरेश्वर धाम। गजनवी के मीर मुंशी अलउखी वदांयूनी ने यहाँ के उस विराट-वैभव को जब देखा तो "तारीखेयामिनी" में लिखा –

मथुरा का वासुदेव मन्दिर तो ऐसा है कि दुबारा धरा पर दस करोड़ दीनार खर्च करके, दो सौ वर्षों में भी ऐसे मन्दिर का निर्माण असम्भव है, नहीं बनाया जा सकता। यह तो देव निर्मित ही है, इसे कोई मनुष्य नहीं बना सकता। उस लूट में गजनवी द्वारा मथुरा से सोने-चांदी की सैकड़ों मूर्तियाँ लूटी गयीं, सोने की मूर्तियों की आँखों में पचास हजार दीनार के माणिक जड़े हुए थे। १४ मन स्वर्ण की मूर्तियाँ यहाँ से गयीं। डेढ़ किलो का एक नीलम एवं चांदी की भारी २१०० से अधिक मूर्तियाँ ले जायी गयीं। खेरेश्वर मन्दिर भी उस समय मथुरा के वासुदेव मन्दिर से कम प्रख्यात न था। यहाँ से भी दाऊ जी की व अन्य अनेक स्वर्णिम मूर्ति गजनवी उठा ले गया, मन्दिरों को तो ध्वस्त कर ही दिया था। शिवलिंग को भी उखाड़ फेंकना चाहा किन्तु उसे इसका कोई ओर-छोर नहीं मिला अतः सफल न हो सका। अभी पुनर्निर्माण भी नहीं हुआ था कि एक शताब्दी बाद मोहम्मद गोरी का आक्रमण हो गया किन्तु इस आक्रमण से खेरेश्वर धाम में अधिक हानि इसलिए नहीं हुई क्योंकि यहाँ तब तक ऐसा कोई पुनर्विकास नहीं हो सका था किन्तु मुहम्मद गोरी ने मथुरा में बहुत लूटपाट की थी, देवेच्छा से रुग्ण होने के कारण वह स्वयं तो लौट गया किन्तु कुतुबुद्दीन ऐबक को दिल्ली छोड़ गया।

खेरेश्वर महादेव – अलीगढ

बहुत समय तक उपेक्षित रहने से खेरेश्वर धाम लुप्तप्राय हो गया। स्थानीय जनता भी भूल गई अपना इतिहास।

यद्यपि गोकुल में गर्गाचार्य जी के द्वारा श्रीकृष्ण-बलराम का नामकरण बहुत गुप्त रूप से किया गया था किन्तु कंस तक गुप्तचरों के द्वारा यह बात पहुँच ही गई। उस क्रूरकर्मा के कोप का भाजन होना पड़ा गर्गाचार्य जी के वंशजों को।

गर्गाचार्य जी के पुत्र शाण्डिल्य जी ने मथुरा त्यागकर पंचनन्द प्रदेश जाने का निश्चय किया। वहाँ शतद्रू व चन्द्रभागा नदी के पावन संगम पर एक ऊँचे स्थान को अपना प्रवास बनाया। महर्षि की अलौकिक प्रतिभा से स्थानीय लोग बहुत प्रभावित थे। स्थानीय जनों के द्वारा महर्षि का प्रवास स्थान "उच्च ग्राम" के रूप में पुकारा जाने लगा, जो आज भी इसी नाम से प्रतिष्ठित है।

एक बार गर्गाचार्य जी स्वयं पंचनन्द पधारे, साथ में श्री राधा माधव युगल सरकार का विग्रह था, इसकी सेवा का भार उन्होंने शाण्डिल्य जी को दिया। श्री गर्गाचार्य जी द्वारा उच्चग्राम में यह विग्रह प्रतिष्ठित हुआ। गर्ग वंश की इसी परम्परा में विष्णु आचार्य के यहाँ श्री गदाधर जी का जन्म हुआ, जिनसे अद्भुत प्रतिभाशाली बालक आशुधीर का जन्म हुआ। इनकी जन्म कुण्डली में संसार से पूर्ण विरक्ति के संकेत थे, जिन्हें देखकर पिता बड़े चिन्तित रहते थे कि बालक कहीं तुरीय आश्रम न ग्रहण कर ले। बालक आशुधीर को श्री राधा माधव की सेवा बड़ी प्रिय थी।

पिता ने बालक के वैराग्य को नियंत्रण में रखने के लिए १२ वर्ष की अल्पायु में, जल्दी ही गंगादेवी के साथ इनका विवाह कर दिया किन्तु बाह्य बन्धन आन्तरिक आवेश को रोक नहीं सकते और फिर उन्होंने तो सर्वस्व श्रीराधा माधव के चरणों में समर्पित कर दिया था।

कुछ समय बाद बालक आशुधीर ने पिता गजाधर से वृंदावन जाने की अनुमति माँगी।

पिता ने कहा – पुत्र! मैं भी तुम्हारे अध्यात्म का अवरोधक नहीं बनना चाहता हूँ किन्तु तुम्हें मेरी दो बाते माननी होंगी। देखो मैं तो वृद्ध हो चला और तुम भी गृहत्याग कर दोगे तो श्री राधा माधव की सेवा कौन करेगा? अर्थात् प्रथम तो तुम जहाँ भी जाओ श्रीराधा माधव तुम्हारे ही साथ रहेंगे।

और पिताजी दूसरी बात? – बालक आशुधीर ने पूछा।

दूसरी बात यह है कि तुम्हारी सहधर्मिणी भी तुम्हारे साथ ही जाएगी।

आशुधीर जी ने पिता की दोनों बातें स्वीकार कीं और श्रीराधा माधव को लेकर चल पड़े देवोत्थान के दिन वृंदावन की ओर।

बहावल पुर – अबोहर – मलौद – भटिंडा – पानीपत – संगरूर – पटियाला – अम्बाला – कुरुक्षेत्र – इन्द्रप्रस्थ – बुलंदशहर होते हुए श्री आशुधीर जी कोल अलीगढ़ पहुँचे।

कोल पहुँचते-पहुँचते सूर्य अस्ताचल को प्राप्त हो चले अतः इच्छा हुई कि आज यहाँ विश्राम किया जाये। खेर टीले से निकलते हुए अधिक अन्धेरा, सूर्यास्त हो गया तब यहीं विश्राम का निश्चय किया। प्रातः स्नानादि से निवृत हो ध्यानावस्था में शंकर जी ने उन्हें विग्रह प्राकट्य की आज्ञा दी। नेत्र खुलते ही देखा, गाय खड़ी हुई है, उसके स्तनों से बहता हुआ दूध एक निश्चित स्थान पर गिर रहा है। तीन दिन तक यही क्रम जब देखा तो चौथे दिन भूमि खनन किया और भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्रस्थापित "खेरेश्वर शिवलिंग" का प्राकट्य हुआ। खनन से कुछ खण्डित शिलालेख प्राप्त हुए, जिन पर खेरेश्वर का नाम अंकित था अतः पुनः खेरेश्वर के नाम से ही प्रसिद्धि हुई। अनन्तर श्री आशुधीर जी स्वयं खेरेश्वर की सेवा करने लगे, शेष जीवन यहीं रहे।

एक और वैशिष्ट्य –

संवत् – इक संग पाँच घर छः के संग नौ लाओ।
पौष शुक्ल तेरस जनम, श्री हरिदास कूं पाओ॥

पौष शुक्ल त्रयोदशी रोहिणी नक्षत्र विक्रम संवत् १५६९ को श्री आशुधीर जी की धर्मपत्नी श्रीमती गंगा देवी जी के गर्भ से वृन्दावन के मूर्धन्य रसिक स्वामी श्री हरिदास जी महाराज का प्रादुर्भाव भी यहाँ हुआ। कुछ समय पश्चात् गंगादेवी के गर्भ से आषाढ़ पूर्णिमा को दूसरे पुत्र जगन्नाथ का जन्म हुआ और उसके बाद हुआ तीसरे पुत्र गोविन्द का जन्म। एक बार पिता श्री आशुधीर के साथ बालक हरिदास भी खेरेश्वर महादेव की पूजा करने लगे। अचरज यह हुआ कि जैसे ही बालक ने जलाभिषेक किया शिवलिंग में कंपन होने लगा, तभी आकाशवाणी हुई। आशुधीर जी यह सामान्य बालक नहीं है, इसके रूप में स्वयं महासखी श्रीललिता जी ही अवतरित हैं। ये तो स्वयं मेरी गुरु हैं।

जिस समय वृंदावन की परम रम्य भूमि में दिव्य महारास लीला चल रही थी, पुरुष प्रवेश वर्जित होने से मुझे भी अन्दर प्रवेश न मिल सका तब महासखी श्रीललिता जी से युगल मन्त्र व सखीभाव की दीक्षा लेकर गोपीश्वर रूप से मैंने महारास लीला का दर्शन लाभ प्राप्त किया। अपने गुरु (श्री ललिता जी)से जब मैंने गुरूदक्षिणा देने की बात कही तो प्रथम तो बहुत हँसी, अनन्तर बोलीं – अच्छा, वह अभी उधार रखते हैं, मैं समझ नहीं सका। तो वह बोलीं – कलियुग में जब मैं अवतार लूँ तब आप यह मन्त्र मुझे लौटा देना। यही आपकी गुरूदक्षिणा होगी। इस समय मेरी परम गुरु श्रीललिता जी ही हरिदास जी के रूप में अवतरित हुई हैं, अब मेरे सामने यह धर्म संकट है कि मैं अपने गुरु को कैसे दीक्षा दूँ अर्थात् कैसे मन्त्र दूँ? अतः वह युगलमन्त्र मैं आपको देता हूँ, उचित अवसर आने पर

आप वह मन्त्र हरिदास जी को दे दें। यह बालक नहीं इस रूप में मेरे परम गुरु हैं। अब आप ही बताएं, गुरु द्वारा क्या शिष्य की पूजा उचित है?

जिस समय हरिदास जी ने गृहत्याग किया तब शंकर जी की आज्ञानुसार पिता श्री आशुधीर जी ने उन्हें वह युगल मन्त्र सुनाया।

आगे चलकर इन्हीं महापुरुष के द्वारा हुआ – श्री बाँके बिहारी जी का प्रकाट्य। सेवा अखण्ड रूप से चलती रहे, इसके लिए आपने बाँके बिहारी जी का सेवा कार्य अपने अनुज श्री जगन्नाथ जी को सौंपा एवं श्रीराधामाधव की सेवा का भार दूसरे अनुज श्री गोविन्द जी को दिया। गोविन्द जी के ही सुपुत्र थे श्री बीठलविपुल देव जी, जिन्होंने अल्पावस्था में ही विरक्त होकर स्वामी हरिदास जी का आनुगत्य स्वीकार किया।

श्री जगन्नाथ जी ने श्री बिहारी जी की सेवा अपने तीनों पुत्र श्री गोपीनाथ जी, श्री मेघश्याम जी एवं श्री मुरारी दास जी को एक-एक आरती के रूप में सौंप दी। स्वामी जी की यही परम्परा आज भी सेवायत है।

ललिता प्रथमाचार्य तासु पद सादर वन्दे ।
गोपीश्वर-खेरेस साधि रस अति आनन्दे ॥
आसुधीर गोस्वामी निभायी पुनि रस रीति ।
श्री स्वामी हरिदास प्रगासी अग जग प्रीति ॥
जगन्नाथ अरु विपुल पाय पुनि भये सुखारी ।
दुलराये बहु भाँति निरन्तर नित्य बिहारी ॥

(आचार्य चरितावली से गृहीत)

कैसे हुआ हरिदासपुर?

एक बार यहाँ के राजा के पुत्र की मृत्यु हो गयी जिसे बालक हरिदास जी ने प्राणदान दिया, राजा ने प्रसन्न होकर पाँच गाँव उनकी सेवा में दिये, जिसमें से एक गाँव का नाम हरिदास पुर हुआ। यह खेरेश्वर धाम से एक कि.मी. की दूरी पर स्थित है। कुछ समय पश्चात् पिता ने कुलीन कन्या हरिमती के साथ बालक का विवाह कर दिया। विवाहोपरान्त हरिदास जी वृंदावन चले आये, उधर हरिमती जी समाधिस्थ हो गयीं। आज भी परम सती माता की पूजा करने वृंदावन से भक्तजन आते हैं। स्वामी श्री हरिदास जी महाराज के नित्यलीला में प्रविष्ट होने के पश्चात् कोल नगर का नाम स्वामी हरिदास जी की स्मृति में हरिगढ़ हुआ।

अनन्तर स्वामी श्री हरिदास जी को महासखी ललिता जी का अवतार जानकर हरिगढ़, अलीगढ़ नाम से विख्यात हुआ। आली संस्कृत का शब्द है और गढ़ हिन्दी का शब्द। संप्रति यह अलीगढ़ के नाम से जाना जाता है।

मन्दिर का पुनर्निर्माण –

सन् १९३५ में निकटवर्ती ग्राम एकरी के एक सज्जन ने यहाँ आकर मनोरथ किया कि यदि मुझे सन्तान प्राप्ति हो जाय तो मैं आपके मन्दिर का निर्माण कराऊँ। ऐसा ही हुआ पुत्र प्राप्ति होने पर उन्होंने मन्दिर निर्माण कराया। मन्दिर निर्माण का कार्य करते एक कारीगर (भवानीदास गोड़ पुत्र गंगाराम, निवासी तुर्कमान दरवाजा, अलीगढ़) ने भी यही मनोरथ किया।

दाऊ जी – अलीगढ

खेरेश्वर एक परम सिद्ध स्थल है, जहाँ ऐसे बहुत से मनोरथ सिद्ध हुए। इसी प्रकार दाऊ जी मन्दिर का निर्माण कार्य भी सन् १९४४ में आरम्भ हुआ। उसकी पूर्णता हेतु सन् १९६० में "श्री खेरेश्वर महादेव व दाऊ जी महाराज समिति" का गठन हुआ। निर्माण कार्य भी पूर्ण हुआ।

एक और बात –

सन् १९२८ में राष्ट्र सेवकों को भी आश्रय मिला यहाँ। सरदार भगत सिंह का यहाँ पाँच महीने प्रवास रहा। वे नित्य यहाँ खेरेश्वर महादेव की पूजा करते, अनन्तर अपने साथियों के साथ स्वतन्त्रता संग्राम सम्बन्धित गुप्त गोष्ठी करते। लगभग सत्ताईस गुप्त बैठकें यहाँ हुईं।

संप्रति दर्शनीय देव विग्रह –

श्री खेरेश्वर महादेव के अतिरिक्त यहाँ प्राचीन दाऊजी मन्दिर, श्रीरामदरबार, नीलकंठ महादेव, दुर्गा माता, संकटमोचन हनुमान जी, संतोषी माता, सत्यनारायण भगवान्, भैरो बाबा, बाँके बिहारी, स्वामी हरिदास जी, परम सती हरिमती जी की समाधि, गणेश जी आदि के मन्दिर हैं।

वह वट वृक्ष भी दर्शनीय है, जिसके नीचे बैठकर श्री आशुधीर जी अपनी नित्य साधना करते थे। भगवद् प्रस्थापित श्री खेरेश्वर जी के होने से, श्री आशुधीर जी की साधना-स्थली होने से, स्वामी श्री हरिदासजी की जन्मस्थली होने से, परम सती हरिमति जी की समाधि स्थली होने से श्री खेरेश्वर धाम, हरिदासपुर (अलीगढ़) की महिमा अपने आपमें असमोर्ध्व है।

(सिद्ध पीठ श्री खेरेश्वर धाम दर्शन, वार्षिक पत्रिका-२०१३/२०१४ से साभार संगृहीत)

बेसवां (धरणीधर) से खेरेश्वर धाम की दूरी ३७.८ कि.मी.है और राया से ५० कि.मी. एवं गोमत से बाजना-अलीगढ रोड पर २५.४ कि.मी. है।

हरदुआ

हद जु हर्दुवा कौर भीतरी जहाँ अचल तीरथ सिरनाऊँ ॥

कौशाम्बी नगर (अलीगढ़) में दाऊ महाराज ने कोलासुर से युद्ध किया और अंत में उसे हल के प्रहार से समाप्त कर दिया। जिस जलाशय में उन्होंने अपना शस्त्र (हल) प्रक्षालित किया, वही स्थान हल्दुआ के नाम से जाना जाने लगा। हल्दुआ का ही अपभ्रंश हुआ हर्दुआ।

अलीगढ़ से रामघाट रोड होकर ८.८ कि.मी. की दूरी पर हरदुआ ग्राम स्थित है।

मोरथल (मोरथर)

गोचारण करते समय गोपाल जी विविध रसमयी चेष्टाओं के साथ वन विहार किया करते हैं। इस स्थल पर इन लीला-विहारी को अगणित मयूरों का समूह दृष्टिगोचर हुआ। ब्रज के मयूर भी साधारण पक्षी नहीं हैं। ये प्रिया-प्रियतम के अनन्य भक्त हैं और उनका दर्शन होने पर अपने रंगबिरंगे विशाल पंखों को फैलाकर आकर्षक नृत्य द्वारा अपने इष्ट देव की आराधना करते हैं।

इस स्थान पर जब इन मयूरमुकुटी को मयूरों का समुदाय नृत्य करते दिखाई पड़ा तो वह स्वयं भी उन्ही की भाँति नृत्य का अनुकरण करने लगे। विभिन्न भाव-भंगिमाओं तथा ताल भेद के अनुसार गोपाल की त्रिभुवन मोहन नृत्य कला का दर्शन होने लगा। नटनागर के इस अद्भुत नृत्य को निहार कर मयूर ही नहीं अपितु उनके शत्रु सर्प भी मोहित हो गए। अपने घनश्याम को नृत्य करते देख आकाश में श्याम-घन आ विराजे तथा मंद-मंद गति से सुमधुर ध्वनि करते हुए सुन्दर ताल की संगति करने लगे। दामिनी भी नृत्य के अनुरूप वाद्य-यंत्र के रूप में दिव्य संगीत का प्रस्तुतीकरण करने लगी। नन्ही-नन्ही बूंदें इस प्रकार

बरसने लगीं मानो पुष्प वर्षा हो रही हो। चिन्मयी प्रकृति द्वारा राग मल्हार का गायन होने लगा। चातक और कोकिलाएं निभृत निकुञ्जों के शिखर पर आसीन होकर अत्यधिक मधुर स्वर से कूजने लगे।

वन के दिव्य वृक्ष अपने सुन्दर सुमनों की माला वनमाली के चरण कमलों में अर्पित करके उनकी अर्चना करने लगे। बड़े-बड़े देव, मुनिगण गोविन्द की इस गोचारण लीला का दर्शन करने यहाँ बार-बार आते हैं। परमानन्द दास जी कहते हैं कि मेरे लिए तो यही उचित है कि भक्त-भक्तिमान गोविन्द के ऊपर जल न्यौछावर करके सदा सर्वदा उसका पान करूँ। अष्टछाप के सन्त-सुकवि श्री परमानन्द दास जी ने यहाँ की इस सरस लीला को निम्नलिखित पद के माध्यम से गाया है –

इनि मोरनि की भाँति देखि नाचै गोपाला।
मिलवत गति-भेद नीके मोहन रिपुसाला॥
गरजत घन मंद-मंद दामिनि दरसावै।
झिमिकि-झिमिकि बूंद परै राग मलार गावै॥
चातक पिक सिखर कुञ्ज बार-बार कूजै।
वृन्दावन-कुसुम-माल चरन कमल पूजै॥
सुर-नर-मुनि कामधेनु देखानि कौतुक आवै।
भगत उचित वारि फेरि 'परमानन्द' पावै॥

मयूरों के साथ मनमोहक नृत्य करते मयूर विहारी की अद्भुत छवि का वर्णन श्रीमद्भागवत में शुकदेव जी ने इस प्रकार किया –

अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित्॥

(भा.१०/१५/११)

कभी-कभी नृत्य करते हुए मयूरों के साथ श्यामसुन्दर भी सुन्दर गति से इस प्रकार नृत्य करते कि उनको उपहास के योग्य बना देते।

अलीगढ़ से रामघाट रोड होकर ९.५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है मोरथर ग्राम।

उखलाना (उषरानौ)

उषरानौ जु उसर तौ ब्रजतें पूरब मुरती सींम जनाऊँ।

एक गोपी से श्यामसुन्दर ने सुदूर वन में मिलने का वादा किया था। केवल कृष्ण मिलन के लिए तो वह घर से निकल नहीं सकती थी। अतः नन्द भवन में यशोदा मैया से कान्हा के लिए दही और छाक लेकर इस स्थल की ओर आई परन्तु यह ब्रजबाला मार्ग

ही भटक गयी और अकेली ही वन-वन में घूमती रही। सघन वन में कान्हा का नाम लेकर पुकारने लगी किन्तु आज तो गोपाल और उसके सखाओं का दूर-दूर तक कोई चिन्ह भी नहीं मिल रहा था। मार्ग में यदि कोई मिलता तो वह पूछ लेती थी – "क्या तुमने गाय चराते हुए गोविन्द को देखा है? " इस प्रेम विह्वला एकाकिनी की विकलता और प्रबल हो उठी। अब तो उसके हृदय का भाव मुखरित हो उठा। वह जोर-जोर से उस छलिया को सुनाते हुए कहने लगी – "गोपाल तो आज प्रातः काल सूर्योदय के पूर्व ही घर से गोचारण हेतु निकल पड़े थे। अब तो मध्याह्न बीतने को हुआ, लाल जी को बड़ी भूख लगी होगी। मैया ने उनके लिए दही भेजा है किन्तु वे तो कहीं दिखाई ही नहीं पड़ते। हे गोविन्द! कहाँ हो तुम? "मनमोहन ने दूर से ही इस नागरी के व्याकुलता पूर्ण वचन सुन लिये और उसके निकट आकर उसकी सम्पूर्ण व्यथा का हरण कर लिया। प्रियतम के एकान्त में दर्शन पाकर वह तो निहाल हो गयी। परमानन्द दास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर ने इस ब्रजाङ्गना से मिलने का जो प्रण किया था, उस प्रीति की रीति का उन्होंने भलीभाँति निर्वाह किया। 'उषरानौ' की इसी लीला को परमानन्द दास जी ने इस प्रकार गाया –

अकेली वन-वन डोलि रही।
गाँइ चरावत कहाँ रहे हरि काहू ने न कही॥
बड़े सवारे निकसे घर तैं पठयो माइ दही।
भूख लगी है है लालन कौ दुपहर जाम सही॥
इतनौ वचन सुनत मनमोहन नागरि बिथा लही।
परमानन्द दास कौ ठाकुर गोकुल रति निबही॥

अलीगढ़ से १४.८ कि.मी. की दूरी पर स्थित है उषरानौ ग्राम।

टिकारी

इन ब्रजवामाओं की प्राकृत रूप दग्ध-नयनेन्द्रिय केवल कन्हैया को ही देखना चाहती है।

और फिर इन नेत्रों की सफलता भी तो इसी में है।

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्॥

(भा.१०/२१/७)

कन्हैया और दाऊ भैया चाहे प्रातः ब्रज से जाएं चाहे संध्या को ब्रज में आयें, इन ब्रजस्त्रियों का तो नियम ही हो गया है उसे देखने का।

जैसे ही सूर्य-अस्ताचल को प्राप्त होने लगता है, ये पुष्पों की पंखुड़ी एकत्रित करने में जुट जाती हैं, सुन्दर थालों में केसर-कस्तूरी, अक्षत, चंदन सजाती हैं, कोई द्वार पर खड़ी हो जाती हैं तो कोई अट्टालिका पर चढ़ जाती हैं।

बार-बार दूर देखती हैं "अभी नहीं आया अभी नहीं आया"! कुछ नहीं तो उसका कीर्तन ही करने लगतीं हैं। वस्तुतः इन्द्रिय सार्थकता तो इन्होंने ही समझी है।

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥

(भा. १०/२१/८)

अरी सखी! मोर की पुच्छ मस्तक पर लगा लेते हैं, आम की नयी कोमल कोपलों को पाग में खोंस लेते हैं, कानों के आसपास रंग-बिरंगे फूलों के गुच्छे लटका लेते हैं। पीताम्बर-नीलाम्बरधारी दोनों भैया इस विचित्र-वेष में बड़े ही सुन्दर लगते हैं। गोप गोष्ठी के मध्य बैठकर जब मधुर संगीत छेड़ देते हैं तो ऐसा लगता है मानो दो चतुर नट रंगमंच पर अभिनय कर रहे हैं। कहाँ तक कहूँ उस शोभा को ...... ।

देख्यो माई सुन्दरता कौ पुंज ।
अंग अंग प्रति अमृत माधुरी, देखि मदन भाजै लुंज ॥
नख सिख सुभग सिंगार बन्यो है, सोभा मवि गन रुंज ।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन लाल सिर, लाल टिपारौ गुंज ॥
"प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः"

(भा.१०/१२/९)

मस्तक पर टिपारा (मस्तक पर पहनने वाला एक प्रकार का आभूषण) धारण किये हुए हैं। वैसे तो यह बिना सजे भी सुन्दर लगता है किन्तु सखाओं के स्नेहवश वन में भी इसे सजना पड़ता है, उस वन्य श्रृंगार में प्रत्येक आभूषण पुष्प, पल्लव आदि वन्य वस्तु से ही बनाया जाता है।

मुकुट माला, सिरपेंच और आज तो टिपारा भी पुष्पों का ही बना है।

यहीं इस क्षेत्र में हुई यह सज्जा! सखाओं ने यहीं धारण कराया उसे पुष्पों का टिपारा (अतः स्थान विशेष टिकारी नाम से संज्ञित हुआ।) यह टिपारा कभी तो पीले पुष्पों का बनाते हैं तो कभी लाल पुष्पों का।

श्री कुम्भन दास जी की वाणी में –

देखो सखि! मोहन नंद दुलारौ ।
स्याम घटा में रूप छटा सी सोभित पीत टिपारौ ॥
धौरी धूमरि गैयनि पाछै आबत ब्रज कौ प्यारौ ।
'कुम्भनदास' गिरिधर की छबि पर तन-मन आनि वारौं ॥

अथवा

सोहैं सिर कनक के वरन टिपारौ ॥
आजु अति मोहन बने गोपाल ।
पाटल सुगंध स्वच्छ निवारी, कंठ मल्लिका माल ॥
कटि पट-पीत तिखंडी ओढ़े, सिरसि टिपारौ लाल ।
बाम दच्छिन चितवत अति नागर, चंचल नेत्र बिसाल ॥
झलकत स्रवन चाक चल कुण्डल मृगमद तिलक सुभाल ।
सकुचत अधर चलत कर पल्लव, कूजति बेनु रसाल ॥
मनि-गन खचित रुनिद पद-नूपुर, कुनित किंकिनी जाल ।
"कुम्भनदास" प्रभु मन्मथ-नाइक, गोवर्द्धन धर लाल ॥

हाथरस से टिकारी की दूरी २३.५ कि.मी. है ।

ऊँठासानी (हूठासानी)

हौंत मिली कहैं हूठा सानी नौंहाद मिली नष बन सों आई ॥
हूंठासानी लसति हौंथये कुर-वारौ व्रज हैरौ नाऊँ ॥

(वृन्दावन दास जी कृत प्राचीन ब्रज परिक्रमा)

इन गोपियों को भी कहाँ चैन कृष्ण-दर्शन बिना। न जाने कितने बहाने हैं इनके पास, निशंक चली आती हैं नन्दसदन में किन्तु सदन में सदा तो नहीं बैठी रह सकती हैं।

कन्हैया भी तो जानता है इनकी आंतरिक इच्छा अतः सदन की देहरी पर चरण रखते ही इनका कार्य सिद्ध हो जाता है।

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

नैन की सैन चले दै कानन ।
वह चितनि मेरे हृदै में गड़ि रही सुन्दर दास मनोहर आनन ॥
कहि री सखी! अब कब आवहिंगे जोवति पंथ अकेली ठाढ़ी ।
नन्द के लाल हर्‍यौ मेरौ मनु जासौ प्रीति निरन्तर बाढ़ी ॥
द्यौस जाउँ तो सब कोउ देखै सकुचि रही कछु मिस न बन्यौ तब ।
परमानन्द गोविन्द चन्द बिनु वासर कलप भयो मोकौं अब ॥

नयन-संकेत में ही सब बातें हो जाती हैं। यह भी निश्चित हो जाता है कि आज किस वन में गोचारण और दधि-विक्रय होगा किन्तु वन में दधि कौन लेता होगा? वही जिसके लिए ये लाती हैं।

दधि बिके या न बिके, इससे इन्हें कोई प्रयोजन थोड़े है, इनका प्रयोजन तो कृष्णदर्शन और मिलन ही है। जब से उसे देखा है, उसका सुन्दर मधुर स्मित युत मुख उर व नेत्रों से हटता ही नहीं है। दधि-भाण्ड लिये निर्धारित स्थान पर खड़ी हो गयी हैं, अब आता होगा, अब आता होगा, इस आशा में प्रतीक्षा कर रही हैं। वह अकारण यहाँ वन में आई हैं, अकारण इसलिए क्योंकि "कृष्ण-मिलन", के कारण को वह किसी से कह नहीं सकती हैं और यदि कोई पूछ ले कि तू दधि-विक्रय को वन में क्यों आई है तो वह क्या कहेगी?

'कन्हैया भी नहीं आया, अब तो यह दिन मुझे कल्प के समान लग रहा है।' वह सोच ही रही थी कि तब तक कोलाहल सुनायी पड़ा। कन्हैया आ गया, वह समझ गई। चार कदम आगे जाती है फिर चार कदम पीछे।

कब की तू दह्यौ धरे सिर डोलति ।
झूठे ही इत-उत फिरि आवति ह्यांई आनिकैं बोलति ॥

'अरी, तू कौन है री, बार-बार हमारे ही निकट आकर दधि लो, दधि लो पुकारती है' कन्हैया ने कहा।

मुँह लौ भरी मथनियाँ तेरी तोहि रटत भई सांझ ।
गो-रस कौ लेवा जानति हों या ही बाखरि माँझ ॥

'संध्या हो गई है और तेरी मटुकी में तो ऊपर तक लबालब दधि भरा हुआ है, क्या किसी ने भी दधि नहीं खरीदा? यह भी जानती है कि दधि लेने वाले हम सब तो यहाँ हैं, कौन दधि लेता? ' सखा बोले।

आगै आनु बात इक बूझो, कहत बुरौ जिनि मानें ।
तेरे घर में तू हि सयानी और बेचि नहिं जानें ॥

'तनिक आगे तो आ, बुरा तो मानियो मत, अब एक बात बता – तेरे घर में दधि-विक्रय को कोई और नहीं है या तू ही बेचने में चतुर है' कन्हैया ने धीरे से कहा।

ता दिन तें नीकें जानति हौं जापै चित्त चुरायौ ।
अंचर छाँड़ि दियौ राज सुनि जन 'परमानन्द' गायौ ॥

'किन्तु कन्हैया तुमने ही तो मेरा चित्त चुराकर मुझे विवश किया है यहाँ आने को और अब बात बना रहे हो' वह बोली।

रहस्य सुनकर कन्हैया ने आंचर तो छोड़ दिया किन्तु उसकी दधि-मटुकी बलात् ले ली, ऊपर से अँगूठा दिखा चिढ़ाने लगे उसे, वहाँ तो क्या कहती और करती वह, चुपचाप चली आई। जब कन्हैया भी वन से आ गया तो चल दी उराहने के बहाने पुनः दर्शन को।

सुनहु सुनहु जसोदा माई ।
दूध दही सब अजिर में भाजन फोरत चलत पराई ॥
ठाढ़ी-हँसति गोकुल की गोपी कबहुँक चलत अंगूठा दिखाइ ॥
औरहु भाँति करत बहुतेरी मोपे कछुबे कही न जाइ ॥
'परमानन्द' सखि इह जानत ताते तुमसौं कहति हौं आइ ॥

वन में लाला ने अँगूठा दिखाया और सदन में गोपी ने।

बाजना से ऊंठासानी की दूरी १२.७ कि.मी. है

सोनोंठ

इसके स्वतः सिद्ध स्वरूप का वर्णन तो वागेश्वरी भी करने से रही। यत्र-तत्र कमलनयन कहकर तो शाखाचन्द्र-न्याय से इंगितमात्र किया है।

देखे बिना समझना सम्भवनहीं, समझने के बाद वर्णन सम्भवनहीं।

श्री कुंभनदास जी की वाणी में –

हरि के नैननि की उपमा न बनै ।
खंजन, मीन, चपल कहियतु ए ऐसेनी कोन गनै ॥
राजीव, कोकनद, इन्दीवर, और जाति सब रही बिचारि जिय अपनै ।
कुंभनदास प्रभु गिरिधर-धर ए परम निचोल रचे सुठनै ॥

यथार्थ स्वरूप का वर्णन तो दूर उपमा भी देने से रहे, क्योंकि यह तो "छिनु-छिनु वानिक औरहि और" नित्य नव-नवायमान है।

खंजन एवं मीन का चापल्य भी किस गिनती में है, उसके चपल लोचनों के समक्ष। जहाँ तक बात है कमल की तो वह चाहे पाटल कमल है, रक्त कमल है अथवा नीलकमल, सब सोच में पड़ जाते हैं उसे देखकर।

केवल मीन, मृग, खंजन, आदिनि तजि अपने सुख चैन ।
निरखि सबनू सखि! एक अंस पर सरवसु कीयो दैन ॥

अतः

हरि के नैननि की उपमा न बनै ।
कुंभनदास प्रभु गिरिधर-धर ए परम निचोल रचे सुठनै ॥

बड़े ही सुष्ठु हैं ये नेत्र!

हरिदास पुर (अलीगढ़) से १२.५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है सोनौठ ग्राम।

कटाहद

खेड़ली-समूची-मढावर रोड पर खेड़ली से १६ किमी. की दूरी पर कटाहद गाँव है, यहाँ आज भी प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेष हैं। मन्दिर की प्रतिमाएं दस वर्ष पूर्व चोरी हो गईं।

कटाक्ष हद से हुआ कटाहद।

कन्हैया का शयन, उत्थापन, चलना, हंसन, बोलन सब लीला है। विशेष यह है कि इस चपल का न बोलना भी लीला है। नैन-बैन-संकेत से सबकी सुन लेता है और अपनी कह देता है। प्रतीत होता है कि इसके नेत्रों में कोई अदृश्य जिह्वा है।

इसकी सभी लीलाओं में मनोहारिता, अनुपमता और वैचित्र्य का विशेष प्रवाह है।

इस भूमि में कुछ ऐसा ही प्रवाह हुआ।

श्रीकुम्भनदास जी की वाणी में –

आजु दधि देखौं तेरौ चाखि।
कहे धौं मोलु कितै बेचैगी, सत्य वचन मुख भाखि॥
जोई तू कहै सोई हौं दैहौं, संग-सखा सब साखि।
जो न पत्याइ ग्वालिनी हम कौं कंठसरी लै राखि॥
लै संग चले घर दाम देन कौं, तब हि जनायो कटाखि।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर सरबसु दियो तताखि॥

ये सभी लीलाएं मनोहारिता, अनुपमता और वैचित्र्य से स्वयं वर्णनातीत हैं।

कन्हैया ने पुकारा – मधुमंगल ऽ ऽ ऽ, सुबल ऽ ऽ ऽ, श्रीदामा ऽ ऽ ऽ, और थोड़ी ही देर में सखा समाज एकत्रित हो गया।

प्रतीत होता है कि कोई दधि बेचने इसी वनप्रान्त में आ रही है – कन्हैया ने कहा।

अब तो किसी ने सींगी को फेंट में कसा, किसी ने पुष्प गुच्छ को केश में खोंसा, कोई कर मलने लगा और कोई दीर्घ स्वाँस लेते हुए मीठे दधि की गन्ध लेने लगा। तब तक कृष्ण चिन्तन में बेसुध यह ग्वालिन कन्हैया तक आ ही पहुँची।

अपने दोनों कर-पद फैलाकर कन्हैया ने उसे रोक लिया। नेत्र खोले तो क्षण भर विलक्षवत् देखती रही। हृदय में उल्लास की कल्लोलिनी उच्छलित हो उठी। जिसके

चिन्तन में थी वही नटखट सन्मुख आ खड़ा हुआ। सम्पूर्ण साध सिद्ध हो गई। अब कुछ कृत्रिम भर्त्सना करने लगी।

अरे नन्द के! चल, मार्ग से हट।

देख! आज हम सब गोपालक सुबह से क्षुधित हैं, तेरे मीठे दधि की सुगन्ध से क्षुधा और बढ़ गयी है। अब कृपा कर और यह हमें दे दे, कन्हैया ने कहा।

हम यहाँ दधि विक्रय को आती हैं, वितरण को नहीं कन्हैया, वह बोली।

तो अपने दधि का सही मूल्य बता दे, हम खरीद लेंगे। तू जो मूल्य कहेगी, वही देंगे।

ये सब सखा साक्षी हैं। विश्वास न हो तो ले मेरी यह कंठसिरी (कंठाभूषण) रख ले, कन्हैया ने कहा।

सत्य तो यह है कि कन्हैया के दर्शन, मिलन से बढ़कर इनके लिए कुछ नहीं है। इसी अभिसंधि से ये आती हैं।

सिर से मटुकी उतारी और तत्क्षण कन्हैया के हाथ में थमा दी, उस प्रमदा ने।

उसका कर पकड़कर दधि का मूल्य देने को कन्हैया ने नंदगृह का मार्ग लिया, एक बार नेत्रों से नेत्र मिलाये और न जाने क्या कह दिया कन्हैया के नेत्रों की अदृश्य जिह्वा ने कि तत्क्षण दधि क्या अपना सर्वस्व दे बैठी वह ब्रजबाला। गोपेन्द्र तनय के कोटि-कोटि कन्दर्प दर्प-दलन स्वरुप ने बेचारी का सर्वस्व ले लिया। विशाल, रतनारे, मदभरे, कमनीय नेत्रों से जो कटाक्ष बींधा, वह ब्रज प्रमदा तो आमुग्ध नयनों से ऐसे देखने लगी मानो तृषित चकोरी चन्द्र छवि का पान कर रही हो। अब स्वयं ही विचार करें कि ऐसी स्थिति में प्रपञ्च-दर्शन की वृत्ति तो स्वतः विलुप्त हो जाती हैं, इसके लिए पृथक् प्रयास की आवश्यकता ही कहाँ। मेघ सदृश नीलाभ श्यामल कलेवर ही उसकी दृगपुतलियों में निरन्तर प्रतिबिम्बित रहता है। कितना नयनाभिराम, मनोभिराम है यह स्वरुप। अचिन्त्य

कटाहद प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेष - मन्दिर की प्रतिमायें दस वर्ष पूर्व चोरी हो गईं।

सौभाग्यवश कदाचित् कोई ही इन्हें निहार सके।

हाथरस से ३०.४ कि.मी. की दूरी पर स्थित है कटाहद ग्राम।

गोपी ग्राम मानई ग्राम

गोपी कृष्ण मनाई जहां ते यौ गोपी मानई गनाऊँ ।

(वृन्दावन दास जी कृत ब्रज परिक्रमा ग्रन्थ से)

जनकथन भी है कि यहाँ श्यामसुन्दर ने गोपी मनाई, मनाई का अपभ्रंश "मानई" हुआ।

ब्रज के गाँवों में जो जनश्रुति चली आ रही है, वे निराधार इसलिए नहीं हैं क्योंकि कृष्ण काल के बाद अब तक यह सत्य परम्पराओं द्वारा ही जीवन्त है अतः ये मिथक न मृषा हो सकते हैं, नाही निराधार।

प्राचीन शिव मंदिर – मानई ग्राम

श्रीकृष्ण ने मानई ग्राम में गोपी को मनाया निकट ही है गोपी गाँव। यहाँ गोपी को श्यामसुन्दर मनाकर लाये। गोपी नाम होने का एक कारण यह भी है कि यहाँ गोपी रूप से ही मनाया श्यामसुन्दर ने जो भगवान् है उसने क्या-क्या नहीं किया इन गोपियों के लिए।

टहल भी की!

मनुहार भी किया!

नारद जी ने यहाँ तक कह दिया –

यथा व्रजगोपिकानाम् (नारदभक्तिसूत्र)

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

गोपी प्रेम की ध्वजा ।
जिनि जगदीस किए बस अपने उर धरि स्याम-भुजा ॥
सिब बिरंचि प्रसंसा कीनी उद्धव सन्त सराहीं ।
धन्य भाग गोकुल की बनिता अति पुनीत भव माहीं ॥
कहा बिप्र-घर जनमहि पाये हरि सेवा-बिधि नाहीं ।
तेई पुनीत 'दास परमानन्द' जे हरि सेवा-बिधि नाहीं ॥

गोपी ग्राम से मानई ग्राम की दूरी ३ कि.मी. है। दोनों गाँवों की लीला का परस्पर सम्बन्ध है।

श्री गोविन्द स्वामी की वाणी में –

प्यारी को मान मनावन आए ।
नवसत साजि सिंगार किये तन सहचरि भेष बनाए ॥
कर बीना मुख तान मधुर सुर विविध भाँति लै-लै गायो ।
कहि री सखी कहां तै तू आई कहि ऐ प्राननाथ तै पाए ॥
सुनि स्यामा बैठे कुञ्जन में मो मन तो ए अरुझाए ।
सुनियत वचन बदन जब निरख्यो तब मोहन सिर नाए ॥
है जु गई ठगी सी ठाढी मनसिज बान चलाए ।
'गोविन्द' प्रभु पिय को जु उठि मिलि सरबसु दे जु रिझाए ॥

प्राचीन शिव मंदिर में कृष्ण लीला का चित्रांकन

आज इस ब्रज सुन्दरी का मान भंग करने श्यामसुन्दर गोपी रूप से आये। कृष्ण रूप से तो सम्भवतः प्रवेश भी न मिलता उन्हें। कर में वीणा उठाये आये मानिनी के सन्मुख और मधुर स्वर, मधुर तान ले-लेकर अनेक प्रकार से गाने लगे। उसका सुमधुर संगीत सुनकर मानिनी ने पूछा – अरी, तू कहाँ से आई है? संगीत सुनकर तो लगता है तूने मेरे प्राणनाथ से ही सीखा है। मेरा मन मोह लिया है तेरे संगीत ने। जैसे ही ब्रजसुन्दरी ने श्रीकृष्ण की ओर देखा तो मोहन ने अपना मस्तक नत कर लिया। इतने मात्र से वह जान गई, यह और कोई नहीं, मेरे प्राणनाथ ही हैं, ठगी सी खड़ी रह गई। यह कैसी चतुराई! श्यामसुन्दर के गले जा लगी।

सासनी से गोपी ग्राम की दूरी २५.८ कि.मी. है और सासनी से मानई की दूरी २९.७ कि.मी. है और हाथरस से गोपी ग्राम ३७.६ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

कनकपुर

गोचारण हेतु ग्वाल-बाल सहित श्रीकृष्ण-बलराम के वन चले जाने पर यशोदा मैया लाला की छाक की तैयारी में जुट जाती हैं। विविध व्यंजन बनाती हैं अपने लाड़ले के लिए किन्तु इन गोपियों का भी मनोरथ रहता है कि कन्हैया हमारे घर के छाक खाये। आज इस वन में छाक को जब बैठी ग्वाल मण्डली तो दैनिक कृत्यानुसार घर-घर में आई हुई छाक को मनसुख सजाने लगा।

आज तो चन्द्रावली के घर से भी छाक आई है।

कन्हैया! प्रसन्नता के कारण मनसुख चिल्ला पड़ा।

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

रंग रंगीली डलिया पठई छाक इक ठौर तैं।
विविध भाँति साजि चन्द्रावलि पठई अपनी ओर तैं॥
कनकथार बेला परिपूरन झलकत केऊ ठौर तैं।
दधि सिखटन टपकत चाहूँ दिसि तैं छकहारिनि की दौर तैं॥
ढाँपे पीत बसन जतननि सौं सौरभ पवन झकझोर तैं।
"परमानन्द" पात्र औ बीरा छोरि लिए पिच छोर तैं॥

रंग-बिरंगी डलियाओं में बड़ी सजा के छाक भेजी है।

अरे कन्हैया, कनकथार (सोने के थार) में और कनक बेला (सोने के कटोरा) में छाक आई है – श्री दाम बोला।

देख यह छकहारिन तेरी क्षुधा चिन्ता में दौड़ती हुई आई हैं अतः कनक बेला से दधि टपक रहा है।

भाई, भोजन को कितना भी ढक लो पर उसकी सुगन्ध को थोड़े ढका जा सकता है? अभी भी पीले वस्त्र से ढके हुए कनक बेला (सोने

कनकपुर – स्वतः प्रकट शिवलिंग
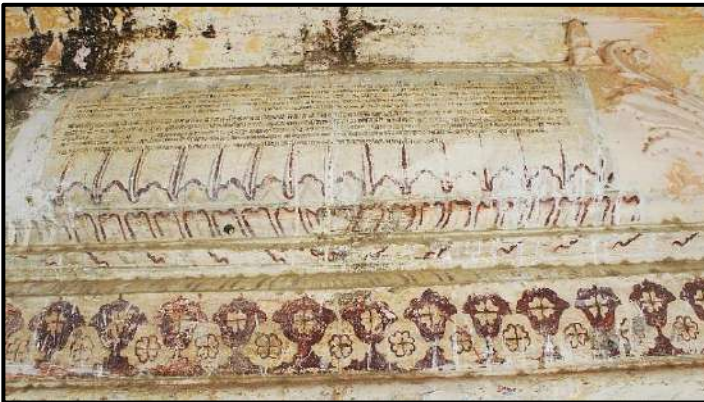
कनकपुर – प्राचीन शिलालेख

के कटोरा) में रखे हुए दधि की सुगन्ध मुझे झकझोर रही है, मनसुख बोला।

तो कनक पात्रों में आई यहाँ छाक अतः 'कनकपुर' हुआ।

गोपी, विजयगढ़ के मध्य कनकपुर गाँव है। जहाँ स्वतः प्रकट शिवलिंग है, मन्दिर में प्राचीन शिलालेख भी है।

सासनी से कनकपुर २१.८ कि.मी. दूरी पर स्थित है।

हाथरस

मथुरा अलीगढ़ के मध्य हाथरस शहर है, जो श्री ठाकुर जी की रसमयी लीलाओं को स्वयं में संजोये आज भी सम्पूर्ण क्षेत्र का रस-केंद्र है। हाथरस का ही एक स्टेशन मैंडू है जिसका वर्णन चाचा वृन्दावन दास जी ने अपने प्राचीन ब्रज परिक्रमा ग्रंथ में ब्रज की मैंड़ के रूप में किया है अतः हाथरस ब्रज का सीमान्त ग्राम है। हाथरस-कासगंज मार्ग पर बरहद ब्रज का सीमांत ग्राम है। ब्रज भूमि की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन करने के बाद हाथरस ही नहीं अलीगढ़ को भी ब्रज का अभिन्न अंग स्वीकार किया गया है। हाथरस श्रीकृष्ण और सखाओं के हास्य-विनोद का क्षेत्र रहा है। जिसका प्रभाव आज तक इस भूमि में देखने को प्राप्त होता है। काका हाथरसी लोक विख्यात हास्य-कवि हुए। पूर्व में ही कहा जा चुका है कि काल के प्रभाव से ब्रज के अधिकांश ग्रामों में अब कोई लीला-चिन्ह नहीं रह गए हैं किन्तु ब्रज के कण-कण में संस्कार रूप से भक्ति है। यद्यपि अब यहाँ कोई ब्रज परिक्रमा नहीं आती है परन्तु ब्रज रस की अनुभूति आज भी यहाँ आने पर होती है। ब्रज भाषा का सौष्ठव परिलक्षित होता है। हाथरस को ब्रज मंडल का प्रवेश द्वार भी कहा जाता है। नगर के पूर्व में एक दुर्ग स्थित है जिसके चार दरवाजे हैं। किला दरवाजा, सादाबाद दरवाजा, मुरसान दरवाजा और सासनी दरवाजा। हाथरस के विषय में जनश्रुति है कि एक बार महादेव जी कैलाश से श्रीकृष्ण दर्शन के निमित्त ब्रज में आ रहे थे भगवती पार्वती ने भी साथ चलने का आग्रह किया। इस पर महादेवजी ने कहा आप अवश्य साथ चलें किन्तु मार्ग में जहाँ भी आप रुक जाएंगी मैं वहीं छोड़कर आगे चला जाऊँगा। भगवती देवी ने यह शर्त स्वीकार कर ली। दैवेच्छा से हाथरस में पार्वती जी को दुसह प्यास लगी और महादेव जी

हाथरसी देवी – हाथरस

से जल पीने की इच्छा की। महादेव जी ने हथेली से जल प्रकट करके भगवती को पिलाया एवं शर्तानुसार उन्हें वहीं छोड़कर आगे बढ़ गए। हाथ से जल प्रकट करने के कारण यह स्थान हाथरस नाम से संज्ञित हुआ एवं भगवती पार्वती हाथरसी देवी के रूप में प्रतिष्ठित हुईं।

कालान्तर में मुरसान निवासी दयाराम जी को देवी ने स्वप्न दिया कि मैं भूमिगत हूँ, तुम मुझे निकालकर स्थापित करो।

खुदाई के समय हाथरसी देवी के साथ-२ एक शिवलिंग भी निकला। निकालते समय असावधानी में शिवलिंग पर फावड़े की चोट लग गई, तत्काल वहाँ से दुग्ध की धारा निकल पड़ी। आज भी यह चिन्ह उस स्वयंभू शिवलिंग में देखा जा सकता है।

किले का निर्माण भी दयाराम जी (मुरसान) ने कराया था। किले के निकट ही प्राचीन श्री दाऊ जी का मन्दिर है, जहाँ प्रतिवर्ष देवछठ पर विशाल मेला लगता है।

राया से हाथरस की दूरी २७.८ कि.मी. है।

बरहद

अतरोली से बरहद, हाथरस, राया, बलदाऊ होते हुए आज भी लोग ब्रज की परिक्रमा करते हैं।

चाचा श्री वृंदावन दास जी की वाणी में –

नमो नमो बरहद विख्यात ।
पूरब उत्तर दिशा ब्रज की हद हरि गोचारन जहाँ लग जात ॥
श्री बलदेव कृष्ण के अग्रज तहाँ बिराजत कमनीगात ।
हल मूसल हैं आयुध जिनके असुर बली तिन तै जु हरात ॥
तिनके नाम कुण्ड तहाँ राजत तामे जे अनुरागी न्हात ।
वृंदावन हित रूप कहा कहौं कटत पाप हरि नाम नसात ॥

चाचा वृन्दावन दास जी के अनुसार यह श्रीकृष्ण-बलराम का गोचारण क्षेत्र है। श्री दाऊ जी महाराज का यह विशेष प्रिय स्थान है। गोचारण काल में अधिकांशतया आप यहीं विराजते अतः यहाँ दाऊ जी का प्राचीन मन्दिर भी है। हल-मूसल जिनके आयुध हैं, जिनके

दाऊ जी का प्राचीन मन्दिर – बरहद

द्वारा बड़े-बड़े बलशाली असुरों का पराभव ही नहीं अंत भी हुआ। यहाँ प्राचीन दाऊ जी का मन्दिर है। जिसमें से तीन बार मूल प्रतिमाएँ चोरी हुई।

परन्तु बार-बार स्वप्न दिया पुजारियों को, अन्तिम बार १९७५ में चोरी हुई तो उसके बाद पता नहीं चला। नई प्रतिमाएँ १९७५ में प्रतिष्ठित की गयीं। यहाँ का घोड़ों का मेला बड़ा प्रसिद्ध था, जो सन् १९८५ में बंद हो गया। हर पूर्णिमा को अब भी मेला लगता है।

दाऊ जी कुण्ड – बरहद

क्षेत्रीय लोग दर्शन करने आते हैं। मनौती मनाते हैं। दाऊ जी मन्दिर के निकट ही २०० बीघा का विशाल कुण्ड अद्यावधि है, जिसमें यात्रीगण स्नानादि करते हैं। किसी समय इस सरोवर में कमलवन भी था, सदा कमल खिले रहते थे किन्तु उपेक्षित हो जाने से सरोवर का जल भी गंदा हो गया एवं कमल भी समाप्त हो गये। यह पापनाशक स्थान है। इस सरोवर में आज भी नीचे पक्का फर्श निकलता है। बड़ी-बड़ी दो फुट की ईटें निकलती हैं।

मथुरा से हाथरस रोड पर सासनी से बरहद की दूरी १६ कि.मी. है।

पुन्नेर

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

मुरली कौऽब बजावनहारौ कहे धौं माई! कहाँ रह्यो ।
कैसहु वदन दिखाइ मुकुंदै बिरह न जातु सह्यो ॥

दधि-मटकी लेकर ये कन्हैया का दर्शन करने ही तो वन में आती हैं अन्यथा तो वन में कैसा दधि-विक्रय? तब तक कन्हैया ने वेणुनाद से संकेत किया –

शिव मंदिर - पुन्नेर

इधर चली आओ, मैं यहाँ हूँ।

अरी ये मुरली ध्वनि? कहाँ से आ रही है .....?

कौन बजा रहा है इसे? वे ऊपर से चौंक पड़ीं और अन्दर से प्रसन्न हो गईं।

कहाँ रहता है, इसे बजाने वाला? एक ने पूछा।

चलो-चलो, इस ध्वनि के सहारे पहुँच जाएं उसके पास।

सब बोलीं।

हाँ हाँ, निश्चित रूप से एक बार उसे देख तो लें, एक बोली।

इन सब ब्रजाङ्गनाओं की प्रीति एक रस है।

इस भक्ति रूपी रज्जु से ही उसे पकड़ रखा है इन्होंने और बड़े पुण्य से मिलती है यह भक्ति। यहाँ कृष्ण भक्ति देने वाले पुण्य की चर्चा की गोपियों ने।

सबहिं गोपिन कै प्रीति एकरस ह्दै सनेह गह्यो ।
ऐसी भक्ति नंदनंदन की पुन्यनि पुंज लह्यो ॥

श्रीकृष्ण के गोचारण को जाने पर बड़ी कठिनाई से इनका दिन व्यतीत होता है और सम्पूर्ण रात्रि इसके विरह में नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते हुए व्यतीत होती है।

आजु बाहर लाग्यौ गो-चारन बासर तौ निबह्यो ।
रजनी अधिक गई 'परमानन्द' लोचन नीर बह्यो ॥

सासनी से पुन्नेर ग्राम की दूरी १८.४ कि.मी. है।

हसाइन

गाँव का नाम ही हास्य लीला का संकेत करते हुए इतिहास कह रहा है। श्रीकृष्ण का मधुर हास, जिसकी चर्चा गोपियों ने युगलगीत में की –

हन्त चित्रमबलाः श्रृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।
नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥

(भा. १०/३५/४)

अरी सखियो! कन्हैया का सर्वाङ्ग ही किसी अभिनव सौन्दर्य का आगार है, जब यह हंसता है तो इसकी हँसी हार बन जाती है। उज्जवल धवल दंत-पंक्ति मुक्तावत् चमकने लगती है और इसके वक्षःस्थल पर दांये-बाँए घूमते हुए हार में हास्य की किरण चमक उठती है। वक्ष पर श्रीवत्स की सुनहली रेखा तो ऐसा लगता है जैसे श्याम मेघ पर विद्युत् चिरस्थिर हो गई है। वह नन्दसूनु देखो आर्तों के कष्टहरण को वेणु कूजन कर रहा है।

श्री परमानन्द स्वामी जी की वाणी में –

नंद जू के ढोटा हौं मारी ।
करौं पुकार जसोदा आगै चोली हमारी फारी ॥
बरबट दान दही कौ मांगै सिर तें मटुकी जु डारी ॥
इतनी लाज करति हौं नंद की नाँतर दैहों गारी ॥
कुच नख देत अधर-रस मांगे यह देखौ मेरी सारी ॥
'परमानन्द' प्रभु प्रीति प्रगट भई हँसि कर दीनी तारी ॥

कन्हैया, अति होने लगी है अब ऊधमों की। आज यशोदा मैया से शिकायत करूँगी, तेरे लाला ने हमारी चोली फाड़ दी। ऐसा कैसा ऊधम, बलात दधि-दान लेता है, न दो तो सिर से ही मटुकी गिरा देता है। नंद बाबा की लाज कर गई, नहीं तो गारी देती उसे।

दधि दान तो दधिदान, अधर-रस का दान भी चाहिए था उसे, यह देखो उसका नखक्षत।

बात ही बात में न जाने क्या-क्या कह गई वह। उसकी बातों से प्रेम प्रकट हुआ तो लजा गई वह! उसके भोरेपन के क्रोध पर ताली बजा-बजाकर हँसने लगे श्यामसुन्दर।

तुम बनमाली! हो बनवासी!
बिना बिनोद रह्यौ नहिं भावै करत अटपटी हाँसी ॥
कहिहों कछु छाँड़ि देहु अंचल तिहारे बाबा की को दासी ।
अपने रंग तू छैल ढिटौना गैल चल्यो किनि जासी ॥

ऐसी और कौन जैसे तुम कहा भयौ जो दिखाई त्रासी ।
'परमानन्ददास' संग लीने जहाँ-तहाँ करत मवासी ॥

कन्हैया, तू वनमाली है, वन में रहने वाला वनवासी है। युगल गीत में तो कहती है –

वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥

(भा.१०/३५/८)

कामधाम तो कुछ है नहीं, बस, दिन भर वन में घूमता है वंशी बजाता, गायों को बुलाता, पूरा वनचर ही ठहरा। विनोद किये बिना नहीं रह सकता है। करता भी है तो अटपटा परिहास, अटपटी हँसी। अंचल पकड़ लेता है तो मुझे कहना पड़ता है – लाला, छोड़ यह अंचल, तेरे बाबा की दासी नहीं हूँ मैं कि जो चाहे सो करा लेगा। चल अपना मार्ग पकड़! तेरे जैसा लम्पट, तेरे जैसा छिनट्ट इस ब्रज में दूसरा कहाँ! हाथ में लकुट लेकर दान तो ऐसे माँगता है, जैसे मैं डरकर तुझे दान दे ही दूँगी, किसी भीरू को डराना, स्वयं तो मवासी (कहीं जाकर बस जाने वाले) ठहरा, दान किस बात का चाहिए?

रेवती एवं दाऊ जी मंदिर - हसाइन

पुनः श्री कुंभनदास जी की वाणी में –

माई री! नागर नंदकुमार मो तन चितकें हसै ।
नवघन श्री बदन, दसन दामिनी लसै ॥
तबहि और भवन नैन द्वार है धंसै ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर प्रान ही में बसै ॥

अरी मेरी ओर तो चितवन में हँसता है। नवीन मेघ के सदृश उसका श्रीवपु, विद्युत को विलज्जित करने वाली उज्जवल दन्त पंक्ति ..... अब तो वह मेरे नेत्र-द्वार से प्राण-गृह में घुस गया। न मैं निकालना चाहती हूँ, न वह निकल सकता है।

हाथरस से हसाइन की दूरी २९.१ कि.मी. है।

मेंड़ू

मेंड़ अर्थात् सीमा।

यह ब्रज का सीमा क्षेत्र तो है ही, साथ ही श्यामसुन्दर का गोचारण क्षेत्र भी है। गोचारण काल में हुई दधि विक्रयिणी गोपी व श्यामसुन्दर की नोंक-झोंक, जो उसकी वक्रोक्ति के रूप में प्रकट हुई।

श्री कुम्भनदास जी की वाणी में –

यह कौन है री! याहि दान न दैहैं गोवर्द्धन के ग्वैड़े।
हाटनि गामनि खेत मड़ैया कान्हर डोलत ऐंडे॥

हे विधाता! आज उसका सामना न करना पड़े, मन ही मन मना रही थीं वे उसे। अब कौन जाने उनके मन की, वे सच में ऐसा चाहती हैं अथवा इससे सर्वथा विपरीत।

दरस-परस को ही तो निकली हैं घरों से, यदि कन्हैया नहीं मिला तो श्रम ही मिलेगा इन बेचारियों को।

(परस्पर में)

मैं तो सीमानिवासिनी हूँ, अधिक नहीं जानती उसे अतः तुमसे पूछती हूँ, यह गोवर्धन का गँवार लड़का कौन है? नित्य दान माँगता है। बहुत बार गोरस दिया मैंने इसे पर आज नहीं दूँगी।

बाजार-बाजार में, गाँव-गाँव में, खेत-खेत में एवं झोपड़ियों में दान माँगता घूमता है, ऊपर से ऐंड़कर ऐसे चलता है जैसे राजा हो यहाँ का –

ऐंठो ऐंठो कितकू डोलै
नैक लटक दिखाय जा रे, छोरा नंद जू के टेड़ी मेड़ी चाल छोड़ दै सूधी चाल चलाय जा रे, छोरा नंद जू के नैक हेल उचाय जा रे, छोरा नंद जू के।

(रसिया रसेश्वरी)

इस प्रकार कहते हुए जान बूझकर उसी दिशा में बढ़ रही थीं ये गोपियाँ जहाँ गोचारण का कोलाहल हो रहा था।

ले, वह खड़ा दोनों कर-पद फैलाकर जंगली शासक (वन का शासक)।

बिना दान लिये जाने नहीं दूँगा, वह बोला।

पहली गोपी – किस बात का दान?

दूसरी गोपी – तुम कहाँ से आये दान माँगने?

तीसरी गोपी – तुम्हारे बाप स्वयं कर देते हैं महाराज कंस को।

चौथी गोपी – तुम कहाँ के राजा हो जो तुम्हें दान दूँ।

पांचवीं गोपी – तू नहीं जानती, जंगल का राजा है यह।

छठी गोपी – तो जंगली जानवर ही कर देंगे तुम्हें।

दाऊ जी - मेंड़ू ग्राम

(सब हँस पड़ीं)

बाप देत कर कंस राजा को, पूत संगाती डोलत मैंड़े।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन धर, चले जाउ किन पैंडे॥

पहली गोपी – देखती नहीं, इसके सहस्त्रशः सखा मैंड़-मैंड़ अर्थात् सीमा क्षेत्रों में घूमते रहते हैं इसके साथ गैया चराते, चोरी करते, दान करते, दान माँगते ....।

दूसरी गोपी – लाला, हम कुछ कहें या करें, उसके पूर्व तुम अपना मार्ग ले लो अन्यथा ....।

मेंड़ अर्थात् सीमाग्राम होने से यह "मेंड़ू ग्राम" है।

हाथरस से हाथरस-जलेसर रोड पर १४ कि.मी. की दूरी पर स्थित है मेंड़ू ग्राम।

सिहोरा

बहुत व्यापक है, गोचारण लीला का क्षेत्र!

प्रातः सखावृन्द, गोवृन्द के साथ राम-श्याम वन को निकलते हैं, दिनभर हो जाता है इन्हें खेलते-कूदते, गँवार लीला करते हुए।

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ।
रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥

(भा. १०/१५/१९)

स्वयं कमला जिनके चरणकमलों की सेवा करती हैं, वह अनन्तैश्वर्यशाली भगवान् भी यहाँ अशिष्ट बन जाता है, ग्राम्य लीला में मग्न हो जाता है। यदा-कदा ऐश्वर्य प्रकट भी होता है तो वह ब्रजवासियों को सह्य कहाँ?

ब्रह्माण्ड-दर्शन कर मैया घबड़ा गई और ऐश्वर्य धाम का दर्शन कर ग्वालबाल। सौभाग्यशाली हैं ये पशु-पक्षी जो असंदिग्ध चित्त से बस लीलास्वादन में कालक्षेप कर रहे हैं। बुद्धि की अधिक दौड़ बाधक बन सकती है इस रस में तभी तो इन ब्रजवासियों को जो रस प्राप्त हुआ, विधि भी वंचित रह गये उससे।

संदेह भी क्यों न हो, चरित्र वैचित्र्य ही ऐसा है।

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम् ।
कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन् रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥

(भा. ३/४/१६)

अकाम होकर भी वह कर्म कर रहा है, काल रूप होकर भी शत्रु से भीत हो किले (द्वारिका) में छिप रहा है। स्वात्माराम होकर सोलह हजार स्त्रियों के साथ रमण कर रहा है। बड़े-बड़े धीमान् भी मात खा जाते हैं, इन लीला चरित्रों को देखकर।

ब्रज की छकिहारिन दिन-दिन भर जिसका आनंद लेतीं, विधि में कहाँ सामर्थ्य कि ग्राम्यों की उस छाक लीला को समझ सकें।

लाला के वनगमन के पूर्व से ही मैया तो छाक की तैयारी में जुट जाती है, एक-दो व्यंजन भेजकर उसे नियम-पूर्ति थोड़े ही करनी है, वह तो चाहती है कि कन्हैया और उसके सखा अत्यन्त रुचिपूर्वक भोजन करें, वह केवल कन्हैया की मैया नहीं है, उसमें वात्सल्य ही ऐसा है कि ब्रज का आबाल-वृद्ध मैया कहने को विवश हो जाता है। यह बनाऊँ, यह भी बनाऊँ ......उसका क्या वह तो दिन भर पाक कार्य करती रहे किन्तु बालकों की चिन्ता है, खेल-कूद में जल्दी भूख लग आती है अतः शीघ्र छाक वन में पहुँचनी चाहिए। सैकड़ों डला भर-भरकर छाक जाती है वन में। छकिहारिनों का तो परम सौभाग्य, नित्य वनदर्शन, वनचर दर्शन, गो दर्शन और गोपाल दर्शन! अब और क्या चाहिये इन्हें।

वन-वन में पुकारती हैं, ओ कन्हैया ऽ ऽ ऽ ऽ, दाऊ ऽ ऽ ऽ ऽ,

श्रीदामा ऽ ऽ ऽ ऽ, मनसुखा ऽ ऽ ऽ ऽ तुम कहाँ हो?

बालक तो बालक ठहरे इन्हें भी आनन्द आता है छकिहारिनों के साथ आँखमिचौनी खेलने में।

अकेली वन-वन डोलि रही ।
गाय चरावत कहाँ रहे हरि काहू ने न कही ॥
बड़े सवारे निकसे घर तै पठयो माइ दही ।
भूख लगी है है लालन कौ दुपहर जाय सही ॥
इतनौ वचन सुनत, मनमोहन नागरि-बिथा लही ।
'परमानन्द दास' कौ ठाकुर गोकुल रति निबही ॥

जब वह थक कर बैठ गई तो ऊधमी बालक चारों ओर उसे घेरकर बैठ गये।

अरी, आज छाक में कहा भेज्यौ है मैया ने? मनसुख ने पूछा। मनसुख सर्वप्रथम यही पूछ सकता है।

भोजन को देखकर अंग-अंग नृत्य करने लगता है इसका।

श्रीपरमानन्द स्वामी की वाणी में –

स्याम लाल आ औ हो आई छाक सलौनी ।
डला लाल के घर ते आयौ मारग में है दौनी ।
सियरे भए स्वाद नहीं पैयतु रस के गएँ रसाइनि नहीं हौनी ।
'परमानन्द' छकहारी बाँकी टेरति टेर सलौनी ॥

बालक ही तो हैं, यदि विनोद में फँस जाँय तो भूख भी भुला देते हैं।

इतनी सामग्री सामने रखी है तो भी मनसुख को तो केवल मोदक ही दिखाई देता है। अलग-बगल वालों के मोदक भी चुरा लेता है। सुबल, वो देख मयूर का नृत्य।

झट से सुबल का मोदक मुख में रख लिया। बेचारा रोने ही वाला था कि कन्हैया ने अपना मोदक उसके मुख में रख दिया, रोने का अवसर ही नहीं दिया। डला भरे हुए हैं विविध व्यंजनों से किन्तु इनका विनोद बन्द हो तो भोजन आरम्भ हो।

"सियरे भए स्वाद नहीं पैयतु रस के गएँ रसाइनि नहीं हौनी ।"

कन्हैया, शीघ्र भोजन कर ले, सियरे अर्थात् ठण्डा होने पर स्वाद नहीं रहेगा, छकिहारिन बोली।

कितनी बार कहना पड़ता है अन्यथा ऊधम में इन्हें भोजन की कहाँ सुधि। उधर तो भोजन सियरा हो गया और इधर कन्हैया के दर्शन करते हुए इन छकिहारिनों के नेत्र सियरे हो गये।

सुन्दर मुख की हौं बलि-बलि जाउँ ।
लावनि-निधि-गुन-निधि सोभा-निधि देखि-देखि जीवत सब गाउँ ॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटित रस्मि रुचिर ठाउँ-ठाउँ ।
तामें मृदु मुसिकानि हरत मन न्याइ कहत कवि मोहन नाउँ ॥
सखा-अंग पर वाम बाहु धरे या छबि की बिन मोल बिकाउँ ।
परमानन्द नंदनंदन को निरखि निरखि उर नैन सिराउँ ॥

अचिन्त्य सौन्दर्य निकेतन यह स्वररूप जो लावण्य निधि, गुण-निधि एवं शोभा-निधि है, अंग-अंग में अनुपम माधुर्य है और किरणें विकीर्ण हो रही हैं, उसमें भी मुख पर “मधुर स्मित” मन को हर रही है। जिसका नाम ही मोहन अर्थात् मोहोत्पन्न करने वाला है फिर उसकी रूपमाधुरी कैसे नहीं मोहेगी?

मो मन गिरिधर-छबि पै अटक्यौ ।
ललित त्रिभंगी अंगनि ऊपर, चलि गयौ तहाँई ठरक्यौ ॥

(कृष्णदास जी)

कदम्ब तरु का सहारा लिये अंशू के स्कन्ध पर अपनी वामभुजा रखकर त्रिभंग ललित खड़ा है। मैं तो बिनु मोल बिक गयी इस बाँकी-झाँकी का दर्शन कर।

मेरा हृदय और मेरे नेत्र दोनों ही शीतल हो रहे हैं इस स्वरूप को निहारकर।

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥

(भा. १०/२३/२२)

साँवले श्री विग्रह पर सुनहरे पीताम्बर की झिलमिलाहट, गले में झूलती वनमाला, मस्तक पर मोरपंख की किरीट, अंग-अंग में रंग-बिरंगी चित्रकारी, नूतन कोमल कोपलों के गुच्छे यत्र-तत्र (मस्तक पर छू कान के ऊपर, कटि फैंट में) भलीभाँति खोंस रखे हैं। एक कर सखा के स्कन्ध पर रखे हुए हैं और दूसरे कर में कमल घुमा रहे हैं, कानों में कमल के ही कुण्डल, कपोलों पर काली घुंघराली अलकें और मुखकमल मधुर मंद स्मित रेखाओं से प्रफुल्लित है।

जब विछुरत तब होत दुख मिलतहि हियो सिराइ ॥

(श्रीध्रुवदास जी)

लोहवन से सिहोरा की दूरी ४ कि.मी. है।

कारव

कारव का शास्त्रीय नाम है – अनाहत वन। ये ग्वाल सभी प्रकार की क्रीडाएँ करते हैं। जैसे – मल्ल युद्ध, बाहु युद्ध, दण्ड युद्ध ....आदि किन्तु स्नेहास्पद कन्हैया के साथ क्रीड़ा करने में ये विशेष सावधान रहते हैं। सुकुमार कान्हा आहत हो, यह कोई नहीं सह सकता। तभी तो अनेक बार इन ग्वालों का युद्ध असुरों से भी हो गया।

गर्ग संहिता में उल्लेख है –

जिस समय दाऊ जी एवं धेनुकासुर का युद्ध हुआ है।

स्तोकः पाशेन तं दैत्यं स ताताड महाबलम्।

(गर्ग.संहिता.वृ.खण्ड -११/१४)

तो वहाँ ग्वालबालों ने परम प्रशंसनीय पराक्रम प्रदर्शित किया।

क्षेपणेनार्जुनोंऽशुश्च दैत्यं लत्तिकया खरम्॥

स्तोककृष्ण ने पाश से प्रहार किया, अर्जुन ने गुलेल से, अंशु ने दौड़कर लाताघात किया, विशाल एवं ऋषभ ने भी अपने पैर से ठोकर मारी, वरूथप के हाथ में गेंद थी, वह गेंद ही उसने दे मारी। कन्हैया और बलभद्र भैया जब असुरों से लड़ते हैं; तो ये खड़े होकर तमाशा नहीं देखते, कोई लात से, कोई मुक्के से तो कोई ठोकर से ठोंकता है।

सुकुमार कन्हैया का मुख यदि खेल-कूद से भी श्रान्त हो जाता है तो सभी ग्वाल चिन्तित हो जाते हैं।

पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन्॥
अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः।
गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः॥

(भा. १०/१५/१७, १८)

वयस में जो कन्हैया से कुछ बड़े हैं सुभद्र, मण्डलीभद्र, भद्रांग, वीरभद्र................इनका अधिकार है, ये जब खेल-कूद में व्यस्त कन्हैया का मुख कुछ श्रमित देखते हैं तो हाथ पकड़कर खींच लेते हैं – "बस, बस हो गया तुम्हारा खेल-कूद। अब चुपचाप यहाँ बैठ जाओ।"

सुभद्र तो यशोदा मैया की तरह कन्हैया को बलात् पकड़कर अपनी गोदी में पटक लेता है, अब कन्हैया कितना भी उठना चाहे उठने नहीं देता।

सुभद्र – "कान्हा, अब यदि नहीं मानोगे तो बलभद्र भैया से डाँट लगवाऊँगा।"

दाऊ दादा की डाँट से डरते हैं, दादा के नाम से ही सीधे सो जाते हैं फिर एक सखा चरण दबाता है, एक कमलपत्र से व्यजन करता है, एक अंगोछा से पंखा झलता है।

किसी के हृदय में इस छोटे कन्हैया को देख वात्सल्य उमड़ पड़ता है तो वह कन्हैया की लीला के अनुरूप अथवा उसे अच्छे लगने वाले गीत गाने लगता है। प्रतिदिन क्रीड़ा के बाद यही क्रम रहता है। क्रीड़ा में भी कन्हैया आहत न हो जाय (चोट न लग जाय), उसके अनाहत सुख का विशेष ध्यान रखा जाता है। यही है अनाहत वन की मुख्य लीला।

श्रीपरमानन्ददास जी की वाणी में –

गोपाल माई खेलत हैं चौगान ।
ब्रजकुमार ग्वालन संग लीन्हे, वृन्दावन मैदान ॥
चंचल बाजि नचावत आवत, होड लगावत पान ।
सबहि हँसत लै गेंद चलावत, करत बाबा की आन ॥
करत संक निसंक महाबल, हरत नृपति-कुल-मान ।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर, गुन आनंद-निधान ॥

एक बार श्यामसुन्दर ग्वाल-बालों के साथ यहाँ चौगान क्रीड़ा कर रहे थे। चौगान खेल में गेंद जहाँ जिसके पास पहुँच जाती है, वही गेंद को फेंकता है।

इसमें खेलने वाले सभी मुख्य होते हैं। ग्वाल-बालों के साथ बड़ी सुन्दर चौगान क्रीड़ा चल रही थी, तब तक एक चंचल घोड़े को नचाते हुए श्यामसुन्दर आये एवं ग्वाल-बालों के मध्य से गेंद उठाकर ले गये। ग्वाल-बालों में परस्पर होड़ लग गई। तेरे बाबा की सौगन्ध, कन्हैया से गेंद मैं लूंगो। अरे तू कहाँ ते लेगो, पहले मैं लूंगो। मैं लूंगो, मैं लूंगो...कहकर सब दौड़े कृष्ण की ओर। छीना-झपटी होने लगी, तब तक सबका मन शंकित हुआ –

"अरे इस छीना-झपटी में कहीं हमारा सुकुमार कन्हैया आहत न हो जाय।" किन्तु श्रीकृष्ण सकल गुणनिधान हैं, बड़े चतुर हैं, अपने आपको बचा लिया ग्वालबालों से। कहीं कोई चोट नहीं लगी अतः स्थल विशेष का नाम 'अनाहत वन' हुआ।

श्रीमद्भागवत जी में भी इन लीलाओं का उल्लेख है –

भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ।
चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥

(भा. १०/१८/१२)

भ्रामणैः – गेंद को चारों ओर घुमा रहे हैं, यह चौगान लीला ही है। ग्रामवासियों के कथनानुसार कारव (अनाहत वन) के नाम से ख्यात यह क्षेत्र बहुत विस्तृत है। नगला

लोका, सिहोरा एवं पचावर इसी क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले श्रीकृष्ण के गोचारण स्थान हैं। यहाँ पञ्च ऋषि ताल है जिससे समीपवर्ती गाँव का नाम पचावर हुआ।

यहाँ प्राचीन शिवालय है। किसी समय यहाँ कदम्ब खंडी भी थी जो वर्तमान में नष्ट हो गई है।

राया से कारव की दूरी ८.२ कि.मी. है।

अवैरनी

यह ब्रज-वृन्दावन धाम कैसा है?

इसका स्वरूप वर्णन शुकदेव जी ने भागवत में किया है।

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम्॥

(भा. १०/१३/६०)

जहाँ वृन्दावन धाम है, जो अनेक वृक्षों-लताओं से आच्छादित है, जिस भूमि में वन के पशु-पक्षी तक मनुष्यों के साथ प्रेम से क्रीड़ा करते हैं और उनमें परस्पर किसी प्रकार का वैर या द्वेष नहीं है क्योंकि वहाँ भगवान् का निवास है। जिस धाम से राग-द्वेष तथा तर्षा (भोगेच्छाएं) पलायन कर गये, वह प्रेममय जगत है।

इसीलिए इन विशेषताओं से विभूषित होने के कारण ब्रज-वसुन्धरा के इस स्थल का नाम अवैरणी अथवा अवैरनी हुआ, जहाँ किसी प्रकार का द्वेष नहीं है।

बलदेव (दाऊ जी) से अवैरनी २.५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

खड़ौरा

श्री सूरदास जी की वाणी में –

सुनि री कुल की कानि, ललन सौं मैं झगरौ माँडौंगी।
मेरे इनके कोउ बीच परै जिनि, अधर दसन खाड़ौंगी॥
चतुर नायक सौं काम पर्‌यौ है, कैसे कै छाँड़ौंगी।
सूरदास प्रभु नंदनंदन कौ, रस लै लै डाँड़ौंगी॥

प्रेम बावरी यह गोपी सास से लड़ नहीं सकती, श्वसुर से लड़ नहीं सकती, वे ज्येष्ठ हैं और फिर यह इस ब्रज की मर्यादा है, कुल की कान है – ज्येष्ठों के आगे पट-घूँघट में

निकलने वाली कहीं उनसे लड़ेंगी-झगड़ेंगी? किन्तु जब प्रियतम से मिलने में कोई परिपन्थी बनता है तो ये झगड़ती हैं, कभी स्वयं से, कभी कृष्ण से और कभी कुल की कान से।

(कुल की कान से कलह)

सखी वचन – ओ मेरे कुल की मर्यादा! आज मैं प्रियतम से झगड़ूँगी। तू मेरे और उनके मध्यस्थ मत होना अन्यथा अपने अधरों से तुझे खण्डित कर डालूँगी। छोड़ दूँगी सब आर्य मर्यादा। उस चतुर कन्हैया को एक बार पकड़ने के बाद छोड़ूँगी नहीं मैं। क्या मैं उससे कम चतुर हूँ? इस कपटी अलि ने बहुत रस लिया हमारा, आज मैं भी रस लेकर इसे दंडित करूँगी।

दाऊ जी से खडौरा ३ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

हरदसा

हरि-दरस का अपभ्रंश हुआ – हरदसा। कृष्ण का नाम सुनने से ही जिन्हें दिशि-दश की सुधि नहीं रहती।

कृष्ण नाम सुन्यो जब ते री आली,
भूली भवन हौं तो बावरी भई री।
भर-भर आवे नैन, चित्त हूँ न परे चैन,
मुख हू न आवै बैन,
तन की दशा कछु और भई री॥
जेतक नेम धर्म कीने री मैं बहुविधि,
अंग-अंग भई हूँ तो श्रवणमई री॥
नंददास जाके श्रवण सुने यह गति,
माधुरी मूरति कैंधो कैसी दई री॥

कृष्ण नाम श्रवण मात्र से जिनकी दशा ऐसी हो जाती, जिन्हें सब कुछ विस्मृत हो जाता फिर कृष्ण दरस होने पर तो इनकी स्थिति में और भी उफान आ जाता।

श्री कृष्णदास जी की वाणी में –

ग्वालिनी कृष्ण दरस सों अटकी।
बार-बार पनघट पर आवत सिर यमुना जल मटकी॥

मनमोहन को रूपसुधानिधी पीवत प्रेमरस गटकी ।
कृष्णदास धन्य धन्य राधिका लोक लाज सब पटकी ॥

कैसा प्रेम है इन ब्रज-प्रमदाओं का!

हरि-दरस की तीव्रोत्कण्ठा ही इन्हें नवमी, दशमी अवस्था (मूर्च्छा, मृत्यु) का अनुभव करा देती है।

श्री सूरदास जी की वाणी में –

हरि-दरसन की साध मुई ।
उड़िये उड़ी फिरति नैननि संग, फर फूटै ज्यौं आक रुई ॥
जानौं नहीं, कहाँ ते आवति, वह मूरति मन माहिं उई ।
बिनु देखे की बिथा बिरहिनी, अति जुर जरति न जाति छुई ॥
कछुवै कहति, कछू कहि आवत, प्रेम-पुलक स्रम-स्वेद चुई ।
सूखति 'सूर' धान-अंकुर सी, बिनु बरसा ज्यौं मूल तुई ॥

अरी वीर! दरस तो दूर, दरस की लालसा से ही मर गई मैं। अब तो मेरे ये नेत्र श्याम के साथ ऐसे उड़ रहे हैं जैसे कपास का फूल फटने पर रुई आकाश में उड़ती है।

पता नहीं कहाँ से उसकी जन-मन-मोहिनी मूरति मेरे मन में उदित हो रही है!

वह सामने भी आता है तो मैं उसे देख नहीं पाती हूँ और फिर विरहानल में इतनी जल जाती हूँ कि कोई मेरा स्पर्श भी नहीं कर सकता। मुख से कहती हूँ कुछ और निकलता है कुछ। प्रेम में देह रोमांचित हो उठता है, सात्विक स्वेद से भर जाता है एवं अवर्षा में सूखे धान की तरह मैं भी हरि-दरस की वर्षा के अभाव में सूखी जा रही हूँ।

सुनि री सखी दसा यह मेरी ।
जब ते मिले श्यामघनसुन्दर, संगहि फिरति भई जनु चेरी ।
'सूर' समुझि बिधना की करनी, अति रिस करति, सौंह मोहि तेरी ॥

अरी वीर! तेरी शपथ, यह विधाता क्या जाने प्रेमियों की स्थिति, दो ही आँखें बनीं इससे, उनमें भी पलक-पट के सृजन की क्या आवश्यकता थी? या तो एक भी न बनाता फिर दो ही क्यों बनाईं? उनमें भी पलकों का पर्दा खड़ा कर दिया। इन्हें तो पलकान्तर भी युगान्तर प्रतीत होता है।

अटति यद्‌ भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्‌ ।
कुटिल कुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्‌ दृशाम्‌ ॥

(भा. १०/३१/१५)

दाऊ जी से हरदसा ६.५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

माल (मार्कण्डेय वन)

यहाँ पर एक कि.मी. के क्षेत्र में विस्तृत वन है। इसे 'मार्कण्डेय वन' भी कहा जाता है। यहाँ मार्कण्डेय जी ने तप किया था। मार्कण्डेय जी ने ब्रज में कई स्थलों पर तप (भजन) किया। यमुना पार मारव में भी उन्होंने तप किया है। मार्कण्डेय जी का वर्णन महाभारत में कई जगह आया है। वह पाण्डवों के पास भी जाते रहते थे और भगवान् की लीला स्थलियों में उन्होंने दर्शन तथा तप किया। यहाँ गाँव में मार्कण्डेय जी का मन्दिर भी है।

मार्कण्डेय जी अमर ऋषि हैं, प्रलय काल में भी उनका नाश नहीं होता। उन्होंने छः मन्वन्तर तक तप किया अर्थात् एक अरब चालीस करोड़ वर्षों तक तप किया लेकिन काल उनका स्पर्श भी नहीं कर पाया। जब काल नहीं स्पर्श कर पाया तो मृत्युंजय सदाशिव तथा पार्वती उनका दर्शन करने गये। दर्शन के बाद भगवान् शिव ने मार्कण्डेय जी की स्तुति की। मार्कण्डेय जी ने कहा – अरे यह क्या, आप ईश्वर होकर मुझ जीव की स्तुति क्यों करते हैं?

शिव जी बोले – ऋषे! तुम मुझसे कुछ माँग लो।

इन निष्किञ्चन महापुरुष ने कुछ नहीं माँगा। तदनंतर स्वयं भगवान् नर-नारायण उनके पास पहुँचे। उन्होंने भी यही कहा – कुछ माँग लो।

मार्कण्डेय जी बोले – मुझे प्रलय का दर्शन करायें क्योंकि उस समय सम्पूर्ण जगत का नाश हो जाता है। नर-नारायण बोले – ठीक है, तुम प्रलय देखना चाहते हो तो तुमको प्रलय का दर्शन होगा।

ऐसा कहकर नर-नारायण चले गये। जब चले गये तो एक बार ऋषि वृक्ष के नीचे बैठे थे, इतने में क्या देखा कि चारों ओर से समुद्र का पानी उमड़ रहा है। थोड़ी ही देर में आकाश, पाताल, पृथ्वी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जल से व्याप्त हो गया। उनका आश्रम भी जल से भर गया और वह प्रलयकालीन जल में डूबने लगे लेकिन तप की शक्ति से पुनः तैरने लगे। लाखों वर्षों तक वह तप के बल से तैरते रहे और अन्त में उस भयंकर समुद्र के मध्य उन्हें एक विशाल वृक्ष दिखायी पड़ा। उस वृक्ष के पत्ते पर शयन करते हुए बाल गोविन्द का उनको दर्शन हुआ जो अपने पैर के अँगूठे को मुख से चूस रहे थे। मार्कण्डेय जी ने बालगोविन्द की स्तुति की। इसके बाद वह बालक हँसा और उसके मुख में प्रवेश करके ऋषि बाहर आये तो देखा न वहाँ समुद्र है, न जल है, न कोई प्रलय है। वही एक वृक्ष, कुटी और उसमें तप करते हुए स्वयं को उन्होंने देखा। ऐसे महामहिमाशाली मार्कण्डेय ऋषि ब्रज में आये और इस स्थल, मार्कण्डेय वन में आकर उन्होंने तप किया।

सौंख से माल ग्राम की दूरी १५.५ कि.मी. है

सैंथरी

सूर्योदय से पूर्व ही घर-घर से घर्र- घर्र की ध्वनि आने लगती है। इन ब्रजदेवियों के लिए तो रात्रि भी एक व्यवधान है किन्तु वह भी चिन्तन में ही व्यतीत होती है। प्रायः कन्हैया का दर्शन होगा, यह सुखद आशा ही जिनके जीवन का एकमात्र अवलम्ब है, उन महाभागाओं की आत्मा में अपने कन्हैया के लिए निरन्तर क्या-क्या चलता रहता है, यह कौन जान सकता है। निद्रादेवी को तो जैसे हाथ ही जोड़ दिये हैं, रात्रि भर नहीं सोती हैं क्योंकि अभी कन्हैया के लिए बहुत कुछ करना है इन्हें।

जो तू अछन-अछन पग धरणी धरे ।
निशि अंधियारी-कोऊ नहीं जानत, नूपुर ध्वनि जिन प्रकट करें ॥

(चतुर्भुजदास जी)

आधा कार्य तो रात्रि में ही हो जाता है, दधि-मंथन आदि शेष कार्य की समाप्ति सूर्योदय के पूर्व तक और फिर एक ओर गोचारण हेतु कन्हैया का प्रस्थान होता है तो दूसरी ओर गोरस बेचने इनका वन गमन।

यद्यपि इसी के लिए वे लाई हैं गोरस किन्तु इतनी सरलता से नहीं देती हैं, उसके घर में भी गोरस की कहाँ कमी है किन्तु इनकी तक्र के लिए लोटपोट हो जाता है। धरती पर कभी मनुहार करता है तो कभी टहल। कौन समझ सकता है प्रेम की यह अवगुण्ठित गति!

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

रंचक चाखन दे री! दह्यौ ।
अद्भुत स्वाद स्रवन सुनि मो पे नाहिन परत रह्यौ ॥
ज्यों-ज्यों कर अंबुज कुच झंपति त्यों-त्यों मरमु लह्यो ।
नंदकुमार छबीलौ ढोटा अँचरा धाइ गह्यो ॥
हरि हठ करत 'दास परमानन्द' इहि मैं बहुत सह्यौ ।
इनि बातनि खायौ चाहत है सेंत न जात बह्यो ॥

इतनी छोटी सी वस्तु के लिए इतनी मनुहार!

विधि मोहित हो गये तो क्या आश्चर्य है किन्तु विधि के विधाता का यह स्वरूप परम विस्मय जनक है। उसकी मटुकी में केवल दधि है, जिसके इसने चरण पकड़ रखे हैं। इतनी मनुहार भी इसलिए कि तनिक सा चाखने को ही मिल जाये बस।

प्राचीन गाँव सैंथरी जो नष्ट हो चुका है

अब मुझसे और नहीं रहा जाता, जल्दी दे दे, आँचल पकड़ कर बोला।

उसके शीश पर मटुकी है और यह उसे लेने के बहाने थोड़ा सा उछलता है और उसका वक्ष छूकर रह जाता है, वह भी जान गई मर्म को।

थोड़ी सी आगे बढ़ी तो इसने आँचर ही पकड़ लिया। बहुत सह लिया मैंने कन्हैया, प्रतिदिन का यह हठ अच्छा नहीं लगता, चल हट, कुछ बनावटी क्रोध में बोली। हमारा यह गो रस (इन्द्रिय रस) सेंत में (बिना मोल के) नहीं मिल जायेगा तुझे, कहकर चली गई।

हँसत ही में मन मुसत हो कहि कहि मीठे बोल।
सेंतमेंत क्यों पाइये यह गोरस निरमोल॥
'चतुर्भुज' प्रभु चित करबियो चितवन नैन बिसाल।
रति जोरी मिस दान के गिरि गोवर्धन लाल॥

यही है सेंतरी!

दाऊ जी से ५ कि.मी. दक्षिण दौलतपुर रोड पर ४ कि.मी. चलने पर दायें हाथ मुड़कर १ कि.मी चलने पर यमुना किनारे पर सैंथरी गाँव था। यमुना बाढ़ से या अन्य किसी कारण से यह गाँव समूल नष्ट हो चुका है। यहाँ पुरानी दीवारें व बर्तन भी मिलते हैं।

ततरोटा

ततरोतो कंजौली वरनौं निकट तरनिजा सोभा भारी॥

दरस-परस की प्यासी इन ब्रजाङ्गनाओं को भी कहाँ अच्छा लगता है, यदि वह मार्ग में न मिले तो!

अहो विधना तोपैं अँचरा पसारि माँगौं, जनमु-जनमु दीजै याही ब्रज बसिबौ ।
अहीर की जाति समीप नंद घर, घरी घरी स्याम हेरि हेरि हँसिवौ ॥
दधि के दान मिस ब्रज की बीथिनि में, झक झोरनि अंग-अंग को परसिवौ ।
'छीत स्वामी' गिरिधरन श्री विट्ठल, सरद रैनि रस-रास कौ बिलसिवौ ॥

बस यही चाहती हैं ये! दान के बहाने ही इनके मनोरथ सिद्ध होते हैं। रार-तकरार में कन्हैया के श्री अंग का स्पर्श मिलता है तो मन कहता है चल, आज का आगमन तो सार्थक हुआ तेरा।

याहि तें फिरति सदा बन खोरी ।
मारगु जात आन जुवती बस करत चित चित-चोरी ॥

वह भी इसीलिए गो चारण को वन में जाता है और ये भी गोरस बेचने इसीलिए जाती हैं इस वन-गमन से एक-दूसरे के दर्शन की साध ही सिद्ध होती है।

कबहुंक मधुर सुनाइ बेनु-सुर राखत इकटक मोरी ।
कबहुंक अँचर गहत मंद हँसि सहज लेत रति जोरी ॥

(चतुर्भुज दास जी)

कोई सुने न सुने वह तो वंशी में एक-एक का नाम गाता है और जिसका नाम गाता है, वह विवश हो जाती है उसकी ओर देखने को। आगे बढ़ने का अभिनय करती है तो नटखट उसका आंचर खीच लेता है फिर तो ढिठाई आरम्भ हो जाती है।

कैसी ढिठाई?

उन जाती हुई पुरन्ध्रियों की वंशी से वेणी खींच लेता है, कभी (रा.सु.नि.२३२-२३३)

वंशी से केशपाश में बंधी मल्लिका-माला को खींच लेता है तो कभी उनका लंहगा, सारी और अतरौटा खींच लेता है। किसी का कर पकड़ता है तो किसी के वक्ष पर कर रखता है।

"एवं धाष्टर्यान्युशति कुरुते"

(भा.१०/८/३७)

पुरन्ध्रिजनवेण्युत्तरियाकर्षणाविवाहाचिकीर्षया

(चक्रवर्ती जी)

कभी वेणी पकड़कर तो कभी उनका अतरौटा पकड़कर कहता है – अरी ओ गोरी, तू मुझसे विवाह कर ले।

यहीं की यह ढिठाई।

यहीं पकड़ा उस ब्रजगोपी का अतरौटा कन्हैया ने अतरौटा एक प्रकार का अन्तर्वस्त्र है, यह ब्रज का प्राचीन वेष है व प्राचीन शब्द भी है जिसे अब साया अथवा पेटीकोट कहते हैं। रसिकाचार्यों की वाणी में इसका प्रयोग हुआ है ।

श्रीजी का श्रृंगार वर्णन –

स्वामी श्री हरिदास जी की वाणी में –

जोवन रंग रंगीली सोने से गात ढरारे नैना कंठ पोति मखतूली ।
अंग अंग अनंग झलकत सोहत काननि बीरैं
सोभा देत देखत ही बनै जौन्ह में जीन्ह सी फली ॥
तनसुख सारी लाही अंगिया अतरस अतरौटा छवि
धारि धारि चूरी पहुँचनि पहुँची खमकि बनी
नकफूल जेब मुखबीरा चौबा कौंधे संभ्रम भूली ॥
ऐसी नित्य बिहारिनि श्री बिहारी लाल संग अति आधीन
आतुर लटपटात ज्यौं तरु तमाल कुंजा हलि
हरिदासी जोरी सुरनि हिंडोरे झूली ॥

षोडशी किशोरी का बड़ा रंगीला यौवन है। सुनहला श्री अंग है, सुढार नेत्र हैं, कंठ में मखमल से गुंथा पोत है, अंग-अंग में काम झलक रहा है, कानों में बारी शोभित है, ऐसा लगता है मानो चांदनी में कोई अद्भुत चांदनी फूल रही है। अति झीनी लाल सारी में से अंगिया एवं अतरौटा (साया, अन्तर्वस्त्र) की छवि देखते ही बनती है। कलाई में चार-चार चूरी एवं पहुँची धारण की हुई है। नासिका में नखफूल की एवं मुख में ताम्बूल की अरुणाई में उज्जवल आगे के चार दाँतो की अपूर्व शोभा हो रही है। काम के संभ्रम में झूली हुई सी अति आधीन हो श्यामसुन्दर रूप तरु तमाल से लिपट गई है।

ततरोंटा ग्राम - यहाँ प्राचीन मन्दिर तो है लेकिन विग्रह नहीं है।

श्री महावाणी में –

पीन नितम्ब रम्भ जंघा जुग जानु पिडुयां सुढार ।
अटी रहत अतरौटा ओटनि तदपि मचावत भार ॥

(महावाणी, उत्साह सुख-२३)

गुरु नितम्ब, केला सदृश अत्यन्त स्निग्ध दोनों जंघाएँ, सुढार घुटने और पिंडुरी यद्यपि अतरोटा से ढके हुए हैं तो भी ज्योत्स्ना बाहर तक प्रकीर्ण हो रही है जो कामोद्दीपन कर रही है।

दाऊ जी से १०.७ कि.मी. की दूरी पर स्थित है ततरोंटा ग्राम।

कंजौली

प्रथम लीला

रसिकाचार्य चाचा वृन्दावनदास जी की वाणी में –

ततरोतो कंजौली बरनौं निकट तरनिजा सोभा भारी ।

तरनि तनूजा का परम रम्य है यह तटवर्ती क्षेत्र।

रसिकों की वाणी के आधार पर कंजोली शब्द नेत्रों के कजरारे होने का सूचक है।

अञ्जन नेत्रों की शोभा अवश्य है किन्तु जहाँ नेत्रों से अञ्जन की शोभा बढ़ जाये और फिर श्रीराधारानी के नेत्र तो बिनु अञ्जन ही कजरारे हैं।

श्री स्वामी हरिदास जी ने वर्णन किया उन कजरारे, रतनारे, मदभरे नेत्रों का –

प्यारी तेरी पुतरी काजर हू ते कारी
मानौं द्वै भँवर उड़े री बराबरि ।
चंपे की डार बैठे कुंद अलि
लागी है जेब अराअरी ॥
जब आनि घेरत कटक काम कौ
तब जिय होत डराडरि ।
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुञ्जबिहारी
दौऊ मिलि लरत झराझरि ॥

(केलिमाल पद.सं.७१)

ये नेत्र-युगल कज्जल से भी कहीं अधिक काले हैं, अतिशय चंचल होने से जब इधर-उधर देखते हैं तो लगता है कि दो मतवाले भ्रमर स्पर्धा में उड़ रहे हैं। चंपा की डार पर भ्रमर बैठता है, मानो श्रीजी का मुख चम्पा का पुष्प है व उनके नेत्र भ्रमर हैं। ऐसा लगता है मानो दोनों भ्रमरों में स्पर्धा हो रही है किन्तु जब कामदेव की सेना आकर घेरती है तो

भय लगता है। लाल-ललना के नेत्र जब परस्पर मिलते हैं तो लगता है मानो चारों भ्रमर परस्पर वार कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण दास जी की वाणी में –

अँखियन पर वारों कोटिक खंजन ।
जिन महँ रसिक गोपाललाल बसे, सुभग रूप है अञ्जन ।
उरजनि में मृगमद-रस लेपी भये बिरह-दुःख गंजन ।
उत्पल स्याम कार्निकार्नव सखि! कुंवर वर कंजन ।
रोम-रोम सांवल रस भोगी श्याम तन मन रंजन ।
"कृष्णदास" प्रभु रसिक-मुकुटमनि इन्द्र-मानमद-भंजन ॥

करोड़ों-करोड़ों खंजन (अति चंचल पक्षी) न्यौछावर हैं इन नेत्रों पर जिन नेत्रों में कृष्ण विराजित हैं, उनमें अब कौन से कृष्ण कज्जल की आवश्यकता है भला। श्रीकृष्ण ही जिनके नेत्रों के अञ्जन हैं, श्रीकृष्ण ही जिनके वक्ष की मृग-मद कस्तूरी हैं और विरहावसान कर रहे हैं। वैचित्र्य तो यह है कि दोनों ही रससमुद्र (रसरूप) हैं तो दोनों ही रसभोगी भी। कर्निकार्णव में श्यामसुन्दर ही श्रेष्ठ नीलकमल हैं। स्वामिनी के तन-मन रंजनार्थ ही तो इस साँवल रस भोगी का रोम-रोम है।

प्रिया-प्रियतम के नेत्रकंज से कंजोली गंजित हो रहा है।

द्वितीय लीला

इसमें संदेह नहीं कि ब्रज-सीमा का सम्पूर्ण क्षेत्र "गोचारण लीला" का है।

श्यामसुन्दर के गोवृन्द में इनकी एक प्यारी गइया थी – कजरी, जिसे कभी ये स्नेहवश कारी-काजर कहते तो कभी कजरी कहकर पुकारते तो कभी कंजोली कह देते।

परमानन्द स्वामी जी की वाणी में –

मोहन चढ़ि कदम्ब पर टेरत ।
बिडरी गांइ ग्वाल सब ठाढ़े तिनके यइ निवेरत ।
धौरी धूमरि गंग बुलाई काजर पियरी हेरत ।
परमानन्द दौरि सब आईं, पीतांबर के फेरत ॥

आवनी के पूर्व सब गायों का एक स्थल पर एकत्रीकरण होना।

गो आह्वाहन की कई युक्तियाँ थीं गोपाल लाल के पास।

कभी तो वेणु बजाकर बिखरी गायों को अपने निकट बुला लेते, कभी पीताम्बर हिलाकर उन्हें एकत्रित करते और कभी स्नेह से कजरी, धौरी, गंगा ....कहकर टेरते।

अथवा

नाना बरन नाम गायन के बेनु बजाइ बुलावै ।
सींग आवरी आँख काजरी मोटे जिनके पाठे ॥

(परमानन्द स्वामी)

दाऊ जी से २२.३ कि.मी. की दूरी पर स्थित है कंजोली ग्राम।

कठैला

यहाँ प्राचीन जीर्ण-शीर्ण शिव मन्दिर है, जिसमें खण्डित शिवलिंग है। इन स्थानों के प्रति हमारा उपेक्षा का भाव ही इनकी दुर्दशा का कारण है।

दाऊजी से ८ किलोमीटर की दूरी पर कठैला गाँव स्थित है।

नारद गुफा

देवशरीर से अत्यन्त दुर्लभ है इस रस की प्राप्ति।

ऋषि शरीर से भी दुर्लभ है।

देव शरीर से यदि सुलभ होता यह रस तो विधि को व्यामोह क्यों होता? शक्र ऐसी घृष्टता क्यों करता?

'यत्मुह्यन्ति सूरयः'

(भा. १/१/१)

और ऋषि शरीर को सुलभ होता तो अंगिरा को रास प्रवेश मिल जाता।

किन्तु ध्यान रहे जो बड़े-बड़े देव व महर्षियों को सुलभ नहीं हुआ, वह यहाँ के पशु-पक्षियों को सुलभ हो गया। तभी तो यहाँ जड़ योनि की भी याचना की विधि, उद्धवादि ने।

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।

यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥

(भा. १०/१४/३४)

विधि की याचना –

हे प्रभो! इस ब्रज के किसी भी वन में, किसी भी योनि में जन्म मिल जाये, गोकुल में हो जाय तो परम सौभाग्य होगा मेरा। यहाँ जन्म लेने से श्रेष्ठ लाभ यह होगा कि जिनके आप ही सर्वस्व हैं अथवा जो आपके सर्वस्व हैं, उन प्रेमी ब्रजवासियों की चरणरज ही आपकी चरणरज है। उनमें और आपमें भेद कहाँ?

तभी तो ब्रह्मा जी ब्रह्माचल पर्वत बरसाना में बने, शंकर जी नंदीश्वर पर्वत (नन्दग्राम में) बने।

उद्धव की याचना –

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

(भा.१०/४७/६१)

यहाँ की झाड़ी बन जाऊँ, लता बन जाऊँ अथवा औषधि – जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ फिर निरन्तर इन ब्रजगोपियों की चरणधूलि में स्नान करूँगा। जिन्होंने दुस्त्यज स्वजनादि के सम्बन्ध व लौकिक-वैदिक आर्यमर्यादाओं को छोड़ दिया एवं तन्मयता पूर्वक भगवद्पद और भगवत्प्रेम प्राप्त कर लिया जो श्रुतियों के लिए भी अन्वेषणीय है किन्तु अप्राप्त है।

उद्धव जी की याचना भी पूर्ण हुई और अखण्ड ब्रजवास उन्हें प्राप्त हुआ। स्वयं श्री कालिन्दी कह रही हैं (श्रीकृष्ण की अन्य महिषियों से)।

गोवर्द्धनगिरिनिकटे सखीस्थले तद्रजः कामः ।
तत्रत्याङ्कुरवल्लीरूपेणास्ते स उद्धवो नूनम् ॥

(स्कन्दपुराणोक्त भा.माहात्म्य २/२४)

गिरि गोवर्धन के निकट ब्रजगोपियों की लीला-विहार स्थली है, जहाँ उद्धव जी लता, बेल, अंकुर के रूप में निश्चित ही निवास करते हैं। लता रूप से यहाँ रहने का उद्देश्य ब्रजगोपियों की चरणरज प्राप्ति ही है।

ततः पश्यत्सु सर्वेषु तृणगुल्मलताचयात् ।
आजगामोद्धवः स्रग्वी श्यामः पीताम्बरावृतः ॥

(भा.माहा. 2/32)

गोवर्धन में तृण, गुल्म व लताजाल से प्रकट हुए उद्धव जी।

जहाँ तक रही ऋषि-मुनियों की बात तो वे भी अपनी दीर्घकालीन साधना का फल इसी में सफल समझते हैं कि उन्हें ब्रज-विहंगम बनने का सौभाग्य प्राप्त हो जाये।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
श्रृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥

(भा. १०/२१/१४)

ब्रज के पक्षियों को तो पक्षी कहना ही भूल है, ये तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हैं जो अपनी साधना का परिपाक यथार्थ रूप में प्राप्त कर रहे हैं। वन के वृक्षों की उन्हीं डालों पर बैठते हैं, जहाँ से श्री श्यामसुन्दर की रूपमाधुरी का भलीभाँति आस्वादन कर सकें।

धन्य है इनकी साधना।

धन्य है इनका जीवन।

इस ब्रजरज की प्राप्ति के लिए अवसर पाकर कहीं न कहीं से सुरगण आते रहे हैं।

नारद गुफा - श्री नारद जी ने यहाँ आकर प्रभु की सख्य लीला का दर्शनानन्द लिया एवं गोपाल जी की वन्दना की।

बस, इसी उद्देश्य से यहाँ श्री नारद जी आये।

कहा वैभव वैकुण्ठ लोक को, भवन चतुर्दश की ठकुराई ।
शिव विरंचि नारद पद वंदित, उपनिषद कीरति जो गाई ॥

यह पुरुष लीला अवतारी, आदि मध्य अवसान एकरस ।
'परमानन्द' प्रभु बाल विनोदी, गोकुल मंडन भक्ति भक्त प्रेमवश ॥

दाऊ जी से १८ कि.मी दूर ग्राम नेरा में यमुना किनारे है नारद गुफा।

माघोर

मिड़ावली जु मैंड़ है ब्रज की गिह चौल माघोर अगारी ।

यह तो सब जग जानता है कि कन्हैया ब्रज जन जीवन है। जब तक यह छोटा था, तब तक गोपियों का नंदसदन में मिसागमन (किसी बहाने से) आना होता था। क्योंकि जब से कन्हैया को इन्होंने देखा है अब ये उसका अदर्शन सह नहीं सकतीं अतः कभी तो दीपक जलाने के लिए नंदरानी के पास आती हैं तो कभी अन्य कार्यों के ब्याज से किन्तु मूल में है – "कृष्ण दर्शन"।

श्री नंददास जी की वाणी में –

मिस ही मिस आवे गोकुल की नारी घर नंद महर के ।
मदनमोहन बिन देखे कल न परत छिन,
भूलि धाम काम आछो बदन निहारे ॥
दीपक ले चली बाहर बाट में बरो कर डार,
फिर आई छवि के ब्याजहू को देती गार ॥
'नंददास' नन्दनन्दन सों अटक्यो मन,
पलक की ओट मानो बीते जुग चार ॥

जब कुछ बड़ा हुआ तो गोपियों का आगमन अब उराहने के बहाने होने लगा किन्तु जब यह वृंदावन आकर वत्सपाल के बाद गोपाल बना तो इसकी वन-क्रीड़ा आरम्भ हो गई। अब तो दिनभर गो, ग्वालों के साथ यह व्यस्त हो गया। जिन्हें कृष्ण दर्शन के बिना पलकान्तर भी शत-सहस्र युगवत् लगता था, वेणुगीत एवं युगलगीत इसी अवसर पर गाये हुए गीत हैं। गोपीगीत में तो उन्होंने स्पष्ट कह भी दी अपनी यह मनोव्यथा –

अटति यद्‌ भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्‌ दृशाम् ॥

(भा.१०/३१/१५)

इस अप्रतिरोध्य प्रेमाकर्षण ने एक युक्ति निकाली –

चलो सखी तहाँ चलिये, जहाँ बसै ब्रजराज।
गोरस बेचत हरि मिलें, एक पन्थ दो काज॥

(किसी महापुरुष का पद)

और चल पड़ी अभिसार (कृष्ण से मिलने) को।

प्यारे के दरस बिनु छिनु न रहि सकति बलिहारी तेरे नेम की

(कृष्णदासजी)

गो रस बेचने जा रहीं हैं कृष्ण दरस-परस की प्यासी ये आभीर सुन्दरी। दही और नवनीत को भर लिया चिकने माटों में किन्तु अब कहाँ, किस दिशा में जाएं गो रस बेचने .....?

अरी गाँव तो पार कर, स्वतः दिख जाएंगे उस नीलमणि के पदचिन्ह, एक गोपी बोली।

देख ये रहे गो-खुर खुन्दित भूमि में कृष्ण के पद चिन्ह। दक्षिण चरण में ध्वजा, छत्र, चक्र, अर्द्ध रेखा, वेदी, पदम्, अष्टकोण, अंकुश, जामुन फल, गदा के ग्यारह चिन्ह हैं और वाम चरण में शंख, धनुष रेखा, आकाश, गोपद, त्रिकोण, अर्द्धचन्द्र, अमृत, मछली आदि ये आठ चिन्ह हैं।

हाँ, तू ठीक कह रही है, ये कृष्ण पदचिन्ह ही हैं, चलो अब हम सब इनका ही अनुगमन करें और इनके सहारे पहुँच जाएंगी प्रियतम के निकट।

मन में कृष्ण-दर्शन की लालसा है, अन्तस्तल का अनुराग-सिन्धु अनन्त ऊर्मियों से तरंगायित हो रहा है और ऊपर से कोई दधि लो, नवनीत लो .... कहकर पुकार रहीं हैं। कृष्ण-दर्शन की अभिसन्धि तो अवगुण्ठित ही है।

यही है, आन्तरिक भावों का गोपन जो प्रेम-संवर्द्धन का हेतु है।

परन्तु कब तक छिपातीं इस प्रगाढ़ानुराग को, जिसने इन्हें आत्मविस्मृति करा दी।

दधि लो, दधि लो की जगह कह रही हैं –

माधव लो ...... माधव लो ....

इस माधो का अपभ्रंश है – माघोर ।

श्री चतुर्भुजदास जी की वाणी में –

ठाढ़ी एक बात सुनि धीरी ।
भोरहि तें कहा मटुकी लिये डोलति ब्रज-बासिनी अहीरी॥
'माधौ-माधौ' कहि-कहि टेरति बिसरि गयो तोहि नाउ दहीरी ।

ना जानौ कहुं मिले स्याम घन, इह रट लागि रही री ॥
मोहन-मूरति मनु हरि लीनौ नहिं समुझति कहु काहू की कही री ।
'चतुर्भुजदास' बिरह गिरिधर के सब बन फिरति बही री ॥

माधव लो.... माधव लो .....पुकारती हुई वन में घूम रही थीं। पद चिन्हों ने पहुँचा दिया प्रियतम के समीप, लो ये रहे तुम्हारे प्रेष्ठ।

ब्रजेंद्रनन्दन को देखकर ऐसा लगा मानो उसे आज सर्वस्व प्राप्त हो गया। अंतर्देश में अप्रतिम अनिर्वचनीय परमानन्द-सिन्धु उच्छलित हो उठा। यह ललित-त्रिभङ्गी ही तो है ब्रजजन-जीवन सर्वस्व।

कृष्ण दर्शन हो गया तो बस इनकी युक्ति सार्थक हुई। आश्चर्य! इतना सब कुछ हो गया किन्तु इस बावरी को कुछ भी पता नहीं, क्या कह रही है, कहाँ खड़ी है?

माधव लो .....माधव लो ..... कहती हुई सहचरियों के साथ घर को आ गई। इसका चलना, फिरना, बोलना-चालना सब आत्मविस्मृत अवस्था में ही हुआ है, स्वयं तो बेसुध थी तब किसी संगिनी ने आकर बताया।

आज सखी तोहि लागी है यह रट ।
गोबिन्द लेहु कोउ गोबिन्द, कहत फिरत वन में ओघट घट ।
दधि को नाम बिसर गयो देखत, श्यामसुन्दर ओढ़े पीरो पट ।
माँगत दान ठगोरी मेली, चतुर्भुज प्रभु गिरिधर नागर नट ॥

गोपियों के द्वारा माधव-माधव उद्घोष होने से ही यह स्थान माधोर और फिर माघोर हुआ। अष्टछाप के महापुरुषों की वाणी में ऐसे कई पद हैं, जिनमें गोपियों ने श्रीकृष्ण को 'माधव' नाम से पुकारा। चूँकि यह माधव नाम ही यहाँ का इतिहास है इसलिए कतिपय पदों की पंक्ति यहाँ दी जा रही है –

श्रीकृष्णदास जी की वाणी में –

मधुर मधुराकृति माधौ आवै ।
मधुर हसनि मधुर मृदु बोलनि मधुरै बेनु बजावै ॥

श्री परमानन्द दास जी वाणी में –

माधौ भलौ बनो आवै देखत जिय भावै ।
मोरपंख चँदुवा नीके माथे बाँध लिए ।
गुंजाफल कौ हार बनायो, सब सिंगार किए ॥
कुण्डल-बीच कदम्ब-मंजरी-पूरन कुंतल सोहै ।

मृगमद-तिलक भौंह मनमथ धनु देखत सब जग मोहै ॥
स्याम कलेवर गोरज-मंडित कंठ कमल-दल-माला ।
'परमानन्द' प्रभु गोप वेष धरि कूजत बेनु रसाला ॥

अथवा

भावै मोहि माधौ की आवनि ।

अथवा

बन-बन माधौ की डोलनि ।

दाऊ जी से २० कि.मी मादौर ग्राम है। यमुना बाढ़ में प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया। वर्तमान में प्राचीन मन्दिर की शिवलिंग, चबूतरे पर एक नया मन्दिर बनवाकर विराजित कर दी गई। यह क्षेत्र यमुना खादर का है।

मिड़ावली

मिड़ावली जु मैंड़ है ब्रज की गिह चौल माघोर अगारी ।

चन्द्रावली का सुदूर वन में वृन्दावनचन्द्र से एकान्त मिलन अत्यन्त दुष्कर हो चुका था। राधारानी के साथ स्पर्धा रखने वाली यह मानिनी समस्त गोपिकाओं समेत प्राणनाथ से भेंट होने परसन्तुष्ट नहीं रह पाती थी। एक दिन उसने ठान लिया कि आज तो मैं अन्य समस्त कृष्ण प्रेयसियों से पृथक्, एकान्त में उस चितचोर से मिलकर ही रहूँगी। फिर क्या था? सूर्योदय से पूर्व ही ब्रह्ममूहूर्त में वह दधि की मटकी शीश पर रखकर यहाँ आ पहुँची। ये गोपीनाथ भी भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं। अपने प्रेमी भक्तों की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए ही तो उन्होंने द्वापरान्त में 'लीला पुरुषोत्तम' के रूप में ब्रज अवनि पर रससिन्धु की निस्सीम तरंगों को उन्मुक्त प्रवाहित किया।

इधर से चन्द्रावली पहुँच गई सुदूर वर्ती इस सीमान्त के अरण्य में, उधर से मदनमोहन भी आ प्रकटे इस ब्रजवामा का मनोरथ पूर्ण करने किन्तु इन चोरजारशिखामणि की करतूतें भी तो निराली हैं। निकट आ कर इस मानिनी से बलपूर्वक दधि दान की याचना करने लगे, रार-तकरार करने लगे तब वह बोली –

लालन! ऐसी बातें छांडौ।
मदन गोपाल! छबीले ढोटा! झगरौ नित उठि मांडौ ॥
अनौखे दानी अबहि चले हैं माँगत गो-रस-दानु ।
प्रात हि होतु आइ ठाढौ भयौ ऊगनि न पायौ भानु ॥

चन्द्रावली कह्यो सुनि मोहन! इहै समै है औरु ।
'परमानन्द' प्रभु जानि देहु घर नन्द-सुवन सिर-मौरू ॥

लाल जी! तुम अपने इस चंचल स्वभाव को छोड़ दो। हे मदन गोपाल! हे नन्द बाबा के छबीले लाड़ले, यह कैसी तुम्हारी रीति है कि नित्य ही यहाँ आकर हम ब्रज वधुओं के साथ झगड़ा मचाते हो। यह तो तुमने दान लेने की अनोखी प्रथा प्रारम्भ कर दी है, जब देखो तब हमसे गोरस का दान माँगते हो। अब स्वयं ही देखो, अभी तो सूर्योदय भी नहीं हुआ है और तुम इस ब्रह्मबेला में ही मेरे सामने गोरस का दान लेने के लिए बलपूर्वक आ डटे हो। हे मोहन! ध्यान से मेरी बात सुनो, यह दान लेने की बेला नहीं है, यह तो दूसरा ही समय है। शीश पर सुन्दर मोर पंख धारण करने वाले हे प्यारे नन्दनन्दन! तुम मुझे शीघ्र ही घर जाने दो, ऐसी चपलता, ऐसी अनीति मेरे आगे मत करो।

चन्द्रावली की चन्द्र मोहन के प्रति यह वक्रोक्ति ही मिड़ावली का इतिहास बनी।

मिड़ावली ब्रज की मेड़ अर्थात् सीमा है। यह गोपाल का गोचारण क्षेत्र है, आज भी इस क्षेत्र में अच्छी संख्या में गोपालन हो रहा है। सर्वे के दौरान एक व्यक्ति मिला जिसके पास २५० गायें थीं।

बलदेव से १२ कि.मी मई ग्राम एवं मई से गढ़उमराव २ कि.मी और गढ़उमराव से २ कि.मी. मिड़ावली ग्राम है। यहाँ ऊंचे टीले पर प्राचीन शिव मन्दिर है।

सरोंठ

भोरी किशोरी के नेत्र ही बसीठी बन गये। बसीठी अर्थात् वह दूती जो नायिका के गुप्त प्रेम पत्र नायक तक पहुँचाती है।

श्री कुंभनदास जी की वाणी में –

अब ए नैनाई तेरे करत वसीठी ।
इह नागरि! जानति हों तातें अब मेरी बात लागति है सीठी ॥

हे नागरी! मेरी बात अब तुम्हें सीठी अर्थात् फीकी लगती हैं, देख, मैं तो अब न कड़वी बात कह सकती न मीठी और मेरी बात में ये दोनों ही दोष हैं। यदि यह कहूँ कि श्रीकृष्ण तेरे वश में हो गये हैं तो यह मीठी बात है किन्तु यह कड़वी भी है इसलिए कि ऐसा कहने से तेरे आंतरिक सुगुप्त भाव (श्रीकृष्ण से प्रेम की बात) प्रकट हो जाते हैं।

अब तो प्रियतम तेरे नचाये नाचते हैं।

अद्भुत है यह आधीनता।

नेत्रों ने यहीं की यह बसीठी।

यही लीला भाव श्री हिताचार्य की वाणी में –

तेरे नैन करत दोऊ चारी ।
अति कुलकात समात नहीं कहुं मिले हैं कुञ्जबिहारी ॥
बिथुरी माँग, कुसुम गिरि-गिरि परैं लटकि रही लट न्यारी ।
उर नख-रेख प्रगट देखियत है, कहा दुरावत प्यारी ॥
परी है पीक सुभग गंडनि पर, अधर निरंग सुकुमारी ।
जै श्री हित हरिवंश रसिकनी भामिनी आलस अंग-अंग भारी ॥

यह है – "रति-गोपन क्रिया" ।

जिसका श्री राधा सुधा निधि में भी वर्णन हुआ ।

स्वेदापूरः कुसुमचयनैर्दूरतः कण्टकाङ्को
वक्षोजेऽस्यास्तिलकविलयो हन्त धर्माम्भसैव ।
ओष्ठः सख्या हिमपवनतः सव्रणो राधिके ते
क्रूरास्वेवं स्वघटितमहो गोपये प्रेष्ठसंगम् ॥

(रा.सु.नि.२०७)

अरी, तेरे मुख पर क्या यह विहार का श्रम है, जो स्वेद बनकर बैठा है सहचरी ने पूछा ।

न, न, न, ये श्रमकण तो पुष्प चयन के कारण आ गये हैं, वह बोली ।

तेरे वक्ष पर यह नखक्षत .....?

पुष्प चयन करते समय कण्टक चुभ गये थे और तेरे भाल का तिलक धुल गया, कैसे?

(क्या प्रियतम के संग से .....?)

वह तो ..... श्रम बिन्दु से घुल गया ।

पर तेरे बिम्ब-विडम्बी अधरोष्ठ भी व्रण युक्त हैं?

क्या दन्तक्षत से?

न, न ठण्डी वायु से ।

यह है "रतिगोपन"

और कितनी कुशल है ये इस गोपन कार्य में!

दाऊजी से १८.५ कि.मी की दूरी पर स्थित है सरोंठ ग्राम । यहाँ कोई भी प्राचीन चिन्ह नहीं है ।

कुरसंडा

भला, यह भी कोई खेल है।

जानु और करतल भूमि पर टिकाये, सांड़ बनकर खेल रहे हैं।

क्वचिद् वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित्।
क्वचित् पादैः किङ्किणीभिः क्वचित् कृत्रिमगोवृषैः॥

(भा. १०/११/३९)

अभी तो दोनों बाँसुरी बजा रहे थे, अब गुलेल में ढेले रख निशाना बाँधने लगे।

कन्हैया! तू बहुत चपल है, इसलिए तेरा निशाना ठीक नहीं लगता, निशाना साधने के लिए पहले तुझे स्थिर होना होगा और एकाग्र भी।

ये देख, मैं एक ही बार में उस तरु के सबसे ऊपर वाली शाखा का दाड़िम तोड़ सकता हूँ।

देख, वह गिरा!

दाऊ दादा का पराक्रम देखकर कन्हैया ने भी अपनी गुलेल पर निशाना बाँधा किन्तु यह इतना अबोध है कि गुलेल को उल्टा करके निशाना अपनी ओर ही बाँधने लगा।

प्राचीन अटाकी देवी मन्दिर - कुरसंडा

अरे कन्हैया! रुक जा, दाऊ दादा ने जोर से कहा।

‘क्या हुआ दादा! ’ उस अबोध ने पूछा।

अरे, तू उल्टी गुलेल खींच रहा है, इस निशाने से तरु के दाड़िम नहीं, तेरे मुख के दंत-दाड़िम बाहर आ जाएंगे।

कृष्ण, अंशू, विलासी, भद्र, स्तोक कृष्ण – सबको गुलेल चलाना, निशाना बाँधना सिखाया आज दाऊ भैया ने।

अब तो होड़ लग गई, मैंने इतने फल गिराये, मैंने इतने फल गिराये। यह मेरा निशाना है। ये मेरे निशाने के फल हैं।

'देखो भाई, यह तो मैं ही बताऊँगा कि किसका निशाना मीठा है? ' मनसुख बोला।

'वह कैसे? ' सुबल ने पूछा।

'खाकर, और कैसे।' मनसुख ने जबाब दिया।

सब हँस पड़े।

निशाना बाँधना क्या सीखे, अब तो इन ब्रजदेवियों के निकट आने की प्रतीक्षा भी इन्हें आवश्यक नहीं लगती, दूर से ही देख लेते हैं शीश पर रखे गोरे, सुनहले, चिकने घड़ों को और एक के बाद एक को निशाना बनाकर फोड़ देते हैं, किसी का दुग्धाभिषेक हो जाता है तो किसी का तक्राभिषेक, किसी के मस्तक पर दधि फैल जाता है तो किसी के ऊपर नवनीत। कभी चरणों में बँधे नूपुरों के सुरों की ध्वनि में ही होड़ मच जाती है।

अब एक और नूतन खेल सूझा।

गाय-बैल बनकर खेलने लगते हैं।

कितना प्राकृत बन गया यह इन ग्राम्यों के साथ।

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम्।
अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा॥

(भा. १०/११/४०)

सांड़ बनकर एक-दूसरे से लड़ते हैं।

कभी अपना मस्तक किसी के उदर में घुसाते हैं तो कभी सांड़ जैसी ध्वनि निकालकर छोटे ग्वालों को दौड़ा देते हैं, जैसा यह, वैसे ही सहचर। सबके सब सांड़ बनकर घूम रहे हैं और केलि-कलह कर रहे हैं फिर कभी मोर बनकर नाचने लगते हैं और मोरों की ध्वनि करते हैं, कभी कोकिला के स्वर में स्वर मिलाकर स्पर्धा करते हैं और कभी बन्दर बन विभिन्न भंगिमा बनाते हुए खिर्र-खिर्र, खौं-खौं करते हैं।

कुरसंडा ग्राम में प्राचीन अटाकी देवी का मन्दिर है। इस देवी के बहुत से चमत्कार उस गाँव के ब्रजवासियों ने बताये।

दाऊ जी से कुरसंडा की दूरी १९.७ कि.मी. है।

गिहचोली

कन्हैया यदि लड़कपन, ग्राम्यपन छोड़ दे तो इसके अमानुषिक कर्मों को देखकर ब्रज में इसे सब भगवान् ही कहने लगें। ग्राम्य बनकर ही तो इसने भगवत्ता को छिपा रखा है, इसीलिए यह सदा ग्राम्य ही रहेगा।

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

सुनु ब्रजनाथ! छाँड़हु लरिकाई ।
बिनु रस प्रीति कहाँ ते उपजै तुम ठाकुर तौ करत बरियाई ॥
कर कहि बाँह नाह अपने ज्यों हटकि करी मारग में ठाढ़ी ।
कबहुँ छुवत लार कबहुँ तोरत हार, कबहुँ गहत कंचुकि अति गाढ़ी ॥
राते नैन रोष में भामिनि जानि देहु मोहि नंद दुहाई ।
'परमानन्द' स्वामी रति-नाइक प्रेम-बचन कहि भलौ मनाई ॥

आज वह अकेली रह गई थी, धीरे-धीरे चरणों को धरणी पर रखते हुए सघन-वन प्रान्त से निकल रही थी, किसी लता, पत्र को भी उसने नहीं छुआ आहट होने के भय से। एकाएक वह किसी तरु-शाखा से कूदा, मैं जब तक सोचती कि वह कोई कपि होगा, तब तक तो वह सामने आ गया कन्हैया।

इसी का ही तो भय था मुझे। आते ही कर पकड़ लिया।

ब्रजनाथ, कब तक करते रहोगे यह लड़कपन। बहुत हुआ अब छोड़ो। कम से कम किसी एकाकिनी को मत छेड़ा करो। अरे, विषमता में भी कहीं रस होता है। तुम हठपूर्वक किसी से रस नहीं ले सकते और बिना रस के प्रेम कैसा?

इस गोपी के बोलने से इस नटखट पर कहाँ प्रभाव पड़ना था? वह तो उसका कर पकड़कर सम्मुख आ खड़ा हुआ। इतना ही नहीं उसकी लर छूने लगा, उसने मना किया तो उसका हार ही तोड़ दिया और वर्जन-तर्जन किया तो उसकी कंचुकी का स्पर्श करने लगा। "कबहुँ गहत कंचुकि अति गाढ़ी" "गहत कंचुकी" व "गहि चोली" दोनों समानार्थक शब्द हैं।

चोली का स्पर्श किया तो भामिनी के नेत्र रोष में लाल हो गए। लाला, तुझे नंद बाबा की दुहाई है, मुझे जाने दे वह बोली, क्या यह वास्तविक क्रोध था? नहीं, नहीं। इस क्रोध के बहाने वह तो केवल इतना कहना चाहती थी कि कृष्ण, तुम तो रति-नायक हो प्रेम वचनों से हमारा मनुहार करो, प्रसन्न करो क्योंकि प्रेम-रस मधुर वाणी और चाटुकारिता से ही प्राप्त होता है, हठ से नहीं।

प्रेम-रस की प्राप्ति के लिए वह भगवान् भी दीन बना।

श्री हित जी की वाणी में –

प्रीति की रीति रँगीलौई जानै ॥
जद्यपि सकल लोक चूड़ामणि दीन अपनपौ मानै ॥
यमुना पुलिन निकुञ्जभवन में मान मानिनी ठानै ॥
निकट नवीन कोटि कामिनी कुल, धीरज मनहि न आनै ॥
नस्वर नेह चपल मधुकर ज्यौं आन-आन सौं बानै ॥
"जैश्री हित हरिवंश" चतुर सोई लालहिं, छाँड़ि मैंड़ पहिचानै ॥

दाऊ जी से खन्दोली-बलदेव मार्ग पर १२.२ कि.मी गिहचोली ग्राम है। कदम्ब खंडी से २ कि.मी पूर्वोत्तर दिशा में गिहचोली ग्राम है। वहाँ अब कोई प्राचीन अवशेष नहीं है।

बाकलपुर

पूतनानुज बक का निवास होने से स्थान का नाम बाकलपुर हुआ। पूतना, बकादि असुर भी थे तो क्या .... इनका भाग्य क्या किसी ऋषि-मुनि से कम था? प्रथम तो ब्रजवास, उसमें भी कृष्णदर्शन आसुरी देह में ही मिल गया और फिर सुरगुरु के साक्षात् शिष्य परम ज्ञानवान श्री उद्धव जी ने भी तो यही कहा –

मन्येऽसुरान् भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ।
ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसेसुनाभायुधमापतन्तम् ॥

(भा. ३/२/२४)

मैं तो इन असुरों को धन्य मानता हूँ।

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं ।
अंत राम कहि आवत नाहीं ॥

(रा.च.मा.कि.का. – १०)

और फिर इन्हें तो संरम्भमार्ग से ही सही, मृत्यु के अवसर पर प्रभु का साक्षात्कार तो हुआ। क्या यह परम सौभाग्य की बात नहीं है?

वत्सासुर-वध के बाद बकासुर-वध क्रम आया।

श्री सूरदास जी की वाणी में –

ब्रज में को उपज्यौ यह भैया ।
संग सखा सब कहत परस्पर, इनके गुन अगमैया ॥
जब तैं ब्रज अवतार धर्‌यौ इन, कोउ नहिं घात करैया ।
तृनावर्त पूतना पछारी, तब अति रहे नन्हैया ॥
कितिक बात यह बका बिदार्‌यौ, धनि जसुमति जिनि जैया ।
सूरदास प्रभु की यह लीला, हम कत जिय पछतैया ॥

"हम भी तो कन्हैया के समवयस्क हैं परन्तु ऐसा पराक्रम हमारे अन्दर नहीं है" विलासी, वसुदाम, श्रीदाम ने कहा।

"अरे, हम तो आयु में तुम सबसे बड़े हैं तो भी ऐसे पराक्रमी नहीं हैं" विजय, वीरभद्र, सुभद्रादि बड़े सखा बोले।

(परस्पर में)

भाई, अद्भुत है इसका पराक्रम, अगम हैं इसके गुण!

जब से यह ब्रज में आया है, ब्रज के गोप, गोपी, गाय सब सुखी व संकटों से सुरक्षित हो गये।

मधुमंगल – "मुझे स्मरण है जब मैं ढाई वर्ष का था और यह ६ दिवस का, अभी षष्ठी पूजन भी नहीं हुआ था, उसके पूर्व ही पूतना को पछाड़ दिया। थोड़ी देर तो लीला न समझने के कारण सम्पूर्ण ब्रज में रुदन की ध्वनि थी किन्तु कुछ ही समय बाद नगाड़ों की ध्वनि से षष्ठी-पूजनोत्सव मनाया गया एवं घर-घर में मिष्ठान-वितरण हुआ।"

मण्डलीभद्र – "इसके कुछ मास पश्चात् ही छोटे कन्हैया ने तृणावर्त को उड़ा दिया।"

भद्रवर्धन – "और अब बक को विदीर्ण कर दिया इसने।"

बलभद्र – "इसमें कन्हैया की क्या प्रशंसा? धन्य तो है कन्हैया की मैया जिसने ऐसे पराक्रमी, विलक्षण-गुण सम्पन्न लाला को जन्म दिया।"

मथुरा से बाकलपुर की दूरी ५.७ कि.मी. है ।

मगोरा

मगोरा गाँव मथुरा-भरतपुर मार्ग पर दस कि.मी. दूर जाजमपट्टी चौराहे से जाने वाले एक रास्ते पर स्थित है। यहाँ कई बार खुदाई कराये जाने पर पुरातात्त्विक महत्त्व के अवशेष प्राप्त हुए, जिन्हें स्थानीय ग्रामवासियों ने मथुरा के राजकीय संग्रहालय में भेज

दिया। इससे पता चलता है कि यह एक ऐतिहासिक महत्त्व का गाँव है। यहाँ पर कुछ ऐसे प्राचीन स्थल हैं, जनश्रुति के आधार पर जिनका सम्बन्ध द्वापरकालीन श्रीकृष्णलीला से है।

इस कड़ी में सर्वप्रथम तो बकैना नामक तालाब है जिसके बारे में स्थानीय ब्रजवासियों का कथन है कि बकी पूतना का भाई बकासुर यहीं निवास करता था। बकैना तालाब से कुछ दूरी पर मगवई कुण्ड है। इसके बारे में भी ग्रामीणों का कहना है कि श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्र पूजन बन्द कराने पर जब उनके द्वारा ब्रजवासियों से गिरिराज गोवर्धन की पूजा करायी तो क्रुद्ध हुए देवराज ने ब्रज को समूल नष्ट करने के लिए घनघोर वर्षा करायी थी। बाद में प्रभु इच्छा से इसी कुण्ड में उस वर्षा का सम्पूर्ण जल एकत्रित हो गया था। प्रलयंकारी मेघों द्वारा की गयी वर्षा का जल यहाँ समा जाने से इसका प्राचीन नाम मेघावई भी है। लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व यहाँ के ग्रामवासियों ने दाऊ जी के एक मन्दिर का निर्माण करवाया था, जिसमें रेवती सहित बलराम जी के श्री विग्रह स्थापित हैं।

मथुरा से मगोरा (हाथरस-मथुरा रोड होकर) की दूरी १.४ कि.मी. है।

अड़ूकी

मथुरा-भरतपुर मार्ग पर लगभग ६ किमी. की दूरी पर अड़ूकी गाँव बसा हुआ है। प्राचीन काल में यहाँ अड़ूस वन था जो अब खेत बन चुका है। ग्रामवासियों के अनुसार अड़ूस वन के ही कारण इस गाँव को अड़ूकी नाम से जाना जाता है। यहाँ एक प्राचीन कुण्ड भी है जो अब सूख चुका है, इसे स्थानीय निवासी छपर कुण्ड के नाम से पुकारते हैं। अड़ूस वन में एक प्राचीन कुआँ है, यहाँ के वयोवृद्ध ग्रामीणों के अनुसार द्वापरयुग में इस कुएँ का जल कंस के यहाँ भेजा जाता था। वर्तमान में तो यह भी सूख चुका है। ब्रज परिक्रमा के यात्री अड़ूकी से गुजरते हुए तालवन की ओर जाते हैं। इस गाँव में एक प्राचीन गोविन्द देव जी का मन्दिर है जिसका निर्माण सन् १८८६ में किया गया था। इसके निर्माण के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि एक बार नागा साधु ब्रजपरिक्रमा करते हुए अड़ूकी गाँव से होकर जा रहे थे। उस समय यह ग्राम मन्दिर विहीन था। जब ग्रामवासियों ने इन साधुओं से भोजन करने की प्रार्थना की तो वे रोष में भरकर बोले – मन्दिर रहित यह गाँव तो भूतों की निवास स्थली है अतः हम लोग यहाँ अन्न तो क्या, जल भी नहीं ग्रहण कर सकते। यह सुनकर श्रद्धालु ग्रामवासी अत्यधिक दुखी हुए और गाँव के ही दो सेठों द्वारा गोविन्द देव जी के मन्दिर का निर्माण करवाया गया।

मथुरा से अड़ूकी ९.७ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

बाद्

इस भूमि की दो विशेषताएं हैं –

प्रथम तो यह लीला भूमि है

द्वितीय – यह आचार्य भूमि है।

"बाद ग्राम" राधावल्लभ सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्री हित हरिवंश महाप्रभु की जन्म भूमि है। आपके पूर्वज "देवबन्द" सहारनपुर जिला, उत्तर प्रदेश में विराजते थे। आपके पिता थे – श्री व्यास मिश्र एवं माता थीं – श्रीमती तारा रानी। बहुत समय तक दम्पत्ति को सन्तान प्राप्ति नहीं हुई तब श्री नृसिंहाश्रम जी की कृपा से स्वयं भगवान् ही अपनी वंशी सहित इनके पुत्र रत्न बने।

श्री हित हरिवंश महाप्रभु जी का संक्षिप्त चरित्र

श्री भगवान् की वंशी का अवतार निकट ही जानकर श्री व्यास मिश्र जी अपनी आसन्न प्रसवा पत्नी तारा रानी सहित ब्रजयात्रा करने निकले। इसी यात्रा में जब आप मथुरा से ६ मील दक्षिण में "बाद" ग्राम में ठहरे, वहाँ वैशाख शुक्ल पक्ष, एकादशी तिथि, सोमवार वि.स. १५३० को अरुणोदयकाल में श्रीमती ताराानी से वंशी अवतार श्री हित हरिवंश महाप्रभु का एक वट वृक्ष के नीचे प्रादुर्भाव हुआ।

हित हरिवंश प्राकट्य स्थल

कुछ दिन "बाद" में निवास करने के पश्चात् व्यास मिश्र जी पत्नी व बालक सहित पुनः "देव बन्द" आ गये। श्री हित जी का शैशव एवं यौवन काल देव बंद में ही व्यतीत हुआ।

आपकी बाल्यावस्था बड़ी चमत्कृतिपूर्ण थी, पाँच वर्ष की अवस्था में स्वयं श्रीराधा रानी ने आपको मन्त्र दिया, अनन्तर श्रीराधा रानी के आदेश से कुएँ से एक भगवद् विग्रह निकाला, जो देवबन्द में श्री रंगीलालजी के नाम से प्रतिष्ठित हुए। अभी भी यहाँ विग्रह-सेवा में श्री हिताचार्य के वंशज ही सेवायत हैं। आठ वर्ष की अवस्था में उपनयन-संस्कार होने के पश्चात् सोलह वर्ष की अवस्था में श्री हित जी का विवाह भी हो गया। पत्नी रुक्मिणी से तीन पुत्र एवं एक कन्या रत्न का जन्म हुआ। ३२ वर्ष की अवस्था में श्रीराधारानी की ही आज्ञा से आपने गृहत्याग कर वृंदावन प्रस्थान किया। मार्ग में चिरथावल ग्राम के एक विप्र से आपको भगवद्विग्रह की प्राप्ति हुई, जिनका नाम श्री राधा वल्लभ रखा, आप उन्हें वृंदावन लाये एवं श्री राधा वल्लभ सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया।

श्रीजी

शेष जीवन आपने अखण्ड वृन्दावन वास कर व्यतीत किया, ब्रज के बाहर कभी नहीं गये।

कृष्ण सरोवर – बाद

श्री हित हरिवंश महाप्रभु के तृतीय अवतार श्री हित रूप लाल गोस्वामी जी महाराज के शिष्य चाचा वृदावन दास जी ने अपनी वाणी में "बाद" ग्राम की महिमा गाई है।

नमो नमो ब्रज बाद बेट सुर।
राधा हरि हिय हित मूरति जहँ।
जनमे श्री हरिवंश जगत गुरु।
कलियुग घोर देखि मन लरजे, जुगल चरित बरसे।
वृंदावन हित रूप सुमिरि नित, अम्बुद घुर।
आधि-व्याधि मिट जायं त्रिविध जुर॥

चाचा वृन्दावनदास जी ने इस भूमि को प्रणाम किया, देवगण भी इस भूमि की आकांक्षा करते हैं। यह वह भूमि है जहाँ स्वयं श्रीराधारानी एवं श्रीकृष्ण की छाया के हित (प्रेम) की मूर्ति श्री हित हरिवंश रूप में प्रकट हुई है। जैसे बादल जल बरसाता है, उसी प्रकार श्री हरिवंश जी ने घोर कलिकाल में युगल (श्रीराधारानी एवं श्रीकृष्ण) चरित्र का रस बरसाया संसार में।

नित्य स्मरण किया जाये किसका?

"वृन्दावन हित रूप सुमिरि नित"

वृंदावन अर्थात् धाम (बाद ग्राम) हित अर्थात् आचार्य रूप अर्थात् इष्ट का नित्य स्मरण करें।

धाम में प्रीति है तो धाम का नित्य स्मरण करो,

आचार्य में निष्ठा है तो आचार्य हित सजनी का नित्य स्मरण करो। इस स्मरण से क्या होगा? त्रिविध ज्वर अर्थात् तीनों प्रकार के ताप आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक नष्ट हो जाएंगे।

आपकी धाम प्रीति –

श्री हरिवंश अनत सचु नाहीं, बिनु या रजहिं लिये ।

(श्रीहित स्फुट वाणी-२०)

मन लगाय प्रीति कीजै कर करुवा सौं ब्रज वीथिन दीजै सोहनी ।

(स्वामी हरिदास रस सागर, अष्टादशसिद्धान्त के पद-१२)

रज-निष्ठा के बिना रस प्राप्ति असम्भव है।

यद्राधापदकिङ्करीकृतहृदां सम्यग्भवेद् गोचरं
ध्येयं नैव कदापि यद्धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः ।
यत्प्रेमामृत सिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि
तद् वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु ॥

(रा.सु.नि. २६५)

धाम प्राप्ति की तीन कोटि बतायी गयी हैं –

प्रथम कोटि में वे हैं, जिनके हृदय में श्रीजी का कैङ्कर्य अर्थात् उनका दास्य सिद्ध हो चुका है, पूर्णरूपेण विकसित हो चुका है, उन्हें धाम के वास्तविक रूप का दर्शन होता है।

द्वितीय कोटि में वे हैं – जिन्हें धाम के वास्तविक रूप का साक्षात् दर्शन तो नहीं होता किन्तु ध्यान दर्शन हो जाता है। वस्तुतः बिना राधा रानी की कृपा के धाम का वास्तविक स्वरूप न साक्षात्कार का विषय हो सकता है, न ध्यान का विषय। जो इन दोनों ही कोटि में नहीं है, घोर पापी हैं, उन्हें भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। उनके लिए उपाय

है कि वे धाम में आस्था रखें। धाम के प्रति यह आस्था तुम्हारे पापों को तो नष्ट करेगी ही, विशेष बात यह है कि प्रेमामृत-सिन्धु के सार-सर्वस्व रस अर्थात् प्रेम रस भी प्रदान कर देगी।

यह है धाम की दुर्गम महिमा।

धाम की इतनी महिमा क्यों?

गोराङ्गे म्रदिमा स्मिते मधुरिमा नेत्राञ्चलेद्राघिमा
वक्षोजे गरिमा तथैव तनिमा मध्ये गतौ मन्दिमा।
श्रोण्यां च प्रथिमा भ्रुवोः कुटिलिमा बिम्बाधरेशोणिमा
श्रीराधे हृदि ते रसेन जडिमा ध्यानेऽस्तु मे गोचरः॥

(रा.सु.नि.७४)

धाम वस्तुतः धामी का स्वरूप है। इष्ट की रति रस की जड़िमा ही धाम है।

तभी तो सींवा ....आदि अनेक धाम के परम निष्ठ भक्त इस जगती तल पर हुए।

"द्वारका देख पालंटती अचढ़ सीवैं कीन्ही अटल।"

(भक्तमाल)

आपकी इष्ट प्रीति –

हित धर्म के प्राकट्य कर्ता श्री सेवक जी महाराज ने भी वर्णन किया है –

मथुरा मण्डल भूमि आपुनी।
जहाँ बाद प्रगटे जग धनी॥

आपकी उपासना राधा चरण प्रधान थी।

श्री नाभा जी की वाणी में –

श्री हरिवंश गुसांई भजन की रीति सकृत कोउ जानिहै॥
श्री राधा चरण प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी।
कुञ्ज केलि दम्पत्ति तहाँ की करत खवासी॥
सर्वसु महाप्रसाद प्रसिधि ताके अधिकारी।
विधि निषेध नहिं दास अनन्य उत्कट व्रतधारी॥
व्यास सुवन पथ अनुसरै सोइ भले पहिचानिहै।
श्री हरिवंश गुसांई भजन की रीति सकल कोउ जानिहैं॥

श्रीराधारानी के प्रति आपकी अनन्य उपासना का ही उद्घोष है –

रसना कटौ जु अन रटौं, निरखि अनफुटौ नैन।
श्रवण फुटौ जु अनसुनौ बिनु राधा यश बैन॥

(श्रीहित स्फुट वाणी-२०)

प्राकृत चर्चा करने वाली जीभ कट जाये।

प्राकृत रूप देखने वाली आँखें फूट जाएं।

प्राकृत चर्चा सुनने वाले कान फट जाएं।

भगवान् को छोड़कर सभी दृश्य प्राकृत हैं एवं सभी चर्चा प्राकृत है।

रसकी प्राप्ति बातों का खेल नहीं है। श्रीराधिकारानी के अतिरिक्त कुछ भी मत देखो, कुछ भी मत बोलो, कुछ भी मत सुनो।

स्वयं श्रीकृष्ण भी श्रीराधा नामोपासना करते हैं।

कालिन्दीतटकुञ्ज मन्दिरगतो योगीन्द्रवद्यत्पद-
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहितः
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्वयक्षरा॥

(रा.सु.नि.९६)

श्री यमुना जी के किनारे सघन कुञ्ज के अन्दर एकान्त में श्रीकृष्ण, श्रीराधा रानी के नाम की साधना करते हैं, कैसे? बड़े-बड़े योगीन्द्रों की भाँति ध्यान लगाकर बैठ जाते हैं एवं अखण्ड चित्तवृत्ति से श्रीजी का स्मरण करते हैं, उनके पद नखमण्डल की ज्योतिर्मणियों का ध्यान करते हैं। आँखों से प्रेमाश्रु बह रहे हैं और मुख से राधा, राधा, राधा जप रहे हैं।

यह है आराधना!

सच्ची आराधना हो तो आराध्य दौड़कर आता है। इसे संसिद्धि कहते हैं। श्रीकृष्ण ने तल्लीन होकर राधाराधन किया तो स्वामिनी जी दौड़ते हुए आईं। दौड़ी क्यों?

क्योंकि उस आराधन से इष्ट के ऊपर सम्मोहन हुआ।

आराधक जब तल्लीन होकर आराधना करता है तो इष्ट पर सम्मोहन होता है और वह दौड़कर आता है। इस उपासना से अद्भुत रति रस प्राप्त हुआ, श्रीकृष्ण को। ये दो अक्षर की 'रा-धा' नाम्नि विद्या, पराविद्या है जो कि वेदातीत है।

कई घण्टे जाप करने पर भी हमें नाम स्फुरण नहीं होता है। जब इष्ट का नाम लेते हुए, इष्ट की स्फूर्ति हृदय में हो तब समझो कि जाप की दिशा ठीक है। उसमें भी यह राधा नाम तो ऐसा है जो श्रीकृष्ण को भी वश में कर लेता है।

सब वेद पुराणन में, यह सार विचारा है ।
प्रभु को वश करने का, राधा नाम हमारा है ॥
हरि वंशी में गाते, दिन-रात रटा करते ।
बस दो ही अक्षर का, राधा नाम हमारा है ॥
ऐ दुनिया के लोगो, सब कान खोल सुन लो ।
परतत्व जानने का, राधा नाम हमारा है ॥
हम जप-तप नहि जाने, कुछ और नहीं माने ।
अंधे की लकड़ी सा, राधा नाम हमारा है ॥
हम बहुत रहे भटके, जग में अटके-अटके ।
अब मिला किनारा है, राधा नाम हमारा है ॥
क्यों कठिन तपस्या कर, जोगी भटका करते ।
बेसहारों निर्बल का, राधा नाम सहारा है ॥

(बाबा की पुस्तक 'बरसाना' से)

यज्जापः सकृद् एव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणा-
द्यत्र प्रेमवतां समस्तपूरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता ।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः
श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम् ॥

(रा.सु.नि.९५)

एक बार भी जो राधा नाम लेता है, उसी क्षण वह श्रीकृष्ण को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है एवं समस्त पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में तुच्छता उत्पन्न कर देता है। जब तक यश, भोग, ऐश्वर्य .....आदि के प्रति महत्त्व बुद्धि है, कदापि श्रीराधा नामोपासक नहीं बन सकते। राधा रानी की जिस महिमा को श्रुति भी आज तक ढूँढ़ रही हैं, बड़े-बड़े ग्यानी भी ढूँढ़ रहे हैं और स्वयं श्रीकृष्ण भी श्रीराधारानी के नाम की महिमा के अन्वेषण में लगे हुए हैं। ऐसा श्रीराधारानी का वैभव है, स्वयं श्रीकृष्ण भी उसका पार नहीं पा सके।

श्रीव्यास जी की वाणी में –

परम धन राधा नाम आधार ।
कोटिन रूप धरे नन्दनन्दन, तऊ न पायो पार ॥
जाहि श्याम मुरली में टेरत, निशदिन बारम्बार ।
वेद मन्त्र अरु जन्तर तन्त्र में यही कियो निरधार ॥

श्री शुक प्रकट कियो नहिं याते, जानि सार को सार ।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत, डारि भार में भार ॥

श्रीराधा नाम के अतिरिक्त सब साधन भार हैं अथवा भाड़ हैं (चना भूनने वाली आग की भट्टी को भाड़ कहते हैं) हमने सब साधन भाड़ में डाल दिये।

श्रीराधे श्रुतिभिर्बुधैर्भगवताप्यामृग्य सद्वैभवे
स्वस्तोत्रस्वकृपात एव सहजो योग्येऽप्यहं कारितः ।
पद्येनैव सदापराधिनि महन्मार्गे विरुध्य त्वदे-
काशे स्नेहजलाकुलाक्षि किमपि प्रीतिं प्रसादीकुरु ॥

(रा.सु.नि.२६९)

वेद, पण्डित और स्वयं भगवान् के द्वारा भी जो अन्वेषणीय हैं और वह भी उस परतत्व की महिमा को नहीं जान सके तो हम-तुम क्या जानेंगे? जिन पर कृपामयी की कृपा हो गई है, उनको जानने की योग्यता उन्हें तो प्राप्त हो ही जाती है किन्तु मैं तो महदापराधी हूँ। महद् अपराध तो क्षम्य भी नहीं।

मैंने तो बड़े-बड़े महापुरुषों का, उनके द्वारा प्रतिपादित मार्गों का विरोध ही किया है किन्तु फिर भी आपकी कृपा का आकांक्षी हूँ क्योंकि आप ऐसी अनल्प दयावर्षिणी हैं कि करुणा की कल्लोलिनी सदा आपके नेत्रों से बहती रहती है अर्थात् सहज जिनका करुणा का स्वभाव है जीवों पर ऐसी श्रीराधारानी जिनके नेत्र अतिशय करुणा के कारण सदा आंसुओं से भीगे रहते हैं।

उनकी कृपा पर भरोसा है।

आचार्य भूमि होने के साथ-साथ यह लीला भूमि भी है अतः एक लीला श्री हिताचार्य की वाणी में –

रास में रसिक मोहन बने भामिनी ।

यहाँ भामिनी शब्द दो प्रकार से घटित होता है –

रास में रसिक मोहन बड़े सुन्दर बने हैं।

मोहन तो रसिक हैं किन्तु 'बनी भामिनी' अर्थात् भामिनी अधिक बन गयी हैं अर्थात् वे अधिक सुन्दर लग रही हैं। श्री हित जी की उपासना राधा चरण प्रधान है अतः बने भामिनी की अपेक्षा, बनी भामिनी अधिक समीचीन है।

सुभग पावन पुलिन सरस सौरभ नलिन ।
मत्त मधुकर निकट शरद की यामिनी ॥

सुभग अर्थात् सुन्दर, पावन अर्थात् पवित्र यमुना का किनारा है। सरस अर्थात् रसमय सौरभ नलिन अर्थात् सुगन्धित कमल विकसित हैं। शरद की रात्रि है, सहस्रशः सुगन्धित कमल विकसित हैं, उनके ऊपर भ्रमर मतवाले हो रहे हैं।

त्रिविध रोचक पवन ताप दिनमणि दवन ।
तहाँ ठाड़े रमण संग शत कामिनी ॥

शीतल, मंद, सुगन्धित वायु सूर्य का ताप निरस्त कर रही है। सैकड़ों गोपरमणियों के साथ श्रीकृष्ण खड़े हुए हैं।

ताल वीणा मृदंग सरस नाचत सुढंग ।
एक ते एक संगीत की स्वामिनी ॥

वीणा, मृदंग ..... आदि अनेकों सरस वाद्य तालबद्ध बज रहे हैं और वे ब्रजसुन्दरी नृत्य कर रही हैं। गान कला में परम चतुर वे सब एक से बढ़कर एक हैं, संगीत की स्वामिनी हैं।

राग रागिनी जमी बिपिन बरसत अमी ।
अधर बिम्बनी रमी मुरली अभिरामिनी ॥

राग-रागिनियों के सुधा पूरित स्वरों से वन में अमृत वर्षण हो रहा है। गोपियों ने अपने बिम्ब-विडम्बी अधरों पर मुरली को रखकर परम मधुर अमृत रव का सृजन किया, जो रासोत्सव में चारों ओर छा गया।

हे राधे! अब आप भी कोई अद्भुत लीला दिखाओ, इस प्रकार गोपियों के प्रार्थना करने पर श्रीजी ने अपने अरुण-कर-सरोरुहों में वंशी को थाम लिया।

लाग कट्टर उरप, सप्त सुर सौं सुलप ।
लेत सुन्दर सुघर राधिका नामिनी ॥

श्रीजी ने उरप की तान ली, जो तीन सप्तक तक जाती है। सप्त सुर अर्थात् सात स्वरों वाला सम्पूर्ण राग गया।

श्यामसुन्दर भी विस्मित थे।

किसने ली यह तान ......?

कौन ले सकता है यह तान? स्वयं श्रीराधारानी हैं, सखियों ने कहा।

सुन्दर एवं सुघर ये दोनों विशेषण यहाँ श्रीजी के लिए तो हैं ही, उनकी गायकी के लिए भी हैं। सखियों की प्रार्थना पर गान-नृत्य चातुरी स्वामिनी जी ने दिखाई। नृत्यगति भी दिखाई।

तत्त थेई थेई करत, गतिव नूतन धरत ।
पलटि डगमग ढरति मत्त गजगामिनी ॥

श्रीजी ने तत्त थेई-तत्त थेई बोल सहित नूतन गति दिखाई। श्यामसुन्दर, सखी वृन्द सबके लिएबिलकुल नवीन गति थी।

जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० अंकों को विपरीत क्रम १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ से बोलना कठिन है किन्तु यहाँ श्रीजी ने जो गति दिखाई, उसका उलटा-पलटा भी कर दिखाया।

उन्मत्त गजगामिनी गति से जब पलटा लिया तो श्यामसुन्दर मोहित हो गये।

धन्य है, धन्य है – कहते हुए नील हंस गोर हंस से पराभूत हो श्यामसुन्दर श्रीजी के अंक में लिपट गये।

धाइ नवरंग धरी, उरसि राजत खरी ।
उभै कल हंस 'हरिवंश' घन दामिनी ॥

कृष्ण सरोवर –

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण ने धेनुकासुर का वध किया। धेनुकासुर बहुत बलशाली था अतः उसे मारने में श्रीकृष्ण को बहुत श्रम हुआ, उन्होंने यहाँ आकर स्नान किया और विगत श्रम हुए। यही सर कृष्ण सरोवर नाम से ख्यात हुआ।

मथुरा से बाद ग्राम की दूरी १३.५ कि.मी. है।

रुनकता (रेणुका क्षेत्र)

यहाँ का शास्त्रीय नाम रेणुका क्षेत्र है –

सा चाभूत् सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ।
रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥

(भा. ९/१५/१२)

रेणु ऋषि की कन्या रेणुका का पाणिग्रहण महर्षि जमदग्नि के साथ हुआ। रेणुका से रेणुका क्षेत्र व अपभ्रंश रुनकता हुआ। यह महर्षि जमदग्नि की तपोभूमि रही है। ऊँचे टीले पर जमदग्नि ऋषि का मन्दिर है, जिसमें महर्षि के साथ रेणुका जी का विग्रह दर्शनीय है।

नीचे लक्ष्मी-नारायण मन्दिर एवं परशुराम जी का मन्दिर है। एक प्राचीन त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) मन्दिर भी है। गंगा दशहरा, परशुराम जयन्ती एवं सोमवती अमावस्या यहाँ के प्रमुख पर्व हैं। यह स्थान अष्टछाप के महाकवि सूरदास जी की भजनभूमि भी रहा है।

भक्ति रत्नाकर के अनुसार –

आइलेंन शीघ्र जमदग्निर आश्रमे।
यथा जन्म लाभिलेन श्री परशुराम॥

श्रीमहाप्रभु जी अग्रवन में पहुँचते ही जमदग्नि जी के आश्रम में आये।

तार भार्या रेणुका, 'रेणुका' नामे ग्रामे।
यथा जन्म लाभिलेन श्री परशुराम॥

जमदग्नि जी की पत्नी रेणुका जी के नाम से ही गाँव का नाम रेणुका हुआ, जहाँ श्री परशुराम जी का जन्म हुआ था।

रुनकता में सूरकुटी

सूरदास जी जगविदित श्री उद्धव अवतार।
कथा पुराणान्तर कथित वर्णन करौं उदार॥

(श्री रघुराज सिंह जी)

अथवा

"वाल्मीकि तुलसी भये ऊधव सूर शरीर"

श्री उद्धव अवतार सूरदास जी का यह साधना स्थल आज भी अपनी प्राचीनता, महत्ता को संजोये हुए यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

बढ़ती हुई प्रतिष्ठा से डरकर यह निर्जन वन ही सूरदास जी को अपनी साधना-आराधना के लिए प्रिय लगा अतः कुछ समय मथुरा विश्राम घाट पर निवास करने के पश्चात् वहाँ से रुनकता ग्राम के निकट पश्चिम वाहिनी यमुना तट पर स्थित गऊ घाट में

सूर कुटी में श्रीनाथ जी – रुनुकता

निवास करने लगे। आपकी उद्भट प्रतिभा व भगवद्भक्ति से प्रभावित होकर बहुत से लोगों ने शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। अब तो सर्वत्र आपको लोग "स्वामी जी" कहकर पुकारने लगे। संवत् १५६७ में महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी प्रयाग के पास एक स्थान से अनेक शिष्यों सहित जब ब्रजभूमि आ रहे थे तो गऊघाट रुनकता में उनका पड़ाव पड़ा। एक शिष्य के द्वारा श्री सूरदास जी को महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी के शुभागमन के विषय में जब पता चला तो उनके दर्शन की इच्छा हुई। शिष्यों से कहा पूज्य आचार्य चरण के पास जब भी समय हो हमें उनका दर्शन अवश्य करा देना। उचित समय देखकर अपने अनेक शिष्यों के साथ सूरदास जी पूज्य आचार्य के चरणों में साष्टांग दण्डवत् कर हाथ जोड़कर बैठ गये। श्री सूरदास जी के सुन्दर मधुर गायन की चर्चा महाप्रभु जी पूर्व ही सुन चुके थे अतः आज्ञा की, सूरदास जी! कुछ भगवद्-यश गाइये। तब आपने यह पद गाया –

हरि हौं सब पतितन को नायक ।
को करि सके बराबरि मेरी, इते मान को लायक ॥
जो तुम अजामेल सों कीनी जो पाती लिखपाऊं ।
होय विश्वास भलो जिय अपने औरहु पतित बुलाऊं ॥
सिमिटे जहाँ तहाँ ते सब कोऊ आय जुरे एक ठौर ।
अबके इतने आन मिलाऊं बेर दूसरी और ॥
होडा होडी मन हुलास करि करें पाप भरिपेट ।
सबहिन ले पांयन तर परिहों यही हमारी भेंट ॥
ऐसी कितक बनाऊं प्राणपति सुमिरन है भयो आडो ।
अबकी बेर निवार लेउ प्रभु 'सूर' पतित का ठाडो ॥

दूसरा पद गाया –

"हरि हौं सब पतितन को टीकौ"

इन दोनों पदों को सुनकर श्री महाप्रभु जी ने कहा – अरे! तुम सूर (भजन में वीर) होकर इतना क्यों घिघियाते (दीन बन रहे) हो? श्री हरि की लीला गाओ। इस पर सूरदास जी ने कहा – भगवन्! बिना अनुभव के लीला कैसे गाऊँ? श्री महाप्रभु जी ने कहा – आप यमुना स्नान करके हमारे समीप आयें, हम लीला का

सूर कुआं – जहाँ से ठाकुर जी ने सूरदास जी को निकला था

अनुभव करवा देंगे। तत्काल यमुना स्नान करके सूरदास जी आचार्य चरणों में बैठ गए तब विधि पूर्वक अष्टाक्षर मन्त्र की दीक्षा देकर श्री महाप्रभु जी ने ब्रह्म सम्बन्ध कराया एवं श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका का स्मरण कराया। बस फिर क्या था, श्री गुरु कृपा से सूरदास जी के हृदय में भगवल्लीलाओं का स्मरण होने लगा। श्री महाप्रभु जी ने पूछा – सूरदास जी! क्या कुछ दिखाई दे रहा है? सूरदास जी बोले – जै जै! आपकी वात्सल्यमयी गोद में एक नीलकमल के वर्ण वाला एक छोटे से बालक का दर्शन हो रहा है। श्री महाप्रभु जी ने सस्मित मुख से लीलागान की आज्ञा दी। तब श्री सूरदास जी ने प्रथम पद –

"चकई री चल प्रेम सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग" एवं द्वितीय "ब्रज भयो महर के पूत जब यह बात सुनी" बधाई का पद गाया। इसके पश्चात् महाप्रभु जी ने गऊघाट पर रुककर तीन दिवस तक सुबोधिनी एवं पुरुषोत्तम सहस्त्र नाम सुनाया जिससे इन्हें सम्पूर्ण भागवत रहस्य का ज्ञान हो गया। तत्पश्चात् श्रीमद् वल्लभाचार्य जी सूरदास जी को साथ लेकर ब्रज आ गये।

महानिदेशक, पुरातत्व विभाग सर जॉन मार्शल द्वारा १९२८ में अकबर कालीन ईंटों से निर्मित लगभग ५०० वर्ष प्राचीन मन्दिर की खोज की गई जो महाकवि सूरदास जी की साधना स्थली है। समग्र विश्व में ऐसा अद्वितीय मन्दिर कहीं नहीं है, जिसमें भगवान् और भक्त के विग्रह एक साथ विराजते हैं।

जहाँ सूरदास जी के जीवन में पग-पग पर आपदाएं आईं, साथ ही वहाँ करुणामय भगवान् की अनवरत बरसती कृपा भी देखी गई जैसा कि स्वयं श्री सूरदास जी ने कहा है –

मनसा करि सुमिरत है जब-जब, मिलते तब तबही ॥
अपने दीन दास के हित लगि, फिरते संग-संगही ।
लेते राखि पलक गोलक ज्यौं, सन्तत तिन सबहीं ॥
रन अरु बन बिग्रह डर आगैं, आवत जहीं-तहीं ।
राखि लियौ तुमहीं जग-जीवन, त्रासनि तै सबहीं ॥
कृपा-सिन्धु की कथा एक रस, क्यौं करि जात कही ।
कीजै कहा 'सूर' सुख-संपति, जहँ जदुनाथ नहीं? ॥

इन पंक्तियों का प्रमाण है सूरकुटी के निकट वह जलहीन अंधकूप जिसमें गिर जाने पर स्वयं श्री भगवान् ही उन्हें उस कूप से बाहर निकालने आये किन्तु उस मृदुल संस्पर्श को प्राप्त करके यह छिपा न रह सका कि वह अन्य कोई नहीं स्वयं भगवान् ही हैं सूरदास जी कुछ कहते इसके पहले ही प्रभु बाँह छुड़ाकर चले गये, तब सूरदास जी मुखरित हुए –

बांह छुडाय जात हो निबल जान के मोहि ।
हृदय ते जब जाओगे मर्द बदोंगो तोहि ॥

दाऊ जी से २९.६ कि.मी. की दूरी पर स्थित है रुनकता ग्राम एवं आगरा से मथुरा जाने वाले राजमार्ग पर मथुरा से १० मील की दूरी पर स्थित है रुनकता ग्राम।

अग्रवन (आगरा)

अग्रवन है ब्रज का प्रवेश द्वार।

अग्रवन के विषय में नरहरि दास जी का भक्तिरत्नाकर, श्री चाचा वृन्दावन दास जी

श्री प्रेमनिधि जी के ठाकुर – आगरा

का प्राचीन ब्रज परिक्रमा ग्रन्थ एवं श्री नाभा जी की भक्तमाल आदि ग्रन्थ प्रमाण हैं।

भक्ति रत्नाकर के अनुसार –

प्रयाग हइते क्रमे आसी आग्रवने ।

प्रयाग के बाद क्रमानुसार श्रीमहाप्रभु जी अग्रवन में पहुँचे।

प्राचीन ब्रज परिक्रमा ग्रन्थ के अनुसार –

"ब्रज आगर आगरौ जु पूरब पौर निकसनी मंगलकारी ।"

ब्रज का अग्र भाग होने से ही यह अग्रवन अथवा आगरा है।

श्रीभक्तमाल के अनुसार –

दया दृष्टि बसि "आगरै" कथा लोग पावन कर्यौ ।
प्रगट अमित गुन प्रेमनिधि धन्य विप्र जिन नाम धर्यौ ॥

गुसांई श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य श्री प्रेमनिधि जी महाराज ने भक्तों को सुख देने हेतु आगरा को श्री ब्रज-वृन्दावन से तनिक भी भिन्न न समझकर अग्रवन (आगरा) में निवास किया।

इसका एक कारण यह भी था कि उस समय यह क्षेत्र यवन शासकों के अत्याचार से अत्यधिक पीड़ित था अतः ऐसे समय में यवन शासकों को अपने प्रभाव में रखना परमावश्यक था। प्रेमनिधि जी का चरित्र २५२ वैष्णव वार्ता में भी वर्णित है। आपके आराध्य ठाकुर थे 'श्री श्याम जी'। आज भी आगरा में इनका मन्दिर प्रसिद्ध है।

प्रेमनिधि जी बड़े प्रेम-भाव से अपने ठाकुर श्रीश्याम जी की सेवा करते थे। सेवा अपरस की थी अतः प्रतिदिन कुछ रात रहते ही ये ठाकुर जी की सेवा के लिए यमुना जल लाया करते। एक बार अधिक वर्षा होने के कारण मार्ग में कीचड़ अधिक हो गई तब इन्हें चिन्ता हो गई कि अंधेरे में जाने से कीचड़ में गिरने और फँसने का भय है और यदि प्रकाश होने पर जाऊँ तो विधर्मियों के स्पर्श से अपरस बिगड़ जाने का। अंत अँधेरे में जाना ही उचित समझ जैसे ही बाहर निकले तो देखा कि एक सुकुमार-किशोर बालक हाथ में मशाल लिए जा रहा है। ये भी उसके पीछे चल दिये और यमुना जी के किनारे पहुँच गए। वहाँ इन्होंने स्नान किया और घड़े को भरकर चलने लगे तो देखा कि वह बालक पुनः आ गया। ये फिर उसके पीछे- पीछे चलने लगे, जैसे ही ये घर के द्वार पर पहुँचे, वह बालक अदृश्य हो गया। यह बालक कौन था, कहाँ गया, ये सोचकर पुनः उसे देखने की लालसा से इनके आँसुओं की धारा बह निकली। रोते-रोते मन्दिर में सेवा करने गये और ठाकुरजी से प्रार्थना करने लगे – हे प्रभो! यह आपकी कौन सी लीला है? तब इन्होंने देखा कि ठाकुर जी के हाथ में तेल लगा है और श्रीचरणों में कीचड़ तथा रज लगी है। यह देखकर वह मूर्छित हो गए तब ठाकुर श्री श्याम जी ने प्रकट होकर कहा कि

जो मुझे जैसे भजता है, मैं भी उसे वैसे ही भजता हूँ 'ये यथा मां....'(गीता ४.११)। तुम नित्य मेरी सेवा अनेक प्रकार से करते हो यदि मैंने थोड़ी सी सेवा कर दी तो क्या हुआ?

श्री प्रेमनिधि जी चौरासी वैष्णववार्ता, श्रीमद् भागवतादि वैष्णव ग्रन्थों की बहुत अच्छी कथा किया करते थे जिससे श्रोताओं का मन भगवद-भक्ति के भावों से भर जाता था। इसीलिए इनकी प्रतिष्ठा को देखकर विमुख ब्राह्मण इनसे द्वेष करने लगे और बादशाह से झूठी शिकायत कर दी कि बहुत सी स्त्रियाँ इनके घर में आती-जाती रहती हैं। बादशाह ने क्रोध में भरकर आज्ञा दी कि इन्हें पकड़ कर लाओ। ये उस समय जल से भरी झारी ठाकुर जी के सामने रखकर उन्हें जल पिलाना चाहते थे परन्तु उसी समय सिपाही इन्हें पकड़कर बादशाह के पास ले गए और ये ठाकुर जी को जल न पिला सके। इन्होंने बादशाह से कहा कि मैं श्रीकृष्ण कथाओं का ही वर्णन करता हूँ, जिन्हें कथा अच्छी लगती है वे आकर बैठते हैं। इनकी बात सुनकर बादशाह ने कहा कि तुम्हारे गली-मुहल्ले के लोगों ने ही आकर कहा है कि तुम्हारा चाल-चलन और रहन-सहन ठीक नहीं है, यदि तुम ठीक कह रहे हो तो मैं जांच-पड़ताल के पश्चात फैसला करूँगा और सिपाहियों को इन्हें कारागार में बंद करने की आज्ञा दी। रात में जब बादशाह सोया तब ठाकुर जी ने बादशाह के इष्ट मुहम्मद साहब का वेष बनाया और एक लात मारकर कहा – 'मुझे बहुत जोर की प्यास लगी है।' बादशाह पलंग से नीचे गिर पड़ा। ठाकुरजी रूपी मुहम्मदसाहब बोले कि मेरे यहाँ सुन्दर गुलाब जल पिलाने वाले को तो तूने कैदखाने में बंद कर रखा है। तब बादशाह को विश्वास हुआ कि हमारा और इनका साहब एक है और तुरन्त प्रेमनिधि जी को कैदखाने से छुड़ाया। बादशाह इनके चरणों में गिर पड़ा और उन्हें धन-सम्पत्ति देना चाहा परन्तु प्रेमनिधि जी ने उसे स्वीकार नहीं किया और निष्किञ्चन भाव से सेवा करते हुए शरीर को त्यागकर भगवद्धाम को चले गए।

श्री कुम्भनदास जी तो अकबर के बुलाने पर आगरे से आगे फतेहपुर सीकरी तक गये। इसका कारण यह नहीं कि उन्हें बादशाह से कोई लोभ और भय था। इसका प्रमाण है कि जिस समय बादशाह ने श्री कुम्भनदास जी से पद गायन के लिए अनुरोध किया तो उन्होंने यह पद गाया –

भगत को कहा सीकरी काम ।
आवत जात पन्हैंया टूटी बिसरि गयो हरिनाम ॥
जाकौं मुख देखत दुःख उपजै ताकौं करन परी परनाम ।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर बिनु सब झूठो धनधाम ॥

यदि कुम्भनदास जी को बादशाह अकबर से लोभ अथवा भय रहता तो क्या वे ऐसा कह सकते थे? वस्तुतः न उन्हें बादशाह से कुछ चाह थी और न उसका भय ही था। फतेहपुर सीकरी तो वे केवल इस कारण से आये कि जिससे वह म्लेच्छ (अकबर) लोगों को और अधिक पीड़ित न करे।

श्री कुम्भनदास जी तो गोसाईं विट्ठलनाथ जी के द्वारा गुजरात यात्रा पर चलने की आज्ञा से ही अत्यन्त व्याकुल हो उठे तब फिर वे ब्रज के बाहर कैसे जा सकते थे?

इसी प्रकार श्री मन्महाप्रभु जी के कृपापात्र पार्षद पूज्यपाद श्री जीवगोस्वामी जी, जो अखण्ड ब्रजवास का आजीवन व्रत लेकर ब्रजधरा में निवास कर रहे थे, वह भी एकबार मुगल सम्राट अकबर के आग्रह से श्री गंगा जी व श्री यमुना जी की सर्वश्रेष्ठता से सम्बंधित विवाद का समाधान करने हेतु आगरा गये थे।

अतः आगरा के ब्रज होने में कोई सन्देह नहीं है फिर आगरा तो ब्रज का प्रवेश द्वार ही है।

"वृन्दावन के घाट को जल आवत यहि बाट।
ताते यह है आगरो और गाँव सब घाट॥"

इतिहास के गवाक्ष से – न केवल ऐतिहासिक है ब्रज का अग्र भाग अथवा प्रवेश द्वार होने से यह भूमि अनादि है। मान्यता है कि आगरा का संस्थापक सिकंदर लोदी (शासनकाल ई.१४८९-१५१७) था। लोदी के कारण ही आगरा अस्तित्व में आया। जबकि फ़ारसी कवि मसूद-बिन-सअद-बिन-सलमान (मृत्यु ई.११२६ अथवा ११३१) के दो कसीदों में सिकंदर लोदी से ४०० वर्ष पूर्व के आगरा का विवरण प्राप्त होता है। कसीदों का शीर्षक है "बगदह सैफुद्दौला व निहनियत बिल फ़तेह आगरा" अर्थात् सैफुद्दौला यानी महमूद की प्रशंसा और आगरा पर विजय के लिए मुबारकबाद है।

इस दृष्टि से सर्वप्रथम यह मान्यता यहीं विराम लेती है कि आगरा का संस्थापक सिकंदर लोदी था। जहाँगीर का आगरा की ऐतिहासिकता के विषय में कथन है कि आगरा हिन्दुस्तान के अन्य प्राचीन नगरों में से एक है तथा लोदी अफगानों के शासनकाल से पूर्व वह विस्तृत व बहु आबाद स्थान था, उसमें एक किला भी था जिसका वर्णन मसूद-बिन-सअद-सलमान ने अपने कसीदे में किया।

इसके पश्चात बाबर कालीन आगरा का वर्णन 'बाबरनामा' में प्राप्त होता है।

उस समय मेवात, मालवा एवं राजपूताने पर नजर रखने के लिए दिल्ली से ज्यादा आगरा का महत्व था। बाबर ने यमुना किनारे अनेक सुन्दर भवन, उद्यान, हमाम व पाताल फोड़ कुँओं, बावड़ियों का निर्माण कराया। यमुना के उस पार चार बाग व शाही बाग लगवाये और उसका नाम हश्त-बहिश्त रखा। धौलपुर के समीप ५ अक्टूबर १५२८ को एक छोटी मस्जिद का निर्माण भी कराया। बाबर द्वारा आगरा में तीन उद्यानों का निर्माण कराया गया।

अचानक बाग – आगरा शहर से दक्षिण में एक मील दूरी पर स्थित है।

राम बाग– चीनी के रोजे के मध्य में है।

जहीरे बाग– जो आगरा नगर के समीप यमुना नदी के किनारे है।

अकबर कालीन आगरा –

हुमायूँ की मृत्यु के बाद पुत्र अकबर ने आगरा को अपनी स्थायी राजधानी घोषित कर दिया, इसके पूर्व उसकी राजधानी फतेहपुर सीकरी थी किन्तु यमुना किनारे बसे हुए आगरा नगर की सुन्दरता उसे बराबर अपनी ओर खींच रही थी। अकबर के द्वारा आगरा को और नया रूप प्राप्त हुआ। सोलह वर्षों में ३५ लाख रुपये की राशि से लाल किले का निर्माण हुआ। फतेहपुर सीकरी में अनेक भवन तथा विशाल जामामस्जिद का निर्माण कराकर उसे एक नयी राजधानी का रूप दिया। निर्माण कार्यों के अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण कार्य भी आगरा में हुआ। धार्मिक, सामाजिक व राष्ट्रीय एकता को ध्यान में रखते हुए अकबर ने यहाँ एक नया धर्म 'दीने इलाही' चलाया। यही कारण था कि अकबर के दरबार में विभिन्न धर्मों के प्रकाण्ड विद्वानों को सादर आमंत्रित किया जाता था। इन विद्वानों में यज्द के रहने वाले प्रख्यात शिया विद्वान मौलाना मोहमद, खुरासान के जाम देश निवासी मौलाना नुरुद्दीन तखान, जो गणितज्ञ और ज्योतिषी थे, सूफी विद्वान, गुजरात के अग्नि पूजक विप्र तथा अनीविया, मान सिंह और हंगरीवेज पादरी प्रमुख थे। अकबर ने अपने 'अल्लाह उपनिषद' एवं 'दीने इलाही' द्वारा सरलता से सार्वजनिक धर्म की नींव डालने का प्रयास किया। सामजिक जीवन में उसने सहस्रों वर्षों की प्रथाओं को ई. १५७३ में कानूनन बंद करा दिया। बलात वैधव्य, बाल विवाह, बहु विवाह, धर्म के नाम पर पशु बलि एवं सती प्रथा को बंद किया।

यमुना का आगरा में प्रवेश –

दिल्ली से मथुरा होती हुई कीठम गाँव के निकट यमुना आगरा की सीमा में प्रवेश करती है।

उँटगन नदी –

उँटगन आगरा जिले की प्रमुख नदी है। इसकी उत्पत्ति के विषय में एक पौराणिक कथा प्रचलित है। इस कथा के अनुसार कुंती पुत्र अर्जुन ने यहाँ एक स्थान पर अपने बाण से भूमि में इतना गहरा गड्ढा बना दिया कि वहाँ से जल की एक धारा फूट पड़ी। इसी धारा ने एक नदी का रूप ले लिया। अर्जुन के बाण से उत्पन्न जल धारा ही उँटगन के रूप में है। अतः उँटगन का एक नाम बाण गंगा भी है।

कुछ विद्वानों की मान्यतानुसार उँटगन के निकट स्थित पिनाहट नगर पाण्डवों के द्वारा बसाया गया था और महाभारत काल में यह पाण्डव हट के नाम से पुकारा जाता था।

पाण्डव हट का अपभ्रंश पिनाहट है।

आगरा के चारों कोनों पर चार महादेव विराजमान हैं। उत्तर-पश्चिम कोने पर कैलाश, पश्चिम-दक्षिण कोने पर पृथ्वीनाथ, दक्षिण-पूर्व कोने पर राजेश्वर, पूर्व-उत्तर कोने पर बल्केश्वर व नगर के मध्य में मनः कामेश्वर तथा कलेक्टरी-कचहरी के निकट रावली महादेव का मन्दिर दर्शनीय है।

चर्मण्वती (चम्बल)

महाकाव्य महाभारत के अनुसार चम्बल का सही नाम चर्मण्वती है। चर्मण्वती अर्थात् चर्म की नदी प्राचीन काल में चम्बल नदी यज्ञ करने के लिए पवित्र मानी जाती थी अतः इसके तट पर बड़े-बड़े यज्ञ किये जाते थे। इन यज्ञों में बहुसंख्यक यज्ञ-पशुओं की बली दी जाती थी।

एक समय आर्य सम्राट रन्तिदेव ने चम्बल के तट पर एक महायज्ञ का आयोजन किया था। इस यज्ञ में इतने यज्ञ-पशुओं का वध हुआ कि चारों ओर रक्त की धाराएं बह रही थी। दूर-दूर तक रक्त एवं चर्म ही दिखाई देता था अतः नदी का नाम चर्मण्वती हो गया। चर्मण्वती का अपभ्रंश चम्बल हुआ।

कैलाश महादेव मन्दिर

त्रेतायुग में परशुराम और उनके पिता ऋषि यमदग्नि कैलाश पर्वत पर भगवान् शिव की आराधना करने गये। उनकी कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उन्हें वरदान माँगने को कहा। इस दोनों भक्तों ने उनसे अपने साथ चलने और हमेशा साथ रहने का आशीर्वाद माँग लिया। इसके बाद भगवान् शिव ने दोनों को एक-एक शिवलिंग

श्री कैलाश महादेव मंदिर – आगरा

भेंट स्वरूप दिया। जब दोनों पिता-पुत्र अग्रवन में बने अपने आश्रम रेणुका के लिए चले तो आश्रम से ४ कि.मी. पहले ही रात्रि विश्राम को रुके फिर सुबह की प्रथम बेला में नित्य कर्म के लिये गए। इसके बाद ज्योतिर्लिंगों की पूजा करने पहुँचे तो वे जुडवां ज्योतिर्लिंग वहीं पृथ्वी की जड़ में समा गये। पिता-पुत्र ने इन शिवलिंगों को उठाने का अथक प्रयास किया किन्तु वे हिले तक नहीं। आकाशवाणी हुई कि अब यह स्थान कैलाश धाम के रूप में जाना जाएगा। विद्वानों का कथन है कि इस कैलाश मन्दिरकी स्थापना त्रेतायुग में हुई है, जीर्णोद्धार अनेक बार राजाओं के द्वारा हुआ है।

पृथ्वीनाथ मन्दिर

पृथ्वीनाथ मन्दिर भगवान् शिव के भक्तों के लिए आस्था का केंद्र है। मन्दिर का इतिहास पृथ्वीराज चौहान से जुड़ा है। किसी समय यहाँ सघन वन था। एक बार महाराजा पृथ्वीराज चौहान यहाँ से जा रहे थे उन्होंने अपना घोड़ा बांध दिया, थोड़ी देर बाद ही वह खुल गया फिर तो बहुत प्रयास करने पर भी घोड़ा उस स्थान पर नहीं बंधा। इस पर महाराज पृथ्वीराज ने भूमि खनन कराया, खोज कराते समय उन्हें यहाँ एक शिवलिंग प्राप्त हुआ। जिसे उन्होंने उखाड़ने का प्रयास किया किन्तु बहुत खुदाई के बाद भी उसका छोर नहीं मिला। इसके बाद उन्होंने उसकी पूजा करना आरम्भ कर दिया। कुछ समय बाद मन्दिर का निर्माण हुआ अतः मन्दिर का नाम पृथ्वीनाथ हुआ। कुछ लोगों की मान्यता है कि महाराज पृथ्वीराज चौहान ने कन्नौज से अजमेर लौटते समय यहाँ एक रात्रि विश्राम किया था।

श्री पृथ्वीनाथ महादेव मंदिर – आगरा

राजेश्वर महादेव

शमशाबाद रोड, राजपुर चुंगी पर ८५० वर्ष प्राचीन श्री राजेश्वर महादेव मन्दिर दर्शनीय है। इसकी विशेषता यह है कि यहाँ जो स्वयम्भू शिवलिंग स्थित है, दिन में तीन बार उनका रंग परिवर्तन होता है। प्रातः मंगला आरती के समय श्वेत रंग, दोपहर आरती के समय नीला रंग और संध्या आरती के समय गुलाबी रंग के शिवलिंग का दर्शन होता है। सुना जाता है कि राजा खेड़ा के एक साहूकार इस शिवलिंग को नर्मदा नदी (म.प्र.) से लाये थे।

शिवलिंग की स्थापना राजा खेड़ा में होनी थी। रात में विश्राम के समय वे राजपुर चुंगी क्षेत्र में रुके। रात्रि में स्पनादेश हुआ कि शिवलिंग को यहीं स्थापित करें। साहूकार ने स्वप्न पर विश्वास नहीं किया। जैसे ही शिवलिंग को लेकर चले, बहुत प्रयास करने पर भी बैल गाड़ी नहीं खिंची, अचानक शिवलिंग बैलगाड़ी से गिरकर भूमि पर स्थापित हो गया। बहुत प्रयास के बाद भी शिवलिंग यहाँ से नहीं उठा। तब यहाँ पाँच गाँवों के लोगों की पंचायत हुई और राजराजेश्वर मन्दिर का निर्माण हुआ।

इसके अतिरिक्त पिनेश्वर महादेव नूरी गेट, घटिया छिली ईंट का नील कंठ महादेव मन्दिर है व जयपुर हाउस कालोनी के निकट चिन्ताहरण महादेव का मन्दिर भी प्राचीन है। माना जाता है कि जिस समय शिवाजी आगरा में औरंगजेब को चकमा देकर कैद से भागे थे तो उन्होंने इस मन्दिरमें कुछ समय आश्रय लिया था। बेलनगंज चौराहे पर प्राचीन पंचमुखी महादेव मन्दिर है।

बिल्वकेश्वर महादेव

आगरा के प्राचीन मन्दिरों में से एक है बिल्वकेश्वर महादेव मन्दिर। वाटर वर्क्स से बिल्वकेश्वर महादेव मन्दिर के लिए मार्ग जाता है। मन्दिर के द्वार के सामने से ही यमुना बहती है। ४०० वर्ष पूर्व इस स्थान पर मिट्टी के टीले व

बिल्वकेश्वर महादेव – आगरा

बिल्व के वृक्षों का सघन वन था। इसी कारण यहाँ विराजित स्वयंभू शिवलिंग को बिल्वकेश्वर व कालान्तर में बल्केश्वर के नाम से पुकारा जाने लगा।

भगवान् शिव की मूर्ति के चारों कोनों पर चार स्तम्भ बने हुए हैं। यहाँ श्रावण मास के द्वितीय सोमवार को बहुत बड़ा मेला लगता है। मान्यता है कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार राजा भोज ने एवं १८ वीं शताब्दी में मराठों ने कराया था। सुना जाता है कि स्वामी विवेकानन्द भी बल्केश्वर महादेव के दर्शन हेतु यहाँ आये थे। मन्दिर परिसर में ही एक उद्यान है जिसमें सरकटा नादिया की मूर्ति है। जिस समय औरंगजेब के द्वारा देव प्रतिमाओं के भंजन का दुष्कर्म हो रहा था, यह मूर्ति उसी समय की है। अतः इसे लोग सरकटा नादिया के नाम से पुकारते हैं।

हूण, कुषाण एवं मुगलों के आक्रमण से ध्वस्त मन्दिर का जीर्णोद्धार १७८० ई. में मराठा शासक महाद जी सिंधिया ने कराया था। उसके बाद समय-समय पर मन्दिर में परिवर्तन होते रहे। मन्दिर का वर्तमान रूप अधिक पुराना नहीं है।

सन् १८६९ ई. में यमुना किनारे किये गये उत्खनन में दो हजार चाँदी के सिक्के प्राप्त हुए थे। जिन पर 'गुहिला श्री' शब्द उत्कीर्ण था। गोहादिल्य ने ही गुजरात में गहलौत वंश की नींव डाली थी। गोहादिल्य के एक पुत्र का नाम भोज था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि राजा भोज ने बल्केश्वर में इस मन्दिर की स्थापना की थी। आगरा स्थित कुछ खण्डहरों को लोग आज भी राजा भोज का निर्माण कहते हैं। इसके विपरीत कुछ इतिहाकारों के मतानुसार इस मन्दिर की स्थापना का श्रेय राजा मुंज के सामन्त वीरभद्र को है।

मनः कामेश्वर महादेव –

सम्प्रति आगरा के पुरातत्त्व विभाग के अधीक्षक श्री वकाउल हसन सिद्दीकी साहब के अनुसार स्वयं प्रकटित श्री मनः कामेश्वरनाथ की पिण्डी पाँच हजार वर्ष प्राचीन तो है ही, फिर आगरा नगर का सम्बन्ध तो त्रेतायुग से रहा है। ये सब आदि-अनादि स्थल हैं जिनकी प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं है।

मनः कामेश्वरनाथ के इस स्वयंभू लिंग के ठीक पृष्ठभाग में भगवान् अर्द्धनारीश्वर का श्रीविग्रह सहस्र दल कमल पर प्रतिष्ठित है, जो शक्ति व शक्तिमान की अभिन्नता का बोध कराता है। मन्दिर का यह भव्य-दिव्य रूप परम श्रद्धेय महन्त श्रीउद्धवपुरीजी महाराज की चरम साधना व अथक प्रयास का ही फल है।

मनः कामेश्वर गड्ढे में क्यों?

स्थान की संकुचितता को देखते हुए परम सिद्ध सन्त श्री गणेशपुरी जी महाराज ने एक विशाल उच्च शिखर वाले मन्दिर का निर्माण कराया। जब श्रीलिंग को नये मन्दिर में स्थापित करने के विचार से उठाया गया तो नहीं उठा, यही नहीं, खनन से लिंग और नीचे धँसने लगा। सात दिन तक खुदाई होती रही पर शिवलिंग का कोई छोर नहीं मिला। गड्ढे से सर्प, बिच्छू आदि अनेक विषैले जीव निकलने लगे। खनन कार्य रोकना पड़ा। उसी रात्रि की ब्रह्मबेला में बाबा श्रीगणेशपुरी जी को स्वप्नादेश हुआ कि आप मुझे यहाँ से न हटायें एवं इस गड्ढे को ऐसे ही छोड़ दें। प्रभु के आदेशानुसार खनन कार्य को वहीं बंद करा दिया गया। तब से भक्तगण मनः कामेश्वर जी को गड्ढे वाले बाबा कहकर पुकारने लगे।

श्री मनकामेश्वर महादेव मंदिर – आगरा

नये मन्दिर में मनः कामेश्वरजी ने नवीन शिवलिंग स्थापना की आज्ञा दी एवं कहा कि इनका नाम रामेश्वर होगा।

रावली महादेव

शिवालयों की श्रृंखला में शहर का रावली महादेव मन्दिर बड़ा चमत्कारिक है। एक समय रावली महादेव ने ऐसी लीला की कि अंग्रेज इंजीनियरों को रेलवे लाइन को मोड़ना पड़ा, तब कहीं जाकर आगरा फोर्ट और ईदगाह रेलवे लाइन शुरू हो सकी।

सन १८९२ में जब अंग्रेजों ने आगरा फोर्ट से ईदगाह तक पटरी बिछाई तो रावली महादेव मन्दिर मध्य में आ रहा था, 'तवारीख ए आगरा' के लेखक राज किशोर राजे के

कथनानुसार अंग्रेज इस मन्दिरको हटाने की योजना बनाने लगे, जिससे पटरी बिछाने के काम में बाधाएं आने लगीं। भारतीय श्रमिकों ने अंग्रेजों को बताया कि यह अति प्राचीन सिद्ध स्थल है इस मन्दिरको हटाने का विचार छोड़ दिया जाय तो बाधाएं नहीं आयेंगी ऐसा ही हुआ, मन्दिर हटाने का निर्णय छोड़ दिया गया और इसके बाद ही रेलवे लाइन का काम निर्विघ्न पूर्ण हो सका।

मुगल बादशाह अकबर ने आमेर के राजा मानसिंह को युद्ध के लिए अफगानिस्तान भेजा था वहाँ अटक की पहाड़ी पर सन १५५७ में यह शिवलिंग प्राप्त हुआ था जिसे लेकर वे आगरा आ गए। जहां इन दिनों रावली महादेव मन्दिर है वहाँ पर रावल राजपूतों का निवास था राजा मानसिंह ने वहीं शिवलिंग को स्थापित कर दिया अतः इस मन्दिर का नाम रावली महादेव मन्दिर हुआ। मन्दिर के पृष्ठ भाग की दीवारों में आज भी ककइयां ईंट दिखाई देती हैं। वहीं पत्थर का पटाव और उसकी बनावट से मन्दिर की प्राचीनता झलकती हैं।

अन्य प्राचीन मन्दिर –

सीताराम मन्दिर (पीपल मण्डी), दुर्गा माता मन्दिर, पुरानी आगरा-मथुरा रोड पर हलवाई की बगीची में स्थित है, गोपेश्वरनाथ मन्दिर (नूरी गेट) जो महल वालों के मन्दिर के नाम से भी प्रसिद्ध है।

लंगड़े की चौकी में श्रीहनुमानजी विराजमान हैं, गुड़ की मण्डी के हनुमान जी भी बहुत प्रख्यात हैं। छीपी टोला में मुगलकाल का प्राचीन कृष्ण मन्दिर है, श्री प्रेमनिधिजी के सेव्य ठाकुर श्रीश्यामजी यहाँ विराजमान हैं। कहा जाता है कि औरंगजेब भी इस मन्दिर को नहीं तोड़ सका था। इसके सदर बाजार के निकट तिरुपति बालाजी का मन्दिर है।

ताजगंज में श्मशान घाट के पास यमुना किनारे काल भैरव, शीतला गली व बजीरपुरा के मन्दिर भी प्राचीन हैं। कालीबाड़ी पर काली देवी का मन्दिर व माईथान के शंकरजी भी बहुत प्राचीन हैं।

शाहगंज में अकबर कालीन योगी सोमनाथ का मन्दिर व राजा मण्डी में दरियानाथ मन्दिर भी प्राचीन है। गोकुलपुरा के सिद्धिविनायक मन्दिर, सोमेश्वरनाथ मन्दिर में गदर के क्रान्तिकारी तात्या टोपे ने अज्ञातवास का प्रवास किया था।

श्रृंगी ऋषि का आश्रम –

कीठम झील के पास सूर कुटी से थोड़ी दूर पर श्रृंगी ऋषि का आश्रम है। जो इस क्षेत्र की निधि है। क्षेत्रीय ग्रामीणों का कथन है कि भूमि को खोदते समय आज भी यहाँ से प्राचीन मूर्तियाँ, सिक्के आदि निकलते हैं।

रुनकता से आगरा की दूरी १७ कि.मी. है।

बटेश्वर : ब्रज की काशी

सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग कितनी ही चतुर्युगी व्यतीत हो गयीं इस सनातन भूमि की वन्दना करते हुए। सतयुग से कलिकाल पर्यन्त 'ब्रज की काशी' के रूप में देखा जाने वाला यह **महातीर्थ बटेश्वर**, अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाये हुए है। विदेशी आक्रान्ताओं के प्रहार सहते-सहते, विकास व विनाश की पगडंडियों से अनवरत अपने अस्तित्त्व की लड़ाई लड़ते हुए, आज भी पुनर्निर्माण की ओर अभिमुख है। शैव्य धर्मावलम्बियों का साधना-स्थल, ब्रह्मर्षियों की तपोभूमि, २२ वें तीर्थंकर भगवान् नैमिनाथ की जन्मभूमि होने से जैन-धर्मावलम्बियों की तीर्थभूमि, बौद्ध-धर्मावलम्बियों का केन्द्र, शूरों व तपस्वियों की शरण-स्थली और योगेश्वर श्रीकृष्ण की पैतृक-भूमि होने से निश्चित ही यह जगत्-वन्दनीय है। तभी तो चहुँ ओर से भावुक, श्रद्धालु जन आज भी **'ब्रज की काशी – बटेश्वर'** में दर्शन हेतु आते रहते हैं।

बटेश्वर महादेव

शौरिपुर जैन मंदिर - बटेश्वर

श्रीकृष्ण की पैतृक-जन्मभूमि होना ही इस मही का चुम्बकीय आकर्षण है।

काल-चक्र की गति अबाध है, जिसे आज तक कोई रोक नहीं सका। नव-निर्माण की प्रेरणा देता हुआ अनवरत बढ़ रहा है, कहीं विनाश दिखता है तो कहीं सर्वनाश। अतीत

के चिन्ह खण्डहरों के रूप में खड़े रह जाते हैं। भग्नावशेष भू-गर्भ में समा जाते हैं जिन्हें कुछ समय बाद पुरातत्त्व विभाग अपनी पैनी छैनी से वैज्ञानिक-विश्लेषण कर उसे पुरातन धरोहर के रूप में पुनः वर्तमान के समक्ष प्रकाशित करता है, ये अवशिष्ट चिन्ह ही प्राचीन काल की संस्कृति, सभ्यता, शिल्प-शैली एवं जीवन-शैली को कहते हैं। पुरातन ब्रज का यह भू-भाग 'भद्र-भदावर' जो शूरसेनपुर, शौरीपुर अथवा बटेश्वर के नाम से जाना जाता है। यह गौरवशाली भूखण्ड अपने गर्भ में एक इतिहास संजोये है।

अति प्राचीन वैदिक, पौराणिक एवं अर्वाचीन ऐतिहासिक, पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्रामाणिक यहाँ की मिट्टी ने 'सतयुग – कलियुग' तक की लम्बी यात्रा तय की है।

इस मनोरम वन-स्थली की अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति है। उत्तर दिशि में नीली कल्लोलिनी कालिन्दी, दक्षिण में दर्पणवत् दप्-दप् करती चर्मवती (चम्बल), पश्चिम में उटंगन एवं पूर्व दिशा में पंचनद – क्वारी ('क्वारी' नदी को 'पार्वती' भी कहते हैं), चम्बल, सि्रज, पयुज व यमुना, इन पाँच नदियों का अद्भुत संगम। चहुँ ओर से ब्रजक्षेत्र का सीमांकन करती ये नदियाँ और उनकी तटवर्तिनी सघन अरण्य-स्थली जो ऋषि-मुनि, मनीषियों की साधन-भूमि रही है।

भौगोलिक परिचय :-

महाराज शूरसेन के नाम पर शूरसेन देश कहलाया एवं शूरसेन पुत्र शौरी (वासुदेव जी) का यहाँ जन्म होने से शौरीपुर कहलाया।

आगरा शहर से ७० कि.मी. उत्तर-पूर्व में स्थित यह स्थान आज भी अपनी प्राचीनता, धार्मिकता को लिये सहस्रों श्रृद्धालुओं की आस्था दृढ़ कर रहा है।

ब्रज की काशी – बटेश्वर

आदिकाव्य रामायण के प्रणयनकर्ता महर्षि वाल्मीकि जी का प्रवास रहा यमुना तटवर्ती ग्राम भाऊपुर इटावा में। महर्षि दुर्वासा, महासती अनुसुइया व परम वैष्णवी शबरी जी का प्रवास बटेश्वर में रहा, यही है वह स्थल जहाँ कुन्ती को दुर्वासा जी द्वारा सूर्यमन्त्र प्राप्त हुआ।

गो. तुलसीदास जी ग्राम पारना (आगरा) में, महर्षि विभांडक भिण्ड में रहे। अंगिरा, पुलह व नारद जी ने अग्रवन (आगरा) में तप किया।

यहाँ की भाषा भी शौरसैनी थी।

यहाँ के ब्रजवासियों का कथन है कि श्रीकृष्ण की पैतृक भूमि होने से इस स्थान का महत्त्व "मथुरा" से कम न होकर श्रीकृष्ण की जन्मभूमि के रूप में ही है।

शौरीपुर नाम होने का एक दूसरा कारण, यह स्थान शौरिश्रवा नामक ऋषि की तपोभूमि भी है, ब्रजवासियों के कथनानुसार – शौरिश्रवा ऋषि चतुर्वेदियों के पूर्वज हैं।

आज भी भदावर क्षेत्र में चतुर्वेदियों के अनेक स्थान हैं।

(१) हथकांत
(२) कचौरा घाट
(३) बाह
(४) होलीपुरा
(५) पुराताल गाँव
(६) चन्द्रपुर कभतरी
(७) कछपुरा
(८) नहरौली
(९) बिजकौली
(१०) मई
(११) बटेश्वर
(१२) नौगवां
(१३) पारना
(१४) गढ़वार
(१५) रीछापुरा
(१६) अटेर
(१७) तस्सोखर (म.प्र.)

चन्द्रपुर – बाह तहसील में चन्द्रपुर चतुर्वेदियों का प्राचीन स्थल है। इसका वर्णन शिवपुराण एवं पृथ्वीराज रासों में भी प्राप्त होता है। पाठक चतुर्वेदियों का मूल स्थल बटेश्वर एवं चन्द्रपुर ही है। अलाउद्दीन खिलजी के समय में समस्त चतुर्वेदी मथुरा से पलायन करके यहाँ बस गये। "रासो" के अनुसार पृथ्वीराज ने अपने साले एवं सिपहसालार का चन्द्रपुर में वध किया, जिसकी समाधि "कैसर बाबा" के नाम से प्रसिद्ध है। क्षेत्रीय जन आज भी इसकी पूजा करते हैं।

यहाँ का चतुर्वेदी समाज अनन्य नृपति स्वामी श्री हरिदास जी महाराज (टटिया स्थान) को अपने गुरू के रूप में देखता है।

श्री स्वामी की परम्परा के आचार्य, आचार्य श्री ललित किशोरी देव जी भदावर क्षेत्र के हथकांत ग्राम के ही चतुर्वेदी थे।

बटेश्वर का एक पौराणिक परिचय –

महाभारते –

ब्राह्मम् पांचालाः कौरवेयास्तु धर्मम् ।
सत्त्यम् मत्त्स्या शूर सैनाश्च यज्ञम् ॥

(महाभारत, कर्ण पर्व - ३४/४०)

इसके अतिरिक्त महाभारत में और भी अनेक स्थानों पर बटेश्वर का उल्लेख प्राप्त होता है।

नारायण से ब्रह्मा – अत्रि – सोम – बुध, पुरुरवा – आयु – नहुष – ययाति – यदु – देवमीढ नामक यादव उत्पन्न हुए।

यादवस्तस्य तु सुतः शूरस्त्रैलोक्यसम्मतः ।
शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ॥

(महाभारत, द्रोणपर्वणि, जयद्रथवध पर्व –१४४/७)

देवमीढ के पुत्र हुए त्रैलोक्य सम्मानित शूर, शूर के पुत्र शौरि (वसुदेव) हुए, जिनसे शौरीपुर नगरी बसी।

शूरसेनवासियों ने देखी पूतनाहत लीला –

प्रत्यक्षं सूरसेनानां दृश्यते महदद्भुतम् ।
पूतना चापि निहिता महाकाया महस्तनी ॥
पश्यतां सर्वदेवानां वासुदेवेन भारत ।

(महाभारत, सभापर्व, अर्घाभिहरण पर्व, अध्याय-३८)

शूरसेनदेशवासियों ने इस अद्भुत घटना का साक्षात्कार किया। देवों के देखते-देखते उस महस्तनी पूतना का प्राणापहरण किया श्रीकृष्ण ने।

वानरों द्वारा यहाँ तक सीतान्वेषण हुआ।

तत्र म्लेच्छान्, पुलिदांश्च शूरसेनास्तथैव च ।
प्रस्थलान् भरतांश्चैव कुरुंश्च सह मद्रकैः ॥

(वा.रा.किष्किन्धाकाण्ड ४३/११)

वानरराज सुग्रीव ने शतबलि आदि वानरों को आदेश किया – “उत्तर में म्लेच्छ, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत (इन्द्रप्रस्थ एवं हस्तिनापुर का निकटवर्ती प्रान्त), कुरु

(दक्षिण कुरु - कुरुक्षेत्र का समीपवर्ती क्षेत्र), मद्रादि में जाकर सम्यक्तया माता जानकी को ढूँढ़ो।"

शत्रुघ्न कुमार द्वारा लवणासुर वध हुआ पश्चात् देवराज ने शत्रुघ्न जी को वर माँगने के लिए कहा, इस पर वे बोले –

इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता ।
निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेऽस्तु वरः परः ॥

(वा.रा.उत्तरकाण्ड-७०/५)

यह देवनिर्मित रमणीय मधुपुरी शीघ्र ही एक मनोहर राजधानी के रूप में बस जाय।

देवराज बोले –

भविष्यति पुरी रम्या शूरसेना न संशयः ॥

(वा.रा.उत्तरकाण्ड-७०/६)

हे कुमार ! शीघ्र ही यह रमणीय पुरी शूरों की सेना से सम्पन्न हो जाएगी।

श्रावणमास से पुरी को बसाने का कार्य आरम्भ हुआ।

सा पुरा दिव्यसंकाशा वर्षे द्वादशमे शुभे ।
निविष्टः शूरसेनानां विषयश्चाकुतोभयः ॥

(वा.रा.उत्तरकाण्ड-७०/९)

एवं द्वादशवर्षों में शूरसेन जनपद पूर्णरूपेण बस गया। प्रजाजन निर्भय निवास करने लगे।

'अरोगवीरपुरुषा शत्रुघ्नभुजपालिता'

(वा.रा.उत्तरकाण्ड-७०/१०)

परम वीर शत्रुघ्न जी के बाहुबल से सुरक्षित इस मधुपुरी में सभी नीरोग एवं शूर पुरुष थे।

'अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता'

(वा.रा.उत्तरकाण्ड-७०/११)

यह पुरी यमुना जी के पावन पुलिन पर अर्द्धचन्द्राकार रूप में बसी हुई थी।

आदिकाव्य के इस वृत्तान्त से यह पुष्ट व स्पष्ट है कि मधुपुरी के अन्तर्गत ही है शूरसेन देश।

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥

(मनु स्मृति अध्याय-२/१९)

सदाचारः स वै प्रोक्तो देवदेवेन शंभुना ।
कुरुक्षेत्राश्च मत्स्याश्च पाञ्चाला शूरसेनजाः ॥
एते देशाः पुण्यदेशाः सर्वे चान्ये च निन्दिताः ।
देशेष्वेतेषु निवसेद्ब्राह्मणैर्धर्मकाङ्क्षिभिः ॥

(श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे १७/५५, ५६)

स्वयं भगवान् ने राजा इन्द्रद्युम्न को कहा – तीर्थराज बटेश्वर के दर्शन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

कपाल लोचन, नीलकंठ, ईशान, विलवेश्वर, क्षेत्रपाल, यमेश्वर, मार्कण्डेश्वर व बटेश्वर ये ८ भगवान् शिव के लिंग हैं। इनके दर्शन-अर्चन से शीघ्र पाप नष्ट होते हैं।

तीर्थंराज गृहं पुण्यं शालग्राम मघान्तकम् ।
बटेशं वामन तीर्थं कालिकासंगमुत्तमम् ॥

(अग्निपुराण-१०९/२०)

त्रायाणामि लोकानां पुण्या होषा महानदी ।
वटेश्वरे महापुण्ये गंगा द्वारे तपोवने ॥

(मत्स्य पुराण-१८६/६८)

युधिष्ठिर जी द्वारा महर्षि मार्कण्डेय जी से नर्मदा माहात्म्य पूछे जाने पर –

'नर्मदा पुण्यमयी महानदी है। महापुण्यप्रद बटेश्वर, तपोवन एवं गंगाद्वार ये द्विजों के व्रत-अनुष्ठान के स्थान हैं।

ऋणतीर्थं ततो गच्छेत्, ऋणेभ्यो मच्युते ध्रुवम् ।
बटेश्वर ततो द्रष्टा, पर्याप्त जन्मनः फलम् ॥

(मत्स्यपुराण-१९१/२७)

ऋणतीर्थ में जाय पश्चात् बटेश्वर दर्शन करके मानव जन्म सार्थक कर लेता है।

बटेश्वरं ततो गच्छेत् सर्वतीर्थं मनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गो सहस्र फलं लभेत् ॥

(मत्स्यपुराण-१९१/५४)

अनन्तर बटेश्वर महातीर्थ की यात्रा करें, यहाँ स्नान से सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है।

यहाँ पूर्व से पश्चिमी यमुना का अर्द्धचन्द्राकार प्रवाह देखते ही बनता है। तट पर अर्द्धवृत्तीय क्रम से स्थित एक सौ मन्दिरों की शोभा अन्यत्र नहीं है।

रेणुका सूकरः काशी कांची काली कालौ वटेश्वरौ ।
कालिञ्जरो महाकालः ऊषला नव मुक्तिदा ॥

(बौद्ध ग्रन्थ-अवदान कल्पलता)

साथ ही बटेश्वर नव ऊखल क्षेत्रों में से एक है, जहाँ प्रलय काल में पृथ्वी से जलप्लावन होता है व पृथ्वी जल मग्न होती है।

शिवपुराण, जिसमें द्वादश शिवलिंग महत्त्व प्रतिपादित हुआ है, शिवतत्त्व के विवेचन में एक स्थान पर –

"तथा वटेश्वरः ख्यातः सर्वकामफलप्रदः"

(शिवपुराण, कोटि रूद्र संहिता-४/२/१९)

बटेश्वर नाथ सभी कामनाओं को सिद्धि करने वाले हैं।

यत्र देवो महादेवो देव्या सह महेश्वरः।
आस्ते वटेश्वरो नित्यं तत् तीर्थं तत् तपोवनम् ॥

(कूर्म पुराण, पूर्व भाग -३९/१०)

श्री पार्वती जी के साथ भगवान् शिव जहाँ निवास करते हैं, यही बटेश्वर है जो कि नित्यतीर्थ है, तपोवन है।

"सप्ततीर्थौं कालिंजर वटेश्वरौ"

कालिंजर व बटेश्वर की सप्ततीर्थों में गणना है। महाभारत काल में बांदा जिले में कालिंजर ग्राम शिशुपाल की राजधानी के रूप में था।

तुङ्गं प्रभासं गुरुचक्र पुष्करं, गया विमुक्ता वदरी वटेश्वरः।
केदार पम्पासर नैमिषारणः, कुर्वन्तु नः पूर्ण मनोरथं सदा ॥

बटेश्वर तीर्थ की गणना प्रभास, पुष्कर, गया, बद्री, केदार, पम्पासर, नैमिषारण्यादि परम पावन तीर्थों के साथ की जाती है।

'डा. कृष्ण अवतार वाजपेयी' द्वारा लिखित "बटेश्वर धाम" नामक पुस्तक से संग्रहीत कतिपय बातें –

ऋषियों की जिज्ञासा पर श्री सूत जी महाराज द्वारा बटेश्वर माहात्म्य मुखरित हुआ –

सर्वप्रथम महर्षि अत्रि की जिज्ञासा पर भगवान् शिव ने यह माहात्म्य कहा था।

सृष्टि के प्रमुख ९ मोक्षस्थानों में एक है – **'श्री बटेश्वर'** जो कि मथुरा मण्डल में स्थित है। बटेश्वरनाथ यहाँ के अधिष्ठातृ हैं। २ योजन अर्थात् २५ कि.मी. में विस्तृत यह क्षेत्र यमुना की वक्र धारा से घिरा हुआ है। यहाँ निवास करने वाले भाग्यवान् नर रुद्र स्वरुप ही हैं।

एक जनश्रुति के अनुसार मनु जी के पश्चात् उनके पुत्रों में राज्य का विभाजन निम्न प्रकार हुआ।

महाराज इक्ष्वाकु को अयोध्या का राज्य।

दिष्ट को विशाला का राज्य, जो सम्प्रति मुजफ्फरनगर के रूप में है।

करूष को दक्षिण का राज्य।

नाभाग को यमुना का दक्षिणी भाग इस प्रकार यह प्रदेश महाराज नाभाग के अधिकार में रहा।

कालान्तर में चन्द्रवंशीय राजा ययाति ने यहाँ का शासन किया। ययाति पुत्र यदु को चर्मण्वती (चम्बल) वेतावती वेतवा शूक्तिमती की घाटियों का राज्य प्राप्त हुआ।

इन्हीं महाराज यदु के वंशज यादव कहलाये।

(प्राचीन भारत का इतिहास से साभार संग्रहीत)

जैन साहित्य के अनुसार – योगेश्वर श्रीकृष्ण के पितामह यदुवंशीय महाराज शूरसेन ने शौर्यपुर बसाया।

(श्री लंबे चू दिगम्बर जैन समाज का इतिहास से साभार संग्रहीत)

विश्व के प्राचीनतम गणतन्त्र –

वृष्णि गणराज्य –

१. भदावर क्षेत्र में वृष्णिगण राज्य था, जिसके प्रधान श्री वसुदेव जी थे। योगेश्वर श्रीकृष्णशूर लोगों की वृष्णि शाखा में उत्पन्न हुए थे।

२. भोज जनपद – मथुरा शासक कंस भोजवंशी था।

३. अंधक गणराज्य – भरतपुर के दक्षिण में अंधनागों का कबीला था, जिसका शासक अघासुर था। श्रीकृष्णने अघासुर को मारकर उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया।

४. कुकुर गणराज्य – वृष्णि राज्य के दक्षिण में महाराज कुन्तिभोज (मुरैना म.प्र.) का कुकुर राज्य था, यह यादवों का कबीला था। इतिहासकार इन्हें गुर्जरों का पूर्वज मानते हैं।

(लेखक श्री चिन्तामणि शुक्ल की आगरा जनपद का राजनैतिक इतिहास से साभार संग्रहीत)

भोज, वृष्णि, अंधक, कुकुर – इन सबने राजतन्त्र त्यागकर गणतन्त्र स्वीकार किया।

(लेखक दीनानाथ शर्मा की प्राचीन भारत से साभार संग्रहीत)

५. कालीदह जनपद – यह मथुरा से दक्षिण में स्थित था। यहाँ नागराज कालिय का राज्य था। श्रीकृष्णने कालीय दमन कर इस राज्य को अपने अधीन किया।

६. वृष जनपद – यहाँ श्री राधारानी के पिता महाराज वृषभानु जी का राज्य था। "बरसाना" मुख्य केन्द्र था।

कुकुर, कालीय – ये सब कंस के समर्थक थे। श्रीकृष्णने इन सबको समाप्त कर अंधक वृष्णि गणराज्य की स्थापना की, जो विश्व का प्राचीन गणतन्त्र था।

यादवस्तस्य तु सुतः शूर स्त्रैलोकस्य सम्भवः ।
शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ॥

(महाभारत जयद्रथ वध पर्व १४४/७)

देवमीढ़ नामक यादव के पुत्र शूर हुए जो सम्पूर्ण त्रिलोकी में प्रख्यात थे। सूर के पुत्र नरश्रेष्ठ शौरी हुए, जो "वसुदेव" नाम से प्रसिद्ध हुए।

शूरसेन पुरं त्यक्त्वा सर्वे यादवनन्दनः ।
द्वारका भगवान् कृष्ण प्रत्यक्ष हत केशवः ॥

(महाभारत, सभापर्व, अर्धाभिहरण-अध्याय-३८, पृष्ठ-८०४)

भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा – तदनन्तर समस्त यदुवंशियों को आनन्दित करने वाले भगवान् कृष्ण शूरसेनपुरी छोड़कर द्वारिका चले गये।

प्रत्यक्षं शूरसेनानां दृश्यते महद्‌द्भुतम् ।
पूतना चापि निहिता महाकाया महस्तनी ॥
पश्यन्ता सर्वदेवानां वासुदेवं भारत ॥

(महाभारत, सभापर्व, अर्धाभिहरण-अध्याय-३८, पृष्ठ-७९८)

हे भरतनन्दन! शूरसेन देश के निवासियों को यह घटना अत्यन्त अद्भुत दिखाई दी तथा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने देवताओं के देखते-देखते विशालकाय व विशाल स्तनों वाली पूतना को मार डाला।

बौद्धकालीन बटेश्वर

५८० ई. पू. शूरसेन जनपद में अवन्तीपुत्र का शासन था, जो महात्मा बुद्ध के समकालीन थे, इनके द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ।

(लेखक – विमल चन्द्र पाण्डेय की सेन्ट्रल बुक डिपो से साभार संग्रहीत)

नन्दवंश से हर्षकालीन बटेश्वर –

४१३ ई.पू. से ७४० ई.पू. तक नन्दवंश के प्रतापी राजा महापद्मानन्द ने इस प्रदेश को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था।

(नन्दमौर्य युगीन भारत, लेखक – के.ए. नीलकंठ शास्त्री – मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली से साभार संग्रहीत)

राजपूत कालीन बटेश्वर

६४८ ई.पू. से १२ वीं शताब्दी तक के काल में इस क्षेत्र की पहिचान "भदावर" के नाम से थी। चंदेल राजा घंग (९५० ई.पू. से १००२ ई.) ने इस प्रदेश को अपने आधिपत्य में ले लिया था।

(ईपीग्राफिका इण्डिका भाग से साभार संग्रहीत)

अनन्तर राजा परमार्दिदेव का बटेश्वर पर शासन रहा, जिन्होंने अपने भव्य राजप्रासाद में एक विष्णुमन्दिर एवं एक शिव मन्दिर का निर्माण कराया। सन १८७१-७२ में मेजर जनरल कनिंघम को बटेश्वर की खुदाई में एक विशाल शिलालेख प्राप्त हुआ, जिस पर महोवा नागरी में ३४ श्लोक लिखे हैं, जिनमें राजा के द्वारा महल व शिव, कृष्ण मन्दिर बनाने की बात है।

ऐसा भी लिखा है कि स्फटिक मणि से निर्मित वह मन्दिर भगवान् शिव को इतना प्रिय लगा कि उन्होंने अपना आदि स्थान कैलाश भी छोड़ दिया।

यह शिलालेख विक्रम सं. १२१२ आश्विन मास शुक्ल पक्ष रविवार का है।

उपरोक्त शिलालेख लखनऊ अजायब घर में अद्यावधि सुरक्षित है।

(आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिका)

(रिपोर्ट ऑफ ए टूर इन बुन्देलखण्ड एण्ड मालवा एंड इन सेन्ट्रल प्रोविन्सेस १८७/७२, ७३, ७४ द्वारा मेजर जनरल ए. कनिंघम सी.एस.आई.जी. सिंह इन्डोलोजिकल बुक हाउस)

पृथ्वीराज चौहान ने चंदेलों को पराजित कर इस क्षेत्र पर शासन किया।

भदावर पर मुस्लिम आक्रमण

पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु के बाद मुस्लिम आक्रमण आरम्भ हुए।

दूसरे वर्ष ही मुहम्मद गोरी ने चन्द्रवार शासक को पराजित कर दिया। १२४६ ई. में नसुरुद्दीन महमूद (१२४६-१२६६) ने चन्द्रवार के शासक, रावत शाल चौहान को समाप्त कर दिया। चौहान वंशीय आह्व मल्लदेव ने बटेश्वर के समीप यमुना के उस पार उत्तर दिशा में "खड़ी" को बसाया। वि.स. १३१३ में यती चौहान यहाँ के शासक थे।

गुलाम वंश व भदावर

इस समय यहाँ मेवों का शासन था और यह क्षेत्र डाकुओं का गढ़ था।

(भारत का एतिहास)

सुल्तान इल्तुतमिश ने इस क्षेत्र में इक्ता (इक्ता वह अधिशासित क्षेत्र है, जिसमें केन्द्रीय सत्ता कर वसूलती थी।) स्थापित किये।

प्रथम – रवड़ी

द्वितीय – हतकांत

इससे स्पष्ट होता है कि भदौरिया शासक स्वतन्त्र न होकर दिल्ली सुल्तानों के आधीन थे। १३१२ ई. में अलाउद्दीन खिलजी बटेश्वर आया और बहुत विध्वंस किया, हिन्दू मन्दिरों का भंजन कर रवड़ी में मस्जिद स्थापित की।

बटेश्वरस्थ कुछ तीर्थ

कृष्ण तीर्थ

यह नितान्त सत्य है कि यह श्रीकृष्ण का पैतृक स्थान है। एक समय बाबा नन्द, अग्रज दाऊ जी व गोप-ग्वालों के सहित स्वयं श्रीकृष्ण यहाँ आये। यमुना में स्नान कर तर्पण किया। महाराज शूरसेन ने सबका सत्कार किया। तभी चित्त में गर्गाचार्य जी की बातों का स्मरण हुआ अतः करबद्ध प्रार्थना की – "हे जगदीश्वर! आज आपके दर्शनानन्द ने मुझे कृतार्थ कर दिया, आपके चरणों में मेरी याचना है कि आप सदैव बटेश्वर में रहें।"

श्रीकृष्ण बोले – "मथुरा-सदृश इस पवित्र तीर्थ में अवश्य ही मेरा निवास होगा।"

५ दिन तक सभी गोकुलवासियों ने राजा का आतिथ्य स्वीकार किया। यही स्थान कृष्णतीर्थ नाम से ख्यात हुआ।

धर्म तीर्थ

माण्डव्य ऋषि से शप्त धर्मराज ने यहाँ ४८ वर्ष पंचाक्षरी (नमः शिवाय) मन्त्र का निरन्तर जप किया एवं शापमुक्त हुए।

मोक्ष तीर्थ

विराट् नगर में एक धनाढ्य वैश्य के क्रूरकर्मा पुत्र ने ११ विप्र बालकों का वध कर डाला पश्चात् माता-पिता का वध भी कर दिया किन्तु क्रूरात्मा का विकर्म से उदर न भरा, तब एक और युवा विप्र का वध कर डाला, विप्रपत्नी ने शाप दिया – पापात्मा! तेरा प्राणान्त भी जलाभाव में तड़प-तड़प कर होगा, मरणोपरान्त ७ कल्प पर्यन्त तू प्रेत योनि में कष्ट पाएगा। ऐसा ही हुआ। मरुभूमि में तृषार्तावस्था में प्राणान्त हुआ एवं यमदूत उसके सूक्ष्म शरीर को यमलोक ले गये। उसकी मृत देह को चील-कौए नोंच-नोंचकर खाने लगे। संयोग से एक मांस के टुकड़े को कुरर पक्षी आकाश में लेकर उड़ गया, परस्पर के कलह में मांस का टुकड़ा यमुना जी में गिर गया, इस पुण्य के प्रताप से रुद्रगण उसे यमलोक से शिवलोक ले गये।

उसने रुद्रगणों से पूछा – 'मेरा कौन-सा शुभकर्म था, जिसके परिणामस्वरूप मेरी मृत देह का मांस पिण्ड यमुना जल में आकर गिरा।' इस पर रुद्रगणों ने बताया – 'एक बार चोरी करते समय तुम्हारे कानों में बटेश्वर-माहात्म्य कथा पड़ गई, यह कथा ही तुम्हारे उद्धार का कारण बन गई।'

रुद्र तीर्थ

एक समय द्वारिका में नारद जी पधारे, आतिथ्य स्वीकार कर लेने के पश्चात् बोले – 'हे प्रभो! जाम्बवती पुत्र साम्ब का सौन्दर्य, मनहर है। सभी रानियाँ उसके रूप में आसक्त हैं।' प्रभु ने नारद जी के सन्मुख साम्ब को आहूत किया एवं कहा – 'साम्ब! तुम्हारे सौन्दर्य से रानियों के मन में विकारोत्पन्न हो जाता है अतः मैं तुम्हें शापित करता हूँ कि तुम्हारे शरीर में १८ प्रकार का महाकुष्ठ हो जाय।' इस पर नारद जी ने कहा – 'चिन्ता न करो साम्ब, तुम शीघ्र बटेश्वर चले जाओ एवं वहाँ जाकर त्रैकालिक यमुना स्नान एवं शिवाराधन करो, शीघ्र शाप निवृत्त हो जाएगा।' ऐसा ही हुआ, रुद्रतीर्थ में तप करने से साम्ब शापमुक्त हुए।

चक्रतीर्थ

एक बार सप्तर्षि सहित महर्षि वशिष्ठ ब्रह्मलोक गए, ब्रह्माजी से प्रार्थना की – 'पितामह! हम ऋषिगण यज्ञ करना चाहते हैं, किस पवित्र भू-भाग में यह यज्ञ करना चाहिए, कृपा कर आप बतावें।'

इस पर ब्रह्मा जी ने एक मनोमय चक्र छोड़ा, यह कहकर कि यह जिस स्थान पर अवरोहण करेगा, वही भूमि यज्ञार्थ सम्यक् रहेगी। चक्र का अवरोहण बटेश्वर क्षेत्र में इसी स्थान पर हुआ, ऋषियों द्वारा यज्ञ भी सम्पादित हुआ अतः चक्रतीर्थ नाम हुआ।

सूर्यतीर्थ

गंगा-यमुना के मध्य भाग में नगर्रामेध नामक गाँव, जहाँ एक पापप्रवृत्त नापित (नाई) रहता था। किसी सुकृत के प्रभाव से पूर्णिमा के अवसर पर बटेश्वर पहुँच गया। पापमयी प्रवृत्ति ने वहाँ भी पाप कराया, किसी भक्त विप्र के पादत्राण चुराकर यमुना पार करने को ज्यों ही जल में उतरा, डूब गया।

जहाँ डूबा, वह सूर्यतीर्थ ही था, तीर्थ के प्रभाव से दूसरे जन्म में दशार्ण देश नरेश चन्द्रसेन बना। कार्तिक माह में बटेश्वर आया तो उसे अपना पूर्वजन्म स्मरण हो आया। राज्य-पाट त्याग, सूर्यतीर्थ में ही निवास करने लगा।

हनुमान तीर्थ

घटना त्रेताकालीन है, सीतापहरण के पश्चात् जब राम-रावण युद्ध हुआ, उस युद्ध में मेघनाद ने अमोघ शक्तिपात किया लक्ष्मण जी के ऊपर। हनुमान जी को आदेश हुआ संजीवनी-बूटी लाने का किन्तु औषधि विशेष की पहिचान न होने से परम पराक्रमी पवनपुत्र तो सम्पूर्ण द्रोणाचल गिरि ही उखाड़ लाये। त्वरा में बटेश्वर का लंघन कर आगे बढ़ गये। तभी एक अदृश्य शक्ति ने हनुमान जी को व्योम से धरा पर उतार दिया। आञ्जनेय को समझते देर न लगी। ओह! मैं बटेश्वरनाथ के दर्शन बिना यहाँ से जा रहा था, इसलिए मुझे नीचे आना पड़ा। जिस स्थान पर आये, वही हनुमान तीर्थ नाम से ख्यात हुआ।

मन्मथ तीर्थ

रुद्र के क्रोध ने काम को भस्मीभूत कर दिया था। देहरहित होने से काम का एक नाम अनंग हुआ। रति के करुण-क्रंदन पर भगवान् शिव ने आज्ञा की – 'हे रति! तुम पति सहित मेरे प्रिय स्थान बटेश्वर में तप करो, निश्चित कल्याण होगा।'

दस हजार वर्ष रति ने पति सहित तप किया, तब महेश्वर ने प्रसन्न हो दर्शन दिया एवं बोले – 'हे कामदेव! भगवान् वासुदेव के यहाँ रुक्मिणी जी से तुम्हारा जन्म होगा एवं यह तीर्थ तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा।'

गोरी तीर्थ

हिमालय कन्या गोरी ने नारद जी से पंचाक्षरी मन्त्र प्राप्त कर यहाँ यमुना जी में उसका सतत् जाप करते हुए द्वादश वर्ष आराधना की। भगवान् शिव ने तप से प्रसन्न हो जब वर माँगने के लिए कहा तो गोरी बोलीं – 'मुझे आप वर के रूप में प्राप्त हों, यही वर मैं चाहती

हूँ।' ऐसा ही हुआ, कालान्तर में भगवान् शिव का विवाह हिमालय कन्या गोरी के साथ हुआ।

वटतीर्थ व बटेश्वर माहात्म्य

अखण्ड नैष्ठिक ब्रह्मचारी मृकण्ड पुत्र मार्कण्डेय जी ने ६ मन्वन्तर तप किया। परिणामस्वरूप नर-नारायण का साक्षात्कार हुआ। वर में ऋषि ने मायादर्शन की इच्छा की।

भीषण प्रलयकाल प्रकट हुआ, अपार जलराशि में ऋषि डूबने लगे। न जाने कितने हजार वर्ष व्यतीत हो गये अपनी प्राण रक्षा में। सहसा एक विशाल वट के पत्रपुट में महादेव के बालस्वरुप का दर्शन हुआ, जैसे ही आगे बढ़े, बालक की श्वास के साथ उदर में चले गये, वहाँ चराचर सृष्टि देख महान आश्चर्य हुआ। प्रश्वास के साथ उदर से जब बाहर आये, तो वट के उसी पत्रकोरक में बालस्वरुप का दर्शन हुआ। ऋषि खड़े हो स्तुति करने लगे, अब बालस्वरुप के स्थान पर वृषभारूढ़ महेश्वर का भगवती पार्वती सहित दर्शन हुआ। ऋषि ने सविस्मित एक जिज्ञासा की – "नाथ! उस भीषण प्रलयकाल में भी भू का एक भाग जो जल से अस्पृष्ट ही था, उस पर चमकता हुआ वह स्वर्णिम वट वृक्ष और उसमें भी एक पत्र पर पौढ़ा हुआ वह बालक कौन था? "

महेश्वर बोले – "हे ऋषे! पृथ्वी का वह भाग जिसका जल स्पर्श भी नहीं कर पा रहा था, वह बटेश्वर क्षेत्र है एवं वह वट भी कभी नष्ट न होने वाला वृक्ष है, उसके पत्र पर शयन करता हुआ बालक अन्य नहीं, मैं ही था।" ऋषि यह वृत्तान्त जान कृतार्थ हुए एवं महेश्वर स्वलोक चले गये। एक बार अत्रि मुनि के पूछे जाने पर भगवान् मृत्युंजय ने अपने श्री मुख से बटेश्वर माहात्म्य कहा –

अधुनाहं प्रवक्ष्यामि लोकांहित काम्यन्न
कृस्य चिदाख्यालं वृहोरपि गोपीतम ।
अतख्यनानां नवानातिमुख्य सर्वानराश्चयम् ।
वटेश्वर इति विख्यातं व्रज मण्डल मध्यमम् ॥

(मुक्ता प्रासाद स्मृति ग्रन्थ)

पौराणिक दृष्टि से देखें तो कपिल पुराण, वायुपुराण, स्कन्द पुराण, अग्निपुराण एवं मत्स्य आदि अनेकों पुराणों में बटेश्वर धाम का माहात्म्य वर्णित है।

वर्तमान मथुरा से भद्रावर क्षेत्र के मध्य में तीन सघन वनस्थल थे, जो बड़े-बड़े ऋषि, ब्रह्मर्षियों की आराधना भूमि रहे।

१. मधुवन – मथुरा क्षेत्र का यह वन स्वायम्भुव मनु के पौत्र श्री ध्रुव जी की आराधना स्थल रहा, इनके अतिरिक्त मरीचि, वैथिस्त, अत्रि व ऋतुमुनि ने भी यहाँ निवास किया।
२. अग्रवन (आगरा) यहाँ महर्षि अंगिरा, पुलह, नारद व परशुराम जी ने तप किया। कैलाश मन्दिर में महर्षि परशुराम द्वारा स्थापित शिवलिंग दर्शनीय है।
३. भद्रवन (भदावर) – यह महर्षि दुर्वासा की साधना-भूमि है। निकट ही झाऊपुरा (इटावा) में महर्षि वाल्मीकि का आश्रम है एवं पारना (जैतपुर कलां) में वह स्थल है जहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री हनुमान जी की स्थापना कर पन्द्रह दिन पारण किया।

इस पुण्यभूमि में ऐसे अनेक सिद्ध पुरुषों का प्रादुर्भाव होता रहा है।

उत्तर, पश्चिम व दक्षिण इन तीन दिशाओं में यमुना इस क्षेत्र की परिक्रमा करती है। चारों ओर सघन वनों से घिरा यह क्षेत्र अध्यात्म साधना व आत्मोत्थान की पृष्ठभूमि रहा है।

बटेश्वर माहात्म्य

कान्यकुब्ज के धर्मदेव नामक विद्वान् विप्र का दारिद्रय, अन्धता, कुष्ठ रोग एवं सन्तानहीनता का कष्ट यहीं निवृत्त हुआ था।

संकर्षण तीर्थ

नैमिषारण्य में दाऊ जी द्वारा सूत जी का वध हुआ, जिसके प्रायश्चित्त स्वरूप ऋषियों के कथनानुसार ६ मास दाऊ जी महाराज ने यहाँ भगवान् शिव का विधिवत् पूजनार्चन किया।

शक्ति तीर्थ

सतयुग के आरम्भ में महिषासुर दैत्य से पीड़ित देवों को भगवान् नारायण ने बटेश्वर नाम की शरण लेने का आदेश दिया। शरणागत देवों के कल्याणार्थ महेश्वर की श्वास से अद्भुत शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके द्वारा महिषासुर का अन्त हुआ। यही स्थान शक्तितीर्थ हुआ।

अप्सरा तीर्थ

पुष्कर तीर्थ में महर्षि विश्वामित्र जी के तप में मेनका, रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा ....अप्सराओं ने अपने हाव-भाव, कटाक्षों से विघ्न डालने की चेष्टा की, इस पर महर्षि

ने क्रुद्ध हो उन्हें भूलोक की पिशाचिनी बनने का शाप दे दिया। अप्सराओं ने ऋषि चरणों में गिरकर क्षमायाचना की, तब ऋषि ने उन्हें बटेश्वर जाकर शिवाराधन करने को कहा। भूतभावन की आराधना से वे सब पिशाच योनि से मुक्त हुईं।

इन्द्रतीर्थ

एक समय गौतम मुनि के शाप से इन्द्र के शरीर में सहस्त्र भग हो गये थे अतः देवेन्द्र लज्जा से दुःखी रहते थे; देवर्षि नारद जी के कहने पर ७ वर्ष बटेश्वर में आराधना की। शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा – 'देवराज! तुम्हारे देह में जितने भग (योनि) चिन्ह हैं, ये सब नेत्र हो जाएँगे; इन नेत्रों से तुम भगवद्दर्शन कर जन्म सार्थक करोगे।'

अग्नितीर्थ

एक समय अग्निदेव को अपच (अजीर्ण) हो जाने पर प्रकृति असंतुलित हो उठी। अग्निदेव ने ३ वर्ष बटेश्वर में तप किया। महादेव ने आज्ञा की – अग्निदेव! आप इन्द्रप्रस्थ चले जाएं। इन्द्रप्रस्थ आने पर स्वयं भगवान् ने अर्जुन द्वारा 'खाण्डव वन' का दाह कराया एवं अग्निदेव रोगमुक्त हुए।

सोमतीर्थ

चन्द्रमा ने भी बटेश्वर में ३ वर्ष तप कर क्षयरोग से मुक्ति प्राप्त की। जहाँ तप किया, वही यह सोमतीर्थ है।

वायुतीर्थ

वायुदेव ने यहाँ पुत्र प्राप्ति निमित्त तप किया। तप का ही प्रभाव था, अञ्जनी माता के गर्भ से आञ्जनेय का जन्म हुआ।

रामतीर्थ

"माघ शुक्ल पक्ष" को यहाँ दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम सकुटुम्ब पधारे। शिवाराधन किया एवं रावण वध के पश्चात् इस ब्रह्महत्या से मुक्त होने के लिए प्रभु श्रीराम ने यहाँ ७ दिवस वास भी किया। इतना ही नहीं बटेश्वर क्षेत्र की परिक्रमा कर विष्णु मन्दिर की स्थापना की।

गणेशतीर्थ

एक समय शिव पुत्र स्कन्द कुमार एवं गणेश में क्रीडा-कलह हो गया।

स्कन्द कुमार बोले – “गणेश! तुम्हारा मुख गज जैसा, कान सूप जैसे एवं आँखें छोटी-छोटी हैं। तुम मेरे सुन्दर रूप को कहाँ प्राप्त कर सकते हो? ” स्कन्द कुमार के वचनों से मर्माहत हो गणेश बटेश्वर आ गये एवं यमुना जल में १० सहस्र वर्ष खड़े होकर तप किया। इस तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी आये एवं वर माँगने को कहा।

“मुझे बटेश्वर में अखण्ड वास प्राप्त हो” गणेश ने वर माँगा। तब से आपका यहीं वास हो गया।

राधातीर्थ

विष्णुदास नामक वैष्णव विप्र ने यहाँ यमुना जल में खड़े होकर युगल (राधा-माधव) का नाम जप किया। प्रसन्न हो युगल ने विप्र को दर्शन दिया एवं वर माँगने को कहा। दर्शनानन्द से विभोर विप्र राधा-माधव के चरणों में गिरकर बोला – “आप दोनों साकार रूप में यहीं निवास करें, मैं यही वर चाहता हूँ।” भृत्यवत्सल युगल तब से बटेश्वर में निवास करने लगे।

धेनुतीर्थ

सतयुग के प्रारम्भ में ब्रह्मा व विष्णु में परस्पर मधुर विवाद हुआ – ‘हम दोनों में श्रेष्ठ कौन है? ’ निर्णय का भार भगवान् भोलेनाथ को सौंपा गया। भोलेनाथ बोले – "प्रथम आप दोनों मेरे सर्वतोमुखी लिंग का आदि-अन्त पता कर बताइये, तब ही मैं यह निर्णय दूँगा।"

१ सहस्र वर्ष तक भगवान् विष्णु प्रयास करते रहे, डेढ़ सहस्र वर्ष तक ब्रह्मा जी प्रयास करते रहे किन्तु कोई भी सफल न हो सका। ब्रह्मा जी ने कामधेनु एवं केतकी तरु को मिथ्या साक्षी देने को तैयार कर लिया – "हम दोनों इसके साक्षी हैं कि ब्रह्मा जी ने आपके लिंग का आद्यन्त जान लिया है।"

मिथ्या साक्षी पर भगवान् भूतनाथ ने क्रोधित होकर ब्रह्मा, कामधेनु एवं केतकी तीनों को शापित किया –

“कामधेनु, तुम्हारी पवित्रता नष्ट हो जायेगी।

केतकी, तुम्हारा पुष्प देवविग्रहों पर नहीं चढ़ाया जाएगा।

ब्रह्मा जी, कलिकाल में तुम्हारी पूजा नहीं होगी।”

कामधेनु ने अपने शाप की निवृत्ति बटेश्वर में तप करके की। यह तपःस्थल ही धेनुतीर्थ (गऊ तीर्थ) हुआ।

नारायण तीर्थ

कीकट देश के धर्मात्मा राजा सुमति का प्राणान्त बटेश्वर में हुआ। सुमति सुत कुमति को देवर्षि नारद जी ने कहा – "तुम्हारे पिता बटेश्वर के युद्ध में मारे गये हैं।" कुमति की कुमति ने बटेश्वर तीर्थ को ही नष्ट करने का निर्णय कर लिया। इस अवसर पर बटेश्वर निवासी शैव, शिव के शरणागत हुए, वैष्णवगण विष्णु के शरणागत हुए। स्वयं भगवान् नारायण ने आकर अपने भृत्यों की यहाँ रक्षा की।

यमुना जी - बटेश्वर

ब्रह्म तीर्थ

यह ब्राह्मणों का प्रमुख तीर्थ है। पूर्वकाल में यहाँ भक्त ब्राह्मणों ने वाजपेय नामक यज्ञ किया था। इसके भी पूर्व महाराज अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, यौवनाश्व एवं भागीरथ आदि ने यहाँ यज्ञ किया, धनान्न का दान किया।

द्वादशभुजा देवी

एक समय अंधकासुर एवं भगवान् शिव के मध्य बटेश्वर में भीषण युद्ध हुआ। युद्ध में असुर मारा गया। पश्चात् भगवान् भूतनाथ ने जगदम्बा पार्वती को कहा – 'आज से प्रजा की संरक्षिका आप रहेंगी। किसी भी प्रकार की बाधा बटेश्वर में प्रवेश न कर सके।' वामदेव की आज्ञा प्राप्त होते ही महिषासुरमर्दिनी ने द्वादश भुजा धारण कर लीं।

वनखण्डेश्वर तीर्थ

सती पिता दक्ष ने अकारण शिव-द्वेष कर महद् अपराध किया। श्वसुर-दामाद के इस द्वेष से सती ने प्राणत्याग किया। १ लाख वर्ष व्यतीत हो गये, सतीदाह से भगवान् शिव व्यथित थे। एक समय बटेश्वर आकर १० हजार वर्ष तप किया। एक दिन सहसा व्योमवाणी सुनाई दी –

"हे शिव, खेद न करो। सती तुम्हें पुनः पत्नी रूप में प्राप्त होंगी।" व्योमवाणी सुन लाखों वर्षों से अशान्त चित्त शान्त हुआ। भगवान् शिव ने यहाँ निवास किया तब से इस स्थान एवं भगवान् शिव दोनों का वनखण्डेश्वर नाम हुआ।

बटेश्वर स्थित कतिपय स्थानों के विषय में प्रसिद्ध मिथक –

बलराम टीला

लोककथन है कि तीर्थाटन करते हुए एक समय यहाँ बलराम जी महाराज आये थे एवं कुछ समय निवास भी किया था।

हला का बाग

यमुना के किनारे लता-तरुओं से घिरा हुआ लगभग १ एकड़ का यह हरित प्रान्त, यहाँ बहुत प्राचीन आम्र के कुछ वृक्ष हैं। इसे हला का बाग अर्थात् हलधर (बलराम) का बाग कहा जाता है।

विजकोली

प्राचीन नाम ब्रजकोल था। ब्रजराज के वंशजों का यहाँ निवास था। बटेश्वर के निकटवर्ती क्षेत्र में यादवों का निवास अधिक है, इनका मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन है। आज भी यहाँ दूध-घृत का कोई अभाव नहीं है।

कंस करार

श्रीकृष्ण द्वारा कंस वध जब हुआ तो उसे यमुना में फेंक दिया गया और वह बहता हुआ यहाँ आया। यही स्थल "कंस करार" प्रसिद्ध हुआ। द्वितीय मत यह भी है कि परतन्त्र भारत में कुछ देश-भक्तों ने यहाँ कंस का विशाल पुतला फूँका था।

गोरखनाथ का टीला

यहाँ एक समय गोरखनाथ जी ने आकर विश्राम किया था।

आगरा से ७० कि.मी. पूर्व में आगरा-बाह मार्ग के फरेरा से ६ कि.मी. इटावा से ६० कि.मी. दूर स्थित है "श्री बटेश्वर धाम"।

मिढ़ोकुर

श्यामसुन्दर का दान लेना और इन ब्रजगोपियों का दान न देना, उनकी भर्त्सना करना .... यह दैनिक कृत्य हो गया था। अब तो वन जाने का समय भी बदल दिया इन देवियों ने तो भी वह न जाने कहाँ से आ गया और यहाँ झगड़ा बढ़ गया।

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

लालन! ऐसी बातें छाँड़ौ ।
मदन गोपाल! छबीले ढोटा! झगरौ नित उठि माँड़ौ ॥
अनोखे दानी अबहि चले हैं माँगत गो-रस-दानु ।
प्रात हि होतु आइ ठाढौ भयौ ऊगनि न पायौ भानु ॥

एकदम प्राकृत लीला है यह –

गोपी भर्त्सना कर रही है उस भगवान् की! आज गोपियों का टोल सूर्योदय से भी पूर्व निकल गया वन की ओर यह सोचकर कि आज गोरस बेचने थोड़ा दूर जाएंगी और कन्हैया से भी बच जाएंगी।

किन्तु यह तो मार्ग अवरुद्ध किये खड़ा है। कन्हैया, हमें तेरे ये नित नये ऊधम अच्छे नहीं लगते। प्रतिदिन का तेरा यही कार्य। उठते ही झगड़ा मांड़ने आ जाता है। अभी तो सूर्योदय भी नहीं हुआ। हट जा, मार्ग छोड़ दे, यह ऊधम का समय नहीं है, चन्द्रावली बोली।

श्री राधा रमण मंदिर - मिढ़ोकुर

श्री दाऊ जी मंदिर - मिढ़ोकुर

चल परे, हमें घर जाने दे!

किन्तु झगड़ा अधिक बढ़ गया।

श्री कुम्भनदास जी की वाणी में –

बन में देखे स्याम सकल मिलि भईं एक ठाईं ।
लागी करन विचार अबै कहा करि हो माई ॥
या मारग तुम छाँड़िके और हि मारग जाहिं ।
इहि ढोटा है नंद कौ सो छीनि सब खाहिं ॥
कहति ब्रज-नागरी ॥
सुनिके धाय ग्वाल रोकिकै ठाढ़ी कीन्ही ।
कहाँ जाहुगी भाजि दुहाई नंद की दीन्ही ॥
दान कृपा करि दीजिये छांडो अधिक सयान ।
लाग हमारौ लेहु अब आली! राखौं तेरौ मान ॥

कहत नंद-लाडिलौ ॥
कब तुम लीन्हो दान कब तुम भए जु दानी?
सुनी न कबहूँ बात जाइ बूझौ नंद-रानी ॥
उदर बसे तुम देवकी आए गोकुल भाजि ।
जीए जूठौ खाइके हो अब क्यों नहि आवै लाजि ॥
कहति ब्रज-नागरी ॥
जोवन कौ अति गर्व ग्वालि! तू बोल सँभारी ।
दही, दूध के मद सु देति है हम को गारी?
नंद-दुहाई करत हों लेउं सबनि के टूटि ॥
कहत नंद-लाड़िलौ ॥
लेत लूट कौ नांउ कहा कोउ तेरी चेरी?
कब लीन्हो तुम दान? कबै जु दुहाई केरी?
सिर पर राजा कंस है बोलो बचन बिचारि ।
जो अब कें सुनि पाइ है तो दुःख पावै नंद-नारि ॥
कहति ब्रज-नागरी ॥
तुम हो ग्वालि! गँवारि कहा मोकों समुझावे ।
सिब, विरंचि, सनकादि निगम मेरौ अंत न पावै ॥
भक्तनि की रच्छा करौं दुष्टनि कौ संहार ।
कंस केस धरि मारि हों सो धरनी उतारों भारि ॥
कहत नंद-लाड़िलौ ॥
जो तुम ऐसे कान्ह! करत क्यों घर-घर चोरी ।
मैं झगरी जब जाइ लियो पीताम्बर छोरी ॥
तनक दही के कारने बांधे जसुमति मात ।
हम निज बंध छुड़ावहीं सो बोलत कहा इतरात?
कहति ब्रज नागरी ॥
ढीठ भये तुम कान्ह! बचन बोलत जु ठोरे ।
बन हिं चरावौ गांइ फिरो ग्वालनि-संग दौरे ॥
वा दिन विसरे सांवरे! छाक हिं चुनि खात ।
ऐंड़े- ऐंड़े जात हो सो बोलत कहा तरात?
कहति ब्रज नागरी ॥
अवनि-असुर अति प्रबल मुनीजन-कर्म छुड़ाए ।
गऊ सन्तनि के हेत दे धरि ब्रज में आए ॥

जेते संगी ग्वाल हैं ते ते सब हैं देव।
हमनि गर्व इन्द्र कौ हरयौ सो करत तुम्हारी सेब॥
कहत नंद-लाड़िलौ॥
बन में बोलत बोल कहा अब मोहि सुनावै?
जानीं तेरी रीति-कहा बलवंत कहावैं॥
जो ऐसे हो सांवरे! तो काटौ वसुदेव-कंस।
सात बालक जब मारियो हो तो क्यों न मार्‍यो कंस॥
कहति ब्रज-नागरी॥
ऐसो भूपति कौन? जो हम पे हाथ उठावै।
बंदीजन जुग वेद पढ़ैं द्वारे नित गावै॥
ब्रह्म-रूप उतपति करों रूद्र-रूप संहार।
विष्णु-रूप रक्षा करों सो मैं हो नंद-कुमार॥
कहत नंद-लाड़िलौ॥
जो तुम ऐसे ब्रह्मा हमारे छींके ढूँढो?
घर-घर माखन खाइकान्ह! तिरियन संग सूंढो॥
तुम हिं दोस नहिं सांवरे! जाए काली रात।
वन में ब्रह्मा कहावहीं सो क्यों तजे पिता अरु मात?
कहत ब्रज-नागरी॥

यह झगड़ा यहीं मड़ा अतः मड़ोकुर (मिढ़ोकुर) हुआ।

"मदनगोपाल! छबीले ढोटा झगरौ नित उठि मांड़ौ"

कर दधि-मोलु आजु हौं लैंहों।
इहि गज मोती तोरि कंठ ते चन्द्रावली गुपति तोहि दैहों।
पानि पानि ठाढ़ी कीनी बात मांझ लै मांड़यौ झगरौ।
बाबा की सौं जानि न दैहौं नंदकुमार हठिलौ अचगरौ।
लोभ दिखाइ प्रीति जो कीजै ते बात भली सब फीकी।
'परमानन्द' प्रभु जानि महातमु जे हरि भजै चतुर सोई नीकी॥

फतेहपुर सीकरी से २१.२ कि.मी. की दूरी पर स्थित है मिढ़ोकुर ग्राम। यहाँ श्रीदाऊ जी का मन्दिर एवं श्रीराधा रमण जी का मन्दिर हैं।

किरावली

पुनि किरावली ते अछनेरौ नाम सीकरी सीमां धारी ॥

दाऊ जी - किरावली

सीकरी से १२.७ कि.मी है किरावली, जो आगरा से पश्चिम में है।

अछनेरा

ब्रज का सीमा क्षेत्र गोचारण लीला से अनुस्यूत है।

श्री परमानन्द स्वामी जी की वाणी में प्रथम लीला –

नटखट भेष धर्‌यो छबि आछे ।
मोर पिच्छ बन धातु चित्र किये, मल्ल काछ कटि काछें ।
सेली हाथ दोहनी संग लिये, डोलत गाइनि पाछें ।
परमानन्द प्रभु करत दुहारी, टेरि बुलावत बाछें ॥

“परं पदं भूषण भूषणाङ्गम्” है यह।

आभूषणों की शोभा बढ़ाने वाला इसका दिव्य श्री अंग किसी सज्जा की अपेक्षा नहीं रखता किन्तु आज की छवि तो अदृष्टचर है।

विशाल, ओजस्वी, वरुथप, मरन्द और कुसुमापीड ......आदि सखाओं ने अपने प्राण प्यारे कन्हैया को एक नूतन सज्जा से सज्जित किया।

मस्तक पर मयूर पिच्छ धारण कराया, अगल-बगल कलंगी एवं तुर्रा खौंस दिया, जहाँ-तहाँ सघन काली घुंघराली अलकावलियों में श्वेत, रक्त, पीत आदि विविध रंग के वन्य सुमन लगा दिये हैं, चम्पा के केयूर बना दिये, मल्लिका की माला, मुरली में जुही की झालर लटका दी एवं कलाई में गुंजा के कंगन ....गैरिक आदि रंग बिरंगी धातुओं से कन्हैया की सुन्दर पत्रावली की। कन्हैया के मस्तक पर लोवना (गोदोहन काल में गाय के पैरों में बाँधी जाने वाली रस्सी) शिरोभूषण की तरह बाँध दिया देवप्रस्थ ने।

श्री रेवती रमण जी - अछनेरा

देवप्रस्थ – कितना अच्छा लग रहा है अब दादा कन्हैया ....?

मल्लों जैसी कछनी कटि में काछे हुए है, ऐसा लग रहा है मानो मल्ल क्रीड़ा को उद्यत है।

नटखट भेष धर्‌यो छबि आछे ।

आछे अर्थात् "अच्छा" यह विलक्षण-वेष यहीं धराया सखाओं ने कन्हैया को अतः स्थान विशेष का नाम 'अछनेरा' हुआ।

गोदोहन हेतु गायों के पीछे भागता हुआ गोपाल बछड़ों को बुला रहा है। बछड़ों को दूध पिलाये बिना यह गोदोहन भी तो नहीं करता।

धौरी के ऽऽऽऽऽऽ, कजरी के ऽऽऽऽऽऽ, कपिला के ऽऽऽऽऽऽ टेरता हुआ दौड़ रहा है।

द्वितीय लीला –

आछे-आछे बोल गड़े ।
कहा करौं उर ते नहिं निकसत, स्याम मनोहर चतुर बड़ो ।

मेरे नेंक आउ री भामिनी! रहसि बुलावत रूख चढ़े ।
'परमानन्द' स्वामी रति नागर, प्रीति बढ़ावन कुँवर लड़े ॥

कितना अच्छा (मीठा) बोलता है यह, उसने अपनी सखी से कहा। सखी ने भी अनुमोदन किया। तू ठीक कहती है।

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥

(भा. १०/३१/८)

उसकी मधुपूरित वाणी कितनी मधुर है। वाणी ही नहीं, उसके मुख से निःसृत प्रत्येक पद, प्रत्येक शब्द, प्रत्येक अक्षर मधुरातिमधुर है। बड़े-बड़े विद्वान उसमें रमण करते हैं। उसका तो सब कुछ मधुर है।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥१॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरंवसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरंमधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥
गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

उसका हसन, उसकी चितवन सब कुछ अत्यन्त मधुर अर्थात् प्रेमपूरित है। उसके न रहने पर उसकी लीलाओं का ध्यान भी ध्याता को आनन्द सिन्धु में सराबोर करने वाला है और संयोग के मधुर प्रेमालाप की तो बात ही कुछ और है। इसमें भी उसकी एकान्तिक ठिठोली ।

आछे-आछे बोल गड़े ।

आछे आछे बोल अर्थात् उसके मधुस्यन्दी वचन गड़ गये हैं मेरे हृदय में।

निकाले भी निकलते नहीं अब ये।

माधुर्य एवं चातुर्य दोनों ही वाणी के आवश्यक गुण हैं।

बहुत देर हुई तुझे बक-बक करते, अब कुछ बता भी, ऐसा क्या कह दिया उसने जो तू भूल नहीं पा रही है, संगिनी ने पूछा।

मैं कुछ भी नहीं भूल सकती उसका –

कैसा है यह देश निगोरा।
मोतें कहैं चल कुञ्ज में, नैक नैक से छोरा॥

अथवा

मेरे नैक आउ री भामिनी रहसि बुलावत रुख चढ़े॥

बात उस दिन की है जब तुम सब आगे बढ़ गयी थीं और मैं उस वन में एकाकिनी थी। तरु पर चढ़कर मुझे बुलाने लगा वह निबिड़ निकुञ्ज में,

अरी ओ ऽऽऽऽ नेंकु इधर तो आ ....।

तू नहीं जानती, इसकी वाणी प्रीतिवर्धक है। प्रेम में गोपन ही तो मुख्य है। जिसे चतुर नायक या चतुर नायिका ही जानती है।

बिना गोपन के –

माधो सुन माधो फूहड़ के बैन, ऊँट चढी मुसकावै नैन।

यह तो फूहड़ों का प्रेम है।

इसका तो सब व्यवहार प्रेम का वर्धक है।

अरी, आगे तो बोल, क्या किया उसने तुझे बुलाकर, संगिनी ने पूछा।

क्या करता वह?

गोरस के ब्याज से रतिरस माँगने लगा, वह बोली।

श्री परमानन्द स्वामी की वाणी में –

ग्वालिनि! मीठी तेरी छाछि।
कहा दूध में घालि जमायो साँचु कहि मेरी बाछि॥

मेरी भुजा पकड़कर सच-सच कह दे यह मीठी छाछ कैसे बनाई तूने? वह गोरस का प्रशंसक मुझसे बोला।

और भाँति चितैवौ तेरौ भौंह चलति है आहि।

धीरे-धीरे उसका अदात्त प्रेम उद्भासित हो उठा।

अरी ओ, तेरी आज की चितवन और भ्रू नर्तन कुछ और ही कह रहे हैं, वह बोला।

ऐसौ रकुझकु कहूँ न देख्यो तू जु रही कछु काछि ॥

पहले तो कभी नहीं देखी, तेरी रकुझकु कर रही दृष्टि।

रकुझकु से मतलब –

सुघर नार और सूरमा करैं लखन बिच चोट।
नैन दुर्‌यो न डरैं पट घूँघट की ओट ॥

सुघर नायिका एवं सुघर सूरमा लाखों के बीच में वार (चोट) करते हैं किन्तु कभी निशाना नहीं चूकते।

मुख पर आवरण (घूँघट) है किन्तु छिपाये नहीं छिपते ये नेत्रशर।

रहसि कान्ह कुच कर गहि परसत, तू जु परति है पाहि।
"परमानन्द" गोपाल आलिंगी गोप बधू हरिनाहि ॥

कन्हैया ने उसका वक्ष स्पर्श करते हुए उसका आलिंगन किया।

ऐसे अनेकों पद हैं, जिनमें प्रशंसा के रूप में 'आछे' शब्द का प्रयोग हुआ।

आछे-आछे बोल गड़े ।

अथवा

नटवर भेष धर्‌यो छबि आछे।

अथवा

कहीं भौंह चलति है आछि ।

अथवा

आछौ दूध गैया धौरी कौ अधोटि जमायौ अपने हाथ।

अथवा

कुम्भनदास जी की वाणी में –

चंदन चर्चित नील कलेवर, बेनु बजावत आछे।

यही है 'अछनेरा' का इतिहास।

सीकरी से १७.९ कि.मी दूरी पर स्थित है अछनेरा ग्राम। यहाँ रेवतीरमण जी का मन्दिर है।

सीकरी

मुस्लिम बहुल क्षेत्र होने से यहाँ कोई मंदिर के अवशेष नहीं हैं।

भरतपुर से १७ कि.मी की दूरी पर बसी है सीकरी।

जाजऊ (जह्नुवन)

जेष्ठशुक्लचतुर्द्दश्यां ब्रजयात्राप्रसंगतः ।
प्रदक्षिणाप्रपूर्णास्तु कोणदक्षिणगामिनी ॥
जन्हु नाम मुनिश्रेष्ठो यत्र तपे महत्तपः ।
अयुतद्वयवर्षेण त्रेतायुगसमागमे ॥
रामो दाशरथिर्भूत्वा कृतार्थं कुरुते हरिः ।
गंगां त्यक्त्वा ऋषिर्भूमौ वैकुण्ठपदमाप्नुयात् ॥
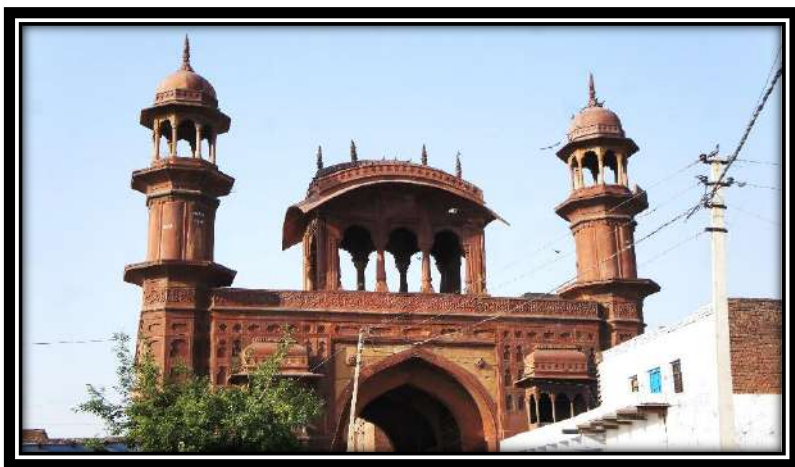
जाजऊ का किला

श्री ब्रजभक्तिविलास के अनुसार जह्नुवन की उत्पत्ति महिमा इस प्रकार है– ब्रजवासियों के लिये ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी में यहाँ की दक्षिण कोण गामी प्रदक्षिणा करने का विधान है। त्रेता युग में महर्षि जह्नु ने २० हजार वर्ष तक यहाँ तप किया एवं श्री हरि ने दाशरथि राम के रूप में उन्हें कृतार्थ किया। ऋषि गंगा को छोड़कर वैकुण्ठ चले गए, उनकी तपोभूमि होने से यह स्थल जह्नुवन नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जन्हुवन प्रार्थना मन्त्र –

देवगन्धर्वसेव्याय नानाद्रुमलतार्चित ।
विकल्मषाय मोक्षाय तपस्थल नमोस्तु ते ॥
इति मन्त्रं दशावृत्या नमस्कारं करोति यः ।
ब्रह्महत्यादिनिर्मुक्तो वैकुण्ठपद माप्नुयात् ॥

हे देवगन्धर्व सेवित नाना वृक्ष-लतादि युक्त तपस्या स्थल! आपको नमस्कार है। आप कल्मष नाशकारी मोक्षप्रदान करने वाले हैं। इस मन्त्र का १० बार पाठ करते हुए नमस्कार करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त होकर वैकुण्ठ प्राप्त कर लेता है।

गंगा जी के गिरने से यहाँ एक कूप की उत्पत्ति हुई एवं जह्नु ऋषि के स्नान करने से यहाँ जह्नु कूप हुआ।

जन्हुऋषि कूप स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र –

जन्हु कूप (बावड़ी) - जाजऊ

गंगापातसमुद्भुत! जन्हुतीर्थ नमोस्तु ते ।
सर्व कल्मषनाशाय जन्हुकूप नमोस्तु ते ॥
इति मन्त्रं त्रिधावृत्या मज्जनाचमनै र्नमन् ।
धनधान्यसुखं तस्य गंगास्नानंफ़लं लभेत् ॥

हे गंगाजी के गिरने से उत्पन्न जह्नु कूप! आपको नमस्कार है। आप समस्त कल्मषों का नाश करने वाले हैं। इस मन्त्र का तीन बार पाठ करते हुए स्नान, आचमन, मज्जन व नमस्कार करने वाले को धन-धान्य, सुख एवं गंगा स्नान के फल की प्राप्ति होती है।

आगरा से जाजऊ की दूरी २७.३ कि.मी.है।

गोहद

वैदिक काल से लेकर पौराणिक काल ही नहीं बल्कि महमूद गजनी के आक्रमण तक ब्रज प्रदेश अत्यंत समृद्धशाली और सुसंस्कृत रहा है। उसकी परिधि को अनेक विद्वानों ने वर्तमान स्थिति से कुछ भिन्न ही माना है क्योंकि जैसा आज अत्यन्त सीमित जिस ब्रज की परिकल्पना हमारे संकुचित मन-मस्तिष्क के लोगों द्वारा अभिव्यक्त की जाती रही है उससे अनन्त की अनन्तता व उसकी ब्रज वसुन्धरा के व्यापकत्व पर प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया है परन्तु यह मात्र एक संकीर्ण अवधारणा ही है। राधा- माधव की लीला भूमि साधारण नहीं, यहाँ उन्होंने समस्त वेद की ऋचाओं, स्मृतियों, औषधियों, वनस्पतियों एवं देवी-देवताओं को यहाँ अवतरित होने का आदेश दिया था। वस्तुतः भगवान् ने अपने गोलोकधाम को ही ब्रजभूमि के रूप में अवतरित किया है। अनेक साक्ष्यों के आधार पर दक्षिण में गोहद या ग्वालियर जिसे ग्वालय कहा गया है जहाँ गायों को गोचारण हेतु श्रीकृष्ण ले जाते रहे गोहद का तात्पर्य भी यही होता है कि जिस सीमा तक गायें जाती रहीं उस स्थल का नाम गोहद है। वस्तुतः भगवान् कृष्ण का पैतृक जन्मभूमि बटेश्वर उससे गोहद की बहुत अधिक दूरी नहीं है। गोहद वर्तमान में भिण्ड जिले के अन्तर्गत

प्राचीन किला – गोहद

मदन मोहन जी – गोहद

कालिय-कंथ मंदिर – गोहद

आता है। उस क्षेत्र में आज भी बड़ी संख्या में गायें घूमा करती हैं। यद्यपि गायों की उपेक्षा से आज सम्पूर्ण ब्रज त्रस्त है। गायों की तस्करी ने ब्रज भूमि को शनैः-शनैः गायों से रहित प्रदेश ही बना दिया है।

गोहद में एक अति प्राचीन किला है जिसके भग्नावशेष उसके वैभव का संकेत देते हैं। यहाँ अनेक प्राचीन मन्दिर हैं परन्तु एक मन्दिर दाऊ जी का भी है जो कृष्ण बलराम की लीला भूमि का संकेत देता है। इसके अतिरिक्त कालिया कंथ मन्दिर है मन्दिरों की नगरी सा लगता है यह नगर। लक्ष्मण मन्दिर व लक्ष्मण ताल तथा मदन मोहन जी एवं रघुनाथ जी के मन्दिर भी यहाँ हैं।

प्राचीन लक्ष्मण मंदिर – गोहद

जाजऊ जिसका उल्लेख "ब्रज भक्ति विलास" में श्री नारायण भट्ट जी के द्वारा किया गाया है यहाँ से भी धौलपुर-मुरैना होकर गोहद का मार्ग है। ग्वालियर होकर भी गोहद जा सकते हैं। भिण्ड-मुरैना के मध्य में बरहद का भी उल्लेख है जहाँ अनेक मन्दिर आज भी ब्रज भूमि का बोध करा रहे हैं। दाऊ जी मन्दिर के अतिरिक्त भग्न मूर्तियाँ खुदाई में निकली हैं।

दक्षिण के अतिरिक्त इसी तरह पूर्व में पांचाल राज्य (रूहेल खण्ड), शूरसेन के पश्चिम में मत्स्य (आधुनिक अलवर), उत्तर में गुरुगाँव के सोहना व उत्तर पूर्व में अलीगढ़ आदि तक ब्रज का विस्तृत भू भाग है।

श्री रघुनाथ जी मंदिर – गोहद

मुचुकुन्द गुफा

बहुत दूर-दूर तक हुआ कृष्ण लीला का विस्तार –

बात त्रेता काल की है – सूर्यवंश में मनु से इक्ष्वाकु नामक परम प्रतापी पुत्र का जन्म हुआ अतः वंश का नाम हुआ – इक्ष्वाकु वंश।

इक्ष्वाकु से विकुक्षि – पुरंजय – अनेना – पृथु – विश्वरन्धि – चन्द्र – युवनाश्व – शाबस्त – बृहदश्व – कुवलयाश्व – दृढ़ाश्व – हर्यश्व – निकुम्भ – बर्हणाश्व – कृशाश्व – सेनजित् और सेनजित से युवनाश्व का जन्म हुआ। युवनाश्व की दक्षिण कुक्षि से चक्रवर्ती महाराज मान्धाता का जन्म हुआ, इनके पराक्रम से रावणादि भी भयभीत रहते थे अतः देवराज ने त्रसद्दस्यु नाम रखा। मान्धाता के तीन पुत्रों में ही एक हैं – परम पराक्रमी मुचुकुन्द। आपने सुदीर्घ समय तक देवासुर संग्राम में देवों की सहायता की। विजय के पश्चात् देवों ने जब वर माँगने के लिए कहा तो अत्यन्त श्रान्त मुचुकुन्द जी ने विश्राम माँगा। वर देते हुए देव बोले – 'निद्रा भग्न करने वाला आपके दृष्टिपात से भस्मसात हो जाएगा।'

मुचुकुन्द जी का गुफा स्थल

श्यामाश्वल गिरि की एक गुहा में मुचुकुन्द ने विश्राम किया। इधर म्लेच्छ देश का राजा कालयवन ३ करोड़ म्लेच्छों की सेना लेकर मथुरा पर चढ़ बैठा। प्रभु रणछोड़ लीला करते हुए लगभग १२५ कि.मी. दूर इस गिरि कन्दरा में आकर छिप गये। क्रोधान्ध कालयवन ने भी पीछा करते हुए कन्दरा में प्रवेश किया एवं एक सुषुप्त मनुष्य (मुचुकुन्द) को पाद-प्रहार से जगाया। बस फिर क्या था, मुचुकुन्द का दृष्टिपात हुआ और वह भस्मसात हुआ। **(धौलपुर क्षेत्र में यह गुफा आज भी दर्शनीय है ।)**

मुचुकुन्द जी की गुफा

प्रभु ने उन्हें अपना दर्शन दिया।

मुचुकुन्द – "प्रभो! मैं तापत्रय से तप्त हूँ। स्वर्ग में भी मुझे शान्ति का अनुभव नहीं हुआ।" तब प्रभु के आदेश से महाराज मुचुकुन्द जी ने ५ कुण्डीय यज्ञ किया। सभी देव व तीर्थ यज्ञ में मूर्त्तिमान उपस्थित हुए। इसी दिन कृष्णाज्ञा से मुचुकुन्द जी तप हेतु गंधमादन गिरि चले गये।

मुचुकुन्द जी का यज्ञस्थल सम्प्रति एक पवित्र सर (सरोवर) के रूप में दर्शनीय है।

सर के चारों ओर निर्मित कुछ मन्दिरों के विषय में –

लाड़िली जगमोहन मन्दिर –

यह सर के पूर्वी-दक्षिणी घाट पर स्थित है।

मुचुकुन्द कुण्ड के चारों ओर निर्मित मन्दिर

लोकश्रुति है कि यह मन्दिर धौलपुर के महाराज भगवंत सिंह जी के मामा एवं रियासत दीवान राजधर जू कन्हैया लाल जी ने राजकोष के द्रव्य से बनाया था। संवत् १८९९ आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी को युगल विग्रह लाड़िली-जगमोहन यहाँ प्रतिष्ठित हुए। भोग-राग के लिए ५५९ बीघा जमीन बाँधी गयी। १९५४ में सरकार ने जमीन को अपने अधिकार में कर लिया एवं राजभोग के लिए ७०० रुपये का मासिक द्रव्य बाँध दिया।

राजगुरु मन्दिर –

सर के दक्षिण दिशा में स्थित है – राजगुरु मन्दिर। इस मन्दिर में विराजित श्री जगन्नाथ भगवान् की प्रतिष्ठा सम्वत् १८९८ के लगभग महाराज भगवन्त सिंह जी के द्वारा हुई। इन्हीं के द्वारा राजगुरु मन्दिर की उपाधि भी प्राप्त हुई।

सीताराम जी मन्दिर –

सर के पश्चिम दिशा में लगभग १५० वर्ष पूर्व विधिचंद पोद्दार के द्वारा यह मन्दिर स्थापित हुआ।

प्राचीन रामचन्द्र जी मन्दिर –

परिक्रमा मार्ग में पश्चिमी तट के मध्यस्थ है यह मन्दिर।

ऐतिहासिक रामचन्द्र जी मन्दिर –

सर के उत्तर-पश्चिम कोण में स्थित है यह मन्दिर।

श्री मठ –

यवन शासक अकबर के समय में यह मठ प्रतिष्ठित हुआ। मठ के सामने एवं सर के ईशानकोण में विराजित है – द्वापर कालीन श्री भूतेश्वर महादेव।

सर के किनारे सिक्खों के छठवें गुरु श्री हर गोविन्द सिंह जी का गुरुद्वारा है।

रानीगुरु मन्दिर –

सर के अग्निकोण में संवत् १८९९ के लगभग महारानी धौलपुर विदोखरनी के द्वारा यह मन्दिर स्थापित हुआ। लोग इसे रानीगुरु मन्दिर के नाम से पुकारने लगे।

चौफड़ा महादेव –

श्री ब्रजमोहन चौफड़ा धौलपुर, लगभग १५० वर्ष पूर्व श्री राजधरजू कन्हैयालाल जी रियासत दीवान धौलपुर के द्वारा बनवाया गया था।

नृसिंह मन्दिर –

राज परिवार का प्रमुख मन्दिर है – ड्योढ़ी महल में बना नृसिंह मन्दिर। धौलपुर रियासत के प्रथम महाराज कीरत सिंह जी स्वयं को श्री नृसिंह भगवान् का प्रतिनिधि मानकर राज्यादेश करते थे। राज्य में मौहर (मुहर) भी नृसिंह जी की लगती थी। शालग्राम रूप में नृसिंह जी की यह मूर्ति सन् १८०६ के लगभग एक सन्त द्वारा महाराज को प्राप्त हुई थी, जो आज भी दर्शनीय है।

राधाबिहारी जी मन्दिर–

लोक कथन है कि आज से लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व महाराज कीरत सिंह के बाद महाराज भगवन्त सिंह के राज्य काल में यह मन्दिर स्थापित हुआ। भगवान् नृसिंह व

सर के चारो और मंदिर

राधाबिहारी, ये मन्दिर राजपरिवार के माने जाते हैं। बसन्त पञ्चमी के अवसर पर दरबार में एक उच्चासन पर नृसिंह जी व राधाबिहारी ठाकुर, राजाओं द्वारा विराजमान किए जाते हैं। इससे राजाओं का आस्तिक्य झलकता था। अब ये परम्पराएं नहीं रहीं।

पुरानी छावनी वाले हनुमान जी –

लोक विश्रुति है कि हनुमान जी का यह विग्रह लगभग २०० वर्ष प्राचीन है। महाराज कीरत सिंह हनुमान जी के अनन्य भक्त थे। आपकी भक्ति के कारण ही पुरानी छावनी में हनुमान जी का यह विग्रह प्रगट हुआ था।

पुरानी छावनी में श्रीराम –

जनश्रुति के आधार पर धौलपुर, भरतपुर एवं करौली की सीमा पर हुए खनन कार्यों में भगवान् श्रीराम, माता जानकी व छोटे भैया लक्ष्मण की प्रतिमा प्राप्त हुई। तीनों रियासतों के राजाओं ने एक-एक प्रतिमा ली। महाराज कीरतसिंह जी ने श्रीराम विग्रह लेकर पुरानी छावनी में हनुमान मन्दिर के सामने सन् १८११ के लगभग श्रीराम मन्दिर का निर्माण कराया। यह स्वयम्भू विग्रह अपने-आप में अलौकिक है। माता जानकी विग्रह करौली में प्रतिष्ठित हुआ एवं लक्ष्मण जी के विग्रह की स्थापना भरतपुर में हुई।

श्री राम विग्रह

बहनेरा

चाचा श्री वृन्दावनदास जी ने स्वयं यहाँ की लीला गाई है –

चढ़ि गई गाय जहाँ बहनेरा रचैं खेल ये बड़े खिलारी।
गोधन दृष्टि परत नहिं जब तब हँसि मनसुखा देत कर तारी॥
धौरी धूमरि कहि हरि टेरत सुन गायन तव सुधि जू सम्हारी।
हेल परी गुन भरी सुलक्षण आई सनमुख भरत हुंकारी॥

चाचा जी की वाणी "चढ़ि गई गाय" से यह स्पष्ट होता है कि अवश्य ही यहाँ पूर्वकाल में कोई गिरि या पहाड़ी रही होगी। काल के प्रवाह से किन्हीं लीला-स्थलियों के नाम

बदल गये तो कहीं गाँव के गाँव नष्ट हो गये, कहीं कुण्ड, सरोवर, पर्वत नष्ट हो गये तो कहीं वन के वन नष्ट हो गये, लीला स्थल मात्र ग्रन्थों में ही रह गये, शनैः-शनैः ये ग्रन्थ रसिक, आचार्य, महापुरुषों की वाणी भी लुप्त हो रही है और अब यह विनाश हो रहा है हमारे अपने द्वारा। "चढ़ि गई गाय जहाँ बहनेरा" इस पंक्ति से स्पष्ट है कि अवश्य ही यहाँ कोई पर्वत या पहाड़ी थी जिस पर गायें चढ़ीं। बड़े खिलाड़ी हैं ये दोनों बालक! अभी-अभी सखाओं के साथ चोर-सिपाही का खेल खेल रहे थे, सिंहावली एवं पहाड़ी में अपनी बैठक की एवं यहाँ आकर गायों को पर्वत पर चढ़ा दिया।

श्रीमद्भागवत में श्रीशुकदेवजी द्वारा इस लीला का वर्णन हुआ है –

एकदा ते पशून् पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु ।
चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥

(भा.१०/३७/२७)

कोई राजा बन गया है, कोई मंत्री बन गया है, शेष सब चोर। राजा कौन हो सकता है कन्हैया के रहते। ठीक है दाऊ भैया बड़े हैं, मनसुख उनसे भी बड़ा है किन्तु जहाँ छोटा बनने में लाभ दीखता है तो यह ओजस्वी और देवप्रस्थ से भी छोटा बन जाता है एवं जहाँ बड़े बनने की बात हो तो ग्वालों के कंधे पर बैठकर दाऊ दादा से भी बड़ा स्वयं को सिद्ध कर देता है।

श्रुति ने भी समर्थन किया इसका –

"अणोरणीयान् महतो महीयान्"

अभी पात्रों का चयन हो रहा था, दाऊ दादा निर्णय कर रहे थे – श्रीदाम, सुदाम और वसुदाम बनेंगे मंत्री। सुभद्र, मण्डलीभद्र व वीरभद्र बनेंगे सिपाही, मनसुख तो विनोदी ठहरा, कभी चोर भी बन सकता है तो कभी राजा भी।

भद्रवर्धन, गोभट, यक्षेन्द्रभट, भद्रांग, विजय, विशाल, वृषभ, वरुथप, मरन्द,

कुसुमापीड, मणिबद्ध, करन्धम....आदि बनेंगे चोर।

किंकिणी, स्तोक कृष्ण, भद्रसेन, विलासी, पुण्डरीक, विटंक, कलविंक, सुबल, अर्जुन, गन्धर्व, बसन्त, उज्जवल, चतुर, कोकिल ..... आदि बनेंगे गायों के रक्षक।

तब तक छोटा कन्हैया पर्वत के एक ऊँचे प्रस्तर खण्ड पर जा बैठा और "मैं बनूँगा राजा"

महाराज श्रीकृष्ण चन्द्र की जय!

महाराज श्रीकृष्ण चन्द्र की जय!!

स्वयं ही बोलने लगा।

चोर बने ग्वाल-बाल गायों को किसी वन में ले गये, कुछ गायों को गुहा में छिपा दिया गया और कुछ गायों को सघन अरण्य स्थली में।

ओ धौरी ऽऽऽ, कजरीऽऽऽऽ, कपिलाऽऽऽऽऽ, नन्दिनीऽऽऽ ऽऽऽऽ जल्दी चली आओ, मनसुखा चिल्लाया। अपना नाम सुनते ही कान खड़े कर लिए गायों ने, पूँछ उठाकर, हुंकार भरते हुए दौड़ पड़ीं। चोर बने ग्वाल-बाल गायों के पीछे दौड़े और यह विनोदी मनसुख ताली बजा-बजाकर हँसने लगा।

केलि-कलह भी होती है तो केलि-विनोद भी होता है।

सख्य में इस प्रकार की लीला स्वाभाविक ही है, गोपियों के घरों में माखन चुराने वाला चोर, कभी स्वयं ही राजा बन जाता है। ये अति प्राकृत लीला विधि को भी अवगम्य कहाँ?

भरतपुर से ७ कि.मी. फतेहपुर सीकरी के रास्ते में आता है "बहनेरा ग्राम"।

ताखा

शाण्डिल्य जी की आज्ञानुसार उनके निर्देशन में ही श्रीकृष्णलीलानुसार ब्रजग्रामों को वज्रनाभ जी ने बसाया। इन स्थलों पर भूतकाल से जो ब्रजवासी निवासरत रहे हैं, उनको भी ब्रजनिष्ठ ब्रजोपासक महापुरुषों ने अपने ग्राम में घटित लीलाओं का जो इतिहास सुनाया है, परम्परानुसार वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होता हुआ जनश्रुति के रूप में विश्वसनीयता के साथ सत्य और मान्य है। श्री कृष्णलीला परिकरों के अतिरिक्त भी असंख्य पौराणिक पात्रों ने सर्वोद्धारक ब्रजधरा का आश्रय लिया। इसी क्रम में मथुरा-भरतपुर मार्ग पर लगभग २५ कि.मी. दूरस्थ 'ताखा' ग्राम स्थानीय ब्रजवासियों के अनुसार नागराज तक्षक की शरणस्थली के रूप में जाना जाता है।

ग्रामवासियों के अनुसार – महाराज परीक्षित की सुरक्षा हेतु उनके पुत्र जन्मेजय द्वारा अभेद्य व्यवस्था का प्रबन्ध करने के उपरान्त भी देव-कोटि के सर्प तक्षक द्वारा डसे जाने पर जब उनकी मृत्यु हो गयी तब जनमेजय प्रचण्ड क्रोधाग्नि से जल उठे और उन्होंने त्रिलोकी के समस्त सर्पों के विध्वंस का निर्णय ले लिया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने वेदज्ञ ऋषियों के द्वारा विकराल सर्प-यज्ञ का आयोजन करवाया।

जनमेजय की प्रेरणा से यज्ञ-विधि में निष्णात ऋषि-मुनि तत्काल ही यज्ञ वेदिका का निर्माण करके मन्त्रों द्वारा यज्ञाग्नि में त्रिलोकी के समस्त विषधर सर्पों का आवाहन करने लगे। विभिन्न जातियों के अगणित सर्प मन्त्र द्रष्टा ऋषियों के आहूत किये जाने पर वायु द्वारा तीव्रगतिसे उड़ाये जाने पर यज्ञवेदी में गिर-गिरकर भस्म होने लगे। चारों ओर यज्ञाग्नि में भस्मीभूत हुए विषधरों की दुर्गन्ध फैलने लगी। सृष्टि का कोई सर्प नहीं बचा।

जब तक्षक ने देखा कि अब तो जनमेजय की यज्ञवेदी में गिरने से मुझे कोई नहीं बचा सकता तो उसने सर्व विपद् विमोचन व्रजभूमि का आश्रय लिया और वर्तमान में 'ताखा' नाम से प्रसिद्ध इसी स्थल में चला आया। यहाँ रहने वाले ऋषि-मुनियों ने तक्षक की रक्षा करके उसे जनमेजय की यज्ञाग्नि में जलने से बचा लिया। वे ऋषि यहाँ तप किया करते थे।

वर्तमान में तक्षक नाग का एक प्राचीन मन्दिर गाँव में है। मन्दिर की दीवार पर नाग की आकृति है और सिंहासन पर तक्षक विराजित है। यहाँ ऐसी मान्यता है कि सर्प द्वारा डसा हुआ व्यक्ति यदि यहाँ बिना औषधि लिए आता है तो गाँव की परिक्रमा करने से वह ठीक हो जाता है। आज भी गाँव की सीमा में सर्प का विष नहीं टिकता। ग्रामवासियों का यह भी कहना है कि तक्षक द्वारा काटे जाने पर जब परीक्षित मरणासन्न हो गये और जनमेजय ने सृष्टि से सर्पयोनि के समूल उन्मूलन का दृढ़ निश्चय कर लिया तो इस स्थल की शरण लेकर तक्षक ने जनमेजय को वचन दिया कि इस ग्राम की सीमा के भीतर सर्प विष का कभी कोई प्रभाव नहीं रहेगा। हे राजन! दया करके अब तुम मुझको जीवन दान दो। तब परीक्षित नन्दन ने तक्षक को अग्नि में भस्मप्राय होने से बचा लिया। इसके बाद तक्षक यहीं रहा और अद्यावधि अदृश्य रूप से यहाँ निवास कर रहा है।

अऊ

ऊमरा व अऊ की लीला का परस्पर सम्बन्ध है।

अबार होने से मार्ग में तो न रुकी वह किन्तु 'आऊँगी' कहकर आश्वस्त कर गई।

जब आंचल पकड़ लिया नंदलाल ने तो उसे कहना पड़ा –

श्री परमानन्ददास जी की वाणी में –

छाँड़हु मेरे अँचरा कान्ह! तुम्हारी सौं आउँगी ।
हौं तुम सौं सही करि बोलति इहि अवसर कत पाउँगी ॥
उगटि-मगटि करि बसन पलटि कै फिरत बिलंबु नलाउँगी ।
दधि की मटुकिया अबहि भवन धरि, इहि पाँइनि उठि धाउँगी ॥

जो पद-कमल ब्रह्मादिक दुर्लभ सो परमारथ पाउँगी ।
परमानँद स्वामी सौं मिलिके, नौतन नेह ढाउँगी ॥

देख अभी तो मुझे जाने दे, मेरा आँचर छोड़ दे। कन्हैया! तेरी शपथ, मैं अवश्य आऊँगी। मुझे भी ऐसा अवसर फिर कब मिलेगा? यह दधि-मटकी घर रख झट लौट आऊँगी।

श्री कुम्भनदास जी की वाणी में –

कान्ह तिहारी सो हो आउँगी ।
साँझ सभोर वन खिरक बछरुवन, स्याम समो जो पाउँगी ॥
जो मेरे भुवन भीर नहिं है है, तो हौं तुमहि बुलाउँगी ।
बाल गोपाल बुलावन के मिस, ऊँचे स्वर सों गाऊँगी ॥
होत अबार दूर मोहि जैबो, उत्तर कहा बनाउँगी ।
कुंभनदास प्रभु गोवर्धन धर, अधर सुधारस प्याऊँगी ॥

गोपी – “कन्हैया, अभी मुझे दूर जाना है, यदि अबार हो गई तो मैं लड़िहारी सास को क्या उत्तर दूँगी?

तेरी सौं, मैं आऊँगी। यदि मेरे घर पार-परौसिन की भीड़ नहीं हुई तो मैं तुझे अपने घर ही बुला लूँगी।”

कृष्ण – “पर, मैं कैसे जानूँगा कि तू मुझे बुला रही है।”

गोपी – “मैं जब ऊँचे स्वर से गाने लगूँ तो तू समझ जाना कि मैं बुला रही हूँ और आ जाना फिर मैं अधर-सुधारस का पान करा तेरा अभिनन्दन करूँगी।”

एक अन्य गोपी का श्रीकृष्ण को बुलाना –

लाला रे! नेंकु हमारे आउ ।
जो माँगहु सो देउँ मनमोहन! लै मुरली कल गाउ ॥
मंगल चारु करौं गृह मेरे, सँग के सखा बुलाउ ।
करहु बिनोद जुवति सुन्दर सौं, प्रेम-पियूष पियाउ ॥
बलि-बलि जाउँ मुखारबिंद की, तेऊ त्रिभंग दिखाउ ।
'परमानन्द' रसभरी सहचरी, लै चली करत उपाउ ॥

“लाला, नेंक हमारे घर भी आओ। देख, तू मार्ग में दधि-दूध के लिए झगड़ता है। तू मेरे घर चल, तुझे मनभर दधि-दूध खिलाऊँगी और भी तू जो माँगेगा, मैं दूँगी। बस, तू मुरली सुना देना, अपने सब सखान् सहित आकर लीला करना, हम ब्रज-युवतियों के साथ विनोद-वार्ता करना, एक बार अपनी ललित त्रिभंगी छबि का दर्शन करा देना।” रसभरी यह गोपी बड़ी युक्ति से कन्हैया को निज गृह ले चली।

यह वही ठौर है जहाँ गोपियों की श्रीकृष्ण से, श्रीकृष्ण की गोपियों से परस्पर निश्चित आगमन की चर्चा हुई।

'आउँ' से हुआ स्थल विशेष का नाम – **अऊ।**

गोवर्धन से अऊ १९.९ कि.मी. की दूरी पर स्थित है और डीग से ५.१ कि.मी.।

ऊमरा

कृष्ण द्वारा मार्ग रोके जाने पर गोपियों ने कहा – कन्हैया, हमें अवार हो रही है, अवार से अमार एवं अमार का अपभ्रंश **'ऊमरा'** हुआ। ये ब्रजगोपीजन किसी भी दिशा में दधि-विक्रय को जाएं, कन्हैया तक इनके दधि-नवनीत की सुवास पहुँच ही जाती है। यह सुवास ही निमन्त्रण दे आती है और श्यामसुन्दर सहित सखा भूमि सूँघते हुए पहुँच जाते हैं वामाओं का मार्ग अवरुद्ध करने।

क्या रात्रि, क्या दिन, गोपियों को तो सदा ही भय बना रहता है। घर में भी चौकन्नी रहती हैं, बाहर निकलकर और भी सावधान हो जाती हैं।

ऐसा हो भी क्यों न, इतने श्रम से निकाला दूध, दधि, नवनीत जब कन्हैया ढुरा देता है, कभी कंकर मार मांट फोड़ देता है तो कभी बंदरों को ही बाँट देता है। कन्हैया भोग लगाये तो ये अपना श्रम सार्थक समझें। मांट के गिरने, फूटने से तो सावधान ही रहना पड़ता है।

(परस्पर)

१ गोपी – "मुझे तो भय लग रहा है।"

२ गोपी – "भय, ...किसका?"

१ गोपी – "उस भाण्डफोड़ कन्हैया का .....।"

२ गोपी – "तू क्यों भय करती है, हम सब हैं न, देख लेंगी उसे।"

३ गोपी – "अभी तक तो कहीं नहीं दिखा वह।"

४ गोपी – "हाँ-हाँ, मार्ग साफ है, शीघ्र चली आओ।"

५ गोपी – "यह वन भी तो बहुत सघन है, वह कहीं छिपा भी होगा, हम जान नहीं पायेंगी।"

कहकर अभी २-३ कदम ही बढ़ी थीं ये ब्रजवामाएँ और असूर्यपश्या लता-गुहा से निकल आया भाण्डारि।

चौंक पड़ीं सब! एकदम कदम रुक गये!

पहली गोपी – "मैंने कहा था, वह अवश्य यहीं-कहीं लता-जाल में छिपा होगा।"

मैं तोसों केती बार कह्यौ ।
इहि मारग इक सुन्दर ढोटा, बरबस लेत दह्यौ ॥
इत उत सघन कुञ्ज गह्वर तकि, मारग रोकि रह्यौ ।
इत कमनीय अंग छबि निरखत, नेंकु न परत रह्यौ ॥
लोचन सफल होत पल निरखत, विरह न जात सह्यौ ।
'परमानन्द' प्रभु सहज माधुरी, मनमथ-मानु ढह्यौ ॥

दूसरी गोपी – "तू चिन्ता मत कर, आज हम सब देख लेंगी इसे।"

कृष्ण वचन –

कौन हौ री! किनि ठाढ़ी रहौ ।
कहा लिये तुम जाति कहाँ हौ हम सौं किनि इक बात कहौ ॥

"तुम कौन हो? ये भरे-भरे मांट कहाँ ले जा रही हो? यहीं खड़ी रहो, पहले मार्ग का दान दो तब कहीं जाना।"

गोपी वचन –

का पर ढोटा! करत ठकुराई ।
तुम ते घाट-बाट मधुपुर के, ढोरत माट करत बरिआई ।
मारगु छाँड़ि अबार होत है, लालच लंपट की पतजाई ।
एक ब्रजवास बड़े के ढोटा, ऐसी बुधि कौन जु सिखाई ।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर, कर गहि गोपी उर में लाई ॥

गोपी – "किस बात का गुमान है तुम्हें, जो इतनी ठकुराई करते हो। इस ब्रज में सब, तुमसे श्रेष्ठ हैं। तुम्ही सबसे घाट (घटिया) हो। तुम्हारे बाबा नंद जी से देखो वृषभानु बाबा श्रेष्ठ हैं।"

त्वत्समं वैभवं नास्ति नन्दराजगृहे क्वचित् ।
कृषीवलो नन्दराजो गोपतिर्दीनमानसः ॥

(ग. सं., गिरिराज खण्ड, ६/७)

स्वयं ब्रजगोपों ने कहा है – 'हे वृषभानु बाबा! तुम्हारे समान वैभव तो नन्दराज के पास भी नहीं है, नन्दराज तो एक कृषक हैं, गो-यूथ के अधिपति एवं दीन हृदय वाले हैं।'

कन्हैया, न घाट देखते हो न बाट, जहाँ मन हुआ हमारे मांट फोड़ देते हो। दिन-रात बस इन काले कामों में ही लगे रहते हो।"

तीसरी गोपी – "चलो हटो, हमारा मार्ग छोड़ो।"

चौथी गोपी – "देखते नहीं, हमें अबार हो रही है।"

पाँचवीं गोपी – "यहाँ कोई खड़ी नहीं रहेगी।"

छठवीं गोपी – "तुम जैसे लंपट, लालची का क्या भरोसा.....? कहो तो अभी मांट फोड़ दो।"

सातवीं गोपी – "एक तो ब्रज में निवास, उसमें भी बड़े गोप के बालक फिर ऐसी बुद्धि कहाँ से हो गई तुम्हारी?

जब देखो तब, दान दे जा, दान दे जा। अरे हम २० बार इस मार्ग से निकलेंगी तो क्या २० बार तुम्हें दधि-दूध देंगी! सब तुम्हें ही खिला देंगी तो क्या स्वयं को बेचेंगी?

आठवीं गोपी – "ब्रज के घर-घर में दधि-दूध बढ़ रहा है, क्या तुम्हारे घर में दूध-दधि का अभाव है?"

नौवीं गोपी – "तुम्हारे यहाँ तो ९ लाख गायों का गोरस है फिर ऐसा अशोभनीय कार्य क्यों करते हो?"

अन्तिम बात – अभिसारिकाओं का यह प्रलाप तो ऊपरी था। ये तो अभिसार के लिए ही घर से निकलती हैं। दधि-दूध का विक्रय तो ब्याजमात्र है। कन्हैया का हाथ पकड़ उसे हृदय से लगा लिया। ऊपरी वर्जन-तर्जन मन की रमणेच्छा को ढक रहा था।

यही तो है अवहित्था।

प्रेम का गोपन।

ब्रज में कहावत भी है –

"मन मन भावै मूंड़ हिलावै"

डीग से ५.३ कि.मी. की दूरी पर स्थित है ऊमरा ग्राम।

कुचावटी

श्री सूरदास जी की वाणी में –

गए स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर।
देखी जाइ मथति दधि ठाढ़ी, आपु लगे खेलन द्वारे पर॥
फिरि चितई, हरि दृष्टि गए परि, बोलि लए हरुऐं सूनैं घर।
लिए लगाए कठिन कुच कैं बिच, गाढ़ैं चाँपि रही अपनैं कर॥
उमँगि अंग अँगिया उर दरकी, सुधि बिसरी तन की तिहिं औसर।
तब भए स्याम बरष द्वादस के, रिझै लई जुवती वा छबि पर॥

मन हरि लियौ तनक से ह्वै गए, देखि रही सिसु-रूप मनोहर ।
माखन लै मुख धरति स्याम के, 'सूरज' प्रभु रतिपति नागर-बर् ॥

आज यह गोपी द्वार खोलकर दधि मथ रही थी यह सोचकर कि कन्हैया जब इस वीथी से निकलेगा तो मैं यहीं से उसका दर्शन कर लूँगी।

दर्शन की प्यासी इस गोपी के आनन्द हेतु आज कन्हैया की क्रीडा उसके द्वार के बाहर ही होने लगी। ग्वालिन ने कन्हैया को देखा और कर-संकेत से चुपचाप बुला लिया अपने सूने घर में। जैसे ही कन्हैया घर में भीतर आया, ग्वालिन ने उसे अपनी दोनों भुजाओं में भरकर अपने उत्तंग कुचों से लगा लिया। इस अवसर पर वह भूल गई देह-गेह की सुधि। श्यामसुन्दर भी द्वादश वर्षीय नव कैशोर बन गये एवं उस ग्वालिन को रिझा लिया। थोड़े ही समय पश्चात् पुनः शिशु रूप धारण कर लिया। अब वह उस मनहर शिशु-रूप को अपलक देखने लगी। अभी ही जो ताजा नवनीत निकाला था, उसे बालकृष्ण के मुख में डालने लगी।

कन्हैया तो परम चतुर रति-पति ठहरे।

प्रथम करी हरि माखन चोरी ।
ग्वालिन मन इच्छा करि पूरन आप भजे ब्रज की खोरी ॥
मन में यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ ।
गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकै माखन खाउँ ॥
बालरूप जसुमति मोहि जानै, गोपिनि मिलि सुख भोगू ।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं, ये मेरे ब्रज लोगू ॥

ये ग्वालिनें भी विचित्र हैं। कभी तो कन्हैया को स्वयं बुलाकर माखन खिलाती हैं और कभी उसे माखन खाते देख पकड़कर यशोदा मैया से शिकायत करने चली जाती हैं।

चाहती भी हैं कन्हैया हमारे यहाँ चोरी करे, हमारा दधि-नवनीत खाये............

और फिर कन्हैया का कर पकड़ उसे भय दिखाती हैं – "चल तू मैया के निकट, आज मैं तुझे ऊखल से बँधवाऊँगी। आज मैं तेरी सांटी से पिटाई करवाऊँगी।" कुछ ऐसी ही योजना बनाए यह गोपी आज कन्हैया को पकड़ने की ताक में थी परन्तु पकड़ न पाई।

आजु हरि पकरि न पाए चोरी ।
लैगो चोर चोरि मन-माखन, जो मेरौ धन हो री ॥
बाँध्यौ कंचन-खंभ-कलेवर, उभय भुजा दृग डोरी ।
राख्यौ कठिन कठोर कुचन-बिच, सक्यौ न कोऊ छोरी ॥
अधर दसन खंड्यौ रस-गोरस, छुयो न काहू को री ।

**काम-दंड दंडी पै, घर कौ नाम न लेइ बहोरी ॥
तब कुलकानि आनि आड़े भइ, छमि अपराध किसोरी ।
सिर पै हाथ धराइ 'सूर' प्रभु, सोच-सोच सिर ढोरी ॥**

मन में बड़ा भारी पश्चाताप था।

इतनी योजना संजोये भी, आज मैं कन्हैया को चोरी करते हुए न पकड़ सकी। आज इस माखन चोर ने चुराया भी क्या ....मेरा मन रूपी माखन।

आभा युक्त स्वर्णिम-स्तंभ-सदृश उसके देह को मैंने अपनी दोनों भुजाओं से जकड़ कर नेत्र रूपी डोर से बाँध लिया है और छिपाकर कठिन कुचों के बीच रख दिया है; यहाँ से, अब न तो वह स्वयं मुक्त हो सकता है, न ही कोई मुक्त करा सकता है।

जहाँ हृदय में कृष्ण आ जाएँ, उसे '**कुचावटी**' कहते हैं।

डीग से ३.७ कि. मी. की दूरी पर स्थित है कुचावटी ग्राम।

जनूथर

नदवई से १८.८ कि.मी. की दूरी पर स्थित है जनूथर ग्राम।

यहाँ भूतेश्वर मन्दिर, गोपाल जी मन्दिर और राधारमण जी मन्दिर आदि तीन प्रमुख मन्दिर हैं। भूतेश्वर मन्दिर में स्वयं प्रकट शिवलिंग आज भी अपनी प्राचीनता का साक्ष्य दे रहा है।

कन्हैया ब्रज में क्या आया, सारा सुरपुर ही धरा पर उतर आया।

सुर हों या सुरेश्वर, ऋषि हों या महर्षि सबकी दृष्टि ब्रज पर ही है। जिसकी चरणधूलि साधन की चरमोत्कृष्ट दशा में अवस्थित योगियों के मानस ध्यान का विषय है। कदाचित उसका आभास मात्र ही प्राप्त हो जाये तो जन्म-जन्मान्तर की साधना सिद्ध हो जाये। ब्रज, ब्रजवासियों का अचिन्त्य सौभाग्य कि वह ब्रजेश बनकर यहाँ नाच रहा है। सच्चिदानन्द घनीभूत साकार विग्रह का दर्शन नेत्रों को सहज प्राप्त हो रहा हो तो फिर इस परम सौभाग्य को कोई कैसे त्याग देगा? फिर वामदेव को तो बाल-क्रीड़ा, रास-क्रीड़ा, सभी लीलाओं के दर्शन का सुयोग प्राप्त हुआ है। कन्हैया के जन्म का प्रथम समाचार मानो इन्हीं को प्राप्त हुआ। कर्पूर गोर प्रलम्ब शरीर, कटि में व्याघ्र-चर्म, धूसर विशाल जटाओं का मुकुट, ललाट पर भस्म-त्रिपुण्ड, रुद्राक्ष की मालाओं से, कृष्णसर्पों से शोभित भुजदण्ड, कर में कमण्डलु लिये पहुँच गये नन्दोत्सव में।

तथा तमनु भूताढयो वृषारूढ़ो महेश्वरः ।

(ग.सं.गो.खं. १२/४२)

सगण पधारे नन्दोत्सव में किन्तु मैया मेरा ही रूप सहन कर ले तो बहुत होगा। गणों से तो गड़बड़ हो जाएगा अतः उन्हें तो अदृश्य रूप से दर्शन करने की आज्ञा दी। दर्शन के लिए बहुत अनुनय-विनय करने पर भी मैया ने जब लाला का मुख दर्शन नहीं कराया तो बोले –

चाचा वृन्दावनदास जी की वाणी में –

शिव –

मैं तपसी वनखण्ड निवासी, जनमत जोग कमायौ ।
ताको फल लागो यह नगरी, सुधि पायो उठ धायो ॥

यशोदा –

कौन वृक्ष अरु बेल लगो फल ताको तुम जू बतायो ।
नहिं वन नहिं बाग यहाँ बेली जाय आसन जहाँ जमायो ।

शिव –

हर हर हँसे नाथ यह सुनके लाग्यो वचन सुहायो ।
कौन वृक्ष को बाग बताऊँ यशुमति भवन दुरायो ।
सुकृत पुंज की लता यशोमति, परम तत्त्व फल जायो ॥

आज अनन्त काल की साधना का फल लेने ब्रज की धरा पर यह रसिक प्रेमी आया है। कैसी कृपा प्राप्त हुई योगी को कि नन्दोत्सव के बाद कैलाश तो सदा के लिए विस्मृत हो गया, ब्रज में यत्र-तत्र-सर्वत्र डेरा डाल लिया।

धन्य है यह भूमि इसका प्रत्येक रजकण उसके श्यामल-नील-अरुण चरणों से चिन्हित होगा।

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्रयब्जरेणवः ।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥

(भा. १०/३०/२९)

बस, फिर तो कहीं ब्रजेश्वर, कहीं चक्रेश्वर, कहीं आसेश्वर, कहीं गोपेश्वर और कहीं भूतेश्वर बनकर विराजमान हो गये।

सख्य-क्रीड़ा का शशांक शेखर ने लिया आनन्द –

श्री परमानन्द दास जी की वाणी में –

चहुँ दिसि हरित भूमि बन मांहि ।
जोरि मंडली जेवन लागे बैठि कदम की छाँहि ॥
घुमड़ी घटा दामिनि की बरनत बसी न जाँहि ।

यह सुख स्याम! तिहारे संग बिनु और अनत कहुं नाँहि ॥
धनि धनि ग्वाल बाल जिनके हरि कौरिहि लै लै खांहि ।
'परमानन्द' ब्रह्मा सिव विस्मित सिर धुनि धुनि पछिताँहि ॥

ब्रज की वैभव-राशि की अभिव्यक्ति शब्दों से कहाँ सम्भवहै। चारों ओर हरीतिमा का साम्राज्य है। सघन कानन, फल-फूल के भार से झुके विटप, पुष्पित लताएं, एक ओर आम्र-मंजरियों के मध्य से कोकिलाओं का कुहू-कुहू रव स्पर्धा लगाये हुए है। मयूर नृत्य कर रहे हैं और दूसरी ओर स्वच्छ कोमल बालुका पर आसीन हैं सहस्त्रों सखाओं के मध्य कन्हैया। सूर्य कितना ही प्रचण्ड हो जाये किन्तु ब्रज के ये सघन पुष्पित पादप क्या पारिजात से कम हैं? ऐसी छत्रछाया करते हैं कि किरणें भूमि को छू नहीं पाती हैं। वृक्षों से सुमन गिर रहे हैं, कन्हैया का आस्तरण बनाने के लिए, धन्य हो गया आज यहाँ का प्रत्येक लता-पत्र।

गोपाल जी मंदिर – जनूथर

महदतिक्रमणशङ्कितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।
सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभिश्छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥

(**भा.** १०/३५/१३)

यही नहीं मेघ भी छत्र बनकर कन्हैया की छाया करते हैं, कभी कन्हैया की वंशी के साथ स्वर में स्वर मिलाकर अनुर्जन करते हैं और कभी-कभी नन्ही-नन्ही फुहियाँ बरसाते हैं, मानो पुष्प वर्षा कर रहे हैं।

कभी-कभी उन बादलों की ओट में देवों का भी भाग्योदय हो जाता है, वे भी गगन से पुष्प वर्षा करते हैं।

श्रीकृष्णदास जी की वाणी में –

बरसत कुसुम देव मुनि हरषत, मोही खेचर नारी ।
कृष्णदास प्रभु रसिक मुकुट मनि, लाल गोवर्द्धन धारी ॥
आवै माई ब्रज-ललना-दुःख-मोचन ।

श्री परमानन्द दास जी की वाणी में –

कौतुक देखहि सबै देवता जज्ञपुरुष है नीके रंग ।
सेस प्रसाद अबहि हम पायौ, परमानन्ददास हौ संग ॥

हँसत परस्पर करत किलोल ।

भोजन कर रहे हैं, बीच-बीच में विनोदयुक्त बातों से सब एक-दूसरे को हँसा रहे हैं। कन्हैया! तेरे बिना ये आनन्द कहीं नहीं है। ग्वाल बाल बोले।

ग्वाल बालों का यह सौभाग्य और इस अद्भुत लीला को देखकर विधि और शंकर अपने देवत्व के लिए पश्चाताप कर रहे हैं।

बिभ्रद् वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः ॥

(भा. १०/१३/११)

नन्हे कन्हैया ने मुरली कटिफेंट में खोंस ली है, श्रृंगी और बेंत बगल में दबाये हैं, वाम कर में घृत मिश्रित दधि-भात का मधुर ग्रास, अँगुलियों में अचार-मुरब्बे दबाये हुए हैं। ग्वाल मण्डली के मध्य बैठकर अनेक प्रकार का हास-परिहास हो रहा है। यज्ञभुक् होकर ग्वाल-बालों का जूठन खा रहा है, यह देखकर विधि विस्मित हो गये।

गोपाल जी – जनूथर

देवाधिदेव महादेव ने लिया यहाँ अद्भुत सख्यरस की लीला का आनंद।

नदवई

श्री परमानन्द स्वामी जी वाणी में –

कमल-लोचन कान्ह मधुर गावै ।
अधर बंसी धरी त्रिजग ग्रीवा करी, कुटिल अवलोकनी केहि नभावे ॥
बदन अंबुज-भासि कुटिल कुंतल अली, केकि-पंखावाली सीस सोहै ।
स्रवन गुंजा-पुंज कर्निका लंषिता, भौंह मनमथ-चाप भुवनु मोहै ॥
गंड-मंडल चारु विमल कपोल दुति, मुरलिका चुम्बिता जगतु जानै ।
परम निर्लज्जिता बंस कुल-संग्रही, देखि गोपी-बृंद अनखु मानै ॥
तरुन घनस्याम तन बसन वर दामिनी, ईद-धनु उदित बनमाल बानी ।
गरजिता मंद धुनि हरि गिरा सुंदरा, भक्त चातक मुदित प्रीति मानी ॥

नंदनंदन देखि बिगत मानस-बिथा, गोपिका-प्रेम जल नदी बाढ़ी ।
'दास परमानन्द' सिन्धु जादवराइ, मिलन ह्व अनुसरी रही न ठाढ़ी ॥

सिर पर गोरस उठाये चला जा रहा है ब्रजस्त्रियों का समूह। उसी की चर्चा, उसी का चिन्तन –

देखि सुरूप ठगोरी लागी गो-रस कौ मिस पायौ ।
'परमानन्ददास' इहि झगरौ काम-प्रेम ते लायौ ॥

गोरस के मिस कृष्ण-दर्शन ही तो अभीष्ट है इन्हें।

देख, वह रहा कमल लोचन!

कितना मधुर गा रहा है!

अधर पर वंशी है, वंशी बजाते हुए ग्रीवा को इस प्रकार से घुमा रहे हैं कि सारी त्रिलोकी में ध्वनि जा रही है और यह बङ्किम चितवन किसे अच्छी नहीं लगेगी। अम्बुज सा वदन, भाल पर बिखरी घुंघराली अलकावली और मस्तक पर मयूर-पुच्छ शोभित हो रहा है, कानों में गुंजा के गुच्छे, कमल कर्णिका के कुण्डल और भ्रू-विलास मदन के शर-संधान को भी हेय बनाता हुआ चतुर्दश भुवनों को मोहित कर रहा है, अत्यन्त सुन्दर गण्ड-मण्डल (कपोल के कुछ ऊपर का स्थान) एवं मणि दर्पण के गर्व चूर्ण करने वाले कपोलों की दप्-दप् कर रही द्युति और सारा जगत जानता है उनके अधरोष्ठ से चुम्बित इस मुरलिका को, यह रहा, वह बंसकुल (बाँस के वृक्षों का समूह) जिससे वंशी निकली है।

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥

(भा. १०/२१/९)

श्यामलांग पर तरुणाई तो देख, उच्च वक्षःस्थल और उस पर है रोमावली का मनोहर सौन्दर्य!

उस पर भी पिङ्गल दुकूल लगता है मानो पीत-तडिल्लहरी कौंध रही है!

इन्द्र धनुष-सी बनी हुई वनमाला।

नवीन मेघ की गर्जना-सदृश इसका मंद और गम्भीरस्वर! जैसे मेघ का स्वर चातक की प्रसन्नता का कारण होता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण का स्वर भक्तों के लिए।

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥

(भा.१०/२१/१९)

अचर, सचर हो जाते हैं व सचर, अचर। इस संगीत को सुनकर सखी, आज इस वन प्रान्त में नंदनंदन का दर्शन कर मेरी तो मानस-व्यथा चली गई।

और नदी बढ़ गई है।

नदी, कैसी नदी? संगिनी ने पूछा।

"गोपिका-प्रेम जल नदी बाढ़ी"

प्रेम जल की नदी बढी है, उसने कहा अतः इस स्थान का नाम नदवई हुआ।

प्रेम नदी श्रीकृष्ण-सागर में मिलने को अब चल पड़ी, खड़ी न रह सकी!

जनूथर से १८.८ कि.मी. और भरतपुर से ३६.८ कि.मी. की दूरी पर स्थित है नदवई ग्राम।

रूपवास

निरन्तर परिवर्धमान इस रूप-गरिमा को वाणी तो चित्रित करने से रही! यदि उपमा से आंशिक अनुमान करना चाहें तो यह अनुपमेय है।

लालहिं उपमा दीजै काकी

अथवा

तेरी उपमा कौं कहिधौं को है

(श्रीकेलिमाल-६३)

पुनः

उपमा कहा कहौं अरविंद

(कृष्णदास जी)

न जाने क्यों ये सब ब्रजाङ्गनाएं बावरी हो गयी हैं, अहर्निश उसी की चर्चा, उसी का गुणगान। आखिर उसमें ऐसा है क्या? वह एकदिन वन में गई यह देखने कि मैं भी बावरी होती हूँ या नहीं?

परमानन्द स्वामी की वाणी में –

लियो मेरे हाथ ते छिड़ाई।
ता बन को लखत ही माखन, डार्‌यो हे कुँवर कन्हाई।
बूझन लग्यो मोही को कौन है, पाहुनी कहा तेरो नाम।
देखियत कछु भली मानसरी, कहि धों तेरो गाम।
देखत रूप ठगी सी ठाढ़ी, मनमोहन रूप बिकाई।

परमानन्द दास कौ ठाकुर, प्रेम ठगोरी लाई ॥

संगिनी ने कहा था कि वन में गोरस अवश्य लेकर जाना तो मटुकी में नवनीत लेकर वन में गई थी, सहसा ऐसा लगा जैसे किसी ने मटुकी छीन ली, मुड़कर देखा तो वही बहुश्रुत रूप था। दोनों की ओर से यह प्रथम दर्शन था। अरी पाहुनी! तू कौन है, तेरा क्या नाम है? तेरा यह सहज स्वरूप तो बड़ा ही सुन्दर है, अच्छा किस गाँव की है तू? एक ही बार में इतने प्रश्न पूछ लिये कृष्ण ने।

मेरा तो तन-मन ठहर गया, उसकी सुमधुर ध्वनि सुनकर। मनमोहन के रुप की निकाई (स्वच्छता), जिसे देखकर मैं ठगी सी खड़ी रह गई, मानो मेरा तो सर्वस्व लुट गया, ठग लिया उसने मुझे भी।

मेरा गर्व चूर्ण हो गया। मैं भी उन बावरी ब्रजाङ्गनाओं के टोल में जा मिली।

निरखि त्रिभुवन धनी प्रेम पूरन सनी, माधुरी रूप रस में लुभानी ।

अब तो –

अंग सब रंग हरि के रंगी ह्वै गई ।
कोउ कहौ बावरी कोऊ अयानी ॥

(कृष्णदास जी)

पुनः

नखसिख तें अंग अंग रूप छबि, देखि देखि पै मन न अघाति ।
निसि अरु दिन इकटक राखि पलक लगाईं न जाति ॥
छवि तरंग अगनित सरिता ज्यों, जलनिधि लोचन तृपति नमनाति ।
'कृष्णदास' प्रभु की सोभा देखि, ऐसी लालच रही ललचाति ॥

नख से शिख तक अंग-अंग असंख्य छवियों का संग्रह है, जिसे देखते हुए मन कभी तृप्त नहीं होता है। निरन्तर अपलक देखती हूँ इस स्वरूप को। निरन्तर नवीन होने वाली छवि की तरंगें इतनी हैं कि लगता है अगणित नदी बह रही है, जिस प्रकार नदी की अन्तिम गति समुद्र में ही है, उसी प्रकार इसके रूप की अगणित सरिताओं का समावेश मेरे लोचन-सिन्धु में ही है। समुद्र अगणित सरिताओं के समावेश पर भी जैसे कभी इत्यलम नहीं कहता, वैसे ही मेरे नेत्र-सिन्धु भी।

दिन-रात दर्शन का लालच ही बढ़ रहा है।

ए ढोटा हठि हरत परायौ मन ।
देखत रूप – ठगोरी सी लागति, जगत-बिमोहन स्याम बरन तन ॥

दिन-दिन चौप चौगुनी लागत, पावस रितु मानों नौतन घन ।
दामिनि कोटि पीतांबर की छबि, परमानन्द राजत वृंदावन ॥

श्री कुंभनदास जी की वाणी में –

रूप देख नैननि पलक लागे नहीं ।
गोवर्द्धन-धर अंग-अंग प्रति जहाँ ही परति दृष्टि रहति तहीं-तहीं ।
कहा कहों कछु कहति न आयो चौर्‌यौ मन माँगि वे दही ।
'कुंभनदास' प्रभु के मिलिवे की सुन्दर बात सकल सखीनु सों कही ॥

उस मदगर्विता को रूप की ठगोरी यहीं लगी।

श्रीकृष्णदास जी की वाणी में –

सोभा बरनी न जाइ री माई!
जो मुख जीभ होई लख कोरी ।
नंदराइ की अँगुरी लागे, गिरिधर पिय बलराम की जोरी ॥
बड़े भाग देखे नौतन भई, जेतिक कहति तेती बात है थोरी ।
'कृष्णदास' बलि-बलि चरननि की, तन मन फूलि गावैं नाचैं होरी ॥
"कस्या कंसारे! हरति हृदयं पंकजदृशः"

आपका यह स्वरूप किस कमलनैनी के मन का हरण नहीं करेगा?

"विभूषणं विभूष्यं स्याद्येन तद्रूपमुच्यते"

(भ.र.सि.२, १.३३८)

भूषण भी जिससे विभूष्य बन जाएं अर्थात् अलंकार भी जिससे अलंकृत हो जाय उसे "रूप" कहते हैं।

कृष्णस्यमण्डनततिर्मणिकुण्डलाद्य नीताङ्गसंगतिमलकृतयेवरांगी!
"शक्ता बभूव न मनागति तद् विध्यने सा प्रत्युत स्वयमन तपमलं कृतासीत्"

हे वरांगि! कृष्ण के शरीर को अलंकृत करने के लिए मणिकुण्डलादि धारण कराये गये थे किन्तु वे उनकी क्या शोभा बढ़ाते स्वयं ही श्रीकृष्ण के रूप से अलंकृत, शोभित हो उठे। यहाँ के प्रतिष्ठित

रूपवास कुण्ड

मन्दिरों में दाऊ जी एवं राधा गोपी नाथ जी के मन्दिर हैं। यहाँ का रूप कुण्ड अति प्राचीन है एवं दर्शनीय है।

सीकरी से १२ कि.मी. दूरी पर स्थित है रूपवास ग्राम।

हलेनो

दक्षिण दिशा नई ऋतु दूजी ह्द जु हलैंनौं थान चिताई ॥

कन्हैया की समुचित सेवा के लिए ही तो इस बार हलधर ज्येष्ठ भ्राता बनकर आए हैं। बाबा-मैया भी अग्रज के संरक्षण में कन्हैया को छोड़कर निश्चिन्त हो जाते हैं। एक ही बार अग्रज नहीं गये तो कन्हैया काली दह में कूदकर कालिय से मुठभेड़ कर बैठा। मैया का दाँया और बाबा का बाँया अंग फड़का, बस, फिर क्या था, कन्हैया के अनिष्ट की आशंका ने अत्यंत व्यथित कर दिया दोनों को। (भा.१०/१६/१३) कन्हैया अग्रज के बिना ही अकेला जंगल में गया है, यह जानकर नन्द बाबा भय से अत्यधिक व्याकुल हो गये तब दाऊ दादा ने ही सबको धैर्य बंधाया। अग्रज भी तो सेवा के लिए ही बने हैं अतः सदा ही साथ रहते हैं। यह स्थान विशेष रोहिणी नंदन हलधर जी की लीलाओं से जुड़ा होने के कारण "हलैनो" नाम से संज्ञित हुआ।

राम-श्याम दोनों भैया जब ब्रज सीमांत के इस सुदूरवर्ती स्थल पर पहुँचे तो श्यामसुन्दर अपने ज्येष्ठ भ्राता से बोले –

अहो अमी देववरामरार्चित्तं पादाम्बुजं ते सुमनः फलार्हवम् ।
नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मन-स्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥

(भा. १०/१५/५)

हे देवश्रेष्ठ! बड़े-बड़े देवताओं के द्वारा आप पूजित होते हैं किन्तु यहाँ ब्रज के वृक्ष भी अपनी डालियों द्वारा सुन्दर पुष्प और फलों की भेंट लेकर आपके चरणारविन्दों में नमित हो रहे हैं। इन दिव्य तरुओं ने इसी सौभाग्य के लिए तथा अपना दर्शन एवं अपनी महिमा का श्रवण करने वालों के अज्ञान का नाश करने के लिये ही ब्रज धाम में स्थावर योनि को ग्रहण किया है।

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥

(भा.१०/१५/६)

हे आदिपुरुष! आप इस ब्रजभूमि में अपने ऐश्वर्य रूप को तिरोहित करके गोप-बालकों की तरह चेष्टायें कर रहे हैं, तब भी आपके उत्तम भक्त मुनिगण आपको आपने इष्टदेव के रूप में पहचान कर भ्रमरों के रूप से सदा ही आपके त्रिलोक पावन यश का गान करते हुए

सतत् आपके भजन में अनुरक्त रहते हैं। क्षण मात्र को भी वे आपको छोड़ने में असमर्थ हैं। यहाँ की लीला को अष्टछाप के रसिक सन्त परमानन्द दास जी ने भी गया है –

कदम-तर भली भाँति भयो भोजन ।
हलधर कहत करौ अब अचबन गैयां भूली जोजन ॥
जो भावै सो और कछु लैहो, करत सखा सब नाहीं ।
चलि गाँइनि देखौ 'परमानन्द' घटा चहूँ दिसि छाहीं ॥

यहाँ के कदम्ब वृक्षों की सघन छाया में बैठकर हरि-हलधर और उनके सखाओं ने प्रीति सहित भोजन किया। तब तक हलधर बोले –"अरे सखाओं! भोजन कर लिया हो तो शीघ्र ही आचमन करो और देखो हमारी गायें मार्ग भूलकर बहुत दूर चली गई हैं। तुम लोगों को विविध व्यंजनों में और जो कुछ भी खाने की इच्छा हो, उसे ले लो। " सभी सखा पूर्णतया तृप्त हो चुके हैं अतः और खाने को मना कर देते हैं। दाऊ भइया कहते हैं –

चारों ओर काली घटा घिर आयी है, अब हम लोग देखने चलते हैं कि हमारी गायें किधर गयीं हैं।"

नदवई से २२.५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है हलेनो ग्राम।

सिंहावली

अतिप्रिय मोहिं इहाँ के बासी । मम धामदा पुरी सुखरासी ॥

(रा.च.मा.उ.का.दोहा ४ क)

वासी से मतलब यहाँ के पशु-पक्षी, चराचर प्राणी सब इस कन्हैया को अतिशय प्रिय हैं। गोपवृन्द, गोपीवृन्द, वत्सवृन्द ....इसके असंख्य स्वजन हैं। कोई सोच भी नहीं सकता, दिन में न जाने कितनी बार गोवंश को यह साष्टांग करता है, क्यों न हो, गोपाल जो ठहरा। तभी तो कमला भी यहाँ की गाय बनने को लालायित हो गई।

कमला हू तरसत रही क्यों न भई हम गाय ।
राधा लेती दोहनी, मोहन दुहते गाय ॥

श्री सूरदास जी के शब्दों में –

हम ना भई वृन्दावन रेनु ।
जिन चरनन डोलत नंदनंदन, नितप्रति चारत धेनु ॥

हम ते धन्य परम ये द्रुमवन, बाल बच्छ अरु धेनु ।
सूर सकल खेलत हंसि बोलत, ग्वालन संग मथि पीवत धेनु ॥

श्री रसखान जी के भाव –

जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौ नित नन्द की धेनु मझारन ।

अथवा

आठहु सिद्धि नवों निधि कौ सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं ।

अथवा

मोहिनी तानन सौं रसखानि, अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै ।

श्री रूप कुंवरि जी के भाव –

हे हरि ब्रजवासिन मोहि कीजै ।
चाहे ब्रज धेनु चाहि ब्रज बछरा, चाहे ब्रज तृणचर कीजै ॥

श्री व्यास जी के भाव –

श्री राधे रानी मोहि अपनी कर लीजै ।
और दियैं कछू भावत नाहीं, (श्री) वृंदावन रज दीजै ॥
खग मृग पसु पंछी या वनके, चरन सरन रख लीजै ।
व्यास स्वामिनी की छबि निरखत, महल टहलनी कीजै ॥

गोपाष्टमी का पावन पर्व भी तो इस गोभक्त ने बनाया।

जब पाँच वर्ष का हुआ तो मचल गया गोपाल बनने के लिए –

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥

(भा.१०/१५/१)

महर्षि शाण्डिल्य द्वारा गोचारण का तिलक हुआ। अपने साथ-साथ न जाने कितने बालकों को गोपाल बनाया –

प्रथम गोचारण को दिन आज ।
लरिका सकल संग संकर्षण वेणु बजाय रसाल ।
आगे धेनु चले गोविन्द प्रभु नाम भयो गोपाल ॥

(गोविन्द स्वामी)

उस दिन से तो इन नन्हे-नन्हें बालकों के मन में जाने कैसी गोभक्ति जाग गई, बड़े भोर स्वयं ही जाग जाते हैं, गायों की ग्रीवा खुजलाते हैं, पीठ थपथपाते हैं और फिर चरण

छूकर नन्द-खिरक की ओर बढ़ जाते हैं। वहाँ गोष्ठ में पहले से कन्हैया गोसेवा में लगा है। एक साथ जब सब वन में जाते हैं, अपूर्व शोभा होती है।

आगे गाय पाछे गाय इत गाय उत गाय।
गोविन्द को गायन में बसवौ ही भावे है॥
गायन चरण लावै, गायन के संग धावै।
गायन की खुर रज अंग लपटावै है॥
गायन सौ ब्रज छायौ, बैकुण्ठहु बिसरायौ।
गायन के हेत गिरि, कर ते उठायौ है॥
छीत स्वामी गिरिधारी बिट्ठलेश वपुधारी।
ग्वारिया को वेष धरै, गायन में आवै है॥

गावो मे चाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

(स्कन्दपुराणम्/अवन्तीखण्डः/रेवा खण्डम्/अध्यायः १५९/८१)

मैया ने तो कार्तिक शुक्ल अष्टमी को डरते-डरते गोचारण का तिलक कराया था लाला का किन्तु यह क्या ....?

कन्हैया हेरी दै गावै ।
नाना बरन नाम गांइनि के बेनु बजाइ बुलावै ॥
सींग आवरी आँख काजरी मोटे जिनके पाठे ।
तिनके डरनि सिंघ थर काँपै ब्रज में बिजाहर बाठे ॥
जाँघनि पर रोटी धरै दधि सों ओदन सान्यौ ।
'परमानन्द' स्वामी के संगी दूध पतौअनि आन्यौ ॥

ये चंचल वत्स, नुकीले श्रृंग वाली गायें व विशालकाय वृषभ – सब इसके संकेत का अनुसरण करते हैं। पीला परिधान जिधर घूम जाता है, उसी दिशा को पकड़ लेते हैं, कर का संकेत भी समझते हैं और जब मोहन की मुरली ध्वनित होती है तो ये युगल कर्ण खड़े करके ऐसे खड़े हो जाते हैं मानो गोपाल ने वंशी में इन्हीं का नाम गाया।

कारी काजर धौरी धूमरि, पियरी पियरी कह-कह टेरत ।
बरुहा मुकुट सीस कांधे कमरिया, हाथ लकुट लिये गैयन घेरत।
अगली आगे गई पिछली पाछे रही, दक्षिण कर पीताम्बर फेरत।
सुधि ना रही मोहि तन की तन कहूं, चतुर्भुज प्रभु गिरिधर छवि निरखत ॥

श्री परमानन्द स्वामी के भाव –

देखहु भाग इनि गाइन कौ, प्रीति करी बनवारी

प्रीति भी इतनी कि गोपीजनों को शिकायत करने आना पड़ा।

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः

(भा. १०/८/२५)

अरी यशोदे! तेरा लाला हमारे वत्सों को असमय में खोल देता है और वे गायों का दूध पी जाते हैं।

कन्हैया – तुम गायों का सब दूध दुह लेती हो और वे बेचारे वत्स भूखे रह जाते हैं। मैं बड़ा होकर मल्ल बनूँगा और ये बड़े होकर बलशाली विशाल वृषभ बनेंगे।

सिंहावली ग्राम के निकट चट्टान काट कर बनाई गई दाऊ जी की विशाल मूर्तियाँ दीर्घ काल की है

(धीरे-धीरे वत्स बढ़ने लगे।)

अर्जुन – कन्हैया, देख तो ये धौरी का वत्स है, इसका स्कन्ध कितना उन्नत हो गया है।

श्रीदाम – अरे, इसके नेत्र तो वैदूर्यमणि की तरह चमकते हैं।

सुबल – और इसके कान कितने बड़े-बड़े हैं दादा।

स्तोक कृष्ण – और दादा, इसकी लम्बी पूँछ तो मेरे केश जितनी है।

कन्हैया – हाँ, अब हमारे ये वत्स एक सुगठित मल्लवत् लग रहे हैं।

विशाल – हाँ कन्हैया, मेरे जैसे ही लग रहे हैं।

मधुमंगल – अब हम आज से इन्हें “विशाल वृषभ” कहेंगे।

विशाल – अरे, मैं वृषभ नहीं हूँ।

मधुमंगल – तुम तो वृषभ नहीं हो किन्तु हमारे वृषभ तो विशाल हैं।

(विनोदी मधुमंगल की बात सुनकर सब सखा हँस पड़े)

वायु पुराण के अनुसार – करट, नन्दीमुख, समुद्र, धन्य, नील वृष... ये उत्तम जाति के वृषभ हैं। कन्हैया के ये वत्स जिनके श्रृंग ताँबे की तरह, धरा-चुम्बित दीर्घ पुच्छ, उन्नत डौल, झूलता गलकम्बल ..... किसी का वर्ण स्वर्ण-सदृश सुनहरा तो किसी का उज्जवल धवल, किसी का चितकबरा तो किसी का पीला रंग ...... दूर से जब झूमते हुए आते तो लगता मानो सुपुष्ट गायों के मध्य मतवाले सिंहों का समूह आ रहा हो। इन वृषभों के चरण जब पृथ्वी पर पड़ते तो धमक से वन के सिंह भी काँप जाते, गंध से दूर भाग जाते।

"तिनके डरनि सिंह थर काँपै, ब्रज में बिजाहर बाढ़ै" सिंहो को भी भयोत्पन्न करने वाले वृषभों का निवास होने से यह पावन भूमि **"सिंहावली"** के नाम से शोभित हुई।

वे वत्स ऐसे वृषभ बन गये कि सिंह भी इनकी गन्ध से भागने लगे। सघन वन होने से सिंह-व्याघ्रादि यहाँ निवास करते थे।

आउ हो आउ गुसाँई नन्दनन्दन! लै धेनु।
साँझ परी है भई अब रातें कहाँ बजावै बेनु॥
सिंघ व्याध बिग बहुत रहत हैं तिनकौ डर तोहि नाहिं।
वृन्दावन घनस्याम मनोहर चलहु दौरि घर जाहिं॥
तरुवर चढ़ि ग्वाल सब टेरत कह्यौ न सुनै हमारौ।
नन्द-जसोदा मारगु जोवत जिनिकौ खरौ पियारौ॥
भुवन चतुर्दस जाहि समाने निगम पार नहिं पावै।
'परमानन्द' प्रभु त्रिगुन-रहित हैं ताहि ग्वाल डरपावै॥

(परमानन्द सागर)

सीकरी से १२ कि.मी. की दूरी पर स्थित है सिंहावली ग्राम। यहाँ पर प्राचीन राधाकृष्ण मन्दिर है।
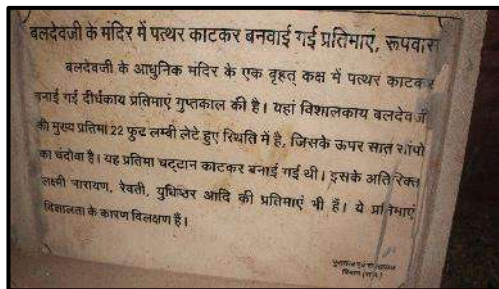
समाहद्

समाहद अथवा समाद गाँव, यहाँ का प्राचीन मन्दिर सम्प्रति खण्डर रूप में है। खेतों में भग्नावशेष भी कभी-कभी प्राप्त होते हैं जिससे ज्ञात होता है किसी समय यहाँ प्राचीन मन्दिर अवश्य रहा होगा।

'प्राचीन ब्रज-परिक्रमा' ग्रन्थ के अनुसार –

जाय समाहद् पानी प्यायौ वरहद् सर न्हाये जु बिहारी ॥
दूजी वरहद् निकट समाहद् सीमा अधिक जु न्यारी न्यारी ।
नमो नमो जु समाहद् दक्षिन ।
वृजहद् करत पाप रद् जन के परिकर घोस मिलै जु ततक्षन ॥
कुण्ड सरोवर पुनि गोपद् जल तिनहि जान तीरथ जु बिलक्षन ।
वृन्दावन हित रूप घोस अस महिमा कही वराह विचक्षन ॥

यह वो स्थान है जहाँ आने मात्र से तत्क्षण भगवान् समस्त पापों को नष्ट कर देते हैं और नित्य सिद्ध घोष-परिकर में प्रवेश प्राप्त हो जाता है। संसार के जितने भी तीर्थ हैं उनमें सबसे श्रेष्ठ एवं विलक्षण है यह तीर्थ, जिसकी महिमा चाचा वृन्दावन दास जी ने तो गायी है, श्री वराह भगवान् द्वारा वराहपुराण में भी गायी गई है।

प्राचीन मन्दिर सम्प्रति खण्डर में है

भरतपुर से ३८.४ कि.मी. और रूप कुण्ड से ५ कि.मी. की दूरी पर समाद गाँव स्थित है।

फरसौ

'प्राचीन ब्रज-परिक्रमा' ग्रन्थ के अनुसार –

"फरसौ गाँव बसत है ब्रज की कोर ।"

अर्थात् फरसौ ब्रज का सीमावर्ती गाँव है।

भरतपुर से ३५.३ कि.मी.की दूरी पर स्थित है फरसौ ग्राम।

थून

नगर से ५ कि.मी. नदवई रोड पर थून गाँव है। यहाँ सीताराम जी का मन्दिर है। इसके अतिरिक्त नगर से सुन्दरावली होकर जाटोली थून को जाते हैं, यह नगर से छः कि.मी. दूर है। थून में प्राचीन अवशेष अधिक प्राप्त नहीं हुए हैं, एक प्राचीन टीला अवश्य है, प्राचीन किले जैसी इमारत भी भूमिगत हो चुकी है। बाह्य ब्रज के अधिकांश स्थानों में गोचारणार्थ आने पर श्रीकृष्ण की सख्य क्रीड़ा हुई है।

असंख्य गायें और उनके संरक्षक गोपगण प्रतिदिन प्रातः राम-कृष्ण के साथ गोचारण को जाते हैं। वन की शोभा देखते हुए ये प्रतिदिन कितनी दूर निकल जाते हैं, इन्हें स्वयं पता नहीं। कार्तिक शुक्ल अष्टमी को इसीलिए मैया गोचारण का तिलक नहीं होने दे रही थी। कन्हैया अभी छोटा है,

थून – भूमिगत इमारतें

बालक को दिन में न जाने कितनी बार भूख लगे, वन में कहाँ इसे कोई अंक में बिठाकर खिलाएगा। अत्यधिक भूख लगने पर कच्चे-पक्के फलों को खा लिया तो उदर में किसी भी प्रकार की पीड़ा हो सकती है। गोष्ठ में दाऊ से झगड़ा होने पर तो बाबा सम्भाल लेते हैं, वन में कौन इन्हें सुलझाएगा। मैया की आशंकाओं का तो कोई अंत ही नहीं है किन्तु कन्हैया का ही हठ पूरा हुआ, बन गये गोपाल। अब प्रतिदिन गोचारण के लिए ब्रज से वन

को जाते हैं। सब गोपालक कन्हैया का अनुगमन करते हैं। गोपाङ्गनाओं का तो एक ही कार्य है , ब्रज से आते-जाते कन्हैया को निहारना –

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनवेणुजुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥

(भा. १०/२१/७)

नेत्रों की सफलता भी तो इसी में है।

(परस्पर) गोपी – अरे, इसका ग्वारिया वेष तो देख, मस्तक पर मयूर-मुकुट, भाल पर गोरोचन का तिलक, गले में वनमाला, कन्धे पर पीला पटुका, कटि-काछनी में मुरलिका, वाम स्कन्ध पर कुण्डलाकार मृदुल रज्जु, वाम हस्त में श्रृंग, दक्षिण हस्त में सुन्दर वक्र-वेत्र, पूरा ग्वारिया वेष है। लाला के वन चले जाने पर मैया छाक की तैयारी में जुट जाती है। छकिहारिनों के द्वारा विविध व्यंजन थालों में सजाकर वन में भेजती है। छकिहारिन ग्वालिनें कन्हैया पर गायों के पदचिन्हों को देखते हुए वन में पहुँच जाती हैं। नन्द सदन से थालों को रंग-बिरंगे वस्त्रों से ढककर चली हैं किन्तु आज कन्हैया के पदचिन्हों की लम्बी पंक्ति का कहीं अंत ही नहीं दिखाई दे रहा है इन्हें। चलते-चलते बेचारी थक गयीं, अवश्य ही आज वह ब्रज के सीमान्त वनों में गोचारण कर रहा है किन्तु कन्हैया के दर्शन-आनन्द पाकर मार्ग का श्रम झट समाप्त हो जाता है।

श्रीकृष्णदास की वाणी में –

लाल केतिक दूर बन आवत ।
यशोमति औसेर करत है ढिंग ही क्यों न चरावत ।
हार परी हौं यहाँ लौं आवत, द्यौस चढ़यौ लख धावत ।
निजजन व्यज क्यों दूर आये, जो तुमहीं कूँ भावत ।
चलहु न उठ क्यों ठौर लाड़िले, जही ये छाक धरावत ।
कर गहि चले निकुञ्जभवन में, अद्भुत भाव जनावत ।
छाक धराय यहाँ लौं आयो, दोनों क्यों न बतावत ।
शीतल ठौर देख भोजन की, सबै होहु समरावत ।
धरे बाँह चले रसिक प्रीतम प्रिय, सख प्रमोद बढ़ावत ।
कृष्ण चरण गो चारण को यह, दास मुदित मन भावत ॥

थलचाना (राजस्थान)

ग्रामवासियों के कथनानुसार थलचाना अर्थात् वह स्थान जहाँ चैन (आराम) मिलता है। यहाँ पर जल की पर्याप्त उपलब्धता एवं पशुधन के लिए पर्याप्त चारा होने के कारण

लीलाकाल में गोविन्द द्वारा गोचारन के समय उनके गोधन को यहाँ विश्राम मिलता था। वर्तमान काल में यहाँ रहने वाले मेव प्राचीन काल के छोंकर जाति के राजपूत हैं जो दहगल गोत्रीय हैं।

जुरहरा से ८ कि.मी. की दूरी पर स्थित है थलचाना ग्राम।

नगर

यह ब्रज वह नगर है जिसकी गलियों में सुकृतिजनों के हृदय का हरण करते हुए श्रीराधा एवं नन्दनन्दन एकान्तिक क्रीड़ा में रत रहते हैं।

कदा वा खेलन्तौ व्रजनगरवीथिषु
हृदयं हरन्तौ श्रीराधाव्रजपतिकुमारौ सुकृतिनः।
अकस्मात् कौमारे प्रकटनवकैशोरविभवौ प्रपश्यन्
पूर्णः स्यां रहसि परिहासादिनिरतौ ॥

(रा.सु.नि. ६५)

नगर भरतपुर जिले की तहसील है। यह एक घनी आबादी वाला क्षेत्र है। यहाँ पर प्राचीन समय के बहुत से अवशेष पाए गये हैं। नगर में प्रायः हिन्दू बहुल लोगों की अनेकों जातियों का निवास है, जबकि निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों में केवल गुर्जर और मेव जाति के लोग अधिक हैं। नगर में बहुत से प्राचीन मन्दिर और कुण्ड आदि हैं। प्राचीन मन्दिरों में एक तो वनखंडी जी का मन्दिर है जो सौ वर्ष पुराना बताया जाता है इसके अतिरिक्त यहाँ बांकेबिहारी जी का मन्दिर, मुरली मनोहर जी का मन्दिर एवं महादेव जी के मन्दिर स्थित हैं। नगर वासियों का कहना है कि पहले ब्रज परिक्रमा यहाँ से होकर जाया करती थी।

डीग से नगर की दूरी २५.७ कि.मी. है।

रसिया

रस का ज्ञाता व रस का आस्वादक ही रसिक अथवा रसिया है फिर श्रीकृष्ण तो रस-लम्पट, रसिकशेखर ठहरे। ये रसास्वादक भी हैं तो रसास्वाद्य भी हैं।

रसिया पहाड़ी

श्रीमद्भागवत में –

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्श स्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

(भा. १०/३३/१७)

तैत्तरीयश्रुति के अनुसार धाम में जीव ब्रह्म के साथ दिव्य सौशब्द्य, सौस्पर्श्य का उपभोग करता है।

श्रीपरमानन्ददासजी की वाणी में –

सुन री सखी! तेरौ दोसु नहीं मेरौ पिउ रसिया ।
जो देखत है सों भूलि रहत है कौन-कौन के मन बसिया ॥
सो को जो न करी बस अपने जा तन नेंकु चितै हँसिया ।
परमानन्द प्रभु कुँवर लाड़िलौ अबही कछु भीजत मसिया ॥

श्रीमद्राधासुधानिधि के अनुसार –

रसागाधे राधाहृदि सरसि हंसः करतले
लसद्वंशः श्रोतस्यमृतगुणसङ्गः प्रतिपदम् ।
चलत्पिच्छोत्तंसः सुरचितवतंसः प्रमदया
स्फुरद्गुञ्जागुच्छः स हि रसिकमौलिर्मिलतु माम् ॥
अकस्मात् कस्याश्चिन् नववसनमाकर्षति परां
मुरल्या धम्मिल्ले स्पृशति कुरुतेऽन्याकरधृतिम् ।
पतन् नित्यं राधापदकमलमूले व्रजपुरे
तद् इत्थं वीथीषु भ्रमति स महालम्पटमणिः ॥
एकस्या रतिचौर एव चकितं चान्यास्तनान्ते करं
कृत्वा कर्षति वेणुनान्यसुदृशो धम्मिल्लमल्लीस्त्रजम् ।
धत्तेन्याभुजवल्लिमुत्पुलकितां सङ्केतयत्यन्यया
राधायाः पदयोर्लुठत्यलममुं जाने महालम्पटम् ॥

(रा.सु.नि. २३१, २३२, २३३)

प्राचीन हनुमान जी मंदिर - रसिया

डीग से रसिया की दूरी १८.८ कि.मी. है।

दिदावली

कन्हैया की दादी का निवास था यहाँ। नंदबाबा को जब बद्रीनाथ दर्शन करने की इच्छा हुई तो श्रीकृष्ण द्वारा बद्रीनाथ, केदारनाथ को भी ब्रजवास प्राप्त हुआ। बूढ़े बद्री को जाते हुए नन्द बाबा सपरिवार यशोदा-रोहिणी, कृष्ण-बलराम सबको लेकर दादी के गाँव आये।

स्थानीय ब्रजवासियों का कथन है कि इस अवसर पर दादी ने जब अपने लाड़ले कन्हैया को देखा तो पयोधरों से दूध क्षरित हो उठा। यहाँ दादी ने पिलाया कन्हैया को दूध अतः स्थान का नाम दुदावली हुआ।

जनश्रुति है कि जहाँ लाला ने दादी का दुग्धपान किया, वह कृष्ण कुण्ड हुआ, जो बड़ा प्राचीन कुण्ड है। यहाँ प्राचीन नृसिंह मन्दिर है, हनुमान जी का विग्रह भी है जिसे यवनों ने उठाकर फेंकने की चेष्टा की थी किन्तु विग्रह हिला तक नहीं, यह विग्रह बहुत जाग्रत है। यहाँ स्वयंभू महादेव के दर्शन भी हैं। गुसांईजी का बाग भी है। पहले अनेक यात्राएं यहाँ ठहरती थीं किन्तु अब यात्रामार्गों को बहुत संकुचित कर दिया गया, परिणाम स्थानीय भी स्थान-माहात्म्य भूल गये।

डीग से २.८ कि.मी. की दूरी पर स्थित है दिदावली ग्राम।

टांकोली

ब्रज परिक्रमा मार्ग में डीग और खोह के मध्य स्थित यह श्रीकृष्णकी गोचारण लीला का क्षेत्र है। रासेश्वर श्रीकृष्ण महारास के समय गोपियों के बीच से अन्तर्धान होकर रासेश्वरी श्रीराधारानी को लेकर जब आदि बद्री की ओर गये तो मार्ग में यहाँ युगल सरकार ने विश्राम किया। यहाँ पर श्रीराधाकृष्ण एवं हनुमान जी का एक प्राचीन मन्दिर है। एक प्राचीन कुण्ड भी गाँव में है।

श्री परमानन्ददास जी के शब्दों में –

नैननि को टकुझकु तेरौ ।

अथवा

दोउ नैननि तें लायो टकुझकु ।
बारंबार द्वार है झाँकति मदनगोपाल की मूरति कौतुक ॥
जो लौं हरि कौ स्वरूप न देखति, हृदै तलाबेली है लागति ।
परौस-बास हमारौ तेरौ ग्वालिनि चरनकमल अनुरागति ॥
तू नागरि और सबै अयानी, अपनौ सहज सुभाव जनावति ।
'परमानँद' स्वामी-रस अटकी, ताकी गीधी दिन-प्रति आवति ॥

गोपी – "आज तो कन्हैया मेरे सदन का आधा द्वार खोलकर उसमें से झाँकने लगा। मुझे पता था यह कोई दूसरा नहीं, कन्हैया ही है तो भी मैं अनजान बनी रही किन्तु कब तक अनजान बनी रहती, उसे निहारने को नेत्र दौड़ रहे थे, हृदय उत्कण्ठित हो रहा था।"

"अरी सखी, मेरा-तेरा तो पारोस (निकट) का ही निवास है। तेरा भी उसके चरणों में प्रेम है और मेरा भी। अन्य तो सब अयानी (अनजानी) हैं, प्रेम से परिचित नहीं हैं।"

अपना सहज स्वभाव तो दिखाती ही हैं।

"प्रीत कियो तो निरखो चाहे, निरखो चाहे परसो चाहे ।"

कृष्णरस में ऐसी अटक गई हैं ये कि, प्रतिदिन नंदसदन में झाँकने आती हैं।

देखत रूप ठगोरी लागी, नैंन रहे अरुझाई ।
टगटगी लागी ललन मुख निरखत, नागरी अति अनुरागी ॥

बिथकित भई मारग में, सुधि न गात कुल पति भय भागी ।
'गोविंद' प्रभु दंपति रस मूरति, प्रेम रस पागी ॥

कृष्ण का रूप देखकर ठग गई यह। नेत्र उलझ गये और टकटकी लगाकर देखती रह गई उसके साँवले गात को। अति अनुराग में भरी यह नागरी प्रेम की मादकता में विथकित हो गई। देखो तो, इसे न देह-सुधि है, न कुल का भय। रस की मूर्ति प्रेम में पग गई है।

डीग से ६.८ कि.मी. की दूरी पर स्थित है टांकोली ग्राम।

बरौली धाऊ

इस ग्राम में गुर्जर जन निवास करते हैं। यह एक प्राचीन गाँव है, यहाँ के पूर्वजों का पूर्व निवास स्थान मथुरा बताया जाता है। ग्रामवासियों के मतानुसार वर्तमान काल में बरौली धाऊ को ब्रह्मपुरी के नाम से भी जाना जाता है। ऐसी मान्यता है कि निकटवर्ती पर्वत शिखर पर, ब्रह्मा जी द्वारा तप किया गया था; तदनुसार ब्रह्मपुरी के नाम से भी इसकी प्रसिद्धि रही है। गाँव में एक कुण्ड है, जिसका प्राचीन नाम पापमोचन नैनताल है। वयोवृद्ध ग्रामवासियों के अनुसार इस सरोवर की विशेषता यह थी कि इसका जल सफेद दूध के सदृश्य था और समय-समय पर इस जल में दूध की तरह उफान भी आता था। यहाँ के ब्रजवासियों ने यह दृश्य स्वयं अपनी आँखों से देखा था ।

सघन वृक्षावली होने के कारण लीलाकाल में गोपाल द्वारा यहाँ गोचारण भी किया जाता था।

कामा से ७ कि.मी. की दूरी पर स्थित है धाऊ बरौली ग्राम।

गोविन्द गढ़

जनश्रुति के अनुसार पूर्व में इसका नाम अलीपुर था। अलवर के शासक जयसिंह एक बार यहाँ आये, उस स्थान पर किला बनाया गया है। किले की खुदाई के समय गोविन्द देव का विग्रह प्रकट हुआ जिसे राजा के किले में स्थापित कर एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। लेकिन वर्तमान में किला एवं उसका परकोटा प्रायः खण्डहर स्थिति में स्थित है। गोविन्ददेवजी की प्रतिमा अष्टधातु की थी, जो चोरी हो गई है, उसके स्थान पर नई मूर्ति स्थापित की गई है।

सीकरी से लगभग १३ किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह अलवर जिले की एक तहसील है।

पहाड़ी (पर्वत वन)

श्री नारायण भट्ट जी के अनुसार पहाड़ी का पौराणिक नाम पर्वत वन है जो श्री वाराह भगवान् का प्राकट्य स्थल है।

श्री नारायण भट्ट जी द्वारा वाराह पुराण से संगृहीत –

अथ पर्वतबनोत्पत्ति महात्म्या निरूपणम् ।
पञ्चम्या जेष्ठशुक्ले तु ब्रजयात्रा प्रसन्गकं ॥
प्रलयान्ते नगैकोऽसौ संस्थितो पृथिवीतले ।
वाराहरूपमास्थाय् यत्र जातो स्वयं हरिः ॥
भुमेरुद्धारणार्थाय पाताल्मधिरोहति ।
यतो पर्वतनामात्र बनं चक्रुश्च यादवाः ॥

वाराहपुराण के आधार पर ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को यहाँ की यात्रा करने का विधान माना है। प्रलयान्त में यह पर्वत इस स्थान पर स्थित किया गया था; आदिसृष्टि में यहीं श्रीवाराह प्रभु का प्राकट्य हुआ। भू-धारणार्थ पाताल में प्रविष्ट होने से यदुवंशियों ने इस स्थल का नाम “पर्वत वन” रखा, साथ ही यहाँ वाराहकुण्ड भी दर्शनीय है।

पञ्चम्यां जेष्ठशुक्ले तु ब्रजयात्राप्रसंगकं ।
प्रलयान्ते नगैकोऽसौ संस्थितो पृथिवीतले ॥
वाराहरूपमास्थाय यत्र जातो स्वयं हरिः ।
भूमेरुद्धारणार्थाय पातालमधिरोहति ॥

श्री ब्रजभक्तिविलास के अनुसार वाराह पुराण में ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी तिथि को यहाँ की यात्रा करने का विधान है। प्रलय के अंत में एक पर्वत स्थापित करने से पर्वत वन नाम हुआ। यहाँ श्री हरि ने वाराह रूप से जन्म लिया था। पृथ्वी को धारण करने हेतु पाताल में प्रवेश करने के कारण यादवों ने इस स्थल का नाम पर्वतवन रखा।

वाराह कुण्ड

पर्वतबन प्रार्थना मन्त्र –

वाराहजन्मरम्याय पर्वताख्य बनाय च ।
नमः कल्याणरूपाय सुवर्णादिस्वमूर्तये ॥
इति मन्त्रं नगावृत्या नमस्कारं समाचरेत् ।
सर्वदा पृथिवीलोके चिरजीवी भवेन्नृपः ॥

हे वाराह भगवान् के जन्म के कारण मनोहर! हे पर्वत नामक वनराज! हे कल्याण स्वरूप! हे सुवर्णादि रूप आपको नमस्कार! इस मन्त्र का सात बार पाठ करते हुए नमस्कार करने वाला सर्वदा पृथ्वी में चिरंजीवी होता है।

वाराह कुण्ड – भूमि में प्रवेश हो जाने के कारण यहाँ वाराह नामक कुण्ड उत्पन्न हुआ।

वाराह कुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र –

वाराहनिर्मिततीर्थ नीलवारिपरिप्लुत ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं सर्वदा वरदो भव ॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य सप्तभिर्मज्जनाचमैः ।
नमस्कारं करोद्यस्तु पृथुतुल्यपराक्रमः ॥

हे वाराह निर्मित तीर्थ! हे नीलजल से परिपूर्ण वाराह कुण्ड! आपको नमस्कार। आप वर दें। इस मन्त्र का पाठ करते हुए सात बार मज्जन, आचमन व नमस्कार करने से मनुष्य पृथुतुल्य पराक्रमी होता है।

श्री चाचा वृन्दावन दास जी के अनुसार –

नमो नमो ब्रज हद जु पहारी ।
तहां लग गाय चरावत मोहन ग्वाल अन्तनके अधिकारी ॥
कहूँ रचत हैं खेल गेंद कौ लपक लेत कर गगन उछारी ।
चढ़ाचढ़ी कौ खेल कहूं रचैं अपनी अपनी वदत जु वारी ॥
कवहूँ गिल्ली डण्डा खेलत चोट करैं पुन देई किलकारी ।
कबहूँ चढ़त पहार सिखर पर भैया कहाँ बिरमी छकहारी ॥
अरे गुपाल असुर बहु मारे मित्र क्यौं न यह भूख जु मारी ।
हर हर हँसे लाल मुरली धर अरे मन सुखा निपट अनारी ॥
पाहन पुतरी भूषन लागै सो कहा कारज करै बिचारी ।
बड़े बड़े करै पराक्रम जो कोऊ ताहि जानिये बड़ौ अहारी ॥

वाराह कुण्ड का विस्तृत क्षेत्र जहाँ अब स्कूल बना है

यह श्रीकृष्ण का गोचारण क्षेत्र है। श्यामसुन्दर गोपालक ग्वालों को साथ लेकर यहाँ आते, गोचारण करते, कभी कन्दुक क्रीडा करते जिसमें कभी तो ये जगदीश्वर उन ग्वालों के ऊपर बैठ जाता एवं कभी जगत् के ये नन्हे-नन्हे बालक जगदीश्वर के ऊपर दिखाई देते। कभी गिल्ली-डण्डा खेलते तो कभी पर्वत वन पर चढ़ छाक-लीला करते। इस प्रकार अनेक पदों में श्री चाचा जी ने पहाड़ी तक ब्रज की सीमा निर्धारित की है।

नमो नमो वृन्दावन प्रभुताई ।

प्रस्तुत पद में भी पहाड़ी क्षेत्र सीमान्त ब्रज के रूप में स्वीकार किया गया है।

पच्छिम दिश है देश भयानो श्री वृषभानु विदित ककुराई ।
ओर पहारी हृद वरहानौ कामा वरषानों सुख दाई ॥

कामां से २२.३ कि.मी. की दूरी पर स्थित है पर्वत वन पहाड़ी क्षेत्र।

ब्रज में आञ्जनेय का जन्म

न केवल प्रभु श्रीराम से ही अनुस्यूत है इनका चरित्र प्रत्युत श्रीकृष्णावतार काल में भी बराबर भाग लिया है फिर ब्रज लीला का आनन्द लेने के लिए ब्रज में जन्म होना अनिवार्य था। कामाँ से २२ किमी. की दूरी पर स्थित पहाड़ी, पहाड़ी से ६ किमी. दूरी पर पश्चिम-दक्षिण की ओर स्थित अञ्जनी कुण्ड पर जन्म लेकर शैशव से ही शुरू कर दी कृष्ण के साथ कपि क्रीड़ा। श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने सुबोधिनी जी में स्पष्ट भी कर दिया –

उक्त "मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति"

(भा. १०/८/२९)

श्लोक की टीका में – **'तेहि पूर्वे रामावतार भक्ताः'** ये वानर कौन हैं? रामभक्त अञ्जनानन्दन हनुमान व उनके साथी ही हैं, जिनमें अञ्जनानन्दन तो विशेष स्नेह भाजन हैं श्रीकृष्ण के, अनेक बार लीला का आनन्द अकेले ही लेते हैं।

ब्रजजन कथा

गोकुल के निकट वन मार्ग में एक "हनुमान हठीलो" प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल है। यहाँ की लीला ख्याति है कि जब यशोदा मैया लाला को भोर में ताजा नवनीत देती तो एक वानर हठपूर्वक कान्हा के निकट बैठ जाता और उनके कर से, मुख से गिरे सीथ-कणों को उठा-उठाकर प्रसन्नतापूर्वक खाता था, मैया बार-बार मना करती, भगाती भी किन्तु यह वानर कहाँ मानने वाला, मानो इसका तो जन्म ही कान्हा की सीथ पर अधिकार जमाने के लिए हुआ था। मैया ने इस हठी वानर शिशु का नाम "हठीलो हनुमान" रख दिया। कन्हैया के जागने की देर नहीं होती और यह नन्द-द्वार पर आकर बैठ जाता। आज भी **"हठीलो हनुमान"** के दर्शन हैं। स्वभाववश कृष्ण की वानर-भालुओं से प्रीति-रीति विचित्र ही है –

"वानर-भालु चपल पसु पामर, नाथ तहाँ रति मानी ॥
ऐसी हरि करत दास पर प्रीति ।"

(तुलसी विनय पत्रिका - ९८)

इसी प्रकार वृन्दावन के समीप **"लुटेरिया हनुमान"** प्रसिद्ध हैं। कान्हा की आज्ञा से ये वृन्दावन के द्वार पर पूर्ण सजगता के साथ प्रतिदिन विराज जाते एवं मथुरा से वृन्दावन की ओर आने वाली दधि बेचने वाली गोपियों का अता-पता अपने समूह नायक श्रीकृष्ण को देते। बेचारी गोपियों का सब गोरस लुटवा देते अतः गोपियों ने इन्हें "लुटेरिया हनुमान" की प्रसिद्धि दे दी। वस्तुतस्तु ये श्रीकृष्ण की तरह केवल गोरस की ही चोरी नहीं करते, भावुक भक्तों का मानना है कि ये लुटेरिया हनुमान चित्त के दूषित विकारों को लूटते, लुटवाते हैं। ये लीला-स्थल आज भी दर्शनीय है।

श्रीहनुमानजी रुद्रावतार हैं फिर चाहे रामावतार हो अथवा कृष्णावतार, शिवागमन के बिना किसी भी लीला का शुभारम्भ नहीं होता है।

महादेव कभी तो स्वयं ही आ जाते हैं जोगी आदि का रूप बनाकर अथवा कभी हनुमान जी के रूप में आकर मधुर लीला-रस का उपभोग करते हैं। अनेक बार अकेले लीलानन्द लेते देखे गए हैं –

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् ।

(भा. १०/९/८)

उक्त श्लोक में 'मर्काय' एकवचन होने से यहाँ अकेले अञ्जनानन्दन ही हैं।

कान्हा ने जब केवल जानुबल से चलना सीखा था तब से ही इस कपि से मैत्री हो गयी थी।

शुकदेवजी कहते हैं –

श्रृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम्।

(भा.१०/८/२५)

'दंष्ट्रिणः' – दाँत वाले पशुओं में जीवगोस्वामीजी ने वैष्णवतोषिणी में **'कुक्कुरादयः, वानरादयः'** कुत्ता और वानर ही ग्रहण किये हैं।

अवतार कथा

वाल्मीकि रामायणानुसार –

"अप्सराप्सरसां श्रेष्ठा विख्याता पुञ्जिकस्थला"

(वा. रा. किष्कि. - ६६/८)

एक समय स्वर्गसुन्दरी पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा ने रूप-मद में आकर कुछ अशिष्टता की (एक ऋषि का उपहास किया)।

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥

(भा. ८/२२/२६)

रूप हो एवं रूप का मद न हो, यह तो तदनुग्रह से ही सम्भवहै।

ऋषि ने शापित किया – "जा, वानरी बन जा।" शाप से वह **"दुहिता वानरेन्द्रस्य कुञ्जरस्य महात्मनः"** कुञ्जर वानर की कन्या **"अञ्जनेति परिख्याता पत्नी केसरिणो हरेः"** अञ्जना के रूप में जन्मी एवं वानरराज केसरी की पाणिगृहीता पत्नी बनीं। इच्छानुसार सुन्दर स्वरूप बनाने में भी वह सक्षम थी अतः एक समय सुन्दर वस्त्राभरण से विभूषित होकर गिरिशिखर पर विचरण कर रही थीं। वायुदेव ने विमोहित होकर उनका स्पर्श किया, जिससे वस्त्र अंग से अस्त-व्यस्त हुए, अञ्जना को लगा मानो कोई मेरा स्पर्श कर रहा है। रोष पूर्वक बोलीं –"कौन है जो इस तरह से मेरा सतीत्व खण्डित करना चाहता है? "

शाप देने ही वाली थीं कि पवनदेव प्रकट हो गये। पवन – "देवि! मैंने ही परोक्ष रूप से तुम्हारा स्पर्श किया है, मेरे मानसिक संकल्प से तुम्हें मेरे समान बल-पराक्रम से युक्त परम धीमान् पुत्र प्राप्त होगा।" पुत्राकांक्षिणी अञ्जना प्रसन्न हो गई वायु के बराबर बल वाले पुत्र का वर पाकर। अन्तर्वत्नी हुईं वायु के अंश को धारण करके, **"जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम्"** (वा. रा. उत्त.३५/२०) इस प्रकार श्रीहनुमानजी वायुदेव के औरस व केसरी के क्षेत्रज पुत्र हुए। अतएव पवनतनय भी कहलाये व केसरीनन्दन भी।

शिव पुराणानुसार –

शंकर सुवन कैसे हुए?

दैत्याकर्षण के लिए बनाया गया भगवान् का कामोत्तेजक दिव्य विश्वमोहिनी स्वरूप, प्रभु द्वारा बार-बार निषेध किए जाने पर भी शंभु तो उसके दर्शन की हठ पकड़ बैठ गये। वस्तुतः इनका प्रत्येक कार्य आराध्य की सेवा के लिए ही होता है। इस हठ में भी एक सेवा-स्वार्थ निहित था। त्रिभुवनमोहन का मोहिनी रूप जब देखा महेश ने तो वीर्य स्खलन हुआ।

तद्वीर्यं स्थापयामासुः पत्रे सप्तर्षयश्च ते ।
प्रेरिता मनसा तेन रामाकार्यार्थमादरात् ॥
तैर्गौतमसुतायां तद्वीर्यं शम्भोर्महर्षिभिः ।
कर्णद्वारा तथाञ्जन्यां रामकार्यार्थमाहितम् ॥

(शिव.शतरुद्र.२०/५, ६)

वह अमोघ वीर्य सप्तर्षियों द्वारा एक पत्र कोरक (दोना) में सुरक्षित रख लिया गया। पश्चात् समय आने पर पुत्र प्राप्त्यर्थ तपोनिरत अञ्जना के कर्ण से यह अमोघ वीर्य उनके उदरस्थ करा दिया सप्तर्षियों ने, परिणामतः शिव-सुवन का जन्म हुआ।

"शंकर सुवन केसरी नन्दन ।तेज प्रताप महाजग वन्दन ॥"

(हनुमान चालीसा)

"रुद्र देह तजि नेह बस वानर भे हनुमान ॥"

(दोहावली - १४२)

३- एक समय ब्रह्मलोक की दिव्य अप्सराओं में सुन्दरी **"सुवर्चलाऽप्सरोमुख्या नृत्यभंगात्स्वयंभुवा"** (आ.रा.१/१०४) सुवर्चला की अशिष्टता से क्रोधित होकर सृष्टिकर्ता ने उसे मृत्युलोक में गृध्री बन जाने का शाप दे दिया। सुवर्चला के द्वारा क्षमा-याचना करने पर विधि ने अनुग्रह करते हुए कहा –"महाराज दशरथ जी के पुत्रेष्टि यज्ञ में अग्निदेव चरू के साथ प्रकट होंगे, समान रूप से उसका वितरण महाराज की तीनों रानियों में होगा, तू कैकेयी के कर से चरू को लेकर उड़ जाना, उस चरू को तू खा तो नहीं सकेगी किन्तु उसके स्पर्शमात्र से मुक्त होकर पूर्व स्वरूप प्राप्त करके ब्रह्मलोक में आ जायगी।" ऐसा ही हुआ। महारानी कैकेयी कर में लेकर पायस प्रसाद पाने को उद्यत ही थीं तभी विधि वचन सत्य हो गया। एक गृध्री ने झपटकर चरू को चोंच में भर लिया और आकाश में उड़ गयी।

पुत्र की कामना से ७ हजार वर्षों से भगवान् शिव की उपासना में संलग्न अञ्जना से महादेव ने कहा – "११ रुद्रों में से मेरा अंश ग्यारहवाँ रुद्र ही तुम्हारे यहाँ पुत्र के रूप में आयेगा। मेरी ही प्रेरणा पाकर पवन तुम्हें प्रसाद देंगे, जिससे तुम्हें पुत्र-प्राप्ति होगी। प्रसाद की प्रतीक्षा में अञ्जना अञ्जलि बनाये शिव-मन्त्र का जाप कर रही थीं। उसी समय कैकेयी के कर से लाया गया पायस पवन के तीव्र वेग से गृध्री की चोंच से नीचे अञ्जना

की अञ्जलि में गिर गया, सप्रसन्न अञ्जना ने वह ग्रहण किया, जिससे रुद्रावतार श्रीहनुमानजी का प्राकट्य हुआ।

आनन्द रामायणानुसार –

**"केसरीनामविख्यातः कपिरंजनपर्वते ।
तस्यास्तां च शुभे पल्यौवानर्यावेकदा गिरौ ॥"**

(आ. रा. १३/१५५)

केसरीकपि की २ वानरस्त्रियाँ थीं, जो कि पति सहित अञ्जनीपर्वत पर निवास करती थीं। अद्यावधि यह पर्वत ब्रज में अद्भुत प्राकृत छटा लिये स्थित है, जो कि दर्शनीय स्थान है, जहाँ हनुमानजी का जन्म ही नहीं, शैशव भी व्यतीत हुआ। शैशवकाल की 'भास्कर-भक्षण- लीला' भी इसी पवित्र स्थल पर संघटित हुई। भास्कर आरोहण के लिए वे जिस प्रकार उछले, उसके चिन्ह आज भी वहाँ दर्शनीय हैं। विधिवत् एक विशाल पाषाण खण्ड पर 'जानुद्वय' (दोनों घुटने) के चिन्ह चिन्हित हैं। प्रभु प्राकृतधाम में जान-बूझकर लीला-चिन्ह छोड़ देते हैं जिससे आस्तिकों की आस्था और बढ़े, इसी प्रकार कृष्णलीला के गिरिराजजी, कामवनादि में बहुत से चिन्ह प्राप्त होते हैं, वे मिथ्या नहीं हैं, सब सत्य हैं।

कथा इस प्रकार से है –

मैया अञ्जना एक दिन कन्दमूल लाने जंगल में चली गयीं। पीछे से बालक हनुमान भूख के कारण बहुत रोये, तब तक उदित होते हुए कुछ पीले-लाल अरुण की ओर दृष्टि गई।

(पवनात्मज अपने आप से)

यह लाल फल बहुत ही मधुर होगा!

फल समझकर उसकी ओर दौड़े, बालक हनुमान को फल खाने की इच्छा क्यों हुई? क्योंकि हनुमानजी के फल खाने के संस्कार जागे। भगवान् जीव को बाँधते नहीं हैं, जीव की कर्म-शक्ति को जगाते हैं जो कि अनादिकाल से चली आ रही है।

**स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत् कालेन कर्मप्रतिबोधनेन ।
स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥**

(भा. ३/८/१४)

**"ऐसी हरि करत दास पर प्रीति ।
जिन बाँधे सुर असुर नाग नर, प्रबल करम की डोर ।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठ बँध्यो सकत न छोर ॥"**

(तुलसी विनय पत्रिका -९८)

अथवा

"तुलसिदास ये हि जीव मोह-रजु, जेहि बाँध्यो सोइ छोरै ।"

(तुलसी विनय पत्रिका-१०२)

मछली को जल में रहना कौन सिखाता है? पक्षी को उड़ना कौन सिखाता है? शेर को शिकार करना कौन सिखाता है? ये सब संस्कार हैं। वैसे ही यहाँ हनुमानजी के फल खाने के संस्कार जागे। वानर को फल बहुत प्रिय होता है।

अपने पुत्र को सूर्य की ओर जाते देखकर उसे दाह से बचाने के लिए वायुदेव भी एकदम शीतल होकर बालक हनुमान के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। सहस्रों योजन आकाशमार्ग तय करके जब रवि के निकट पहुँचने लगा बालक। इधर तब तक राहु भी सूर्यग्रास के लिए चला। अरे! यह कौन बालक है? देखने में बालक है किन्तु बल में कम नहीं है, राहु ने सोचा।

राहु रोष में आकर इन्द्र से बोला – "तुमने तो सूर्य-चन्द्र को मुझे दिया था न, भूख मिटाने के लिए फिर इस चपल बलवान वानर को क्यों भेजा? "

देवेश – "मैंने तो किसी को नहीं भेजा। चलो स्वयं चलकर देखता हूँ, सूर्य के समीप आने वाला कोई सामान्य तो नहीं होगा! "

ऐरावतारूढ हो इन्द्र राहु सहित स्वयं चले। राहु को देखते ही फल समझकर मारुतिनन्दन दौड़े खाने को।

डरते हुए चिल्लाया राहु – "इन्द्र! मुझे बचाओ – बचाओ .....।"

इन्द्र ने ऐरावत को बढ़ाया वातात्मज की ओर .....।

(ऐरावत को देखकर) "ओह! यह श्वेत फल है, चलो पहले इसे ही चखूँ।" बालक हनुमान ने सोचा। ऐरावत की ओर बढ़े तो इन्द्र ने वज्राघात किया, अमोघाघात होने से इनकी बायीं हनु (ठुड्डी) कुछ टूट सी गयी। गिरि पर गिरे, थोड़े से विकल हुए, तब तक वायु ने अपने बालक को गोद में लिया और चारों ओर से अपनी गति समेटकर एक कन्दरा में चले गये। वायु के न होने से सबको मृत्यु कष्ट होने लगा, सभी देवता ब्रह्मा जी के शरणागत हुए। ब्रह्मा जी पवनदेव के पास पहुँचे, बालक हनुमान को हाथ से सहलाया, वे स्वस्थ हुए तब वायुदेव प्रसन्न होकर पूर्ववत् सब प्राणियों में संचरित हुए।

पश्चात् ब्रह्माज्ञा से सभी देवताओं ने वातात्मज को वर दिया।

इन्द्र –"मेरे वज्र-प्रहार से इस बालक की हनु खण्डित हुई अतः इस वानर श्रेष्ठ का नाम 'हनुमान' होगा। मेरे वज्र से भी इसका कभी वध नहीं हो सकेगा।"

सूर्य – "मैं अपने तेज का शतांश व शास्त्र-शिक्षा इसे दूँगा।"

वरुण – "हमारे पाश व जल से भी इसकी मृत्यु कभी न होगी।"

यम – "मैं इसके आरोग्य की कामना करता हूँ।"

कुबेर - "मेरी गदा से भी यह नहीं मारा जाएगा।"

अन्त में ब्रह्मा जी ने भी वर दिया – "सभी प्रकार के ब्रह्मदण्ड भी इस बालक का बाल-बाँका न कर सकेंगे। अजित होगा, गति अव्यवहित होगी (जहाँ चाहेगा जा सकेगा), इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ होगा एवं परम यशस्वी होगा यह पवन तनय।

बाल समय रवि भक्ष्य लियो, तब तीनहुँ लोक भयो अँधियारो ।
ताहि सो त्रास भयो जग को, यह संकट काहू सो जात न टारो ॥
देवन आन करी विनती तब, छाँड़ि दियो रवि कष्ट निवारो ।
को नहिं जानत है जग में कपि, संकट मोचन नाम तिहारो ॥

(तुलसीकृत संकटमोचन हनुमानाष्टक)

केवल यही नहीं और भी समीर-सुवन की शैशवावस्था की क्रीडाएं यहाँ ब्रज के इस पवित्र स्थल पर सम्पन्न हुईं।

चौरासी कोस ब्रज एवं उसके आस-पास का विस्तृत क्षेत्र जहाँ सर्वत्र हनुमानजी इष्टदेववत् पूजित होते हैं, ब्रज की ऐसी कोई ग्रामटिका नहीं होगी जहाँ आञ्जनेय के २-४ मन्दिर न हों। आज भी ब्रज में अन्न-प्राशन से लेकर विवाहादि कार्यक्रम सभी हनुमत्-पूजन से आरम्भ होते हैं। कुश्ती-क्रीड़ा ब्रजवासियों की कृष्णकाल से चली आ रही प्रमुख क्रीड़ा है चूंकि उस समय श्रीकृष्ण व ग्वालबालों के साथ होने वाली कुश्ती-क्रीड़ा में निश्चित ही मारुतिनन्दन भी यह खेल खेले हैं अतः आज भी ब्रज में जहाँ-जहाँ मल्लक्रीड़ा के अखाड़े हैं, वहाँ पवननन्दन का छोटा-सा मन्दिर अवश्य मिलेगा।

ब्रजजन कथा

अंजनी माता

ब्रज का प्रसिद्ध पर्व दीपावली जिसमें सब ब्रजवासी अपने-अपने गृहों में गोमय के गोवर्धन बनाकर पूजन करते हैं, साथ ही गोबर के 'लांगुरिया' भी बनाये जाते हैं; ये हनुमानजी का ही प्रतीक है। लांगुरिया के पूजनोपरांत उस पूजन-सामग्री को बंदर-लंगूरों को ही खिला दिया जाता है।

इन समस्त कथानकों से ज्ञात होता है कि **श्रीहनुमानजी ब्रजवासी ही थे।** सभी ब्रजवासियों के लिए यह एक गोरव का विषय है। सत्य भी है क्योंकि ये समस्त अवतार आर्यावर्त में हुए हैं।

'अञ्जनीधाम' एक बड़ा ही प्रामाणिक स्थल है, जिसका वर्णन श्रीनारायणभट्टजी द्वारा रचित **'श्रीब्रजभक्तिविलास'** ग्रन्थ में प्राप्त होता है। स्वयं नारदावतार श्री नारायण भट्ट गोस्वामी जी के द्वारा युगीय अन्तराल के बाद यह लीला स्थल प्रकट हुआ है। कुछ का मन्तव्य है कि महाराष्ट्र में पंपासर के समीप अञ्जनीधाम है, यह भी सही है। कल्प के भेद से दोनों ही बातें सत्य हैं क्योंकि प्रामाणिक है। जैसे कहीं शिव के गण रावण बने हैं तो कहीं हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु का भी रावण-कुम्भकर्ण बनने का प्रसंग होता है और कहीं "तहाँ जलंधर रावण भयउ" (रामायण बा.का.१२४)।

अञ्जनी धाम

अञ्जनी कुण्ड

जालंधर के रावण बनने की कथा भी प्रसिद्ध है तो कल्पभेद से सब सत्य हैं। ब्रजभूमि तो ब्रजराज के जन्म से देवी-देवताओं का घर बनी – नरी सेमरी, सांचोली, कात्यायनी देवी ....अनेक देवीपीठ हैं। साथ ही सूर्यकुण्ड, नारदगुफा.......आदि अनेक देवस्थल भी हैं।

राजा-महाराजाओं का घर बनी – कामवन में राजा विमल, मधुवन में महाराज अम्बरीष, ध्रुवादि एवं ऋषि-महर्षियों का घर भी बनी – माड़व गाँव में मार्कंडेय जी, कामेर गाँव में शुक कुण्ड, व्यास कुण्ड, पारासौली में पाराशर, इसी प्रकार कहीं याज्ञवल्क्य कुण्ड, भारद्वाज कुण्डादि अनेक स्थान हैं। श्रीमद्भागवत भी इसमें प्रमाण है –

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ।
देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥

(भा. १०/२/२५)

ब्रजभक्ति विलासे –

ततो कपिबन प्रार्थना मन्त्र –

नाना कपिसमाकीर्ण क्रीडाविमलरूपिणे ।
नमः कपि बनायैव गोपीरमण हेतवे ॥

(वायु पुराण)

हे असंख्य वानरों से व्याप्त निर्मल क्रीड़ा स्वरूप कपिवन! आपको प्रणाम है। आप ब्रजगोपियों के रमण के लिए हैं।

यहाँ ही हनुमानजी का मन्दिर है –

ततो हनुमद्दर्शन प्रार्थना मन्त्र –

तपसां निधये तुभ्यं सर्वदारिष्टनाशिने ।
नमः कैवल्य नाथाय वज्रांगवरदायिने ॥

हे तपोनिधि विपत्तिनाशक! आपको प्रणाम है, आप बज्रांग हैं एवं कैवल्यनाथ हैं।

मन्दिर-परिसर के ठीक आगे अञ्जनीकुण्ड है –

ततो अञ्जनीकुण्डस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र –

अञ्जनीस्नानसम्भूततपः सिद्धिस्वरूपिणे ।
वायुवैमल्यरूपाय तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥

अञ्जनी माता के स्नान से उत्पन्न तप सिद्धि स्वरूप तीर्थराज! आपको प्रणाम है। आप निर्मल वायु रूप हैं।

आश्चर्यजनक बात तो यह है कि यहाँ आस-पास कहीं भी पानी नहीं है, निकटवर्ती गाँवों में भी जलहीन कुएँ हैं किन्तु यहाँ इतना जल है कि २-४ पत्थर हटाने से ही जल निकल आता है। अञ्जनीकुण्ड में जल के ऐसे कई स्रोत हैं, जिनसे अनवरत जल प्रवाहित होता रहता है, आखिर क्यों न हो, देवभूमि जो है।

कामवन की प्राचीन परिक्रमा जो परम्परागत चली आ रही है, उसका जो परिक्रमा-मार्ग है उसमें **अञ्जनीकुण्ड, अञ्जनीधाम** है; इसके बिना ब्रज की बाह्यवेदी परिक्रमा पूरी नहीं हो सकती। कष्ट है कि यवनकाल में सांस्कृतिक धरोहर पर बड़ा प्रहार हुआ। जगह-जगह देवालयों को नष्ट करके यवन शासकों ने पीर, मज़ार का रूप उन्हें दे दिया। यहाँ भी अंजना पर्वत पर अञ्जना माता ने ७ हजार वर्ष तक शिवार्चन किया। गिरि पर शिवालय तो नहीं, किन्तु शिवालय का यवनों द्वारा परिवर्तित मज़ार रूप अवश्य है।

यवन शासनकाल में न जाने कितनी बार ब्रज भूमि के भव्य मन्दिर-भवनों को नष्ट किया गया। उदहारण के लिए **श्रीकृष्ण-जन्मभूमि** ही हम देखें तो कंस का कारागार, जिसे आज 'कटरा केशव देव' कहते हैं। वज्रनाभजी के द्वारा इनकी (केशवदेव की) स्थापना हुई, मन्दिर निर्माण हुआ। विधर्मी आक्रान्ताओं द्वारा जब यह मन्दिर विध्वस्त हुआ तो महाक्षत्रप सौदास के राज्य काल में वसु नामक व्यक्ति ने ८० से ५७ ईसा पूर्व लगभग ३००० साल पहले 'श्रीकृष्ण- जन्मस्थान' पर एक मन्दिर का निर्माण कराया। इसके पश्चात् दूसरे भव्य मन्दिर का निर्माण भक्त राजा चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्यजी ने ४६५ ई. में कराया। बर्बर हूणों ने पुनः इसे ध्वस्त किया, तब ५३० ई. में यशोधर्मन

तथा वालादित्य आदि द्वारा इसका निर्माण हुआ। सन् १०६७ ई. में गजनी के महमूद ने मन्दिर को लूटा, नष्ट किया व १६ मन स्वर्ण की केशवदेवमूर्ति को भी उठाकर ले गया, तब लगभग सन् ११५० ई. में राजा विजयपाल के शासनकाल में जज्ज नामक व्यक्ति ने इसका पुनर्निर्माण कराया, दुर्भाग्यवश चतुर्थ बार सिकन्दर लोदी द्वारा पुनः मन्दिर धराशायी हुआ, मन्दिर के स्थान पर सरायों का निर्माण हुआ। मन्दिर की मूर्तियों को माँस तौलने के लिए कसाइयों को दे दिया गया।

लगभग १२५ वर्ष पश्चात् जहाँगीर के समय में ओरछा नरेश वीरसिंह देव ने पुनः केशवदेवजी के मन्दिर का निर्माण कराया, ३६ मील दूर से ही दिखने वाले इस गगनचुम्बी मन्दिर का नाश औरंगजेब ने सन् १६६९ ई. में किया। सन् १८०३ में ब्रिटिश राज्य स्थापित हुआ, १८१५ ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा 'कटरा केशवदेव' को नीलाम किया गया। काशीनरेश पटनीमल ने इसे खरीदा एवं उनके वंशज श्रीरामकृष्णदासजी से मालवीयजी की प्रेरणा पाकर सेठ श्रीयुगलकिशोरजी ने इसे खरीदा और ११ फरवरी १९५१ ई. में पुनः **"श्रीकृष्ण जन्म सेवा संघ"** ट्रस्ट का निर्माण एवं मन्दिर निर्माण हुआ। यह तो रहा मथुरा के केवल एक मन्दिर का इतिहास।

विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा सनातनधर्म की विलुप्ति के प्रयास ने न जाने कितनी बार ब्रजमण्डल के समस्त मन्दिरों को नष्ट-निर्माण की प्रक्रिया दिखाई, तो यह कहना मिथ्या नहीं होगा कि कपिराजकेसरी सपत्नीक जिस पर्वत पर रहते उस '**अञ्जनी पर्वत**' (पाठ-भेद से कहीं-कहीं जिसका नाम **श्यामकान्त गिरि** अथवा **सुमेरु पर्वत** भी प्राप्त होता है) पर जो दुर्ग है वह कपिश्रेष्ठ का ही है। निकट ही बसा हुआ है गाँव **गंगोरा**, ब्रजजन कथन है कि यह राजा गंग द्वारा बसाया गाँव है और अञ्जनी पर्वत पर जो भग्नावशिष्ट दुर्ग है वह 'राजा गंग का किला' कहा जाता है, मूल में तो कपिराज केसरी का ही यह निवास स्थान है पश्चात् राजा गंग द्वारा इस दुर्ग का निर्माण हुआ होगा।

'रघुनाथजी के दास' रूप में तो आपको सर्वसामान्य जन भी जानते हैं किन्तु कृष्णभक्ति में, कृष्णलीला में आपने अपना आगमन सर्वथा गुप्त ही रखा; यही है निष्ठा की प्रतिष्ठा।

श्रीहनुमानजी का कृष्णभक्तों से प्रेम

कृष्णभक्ति के साथ-साथ 'कृष्णभक्तों की भक्ति' भी की है कपिराज ने। जिस समय भीमसेन द्रोपदी के लिए सौगन्धिक वन में पुष्प लेने गए हैं, सर्वप्रथम कपिराज हनुमान ने उनका मार्ग में वृद्ध वानर का रूप बनाकर मान भंजन किया है, पश्चात् गले लगाकर भीमसेन को कहा –"तुम वांछित वर माँग लो, यदि चाहो तो इसी समय मैं हस्तिनापुर जाकर मोहान्ध धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों को समाप्त कर दूँ, नहीं तो पत्थरों की

वर्षा से पूरे नगर को ही खण्डहर कर दूँ, अन्यथा दुर्योधन को बन्दी बनाकर सामने रख दूँ।"

भीम –"कपिराज! आपका शुभाशीष ही मेरे लिए पर्याप्त है।"

हनुमान –"आगे होने वाले महाभारत में मैं तुम्हारी सहायता अवश्य करूँगा।

चमूं विगाह्य शत्रूणां शरशक्तिसमाकुलाम्।
यदा सिंहरवं वीर करिष्यसि महाबल॥
तदाहं बृंहयिष्यामि स्वरवेण रवं तव।
विजयस्य ध्वजस्थश्च नादान् मोक्ष्यामि दारुणान्॥
शत्रूणां ये प्राणहराःसुखं येन हनिष्यथ।
एवमाभाष्य हनुमांस्तदा पाण्डवनन्दनम्॥

(महाभारत, वनपर्व १५१/१६, १७, १८)

जिस समय समराङ्गणमें तुम शर और शक्ति के आघात से व्याकुल शत्रु सेना में सिंहनाद करोगे तो उस समय मैं भी जोर से गर्जना करके तुम्हारे उस सिंहनाद को द्विगुण से बढ़ा दूँगा। अर्जुन के रथ की ध्वजा पर विराजकर ऐसी भीषण गर्जना करूँगा कि गर्जना मात्र से शत्रुसेना निष्प्राण हो जाएगी और तुम उन्हें आसानी से मार पाओगे।"

वस्तुतः युद्ध तो पूरा हनुमानजी ही बैठे-बैठे लड़े हैं, भला वे कृष्णभक्तों का अहित, अनिष्ट कैसे देख सकते हैं? पाण्डवों से बड़ा प्रेम था हनुमानजी का; हो भी क्यों न, ये भी कृष्णभक्त और वे भी कृष्णभक्त। जब कभी युद्ध में कौरव 'पाण्डवों' के ऊपर प्रबल पड़ जाते तो हनुमानजी जोर से सिंहनाद करते और कौरवों की शक्ति को क्षीण कर देते। अर्जुन की सुरक्षा के लिए बराबर पूरे युद्ध में ध्वजा पर विराजे रहे।

हनुमान जी के घुटनों के चिन्ह

अज्ञात वास के समय कौरवों ने विराट नगर से जब गो-अपहरण किया तो विराट पुत्र 'उत्तर' युद्ध करने चले, आग्रह करने पर बृहन्नला को अपना सारथ्य सौंप दिया था। कौरवों का आक्रमण 'राजकुमार उत्तर' के लिए भारी पड़ा, परिणाम समर भूमि से भागना पड़ा। अज्ञातवास भी सम्पन्न हो ही चुका था अतः गोवंश रक्षणार्थ बृहन्नला ने अपना वास्तविक परिचय (अर्जुन के रूप में) देते हुए कहा, "चिन्ता न करो, युद्ध मैं करूँगा।"

प्रथम तो एक सघन वन में गमन कर विशाल शमी वृक्ष से अपना गाण्डीव लिया एवं 'राजकुमार उत्तर' के रथ पर जो 'चित्रित सिंह ध्वजा' थी उसे हटाकर अपनी सुवर्णमय ध्वजा का स्मरण किया जिस पर स्वयं वानरराज श्री हनुमान जी महाराज विराजे रहते हैं, स्मरण करते ही आकाश से स्वर्णिम आभा युक्त एक ध्वजा आई, ध्वजा से वानरराज की भीषण गर्जन ध्वनि निकली "वानरस्य च नादेन"। उस गर्जना मात्र से कौरव कम्पित हो भाग गये। कृष्णभक्त अर्जुन की कपिराज ने इस प्रकार से सहायता कर कौरवों से 'गोवंश' को मुक्त कराया।

कथानक (२) –

भगवान् श्रीकृष्ण के हनुमान जी के प्रति वचन –

"किम्पुरुषाणां हनुमान्"

(भा. ११/१६/२९)

"किम् पुरुषों में हनुमान मेरा ही रूप है।" अतः समस्त कृष्णोपासकों ने हनुमान जी में स्वाराध्यवत् भावना की।

जब स्वयं प्रभु सारथी बनकर बैठे हैं तब मैं इनके दासों की दासता भला क्यों न करूँ? हनुमान जी ने सोचा।

महाविष्णवावतार सन्त श्रीज्ञानदेवजी भी 'केसरीकिशोर' द्वारा कृष्णभक्तों की, की जाने वाली भक्ति को कहे बिना न रह सके।

ध्वजस्तंभावरी वानरू। तोमूर्तीमंत शंकरू।
सारथी शार्ङ्गधरू। अर्जुनेसी जाहला॥

(ज्ञानेश्वरी)

कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में अर्जुन के रथ पर फहराने वाली ध्वजा पर मारुतिनन्दन मूर्तिमान विराजित होकर अर्जुन का उत्साह वर्धन करते। भीषण गर्जना के साथ-साथ जयध्वनि भी करते।

सीकरी

सीम सीकरी ताकी वरनी पुन करा हरो हद ठहराई॥

सीकरी का सीत्कार लीला से सम्बन्ध है।

सीकरी नगर तहसील का घनिष्ठ आबादी वाला एक कस्बा है। यहाँ पर प्राचीन गोपाल जी का एक मन्दिर है। एक प्राचीन जगन्नाथ मन्दिर भी यहाँ स्थित है। इसके अतिरिक्त भी सीकरी में अनेकों मन्दिर हैं जिनमें दाऊ जी का मन्दिर प्रसिद्ध है। एक कुण्ड भी कस्बे में है। यहाँ के निवासियों का कहना है कि सीकरी का प्राचीन नाम शिवपुरी था। पहले ब्रज परिक्रमा यहाँ से होकर जाया करती थी, लेकिन वर्तमान में ऐसा नहीं है।

श्री गोपाल जी मंदिर – सीकरी

क्षणं सीत्कुर्वंती क्षणमथ महावेपथुमतीं
क्षणं श्यामश्यामेत्यमुमभिलपन्ती पुलकिता ।
महाप्रेमा कापि प्रमदमदनोद्दामरसदा
सदानन्दा मूर्तिर्जयति वृषभानोः कुलमणिः ॥

(रा.सु.नि. २०३)

यद्यपि शैत्य में सीत्कार (मुख से ली गई श्वास, जिसमें “सीऽऽऽऽ” का ध्वनित होना) होता है किन्तु अभी तो शैत्य भी नहीं है और यह ब्रजदेवी सीत्कार कर रही है।

किन्तु यह शैत्य का सीत्कार नहीं है।

काँप भी रही है तो यह भय का कंपन नहीं है। देखो, रोमांचित हो गया है उसका सम्पूर्ण शरीर, हे श्याम, हे श्याम कहती हुई विह्वल हो रही है। उस महाप्रेमस्वरूपा, उन्मत्तप्रेमरसदात्री, सदानन्द स्वरूपिणी, वृषभानुकुलमणि की जय हो, धन्य है यह रति रस।

श्री दाऊ जी मंदिर – सीकरी

श्री जगन्नाथ मंदिर – सीकरी

कामां से सीकरी ३०.८ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

झंझार

सीकरी से २.७ किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह एक प्राचीन गाँव है। गाँव में मन्दिर व कुण्ड दर्शनीय है।

मुरली मनोहर मन्दिर एवं श्रीवृन्दावनरानी मन्दिर परिक्रमा मार्ग में है।

कुछ समय पहले तक यहाँ से होकर ब्रज परिक्रमा मार्ग था, जिससे होकर ब्रज यात्री जयश्री गाँव तक जाते थे।

सेवल

झंझार से ८ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है सेवल ग्राम। इस ग्राम का मन्दिर भरतपुर नरेश सूरजमल द्वारा बनवाया गया है। ग्रामीणों का कथन है – यहाँ की प्राचीन छतरी मेव जाति के एक भक्त लड़के की याद में निर्मित है। यह स्थान उस भक्त मेव की साधन-भूमि रहा है। पर्वतों से घिरी हुई सघन वृक्षावली एवं एकान्त और निर्जन होने से यह स्थान और भी मनोरम एवं रमणीय बन गया है। एक गोशाला भी स्थापित है। यहाँ छैलबिहारीजी एवं बजरंगबली का मन्दिर है जिसके महन्त सन्त श्रीलखनदासजी महाराज हैं।

भैसेड़ा

कामयवन से लगभग **२५ कि.मी.** की दूरी पर स्थित भैसेड़ा गाँव अपनी हरी-भरी पहाड़ी के लिए प्रसिद्ध है। स्थानीय ब्रजवासी इसे 'गेंदुआ गिरिराज' के नाम से जानते हैं। गिरिराज गोवर्द्धन के लघुभ्राता के रूप में भी इसकी अपनी अलग पहचान है। गोवर्द्धन महाराज की तरह ही अगणित श्रद्धालुओं की आस्था इस पर्वत से भी जुड़ी हुई है। इसकी नैसर्गिक छटा अति रमणीक है। गेंदुआ गिरिराज की सर्वाधिक महत्ता इसकी तलहटी में स्थित विशाल कन्दरा के कारण है। द्वापरकालीन गोचारण लीला के समय यह गुहा गोविन्द और उनके सखाओं की विश्रामस्थली हुआ करती, साथ ही सख्यरस की कई अन्य सरस लीलाओं का सृजन भी इस दर्शनीय गिरि कन्दरा में हुआ। कान्हा के ब्रज में इतनी विशाल गुफा अन्यत्र कहीं नहीं है। यह अनेकों सन्तों की भजनस्थली रही है।

भैसेड़ा की गुफा

भैसेड़ा की गुफा अन्दर से

ग्रामवासियों के अनुसार – गोपाल जी ने गेंदुआ गिरिराज पर गोचारण लीला की है। वर्तमान काल में भी इस पर्वत पर राम, श्याम और उनकी गाय के चरण चिन्ह अंकित हैं। कामवन की पञ्च, सप्त व इक्कीस कोसीय परिक्रमा भी इस पर्वत को लेकर होती है। प्रत्येक दिवस श्रद्धालुजन इसकी सवा कोस की परिक्रमा लगाते हैं तथा कार्तिक माह की प्रतिपदा तिथि को साक्षात् गिरिराज की तरह इसका पूजन किया जाता है।

गेंदुआ गिरिराज जी के अतिरिक्त भैसेड़ा में एक दूसरी प्राचीन धरोहर के रूप में गोपाल जी का मन्दिर है, जो गाँव के मध्य में स्थित है।

वयोवृद्ध ग्रामवासी इस मन्दिर को १२०० वर्ष पुराना बताते हैं। श्री युगल सरकार और गोपाल जी के श्री विग्रह इस मन्दिर की शोभा हैं।

तेस्की

यह गोविन्दगढ़ तहसील के अन्तर्गत आने वाला गाँव है जो सेवल मन्दिर के बाद पर्वत के उस पार स्थित है। यद्यपि यहाँ कोई प्राचीन अवशेष प्राप्त नहीं हुआ किन्तु श्रीकृष्ण की गोचारण भूमि होने से यह सम्पूर्ण क्षेत्र अपनी विशेष महिमा संजोये है।

गोविन्दगढ़ से २२.५ कि.मी. और सीकरी से २०.७ कि.मी. की दूरी पर स्थित है तेस्की ग्राम।

बूड़ली

यह गाँव गोविन्दगढ़ तहसील के अन्तर्गत आता है। यह भी सेवल मन्दिर के पर्वत के उस पार दूसरी ओर स्थित है। श्रीवृन्दारानी मन्दिर परिक्रमा मार्ग पर होने के कारण यह गाँव प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान लोगों का निवास है।

गोविन्दगढ़ से ३३.४ कि.मी. और सीकरी से २१.४ कि.मी. की दूरी पर स्थित है बूड़ली ग्राम।

उधाग्राम (उदाका)

उधानामे ग्राम ओइ सर्व्वलोके कय।
ओथा रहि उद्धव गेलेन नन्दालय॥

(भक्ति रत्नाकर, ८८५)

श्री भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ के अनुसार उद्धव जी यहाँ कुछ समय निवास करके नन्दग्राम गये थे। उद्धव जी के नाम से ग्राम का नाम उधा हुआ।

कामां से उदाका ग्राम की दूरी ४.४ कि.मी. है।

लेवड़ा

नन्दगाँव का निकटवर्ती सम्पूर्ण क्षेत्र ग्वाल लीला का है। ग्वाल लीला में परस्पर हास-परिहास, उपहास, स्कन्धारोहण, बाहु युद्ध, द्वंद्व युद्ध, कन्हैया के अंक में, पर्यंक में शयन, उपवेशन एवं एकत्र भोजन, भ्रमण होता है। कृष्ण से पूर्णतः संकोचहीन ये गोपबाल कभी-

कभी तो केलि कलह भी कर बैठते हैं, लेवड़ा में यही लीला हुई, प्रिय सखाओं से ही कलह हो गया।

श्रीदाम, सुदाम, वसुदाम, किंकिणी, भद्रसेन, विलासी, पुण्डरीक..........ये सब समवयस्क बालक हैं अतः कन्हैया से वक्रोक्ति द्वारा भी परिहास करते हैं फिर कभी उसका आलिंगन भी करते हैं। छोटा-मोटा रोष तो मनाने से दूर हो जाता था किन्तु आज न जाने क्या हुआ, बहुत हास-परिहास के बाद भी कृष्ण का मुख मानो रुदन कर रहा था। सुभद्र, मण्डलीभद्र, वीरभद्र, भद्रांग, भद्रवर्द्धन .....आदि वात्सल्यगन्ध वाले सखाओं ने बहुत पूछा, बहुत समझाया किन्तु कृष्ण एकदम मूक थे। छोटे सखाओं ने कन्हैया को घेर लिया।

देवप्रस्थ – "दादा! क्या हुआ, आज तू किसी से बोल क्यों नहीं रहा है? "

ओजस्वी – "दादा, मैया की याद तो नहीं आ रही? "

मरन्द – "चलो, हम सब शीघ्र ब्रज को चलें, दादा को आज अवश्य मैया की याद आ रही है, हो सकता है पुनः भूख लग आई हो।"

मणिबद्ध – "दादा, आज तू मेरा हाथ नहीं पकड़ेगा? देख न, ये गैया मेरे उदर में शृंङ्ग मार देंगी, ले जल्दी से मेरा हाथ पकड़ ले अन्यथा स्कन्ध पर बिठा ले।"

यह कैसा रोष, कन्हैया न बड़े सखाओं को कुछ कहते हैं, न छोटों से कुछ बोलते हैं।

संध्या को गो-चारण करके जब लौटे तो गायों को पहुँचाने खिरक में भी नहीं गये, सीधे सदन का मार्ग पकड़ा।

(सदन में प्रवेश)

मैया अभी आरती का थाल सजा ही रही थी – "कन्हैया आता होगा, मैं उसकी आरती उतारूँगी।"

तब तक देखा – 'कन्हैया सामने खड़ा है।'

मैया – "लाला! आज बलभद्र भैया को कहाँ छोड़ आया? "

लाला ने कुछ नहीं बताया। मैया ने मुख पर बिखरी अलकावली को समेटकर ऊपर मस्तक पर बाँध दिया। कराग्र से कन्हाई की चिबुक को ऊपर किया।

मैया – "मेरे लाड़ले! बोल तो सही, किसी ने कुछ कहा अथवा किसी से कोई कलह हुआ।"

लाला – "मैया! मैं कल से गोचारण को वन में नहीं जाऊँगा।"

मैया – "क्यों लाला? "

चाचा श्री वृन्दावनदास जी की वाणी में –

मैया मोहि ग्वाल चिरावत भारी ।
तेरी करै सगाई को यौं, कहि जु बजावत तारी ॥
मेरी ओर करत नहिं कोऊ, यह चिर सबहिनु पारी ।
बलि दै सैन सिखाबत सबकौं, नेकु बरजि हा हा री ॥
मोसों कहै करोंटो भोडो, है काकी उनहारी ।
तोहिं लगत हौं कैसौ मैया, कहि यह बात बिचारी ॥
मेरौ राजकुंवर लाल हौं, सुन्दरता पर वारी ।
बृन्दावन हितरूप पुंज तू, बकत हैं ग्वाल लबारी ॥

लाला – "ये सब ग्वाल-बाल जंगल में मुझे चिढ़ाते हैं। सब के सब मेरे विवाह के पीछे पड़े हैं, इन्हें चिढ़ है – कहीं मेरा विवाह इनसे पूर्व न हो जाय।

ताली बजा-बजा कर नाचते हुए कहते हैं – तेरी सगाई कौन करेगा? और मैया! यह आज की कोई नयी बात नहीं है, बहुत दिन से ये सब मुझे चिढ़ा रहे हैं, वन में कोई मेरा पक्ष भी नहीं लेता।"

मैया – "कन्हैया, भलभद्र भैया तो तेरा ही पक्ष लेते होंगे? "

लाला – "न, न, न ....मैया! बलभद्र दादा तो इनको और बढ़ावा देता है, सैन ही सैन में (संकेत में) सिखा देता है – और चिढ़ाओ, और चिढ़ाओ।

मैया! या तो तू इन सबको आज डाँटियो अन्यथा मैं कल से वन नहीं जाऊँगा। तू ही बता, यह कोई कहने की बात है – कोई तो मुझे करोटा (विशेष काला) कहता है, कोई भोड़ा (बदसूरत) कहता है, कोई ३ जगह से टेढ़ा कहता है, कोई कहता है इसके जैसी आकृति, इसके जैसा असुन्दर तो सम्पूर्ण संसार में दूसरा नहीं है। मैया! सोच-विचार के तू सच-सच बता दे, मैं तोकू कैसो लगूँ? "

मैया ने अपने दोनों कर लाला के मणि दर्पण के गर्व को चूर्ण करने वाले कपोलों पर रखते हुए कहा –

मैया –"लाला, मेरा तो तू राजकुमार है, मैं तेरे रूप पे वारी जाऊँ, तू बहुत रूपवान है, बड़ो सुन्दर है। देख, ये सब ग्वाल-बाल तो लवार हैं, तू इनकी बात मत सुना कर।"

यहाँ लवार का अपभ्रंश ही '**लेवड़ा'** हुआ।

ग्रामीणों के कथनानुसार यह श्रीकृष्णका गोचारण क्षेत्र है। सम्प्रति यहाँ मेव जाति के लोग भी निवास करते हैं जिनका कहना है कि पूर्व में यह हिन्दुओं का गाँव था मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा बलात धर्म परिवर्तन कराया गया। वर्तमान काल में यहाँ बालोत गोत्रीय मेव रहते हैं।

कामां से ८.१ कि.मी. की दूरी पर स्थित है लेवड़ा ग्राम।

कनवाड़ी

रसिक महापुरुषों की वाणी के आधार पर कनवाड़ी का मूल नाम है – **"कान्हा वारि"** अर्थात् कान्हा के रूप पर वारि। कान्हा वारि का अपभ्रंश हुआ – **कनवाड़ी।**

कनवाड़ी की एक गोपी अपनी सखी से कहती है – जब से उस छविसार-सिन्धु साँवरे कन्हाई को देखा है, मेरी दशा अकथनीय हो गई है।

चितवन रोकी हूँ न रुकी श्यामसुन्दर सिन्धु सन्मुख सरिता उमग बही ।

(श्रीसूरदास जी)

बहुत तर्जन-वर्जन के बाद भी मेरे नेत्र बार-बार एक मधुगन्ध-लुब्ध भ्रमर की तरह उसके त्रिभुवन कमनीय विकसित स्वरूप पर ही मंडरा रहे हैं।

श्रीपरमानन्द स्वामी के भाव –

सखी री लोभी मेरे नैन ।
बिन देखे चटपटी लागियत, देखत उपजे चैन ॥
मोरमुकुट काछे पीताम्बर सुन्दरता के ऐन ।
अंग-अंग छबि कहि न परत है, निरखि थकित भयो मैन ॥
मुरली ऐसी लागत श्रवणन, चितवत खग मृग धेन ।
परमानन्द प्रेमी के ठाकुर, वे देखो ठाड़े ऐन ॥

जब तक उसे देख नहीं लेती हूँ, चैन नहीं मिलता। एक चटपटी (समुत्कण्ठा) लगी रहती है। मुख-मयङ्क का दर्शन पाकर तो हृदय में अप्रतिम सान्द्रानन्द-सिन्धु उच्छलित हो उठता है। हे सखि! उसके मस्तक पर लहराता मयूर-पिच्छ मानो संकेत से मुझे ही बुलाता है। वक्ष से लिपटा हुआ पिङ्गल-दुकूल भी मानो मुझे कृष्णालिङ्गन को बुलाता है। सौन्दर्य का आगार (विश्राम-स्थल) है उनका सम्पूर्ण श्री विग्रह।

अंग-प्रत्यंग की छवि कही नहीं जा सकती, उस अनिर्वचनीय, मादक सौन्दर्य को देख मन्मथ भी थकित रह गया और जब वंशिका बजाता है, तो उसके मधुवर्षी स्वरों को सुन आकाश में उड़ते पक्षी, अरण्य में विचरण करते हिरण व तृण चरती धेनु स्तब्ध ही रह जाती हैं। हे सखि! देख, वो खड़े ....वो खड़े सामने ....ये ही हैं सबके विश्राम-स्थान। लगता है आज यही गो-चारणार्थ आये हैं।

'चल, चल हम दोनों चलें, उसका दर्शन कर आवैं' उसकी संगिनी ने कहा। मन तो मेरा भी है किन्तु कोई देख लेगा तो?

तो क्या, अधिक से अधिक रुष्ट ही तो होगा परन्तु हमें श्यामसुन्दर का दर्शन रूप परमानन्द तो प्राप्त हो ही जाएगा।

सखि, कृष्ण रंग में रच-पचने के पश्चात् प्राणों की परवाह कैसी?

श्रीसूर के शब्दों में –

सखी री मोहि हरि दरशन को चाय।
साँवरे सौं प्रीति बाढ़ी लाख लोग रिसाय॥
श्यामसुन्दर लोल लोचन देख मन ललचाय।
सूर हरि के रंग राची, सीस रहौं कै जाय॥

सखी – देख, अब तू अतिशीघ्र चल, वे निकट ही वन में गो-चारण को आये हैं।

सखी अब मोपै रह्यो न जाय।
चल री मिल उनहीं पै जैये, जहाँ चरावत गाय॥
अंग अंग की सब सुधि भूली, देखत नंद किशोर।
मेरो मन हर लियो तबहीं को, जब चितये यह ओर॥

दोनों दौड़ती हुई पहुँच गयीं कनवाड़ी के अरण्यों में, जहाँ श्यामसुन्दर गोचारण कर रहे थे। दर्शन कर दोनों की देह-सुधि जाती रही, सान्द्रानन्द-सिन्धु में डूब गयीं।

तनक सौ बदन सुख शोभा कौ सदन मानौ,
तनक तिलक ढिंग तनक ढिठोना।
तनक जरुली सोहे मुनिन को मन मोहें,
मानो भोंह कमलन ढिंग बैठे अलि छौना॥
तनक सी रज लागी निरखत बड़भागी,
कण्ठ कठुला सोहै और बघ नखना।
नंददास प्रभु प्यारे जशोदा के आँगन खेलैं,
जाको यश गाय-गाय शिव भये मंगना॥

(श्री नंददास जी)

पर्वत पर बसा हुआ यह एक प्राचीन गाँव है, इसमें राजपूत जाति के लोग निवास करते हैं। पर्वत पर ही चामड़ का मन्दिर है। ग्रामवासियों के अनुसार मन्दिर की मूर्ति स्वतः प्रकट है। यह एक प्राकृतिक शिला है। वर्तमान में यहाँ भाट एवं ठाकुर लोग भी निवास कर रहे हैं। यहाँ पर एक कनहेर कुण्ड है। पूर्व में यह घना जंगल था और गोचारण क्षेत्र था अतः श्यामसुन्दर गोचारण के लिए ग्वालबालों सहित यहाँ आया करते थे।

कामां से ७.२ कि.मी. की दूरी पर स्थित है कनवाड़ी ग्राम।

सतवास

अधिक मास में सहस्रों वर्षों से ब्रजवासियों का यात्राक्रम जो चला आ रहा है बस वे ब्रजवासी यात्री ही यहाँ आते हैं किन्तु स्थल-लीला का ज्ञान उन्हें भी नहीं है; जिसने जो बता दिया, भोलेपन में वही स्वीकार कर लिया।

ब्रज के अति प्राचीन स्थलों में है – **सतवास।**

सत्राजित का वास होने से स्थान विशेष की सतवास नाम से प्रसिद्धि हुई।

सूर्य भगवान् की खंडित मूर्ति

मंदिर के भग्नावेश

सतवास की लीला का उल्लेख श्रीमद्रूपगोस्वामी विरचित श्री ललित माधव में प्राप्त होता है कि श्री राधा रानी ही सत्यभामा बनी हैं। श्रीकृष्णके मथुरा गमन करने के पश्चात् श्री राधारानी प्राण त्यागने के लिए यमुना पर गईं और वहाँ उन्होंने स्यमन्तक मणि पुष्पांजलि रूप सूर्यदेव को अर्पण कर यमुना में प्रवेश किया। यह वही मणि है जो शंखचूड़ के मस्तक से निकली थी। उस समय वहाँ सूर्यदेव की आज्ञा से कालिन्दी जो विशाखा रूप में प्रसिद्ध थी श्री राधा को मणि सहित सूर्यमण्डल में ले गई। जब सत्राजित ने वैभव एवं सन्तान की कामना से सूर्यदेव की आराधना कर उन्हें प्रसन्न किया तब सूर्यदेव ने स्यमन्तक मणि और श्री राधा जो उनके पास थी उसका (सत्या) नाम बताकर उन्हें सौंप दिया और कहा कि इस सत्या को श्री नारद के आदेश से किसी श्रेष्ठ वर को समर्पण करना। सूर्यलोक से विदा करते समय श्री राधा को उन्होंने कहा कि तुम अपना राधा नाम तब तक गुप्त रखना जब तक स्वयं श्रीकृष्णस्यमन्तक मणि को तुम्हारे मणिबन्ध में नहीं बांधे।

ब्रज के ये सीमान्त ग्राम जिनका वास्तविक, पौराणिक ज्ञान यहाँ के स्थानीय जनों को ही न रहा, उस पर संकीर्णता के चलते ब्रजयात्राओं का आगमन भी कभी न हुआ और महत्ता ने मौन ले लिया।

ब्रजप्रेमियों के लिए परमपूज्य श्रीश्रीबाबामहाराज द्वारा इन अदृष्टचर स्थलों का पुनर्प्राकट्य हुआ। सन् २००७ में पूज्य बाबा श्री के संरक्षण में चलने वाली श्रीराधारानी ब्रजयात्रा यहाँ (सतवास) पहुँची।

यहाँ सूर्यमन्दिर है; पूज्य बाबाश्री ने यात्रा के दौरान मन्दिर में एक प्राचीन बीजक भी देखा, जो वि. सं. १३८८ का है। इससे मन्दिर की प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है। ब्रज के प्रमुख मन्दिरों में बिहारीजी (वृन्दावन), राधारानी (बरसाना), कृष्ण-बलराम मन्दिर (नन्दगाँव) भी ५०० वर्ष पूर्व के हैं। वि. सं. १३८८ (सन् १३३०) का यह प्राचीन मन्दिर अब खण्डहर मात्र है, ध्वंसावशिष्ट इस मन्दिर में सूर्य भगवान् की मूर्तियां हैं, जिनके प्रति भोले-भाले ब्रजवासियों की सती माता की मान्यता है, जबकि उन विग्रहों में सूर्यदेव अश्व युक्त रथ पर विराजमान हैं। ११०० ई. में गजनवी भारत आया। १२०० ई. के लगभग गुलाम वंश की स्थापना हुई, ८० वर्ष पश्चात् खिलजी वंश आया और १३२० ई. के लगभग तुगलक वंश; बीजक के अनुसार इसी काल में मन्दिर का निर्माण हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत पुरातन है यहाँ सूर्य पूजन की परम्परा। विधर्मियों द्वारा इस स्थल को नष्ट किया गया जैसा कि भारतभूमि के धर्म पर तुषारपात होता ही आया है, कितनी ही बार जन्मभूमि-मन्दिर धराशायी हुआ।

इस भूमि ने भी विनाश के बाद पुनर्निर्माण की परम्परा को न तोड़ा।

सतवास में सूर्य मन्दिर के समीप ही है विशाल सूर्यकुण्ड। अनेकानेक लीलाओं से अनुप्राणित इस स्थल का प्रशस्तिगान अनेक ग्रन्थों में हुआ है। सतवास राजा सत्राजित की तपोभूमि रही है किन्तु सत्राजित ने यहाँ तप क्यों किया? यह प्रश्न आना स्वाभाविक ही है। उत्तर भी बहुत सटीक व सरल है – न केवल राजा सत्राजित की ही बात है प्रत्युत बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट, अव्यय लक्ष्मी प्राप्त अम्बरीष, शान्तनु ......आदि अनेक राज-राजर्षियों ने यहाँ तप किया। रावण ने भी ब्रज में तप किया, दैत्यातिरिक्त देवों की भी यह तपोभूमि रही।

सूर्य कुण्ड – सतवास

यदि द्वारिका को सत्राजित की तपोभूमि माना जाय तो यह बात बहुत असंगत है चूंकि द्वारिका निर्माण तो बहुत बाद में सम्पूर्ण मथुरा लीला होने के बाद हुआ है अतः द्वारिका में तप का तो प्रश्न ही नहीं है।

हरिवंशपुराणानुसार –

तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः ।

सत्राजित ने जब उपासना आरम्भ की तो विवस्वान् (सूर्य) उनके सन्मुख आये।

अस्पष्टमूर्तिर्भगवांस्तेजोमण्डलवान् प्रभुः ॥

(श्रीहरिवंशपुराण, हरिवंश पर्व ३८/१६)

किन्तु मूर्त रूप दिखाई न पड़ा, वह मात्र तेजपुंज था।

"प्रभो! मूर्तिमान हो दर्शन दें आप मुझे, मैंने सख्यभाव से आपकी उपासना की है।" सत्राजित ने प्रार्थना की।

यह सबसे बड़ा प्रमाण है ब्रज में उपासना करने का। सख्य, वात्सल्य व श्रृंगार भाव केवल ब्रज में ही है।

ब्रज में ग्वाल-बाल कहते हैं – "अरे भैया! कन्हैया तो हमारौ सखा है।"

सख्य का उदाहरण –

सखनि संग जेंवत हरि छाक ।
प्रेम सहित मैया दै पठई, सबै बनाई है इक ताक ।
सुबल, सुदामा, श्रीदामा मिलि, सब सँग भोजन रुचि करि खात ।
ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत, मुख लै मेलि सराहत जात ।
जो सुख कान्ह करत वृन्दावन, सो सुख नहीं लोकहूँ सात ।
'सूरस्याम' भक्तनि बस ऐसे, ब्रह्म कहावत हैं नंद-तात ॥

गोपीजन कहती हैं – "श्रीकृष्ण हमारे कान्त हैं।"

श्रृंगार का उदाहरण –

मेरैं हिय लागै मनमोहन, लै गए री चित चोरि ।
अबहीं इहिं मारग है निकसे, छबि निरखत तृन तोरि ।
मोर-मुकुट, स्रवननि मनि-कुण्डल, उर बनमाल, पिछोरि ।
दसन चमक, अधरनि अरुनाई, देखत परी ठगोरि ।
ब्रज-लरिकन सँग खेलत डोलत, हाथ लिए चकडोरि ।
'सूरस्याम' चितवत गए मो तन, तन मन लियौ अँजोरि ॥

और यशोदा मैया कहती है – "हमारौ लाला कनुआ तो बढ़तौ ही नहीं दीखै।"

वात्सल्य का उदाहरण –

मेरे ललना! तुम ऊपर वारी ।
कंठ लगाइ दियौ मुख चुंबन सुन्दर स्याम मुरारी ॥
काहे कौं दाम उलूखल बाँधे अहो कैसी महितारी ।
अति उत्तंग बयारि न लागी क्यों टूटै द्रुम भारी ॥
बारंबार बिचारि जसोदा को लीला अवतारी ।
'परमानन्द' प्रभु कारज साधक माया देव पसारी ॥

(परमानन्द दास जी)

ईश्वर के रूप में उपासना तो समग्र संसार ही कर रहा है किन्तु ब्रज-प्रेम एक निश्चित सम्बन्ध लेकर उपासना करता है, जो ब्रज में ही सिद्ध होता है।

ब्रज-संसर्ग से ही सत्राजित के मन में सूर्यदेव के प्रति सख्यप्रीति का उदय हुआ।

सत्राजित – "हे भुवन भास्कर! यह तेजमण्डल तो मैं प्रतिदिन ही देखता हूँ, मेरे सख्य भाव को सिद्धि प्रदान करने हेतु अपने मूर्त रूप में मुझे दर्शन-लाभ प्रदान करें।"

सूर्यदेव ने स्यमन्तक महामणि सत्राजित के कण्ठ में धारण करा उसे अपना साक्षात्कार कराया।

ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा ।
प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम् ॥

(श्रीहरिवंशपुराण, हरिवंश पर्व ३८/२०)

यह इस भूमि की ही महिमा है जो सूर्यदेव सखा बने। अरे! यहाँ तो परब्रह्म भी सखा बनकर क्रीड़ा करता है।

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥

(भा.१०/१४/३२)

गोपजातिप्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः ।
ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥

(भा.१०/१८/११)

फिर सूर्य के सखा बनने में क्या आश्चर्य?

सत्राजित के अन्दर भी ब्रजभूमि के प्रताप से सख्यभाव आया, पश्चात् स्वरूप-दर्शन से परस्पर सख्यप्रेम हुआ। सत्राजित ने प्रार्थना की – "हे रवि! इस मणि के प्रभाव से मैं आपका दर्शन कर सका हूँ अतः यह मणि तो आप मुझे ही प्रदान करें।" प्रार्थना पर सूर्य ने सत्राजित को मणि प्रदान की। उस मणि की ८ विशेषताएँ थीं –

(१) वह मणि प्रतिदिन ८ भार स्वर्ण देती थी। (२) जहाँ यह मणि रहती वहाँ दुर्भिक्ष नहीं पड़ता। (३) महामारी नहीं होती। (४) गृहपीड़ा न होती। (५) सर्पों का भय न रहता। (६) मानसिक व्यथा न रहती। (७) शारीरिक व्यथा न रहती। (८) मायावियों का उपद्रव नहीं होता।

यह था हरिवंशपुराणानुसार सतवास का पौराणिक इतिहास।

अग्रिम गाथा वर्णित है श्रीमद्भागवत जी में, जिसका पद्यानुवाद श्रीसूरदासजी ने अपने शब्दों में किया –

हरिदर्शन सत्राजित आयो ।
लोगन जान्यो आवत आदित हरि सों जाइ सुनायो ॥
हरि कह्यो रवि न होइ सत्राजित मणि है ताके पास ।
रवि प्रसन्न होइ दीन्ही ताको यह ताको परकास ॥
आइ गयो सोऊ तेहि अवसर तेहि हरि कह्यो सुनाइ ।
यह मणि अति अनुपम है सो सुनि रहि न सक्यो ललचाइ ॥
एक दिन ताते अनुज सो माँगी ले गयो अखेटक काजा ।
ताको मारि सिंहमणि लै गयो सिंह हत्यो रिछराजा ॥
ऋच्छराज बह मणि तासों लै जाम्बवती को दीन्हीं ।
प्रसेन को विलम्ब भयो तब सत्राजित सुध लीन्ही ॥
जहाँ तहाँ को लोग पठायो काहू खोज न पायो ।
सूरदास सत्राजित भ्रम सों चोरी हरिहि लगायो ॥

(सूरसागर १०/५६/२६)

मणि धारण करने पर सत्राजित साक्षात् दूसरे सूर्य की भाँति ही दीप्तिमान हो रहा था। जिस समय श्रीकृष्ण दर्शनार्थ द्वारिका पहुँचा, उसे देखकर –

द्वारपाल – "हे द्वारिकेश! आपके दर्शनार्थ सूर्य नारायण पधारे हैं।"

द्वारिकाधीश – "ये सूर्य नहीं, स्यमन्तकधारी सत्राजित हैं।" तब तक सत्राजित आ ही गये।

द्वारिकेश – "सत्राजित! नीति सम्मत बात तो यह है कि यह मणि तुम्हारे द्वारा महाराज उग्रसेन को भेंट की जाय, क्योंकि उत्कृष्ट वस्तु का अधिकारी राजा होता है।"

किन्तु मणि लोभी सत्राजित प्रभु की आज्ञा का पालन न कर सका, अपराध कर बैठा।

एक दिन सत्राजित का अनुज प्रसेन मणि माँगकर ले गया। मणि धारण कर जब वह शिकार खेलने जंगल में गया तो एक सिंह ने उसे मार वह मणि ले ली। सिंह को मारकर अत्यन्त बलवान् जाम्बवान जी ने वह मणि ले ली एवं अपनी कन्या जाम्बवती को दे दी।

इधर प्रसेन के न लौटने पर सत्राजित ने श्रीभगवान् पर मणिचोरी का कलंक रख दिया, यह कहकर कि मणि के कारण ही कृष्ण ने मेरे भाई का वध कराया है।

शुकदेव कहत सुनहु हो राजा।
ज्ञानी लोभ करत नहिं कबहूँ, लोभ बिगारत काजा॥

(सूरसागर १०/५७/२७)

यदि ज्ञानी पुरुष के अन्दर भी लोभ आया तो उसे भी दोष लगेगा।

मिट्टी एकत्रित करने वाला ज्ञानी नहीं, अज्ञानी है। लोभी को यदि अमृत मिल जाय तो वह अमृत भी मृत्यु रूप धारण कर लेगा एवं निर्लोभी को 'गर' भी **अमृत** बन जाएगा। मध्य में श्रीसूर ने सैद्धान्तिक पक्ष का भी विवेचन किया, आगे वर्णन करते हैं –

एक समय श्रीकृष्ण-बलराम दोनों पाण्डव गृह गये। इधर शतधन्वा, अक्रूर जी आदि ने परस्पर मन्त्रणा की।

अक्रूर बोले – "शतधन्वा! तुम सत्राजित को समाप्त कर मणि ले लो। अच्छा अवसर है, कृष्ण-बलराम गये हैं पाण्डवों के यहाँ।"

अक्रूर की सलाह से शतधन्वा ने सत्राजित का वध कर दिया व मणि ले ली। स्यमन्तक के रहते कोई विपत्ति आनी तो नहीं चाहिए थी किन्तु विपत्ति तो क्या सत्राजित के लिए वह मणि मृत्यु बन बैठी; उसका कारण था भगवदावज्ञा। प्रथम अपराध तो उसने भगवदाज्ञा की अवहेलना की, दूसरा – ऊपर से चोरी का आरोप और लगाया। भगवद्विमुख जीव का कभी मंगल नहीं होता।

भक्ति के प्रमुख आचार्यों में हैं – श्री अक्रूर जी महाराज किन्तु अक्रूर जी की बुद्धि में वध की बात कैसे आई?

तो श्रीजीवगोस्वामीजी कहते हैं –

एवमुक्तप्रकारेण रुदतीरपि स्त्रियोऽनादृत्येति अक्रूरस्यापराधो ध्वनितः स्वतः सर्वैरेवानुकम्प्यानां तत्रापि तादृशश्रीकृष्णप्रेम्णा तथा रुदतीनां ब्रजस्त्रीणां कथमपि सान्त्वनमनपेक्ष्य प्रस्थानात् अतस्ताभिरपि तदपराधं मत्वा प्रागुक्तं योऽसावनाश्वास्येति श्रीविष्णुपुराणेऽपि "अक्रूरः क्रूरहृदयः शीघ्रं प्रेरयते हयान्। एवमार्त्तासु योषित्सु न घृणा तस्य जायते" इति अत एव श्रीगोकुलमहिज्ञास्तु तदपराधस्य

फलमक्रूरस्य वक्ष्यमाणे स्यमन्तकप्रसङ्गे मन्यन्ते सूर्य उदित एवेति सल्लग्नाद्यपेक्षया रथं भ्रातृभ्यां ताभ्यामिति शेषः ॥

(श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णवतोषिणी, भा. १०/३९/३२)

नित्य धाम में भी वैष्णवापराध नहीं छोड़ता है।

यह अपराध परमपद ह्वै ते, उतरि नरक में परिबो ॥
हरि भगतन सौं गरब न करिबो ।

(कृष्णदास जी)

वैष्णवापराधी का सब साधन विनष्ट हो जाता है।

गोपियों के पुनः-पुनः निषेध करने पर जब अक्रूरजी न माने एवं गिरधर-हलधर दोनों भाइयों को मथुरा ले गये, गोपियों की वेदना भरी हाय लग गई उन्हें। परम वैष्णवी गोपियों के अपराध से ही अक्रूरजी की मति फिरी व मणि के लोभ में शतधन्वा द्वारा सत्राजित का वध करा दिया। श्रीकृष्ण-बलराम भी शीघ्र द्वारिका आये। नगर भर में तेजी से बात का प्रसारण हुआ। सत्राजित की पुत्री सत्यभामा रोते-विलाप करते हुए श्रीकृष्ण के पास पहुँची।

सत्यभामा – "हे प्रभो! आपके रहते द्वारिका में अकारण मेरे पिता का वध हुआ।"

श्रीकृष्ण – "शोक न करो देवि! मैं इस वधक का वध करूँगा।"

श्रीकृष्ण ने पीछा किया शतधन्वा का। वह अक्रूर के पास सहायता के लिए गया किन्तु अक्रूर जी बोले – "मेरे पास कोई बल नहीं है, जो मैं तुम्हारी रक्षा कर सकूँ।" मणि अक्रूरजी को देकर अश्वारूढ़ हो शतधन्वा ८०० कोस दूर मिथिला तक भागा।

अन्ततोगत्वा श्रीकृष्णद्वारा मिथिला में वध हुआ किन्तु शतधन्वा के पास मणि न मिली।

दाऊ जी बोले – "कृष्ण! तुम द्वारिका जाकर मणि की खोज करो, मैं कुछ दिन यहीं रहूँगा।" दाऊ जी मिथिलानरेश के यहाँ ठहरे। इसी अवसर पर दुर्योधन ने उनसे गदायुद्ध सीखा।

शतधन्वा का वध सुनकर सत्यभामा बहुत प्रसन्न हुई। अब अक्रूर जी घबड़ाये, किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। मणि दे भी नहीं सकते क्योंकि लोभ है और मणि रख भी नहीं सकते क्योंकि श्रीकृष्ण का भय है। इसलिए द्वारिका से मणि सहित भाग गये। यादव वीरों ने प्रभु से कहा – "भगवन्! मणि के प्रभाव से अक्रूर जी जहाँ भी होंगे वहाँ अवर्षा व अकाल नहीं होगा।"

उस समय अक्रूर जी काशी में थे, अक्रूर जी के वहाँ रहने से सर्वत्र सब प्रकार का सुख था। अमित दयावर्षी श्रीकृष्ण सदय बोले – "अक्रूर चाहे कैसा भी है, हमारा भक्त

है।" भक्त के अक्षम्य-दोषों पर भी भगवान् का ध्यान कभी नहीं जाता है। यद्यपि सत्राजित की मृत्यु का कारण अक्रूर ही थे किन्तु श्रीकृष्ण बोले – "अक्रूर जी को दरबार में बुलाओ, हम उन्हें क्षमा करेंगे।" दरबार में अक्रूर जी को बुलाया गया।

प्रभु बोले – "अक्रूर जी! हम जानते हैं कि मणि आपके पास है, आप यदि सभा में मणि एक बार दिखा ही दें तो हमारे ऊपर से चोरी का कलंक दूर हो जाय।"

अक्रूर – "प्रभो! यह रही मणि, इस मणि के अधिकारी आप ही हैं, आप इसे स्वीकार करें" कहते हुए अक्रूर जी जब प्रभु को मणि देने लगे तो उन्होंने मना कर दिया।

श्रीकृष्ण – "इस मणि का अधिकारी मैं नहीं सत्यभामा है। पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकार सन्तति को ही होता है।"

इस प्रकार भगवान् ने स्यमन्तक को स्वयं न लेकर अक्रूर जी को सम्मान सहित विदा किया।

श्रीमद्भागवत, गर्गसंहिता व श्रीहरिवंशपुराण के अनुसार मणिकथा लगभग एक ही प्रकार से वर्णित है।

पूज्य बाबा श्री जब इस गाँव में पहुँचे तो ब्रजवासियों ने एक 'पसेंदू' का वृक्ष दिखाया जिसे 'श्याम तमाल' भी कहते हैं। ब्रजवासियों का कथन है कि यहाँ सत्यभामा व श्रीकृष्ण की भाँवरी (विवाह-संस्कार) हुई किन्तु भागवत जी के अनुसार श्रीकृष्ण-सत्यभामा विवाह द्वारिका में हुआ है क्योंकि जिस समय मणि ढूँढ़ते हुए श्रीकृष्ण जाम्बवान के पद चिन्हों का अनुगमन करते हुए गुहा में पहुँचे, वहाँ जाम्बवान से उनका कई दिन तक युद्ध चला, प्रभु बाहर न आये, तब द्वारिकावासियों ने द्वारिकानाथ के मंगल के लिए भगवती दुर्गा की उपासना की। उस उपासना के परिणाम स्वरूप प्रभु जाम्बवान पर कृपा कर जाम्बवती व मणि को लेकर गुहा से बाहर आये। "लो सत्राजित यह रही तुम्हारी मणि" कहते हुए मणि उसे सौंप दी। अब सत्राजित को मन में बड़ा क्षोभ हुआ "मैंने व्यर्थ ही प्रभु को मणि चोरी का कलंक लगाया"। प्रभु को प्रसन्न करने के लिए सत्राजित ने अपनी कन्या सत्यभामा मणिसहित श्रीकृष्ण को समर्पित कर दी।

तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि।
बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम्॥

(भा. १०/५६/४४)

और भगवान् का द्वारिका में सविधि सत्यभामा के साथ पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। यद्यपि कल्प भेद से अनेकों लीलाओं का होना भी सत्य है, जैसा कि ब्रजवासियों का कथन है कि सतवास में सत्यभामा-श्रीकृष्णविवाह हुआ है। यह भी कल्प भेद से सत्य है। ब्रज में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि विवाह के बाद दूल्हा-दुलहिन द्वारा देव पूजन की प्रथा है अतः विवाहोपरान्त श्रीकृष्ण सत्यभामा सहित अवश्य यहाँ आये हैं,

क्योंकि यह उनके श्वसुर की तपोभूमि है, इस अवसर पर उन्होंने ब्रज प्रथा का निर्वाहन करते हुए पसेंदू वृक्ष (श्याम तमाल) की पूजा की है, यह वृक्ष अद्यावधि यहाँ दर्शनीय है। इस वृक्ष की आयु बहुत दीर्घ होती है। ब्रज के सबसे अधिक प्राचीन मन्दिरों में है - 'सतवास का सूर्य मन्दिर'। बीजक के अनुसार शायद ही ब्रज में कोई मन्दिर प्राचीनता में इसकी टक्कर का होगा। यहाँ मुख्य सूर्य मन्दिर के दाहिनी ओर भग्नावशेष खण्डहर है, प्राचीन सूर्यमूर्तियाँ हैं। पुरातत्त्व विभाग द्वारा पूर्ण सुरक्षा से इन अवशिष्ट निधियों का सुरक्षित रखाव होना चाहिए। यदि पुरातत्त्व वेत्ता यहाँ शोध अनुसंधान करें तो और भी बहुत कुछ स्पष्ट होगा । **श्रीराधारानी ब्रजयात्रा** का ऐसे एक नहीं अनेकों स्थान में प्रथम प्रवेश होता आया है।

सतवास नाम होने का एक अन्य कारण –

"साँचे बोल लाल के आये"

श्रीकृष्ण के सत्य बोलने से भी यह ग्राम सतवास हुआ। भागवत में देवों द्वारा स्तुति में वर्णित है –

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥

(भा. १०/२/२६)

जुरहरा से १३.२ कि.मी. की दूरी पर स्थित है सतवास ग्राम।

पथवारी

श्यामसुन्दर, गौरसुन्दर तथा उनके रंगीले सखा गोचारण के बहाने एक वन से दूसरे वनमें विविध उल्लासमयी क्रीड़ा में संलग्न हो जाते। गो और गोवत्स तो हरी-भरी घास चरने लगते और नन्दगाँव के ये गोपवृन्द गोपाल के साथ इस तरह की क्रीड़ा करते।

भ्रमणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ।
चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥

(भा. १०/१८/१२)

कभी तो गौर-श्याम युगल भ्राता ग्वाल बालों के साथ एक दूसरे का हाथ पकड़कर घुमाते। कभी ऊँची कूद और लम्बी कूद की प्रतियोगिता करते। पर्वतीय इलाका है अतः पत्थरों को हाथ में लेकर एक-दूसरे से पत्थर फेंकने की स्पर्धा करते। किसका पत्थर दूर गिरेगा? जिधर देखो उधर ही ये चंचल बालक पाषाण लेकर दूर-दूर तक फेंक रहे हैं। पत्थर फेंकने की इस लीला के कारण ही इस स्थान का नाम 'पथवारी' पड़ गया किन्तु पत्थर फेंकने तक ही इनकी क्रीड़ा विराम ले नहीं सकती थी अतः कभी तो ताल ठोककर

रस्साकसी का खेल खेलते। दो दल बन जाते, एक दल के नायक गोविन्द, दूसरे दल के बलदेव और इस प्रकार दोनों दल एक-दूसरे के विपरीत रस्सी पकड़कर खींचते और कभी फिर से मल्लक्रीड़ा का आयोजन करके कुश्ती के दावपेंच आजमाने लग जाते।

इस प्रकार पथवारी में गोपसखाओं के साथ कृष्ण-बलदेव ने ये क्रीडाएं की हैं।

जुरहरा से पथवारी की दूरी १२ कि.मी. और सतवास से पथवारी की दूरी ४ कि.मी. है।

भट्टकी

जहाँ सर्वज्ञता के साथ मुग्धता भी एक कालाविच्छिन्न खेल रही है, उस अति प्राकृत लीला की भूमि का नाम है – **ब्रज।** यहाँ उस अखण्ड, अनन्त, अपौरुषेय का रहन-सहन, चलन-चितवन, बोलन-डोलन सब अति प्राकृत हो जाती है।

भागवतकार ने जिन्हें गाया –

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान्॥
हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं
ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद् वित्।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं काले
गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः॥
एवं धाष्टर्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था
प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत्॥

(भा. १०/८/२९, ३०, ३१)

ये तीन श्लोक अति प्राकृत लीला के हैं।

रसिकों ने भी अपनी वाणी, पदों में विस्तृत वर्णन किया इन लीलाओं का।

रसिक श्री चाचा वृन्दावनदासजी के शब्दों में –

आज बड़े भोर, एक ब्रजवल्लभी नन्द-निलय में आई।

प्रवेश द्वार की देहरी पर खड़े नन्दकुमार मानो इसकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। दोनों कर फैलाकर प्रथम तो उसका मार्ग अवरुद्ध किया, बोले –

घर बसी तू को कितर्ते आई ।
बिनही कारन भवन पराये चपरी लेत लराई ॥
नाम धरति है मैया मोकौं यह मनसुखा सिखाई ।
कहि बेगी घर जाइ आपने याके मन की पाई ॥
चोर जुगल की यह जु मिलनियां कैसी बात बनाई ।
बन्यो ब्याह बरबस बिगारिहैं हियैं भरी जु खुटाई ॥
हँसनी ठगनी जानि परति है तैं कत मुँह जु लगाई ।
बचननि और पेट कछु औरै खरचति है चतुराई ॥
बाबा की सौं महाढीठ यह करि जै है भड़ियाई ।
तू रानी न प्रीति करि यासों लै है मति बौराई ॥
ताहि न घर में आबन दीजै काटै बात पराई ।
बृंदावन हितरूप नीति की बात कही सुनि माई ॥

कृष्ण – "अरी, तू कौन है? कहाँ से आई है? दिन-रात हमारे भवन की भ्रमरवत् परिक्रमा लगाती रहती है। आज मैं तुझे अपने घर में नहीं आने दूँगा।"

गोपी – "लाला! राजी से कह रही हूँ, हट जा नहीं तो फिर मैया से शिकायत करके पिटवा दूँगी।"

कृष्ण – "दूसरों के घर में आकर बिना मतलब लड़ाई ठान रही है।" मैया ऽ ऽ ऽ ऽ! ओ मैया ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ! कृष्ण चिल्लाये।

यशोदा मैया – "हाँ कन्हैया ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ! "

मैया भवन से बाहर आई।

कृष्ण – "देख मैया, आज मैं इस घरघुसी को अपने सदन में नहीं आने दूँगा।"

यशोदा मैया – "क्यों लाला? "

कृष्ण – "मैया! चोरी की उल्टी-सीधी बात बनाकर, घर-घर जाकर यह मेरा नाम बदनाम करती है, मुझे मनसुख ने सब बता दिया है। मैया इसे शीघ्र विदा कर यहाँ से, यह स्वयं चोर है, मीठी-मीठी बात बनाकर घर में घुस आती है। बना-बनाया मेरा विवाह इसने बिगाड़ दिया, बरसाने से सगाई आई वह फिर गई। बड़ी ठग्गो है, हँसकर तुझे ठग लेती है, तू इसे मुँहलगी मत कर। इसके मुख में कुछ और पेट में कुछ है।

बाबा की सौगन्ध! यह महाढीठ है, घरफोड़ी है, घर में डंडा बजवाने वाली, भेड़ा-भेड़ी कराने (लड़ाई लगाने) आ गई है, भड़ियाई है।"

यहाँ 'भड़ियाई' कहकर भट्टकी की गोपियों को विशेष विशेषण दिया। आश्चर्य न करें, यहाँ गाली के बिना किसी भी वाक्य की अथ-इति नहीं होती।

कृष्ण – "तू इससे प्रेम मत करना, नहीं तो उल्टी-सीधी सीख देकर तुझे पागल बना देगी। मैं नीति की बात कह रहा हूँ, तू सब गोपियों का यहाँ आना-जाना बन्द कर दे। 'नन्दभवन में गोपी प्रवेश बन्द है' बस इतनी-सी बात कह दे।"

(लाला को यशोदा मैया की सीख)

मैया – "अच्छा लाला! अब तू रोष मत कर, चल भोजन कर ले। मैया ने लाला को निज अंक में बैठाया और बोली – देख लाला, सबसे मधुर बोलना चाहिए। उस बेचारी गोपिका को तूने चोर, चपरी, चुगल, हँसनी-ठगनी, घरफोड़ी, घरबसी, भड़ियाई ....न जाने क्या-क्या कह दिया .....।"

इतना कहकर मैया तो सोच में पड़ गई – "ये कन्हैया तो बड़ा गर्व-गुमान से बोलता है, यह बहुत बड़ा दोष है।" सोचते हुए अन्दर कक्ष में गई, वहाँ से उज्जवल खाँड़ लाई, उसे माखन में मिलाकर लाला को अपने हाथ से खिलाने लगी – "कन्हैया, पुत्र! अब तू दूसरों के घर मत जाना। यदि सखाओं को माखन ही खिलाना हो तो हमारे यहाँ मथानी भर-भरकर माखन रखा है, जितना चाहे यहाँ से ले जाकर खिला देना। तेरे बाबा ब्रज के राजा हैं, राजा का पुत्र होकर नाक कटाने जैसे काम मत करना। हमारा घर गोरस से भरा-पूरा है फिर तू जंगल में इन गोपियों से क्यों दान लेता है? अरे, घर में किसी वस्तु का अभाव थोड़े ही है; जो चाहिए, जितना चाहिए ले ले।"

कृष्ण – "मैया! तुझे चोरी की, दान की ये सब बातें किसने कही, अवश्य कोई चुगल झूठी बात बना के गयी है।

देख मैया, मेरे जैसा साधु तो इस सम्पूर्ण ब्रजमण्डल में नहीं है परन्तु मुझसे कोई ही परिचित होगा। मैं कैसा साधु पुरुष हूँ, सत्यनिष्ठ हूँ, सीधा-सादा हूँ, तू नहीं पहिचान पाई, बस अपना छोटा-सा बालक ही समझती रही। मुझे बाबा ने कभी एकान्त में ले जाकर, कभी अथाई में बैठकर राजनीति पढ़ाई है। बाबा कहते हैं – लाला! तू अपने तेज को सुरक्षित रखना, मर्यादा में रहना, यह गोपों की राजधानी है।"

रसिकवर्य्य श्री चाचा जी कह रहे हैं - नन्दनन्दन बहुत चतुर हैं, बिना पानी आए पहले से ही मेंड़ बाँध रहे हैं।

जल वर्षा के बाद मेंड़ नहीं बँधती है अतः चतुर कृषक आषाढ़ के अन्त में जलागमन के पूर्व ही मेंड़ बाँध देते हैं। इसी प्रकार यहाँ कोई शिकायत करने नहीं आई, उससे पहले ही मैया को सफाई दे रहे हैं अतः कहा – कृष्ण बिना पानी आए मेंड़ बाँध रहा है।

यहाँ के निवासियों का कहना है कि यह एक प्राचीन गाँव है। प्राचीन काल में यहाँ भाट जाति के लोग रहा करते थे, हो सकता है इसी कारण से गाँव का नाम भट्टकी रख

दिया गया। मुसलमान भी यहाँ बसे किन्तु वर्तमान समय में जाट लोग यहाँ वास करते हैं। चामुण्डा देवी के मन्दिर में जो विग्रह है वह स्वतः प्रकट बताया जाता है। यहाँ पर एक सीताराम जी का मन्दिर भी है, जिसके नाम पर तीस बीघा खेत है। गाँव के मध्य एक कुण्ड है, जो मन्दिर से सम्बंधित है।

सतवास से १.३ कि.मी. की दूरी पर और जुरहरा से १४.६ कि.मी. की दूरी पर स्थित है भट्टकी ग्राम।

ऐंचवाड़ा

ब्रज के प्रत्येक गाँव में वृन्दावनविहारी लाल ने रसमयी लीलाएं की हैं। ऐंचवाड़ा और उसका निकटवर्ती क्षेत्र सख्यरस प्रधान है। यहाँ राम-श्याम और उनके चुलबुले सखाओं ने जो लीलाएं की हैं, श्रीमद्भागवत में शुकदेव जी ने उसका सरस चित्रण इस प्रकार किया है –

नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ।
गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥

(भा. १०/१५/१५)

इस स्थल पर आकर श्यामसुन्दर, ज्येष्ठ भ्राता दाऊ जी और उनके ग्वालसखा परस्पर नृत्य करने लगे। सभी को नृत्य करते देख श्रीदामा ने कहा – "अरे! केवल नृत्य करने से आनन्द नहीं आने वाला, जब तक मधुर स्वर से गीत न गाया जाये।"

फिर क्या था, ग्वालबालों ने कृष्ण-बलदेव को ही अपने कल-कंठों से स्वरलहरी छेड़ने का उत्तरदायित्व सौंप दिया। अपने प्रिय सखाओं की आज्ञा पाकर ये दोनों भ्राता मधुर स्वर से गान करने लगे, उनके अमृतमय गायन से कदम मिलाते हुए सभी गोपवृन्द भी नृत्यकला का अद्भुत प्रदर्शन करने लगे। इतने में सुबल बोल उठा – बहुत हो चुका नृत्य-गान, अब तो वीररस प्रधान क्रीड़ा होनी चाहिए। इतना सुनना था कि संगीत गोष्ठी के कलाकार सहसा मल्लक्रीड़ा पर उतर आये और ताल ठोक-ठोककर एक-दूसरे से कुश्ती लड़ने लगे। कुश्ती से जी भर गया तो एक-दूसरे का हाथ पकड़कर खेंचा-खेंची का खेल करने लगे। अपने प्रिय सखाओं की ऐसी प्रीतिवर्धक क्रीड़ाओं को देखकर गौर-नील दोनों भ्राता जोर-जोर से हँसते और वाह-वाह कहकर उनकी प्रशंसा करते।

सतवास से २.५ कि.मी. और जुरहरा से १५.७ कि.मी.की दूरी पर स्थित है ऐंचवाड़ा ग्राम।

ऐंचेरा

यहाँ के ब्रजवासियों का कहना है कि यह रासस्थली है। यहाँ प्राचीन कदम्बखंडी है। अत्यन्त पुराने कदम्ब के वृक्ष हैं। जिनमें प्राकृतिक झूला बना हुआ है। युगलस्वरूप की दोलन लीला भी यहाँ हुयी है। यही नहीं, यह सिद्ध सन्तों की तपोभूमि होने से बहुत ही चमत्कारिक भूमि है। आज भी अनेकों श्रद्धालु परिक्रमार्थी यहाँ से होते हुए जाते हैं। सैकड़ों एकड़ में प्राचीन कदम्ब वृक्षों की परिक्रमा होती है। श्रद्धालुओं के मनोरथ सिद्ध करने वाली यह भूमि आज भी अपनी गरिमा-महिमा से मण्डित है।

प्राचीन कदम्ब के वृक्ष

ऐंचेरा में कदम्ब के वृक्ष

सतवास से २.४ कि.मी. और जुरहरा से १०.९ कि.मी. और नदवई जनूथर रोड पर नदवई से १२ कि.मी. की दूरी पर स्थित है ऐंचेरा।

नौनेरा

राम, श्याम और उनके सखा इस प्रकार एक से बढ़कर एक क्रीड़ाओं का आयोजन करते-करते अब आ पहुँचे नौनेरा। यहाँ आ गये तो नटवरनागर और उनके सखाओं द्वारा दूसरी नूतन लीला का सृजन होने लगा।

क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम्।
स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः॥

(भा. १०/१५/१४)

दिन भर खेलते ही रहेंगे तो थकावट भी तो होगी अतः नौनेरा आने पर यशोदा और रोहिणी के दोनों लाड़ले लाल तो अतिशय परिश्रान्त होकर विश्राम करने लगे। इनकी विश्रामलीला भी प्रेमरस में डूब जाती। कभी श्यामसुन्दर थक जाते तो दाऊ भईया की गोद में शयन करने लगते और कभी दाऊ भैया श्रमित हो जाते तो कुँवर कन्हाई अपनी गोद का तकिया बनाकर बड़े भैया को शयन कराता। दोनों भ्राताओं का ऐसा प्रेम देखकर

भला इनके सखा कैसे चूकते। उनके हृदय में भी अपने युगलनायकों के प्रति प्रेम सागर उमड़ने लगता। सखावृन्द स्वयं विश्राम न करके दोनों भाइयों के चरण संवाहन करते।

शयनलीला को विराम लगा और शरीर में ऊर्जा का संचार हुआ तो दूसरी लीला साकार हो उठी।

क्वचिद् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः ।
अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥

(भा. १०/१८/१४)

कभी बेल, जायफल और आँवले के फलों को तोड़कर एक दूसरे पर प्रहार करते, कभी आँखमिचौनी का खेल खेलते तो कभी पशु-पक्षियों की तरह क्रीड़ा विनोद करते।

जुरहरा से १६.२ कि.मी. की दूरी पर स्थित है नौनेरा ग्राम।

शीशवारा

प्रथम सीस अरपन करे, पाछै करै प्रबेस ।
ऐसे प्रेमी सुजन को, है प्रबेस एहि देस ॥

मृत्यु भीरुओं के लिए प्रेम का पंथ कहाँ।

मृत्यु से डरने वालो! प्रेम गली में मत आना। यहाँ तो बलिदान के बाद प्रवेश है।

सीस उतारौ भुवि धरौ, तापर राखौ पाँव ।
'कबिरा' कहै पुकारिके, ऐसो होई तौ आव ॥

अथवा

यह प्रेम को पंथ करारो महा, तरवार की धार पै धावनो है ।

इतना ही सहज होता प्रेम को प्राप्त करना तो गली-गली में प्रेमी होते।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा-परजा जेहि रुचै, सीस देइ ले जाय ॥

सबके लिए है यह किन्तु सबमें सामर्थ्य कहाँ कि इसे ले ले। विषय कामियों का तो इस पथ पर पाँव रखना भी धधकती आग में कूदना और काले सर्प के मुख में हाथ देना है।

प्रेम अमिय पीयौ चहै, करै विषय सौं नेह ।
विष ब्यापै जारै हियौ, करै जरजरित देह ॥

यह तो उनके लिए है जिनका अपना कुछ नहीं।

सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तवपादमूलम् ।

(भा. १०/२९/३१)

ब्रजगोपियों ने समस्त विषयों का त्याग किया।

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः ।
ये त्यक्तलोकधर्मांश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥

(भा. १०/४६/४)

तभी तो श्रीकृष्ण ने इन्हें मथुरा के महलों में तो याद किया ही, इन्हें –

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।

(गी. १८/६५)

कहकर कुरुक्षेत्र की समर भूमि में भी याद किया।

जिन्होंने अपना मन, प्राण श्रीकृष्ण को अर्पित कर दिया। उनका अपना न मन रहा, न प्राण। मन्मना हो गयीं, मत्प्राणा हो गयीं। अपनी देह व समस्त दैहिक अनुबन्धों को श्रीकृष्ण के निमित्त सर्वतो भाव से त्याग दिया।

त्यक्त दैहिका हो गईं, यही नहीं श्रीकृष्ण बोले –

राधा कृष्ण मंदिर - शीशवारा ग्राम

मेरे लिए पति-पुत्र सभी सगे-सम्बन्धियों को छोड़ने वाली इन ब्रजाङ्गनाओं ने मुझे ही अपना प्यारा, प्रियतम, कहाँ तक कहूँ, अपनी आत्मा भी ये मुझे ही मानती हैं। प्रियतम का ब्रह्मरात्रि पर्यन्त मिलन तो इन्हें विद्युत-झलक की तरह क्षणिक लगता है। इसके विपरीत प्रिय का त्रुटि भर विरह काल इन्हें सैकड़ों युगों जैसा प्रतीत होता है।

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥

(भा. १०/३१/१५)

अथवा

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायुतम् ।
शून्यायुतं जगत्सर्वं गोविन्द विरहेण मे ॥

(शिक्षाष्टकम्)

इन्हें भला मरने से क्या भय।

बहुत ही वक्र मार्ग है यह –

प्रीति की रीति को पैंड़ो ही न्यारो ।
कै जाने वृषभानुनन्दिनी, कै जाने वह नन्द दुलारो ॥
बातन प्रीति न होय सखी री, यह अपने जिय सोच विचारो ।
'सूर स्याम' यह प्रीति कठिन है, सीस दिये बिनु होय न गुजारो ॥

जगत का परतत्त्व है प्रेम, जो यूँ ही बातों से नहीं मिलेगा, बलिदान से मिलेगा।

शास्त्रों में यत्र-तत्र त्याग के विषय में बहुत कुछ लिखा है किन्तु सर्वश्रेष्ठ बात तो गीतागायक ने ही कही –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८/६६)

और इस मन्त्र की साक्षात् मूर्ति ब्रज गोपीजन हैं।

दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च ।
हित्वावृणीत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥

(भा. १०/४७/२६)

उद्धव ने कहा – धन्य तो हैं ये ब्रजवासी जिन्होंने अपने पुत्र, पति, देह, स्वजन एवं घरों को छोड़कर परमपति श्रीकृष्ण को ही पति रूप में वरण किया।

प्रेम का ऐसा साक्षात्कार तो उद्धव ने ब्रज में ही किया।

गोपीजन बोलीं – उद्धव! प्रेमी के लिए मरण का वरण तो बायें हाथ का खेल है।

ऊधौ! प्रीति न मरन बिचारै ।
प्रीति पतंग जरै पावक परि, जरत अंग नहिं टारै ॥
प्रीति परेवा उड़त गगन चढ़ि, गिरत न आपु सम्हारै ।
प्रीति मधुप केतकी कुसुम वसि, कंटक आप प्रहारै ॥
प्रीति जानु जैंसे पय-पानी, जानि अपनपौ जारै ।
प्रीति कुरंग नाद-रस लुब्धक, तानि-तानि सर मारै ॥

प्रीति जानि जननी सुत कारन, को न अपनपौ हारै ।
सूर स्याम से प्रीति गोपिन की, कहुँ कैंसे निरवारै ॥

गोपियों ने उद्धव से कहा था – उद्धव! प्रेमी मृत्यु की परवाह नहीं करता। पतंगा अग्नि से प्रेम करता है और इस प्रेम के कारण ही अग्नि में पड़कर जल जाता है। प्रेम के कारण ही कपोत आकाश में दूर तक उड़ता हुआ चला जाता है, उसे यह भी होश नहीं रहता कि मैं जहाँ जा रहा हूँ, न वहाँ पहुँच सकता हूँ, न लौट ही सकता हूँ फिर भी तो वह उड़ता हुआ चला जाता है और फिर वहाँ से वह बेचारा गिरता है, प्रेम के कारण ही भौंरा केतकी फूल पर बैठा रहता है और उसके काटों की चुभन को सहता रहता है। प्रेम तो दूध और पानी का देखो, दोनों एक-दूसरे में मिलकर अपनापन ही खो देते हैं, एक रस, एक रूप हो जाते हैं। एक का कष्ट, दूसरे का कष्ट हो जाता है। प्रेम के कारण ही हिरन, बीन की ध्वनि में ऐसा बेसुध हो जाता है कि बधिक सामने खड़ा है, तान-तानकर बाण छोड़ रहा है किन्तु हिरन हटता नहीं है, व्याध के शराघात से प्राण त्याग देता है, परन्तु प्रेम नहीं।

हमने अपने प्राण तो कृष्णागमन की आशा में धारण कर रखे हैं।

पा लागों ऐसेहि रहन दे, अवधि आस जल थाहे ।
जनि बोरहिं निर्गुन समुद्र में, फिरि न पायहौ चाहे ॥
जाको मन जाही ते राच्यौ तासों बने निबाहै ।
सूर कहा लै करै पपीहा, एते सर सरित है ॥

(सूरदास जी)

गोपी बोलीं – उद्धव! हम तुम्हारे पैर पड़ती हैं, हमको इस तरह अवधि के आशा रूपी जल की थाह (गहराई) में ही पड़े रहने दो क्योंकि हमें यह आशा तो रहेगी कि कृष्ण दर्शन कभी न कभी होंगे, यह आशा हमें विरह सिन्धु में डूबने से बचा लेगी। हम तो केवल कृष्ण प्रेम में पगी हुयी हैं, जिसका जिससे प्रेम होता है, उसे उसी के साथ निर्वाह में सुख-सन्तोष प्राप्त होता है। संसार में कितने ही सरोवर, कितनी ही नदियाँ हैं किन्तु उन्हें लेकर पपीहा क्या करे। पपीहे के लिए तो वे सब निरर्थक हैं क्योंकि पपीहे की प्यास तो स्वाति-जल से ही बुझती है।

अतः हमारी आशा को मत तोड़ो। आशा से विरहाग्नि की दाहकता का शमन होता है।

आशा बन्धः कुसुम प्रायशो लंगनाना ।
सद्यः पाति प्रयचि हृदय विप्रयोगे रुणद्धि ॥

(मेघदूत)

अथवा

इह आशा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल ।
ऐहैं फेरि बसन्त ऋतु, इन डारनि वे फूल ॥

(बिहारी सतसई)

पुष्प झड़ने के बाद भी भ्रमर गुलाब के वृक्ष के मूल में इस आशा से लटका रहता है कि फिर कभी बसन्त आयेगा और इन डालों में फूल खिलेगा।

नगर से रसिया होते हुए १८ कि.मी. की दूरी पर स्थित है शीशवारा ग्राम।

सोनोखर

अभी तो श्यामसुन्दर ने पौगण्ड में भी प्रवेश नहीं किया और इनका ऊधम ब्रज में इतना बढ़ गया कि गोपियों की जिह्वा पर कृष्ण नाम अचल विराजित हो गया।

आज कन्हैया ने माखन चुराया!

आज इस ढोटा ने मुझे गारी दी!

आज तो कान्हा मेरे यहाँ मध्यरात्रि को चोरी करने आया!

बात-बात पर कृष्ण का नाम ब्रज में घूमने लगा था। इन भोले-भाले ब्रजवासियों के पास कृष्ण के अतिरिक्त कोई चर्चा न थी। कृष्ण की ही नित्य की चर्चा इतनी थी कि अन्य चर्चा का वहाँ अवसर न था अतः कृष्ण चर्चा में ही उनका कालाक्षय होता। सबेरा भी न हो पाता और कृष्ण की लीला आरम्भ हो जातीं। आश्चर्य तो यह कि एक समय में कितने ही घरों में लीला हो जाती, कौन जाने यह कितने रूप-धारण करता होगा।

सच तो यह है कि एक फल का एक समय में बहुविध बहुतों को आस्वादन कराना, यह इसी की सामर्थ्य है।

बहुत सबेरे से लीलाक्रम भी आरम्भ हो जाता और लीलाचर्या भी।

श्रीपरमानन्द स्वामी जी की वाणी में –

तुम मेरी दोहनी दुराई ।
मो पें ले लीनी देखनि कौं इहि धौं कौन बड़ाई ॥
निपट सवारे हीं अति आतुर धेनु दुहावन आई ।
जानि अकेली हौं इनि ढोटा बहुतै मान खिझाई ॥
द्वारि उघारि बछरुआ मेले बरबट गाँइ चौखाँई ।
हौं पचिहारी कह्यौ न मानत बरजत नाकहिं आई ॥

अब मेरी सासु त्रास करै हौं क्यों उबरों घर माई ।
'परमानन्द' प्रभु तब हँसि दीन्हों भई बात मनभाई ॥

आज एक गोपी यह सोचकर जल्दी जाग गई थी कि यदि थोड़ा भी प्रकाश हो गया तो वह नटखट मर्कट चला आएगा और फिर कोई कार्य नहीं हो पाएगा। गो-दोहन, दधि-मन्थन, गृह-मार्जन जैसे कार्य मुझे अतिशीघ्र कर लेने चाहिए। शीघ्र अपनी सुनहली-दोहनी उठाई और तीव्र गति से पहुँच गई खिरक में। सबसे पहले गो-भूमि को स्वच्छ किया, दोहनी को जल से धोया, अभी गो-चरणों में लोवना भी नहीं बाँध पाई थी कि जिसका भय था वह नटखट-मर्कट कन्हैया आ गया।

ओह! इतने सवेरे भी आ धमका, वह तो विस्फारित नेत्र कृष्ण को देखती ही रह गई। तब तक छोटे-से कन्हाई ने आकर उसके आँचर से अपना मुख पौंछ लिया।

कन्हैया – "अरी ओ देख, आज मैं त्वरा (जल्दीबाजी) में मुख धोकर भी न आ सका।"

बहुत सुन्दर लग रहा था यह छोटा नीला-बालक पीली कछनी पहने जब गोपी के आँचर से मुख पौंछ रहा था। शयन के बाद बिखरी काली लटूरी मुख को आवृत किए हुए थीं, रात्रि को मैया द्वारा आंजा गया नेत्रों का काजल भी नेत्र-रेखों पर आ गया था।

(आँचर से मुख मार्जन कर लेने के बाद बोले)

कन्हैया – "यह तेरी सुनहली दोहनी तो बहुत सुन्दर है, देखूँ तो।"

गोपी के हाथ से दोहनी ले ली और कम शब्दों में बहुत प्रशंसा करने लगे।

कन्हैया – "ऐसी सुनहली दोहनी का तो मैंने प्रथम बार ही दर्शन किया है, ऐसी तो मेरी मैया के पास भी नहीं है, कहाँ से लाई, बहुत सुन्दर है......" कहते हुए वत्स को खूँटा से खोल दिया। गोपी वत्स पकड़ने दौड़ी, तब तक नटखट ने दोहनी को छिपा दिया।

गोपी – "कन्हैया! मैं यहाँ अकेली हूँ, इसीलिये तू मुझे खिजा रहा है। देख, बछड़े सब दूध पी गये; अब मैं सास को क्या ले जाकर दिखाऊँगी? मेरी सास पहले ही मुझे मना कर रही थी – 'तू खिरक में मत जाना।' मैं लड़-झगड़कर आई और यहाँ भी दूध दोहन तो नहीं हुआ, तूने अवश्य मेरा दोहन कर दिया मेरी दोहनी दुराकर, ऊपर से बछड़ों को खोल, सब दूध पिला दिया। अब घर जाऊँगी, सास पूछेगी तो क्या उत्तर दूँगी? एक तो वैसे ही वह बड़ी लड़िहारी है, बहुत क्रोध करेगी मेरे ऊपर।"

गोपी की खीज भरी बातें सुनकर श्यामसुन्दर हँस गये।

'परमानन्द प्रभु तब हँसि दीन्हो, भई बात मनभाई ।'

"भई बात मनभाई" के कई भाव हैं –

प्रथम भाव –

गोपी का यह क्रोध तो मात्र आन्तरिक भाव गोपन के लिए था। 'मन भाई' बात तो यही थी कि वह स्वयं कृष्ण दर्शन चाहती थी और श्यामसुन्दर उसे दर्शन देने खिरक ही आ पहुँचे तो उसका मनोऽभीष्ट पूर्ण हो गया।

द्वितीय भाव –

बार-बार पूछने पर जब श्यामसुन्दर ने दोहनी नहीं बताई, बहुत ढूँढ़ने पर भी उसे जब दोहनी नहीं मिली तो श्यामसुन्दर हँस गये और वह चतुरा गोपी समझ गयी, हँसने का अर्थ ही यह है कि मेरी 'सुनहली-दोहनी' इसी के पास है।

'सुनहली-दोहनी' से ही संबद्ध है – सोनोखर।

कामां से १० कि.मी. की दूरी पर स्थित है सोनोखर।

परेही

ब्रज-भू के प्रत्येक गाँव का लीलाबिहारी की लीला से सम्बन्ध है। वन रूप यह समस्त ब्रज, ब्रजराज की लीलाओं का रंगमंच रहा।

श्रीपरमानन्द स्वामी के शब्दों में –

भावत है वन वन की डोलन ।

यहाँ "वन-वन की डोलन" से यह स्पष्ट निर्दिष्ट है - कोई वन, कोई गाँव नहीं बचा लीला पुरुषोत्तम की चित्ताकर्षिणी क्रीड़ाओं से।

परेही की लीला –

वन-वन की डोलन में आज यहाँ साँवरे की बाँसुरी फेंट से सरक गई। उछलते-कूदते गोपक्रीड़ा करते हुए ग्वालों का समूह तो एक वन से दूसरे वन में निकल गया। जब दधि विक्रयणियों का समूह अपनी यूथेश्वरी श्रीराधारानी के साथ निकला,

एक ने कहा – "आज वन में प्यारे कन्हाई का दर्शन नहीं हुआ।"

तुंगविद्या – "तू ठीक ही कह रही है चम्पकलता, एक दधि विक्रय के बहाने ही तो हम कृष्णदर्शन कर लेती थीं, आज तो वह भी न हो सका।"

ललिता – "जानती हो, मेरा तो प्रति प्रभात ही कृष्णदर्शन से होता था, ऊँचेगाँव से सीधे पहले नन्दगाँव का मार्ग पकड़ती तब कहीं जाती किन्तु आज दधि विक्रय को दूर आना था तुम सबके साथ, सोचा कि मार्ग में दर्शन हो जाएगा किन्तु यह भी न हो सका।"

एकाएक प्रियतम के चिन्तन में निमग्न श्रीराधा के चरणों को वन-पथ में पड़ी वंशी ने चूमा।

श्रीराधा – "विशाखा! देख तो, यह कन्हैया की ही वंशी है न।"

कन्हैया की वंशी पहिचानना तो इन चतुराओं के लिए बहुत सरल कार्य है। कितनी ही बार इन्होंने इस वंशी को छिपाया, कितनी बार इसे जीता, कितनी बार इससे कलह भी किया। एक दृष्टि में ही सब जान गयीं यह कन्हैया की ही मुँहचढ़ी है। प्रसन्नमना सब लौट आईं घरों को।

रात्रि भर श्रीराधा तो वंशिका को वक्ष से लगाकर ही सोयीं। प्रेम में प्रियतम की प्रत्येक वस्तु आसिज्य (प्रीति पात्र) बन जाती है। रात्रि भर प्रियतम की वंशी ने प्रियतम का ही आनन्द दिया, मानो वंशी नहीं स्वयं प्रियतम ही प्रेयसी के साथ शयन किये हैं। अभी तो आकाश में रवि की प्रथम किरण के प्रकाश की भूमिका भी न बनी थी, श्रीजी ने उसे वक्ष से विलग कर (वंशी को) अपने नीले आँचल से पौंछा मानो सुरतान्त-सुख से श्रान्त श्याम का ही अपने नीलाम्बर से मुख-मार्जन किया है – "चलो, अब तुम्हें नन्दसदन पहुँचा आऊँ, मन तो नहीं कहता है पर नयन तृषार्त हैं साँवरी-सलोनी-सूरत देखने को। कल से दर्शन नहीं हुआ किन्तु तुम्हारा साथ पाकर इस अवांछित वियोग का अधिक अनुभव नहीं हुआ।" वंशी को लिया अपने नीलांचल से ढक लिया, कहीं कोई देख न ले।

(नन्द सदन)

यहाँ तो बिना मुरलिका के आज मुरलीधर की तो निद्रा ही नेत्रों से उड़ गई।

"कोई चुरा तो नहीं सकता मेरी नित्य संगिनी को, अवश्य गैया चराते हुए किसी वन में गिर पड़ी है, आज पुनः सखाओं को लेकर **'परेही'** में जाऊँगा, वंशी को ढूँढूंगा।" इस प्रकार के मन में अनेकों विचार, अनेकों योजनाएं संयोजित हो रही थीं।

(श्रीराधा का नन्दसदन में प्रवेश)

अभी तो यशोदा मैया ने भी शैय्या नहीं त्यागी थी। कान्तिमती कीर्तिकुमारी के प्रवेश से महल जगमगाया। मैया ने करवट बदली – "अरे! यह तो राधा है।" मैया कुछ पूछे इसके पूर्व आगमन कारण स्वयं श्रीजी ने कह दिया।

श्रीपरमानन्ददासजी के शब्दों में –

मैं हरि की मुरली बन पाई ।
सुन यशुमति संग छोड़ आपनो, कुंवर जगाय देन हों आई ॥
सुन त्रिय बचन बिहँस उठ बैठे, अंतरयामी कुंवर कन्हाई ।
मुरली के संग हुति मेरी पहुँची, दे राधे वृषभानु दुहाई ॥
मैं निहार नीची नहीं देखी, चलो संग देई ठोर बताई ।

बाढ़ी प्रीति मदन मोहन सों, घर बैठे यशुमति बोहोराई ॥
पायो परम भाव तो जिय को, दोऊ बढ़े एक चतुराई ।
परमानन्द दास जाहि बूझो, जिन यह केली जम भर गाई ॥

राधा – "अरी ओ मैया! यह संयोग की बात है, जहाँ कन्हैया ने वेणु-वादन किया। कल हम सब सखी भी उन वनों से होकर निकलीं तो मुझे कन्हैया की वंशी पड़ी मिली।"

"वंशी पड़ी मिली" यही परेही की प्रधान लीला है।

यशोदा मैया – "लाली राधा! तू बड़ी अच्छी है। यह तैने बहुत भला किया। वंशी के वियोग में कल रात्रि कन्हैया को ठीक से नींद भी नहीं आई।"

राधा – "मैया! अब तू उठ, कन्हैया लाला को जगा, मैं कन्हैया के हाथ में ही वंशी दूँगी।" मैया तो विचार में पड़ गई जगाऊँ कि नहीं जगाऊँ?

'पता नहीं मैया तो जगाएगी भी कि नहीं' दर्शनोत्सुक श्यामसुन्दर स्वयं ही हँसते हुए बैठ गये।

दोनों दर्शन सुख में डूब गये।

कृष्ण – "राधा! वंशी तो मिल गई, मेरी कर पहुँची (हाथ में धारण किया जाने वाला एक आभूषण) तो दो।"

राधा – "मैं क्या जानूँ तुम्हारी कर पहुँची कहाँ है? "

कृष्ण – "अरे, वह भी वंशी के साथ गिर पड़ी थी। तुम्हें भानु बाबा की दुहाई है, मेरी पहुँची भी लौटा दो।"

राधा – "मार्ग में पड़ी वंशी को उठाकर ले आई तो तुम मुझे चोर ठहरा रहे हो। मैंने वंशी के अतिरिक्त वहाँ कुछ नहीं देखा, यदि तुम चाहो तो मैं साथ चलकर वह स्थान अवश्य बता सकती हूँ।"

न पहुँची गिरी, न किसी को प्राप्त हुई। यह तो ऐकान्तिक-प्रेम की पृष्ठभूमि तैयार की जा रही थी। युगल चल पड़े **परेही** की ओर पहुँची ढूँढ़ने।

मैया बौराई-सी हो गई – "इतने सवेरे ये दोनों कहाँ जा रहे हैं? "

श्रीजी को उनके मनभावन मिल गये और श्यामसुन्दर को उनकी मनभामिनी मिल गईं।

आलय इन लीलाओं का गान करने वाले श्रीपरमानन्द स्वामी को युगल-लीलागान का मनभावता सुख मिल गया।

श्रीराधारानी को यहाँ श्रीश्यामसुन्दर की वंशी पड़ी मिली अतः **'परेही'** नाम हुआ।

कामां से १३.९ कि.मी. की दूरी पर स्थित है परेही ग्राम।

सहेड़ा

यहाँ प्राचीन श्याम कुण्ड दर्शनीय हैं। ऐसा कहा जाता है कि ब्रज में मुख्य रूप से तीन श्याम कुण्ड हैं।

श्याम कुण्ड – राधा कुण्ड

श्याम कुण्ड – सेनवे

श्याम कुण्ड – सहेड़ा

ये तीनों ही ब्रज के प्रसिद्ध श्याम कुण्ड हैं ग्रामवासियों की मान्यता है कि सहेड़ा के श्याम कुण्ड का सम्बन्ध द्वापर काल से है। इस गाँव का प्राचीन मन्दिर बिलकुल समीप सटे हुए चाहरा और भोगंरा नगला में है। श्याम कुण्ड के तट पर एक सिद्ध बाबा ने साधना की थी।

कामां से १३.४ कि.मी. की दूरी पर स्थित है सहेड़ा ग्राम।

पाई ग्राम

मिलन एवं संयोग दोनों का एकीभाव ही लीला है। जैसे आँख-मिचौनी में कभी विरह है तो कभी मिलन।

पूर्णप्रेमामृतरससमुल्लाससौभाग्यसारं
कुञ्जे कुञ्जे नवरतिकलाकौतुकेनात्तकेलि।
उत्फुल्लेन्दीवरकनकयोः कान्तिचौरं किशोरं
ज्योतिर्द्वन्द्व किमपि परमानन्दकन्दं चकास्ति॥

प्रेमामृत से पूर्ण रस के संयोग-वियोग की सार रूपी, प्रत्येक कुञ्ज में नवीन रति कला के चमत्कार से पूर्ण क्रीड़ा करने वाली, विकसित नीले पीले कमलों की शोभा हरण करने वाली परमानन्द मूल रूपा किशोरावस्था वाली ज्योति सपरिकर शोभायमान हो रही हैं।

भक्तिरत्नाकरानुसार –

देख पाई ग्राम राई सखीगण सने।
कृष्णेर अन्वेषण करि पाई एखाने॥

(भक्ति रत्नाकर-१४०६)

श्रीकृष्ण के अन्तर्हित होने के पश्चात् श्रीराधा ने सखियों के साथ कृष्णान्वेषण करते हुए, पाई ग्राम में श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लिया।

पाई में कृष्ण-प्राप्ति के पश्चात् निकट ही है जुरहरा ग्राम, जहाँ उनका विरह ज्वर शमित हुआ।

देखो ए 'चलनशिला' - एथा श्यामराया ।
चलिते नारए प्रेमे, बैसये शिलाय ॥

(भक्ति रत्नाकर-१४०७)

देखो यह 'चलनशिला' यहाँ पर श्री राधाकृष्ण प्रेम के कारण चल नहीं पा रहे थे तो शिला के ऊपर बैठ गए।

कामां से ११.९ कि.मी. की दूरी पर स्थित है पाई ग्राम।

जुरहरा

ब्रज के सीमावर्ती ग्रामों की लीला का विवरण ब्रज सम्बन्धी किसी भी पुस्तक में प्राप्त नहीं होता है। परिणाम, ब्रज के इन स्थलों की गरिमा-महिमा को अन्य तो क्या ब्रजवासी ही भूल गये जिससे सीमा परिक्रमायें ही बन्द हो गयीं। अधिकमास में किन्हीं-किन्हीं गाँवों से २-४ की संख्या में ब्रजवासी यह सीमापरिक्रमा करते हुए इस परम्परा को अभी बचाये हुए हैं। गीताप्रेस से प्रकाशित एक पुस्तक जिसमें जुरहरा का नाम **'ब्रजद्वार'** व **'इन्द्रकुटी'** प्राप्त हुआ।

ब्रजद्वार नाम क्यों?

चाचा वृन्दावनदास जी द्वारा विरचित ब्रज-परिक्रमा का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ का पद –

नमो नमो ब्रज हद जु पहारी ।

पहाड़ी ग्राम से ब्रज सीमा का आरम्भ माना है। उपरोक्त पद में कठौर, थलचैनो, जदिवारी (जटवारी), सिंगार, बिछोर, सोनहद ....आदि ब्रज के अनेक ग्रामों का उल्लेख है। जुरहरा का नाम **'ब्रजद्वार'** होने का यही कारण है कि यह द्वार है ब्रज का। इस द्वार में प्रवेश करने से उपरोक्त ब्रज के सभी गाँवों में प्रवेश प्राप्त किया जा सकता है।

इन्द्रकुटी नाम क्यों?

रासेश की कृपा से यहाँ सुरेश को रास-रस की बाँकी-झाँकी का अलभ्य लाभ मिला।

आचार्य श्री हित हरिवंश जी की वाणी में –

आज गोपाल रास रस खेलत, पुलिन कल्पतरु तीर री सजनी ।
मघवा मुदित निसान बजायो, व्रत छाँड़्यो मुनि धीर री सजनी ॥

रास में मघवा अर्थात् इन्द्र ने विजयनाद डंका बजाया।

स्वामी श्री हरिदास जी की वाणी में –

नाचत मोरनि संग स्याम,
मुदित स्यामाहिं रिझावत ।
तैसीयै कोकिला अलापत पपीहा देत सुर,
तैसेई मेघ गरजि मृदंग बजावत ॥

(श्रीकेलिमाल – ९६)

अथवा

अद्भुत गति उपजति अति नृत्तत .....
श्री जमुना जल विथकित पहुपनि वरषा,
रतिपति डारत तृन तोरी ।

(श्रीकेलिमाल – ३३)

यमुनाजी को गति विस्मृत हो गई है, देव पुष्पवृष्टि कर रहे हैं व रतिपति तृण तोड़कर बलि-बलि कह रहे हैं।

भागवतकार ने भी यही कहा –

यं मन्येरन् नभस्तावद् विमानशतसङ्कुलम् ।
दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥
ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥

(भा. १०/३३/४, ५)

आकाश में विमानों की पंक्ति लग गई, शत-शत विमान जिनमें सुरगण सपत्नीक रासोत्सव के दर्शनार्थ आये। दुन्दुभियाँ बज उठीं, गगन से सुमनवृष्टि करने लगे सुरगण; गन्धर्व गन्धर्वियों सहित प्रभु का यश-गान करने लगे।

"वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो"

(भा. १०/३३/२४)

स्वामी श्री हरिदास जी की वाणी में –

डोल झूलत बिहारी बिहारिनि पुहुप वृष्टि होति।
सुर पुर पुर गंधर्व और पुर, तिनकी नारि देखति वारति लर मोति॥

(केलिमाल - ७५)

विमानारूढ़ देवगण कुसुम वर्षा कर श्रीराधारासविहारी लाल की स्तुति करने लगे।

केवल रासलीला की ही बात नहीं, **युगल गीत** में भी देखें –

विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे दत्त वेणुरनयत् स्वरजातीः॥
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः।
कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः॥

(भा. १०/३५/१४, १५)

गोपियों ने साक्षात्कार किया इस लीला का, कहती हैं – "यशोदे! तेरा लाला बड़ा क्रीडा कुशल है, सबका प्रिय है, साथ ही बहुत चतुर भी है। अधर पर वंशी रख जब स्वर छेड़ता है तो विधि, शिव, सुरेशादि श्रेष्ठ देव सर्वज्ञ होकर भी राग, ताल, जाति के विषय में अज्ञ हो जाते हैं, चित्त अपने वश में न रहकर वंशी के वशीभूत हो जाता है; मस्तक नत कर वे स्वानुसन्धानरहित हो जाते हैं।"

विशेष बात –

टीकाकारों ने व्याख्या की, इस अवसर पर देवों के ३ टोल आये –

(१) शक्र (इन्द्र) समूह।

(२) शर्व (शंभु) समूह।

(३) परमेष्ठि (ब्रह्म) समूह।

शक्र समूह के सदस्य – गन्धर्व, अप्सरादि थे।

शर्व समूह के सदस्य – भगवती दुर्गा, गणेशादि थे।

परमेष्ठि समूह के सदस्य – शारदादि।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में इन्द्र व रास –

गोवर्द्धनोद्धरण से शक्र का गर्व खर्व हुआ, क्षमायाचना के लिए आया किन्तु इस समय गोकुलेन्द्र को प्रसन्न करना कठिन था सुरेन्द्र के लिए। विचार किया यदि ईश्वरी श्रीराधा का स्तवन इनके सम्मुख किया जाय तो निश्चित प्रसन्न हो जाएंगे श्रीकृष्ण अतः श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के निमित्त वहाँ देवराज ने श्रीराधिकारानी के स्तवन में रासकालीन-केलि का गान किया।

क्रीडन्तं राधया सार्धं वृन्दारण्ये च कुत्रचित् ।
कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥
जलक्रीडां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित् ।
राधिकाकबरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद्वने ॥
कुत्रचिद्राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम् ।
राधाचर्विंतताम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥

(ब्रह्मवैवर्त, श्रीकृष्णजन्मखण्ड - २१/ १८६ - १८८)

श्रीराधा के साथ रमण करने वाले, उनके वक्षोज पर स्थित होने वाले, जल क्रीड़ा करने वाले, केशपाश सँवारने वाले, श्रीचरणों में आलक्तक लगाने वाले, चर्बित ताम्बूल को सहर्ष स्वीकार करने वाले श्रीराधारमण की एवं प्रकारेण स्तुति कर शक्र ने स्वकिरीट को युगल चरण में रख दिया, प्रणाम किया।

पूर्वकाल में वृत्रासुर व देवराज का जब युद्ध चल रहा था उस समय देवगुरु बृहस्पति ने यह स्तोत्र इन्द्र को प्रदान किया। सर्वप्रथम श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी को यह स्तोत्र दिया था पश्चात् ब्रह्मा ने पुष्कर में सनकादिक को यह दिया, सनकादिक ने अंगिरा को, अंगिरा ने बृहस्पति को एवं बृहस्पति द्वारा इन्द्र को यह प्राप्त हुआ।

गर्ग संहितानुसार –

ब्रज में देवगण अपने-अपने वाहनों पर आये हैं श्रीकृष्ण की स्तुति करने के लिए।

यथा –

महादेव – नन्दी, सूर्य – रथ, वायु – खंजन, यम – महिषा, कुबेर – पुष्पक, चंद्र – मृग, अग्नि – बकरा, वरुण – मगर, कार्तिकेय – मोर, सरस्वती – हंस, लक्ष्मी – गरुड़, दुर्गा – सिंह, पृथ्वी – गो रूप विमान, १६ मातृकाएँ – पालकी, षष्ठी – पालकी, मंगल – वानर, बुध – भास, बृहस्पति – कृष्णमृग, शुक – रोझ (नील गाय), शनि – मगर, राहू – ऊँट।

हंसारूढो हेमवर्णो मुकुटी कुंडली स्फुरन् ।
चतुर्मुखो वेदकर्ता द्योतयन्मंडलं दिशाम् ॥
तथा तमनु भूताढ्यो वृषारूढो महेश्वरः ।
रथारूढो रविः साक्षाद्गजारूढः पुरन्दरः ॥
वायुश्च खंजनारूढो यमो महिषवाहनः ।
धनदः पुष्पकारूढो मृगारूढः क्षपेश्वरः ॥
अजारूढो वीतिहोत्रो वरुणो मकरस्थितः ।
मयूरस्थः कार्तिकेयो भारती हंसवाहिनी ॥
लक्ष्मी च गरुडारूढा दुर्गाख्या सिंहवाहिनी ।

गोरूपधारिणी पृथ्वी विमानस्था समाययौ ॥
दोलारूढा दिव्यवर्णा मुख्याः षोडशमातृकाः ।
षष्ठी च शिबिकारूढा खड्गिनी यष्टिधारिणी ॥
मंगलो वानरारूढो भासारूढो बुधः स्मृतः ।
गीष्पतिः कृष्णसारस्थः शुक्रो गवयवाहनः ॥
शनिश्च मकरारूढ उष्ट्रस्थः सिंहिकासुतः ।
कोटिबालार्कसंकाश आययौ नंदमन्दिरम् ॥

(ग. सं./गो. खं. १२/४१-४८)

सूरदासजी के शब्दों में –

अरे, देखो ब्रज में इन्द्रादि देव दौड़े चले आ रहे हैं श्री राधा-माधव की स्तुति करने के लिए –

सुरगण सहित इन्द्र ब्रज आवत ।
धवल वरन ऐरावति देख्यो उतरि गगन ते धरणि धँसावत ॥
अमर शिव रवि शशि चतुरानन हय गय वरह हंस मृग जावत ।
धर्मराज बनराज अनल दिव शारद नारद शिवसुत भावत ॥
मेंढामढी मगर गुडरारो मोर आपु मन वाह गनावत ।
ब्रज के लोग देखि डरपे मन हरि आगे कहि कहि जु सुनावत ॥
सात दिवस जल बरषि सिरान्यो आवत चल्यो ब्रजरि अत्रावत ।
घेरा करत जहाँ तहँ ठाठे ब्रजवासिन को नाहिं बचावत ॥
दूरहि ते बाहन सों उतर्यो देवन सहित चल्यो सिर नावत ।
आइ परयो चरणन तर आतुर सूरदास प्रभु सीस उठावत ॥

श्वेत ऐरावत पर आरूढ़ शक्र के साथ शर्व, सूर्य, शशि, विधि भी अपने-अपने वाहन पर आरूढ़ हैं ।

इन देवों को देख ग्वाल-बाल परस्पर बोले –

१ ग्वाल – "भैया कन्हैया! देखियो, ये आकाश ते कौन आ रहे हैं ४-४, ५-५ मुख वारे? "

२ ग्वाल – "कन्हैया! यह धौरो हाथी पतौ नहीं कौन बला है? देख कितनौ बड़ौ है, कोऊ मुकुट वारो यापै बैठ्यो लगै ।"

३ ग्वाल – "अरे लाला! देख यह मोरा आयौ उड़तौ भयौ, यापै हू कोऊ सवार है ।"

४ ग्वाल – "छोराओ! ये तो वो ही है बज्र वारो देवता, जाने हमारे ब्रज में मूसरधार वर्षा करी ।"

५ ग्वाल – "इनको कहा भरोसो, ये सब तो हथियार वारे हैं, न जाने कब कहा कर दें और हमारे पास तो लठिया-बेंत ही हैं। पहले अपने सुकुमार कन्हैया की रक्षा को विचार करौ।"

इस प्रकार कृष्ण के लिए चिन्तित ग्वालवालों ने शीघ्र ही कृष्ण को अपने घेरे में ले लिया।

यह है इन्द्रकुटी का इतिहास, जो कि अनेकों ग्रन्थों से प्रामाणिक है। स्थानीय ब्रजवासियों को इसका ज्ञान न होने से इन्द्रकुटी में हनुमानजी का विग्रह दर्शनीय है; कृष्ण लीला सम्बन्धी न वहाँ कोई विग्रह है, न चिन्ह और न ही लिखित कोई प्रामाणिक इतिहास।

जुरहरा नाम क्यों?

मूल नाम है –'ज्वरहरा'

ज्वर का अपभ्रंश है 'जुर'। गोपिकाओं के जुर का हरण होने से ब्रजवासी इसे 'जुरहरी' भी कहते हैं। जुरहरी, जुरहरा कई नामों से इसे जाना जाता है। गोपियों को तो एक ही ज्वर है – **'वैश्लेषिक ज्वर।'**

गोपियों से भी कहीं अधिक है गोपीकुल भूषण श्रीराधारानी का वैश्लेषिक ज्वर।

वैश्लेषिकज्वरमपारमतुल्यमस्याः सन्दर्श्य विस्मयमहाब्धिषु मज्जितानाम्।
स्वप्रेमगर्वमपि निर्धुन वान्यथैनान्ताभिर्महाधिकतमामनुभावयामि॥

(प्रेम संपुट – ८४ 'श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती जी')

श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने पर केवलता में जो विकलता हुई प्यारी जू को, उसे देखकर गोपियाँ डूब गयीं विस्मय महासागर में। (श्रीजी का कर अपने करतल में लेकर) अरी, देख रही है यह स्थिति, जीवन-मरण का निश्चय ज्ञान भी नहीं हो पा रहा है।

१ सखी – हाँ...... तू ठीक कहती है, श्वास-प्रश्वास भी स्थगित है।

२ सखी – हम तो जानती थीं कि सर्वाधिक प्रेम करने वाली हम गोपियाँ ही विरह से विकल थीं किन्तु इस गौराङ्गी का प्रेम भी निरस्तसाम्य है तो प्रेम का उत्तरपक्ष विश्लेष भी अपार अर्थात् असीमित, अतुल्य है अर्थात् जिसकी तुलना न की जा सके।

गोपियों का स्वप्रेम गर्व नष्ट हो गया, गौराङ्गी के वैश्लेषिक ज्वर को देखकर।

पाई में कृष्ण-प्राप्ति के पश्चात् निकट ही है जुरहरा ग्राम, जहाँ उनका विरह ज्वर शमित हुआ।

भागवत में जुरहरा –

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।
स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥

(भा.१०/३२/१३)

श्रीकृष्ण दर्शन से जो आह्लाद उत्पन्न हुआ उससे ब्रजाङ्गानाओं का हृद रोग अर्थात् विरह रूपी ज्वर नष्ट हुआ, सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हुए। श्रुतियों द्वारा भी जिनकी स्पृहा की गयी थी, अब गोपाङ्गनाओं ने इत्र से भीनी अपनी फरियाओं का आसन लगाना आरम्भ किया तो उन संख्यातीत फरियाओं से दिव्य, उदात्तासन तैयार हो गया जिस पर गोपीनाथ विराजे।

सात्वत् संहिता श्रीमद्भागवत में जगह-जगह यथा वेणुगीत, प्रणयगीत, गोपीगीत, युगलगीत एवं भ्रमरगीत में विरह ज्वर का वर्णन है।

वेणुगीत में स्मर ज्वर –

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥

(भा. १०/२१/१७)

गोपियाँ कह रही हैं कि ये वृन्दावन की भीलनियाँ सामान्य नहीं हैं, ये तो पूर्व जन्म से ही वर पाकर आयी हैं। एक समय अरण्य में भ्रमण कर रहीं थीं, श्यामसुन्दर को देखा और स्मर ज्वर व्याप्त हो गया। क्या करें, यह रूप-सुधा-सिन्धु ही ऐसा है कि इस नीले सिन्धु को जिसने देखा वह डूबे बिना रह न सका।

फूलीं सब सखी देखि देखि ।
जच्छ किन्नर नागलोक देव स्त्री, रीझ रहीं भुव लेखि लेखि ॥
कहत परस्पर नारि नारि सौं, यह सुन्दर्यता अवरेखि रेखि ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा ए कैसे हूँ, चितयें परेखि रेखि ॥

(केलिमाल ४२)

इन भीलनियों का सौभाग्य तो देखो – गोपियों के वक्ष पर बनी केसर पत्रावली रति केलिकाल में प्यारे श्यामसुन्दर के चरणों में आ विराजती है, चरणों द्वारा यह सौभाग्य वृन्दावन के घास-तृण को प्राप्त होता है। स्मर रोग ग्रसित ये भीलनियाँ उसी केसर को घास-तृण से लेकर अपने मुख व वक्ष पर लगा लेती हैं और इस प्रकार वे अपने हृद रोग का निवारण करती हैं।

भीलनियों का मोहित होना तो स्वाभाविक ही है, जब स्वर्ग की सुराङ्गनाएं इस स्वरूप को देखकर स्वयं को संभाल नहीं पातीं।

प्रणय गीत में स्मर ज्वर –

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां
पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥

(भा.१०/२९/३८)

हे नाथ! तुम्हारे दर्शन से प्राप्त होने वाले इस ज्वर का शमन तुम्हारे अधरामृत से ही होगा। तुम्हारे लिए सर्वत्याग करके हम आयी हैं। जब से तुम्हारी मधुर मुस्कान, अलकावली मण्डित मुखकमल को देखा है, हमारे ज्वर का ताप बढ़ गया है।

गोपी गीत में स्मर ज्वर –

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥

(भा.१०/३१/७)

गोपियाँ कहती हैं – "हे नाथ! अपने प्रपन्न (शरणागत) के अनन्त पाप-ताप का कर्षण तुम कर लेते हो, एतदर्थ तुम्हारा नाम कृष्ण है। जिन चरणों में लक्ष्मी का आवास है, ऐसे सुकोमल पाद-पद्मों से तुम बिनु पनही गायों के पीछे जंगलों में भागते हो। शीतलता की परमावधि इन चरणाम्बुजों ने कालिय के एक सौ फनों पर जब ताण्डव किया तो उस महाविषधर के फन भी शीतल हो गये। प्राणवल्लभ! हम अबलायें प्रेम के विरह के जिस ज्वर से पीड़ित हैं उस ज्वर की औषधि एकमात्र तुम्हारे चरण हैं। इस ज्वर का ताप तब ही शीतल होगा जब तुम्हारे पद कमल हमारे वक्ष पर स्थापित होंगे।

'हृच्छयम्' (स्मर ज्वर) – यह मलेरिया, वायरल वाला साधारण ज्वर नहीं है अतः तुमने ही हमें रोगी बनाया है।"

आगे कहती हैं – "यह ज्वर तुम्हारे दर्शन से आता है।

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥

(भा. १०/३१/१२)

हे गोविन्द! संध्या को जब तुम गोचारण करते लौटते हो तो गो रज में सनी तुम्हारी काली घुँघराली अलकावली मुखकमल को आवृत कर लेती है, यह मुख छबि हमें ज्वर ग्रसित कर देती है।"

गोपिका गीत में ही कई बार चर्चा हुई इस ज्वर की।

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥
(भा. १०/३१/११)

युगल गीत में स्मर ज्वर –

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥
व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥
(भा. १०/३५/२, ३)

जिस समय श्रीकृष्णवंशी वादन करते हैं, व्योम में विमानारूढ़ देवियाँ काम ज्वर (प्रेम ज्वर) से पीड़ित हो जाती हैं, उन्हें अपने नीवी, वस्त्र, जूड़े आदि के खुलने का भी अनुसन्धान नहीं रहता है।

भ्रमर गीत में स्मर ज्वर –

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ।
ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥
(भा.१०/४७/१९)

गोपियाँ कहती हैं – "इस कृष्ण प्रेम में हमने स्मर रुज (काम ज्वर) का ही अनुभव किया है। इस छलिया की छल भरी बातों पर विश्वास कर हमारी गति व्याध के गान का विश्वास कर उसके फैलाये जाल में फँसकर भोली-भाली हिरनियों जैसी हो गयी है अतः हे भ्रमर! कृष्ण चर्चा एक रोग है, इस रोग की चर्चा तू हमारे सन्मुख न कर। कन्हैया के वाक् जाल में फँसकर अब हम जन्म-मरण दोनों ही स्थितियों में अशक्य हो गयी हैं।"

यह दुर्जर ज्वर न केवल गोपियों को प्रत्युत ब्रज की लता, ब्रज के पशु-पक्षी, स्वर्ग की सुराङ्गना सबको व्याप्त हुआ। इस ज्वर का हरण इसी स्थल पर हुआ। ब्रज में बुखार को जुर या जुरी भी कहते हैं अतएव स्थल का नाम जुरहरा, जुरहरी हुआ।

कामां से १६.२ कि.मी. की दूरी पर स्थित है जुरहरा ग्राम।

कठौल

कठुला का अपभ्रंश ही कठौल है ।

कठुला एक प्रकार का आभूषण है, जो गले में धारण किया जाता है ।

श्री नंददास जी की वाणी में –

माधो जू! तनिक सो बदन सदन-सोभा को
तनिक भृकुटि पै तनिक दिठौना ।
तनिक लटूरी पुनि मन मोहै
मनो कमल ढिंग बैठे अलि-छौना ।
तनिक सी रज लागी निरखति बड़-भागी
कंठ-कठुला सोहै औ बघ-नखना ।
"नंददास" प्रभु जसुदा-आँगन खेलैं
जाको जस गाइ मुनि भए मगना ॥

छोटा सा शरीर शोभा का सदन है ।

नजर गुजर से रक्षा के लिए मैया ने वाम भृकुटि के ऊपर काला दिठौना लगा रखा है ।

इसका कमल सा मुख और उस पर झूलती काली लटूरी । ऐसा लगता है मानो कमल पर भ्रमर-पंक्ति बैठी है। धूल धूसरित श्रीवपु है । गले में कठुला व बघनखा धारण किये हुए है।

जिनका दर्शन भी बड़े भाग्य से मिलता है, उसको गा-गाकर बड़े-बड़े आत्माराम मुनि भी मग्न हो रहे हैं । यहाँ गायों को भी पहनाया कठुला –

किलकि हँसे गिरिधर ब्रजराई ।
भाज्यो सुबल लीनें गोद बछरुवा पाछें धौरी धाई ॥
मधुमंगल लै मोर पखउवा दौरि वाहि अहटाई ।
तोक ताक तकि मोहन की ढिंग भली बिधि धेनु खिलाई ॥
खोलि भवन भूषन के बाबा परबी भली मनाई ।
लियौ है लपेटि लाल गहने में सब ब्रज देखनि आई ॥
स्याम जलद गम्भीरगरज सौं मोहन टेरि सुनाई ।
वह वा पर वह वा पर गैयाँ सोभा कही न जाई ॥
सुवर्ण सिंग घट अरु कठुला पीठि पत्र समुदाई ।
'परमानन्द' आनन्द भरी खेलति मुरली तबै बजाई ॥

दीपावली का पर्व है, आज कन्हैया वन में गायों को खेल खिला रहा है, नचा रहा है।

यह मनसुख भी कुछ न कुछ ऊटपटांग करता ही रहता है । न जाने कहाँ से बीन लाया इतने मोर पंख? मोर पंख लेकर दौड़ा गायों की ओर तो आहट पाकर नाचती हुई गैया भाग उठीं, पुनः सखा ने गायों को खेल खिलाना आरम्भ किया। वन में गायों के साथ

नाच-गाकर भली प्रकार पर्व मना रहे हैं, स्वयं तो सज रहे हैं व गायों का भी श्रृंगार कर रहे हैं। सोने के श्रृंग हैं, ग्रीवा में कठुला धारण कराया है, मधुर ध्वनि करने वाली घंटी भी लटका दी है, जो दौड़ते समय मधुर ध्वनि कर रही है। पीठ पर रंग-बिरंगे वस्त्रों के झूल डाल दिये हैं, शोभा में सब एक से बढ़कर एक हैं। गायों का श्रृंगार हुआ, अब कन्हैया ने छेड़ी मुरली मधुर स्वर लहरी और नाच उठीं सब गैया। वन में इस प्रकार से यहाँ गोपाल लाल के साथ सब ग्वाल बाल दीपावली का पर्व मना रहे हैं एवं गायों को खिला रहे हैं ।

मेरी गैया आछी खेली, मेरी गैया अधिक आछी

खेली ....चारों ओर बस यही ध्वनि है ।

जुरहरा से १२ कि.मी. की दूरी पर स्थित है कठौल ग्राम।

सुनहड़ा

ब्रज के खग-मृग का भी कन्हैया से अपार स्नेह है। कन्हैया जब गोचारण को आता है वन में, तो खग नभ को घेर लेते हैं व मृग मग को घेर लेते हैं। यहाँ के तो तरु भी निर्जीव नहीं हैं। कन्हैया जब आकर बैठता है तो वे सुगन्धित पुष्पों व स्वादिष्ट फलों से लद जाते हैं। इन बादलों को देखो, कन्हैया को देखकर स्वगति विस्मृत कर बैठते हैं, कितना ज्ञान है इन्हें, अभिनन्दन करते हैं किन्तु अपराध से बचकर। न जोर से गरजते हैं, न बरसते हैं। इन पर्वतों को देखो, कन्हैया को देखकर स्निग्ध हो जाते हैं, ये सब कठोर पाषाण उसके मनरंजन के लिए स्खलिनी शिला बन जाते हैं। जब इन अचर जीवों का स्नेह नहीं छिपता तो सचर का कहाँ से छिपेगा? सचर में भी गोपीवर्ग का स्नेह तो असमोर्ध्व ही है। अति प्रातः दधि-विक्रय को जाती हैं, मध्य में किसी सघन कानन में बैठकर कृष्णचर्चा करके दिन व्यतीत कर देती हैं और फिर संध्या होते ही घरों को लौट आती हैं।

दधि-विक्रय हुआ कि नहीं इससे इन्हें क्या। प्यारे कन्हैया की चर्चा इनका सबसे बड़ा स्वत्व है। यह वही स्थान है जहाँ इन गोपबालाओं ने कृष्ण स्नेह की चर्चा की। सनेहरा का अपभ्रंश है – सुनहड़ा।

श्रीपरमानन्द स्वामी के शब्दों में –

बन्यो आली! माधौ सौं सनेहरा ।
जैहों तहाँ जहाँ नंदनंदन राज करौ इहि गेहरा ॥
अब तौ जिय ऐसी बनि आई कियौ समर्पनु देहरा ।
परमानन्द चली भीजत ही बरसनि लाग्यो मेहरा ॥

कृष्ण स्नेह में सनी एक गोपी अपनी संगिनी से कह रही है – "न जाने कैसा आकर्षण है उसके रूप में? "

प्रथम भयो अनुराग दृष्टि ते, मानहु रंक निधि लूटि लई री!
कहत सुनत चित और न कीनौ, इहै लगन जिय पैंड गही री!
मरजादा ओलंघि सबनि की, लोक वेद-उपहास सही री!
परमानन्ददास गोपिनि की, प्रेम-कथा सुक व्यास कही री!

अरी, अब तो जब से कृष्ण को देखा है, उससे गाढ़ स्नेह हो गया है। तुम भी यहाँ बैठी क्या हो, वहीं चलो जहाँ प्राण-प्रियतम हैं, वहीं जाकर रहेंगी।

अब तो यह मन कहता है, देह-देहरी सब माधव को समर्पित कर दो। ऐसा कहकर सब की सब सनेहरा (सुनहड़ा) से चल पड़ीं कन्हैया के समीप। उनके समर्पित स्नेह को देखकर मेघ भी नृत्य करने लगे, रिमझिम-रिमझिम बरस उठे।

जुरहरा से ३.२ कि.मी. की दूरी पर स्थित है सुनहड़ा ग्राम।

डूंडोली

डूंगर का अपभ्रंश 'डूंडोली' हुआ। डूंगर अर्थात् टीले, यहाँ किसी समय बहुत टीले थे। श्रीसूरदास जी ने यहाँ की लीला अपने पद में गाई है। यह छाक लीला का स्थल है। बड़े भोर केवल कन्हैया के साथ ये छोटे-छोटे गोप-ग्वाल केवल कलेवा करके जाते हैं। वन में थोड़ी देर में ही खेल-कूद के बाद इन्हें भूख लग आती है। वयस में कृष्ण से जो बड़े हैं, सुहृत् सखा सुभद्र, भद्रांग, मण्डलीभद्र, भद्रवर्द्धन ....आदि, जिनके सख्य में वात्सल्य की भी गन्ध है; ये कन्हैया सहित छोटे गोपबालकों का बहुत ध्यान रखते हैं, भूख लगने पर कन्दमूल खिला देते हैं, किसी को केला की माला पहना देते हैं तो किसी को सन्तरा की। इन छोटे-छोटे गोपबालकों पर कन्दमूल का श्रृंगार बहुत अच्छा लगता है। आज तो सूर्य भी सीधा हो गया और अभी तक छकहारिन नहीं आईं, सभी गोपबालक प्रतीक्षित थे, सबकी दृष्टि दूर-दूर तक छकहारिनों का मार्ग देख रही थी। इधर छकहारिनें भी सिर पर छाक भरी टोकरी लिए कन्हैया को ढूँढ़ रहीं थीं।

श्रीसूरदासजी के शब्दों में –

छाक लिए सिर स्याम बुलावति ।
ढूँढ़त फिरति ग्वारिनी हरि कौं, कितहूं भेद न पावति ॥
टेर सुनति काहू की स्रवननि, तहाँ तुरत उठि धावति ।
पावति नहीं स्याम बलरामहिं, व्याकुल है पछतावति ॥

बृंदावन फिरि-फिरि देखति है, बोलि उठे तहँ ग्वाल ।
सूरस्याम बलराम इहाँ हैं, छाक लेहु किन लाल ॥

नन्दगाँव से छाक आई है; छकहारिन घूम रही है कृष्ण-बलराम, ग्वाल-वालों को ढूँढ़ते हुए - "कन्हैया ऽऽऽऽऽऽ! ओ कन्हैया ऽऽऽऽऽऽऽ!!"

(छकहारिन परस्पर)

१ छकहारिन – "न जाने आज किस वन में चले गये ये बालक ।"

२ छकहारिन – "देखो, उस ओर से कुछ ध्वनि आ रही है, चलो उधर चलें ।"

एक वन से दूसरे वन में घूम रहीं हैं कन्हैया-दाऊ भैया को ढूँढ़ती हुई किन्तु कुछ पता नहीं चल पा रहा है। कुछ व्याकुल हो गई हैं, कुछ गलत स्थान आकर पश्चाताप कर रहीं हैं, वृन्दावन में यत्र-तत्र सर्वत्र ढूँढ़ रहीं हैं। यहाँ वृन्दावन से व्यापक अर्थ लेना चाहिए। वृन्दावनान्तर्गत आने वाले सभी वनों में गोपियाँ ढूँढ़ रहीं हैं। तब तक क्षुधा पीड़ित मधुमंगल की ध्वनि आई –"अरे, इधर चली आओ, इधर चली आओ ।"

ग्वालिनों की श्वास में श्वास आई।

छकहारिन – "लाला कन्हैया, हम तुम्हें कब से ढूँढ़ रहीं हैं, आज तो तुमने छाक क्या ली, हमें छका दिया ।"

आजु कौन बन गाइ चरावत, कहँ धौं भई अबेर ।
बैठे कहँ, सुधि लेउँ कौन बिधि, ग्वारि करत अवसेर ॥
बृंदा आदि सकल बन ढूँढ़्यौ, जहँ गाइन की टेर ।
सूरदास प्रभु तुरत दुराए, डँगरनि ओट सुमेर ॥

छकहारिन – "कन्हैया, आज यह किस वन में गैया चरा रहे हो? तुम्हारे न मिलने पर हम सब चिन्ता में पड़ गईं, आज न जाने कन्हैया कहाँ गोचारण कर रहा है? इतना विलम्ब हो गया, अभी तक मिला नहीं। वृन्दावन के सभी वनों में हमने तुम्हें ढूँढ़ लिया। जहाँ से भी गाय के रंभाने की ध्वनि आती, हम सब वहीं-वहीं दौड़ पड़तीं किन्तु आज कृष्ण रूपी सुमेरु को तो डूंगरों अर्थात् टीलों ने अपनी ओट में छिपा लिया था ।"

डूंगर का अपभ्रंश **'डूंडोली'** हुआ। स्थानीय ब्रजवासियों का भी यही कहना है कि डूंडोली में पहले बहुत टीले थे। सम्प्रति यहाँ टीले नहीं हैं।

जुरहरा से ९.९ कि.मी. और सुनहड़ा से ६.७ कि.मी. की दूरी पर स्थित है 'डूंडोली' ग्राम।

सीमान्त ब्रज का मानचित्र

ब्रज मंडल का शास्त्रानुसार प्रामाणिक मानचित्र

(अंतर्वेदी ब्रज परिक्रमा क्षेत्र सहित)

ब्रजनिधि परम पूज्य रमेश बाबा महाराज के सान्निध्य में मानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट द्वारा रेखांकित किया गया प्राचीन ग्रंथों पर आधारित मानचित्र

मान मन्दिर, सेवा संस्थान ट्रस्ट, गहवर वन बरसाना, मथुरा, यू.पी., भारत, पिन. २८१४०५, मो. ९९२७३३८६६६

पूर्ण आकृति का मानचित्र पुस्तक में अलग से भी दिया गया है

उपसंहार

जिस प्रकार भगवान् से बड़ा है भगवान् का नाम, भगवान् से बड़े हैं भगवान् के भक्त, उसी तरह धाम भी धामी से बड़ा है। धाम का अवतरण इसीलिए होता है कि जिन साधनों को साधक कर नहीं पाता वह सहज में धामसेवा से ही उस साधन का फल पा लेता है। बड़े से बड़े अपराधों का शमन धाम कर देता है। ब्रज वसुन्धरा की पावन धरती न केवल सामान्य जीवों के कल्याण की हेतु रही है अपितु इस धरा का आश्रय ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने भी लिया। ६० हजार वर्ष की तपस्या के पश्चात् ब्रह्मा जी को वृषभानुपुर (बरसाना) में पर्वत रूप मिला तो वहीं स्वयं विष्णु भगवान् गोवर्धन में गिरिराज पर्वत एवं नंदगाँव में शंकर भगवान् नंदीश्वर पर्वत के रूप में अवतरित हुए। राधामाधव के नित्य केलि विलास की भूमि भगवद्मिलन की आधाररूपा है। यहाँ का कण-कण भगवद्रूप है। पुरातन समय से संत महात्माओं ने भगवदरस की अनुभूति करते हुए समय-समय पर प्रकट किया है। काल प्रभाव वश हमारी दृष्टि इस धरा धाम के दिव्य स्वरूप को समझ नहीं पाती। महापुरुषों द्वारा महात्म्य दर्शन कराया जाता रहा है। बज्रनाभ जी, चैतन्य महाप्रभु जी एवं श्री नारायण भट्ट जी द्वारा जिस प्रकार ब्रजभूमि के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया गया इसी प्रकार ब्रज के विरक्त संत पूज्य गुरुदेव श्री रमेश बाबा के गहन अनुसन्धान एवं शोध के बाद संरक्षण एवं सम्वर्धन से धामाश्रितों को अवलम्ब प्रदान किया है। रसीली ब्रज यात्रा के पूर्व प्रकाशनोपरांत ब्रज के भौगोलिक स्वरूप का वास्तविक चित्रण बड़ी ही जटिल समस्या थी क्योंकि संकीर्णता के रंग से रंजित दूषित भावनाओं में इस धाम को भी अत्यंत सीमित करने का प्रयास किया गया जिसके फलस्वरूप मात्र मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, बरसाना, बलदेव एवं कामवन तक ही लोग ब्रज समझने लगे। अनन्त परमेश्वर के अनन्त धाम को किसी की स्थूल दृष्टि क्या समझ पायेगी? फिर भी जिस प्रकार भगवान् करुणाकातर हैं, सदा दया करने के लिए आतुर रहते हैं उसी प्रकार ब्रजोपासक संत श्री रमेश बाबा जी की महती अनुकम्पा से मुझ जैसे क्षुद्र जीव द्वारा ब्रज के वृहद्रूप को लिखने का प्रयास किया गया है जो पाठकों व ब्रजसेवकों को अवश्य ही नवजीवन प्रदान करेगा। मध्यप्रदेश के ग्वालियर का पूर्वी भिण्ड का गोहद जहाँ तक गोवंश परिभ्रमण की सीमा अनेक विद्वानों, संतों ने स्वीकारी है उधर हरियाणा के सोहना को सीमान्त ग्राम माना तथा पश्चिम में भरतपुर का पहाड़ी गाँव जो वाराह भगवान् के प्रवेश का स्थल था तथा हरिदास जी की जन्म भूमि हरिदासगढ़ अर्थात अलीगढ तक की लीला भूमि रसीली ब्रज यात्रा के इस द्वितीय भाग में प्रकाशित की जा रही है जो आपके सपनों का सुनहरा ब्रज होगा जिसका आश्रय पाकर ब्रज रस रसिक पायेंगे अद्भुत अलौकिक आनंद।

सांकेतिक नाम

इस ग्रन्थ (रसीली ब्रज यात्रा) में लीला स्थलियों के प्रमाण, शास्त्रानुसार, आचार्यों, महापुरुषों एवं संतों की वाणियों से लिए गए हैं। अतिशय प्रयास किया गया है कि प्रत्येक श्लोक संख्या या महापुरुषों के पदों को लिखने में त्रुटि न हो। इस परिशिष्ट में उन शास्त्रों एवं ग्रंथों का उल्लेख है जिनसे सन्दर्भ लिये गए हैं।

संक्षिप्त नाम	पूर्ण नाम
अथर्व.	अथर्व वेद
आ. पु.	आदि पुराण
आ. रा.	आनंद रामायण
आ. वा. पु.	आदि वाराह पुराण
उ.नी.श्रृं.प्र.	उज्जवल नीलमणि श्रृंगार भेद प्रकरण
ऋ.	ऋग्वेद
ग. सं. गि.ख.	गर्ग संहिता गिरिराज खण्ड
ग. सं. गो. ख.	गर्ग संहिता गोलोक खण्ड
ग. सं. म. ख.	गर्ग संहिता मथुरा खण्ड
ग.सं.वृ.ख.	गर्ग संहिता वृन्दावन खण्ड
गीता.	श्रीमद्भगवद्गीता
चै.चरि.म.ली.	चैतन्य चरितामृत मध्य लीला
चै.च.अन्त्यलीला	चैतन्य चरितामृत अन्त्यलीला
दे.पु.	देवी पुराण
ना.भ.सू.	नारद भक्ति सूत्र
प.पु	पद्म पुराण
प.पु.पा.ख.	पद्म पुराण पातल खण्ड
पा.यो.द.	पातञ्जली योग दर्शन
ब्र.प्रे.सा	ब्रज प्रेमानन्द सागर
ब्र.भ.वि.	ब्रज भक्ति विलास
ब्र.वि.	ब्रज विलास

संक्षिप्त नाम	पूर्ण नाम
ब्र.वै.कृ.ज.खं.	ब्रह्मवैवर्त कृष्ण जन्म खण्ड
ब्र.वै.ग.ख.	ब्रह्मवैवर्त गणपति खण्ड
भा.	श्रीमद्भागवत पुराण
भा.मा.	श्रीमद्भागवत पुराण माहात्म्य
भा.उ .मा.	श्रीमद्भागवत पुराण उत्तर माहात्म्य
भा.स्क.पु.मा.	श्रीमद्भागवत स्कन्द पुराण माहात्म्य
रा. सु. कां.	राम चरित्र मानस सुन्दर कांड
रा.चरि.मा.बा.का	राम चरित्र मानस बाल कांड
रा.चरि.मा.उ	राम चरित्र मानस उत्तर कांड
रा.च.मा.अयो.	राम चरित्र मानस अयोध्या कांड
रा.च.मा.अरण्य	राम चरित्र मानस अरण्य कांड
रा.च.मा.किष्कि.	राम चरित्र मानस किष्किकन्धा कांड
रा.च.मा.लं.का.	राम चरित्र मानस लंका कांड
रा.च.मा. सु.	राम चरित्र मानस सुन्दर कांड
रा.सु.नि.	राधा सुधा निधि
वा.पु.	वायु पुराण
वा.पु.	वामन पुराण
वा.रा.अयो.का	वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड
वा.रा.सु.का.	वाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड
वि.पु.	विष्णु पुराण
वृ.गौ.तं.	वृहद् गौतमीय तंत्र
श्रृं.र.सा.	श्रृंगार रस सागर
सू.वि.प.	सूर विनय पत्रिका
सू.सा.	सूरसागर
स्क.पु.	स्कन्द पुराण
स्क.पु.म.ख.	स्कन्द पुराण मथुरा खण्ड
स्क.पु.वै.ख.	स्कन्द पुराण वैष्णव खण्ड
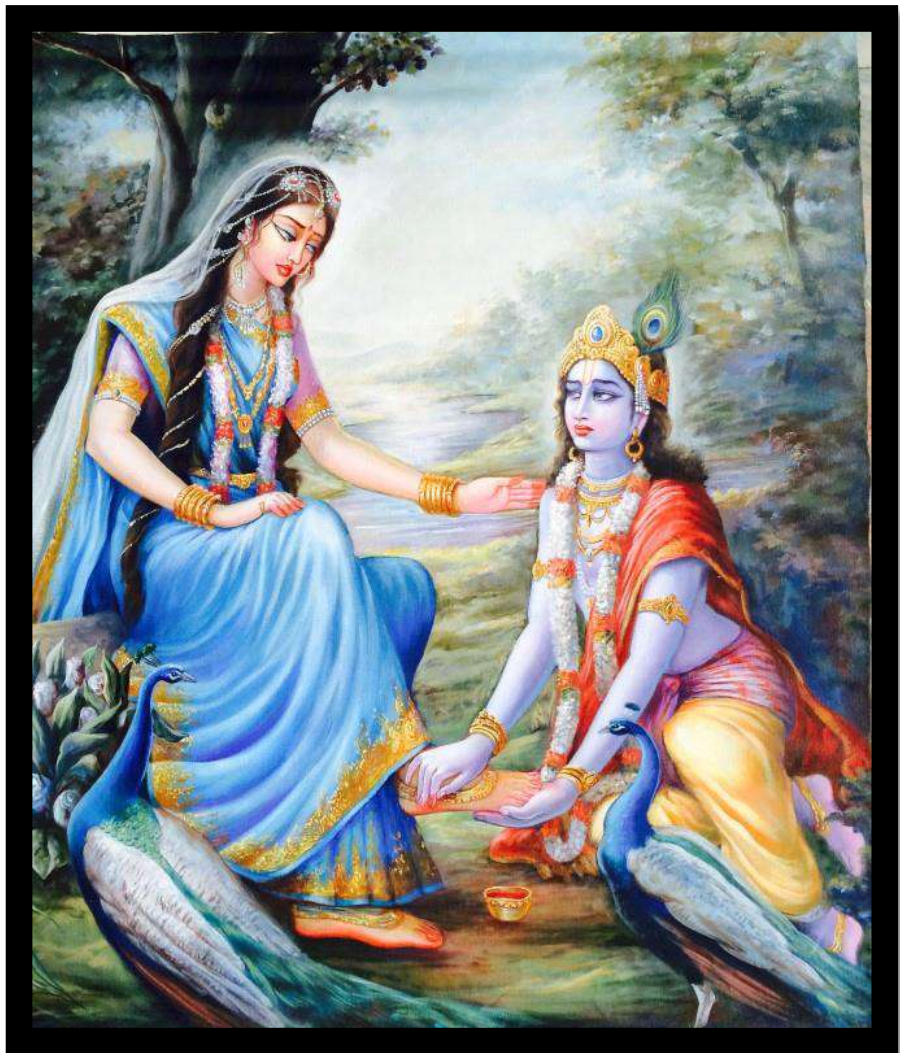
रसीली ब्रज यात्रा

सीमान्त ब्रज

राधानामसुधारसं रसयितुं जिह्वास्तु मे विह्वला
पादौ तत्पदकाङ्क्षितासु चरतां वृन्दाटवीवीथिषु ।
तत्कर्मैव करः करोतु हृदयं तस्याः पदं ध्यायतां
तद्भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रतिः ॥

(रा.सु.नि. १४१)

जिसकी जिह्वा केवल राधा नाम ही लेती है, जो केवल धाम में ही रहता है, जिसका शरीर केवल सेवा में ही रहता है एवं हृदय में केवल चरणों का ही ध्यान है, उसे ही रसानुभूति होगी, अभी तो हमारी स्थिति यह है कि राधा नाम ही नहीं लेते इतर चर्चा तो बहुत करते हैं, धाम में वास भी नहीं हो पा रहा है। कुछ तो स्वदोष से ही नहीं आ पाते हैं और कुछ जो आना चाहते हैं, उन्हें ऐसे मार्गदर्शक मिल जाते हैं जो कहते हैं कि धाम में निवास मत करो, अपराध होगा। ठीक है अपराध से भय करो किन्तु इस भय से धामवास मत छोड़ो। क्योंकि धामवास से ही सिद्धि मिलेगी।

ISBN 978-81-928073-0-0
9 788192 807300

http://www.maanmandir.org

Published: Radha Astami – 29 Aug 2017

आज से ७० वर्ष पूर्व यात्राओं में ३०-३० हजार यात्रीगण चलते थे, जिससे कूप जल विहीन हो जाते थे। उस समय जो ब्रज यात्राओं की बहुलता थी, रसमयता थी, वह आज नहीं रही। पद यात्राएँ हट करके कार यात्राएँ रह गयीं। इसका कारण शारीरिक दुर्बलता ही नहीं है, अपितु भावनाओं की क्षीणता भी है । **श्रीराधारानी ब्रजयात्रा** मात्र २७ वर्ष पुरानी है किन्तु रसालता के साथ-साथ सर्वप्रवृद्ध हो गई चूंकि यहाँ यात्रियों को भगवन्नाम से जोड़े रखा जाता है। निष्काम कर्म से सकाम कर्म निश्चित ही अत्यंत नीच है। फलाकांक्षी कृपण मनुष्यों का मुख दर्शन भी महापाप है। कामना त्याग वाला जीव ही स्थितप्रज्ञ है। कामना मन को चंचल करती है। कामना त्याग से कर्म, शक्ति संपन्न हो जाता है लेकिन कामना का प्रवेश होने से, पारस्परिक वैष्णव समाज के विघटन व राजस बढ़ने से वह बात अब नहीं रही। रजोगुण से ब्रज रज का रस चला जाता है।

रज छाँड़े रज पाइये
रज राखें रज जाइ ।
रज सों रजहि पिछोन लै
रज सों रसिक कहाइ ॥

श्रीराधारानी ब्रजयात्रा पूर्णतया निःशुल्क, साम्प्रदायिक भेदभाव रहित एवं सतत् भगवन्नाम की सासंगता होने से यह लोकोत्तर स्तर तक पहुँच गयी है। ब्रह्मज्ञानी मोक्षार्थियों का कार्य फलाकांक्षा त्याग कर भगवन्नाम से आरम्भ होता है जो आप को 'रसीली ब्रज यात्रा' में प्राप्त होगा।